CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृष्णदास संस्कृत सीरीज-५३

॥ श्रीः ॥

चम्पूरामायणम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

MUNSHIRAM MANOHARLAL
PUBLISHERS PVT. LTD.
ORIENTAL & FOREIGN BOOKSELLERS
P.O. 5715, 54 RANI JHANSI ROAD,
NEW DELHI - 110055 (INDIA)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला
२६

श्रीभोजराजसार्वभौमविरचितं

चम्पूरामायणम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतम्

व्याख्याकारः-
पण्डित रामनाथत्रिपाठी शास्त्री

BVB Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
528

MUNSHIRAM MANOHARLAL
PUBLISHERS PVT. LTD.
Sanskrit Religious Music & Ayurvedic Book Sellers
4416, Nai Sarak, Delhi-110006
Phone : 3911154

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
वाराणसी
१९७९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६

मूल्य C.S.S. Office
Rs. 75/-

© चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१
फोन : ६३१४५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA
26

CHAMPŪRĀMĀYAṆAM

OF

BHOJARAJA

Edited With

'Kalyani' Sanskrit-Hindi Commentaries

BY

Pt. RAMANATH TRIPATHI SHASTRI

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya * Bharatiya Vidya
528

Chaukhamba Amarabharati Prakashan

VARANASI–221001

1979

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

© Chaukhamba Amarabharati Prakashan

Oriental Publishers & Book-Sellers

Post Box No. 138

K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Varanasi-221001

(INDIA)

First Edition

1979

Price Rs. [illegible]-00

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 8, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समर्पणम्

जिनके

चरणकमलों की

शीतल सुखद छाया में

व्याकरण साहित्यादि-विविध विषयों

के

समुचित ज्ञानार्जन का सौभाग्य मिला

उन्हीं

श्री जानकीरमण संस्कृत महाविद्यालय

गोसाईंगंज, फैजाबाद

के

भूतपूर्व प्रधानाचार्य

आचार्य प्रवर

गुरुवर

श्री ६ सहदेव मिश्र जी

के

करकमलों में

श्रद्धाभक्ति के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राक्कथन

समय-समय पर कवि मूर्धन्य श्रीमन्महाराजभोजराजकृत 'चम्पू रामायण' के अनेक संस्करण पाठकों के समक्ष अपने सन्तोषप्रद विशिष्टगुणों का उपहार लेकर प्रस्तुत हुए, फिर भी पाठकों की दृष्टि से ऐसे संस्करण की आवश्यकता ज्यों की त्यों बनी ही रह गयी, जो संस्कृत साहित्य का संस्कृत माध्यम से अथवा हिन्दी माध्यम से अध्ययन करने वाले दोनों प्रकार के पाठकों का समान रूप से कल्याण कर सके। उनकी इसी आवश्यकता को दृष्टि में रख कर 'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेत 'चम्पू रामायण' का यह अभिनव संस्करण उनके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसकी अपनी विशिष्टता है:—

(१) आरम्भ में भूमिका की योजना कर चम्पू काव्य का उद्भव और विकास उसकी परम्परागत परिभाषा, कवि और उसकी प्रस्तुत कृति आदि विषय में ज्ञातव्य बातों पर सरल एवं सुबोध हिन्दी में संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

(२) संस्कृत व्याख्या को, मूल की अपेक्षा सरलतर भाषा और विशद शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिससे दोनों प्रकार के पाठक समान रूप से लाभान्वित हो सकें। प्रसङ्गवश आये हुए अलङ्कारों और छन्दों का लक्षण सहित निर्देश तथा अन्तर्गत कथाओं का संक्षिप्त उल्लेख कर दिया गया है।

(३) गद्य-पद्य सभी भागों का अर्थ हिन्दी में स्पष्ट कर दिया गया है।

(४) अन्त में हिन्दी नोट्स (टिप्पणी) में आवश्यक शब्दों की व्याख्या, आवश्यकतानुसार उनका व्याकरण-सम्बन्धी विवेचन आदि भी कर दिया गया है, किन्तु ग्रन्थ के विस्तार भय से यह सब सक्षेप में ही करना पड़ा है।

(५) पाठकों की सुविधा के लिए अन्त में वर्णानुक्रम पद्यसूची भी प्रस्तुत कर दी गयी है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुझे आशा है कि यह संस्करण दोनों प्रकार के पाठकों की आवश्यकता को एक साथ पूरा करनेमें सर्वथा सफल सिद्ध होगा, किन्तु अपने प्रयास में मैं कहाँ तक सफल रहा हूँ, यह तो पाठक ही आँक सकेंगे। यदि मेरे इस प्रयास से उन्हें तनिक भी सन्तोष मिला, तो मुझे कृतार्थ होने के लिए वही पर्याप्त होगा।

'चम्पूरामायण' के इस संस्करण को वर्तमान रूप देते समय पूर्ववर्ती अनेक संस्करणों से असाधारण सहायता मिली है। मूल पाठ, निर्णय सागर प्रेस बम्बई से १९५९ ई० में प्रकाशित दशमसंस्करण तथा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से सन् १९७० ई० में प्रकाशित द्वितीय संस्करण के पाठ को तुलनात्मक दृष्टि से परख कर तैयार किया गया है। पूर्ववर्ती कतिपय विद्वानों की टीकाओं से भी बहुत कुछ समुचित प्रेरणा मिली है। भूमिका लिखने में पूज्य डॉ० छविनाथ त्रिपाठी की कृति (चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवम् ऐतिहासिक अध्ययन') ने पथ प्रदर्शक का काम किया है इन सभी मान्य-विद्वानों के पादपद्मों में नतमस्तक हो आभार प्रकट करता हूँ।

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन संस्थान के कर्मठ संचालक महोदय तथा उनके कर्त्तव्यनिष्ठ सहयोगी जन धन्यवाद के पात्र हैं जिनके प्रशंसनीय सहयोग से यह संस्करण पाठकों के करकमलों में पहुंच सका है।

अन्त में अज्ञानवश अथवा प्रमादवश हुई सभी त्रुटियों एवं प्रूफ आदि की अशुद्धियों के लिए क्षमा-याचना करता हूँ।

प्राच्यविद्या संस्थान
खिरौनी, सोहावल (R. S.)
फैजाबाद
वि० सं० २०३५

विद्वद्विधेय—
रामनाथ त्रिपाठी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिका

चम्पू काव्य और उसकी परिभाषा

कवि द्वारा व्यक्त अनुभूतियों को सहृदय जन नेत्रेन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय से ग्रहण करते हैं, अतः इन्द्रियग्राह्यता के आधार पर काव्य के दो भेद हो जाते हैं दृश्य और श्रव्य। श्रव्य काव्य शैली की दृष्टि से तीन प्रकार के होते हैं, पद्य काव्य, गद्य काव्य और मिश्र काव्य। गद्य-पद्य की मिश्रित शैली से निर्मित काव्य ही मिश्र काव्य कहलाता है। यद्यपि रूपक, उपरूपक आदि भी मिश्रशैली में ही लिखे जाते हैं किन्तु वे विशेषतः नेत्रेन्द्रियग्राह्य होने के कारण दृश्य काव्य के अन्तर्गत हैं, श्रव्यकाव्य के नहीं। गद्य काव्य का अर्थगौरव और पद्यकाव्य की रागमयता इन दोनों का एकत्र समावेश करने की प्रवृत्ति ही मिश्रकाव्य की जन्मदात्री है। गद्य के सम्बन्ध से पद्यसूक्ति अपेक्षाकृत अधिक हृदयग्राहिणी बन जाती है जैसे वाद्यकला से संगीत[1]। श्रव्यकाव्यान्तर्गत प्रबन्धात्मक मिश्रकाव्य का एक मात्र सर्वोत्कृष्ट अंग चम्पूकाव्य है। चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगण के गत्यर्थक 'चपि' धातु से 'उ' प्रत्यय लगा कर 'चम्पयतीति चम्पूः' की गयी है। हरिदास जी भट्टाचार्य ने चम्पू शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की है-चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयतीति चम्पूः। इससे सिद्ध होता है कि चम्पूकाव्य की सफलता के लिए उसमें सहृदय-हृदय को चमत्कृत, विस्मित, पवित्र और प्रसन्न करने की अद्भुत विशेषता अवश्य होनी चाहिये।

चम्पूकाव्य की परिभाषा सर्व प्रथम आचार्य दण्डी ने दी—

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ॥' (काव्यादर्श १।३१)

१-'गद्यानुबन्धरसमिश्रित पद्यसूक्ति र्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।'
(चम्पूरामायण, १।३)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इससे पता चलता है कि दण्डी के समय (६००-७०० ई०) तक चम्पू काव्य अस्तित्व में आ चुके थे।

हेमचन्द्र और वाग्भट चम्पू काव्य में मिश्रशैली के अतिरिक्त सांकता और सोच्छ्वासता भी चाहते हैं—

गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा चम्पूः।

(काव्यानुशासन हेमचन्द्र ८।९, काव्यानुशासन वाग्भट प्रथम अध्याय)

विश्वनाथ ने भी कहा–

'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते यथा देशराज-चरितम् ॥'

(साहित्यदर्पण ६।३३६)

किसी अज्ञातनामा विद्वान् का कथन है–

'गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा कविगुम्फिता।
उक्ति प्रत्युक्ति विष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता ॥'

उपर्युक्त उपलब्ध सभी परिभाषायें विविध चम्पूकाव्य-कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं—

(१) गद्यपद्यमय होना-यदि गद्य-पद्य से मिश्रित होना ही चम्पू काव्य की विशेषता मान लें तो ब्राह्मण ग्रन्थ, गद्य-पद्य मिश्रित कथा कहानियाँ ये सभी चम्पू काव्य के अन्तर्गत हो जाँयगे अतः यह परिभाषा अतिव्याप्ति दोष से युक्त अतएव अमान्य है।

(२) सांक होना-उपलब्ध २४५ चम्पूकाव्यों में केवल नलचम्पू और गंगावतरण चम्पू सांक हैं, अतः यह विशेषता अपनी अव्याप्ति के कारण अग्राह्य है।

(३) सोच्छ्वास होना-चम्पू काव्यों का विभाजन केवल उच्छ्वासों में ही नहीं, स्तबकों, आश्वासों, उल्लासों, काण्डों, तरङ्गों, सर्गों, विलासों, लम्भकों, कल्लोलों, मनोरथों, बिन्दुओं, परिच्छेदों आदि में भी मिलता है, अतः यह विशेषता भी अमान्य ही ठहरती है।

(४) उक्ति प्रत्युक्ति का न होना-यह विशेषता भी सभी चम्पूकाव्यों में समान रूप से घटित नहीं होती। 'विश्वगुणादर्श' आदि छः चम्पू काव्य उक्ति-प्रत्युक्ति से भरे पड़े मिलते हैं।

(५) विष्कम्भ का न होना-चम्पूकाव्य दृश्यकाव्य तो है नहीं अतः उसमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विष्कम्भ के, होने का प्रश्न ही नहीं उठता, अतः यह विशेषता भी अविचारणीय है।

वास्तविक बात यह है कि चम्पूकार पूर्णतः स्वतन्त्र रहे हैं। उन्होंने वस्तु ग्रहण, नायक-चयन, पात्र-प्रयोग, रस-परिपाक एवं शैली आदि में कोई शास्त्रीय प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं किया है, इससे चम्पूकाव्यों में इतनी बहुबिधता है कि उन सबको और उनकी विशेषताओं को किसी एक परिभाषा के अन्दर समाहृत कर पाना असम्भव है। ऐसी स्थिति में भी पूज्य डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ने एक अभिनव परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो अधिक उपयुक्त है —

'गद्य पद्यमयंश्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्
सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम् ॥'

('चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवम् ऐतिहासिक अध्ययन' पृष्ठ ४९)

उक्त परिभाषा में 'श्रव्यम्' पद दृश्य रूपक, उपरूपक, आदि को व्यावृत्त कर देता है, 'संबन्धम्' पद से मिश्रशैली की मुक्तकरचनाओं की भी व्यावृत्ति हो जाती है तथा 'सालंकृतम्' पद कथा कहानियों और आख्यायिकाओं को चम्पू काव्य से पृथक् कर देता है। एवम् 'बहुवर्णितम्' पद चम्पूकाव्यगत वर्णन-विस्तार की प्रवृत्ति का निर्देश करता है। इस प्रकार चम्पूकाव्य की सभी विशेषतायें इस परिभाषा में समन्वित हो गयी हैं।

गद्य-पद्य की मात्रा— चम्पूकारों की स्वच्छन्दता के ही कारण गद्य पद्य की मात्रा के सम्बन्ध में कोई विशेष नियम निश्चित नहीं किया जा सकता है। किन्हीं में गद्य भाग अधिक है (यथा-नलचम्पू, वरदाम्बिका परिणय) तो किन्हीं मे पद्य भाग की अधिकता देखी जाती है (यथा-भोज का चम्पूरामायण अथवा अनन्त भट्ट का महाभारत चम्पू)। हाँ, गद्य और पद्य दोनों भागों में मुख्य रूप से अलंकरण की प्रवृत्ति तथा गद्यभाग को अधिकाधिक समास-वहुल बनाने की प्रवृत्ति दिखायी देती है।

स्रोत – चम्पू काव्यों के मूल स्रोत प्रायः पुराण रहे हैं, पर सामान्य घटनाओं को भी वर्ण्य-विषय बनाया गया है। चम्पूकारों की रुचि वस्तु की अपेक्षा वर्णन-विस्तार की ओर अधिक दीख पड़ती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पात्र—विविध चम्पूकाव्यों के अवलोकन से यह तथ्य प्राप्त होता है कि चम्पू काव्य में एक से अधिक भी नायक एक काव्य के हो सकते हैं। नायक के लिए कोई विशेषता भी अपेक्षित नहीं है, देवता, गन्धर्व, मानव, पशु, पक्षी कोई भी नायक हो सकता है।

रस—चम्पू काव्यों का अंगीरस वीर, शृंगार और शान्त में से कोई रस हो सकता है। अन्य रसों का प्रयोग अंगरूप में हो सकता है।

छन्द—चम्पू काव्यों में वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। आवश्यकतानुसार गीतों का भी समावेश हुआ है।

ग्रन्थारम्भ—महाकाव्य की तरह मंगलश्लोकों से भी चम्पूकाव्य का आरम्भ मिलता है तथा सज्जनस्तुति और खलनिन्दा से भी एवं पौराणिक ढंग से भी।

उपसंहार—चम्पूकाव्यों का उपसंहार मंगलवाक्य, भरतवाक्य, कथा श्रवणफलनिर्देश आदि विविध ढंग से किया गया देखा जाता है।

चम्पू काव्य और उनका रचनाकाल—यद्यपि चम्पूकाव्यों की सर्वाधिक रचना पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक हुई है तथापि उनको दिशा सूचित करने वाले कतिपय चम्पूकाव्यों का विधिवत् निर्माण दशवीं शती के पूर्वार्ध में ही आरम्भ हो चुका था। प्राचीन उपलब्ध चम्पूकाव्यों में त्रिविक्रम भट्ट कृत नलचम्पू (अपर नाम दमयन्ती चम्पू) सब से प्राचीन और साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है। त्रिविक्रम भट्ट हैदराबाद के अन्तर्गत मान्यखेट के अधिपति राष्ट्रकूट वंश के इन्द्रराज (तृतीय) के सभापण्डित थे। इन्द्रराज का अभिषेकोत्सव ९१५ ई० में हुआ था, अतः त्रिविक्रम भट्ट का समय निश्चित है। इन्हीं की दूसरी कृति 'मदालसा चम्पू' है। सुप्रसिद्ध जैन कवि सोमदेव या सोमप्रभ ने ९५९ ई० के लगभग 'यशस्तिलकचम्पू' की रचना की। हरिचन्द्र कृत 'जीवन्धर चम्पू' का समय अनिश्चित है किन्तु ९०० ई० से लेकर ११०० तक के मध्य में हरिचन्द्र विद्यमान थे, ऐसा संस्कृत साहित्य के इतिहास विज्ञों के लेखों से पता चलता है। इस चम्पूकाव्य का मूल स्रोत गुणभद्र का उत्तरपुराण है। आगे उक्त तीनों चम्पूकाव्यों के ही प्रदर्शित पथ पर चल कर बहुत से चम्पूग्रन्थ बनाये गये। रामायण के आधार पर भोज ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

११ वीं शती ई० में चम्पूरामायण की और अनन्त भट्ट ने 'भारत चम्पू' विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया। ११ वीं शतो में ही भागवतचम्पू की रचना हुई। इसके रचयिता की उपाधि थी अभिनव कालिदास। कवि का नाम अज्ञात हैं। 'भागवत चम्पू' नामक दो और चम्पूग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें एक की तीन प्रतियाँ उपलब्ध हैं। एक प्रति में कवि का नाम रामभद्र दिया हुआ है, शेष दो प्रतियों में 'राजनाथ' है। दूसरा भागवत चम्पू 'चिदम्बर' की कृति है। रामायण तथा महाभारत के आधार पर और भो बहुत से चम्पूकाव्य लिखे गये जो प्रसिद्ध नहीं हो सके। पुराणों के आधार पर बहुत से चम्पूग्रन्थ बने। 'नृसिंह चम्पू' नामक दो चम्पूग्रन्थ मिलते हैं, एक दैवज्ञ सूर्य कवि की कृति है जिसमें कवि ने ५।७६ से ७८ तक में अपना स्पष्ट परिचय दिया है' दूसरा 'नृसिंहचम्पू' केशवभट्ट की रचना है।

इसके बाद शेष श्रीकृष्ण ने 'पारिजातहरण चम्पू' लिखा जिनका समय १६वीं शती का उत्तरार्द्ध है। १६३७ ई० के लगभग नीलकण्ठ ने 'नीलकण्ठ-विजय' चम्पूकाव्य लिखा। महाराज अच्युतराय की राजमहिषी तिरुमलाम्बा ने 'बरदाम्बिकापरिणयचम्पू' प्रसिद्ध चम्पूग्रन्थ लिखा। पुराणों पर आधारित चम्पूपरम्परा की एकरसता से ऊबकर १७वीं शती ई० में 'समरपुङ्गव' ने 'तीर्थ-यात्रा-प्रबन्ध' ('यात्राप्रबन्ध') चम्पूकाव्य की रचना की। विश्ववैचित्र्य की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से वेङ्कटाध्वरि ने 'विश्वगुणादर्शचम्पू' की रचना की जिसमें विश्वावसु और कृशानु नामक दो गन्धर्वों की कल्पना कर उनकी व्योमयात्रा का काल्पनिक तथा रमणीय वर्णन है। इसी चम्पू की कथोपकथन शैली में जय (शैव) और विजय (वैष्णव) दो पात्रों की कल्पना कर अण्णयार्य ने वैष्णव और शैव विचारधारा की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से १८वीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में 'तत्त्वगुणादर्श' चम्पूकाव्य की रचना की। फिर तो चम्पूकाव्य की गद्यपद्यमय मिश्रित शैली को ही चम्पूकाव्य का वास्तविक स्वरूप मानकर शास्त्रीयतत्त्व के प्रतिपादन के उद्देश्य से चम्पूकाव्य लिखे जाने लगे जिन्हें चम्पूकाव्य न कह कर दर्शन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। जैसे आचार्य विजय चम्पू (वेदान्ताचार्य विजय), विद्वन्मोदतरङ्गिणी आदि।

इस प्रकार विविध विषयों पर लिखे गये अब तक ७४ चम्पूकाव्य प्रकाशित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपलब्ध हैं शेष अप्रकाशित ही हैं।[1] विविध सम्भव स्रोतों से अबतक २४५ चम्पूकाव्यों की उपलब्धि हो चुकी है।

महाराज भोज

भोज परमारवंशी क्षत्रिय थे। परमार वंश का सबसे पहला राजा 'उपेन्द्र' (अपर नाम कृष्ण) माना जाता है। उसका समय अनुमानतः ८०० ई० से ८२५ ई० है। यह मालवा का शासक था। उदयपुर प्रशस्ति और नवसाहसांक चरित दोनों से इस राजा के प्रताप और यज्ञशीलता पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। परमारवंश की उत्पत्ति के विषय में बड़ा मतभेद है। जनश्रुति है कि एक बार विश्वामित्र ने वसिष्ठ की गाय छीन ली। वसिष्ठ ने विश्वामित्र को नीचा दिखाने के लिए महायज्ञ किया। इस यज्ञकुण्ड में से एक वीर योद्धा प्रकट हुआ जिसने विश्वामित्र से गाय छीन ली और वसिष्ठ को वापस कर दी। इस वीर के कार्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर वसिष्ठ ने उसे 'परमार' की उपाधि दी। परमार-वंश के समस्त शासक इसी परमार के वंशज माने जाते हैं। भोज देव स्वयं परमारवंश को अग्नि से उत्पन्न मानते हैं—

'वासिष्ठैः सुकृतोद्भवोऽध्वरशतैरस्त्यग्निकुण्डोद्भवो
भूपालः परमार इत्यधिपतिः सप्ताब्धिकाञ्चेर्भुवः।
अद्याप्यद्भुत हर्षगद्गदगिरो गायन्ति यस्योद्भटं
विश्वामित्रजयोर्जितस्य भुजयोर्विस्फूर्जितं गुर्जराः॥' (सरस्वतीकण्ठा०)

विविध ताम्रलेखों, उल्लेखों एवं ऐतिहासिक प्रमाणों से महाराज भोज का शासनकाल १०१८ ई० से १०६३ तक निश्चित हो चुका है। इनके पूर्वज वैरिसिंह (अपर नाम वज्रट) ने जिनका शासन काल ९१४ ई० से ९४१ ई० तक माना जाता है, धारा नगरी को अपनी राजधानी बनाया था। इसी धारा नगरी के अधीश्वर के रूप में महाराज भोज ने विक्रमादित्य के समान ही दानशीलता, न्यायप्रियता एवं विद्वत्ता के कारण महती लोकप्रियता प्राप्त की

---

१. विशेष ज्ञान के लिये देखिए—चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित डां० छविनाथत्रिपाठीकृत 'चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवम् ऐतिहासिक अध्ययन'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थी। महाराज भोज ने अपने पिता सिन्धुराज अथवा सिन्धुल की मृत्यु के बाद शासन-सूत्र हाथ में लिया। उसी समय से जीवनपर्यन्त इन्हें शत्रुओं से लोहा लेते ही बीता। ये अत्यन्त साहसी और कठिन से कठिन कार्यों को करने के लिए तत्पर रहते थे। ये जय-पराजय में अन्तर न मानते हुए निरन्तर संघर्ष के पक्ष पाती थे। इनकी शक्ति, पराक्रम और मेधा का आतंक समस्त भारत में छाया हुआ था।

विद्या-प्रेम—भोज अपनी शुद्ध वीरता के कारण उतने अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं, जितने कि अपने विद्याप्रेम, पाण्डित्य और साहित्य-संवर्धन में योगदान के कारण प्रसिद्ध हैं। उदयपुर प्रशस्ति में इन्हें कविराज कहा गया है। ये विद्वानों के आश्रयदाता थे। इनका दरबार उच्च-कोटि के विद्वानों एवं कवियों से सुशोभित रहता था।

महाराज भोज लोकोपकारी कार्यों के प्रति विशेष रुचि रखते थे। अपने राज्य में इन्होंने अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया था। इन्होंने भोजपुर नामक नगर तथा उसके पास ही एक झील का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि धारा का लौह स्तम्भ जो ४३ इं० ऊँचा है, इन्हीं के शासनकाल में बना है।

धर्म—शैवधर्म के सिद्धान्तों पर महाराज भोज का रचित 'तत्त्वप्रकाश' नामक ग्रन्थ विश्वविश्रुत है, अतः निश्चित है कि वे शैवधर्मावलम्बी थे, फिर भी उनका धार्मिक दृष्टिकोण व्यापक और उदार था।

भोजराज के निर्मित ग्रन्थ—

विभिन्न विषयों पर महाराज भोज ने २१ इक्कीस ग्रन्थों का प्रणयन किया है। जिनमें निम्नलिखित ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

(१) आयुर्वेद सर्वस्व (आयुर्वेद) (२) राजमृगांक (ज्योतिष)
(३) व्यवहार समुच्चय (धर्मशास्त्र) (४) शब्दानुशासन (संस्कृत व्याकरण)
(५) समराङ्गणसूत्रधार (शिल्पशास्त्र) (६) सरस्वतीकण्ठाभरण (अलंकारशास्त्र)
(७) नामतालिका (कोष) (८) युक्तिकल्पतरु (शैवशास्त्र)
(९) चम्पूरामायण (चम्पूकाव्य)

इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है कि महाराज भोज एक महान्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विजेता और शासक होने के साथ एक महान् साहित्यकार, साहित्यप्रेमी और उदार धार्मिक शासक थे। इसके विषय में 'प्रत्यक्षरलक्षं ददौ' वाली बात अत्युक्ति भले हो, अमूलोक्ति नहीं है। भोज की विद्वत्ता, उनकी कवियों के प्रति समादरभावना आदि के सम्बन्ध में बहुधा कहा जाता है—

'अद्यधारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते ॥' इति ॥

चम्पूरामायण पर एक दृष्टि

चम्पूरामायण महाराज भोज की एक उत्कृष्ट एवं सर्वाधिक प्रिय कृति है। बालकाण्ड से लेकर सुन्दर काण्ड तक भोज की रचना है। लक्ष्मणसूरि नामक विद्वान् एवं कवि ने युद्ध काण्ड का प्रणयन कर इस चम्पूकाव्य की पूर्ति की। इस विषय में युद्ध काण्ड की रचना करते हुए लक्ष्मणसूरि ने स्वयं कहा है—

'भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्यन्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदाराम्।
न व्रीडितोऽहमधुना नवरत्नहारसंगेन किन्न हृदि धार्यत एव तन्तुः ॥'
(युद्धकाण्ड २)

मुद्रामुद्रित जीवितां जनकजां मोहाकुलं राघवं
चूडारत्नविलोकनेन सुचिरं निध्याय निध्याय च।
प्रारेभे हृदि लक्ष्मणः कलयितुं पौलस्त्यविध्वंसनं
धीरः पूरयितुं कथां च विमलामेकेन काण्डेन सः ॥ (युद्धकाण्ड ३)

तथा—

साहित्यादिकलावता शनगरग्रामावतंसायित-
श्रीगङ्गाधरधीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिकासूनुना।
प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपिजीयाच्चिरम्॥(यु०का०११०)

भोज ने प्रस्तुत चम्पूरामायण की रचना का आधार वाल्मीकिरामायण को बनाया है और इसके लिये उन्होंने स्वयं वाल्मीकि के प्रति नम्रभाव से कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा है—

"वाल्मीकि-गीतरघुपुंगवकीर्तिलेशैस्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।
गंगाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः किं तर्पणं न विदधाति नरः पितॄणाम् ॥"
(१।४)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोज ने वाल्मीकिरामायण की आदर-भावना वश कथावस्तु में, पात्रों के चरित्र आदि में किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन नहीं किया है। यहां तक कि बालकाण्ड को छोड़कर, शेष काण्डों का आरम्भ रायायण के उस उस काण्ड के आदिम पदों से किया है—

‘गच्छता दशरथेन निर्वृतिम्’ इत्यादि (चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड १)
‘गच्छता मातुलकुलम्’ इत्यादि (वाल्मीकिरामायण ,, ,,)

‘प्रविश्य विपिनम्’ इत्यादि (चम्पूरामायण अरण्यकाण्ड १)
‘प्रविश्य तु महारण्यम्’ इत्यादि (वाल्मीकिरामायण ,, ,,)

‘सतां सतां बुद्धिमिव’ इत्यादि (चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड १)
‘सतां पुष्करिणीं गत्वा’ इत्यादि (वाल्मीकिरामारण ,, ,,)

ततो हनूमान् दशकण्ठनीताम्’ इत्यादि (चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड १)
‘ततो रावणनीतायाः’ इत्यादि (वाल्मीकिरामायण ,, ,,)

बालकाण्ड में मङ्गलाचरण विषयक नम्रता प्रदर्शन आदि के कारण इस नियम का उल्लङ्घन हुआ है। उपर्युक्त प्रथम श्लोकों में पर्याप्त भाव-साम्य भी देखा जाता है, अन्यत्र भी वस्तुसाम्य के कारण ही भाव-साम्य मिलते हैं। इसे कवि का असामर्थ्य अथवा भावापहरण नहीं समझना चाहिये। इतना सुन्दर काव्य रचने वाला कवि छोटे-मोटे भावों का अनुकरण क्यों करेगा? यह तो वाल्मीकि के प्रति उसकी आदर-भावना ही है।

चम्पूरामायण में गद्य के विविध रूपों की रमणीयता पाठकों के मन को मुग्ध करती हुई बाणभट्ट की स्मृति कराती प्रतीत होती है। जहाँ विषय भावप्रधान, मार्मिक अथवा गम्भीर होता है वहाँ वाक्य छोटे-छोटे, दीर्घसमासों से रहित एवं विशेषण पद शून्य होते हैं—

‘एकदा सुन्दे निहते मारीचः कुम्भसम्भवमभिभूय तस्य शापादवाप कौणपताम्। ताटकाप्यभूत् पुरुषादिनी।’

× × ×

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'तत्र कञ्चन विरञ्चिलोकप्रत्यादेशं प्रदर्शयन्नवोचत् ।'

(विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण-गमन, बालकाण्ड)

जहाँ नगरवैभव, रमणीविलास अथवा प्राकृतिक भव्यता आदि का चित्रण है वहाँ अनुप्रासमय दीर्घकायसमासयुक्त, क्लिष्ट एवं विस्तृत पदावली से सम्पन्न विपुल वाक्य के दर्शन होते हैं—

"तदनु जनकराजधानीं रामलक्ष्मण-निरीक्षण-कौतुकादनवरतपतितेन विकच कुवलयनिचयोपचीयमानमेचक-मरीचि-मलिम्लुचेन पौरनारीलोचनरोचिषा कवचितनरपतिपथां विश्वामित्रः प्रविश्य दशरथतनयाविदमभाषत ।"

(बालकाण्ड, राम का जनकपुरी में प्रवेश)

× × ×

व्याकोश कुशेशयपरिचयकषायैर्वनदेवतालतादोलानुकूलैः कूलायतलीलापरवशावल्लभमदाम्बुचुम्बिभिः शम्बरातिशरधिसदृशतटरुहसहकारशिखरविसरदासवासारशीकरशैखरे':—इत्यादि । (आरण्यकाण्ड, पम्पावर्णन)

इतना ही नहीं, श्लेष-बन्ध के द्वारा उपमासृष्टि करने का जो क्रम बाणभट्ट का अपना है' उसे भी भोज ने अपनाया है—

पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदम् प्राकृत व्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासम्, बुधमिव सोमसुतम्'— (बालकाण्ड विश्वामित्रवर्णन) ।

वर्णन-सौन्दर्य की दृष्टि से अरण्यकाण्ड का हेमन्तवर्णन, किष्किन्धाकाण्ड का वर्षाऋतुवर्णन, सुन्दरकाण्ड का सन्ध्यावर्णन अत्यन्त मनोहर स्थल हैं ।

अलङ्कारों का प्रचुर प्रयोग भोज के युग की विशेषता रही है, अतः उनके इस चम्पूकाव्य में भी पदे-पदे अलङ्कारों का उत्तम समावेश हुआ है :—

'वंशस्पृशा हृदयहारि फलान्वितेन रामेरितेन सहसा सह सायकेन ।
स्नेहार्दितेन निरगादनुरागिणीव प्राणावलिर्हृदयतः पिशिताशनानाम् ॥'(१।५२)

जैसे कोई युवती, सद्वंशप्रसूत मनोज्ञलाभयुक्त, अन्यस्त्री से प्रेरित प्रेम पूर्ण पुरुष के साथ अनुरागपरवश हो निकल पड़ती है, उसी प्रकार वंशवृक्ष से उत्पन्न हृदयभेदक फल (नोक) से युक्त रामप्रेरित बाण के साथ राक्षसों की प्राणावलि निकल गयी ।

यहाँ बाणों का निर्गमन (कारण) और प्राणावलि का निर्गमन (कार्य)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोनों का एक साथ कथन होने से अतिशयोक्तिमूलक सहोक्ति अलंकार तो है ही, प्रस्तुत सायक के श्लिष्ट विशेषणों से अप्रस्तुत नायक की प्रतीति होने से श्लेषपुरस्कृत समासोक्ति का भी मनोरम निबन्धन कर उनका कितना सुन्दर संयोग कराया है । उस पर 'अनुरागिणीव' की उपमा अपनी मुहर भी लगा रही है ।

भोज के इस चम्पूरामायण में आद्योपान्त अनुप्रास और यमक की छटा छायी हुई है :—

या तु नः पदवी सैषा यातुनश्चास्य लक्ष्मण ।
यातुकामं तयैवेदं यातु कामं न हन्यताम् ॥ (३।४)
विशिखे विशिखे तस्मिन् विधातृवरवर्मणि ।
सीतां विक्षिप्य चिक्षेप शूलं रक्षो रघूद्वहे ॥ (३।२)

वास्तव में भोज ने अपने पूर्ववर्ती बाण, माघ, कालिदास आदि सभी कवियों के काव्य-सौन्दर्य को इस एक ही ग्रन्थ में भरने का सफल प्रयास किया है । गंगावतरण में माघ की शैली स्पष्ट दिखाई देती है—

'अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा । शशाङ्कशङ्खभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा ॥'

(इत्यादि बालकाण्डान्तर्गत देखिये श्लोक ७८-८१)

इसी प्रकार—

"सीतापुरा गगनचारिभिरप्यदृष्टा मा भूदियं सकलमानवनेत्रपात्रम् ।
इत्याकलय्य नियतं पिदधे विधाता बाष्पोदयेन नयनानि शरीरभाजाम् ॥
रुद्धाऽपि यान्तमनुगच्छति मैथिली मां वत्सो जहाति न कदाचन लक्ष्मणोऽपि ।
इत्येतयोरनुगतिं प्रतिबोध्य गन्तुं भूयोऽपि राजभवनं प्रविवेश रामः ॥"

(२।३३-३४)

इत्यादि अनेक पद्यों में कालिदास की प्रसादगुणपूर्ण शैली परिलक्षित होती है ।

चम्पूरामायण में भोज केवल कलात्मक बाह्य सौन्दर्य में ही उलझे नहीं रह गये हैं अपितु मार्मिक स्थलों को पहचान-पहचान कर उनके भावसौन्दर्य की अभिव्यक्ति का भी सफल प्रयास करते हुए दीख पड़ते हैं । ऐसे स्थलों पर उनकी वृत्ति अधिक रमी है । भगवान् राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव दशरथ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने पुरवासियों के समक्ष रक्खा। उनका प्रस्ताव सुनते ही सकल पुरवासी उसी तरह प्रसन्न हृदय हो गये जैसे प्रावृट्काल के मेघगर्जन से मयूर प्रसन्नता से नाच उठते हैं। भोज ने उनके हृदय को सरल प्रसादगुणपूर्ण पदावली से खोलकर सब के सामने आनन्दराशि-सी विकीर्ण कर दी है :—

'आनन्दबाष्पविसरो वदने प्रजानामाविर्बभूव मकरन्द इवारविन्दे।
रामस्य कान्तिमभिषेकदिने भवित्रीं प्रक्षाल्य चक्षुरिव वीक्षितुमादरेण॥"
(२।४)

प्रजा के हृदय में जब आनन्द समा न सका, तब वह अश्रु के रूप में उनकी आँखों में उमड़ कर छा गया, जैसे कमल में मकरन्द। ऐसा लगता है कि राम के अभिषेक होने वाले दिन उनकी मनोरम मुखशोभा को भरपेट देखने के लिए सारी प्रजा अभी से ही इस अश्रुजल से अपनी-अपनी आँखों को साफ कर लेना चाहती है। इस स्थल पर कवि का हृदय स्वयम् आनन्द से तरंगित-सा हो उठा है।

'राम का राज्याभिषेक होने वाला है' इस सुखद समाचार को सुनकर सीता जी आनन्दविभोर बैठी थीं। सहसा राम उनके पास पहुँच गये और उन्होंने अपने वनवास का दारुण समाचार सीता को कह सुनया। ऐसी स्थिति में सीता की मनोदशा की अभिव्यक्ति भोज ने उपमा द्वारा कितने वैज्ञानिक एवं स्वाभाविक ढंग से की है :—

"कल्याणवादसुखितां सहसैव कान्तां कान्तारचारकथया कलुषीचकार।
अम्भोदनादमुदितां विपिने मयूरीं संत्रासयन्निव धनुर्ध्वनिना पुलिन्दः॥"
(२।३१)

दशरथ की मृत्यु पर कवि की अन्तर्वेदना करुण परिस्थिति को न सह सकी और वह स्वयं विलाप करने लगी :—

'नाक्रान्तस्त्रिदिवः परैः सुमनसां कान्ता न बन्दीकृता,
नाकीर्णं पुरुहूतशासनधरैः साकेतबाह्याङ्गणम्।
नादिष्टाः सचिवाश्च भूतलपरित्राणाय यद्यप्यसौ,
नाकं शोकवशादगाद् दशरथो नास्थां वहन् वाहने॥ (२।६०)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बाली मारा जा चुका है, विलाप करती हुई तारा पतिवियोग से सन्तप्त प्राणों को राम के बाण से मुक्ति दिलाना चाहती है। वह अपनी करुण स्थिति और राम की प्रसिद्ध दयालुता आदि का वर्णन कर अभीष्ट-सिद्धि के लिए प्रार्थना करती है, अन्य न्याय्य उक्तियों का सहारा लेती है' अन्त में उन्हें ललकारती हुई कहती है :—

"नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली,
बाली न च त्रिभुवन-प्रथित-प्रभावः।
तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या,
धन्वी कथं भवसि राघव मामविद्ध्वा" ॥ ४।१८॥

तारा की इस दर्द भरी ललकार को व्यङ्ग्य का चमत्कार कैसा उज्जृम्भित कर रहा है। अन्त में तारा, राम के द्वारा जब अपनी अभीष्टसिद्धि किसी भी प्रकार होती नहीं देखती है तो उसके हृदयरूप दुर्ग में सर्वथा सुरक्षित बाली के प्रति धनुष ताने खड़े राम को कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विवेक से वञ्चित कह कर सन्तोष धारण कर लेती है :—

"क्षितिपतितनयानां हन्त गर्भेश्वराणां किमुनिरवधिमौग्ध्यं शौर्यवज्जन्मसिद्धम्।
मम हृदि निरपाये वर्तमाने कपीन्द्रे रघुवर ! यदमुष्मै तिष्ठसे चापपाणिः॥"
(४।१९)

युद्धकाण्ड में लक्ष्मणसूरि द्वाराकृत मलयपर्वत पर विरह व्यथित राम की मनोदशा, रावण-विभीषण संवाद, विभीषण का रामशरणापन्न होना, राम का समुद्र पर कोप, सेतुबन्ध, अङ्गदरावण-संवाद, सन्ध्याऽऽगमन, श्रीराम की प्रलापलीला, हतरावण के प्रति विभीषण का विलाप, मन्दोदरीविलाप आदि का वर्णन पढ़ते समय यह तनिक भी आभास नहीं होता है कि यह भोज की रचना नहीं है। जिस तरह कादम्बरी के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की रचना में अत्यन्त साम्य है' उसी तरह चम्पूरामायण के सुन्दरकाण्डान्त भाग और लङ्काकाण्ड में भी साम्य है।

नोटः— वाल्मीकि के उत्तरकाण्ड पर भी आधारित सात 'उत्तरचम्पू' विभिन्न कवियों द्वारा रचे गये हैं किन्तु वे सब अप्रकाशित ही हैं।

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

चम्पूरामायणम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

बालकाण्डम्

लक्ष्मीं तनोतु [1]नितरामितरानपेक्ष-
मङ्घ्रिद्वयं निगमशाखिशिखाप्रवालम्।
हैरम्बमम्बुरुहडम्बरचौर्यनिघ्नं
विघ्नाद्रिभेदशतधारधुरन्धरं नः ॥ १ ॥

* कल्याणी *

कृपया यस्य, चिकीर्षिते, विघ्नो भवति न जातु।
शिवसूनुर्वरदायकः, सततं शं विदधातु ॥
रघुकुलकुमुदसितांशवे, स्वजनसततसुखदाय।
नमो जानकीजानये, रावणकरिसिंहाय ॥
पितरं निर्मलात्मानं 'महादेवं' मनस्विनम्।
'सरयू'' जन्मदात्रीं च भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

भोजेन राज्ञा रचितं हि 'चम्पू,–रामायणं यज्जगति प्रसिद्धम्।
करोमि कल्याण्यभिधां मनोज्ञां, तदीयव्याख्यां सरलां प्रकामम् ॥

अथ वाल्मीकिगीतरघुपतिचरितं गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तेर्हृद्यतया चम्पूप्रबन्धात्मना चिकीर्षुस्तत्र भवान् विचित्रसरसकाव्यप्रणयनयशस्वी कविकल्पतरुर्महाराजो भोजश्चिकीर्षितग्रन्थस्य निर्विघ्नसमाप्तये शिष्टाचारज्ञापितस्मृतितर्कितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकमाशीर्वादात्मकं मङ्गलं ग्रन्थतो निबध्नाति—लक्ष्मीमिति।

---

१. 'सुतराम्' इति पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निगमशाखिशिखाप्रवालम्—निगमा वेदा एव शाखिनो वृक्षाः ('वृक्षो महीरुहः शाखीत्यमरः) तेषां शिखा अग्रभागा वेदान्ता इत्यर्थस्तेषां प्रवालं नवपल्लवरूपम् ('प्रवालो वल्लकीदण्डे विद्रुमे नवपल्लवे' इति शब्दार्णवे) वेदान्तप्रतिपाद्यमित्यर्थः। अम्बुरुहडम्बरचौर्यनिघ्नम्—अम्बुरुहं कमलं तस्य यो डम्बरः सौन्दर्यातिशयदर्पस्तस्य चौर्ये अपहरणे निघ्नम् आयत्तम्, पद्मसौन्दर्यदर्पापहारकमित्यर्थः, पद्मसदृशमिति यावत्, (सादृश्यपर्यवसानादुपमा)। विघ्नाद्रिभेदशतधारधुरन्धरम्—विघ्ना एवाद्रयः पर्वतास्तेषां भेदे विदारणे शतधारमिन्द्रायुधं वज्रमिव धुरन्धरं सर्वथा समर्थमित्यर्थः सकलविघ्नविनाशकमिति यावत्। हैरम्बम्—हेरम्बस्येदमिति हैरम्बं श्रीगणेशसम्बन्धि (हेरम्बशब्दात्तस्येदमित्यण्)। अङ्घ्रिद्वयम्–चरणद्वयम्, नः = अस्माकम्, लक्ष्मीम्–सकलाभीप्सितार्थसम्पत्तिम् ('शोभासंपत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिति कथ्यते' इति शाश्वतः)। नितराम्—अतिशयेन, इतरानपेक्षम्—सहायकान्तरनिरपेक्षं यथा स्यात्तथा तनोतु = विस्तारयतु, संपादयत्वित्यर्थः।

अत्र निगमशाखिशिखाप्रवालमिति विशेषणेन श्रीगणेशचरणद्वयस्य वेदान्तप्रतिपाद्यत्वमुक्त्वेश्वररूपतया सकलाभीप्सितप्रदत्वं सूचितम्। विघ्नाद्रिभेदशतधारधुरन्धरमिति विशेषणेन, इतरानपेक्षमिति क्रियाविशेषणेन च चरणद्वयस्य सलीलं सहकार्यन्तरमनपेक्ष्य विघ्नविनाशपूर्वकं सेवकजनसकलाभीप्सितदानसामर्थ्यमावेदितम्।

आदौ 'लक्ष्मी' शब्दप्रयोगेन वर्णगणादिशुद्धिः। 'देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥' इत्युक्तेः।

अत्राशीर्नामालङ्कारः 'आशीर्नामाभिलषितवस्तुनः शासनं मतम्' इति लक्षणात्। स चोपमारूपकाभ्यां संसृज्यते। वृत्त्यनुप्रासो नाम शब्दालङ्कारश्च। वसन्ततिलकं वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौगः।' इति ॥ १ ॥

वेद वृक्षों की शाखाओं के अग्रभागों (उपनिषदों) के नव पल्लव रूप (अर्थात् वेदान्त प्रतिपाद्य), कमलों के सौन्दर्यदर्प को दूर करने वाले (अर्थात् पद्मसदृश) तथा विघ्नरूप पर्वतों के भेदन में वज्र के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समान समर्थ (अर्थात् लीलापूर्वक विघ्न-विनाश करने वाले) श्री गणेश जी के दोनों चरण, अन्य सहायक की अपेक्षा न कर, स्वयं स्वतन्त्र रूप से हमारी अभीप्सित अर्थसम्पत्ति का सम्पादन करें ॥ १ ॥

उच्चैर्गतिर्जगति सिद्ध्यति धर्मतश्चे—
त्तस्य प्रमा च वचनैः कृतकेतरैश्चेत् ।
तेषां प्रकाशनदशा च महीसुरैश्चे-
त्तानन्तरेण निपतेत् क्व नु मत्प्रणामः ॥ २ ॥

अथ कविर्नमस्क्रियात्मकं मङ्गलं ग्रन्थतो निबध्नाति—उच्चैरिति । जगति लोके, उच्चैर्गतिः स्वर्गाद्युत्तमफलप्राप्तिः, धर्मतः धर्मात् (पञ्चम्यास्तसिः) ज्योतिष्टोमादेरिति भावः । सिद्ध्यति सम्पद्यते, चेद्यदि, तस्य धर्मस्य प्रमा यथार्थज्ञानं च, स्वर्गादिफलसाधनत्वेनेति भावः । कृतकेतरैः—कृतकानि कृत्रिमाणि, तेभ्य इतरैर्भिन्नैरकृत्रिमैर्वचनैः 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्' इत्यादिवेदवाक्यैरिति यावत् । (सिद्ध्यति) चेत्, तेषां वेदवाक्यानां प्रकाशनदशा स्फुटीकरणं च, पाठतोऽर्थतश्चेति भावः । महीसुरैः भूदेवैर्ब्राह्मणैरित्यर्थः ('द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' इत्यमरः) । (सिद्ध्यति) चेद्, (तर्हि) तानन्तरेण तान् ब्राह्मणान् विना ('अन्तरान्तरेण युक्ते' इति द्वितीया) मत्प्रणामः मत्कृतनमस्कारः क्वनु कुत्र वा निपतेत् गच्छेत् ?

जगति स्वर्गाद्युत्तमफलप्राप्तिर्ज्योतिष्टोमादियज्ञायत्ता, यज्ञादिधर्मकृत्यस्य स्वर्गादिफलसाधनत्वेन ज्ञानं वेदवाक्यायत्तम्, वेदवाक्यानां पाठतोऽर्थतश्च स्फुटीकरणं ब्राह्मणायत्तमिति ब्राह्मणानां पूज्यत्वेनात्महिताय तेषामेवायं प्रणामो विधीयत इत्यर्थः ।

'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा, स्वयंभुवा । आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥' इति श्रुतेर्वेदवाक्यानां नित्यतयाऽकृत्रिमत्वम् । 'ऋचः सामानि जज्ञिरे' इत्यादौ तु प्रकाश एव जनेरर्थः । वेदज्ञतया ब्राह्मणानां नमस्कार्यत्वमिष्टदेवत्वं च श्रीकृष्णेनाप्युक्तं महाभारते-"दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनं तु दैवतम् । ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीना ब्राह्मणो मम दैवतम् ॥" इति ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् । तल्लक्षणं प्रागेवोक्तम् । पूर्वं पूर्वं प्रति क्रमेणैवोत्तरोत्तरस्य विशेषणत्वादेकावल्यलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—'यत्र विशेषणभावः पूर्वं पूर्वं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रति क्रमेणैव। भजति परं परमेषालङ्कृतिरेकावली कथिता॥' इति ॥ २ ॥

संसार में यदि स्वर्गादि उत्तम फल की प्राप्ति (ज्योतिष्टोमादि) धर्म कार्य से ही होती है और यदि उन धर्म कार्यों का (स्वर्गादिफल के साधन रूप में) यथार्थ ज्ञान वेदवाक्यों से ही होता है एवम् उन वेद-वाक्यों का प्रकाशन यदि ब्राह्मणों से ही होता है तो उन ब्राह्मणों के अतिरिक्त, मेरा प्रणाम कहाँ जाय? (अर्थात् उन ब्राह्मणों को मेरा प्रणाम है, जिन्होंने वेदों का प्रकाशन किया जिससे धर्म का निरूपण होता है और उस निरूपित धर्म द्वारा हमें स्वर्गादि उत्तम फल की प्राप्ति होती है)॥ २ ॥

गद्या[1]नुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्ति—
हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद्दधातु कविमार्ग[2]जुषां सुखाय
चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया॥ ३ ॥

अथ कविः स्वचिकीर्षितचम्पूप्रबन्धस्वरूपं निरूपयँस्तद्रचनायां स्वप्रवृत्तिहेतुमाह—गद्यानुबन्धेति। हि यतः, गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तिः—गद्यं छन्दोविरहितः पदसङ्घातस्तस्यानुबन्धः सन्निवेशस्तेन यो रस आनन्दस्तेन मिश्रिता मिलिता या पद्यसूक्तिः पद्यमयी रचना, वाद्यकलया वीणादिवादन-शिल्पेन ('कला शिल्पे विवृद्धौ' इति वैजयन्ती) कलिता मिश्रिता अनुगतेत्यर्थः, गीतिर्गानमिव, हृद्या हृदयानन्दजननी (भवति) तस्मात् गद्यपद्य-मिश्रितप्रबन्धस्य मनोज्ञत्वाद्धेतोः, कविमार्गजुषाम्—कवीनां मार्गं जुषन्ते आश्रयन्ते इति कविमार्गजुषस्तेषाम्, कविवर्त्मानुवर्तिनाम्, कवितारसज्ञानां सहृदयानामित्यर्थः, सुखाय आनन्दाय, मदीया ममेयं रसना जिह्वा चम्पूप्रबन्ध-रचनाम्—गद्यपद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्। सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्।' इत्युक्तलक्षणं काव्यं चम्पूप्रबन्धस्तस्य रचनां निर्माणं दधातु करोत्वित्यर्थः। वाद्यानुगतगानस्येव गद्यपद्यात्मककाव्यस्य चमत्कारितया सहृदयानां हृदयानुरञ्जनार्थं चम्पूप्रबन्धं करोमीति तात्पर्यम्। पूर्वार्द्धे उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३ ॥

---

१. 'अनुबद्ध' इति पा०। २. 'विदा' इति पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गद्य के सम्बन्ध से (उसके) रस से मिश्रित पद्यसूक्तियाँ वैसे ही हृदयावर्जक हो जाती हैं, जैसे वाद्ययन्त्रों की सहायता से गीति अधिक मनोज्ञ हो जाती है, अतः कविमार्ग के अनुसरण करने वाले (सहृदय) जनों को आनन्द प्रदान करने के लिए मेरी रसना चम्पू प्रबन्ध की रचना में प्रवृत्त हो (अर्थात् चम्पू-जैसे गद्यपद्यात्मक विशिष्ट प्रबन्ध की रचना करने मैं जा रहा हूँ ॥ ३ ॥

वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशै-
स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम् ।
गङ्गाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः
किं तर्पणं न विदधाति नरः[1]पितृणाम् ॥ ४ ॥

अथ स्वचिकीर्षितप्रबन्धस्य प्रतिपाद्यविषयं निर्दिशति—वाल्मीकि-गीतेति । वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशैः—वल्मीकस्यापत्यं पुमान् वाल्मीकिः ('अत इञ्' इतीञ्) तेन गीता उपवर्णिता ते रघुपुंगवकीर्तिलेशाः श्रीरामचन्द्रयशोलवास्तैः, चतुर्विंशतिसहस्रसंख्यापरिमितेन ग्रन्थेन शतकोटि-विस्तृतस्य श्रीरामचन्द्रचरितस्य कियत एवोपवर्णितत्वादिति भावः । अधुना इदानीं कथमपि महता यत्नेन चम्पूप्रबन्धविरचनेनेत्यर्थः, बुधानाम् पण्डितानां तृप्तिं करोमि हृदयमाह्लादितं करोमि । तत्र दृष्टान्तमाह—गङ्गाजलैरिति भुवि भूतले भगीरथयत्नलब्धैः—भगीरथेन तन्नाम्ना राज्ञा यत्नेन महता प्रयासेन तपोरूपेणेत्यर्थः, लब्धैः आनीतैः, गङ्गाजलैः नरः सामान्यजनः पितॄणां स्वपूर्व-जानां तर्पणं निवापाञ्जलिदानेन संतृप्तिं न विदधाति किम् न करोति किम् ? करोत्येवेत्यर्थः । अत्र वैधर्म्येण दृष्टान्तालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—'यत्र वाक्य-द्वये बिम्बप्रतिबिम्बतयोच्यते । सामान्यधर्मो वाक्यज्ञैः स दृष्टान्तो निगद्यते ॥' इति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४ ॥

मैं बाल्मीकि द्वारा वर्णित रघुश्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी के संक्षिप्त चरित से किसी प्रकार (चम्पू प्रबन्ध की रचना से) इस समय विद्वानों की तृप्ति करने जा रहा हूँ, क्या भगीरथ के प्रयत्नों से भूलोक में लायी गयी

---

१. 'जनः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गङ्गाजी के जल से मनुष्य अपने पूर्वजों का तर्पण नहीं किया करता है? (अर्थात् करता ही है) ॥ ४ ॥

वाचं निशम्य भगवान्[1] स तु नारदस्य
प्राचेतसः प्रवचसां प्रथमः कवीनाम्।
माध्यन्दिनाय नियमाय महर्षिसेव्यां
पुण्यामवाप तमसां तमसां निहन्त्रीम् ॥ ५ ॥

अथ प्रस्तूयते कथा—वाचमिति । प्रवचसाम्–प्रकृष्टानि वचांसि येषां ते प्रवचसस्तेषां, कवीनां व्यासादीनामित्यर्थः प्रथमः आद्यः, स प्रसिद्धः, त्वित्युत्कर्षे, भगवान्, प्राचेतसः—प्रचेतसोऽपत्यं पुमान् प्राचेतसः वाल्मीकिः। (तस्यापत्यमित्यण्) ('प्राचेतसस्त्वादिकविः स्यान्मैत्रावरुणिश्च सः। वाल्मीकिश्च' इति विश्वः ।) नारदस्य–तदाख्यस्य महर्षेः, वाचम्–श्रीरामगुणवर्णनरूपां, निशम्य–श्रुत्वा, माध्यन्दिनाय नियमाय–माध्याह्निकक्रियां कर्तुमित्यर्थः ('क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इति चतुर्थी)। महर्षिसेव्याम्—महर्षिभिर्नित्यक्रियासम्पादनायोपगम्याम्, पुण्याम्--पावनीम्, (अत एव) तमसाम्--अज्ञानानां, निहन्त्रीम्--विनाशिनीम्, तमसाम्–तदाख्यां नदीम्, अवाप--प्राप। अत्र तमसां तमसामिति व्यञ्जनत्रितयस्यावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासो नाम शब्दालङ्कारः वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५ ॥

प्रकृष्ट रचना करने वाले कवियों में आद्य कवि भगवान् वाल्मीकि, नारद का वचन सुनकर मध्याह्न बेला की स्नानसन्ध्यादिक्रिया करने के लिए, महर्षियों से सेवित, पावन (अतएव) अज्ञान विनाशिनी तमसा नदी के तट पर पहुँचे ॥ ५ ॥

तत्र कंचन क्रौञ्चमिथुनादेकं पञ्चशरविद्धमपि[2] व्याधेनानुविद्धं निध्यायतो बद्धानुकम्पस्य भगवतो वाल्मीकेर्वदनारविन्दाच्छन्दोमयी काचिदेवं निःससार सरस्वती।

तत्रेति। तत्र तमसातीरे, पञ्चशरविद्धम्—पञ्च शरा यस्य स पञ्चशरः कामदेवः, तेन विद्धम् प्रहृतम्, काममोहितमपीत्यर्थः (व्यध् + कर्मणि क्तः)। कामदेवपञ्चशरा यथा—'अरविन्दमशोकं च चूतं च नवम-

१. 'अथ' इति पा०। २. 'पञ्चशरानुविद्धम्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥' इति व्याधेन अनुविद्धम्-अनुपश्चात् विद्धम् कृताघातम्, क्रौञ्चमिथुनात्—क्रौञ्चो बकविशेषः, तस्य मिथुनं युगलं दम्पतिरूपमित्यर्थः, तस्मात कंचन एकम् पुमांसमित्यर्थः, निध्यायतः पश्यतः (नि + ध्यै + शतृ)। (निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्यमरः।) वृद्धानुकम्पस्य—वृद्धा वृद्धिं गतेत्यर्थः, अनुकम्पा दया यस्य तथोक्तस्य, करुणाभिभूतस्येत्यर्थः ('कृपा दयानुकम्पा स्यात्' इत्यमरः) भगवतो वाल्मीकेः वदनारविन्दात्—वदनं मुखमरविन्दं कमलमिव तस्मात्। वदनमेवारविन्दमिति रूपकसमासो न युक्तः, तथा सति अरविन्द-पद-प्रधानतया तस्मात् सरस्वतीनिर्गमोक्तेरयुक्तत्वापातात्। छन्दोमयी—लौकिकानुष्टुप्छन्दोनिबद्धा, (ताद्रूप्ये मयट्, 'टिड्ढाणञ्'—इत्यादिना ङीप्) काचित् अपूर्वा, एवं वक्ष्यमाणप्रकारा सरस्वती वाणी ('गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इत्यमरः) निःससार—अनायासं निर्जगाम।

वहाँ तमसा के तट पर क्रौञ्चपक्षी के जोड़े में से अन्यतर नर क्रौञ्च को जो (स्वयं पहिले ही) कामपीडित था, व्याध के द्वारा आहत हुआ देख कर दयार्द्र वाल्मीकि के कमल मुख से इस प्रकार की अपूर्व छन्दोमयी वाणी (सहसा अनायास) निकल पड़ी।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ ६॥

मेति। हे निषाद—व्याध! त्वं शाश्वतीः समाः—बहून् संवत्सरान् ('संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' 'इत्यमरः)। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। प्रतिष्ठाम्-स्थितिम्, मा अगमः-मा प्राप्नुहि, मा चिरं जीवेत्यर्थः। 'मा अगमः' इत्यत्र 'न माङ्योगे' इति अडागमप्रतिषेधेऽपि आर्षत्वादडागमो बोध्यः। यत्—यस्मात्, क्रौञ्चमिथुनात् एकं—पुमांसम्, काममोहितम्—केलिं कुर्वन्तम्, अवधीः—हतवानसि। 'त्वमगमः' इत्यत्र 'तु + अम + गमः' इति च्छेदः। न विद्यते मा लक्ष्मीर्यस्य सोऽमः—हतभाग्यः, तत्सम्बुद्धौ हे अम! इति केचित्।

परे तु श्लोकेनैतेन काव्यादावाशीर्वचनात्मकं लक्ष्मीनिवासरूपश्रीरामस्मरणरूपं मङ्गलं महर्षिणा वाल्मीकिना कृतं तथाऽत्र सकलरामचरितं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संक्षेपेण निवेशितमिति मत्वा, "मा लक्ष्मीर्निषीदति तिष्ठत्यस्मिन्निति मानिषादो लक्ष्मीनिवासस्तत्सम्बुद्धौ मानिषाद श्रीराम ! त्वं शाश्वतीः समाः चिरकालपर्यन्तं प्रतिष्ठां स्वगुणगणोपार्जितं यशः अगम आप्नुहि। यद्यस्मात्कारणात् क्रौञ्चमिथुनात् क्रुञ्चा राक्षसी केकसी ('क्रुञ्च् गति कौटिल्याल्पीभावयोरितिधातोरच्) तस्या अपत्यं क्रौञ्चो राक्षसो रावणः ('तस्यापत्यम्' इत्यण्) तस्य पत्नी क्रौञ्ची मन्दोदरी तयोर्मिथुनादेकं काममोहितं कामचारित्वाल्लोकोपद्राविणं रावणमवधीर्हतवानसि" इत्यर्थं वर्णयन्ति । अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः। गुरुषट्कं च सर्वेषामेतच्छ्लोकस्य लक्षणम्' ॥ इति ॥ ६ ॥

रे निषाद ! तू चिरकाल तक जीवन धारण नहीं कर पायेगा (शीघ्र मरेगा) क्योंकि तू ने क्रौञ्च के जोड़े में से एक (नरपक्षी) को जो कामक्रीडा में रत था, मार दिया है ॥ ६ ॥

तदनु समयोचितकृत्यं निर्वर्त्य [1]स्वाश्रमं प्रति गतवति भगवति वाल्मीकौ ।

तदन्विति। तदनु 'मा निषाद' इत्यादि छन्दोबद्धवाणीनिःसरणानन्तरम्, भगवति पूज्ये वाल्मीकौ, समयोचितकृत्यं माध्याह्निकस्नान--सन्ध्यावन्दनादिक्रियां निर्वर्त्य समाप्य स्वाश्रमं प्रति गतवति आसादितवति सति।

इसके बाद मध्याह्न कालिक स्नान सन्ध्यावन्दनादि कर्म करके भगवान् वाल्मीकि अपने आश्रम पर पहुँचे।

वाणीविलासमपरत्र कृतोपलम्भ-
मम्भोजभूरसहमान इवाविरासीत् ।
आभाति यत्कृतिरनेकविधप्रपञ्च-
व्याजेन्द्रजालविधिसाधकपिच्छिकेव[2] ॥ ७ ॥

वाणीति अम्भोजभूः—अम्भोजं नारायणनाभिकमलं तत्र भवतीत्यम्भोजभूर्ब्रह्मा अपरत्र स्वभिन्ने पुरुषे कृतोपलम्भम्—विहितानुषङ्गम् (उपलभ्यमानमित्यर्थः) वाणीविलासम्—वाण्याः 'मानिषाद' इत्यादिछन्दोमय्या वाचः, (स्वपत्न्याः सरस्वतीदेव्याश्चेति गम्यते) विलासम् लीलाम्,

१. 'स्वाश्रममुपगतवति सति' इति पा० २. 'पिञ्छिकेव' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

असहमान इवाविरासीत्प्रादुरभूत्। लोकेऽपि पुरुषः स्वकलत्रस्य परपुरुषसंसर्गं विज्ञाय तमसहमानः तत्स्थलमुपगच्छति, तद्वद्ब्रह्मापि वाण्या महर्षिसम्पर्कमसहमान इव तत्रागत इति तात्पर्यम्। युक्तं चैतदित्याह—आभातीति। यत्कृतिः--यस्य ब्रह्मणः कृतिः क्रियाशक्तिः, अनेकविधप्रपञ्चव्याजेन्द्रजालक साधकपिच्छिकेव—अनेकविधः सुरासुरमनुष्यादिभेदेन बहुप्रकारो यः प्रपञ्चो दृश्यमानं जगत्, मायाया नानात्वस्य च प्रदर्शनमात्रमिति भावः, तस्य व्याजेन छलेन य इन्द्रजालविधिः मायिकप्रदर्शनमात्रम्, तस्य साधकपिच्छिकेव-साधिका निष्पादिका पिच्छिकेव पिच्छविशेष इवभाति प्रकाशते। यथैन्द्रजालिकः पिच्छं भ्रमयन् नानाविधविचित्रवस्तूनि दर्शयति तथैव ब्रह्माऽपि स्वक्रियाशक्त्या नानाविधविलक्षणं जगत् दर्शयतीत्यर्थः। अत एव तद्युक्तमेव क्रौञ्चहननम्, तद्दर्शनेन महर्षेरपि शोकानुभवः, तदपनोदनार्थं स्वस्याविर्भावश्चेति भावः।

वस्तुतस्तु ब्रह्मा परमकारुणिकतया महर्षेर्वाल्मीकेर्व्याधकृतक्रौञ्चहननदर्शनजनितशोकापनोदनार्थं तत्समक्षं प्रत्यक्षोऽभूत्तमेवार्थं वाण्या महर्षिसम्पर्कमसहमान इवेत्युत्प्रेक्षितत्वेन प्रदर्शितवानित्युत्प्रेक्षा, श्लेषानुप्राणितातिशयोक्तिश्च। उत्तरार्द्धेतु व्याजशब्देन तत्त्वमपह्नुत्येन्द्रजालत्वरोपणादपह्नुत्यलङ्कारः। 'पिच्छिकेवे' त्यत्र तदपह्नुत्यनुप्राणितोपमा। एवं पूर्वार्द्धगतोत्प्रेक्षाया उत्तरार्द्धगतोपमायाश्च परस्परनैरपेक्ष्येण संसृष्टिः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ७॥

तदनन्तर ही ब्रह्मा मानों महर्षि वाल्मीकि के साथ वाणी (१. मा निषादेत्यादिवाक्, २. सरस्वती) के सम्पर्क को न सह सकते हुए वहाँ प्रकट हुए, जिनकी क्रिया शक्ति नानाविधदृश्यमान जगत् के व्याज से इन्द्रजाल की साधक पिच्छा के समान दिखायी देती है (अर्थात् जैसे ऐन्द्रजालिक पिच्छ घुमाता हुआ नाना प्रकार की विचित्र वस्तुओं को दिखाता है उसी प्रकार ब्रह्मा भी अपनी क्रिया शक्ति से नानाविधविलक्षण जगत् को प्रदर्शित करते हैं)॥ ७॥

ततः परमहर्षेण महर्षिणा विधिवदभ्यर्चितः परमेष्ठी मध्यलोकेऽपि स्ववृत्तं प्रकाशयितुं किल भवन्तमेवोपतिष्ठमानयानया भारत्या रामचरितं यथाश्रुतं व्याक्रियतामिति व्याहृत्यान्तरधात्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत इति । तत आविर्भावानन्तरम् । परमहर्षेण—परमो हर्षो यस्य तेन, मयि कृपयाऽयं ब्रह्माऽऽगत्य मां कृतार्थं कृतवानिति परम-मोदान्वितेनेत्यर्थः । महर्षिणा--वाल्मीकिनेत्यर्थः । विधिवत्--यथाशास्त्रमित्यर्थः । अभ्यर्चितः—अर्घ्यपाद्यासनादिभिः पूजितः । परमेष्ठी–ब्रह्मा । मध्यमलोके–भूलोकेऽपि । स्ववृत्तं–निजचरित्रं, स्वमहिमानमित्यर्थः । प्रकाशयितुं -प्रदर्शयितुं किलेत्यलीके, वस्तुतस्तु मम ब्रह्मणोऽनुरोधादेवेति भावः । भवन्तं–त्वामेव, तवैव योग्यत्वादिति भावः । उपतिष्ठमानयोपागच्छन्त्याऽनया भारत्या त्वन्मुखान्निःसृतया 'मा निषाद'—इत्यादिवाचा, ईदृशैरेव श्लोकैरित्यर्थः । राम-चरितं यथाश्रुतम् नादमुखाच्छ्रुतक्रममनतिक्रम्य । व्याक्रियताम्–ग्रन्थतो निबद्ध्यता-मित्यर्थः इत्येवंव्याहृत्योक्त्वोपदिश्येत्यर्थः । अन्तरधात्--अदृश्योऽभूत् ।

तदनन्तर (पितामह के आगमन से) परम प्रसन्न महर्षि वाल्मीकि ने ब्रह्मा का विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया । "यह भारती भू-लोक में भी अपनी महिमा प्रदर्शित करना चाह-सी रही है, इसके लिए (योग्य समझ कर) तुम्हारे ही पास वह उपस्थित हुई है । अतएव (अपने मुख से निकली 'मानिषाद'—इत्यादि) इसी वाणी से (अर्थात् इसी तरह के श्लोकों से) (नारद के मुख से) यथाश्रुत रामचरित का काव्य-ग्रन्थ के रूप में उपनिबन्धन करो"—ऐसा वाल्मीकि से कह कर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये ।

अथ सरसिजयोनेराज्ञया रामवृत्तं
करबदरसमानं प्रेक्ष्य दृष्टचा प्रतीच्या ।
शुभमतनुत काव्यं स्वादु रामायणाख्यं
मधुमयभणितीनां[2] मार्गदर्शी महर्षिः ॥ ८ ॥

अथेति । अथ--ब्रह्मतिरोधानानन्तरम् । ('मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नका-त्स्न्येष्वथोऽथ' इत्यमरः ।) मधुमयभणितीनाम्—मधुमय्यो माधुर्यगुणो-पेता या भणितयो रमणीयार्थप्रतिपादकशब्दरूपाः सूक्तयस्तासां, मार्गदर्शी–मार्गं पद्धतिं दर्शयितुं शीलमस्येति मार्गदर्शी (ताच्छील्ये ण्यन्ताद्दृशेर्णिनिः) उपजीव्यत्वेन सकलकविकुलगुरुरित्यर्थः । महर्षिर्वाल्मीकिरित्यर्थः । सरसिज-

१. 'उपदिष्टमानया' इति पा० । २. 'फणितीनां' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योनेः–सरसिजं नारायणनाभिकमलं योनिर्जन्मस्थानं यस्य तस्य ब्रह्मणः, आज्ञया–'श्रीरामचरितं व्याक्रियतामित्येवंरूपादेशेन, रामवृत्तं–श्रीरामचरितं प्रतीच्या, दृष्टया--योगदृष्टयेत्यर्थः, करबदरसमानम्—करे हस्ते यद् बदरं बदरीफलं तेन समानं तत्तुल्यं निःशेषमित्यर्थः, प्रेक्ष्य--दृष्ट्वा, शुभं--कल्याणकरं, वक्तृणां श्रोतृणां चेति भावः। स्वादु–मधुरम् (त्रिष्विष्टधुरौ स्वादू' इत्यमरः) रामायणाख्यम्-रामायणमित्याख्या रामस्यायनं स्थानं वर्णकत्वेनेत्यन्वर्थसंज्ञा यस्य तत्तथोक्तम् । (रामायणमित्त्र 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वम्) काव्यं–प्रबन्धम्, अतनुत–रचितवान्। मालिनी वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौकैः।' इति ॥ ८ ॥

तदनन्तर मधुरसूक्तियों के पथप्रदर्शक (कविकुल गुरु) महर्षि वाल्मीकि ने ब्रह्मा से योगदृष्टि के द्वारा कर बदर के समान (निःशेष) रामचरित को देख कर 'रामायण' नामक श्रेयस्कर एवं मधुर काव्य की रचना की ॥ ८ ॥

एनं प्रबन्धं प्रयोक्तुं कः समर्थ इति चिन्तामुपगतवति सति भगवति वाल्मीकौ।

एनमिति। भगवति वाल्मीकौ, एनं प्रबन्ध श्रीरामायणाभिधमेतत् काव्यं प्रयोक्तुं पठितुमित्यर्थः, कः समर्थोऽधिकारीत्येवंरूपां चिन्तां विचारणामुपगतवति सति।

इस (श्री रामायण नामक) काव्य के पढ़ने का कौन अधिकारी है (अर्थात् इसे किसे पढ़ाया जाय) इस प्रकार का विचार जब भगवान् वाल्मीकि करने लगे तभी—

उपागतौ मिलितपरस्परोपमौ
बहुश्रुतौ श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ।
विचक्षणौ विविधनरेन्द्रलक्षणौ
कुशीलवौ कुशलवनामधारिणौ ॥ ९ ॥

उपगताविति। मिलितपरस्परोपमौ—मिलिता परस्परोपमाऽन्योन्यसादृश्यं ययोस्तौ, परस्परतुल्यरूपौ यमलत्वादिति भावः। बहुश्रुतौ-वेदवेदाङ्ग-निष्णातौ ('शास्त्रश्रवणयोः श्रुतम्' इति विश्वः)। श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ–

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रुतिमधुरेण श्रवणप्रियेण स्वरेणान्वितौ सम्पन्नौ, विचक्षणौ-विद्वांसौ, विविध-नरेन्द्रलक्षणौ–विविधानि नरेन्द्रलक्षणानि राजचिह्नानि ययोस्तौ, आजानुबाहुत्वादिमहाभाग्यसूचकराजलक्षणलक्षिताविवत्यर्थः। कुशलवनामधारिणौ-कुशलवनामानौ, कुशीलवौ-गायकौ। उपागतौ-समीपं प्राप्ताविवत्यर्थः। एतेन कार्यसिद्धिरदूरवर्तिनीति संसूचितम्, 'अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणमि'-त्युक्तेः। रुचिरा वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा–'चतुर्ग्रहैरिह रुचिरा जभस्जगा'। इति ॥ ९ ॥

परस्पर समान रूप वाले, बहुश्रुत, श्रवणमधुर कण्ठस्वरसम्पन्न, विद्वान्, विविध शुभराजलक्षणों से युक्त कुश और लव नामक गायक (उनके) पास पहुँचे ॥ ९ ॥

एतौ मुनिः परिगृह्य स्वां[1] कृतिमपाठयत् ।

एताविति। मुनिर्वाल्मीकिरित्यर्थः। एतौ–कुशलवौ, परिगृह्य–शिष्यत्वेनाङ्गीकृत्येत्यर्थः। स्वां–स्वकीयाम् ('स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने' इत्यमरः।) कृतिं–श्रीरामायणाख्यं काव्यम्। अपाठयत्-अध्यापयत्। 'गतिबुद्धि'--इत्यादिनाऽणिकर्तुःकर्मत्वम्।

इन दोनों (कुश और लव) को मुनि ने शिष्य के रूप में अपना कर कृति (श्री रामायण काव्य) को पढ़ाया।

तौ पुनरितस्ततो गायमानौ दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टमनाः स्वभवनमानीय भ्रातृभिः[2] परिवृतो निजचरितं गातुमन्वयुङ्क्त ।

ततश्च।

ताविति। इतस्ततः, गायमानौ श्रीरामायणमिति भावः। तौ–कुशीलवौ कुशलवावित्यर्थः (अत्र कर्मणि द्वितीया)। पुनरिति वाक्यालङ्कारे। दृष्ट्वा, रामः, प्रहृष्टमनाः–प्रसन्नहृदयस्तयोरूपसौन्दर्येण गानमाधुर्येण चेति भावः। स्वभवनमानीय–भृत्यैः प्रापय्येत्यर्थः। भ्रातृभिःपरिवृतो–लक्ष्मणादिभिः परिवेष्टितः, निजचरितं गातुमन्वयुङ्क्तापृच्छत्, नियोजितवानित्यर्थः। ('प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः)। 'गायमानौ' इति शानजन्त आर्षप्रयोगः। ततश्च इति। ततस्तदनन्तरम्।

---

१. 'स्वकृतिम्' इति पा०। २. सह इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इधर-उधर उन दोनों (लव और कुश) को (श्री रामायण का) गान करते देख कर (उनके रूप सौन्दर्य और स्वर माधुर्य से) प्रसन्न हृदय राम ने (भृत्यों के द्वारा) अपने भवन में बुलवा कर सभी भाइयों के सहित, उन दोनों को अपना चरित्र गाने के लिए कहा।

और उसके बाद—

छन्दोमयीनां निलयस्य वाचामन्ते वसन्तौ मुनिपुङ्गवस्य[1]।
एतौ कुमारौ रघुवीरवृत्तं यथाक्रमं गातुमुपाक्रमेताम् ॥ १० ॥

छन्दोमयीनामिति। छन्दोमयीनामनुष्टुबादिछन्दोनिबद्धानां वाचां निलयस्य–पद्यकाव्यनिर्माणकौशलागारस्य, पद्यात्मकप्रबन्धरचनापटोरित्यर्थः। (छन्दः पद्ये च वेदे च' इति विश्वः।) छन्दःशब्दात्ताद्रूप्ये मयटि, 'टिड्ढाणञ' त्यादिना ङीप्। मुनिपुंगवस्य–मुनिश्रेष्ठस्य, वाल्मीकेरित्यर्थः। अन्तेवसन्तौ–शिष्यौ (छात्रान्ते वासिनो शिष्ये' इत्यमरः।) एतौ कुमारौ कुशलवावित्यर्थः। रघुवीरवृत्तं–श्रीरामचरितं, यथाक्रमसुपदेशानुसारेणैवेत्यर्थः। गातुमुपाक्रमेतामारब्धवन्तावित्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रणादुपजातिर्वृत्तम्। स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौगः। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः'। इति तल्लक्षणोक्तेः।

पद्यकाव्यनिर्माण–कौशल के आगार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि के शिष्य इन दोनों (कुश और लव नामक) कुमारों ने क्रम से (उपदेशानुसार ही) श्री रामचरित का गान आरम्भ कर दिया ॥ १० ॥

अस्ति प्रशस्ता जनलोचनानामानन्दसंदायिषु कोसलेषु।
आज्ञासमुत्सारितदानवानां राज्ञामयोध्येति पुरी रघूणाम् ॥ ११ ॥

अस्तीती। जनलोचनानाम्–मानवनेत्राणाम्, आनन्दसंदायिषु–आनन्दं संदातुं शीलमेषामित्यानन्दसंदायिनस्तेषु, स्वसमृद्ध्या सकलजननयनानन्दकरेष्वित्यर्थः। कोसलेषु–उत्तरकोसलेष्वित्यर्थः। प्रशस्ता–श्रेष्ठा। आज्ञासमुत्सारितदानवानाम्--आज्ञयैव समुत्सारिता विद्राविता दानवा येषां, तेषां महाप्रभावाणामित्यर्थः। रघूणां–रघुवंशोद्भवानां राज्ञां नृपाणाम्। 'रघु' शब्देन तदपत्ये लक्षणा। अयोध्या–न योद्धुं शक्या अयोध्येत्यन्वर्थाभिधाना, पुरी–

१. 'मुनिसत्तमस्य इति पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नगरी, राजधानीत्यर्थः। अस्ति। इन्द्रवज्रा वृत्तम्। उदात्तालङ्कारः। तल्लक्षणं यथा-'लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते। यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत् ॥' इति ॥ ११ ॥

(अपनी समृद्धि से) सकल जनों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले उत्तर कोसल नामक जनपद में, (अपनी) आज्ञा के द्वारा दानवों को खदेड़कर भगा देने वाले रघुवंशी राजाओं की अयोध्या नामक पुरी (राजधानी) है ॥ ११ ॥

तामावसद्दशरथः सुरवन्दितेन
सङ्क्रन्दनेन विहितासनसंविभागः।
वृन्दारकारिविजये सुरलोकलब्ध-
मन्दारमाल्यमधुवासितवासभूमिः ॥ १२ ॥

तामिति। सुरवन्दितेन--सुराणां वन्दितः पूजितः, येन, देवाधिपेने--त्यर्थः। संक्रन्दनेन--इन्द्रेण ('संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः' इत्यमरः)। विहितासनसंविभागः-विहितः कृतः, आसनस्य संविभागो यस्मै स तथोक्तः, दत्तार्धासन इत्यर्थः, इन्द्रस्यापि पूजनीयत्वादिति भावः। वृन्दारकारिविजये--वृन्दारकाणां सुराणां येऽरयः शत्रवो दानवा इत्यर्थः, तेषां विजये, दानवेषु विजितेषु सत्स्वित्यर्थः। सुरलोकेत्यादिः—सुरलोके स्वर्गे लब्धानि प्राप्तानि यानि मन्दारमाल्यानि पारितोषिकत्वेन देवैः प्रदत्तानीतिभावः। तेषां मधुना पुष्परसेन ('मधु मद्ये पुष्परसे' इत्यमरः) वासिता सुरभिता वासभूमिर्निवासस्थानं यस्य स तथोक्तः, दशरथस्तन्नामा राजा तामयोध्यामावसदधिवसतिस्म। 'उपान्वध्याङ्वसः' इत्याधारस्य कर्मत्वम्, कर्मणि द्वितीया च। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १२ ॥

उस (अयोध्यापुरी) में राजा दशरथ ने (चिरकाल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग करते हुए) वास किया। उन्हें देववन्द्य इन्द्र (भी) (अपना मान्य समझ कर) इन्द्रासन के आधे भाग पर बैठाता था और (देवों की सहायता कर) उनके शत्रु दानवों को परास्त कर देने पर (देवों के द्वारा पारितोषिक रूप में) सुरलोक में मिली पारिजात पुष्प-मालाओं के मकरन्द से उन (दशरथ) की आवास भूमि सुरभित होती थी ॥ १२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथास्मिन्ननपत्यतया दूयमानमानसे पुत्रार्थं क्रतुमश्वमेधं विधातुं मन्त्रिभिः समं[1] मन्त्रयमाणे दशरथे सुमन्त्रः प्रहृष्टमना महर्षेरङ्गदेशसङ्गतावग्रहनिग्रहशौण्डस्य विभाण्डकसूनोरवश्यमृष्यश्रृंगस्य प्रसादात्प्रभवो भविता कुमाराणामिति सनत्कुमारोदीरितं[2] पुरावृत्तमस्मै दशरथाय कथयामास ।

अथेति । अथ गच्छत्सु कतिपयदिवसेषु, अस्मिन् दशरथे, अनपत्यतया--नास्त्यपत्यं यस्य सोऽनपत्यस्तस्य भावस्तत्ता तया, पुत्राहित्येनेत्यर्थः, दूयमानमानसे--दूयमानं परितप्यमानं मानसं हृदयं यस्य तस्मिन्, अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' इति स्मृतेरिति भावः। 'दूङ्परितापे' इति धातोः शानच्। पुत्रार्थं--पुत्रलाभार्थमित्यर्थः । अश्वमेधं क्रतुमश्वमेधं नाम यज्ञं विधातुं--कर्तुं, मन्त्रिभिः स्वामात्यैः समं सह (साकं सार्धं समं सह' इत्यमरः) मन्त्रयमाणे विचारयति सति, प्रहृष्टमनाः--तद्यज्ञविधानेनैव पुत्रलाभसंभावनया प्रसन्न-हृदयः सुमन्त्रःतन्नामा दशरथस्यामात्यप्रवरः, अङ्गदेशेत्यादिः-अङ्गदेशे संगतस्य--समुत्पन्नस्येत्यर्थः, अवग्रहस्य--वृष्टिप्रतिबन्धस्य निग्रहे--दूरीकरणे शौण्डस्य कुशलस्य। 'अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे' इत्यप्प्रत्ययः। ('वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ' इत्यमरः)। 'सप्तमी शौण्डैः' इति समासः। विभाण्डकसूनोः--विभाण्डकाख्यमुनिपुत्रस्य, महर्षेः--आत्मनापि कृतेन तपसा महर्षिभावं गतस्य, ऋष्यश्रृङ्गस्य प्रसादादनुग्रहात् अवश्य निश्चित कुमाराणां पुत्राणां प्रभव उत्पत्तिर्भविता भविष्यति (अनद्यतने लुट्)। इत्येवं सनत्कुमारोदीरितम्--सनत्कुमारेण तन्नाम्ना ब्रह्मणो मानसपुत्रेण, उदीरितं ब्रह्मसभायां कथितं पुरावृत्तं पूर्ववृत्तान्तमस्मै दशरथाय कथयामास निवेदयामास ।

इन दशरथ का मन पुत्र न होने के कारण दुःखी रहा करता था। वे पुत्र प्राप्ति के लिए मन्त्रियों के साथ, अश्वमेध यज्ञ करने के लिए विचार-विमर्श कर रहे थे। इस पर सुमन्त्र ने प्रसन्नचित्त हो इन दशरथ से, (ब्रह्मसभा में) सनत्कुमार द्वारा कहा गया पुरावृत्त निवेदित किया कि अङ्गदेश में अवर्षणजनित अकाल को दूर करने वाले विभाण्डक पुत्र महर्षि ऋष्यश्रृङ्ग के अनुग्रह से (आप को) अवश्य पुत्र होंगे।

---

१. 'सह' इति पा० । २ 'उक्तम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सोऽपि सुमन्त्रवचनाच्छान्ताधिः शान्ताकुटुम्बिनं सम्बन्धिनं मुनिमानीय वसिष्ठादिष्टमश्वमेधाध्वरं सरयूरोधसि विधाय तत्र पुत्रीयामिष्टिं विधिवत्कर्तुमारभत।

सोऽपीति। स दशरथोऽपि, सुमन्त्रवचनात् सुमन्त्रस्य वचनात्तथ्यवाक्याद्धेतोः, शान्ताधिः-शान्त आधिः पुत्राभावजनितमनोव्यथा यस्य स तादृशः-सन् ('पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः) शान्ताकुटुम्बिनम्—शान्तापतिम्, सम्बन्धिनम् शान्तासम्बन्धेन जामातरम्, मुनिमृष्यशृङ्गमानीयाहूय वसिष्ठादिष्टम् निजकुलगुरुणा वसिष्ठेनोपदिष्टप्रकारमश्वमेधाध्वरमश्वमेधाह्वयं यज्ञं सरयूरोधसि सरयूनदीतीरे ('कूलं रोधश्चतीरं च' इत्यमरः) विधाय कृत्वा तत्र सरयूतटे, पुत्रीयाम्-पुत्राणामियं पुत्रीया तां पुत्रोत्पादनहेतुमित्यर्थः ('वृद्धाच्छः' इति छप्रत्ययः) इष्टिं यज्ञं विधिवत् यथाशास्त्रम्, कर्तुमारभत प्रारब्धवान्।

सुमन्त्र के वचन से उन दशरथ की मनोव्यथा दूर हुई। उन्होंने शान्ता के पति (अतएव) अपने सम्बन्धी ऋष्यशृङ्ग मुनि को बुला कर वसिष्ठ के उपदेशानुसार सरयूतट पर अश्वमेध यज्ञ करने के पश्चात् वहीं पर पुत्रीय यज्ञ करना प्रारम्भ किया।

तदनु हविराहरणाय धरणौ[1] कृतावतरणाः सर्वे गीर्वाणगणाः शत[2]मखप्रमुखाश्चतुर्मुखाय दशमुखप्रतापग्री[3]ष्मोष्मसंप्लोषणमा[4]वेद्य तेन सह शरणमिति शार्ङ्गधन्वानं मन्वाना नानाविधप्रस्तुतस्तुतयः क्षीराम्बुराशिमासेदुः।

तदन्विति। तदनु यज्ञप्रारम्भानन्तरं हविराहरणाय हविर्भागग्रहणाय, धरणौ भूमौ कृतावतरणाः समागताः शतमखप्रमुखाः इन्द्राद्याः सर्वे गीर्वाणगणाः सुरसमूहाः, चतुर्मुखाय ब्रह्मणे, दशमुखप्रतापग्रीष्मोष्मसंप्लोषणम्—दशमुखस्य रावणस्य प्रतापस्तेजः ('स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' इत्यमरः) स एव ग्रीष्मोष्मा निदाघसन्तापः तेन यत् संप्लोषणं दाहः, तदावेद्य विज्ञाप्य तेन ब्रह्मणासह, शार्ङ्गधन्वानम् विष्णुं शरणं रक्षिता इति मन्वाना अवबुध्यमानाः, (शरणमित्यत्र न द्वितीया, निपातेनेति शब्देनभिहितत्वात्)

---

१. 'धरण्याम्' इति पा०। २. 'शक्र' इति पा०।
३. 'प्रतापानल' इति पा०। ४. 'संशोषणम्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नानाविधप्रस्तुतस्तुतयः—नानाविधाः बहुप्रकाराः प्रस्तुता उपक्रान्ताः स्तुतयः प्रार्थना यैस्ते तथोक्ताः क्षीराम्बुराशिं क्षीरसागरतीरमित्यर्थः, आसेदुः प्रापुः विष्णोः क्षीरसागरशायित्वादिति भावः ॥ १२ ॥

तदनन्तर यज्ञभाग ग्रहण करने के लिए पृथिवी पर आये हुए इन्द्रादि देवों ने ब्रह्मा से रावणप्रताप रूप ग्रीष्मसन्ताप के दाह को बताया और 'इस विपत्ति से विष्णु भगवान् ही बचा सकते हैं—ऐसा निश्चय कर ब्रह्मा के साथ क्षीर सागर के तट पर पहुँच कर विष्णु भगवान् की नाना प्रकार की स्तुति की ॥ १२ ॥

संतापघ्नं सकलजगतां शार्ङ्गचापाभिरामं
लक्ष्मीविद्युल्लसितमतसीगुच्छसच्छायकायम् ।
वैकुण्ठाख्यं मुनिजनमनश्चातकानां शरण्यं
कारुण्यापं त्रिदशपरिषत्कालमेघं ददर्श ॥ १३ ॥

सन्तापघ्नमिति । सकलजगतां समस्तलोकानां सन्तापघ्नम्—सन्तापं त्रिविधतापं ग्रीष्मादिजनितसन्तापं च हन्ति नाशयति शमयति चेति तथोक्तं शार्ङ्गचापाभिरामम्—शार्ङ्गं नाम वैष्णवं धनुस्तदेव चापमिन्द्रधनुस्तेनाभिरामं सुशोभितम्, लक्ष्मीविद्युल्लसितम्-लक्ष्मीरेव विद्युत् (गौरवर्णत्वादिति-भावः) तया लसितं मनोज्ञम्, अतसीगुच्छसच्छायकायम्—अतसीगुच्छस्य—अतसी-पुष्पविशेषस्तबकस्य समाना छाया कान्तिर्यस्य तादृशः कायः शरीरं यस्य तथोक्तम्, ('छाया त्वनातपे कान्तौ' इति वैजयन्ती) । मुनिजनमनश्चातकानाम्—मुनि-जनानां मनांस्येव चातकाः पक्षिविशेषास्तेषां शरण्यं रक्षकम्, कारुण्यापम्—कारुण्यं दयैवापो जलानि यस्मिन् तम्, दयारूपनीरभरितमित्यर्थः । वैकुण्ठाख्यम्—विकुण्ठ एव वैकुण्ठः (स्वार्थेऽण्), वैकुण्ठ इत्याख्या यस्य तम्, वैकुण्ठनामानं विष्णुमित्यर्थः, कालमेघम्—श्यामघनम्, त्रिदशपरिषत्—ब्रह्मेन्द्रादिदेवसमूहः, ददर्श । उपमारूपकयोः सङ्करः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'मन्दाक्रान्ता जलधिषड्गैर्म्भौ नतौ तो गुरूचेत् ।' इति ॥१३॥

सकल जगत् के सन्ताप (१. तापत्रय, २. ग्रीष्मताप) को हरने वाले, शार्ङ्गरूप इन्द्रधनुष से रमणीय, लक्ष्मीरूप विद्युत् से सुशोभित, तीसी के पुष्पगुच्छ के समान (नील-वर्ण) शरीर वाले, मुनिजनों के चित्त-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप चातकों के शरण्य (एक मात्र रक्षक) कारुण्यजल से भरे हुए वैकुण्ठ नामक श्यामघन को देवसमाज ने देखा ॥ १३ ॥

[1]क्षीराम्भोधेर्जठरमभितो देहभासा प्ररोहैः
कालोन्मीलत्कुवलयदलाद्वैतमापादयन्तम् ।
आतन्वानं भुजगशयने कामपि क्षौमगौरे
निद्रामुद्रां निखिलजगतीरक्षणे जागरूकाम् ॥ १४ ॥

क्षीराम्भोधेरिति । अभितः सर्वतः, देहभासाम्—स्वशरीरकान्तीनाम्, प्ररोहैरङ्कुरैः, निजदेहकान्तिविस्तारैरित्यर्थः, क्षीराम्भोधेः—क्षीरसागरस्य, जठरम् = मध्यभागम्, कालोन्मीलत्कुवलयदलाद्वैतम्—काले समये उन्मीलतः विकसतः कुवलयदलस्य नीलोत्पलपत्रस्य अद्वैतम् = सादृश्यमित्यर्थः, आपादयन्तम्, स्वशरीरच्छटाभिः क्षीरार्णवस्याभ्यन्तरभागं नीलवर्णं कुर्वन्तमित्यर्थः। क्षौमगौरे—क्षौमवत् दुकूलवद्गौरे सिते, भुजगशयने–शेषशय्यायां कामप्यनिर्वाच्याम्, निखिलजगतीरक्षणे–समस्तपृथिवीपालने जागरूकां सावधानां निद्रामुद्रां योगनिद्रावस्थामातन्वानं विस्तारयन्तं धारयन्तमित्यर्थः, 'ददर्श' इति पूर्वेण संबन्धः। अत्र क्षीरस्य स्वधवलिमगुणपरित्यागेन स्वसमीपस्थश्रीविष्णुदेहनीलिमस्वीकरणवर्णनात्तद्गुणालंकारः। तल्लक्षणं यथा–'तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः।' इति। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ १४ ॥

(उस समय) भगवान् विष्णु अपने शरीर कान्ति की छटा से क्षीर सागर के मध्यभाग को, चन्द्रोदय के समय पूर्ण विकसित कुवलय दल के समान नीलवर्ण बना रहे थे और दुकूल के समान श्वेत शेषशय्या पर, समस्त पृथिवी की रक्षा में सावधान रहने वाली अद्भुत योगनिद्रा में निमग्न थे ॥ १४ ॥

प्रह्लादस्य व्यसनममितं दैत्यवर्गस्य दम्भं
स्तम्भं वक्षःस्थलमपि रिपोर्यौगपद्येन भेत्तुम् ।
बद्धश्रद्धं पुरुषवपुषा मिश्रिते विश्वदृष्टे
दंष्ट्रारोचिर्विशदभुवने रंहसा सिंहवेषे ॥ १५ ॥

१. 'क्षीराम्बोधे' इति पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रह्लादस्येति । प्रह्लादस्य तन्नाम्नः स्वभक्तस्य, अमितमपारं, व्यसनम्—तज्जनककृतविपदम् ('व्यसनं विपदि भ्रंशे' इत्यमरः) दैत्यवर्गस्यासुरसमूहस्य दम्भं मायाडम्बरजनिताहङ्कारम्, स्तम्भं लौहमयस्यम्भविशेषम्, रिपोः शत्रोर्हिरण्यकशिपोरित्यर्थः, वक्षःस्थलमपि ! 'अपि' शब्दः समुच्चये । यौगपद्येनैकारमेव, न तु कालक्रमेणेत्यर्थः । भेत्तुं विदारयितुम्, पुरुषवपुषा नरशरीरेण मिश्रिते मिलिते (अतएवात्याश्चर्यतया) विश्वदृष्टे समस्तजनावलोकिते, दंष्ट्रारोचिर्विशदभुवने—दंष्ट्राणां दन्तविशेषाणां रोचिषा कान्त्या विशदं धवलं भुवनं यस्य तादृशे सिंहवेषे सिंहाकारे रंहसा वेगेन शीघ्रमित्यर्थः, बद्धश्रद्धम्—बद्धा गृहीता श्रद्धा आदरभावो येन तथोक्तम्, नरसिंहरूपेणावतीर्णमित्यर्थः, अत्रापि 'ददर्श' इति पूर्वेण सम्बन्धः । अत्र क्रमिकस्य स्तम्भादिविदारणस्य यौगपद्यासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्तेरतिशयोक्तिः । वृत्तं तु पूर्वोक्तमेव ॥ १५ ॥

जिस भगवान् विष्णु ने प्रह्लाद के अपार दुःख, दैत्यों के असीम अहङ्कार, लौहस्तम्भ और शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल इन सब को एक साथ विदीर्ण करने के उद्देश्य से नर शरीर से युक्त अतएव सकलजनों से साश्चर्य विलोकित तथा दंष्ट्रा की कान्ति से भुवन को धवल बनाने वाले सिंहवेष पर वेग के साथ अपना आदर दिखाया अर्थात् नरसिंह का अवतार धारण किया ॥ १५ ॥

नारायणाय नलिनायतलोचनाय
नामावशेषितमहाबलिवैभवाय ।
नानाचराचरविधायकजन्मदेश-
नाभीपुटाय पुरुषाय नमः परस्मै ॥ १६ ॥

नारायणेति । नारायणाय-नारायणः परमात्मा 'नारायणः परोऽव्यक्ताद्‌ण्डमव्यक्तसंभवः' इत्युक्तेः । अथवा नरस्य सम्बन्धीनि नाराणि तत्त्वानि तान्ययनं स्थानं यस्य स नारायणः, 'नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः । तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः' इत्युक्तेः ॥ अथवा नारा आपोऽयनं यस्य स नारायणः, 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । तस्य तास्त्वयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः' इत्युक्तेः । तस्मै नारा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यणाय, नलिनायतलोचनाय—नलिने कमले इव आयते विशाले लोचने नेत्रे यस्य तस्मै तथोक्ताय, नामावशेषितमहाबलिवैभवाय—नाम्ना नामोपादानमात्रेण अवशेषितं विनाशितं महद् भूयिष्ठं बलिवैभवं बलिनामकदैत्यस्य संपत् येन तस्मै तथोक्ताय, नानाचराचरविधायकेत्यादिः--नाना चराचरस्य बहुविधस्थावरजङ्गमात्मकलोकस्य विधायको निर्माता ब्रह्मेत्यर्थः, तस्य जन्मदेशो जन्मस्थानं नाभीपुटं नाभिकमलं यस्य तस्मै, परस्मै पुरुषाय पुरुषोत्तमाय नमः। 'नमःस्वस्ति--'इत्यादिना चतुर्थी।

विष्णुनाभिजातारविन्द-कोशान्नानाचराचरविधायकस्य ब्रह्मण आविर्भाव कथनेन भगवतो विष्णोराद्यत्वं पुरुषश्रेष्ठत्वं च संसूचितम्। नामावशेषित महाबलिवैभवायेत्यनेन तन्महिमा, नलिनायतलोचनायेत्यनेन च तत्सौन्दर्यं सूचितम्। भागवतेऽपि तन्माहात्म्यपरकश्लोको यथा—'नतोऽस्म्यहं त्वाऽखिलहेतुभूतं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्। यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माविरासीद्यत एषलोकः ॥' इति। वसन्ततिलकं वृत्तम् तल्लक्षणं यथा--'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः।' इति ॥ १६ ॥

उन परम पुरुष को हमारा नमस्कार है जो नारायण नाम से प्रसिद्ध तथा पुण्डरीक के समान विशाल नेत्रों से सुशोभित हैं, जिन्होंने लीलापूर्वक बलि के महान् वैभव को विनष्ट कर दिया (अर्थात् वामनावतार धारण कर दो पगों में सारी पृथ्वी और अन्तरिक्ष को आच्छादित कर, तीसरे पग के लिए स्थान न पाने से उसे बलि के सिर पर रख दिया और बलि को सेना समेत पाताल लोक भेज दिया), जिनकी नाभिकमल से नानाचराचरात्मक जगत् के निर्माण करने वाले ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है ॥ १६ ॥

इति प्रणम्योत्थितानेतान् स्तुतिरवमुखरितहरिन्मुखान् हरिहयप्रमुखानखिलान[1]मरानरुणारुणतामरसविलासचोरैर्लोचनम[2]रीचिसंतानैरानन्दयन्नरविन्दलोचनः स्फुटमभाषत।

इति प्रणम्येति। इत्येवं प्रकारेण प्रणम्य साष्टाङ्गप्रणिपातं कृत्वा

१. 'अमरगणानरुणतामरस' इति पा०।

२. 'मरीचिवीचिसञ्चारैः' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्थितान्, स्तुतिरवमुखरितहरिन्मुखान्—स्तुतिरवैः स्तोत्रध्वनिभिः, मुखरितानि मुखरीकृतानि प्रतिध्वनिवशादितिभावः, हरितां दिशां मुखानि प्रदेशा यैस्तान्, हरिहयप्रमुखान्--इन्द्रादीन् ('जम्भभेदी हरिहयः' इत्यमरः) अखिलान् समस्तान् एतान् अमरान् देवान्, अरुणारुणतामरसविलासचौरैः—अत्यन्तरक्ताभपद्मशोभापहारिभिः, अत्यन्तलोहितपद्मतुल्यैरित्यर्थः, लोचनमरीचिसन्तानैः—दृष्टिप्रभापरम्पराभिः, आनन्दयन् प्रसन्नान् कुर्वन्, अरविन्दलोचनः कमलनेत्रो विष्णुरित्यर्थः, स्फुटं व्यक्तमभाषत।

इस प्रकार प्रणाम कर देवगण उठ कर खड़े हो गये। उनकी स्तुति ध्वनि से दिशाएँ मुखरित हो उठीं। अरविन्द लोचन भगवान् विष्णु ने इन्द्रादि देवों को अपने रक्तकमलतुल्य नेत्रों की प्रभा से आनन्दित करते हुए ऐसा (वक्ष्यमाणप्रकार से) कहा।

अपि कुशलममर्त्याः स्वागतं सांप्रतं वः
शमितदनुजदम्भा किं नु दम्भोलिकेलिः।
अपि धिषणमनीषानिर्मिता नीतिमार्गा-
स्त्रिदशनगरयोगक्षेमकृत्ये क्षमन्ते॥ १७॥

अपीति। हे अमर्त्याः देवाः, वः युष्माकं कुशलमपि कुशलं किम्? अपीति प्रश्ने। सांप्रतमिदानीं वः युष्माकं स्वागतम्। दम्भोलिकेलिः वज्रविलासः, शमितदनुजदम्भा-शमितः विनाशितः दनुजानां दानवानां दम्भः अहङ्कारो यया, तादृशी नु किम्? इन्द्रवज्रविलासेन दानवा विध्वस्ताः किमित्यर्थः। धिषणमनीषानिर्मिताः—धिषणस्य सुरगुरोर्बृहस्पतेर्मनीषया बुद्ध्या निर्मिताः ('बृहस्पतिः सुराचार्यो गीष्पतिर्धिषणो गुरुः' इत्यमरः) नीतिमार्गाः राजनीतिपद्धतयः, त्रिदशनगरयोगक्षेमकृत्ये--त्रिदशनगरस्य सुरपुरस्य स्वर्गस्येत्यर्थः, योगः अलब्धलाभः, क्षेमं लब्ध परिपालनं तयोः कृत्ये सम्पादने क्षमन्तेऽपि = समर्थाः भवन्ति किम्? अपीति प्रश्ने पूर्ववत्। मालिनी वृत्तम् तल्लक्षणं यथा--ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति॥ १७॥

हे देव लोगो! आप सब का कुशल तो है? आप लोगों का स्वागत है। क्या इन्द्र के वज्र के विलास से दानवों का अहङ्कार शान्त है? क्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बृहस्पति की बुद्धि से रचित नीतिपद्धतियाँ सुरपुरी में योगक्षेम बनाये रखने में सफल हो रही हैं ? ॥ १७ ॥

एवं भगवतः कुशलानुयोगपुरःसरीममृतासारसरसां सरस्वतीमाकर्ण्य संपूर्णमनोरथानां सुमनसां संसत् पुंसे परस्मै विज्ञापयामास ।

एवमिति । एवमुक्तप्रकारेण कुशलानुयोगपुरःसरीं कुशलप्रश्नपूर्विकाम्, 'अपि कुशलममर्त्याः' इत्यादिरूपामित्यर्थः' अमृतासारसरसाम्—अमृतस्य आसारः धारासम्पातः वर्षणमित्यर्थः तद्वत् सरसां रुचिराम् ('धारासंपात आसारः' इत्यमर;) भगवतः विष्णोः सरस्वतीं वाचम् आकर्ण्य श्रुत्वा सम्पूर्ण मनोरथानाम्—सम्पूर्णाः परिपूर्णाः मनोरथा येषां तेषाम्, विष्णोः कुशलानुयोग-प्रकारेणास्माकं मनोरथः सिद्धप्राय एवेति मन्यमानानामित्यर्थः । सुमनसां देवनां संसत् सभा ('सुमनः पुष्पमालत्योः स्त्री देवबुधयोः पुमान्' इति वैजयन्ती । 'सभासमिति-संसदः' इत्यमरः ।) परस्मै पुंसे परमपुरुषाय विष्णवे विज्ञापयामास ।

इस प्रकार भगवान् विष्णु की, कुशल प्रश्न पूर्वक अमृत वृष्टि के समान, रुचिर वाणी सुन कर अपने को पूर्ण मनोरथ-से मानते हुए देवों ने परम पुरुष भगवान् विष्णु से कहा ।

देव, कथमकुशलमाविर्भवेद्भवता कृतावलम्बानामस्माकम् । किन्तु ।

देवेति । देव = स्वामिन् । भवता त्वया परमपुरुषेण कृतावलम्बानाम्—कृतः प्रदत्त इत्यर्थः, अवलम्बः आश्रयो येभ्यस्तादृशानामस्माकं देवानाम-कुशलमशुभं कथं केन प्रकारेणाविर्भवेदुत्पद्येत ? भवदाश्रितानामस्माकं सर्वथा कुशलमित्यर्थः । किन्त्विति । तथापि किंचिद् विज्ञापनीयमस्तीत्यर्थः ।

देव आप ने जब हमें आश्रय देकर कृतार्थ कर रक्खा है तब हम सब का अशुभ कैसे हो सकता है ? तथापि कुछ निवेदन करना है ।

अस्ति प्रशस्तविभवैर्विबुधैरलङ्घ्या
लङ्केति नाम रजनीचरराजधानी ।
माणिक्यमन्दिरभुवां महसां प्ररोहै-
स्तेजस्त्रयाय दिनदीपदशां दिशन्ती ॥ १८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अस्तीति । प्रशस्तविभवैः प्रख्यातवस्तुसंपद्भिरुपलक्षिता (उपलक्षणार्थे तृतीया) अथवा विबुधविशेषणमिदमिति बोध्यम् । विबुधैः देवैः, अलङ्घ्या अभिभवितुमशक्या, माणिक्यमन्दिरभुवाम्—मणिमयगृहोत्थानाम्, महसां भासां प्ररोहैरङ्कुरैः, मणिमयगृहोत्थकान्तिनिकरेणेत्यर्थः, तेजस्त्रयाय–सूर्य-चन्द्रकृशानुरूपत्रिविधतेजसे दिनदीपदशाम्–दिने यो दीपस्तस्य दशामवस्थाम्, निस्तेजस्कत्वमित्यर्थः, दिशन्ती समर्पयन्ती, लङ्केतिनाम–लङ्केतिनाम्ना प्रसिद्धा रजनीचर राजधानी राक्षसानां प्रधाननगरी अस्ति विद्यते । अस्ति सकलवस्तुसंपद्भिरुपलक्षिता देवैरपि दुष्प्राप्या लङ्काभिधाना रजनीचराणां राजधानी यत्र मणिमयप्रासादाः स्वकान्तिनिकरेण सूर्यचन्द्रवह्नीनप्यतिशेरते इत्याशयः । तेजस्त्रये दिनदीपदशाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धवर्णनादतिशयोक्तिर-लङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १८ ॥

प्रख्यात वस्तुसम्पत्ति से उपलक्षित तथा देवों के द्वारा (भी) दुर्जेय लङ्का नाम की रजनीचरों की राजधानी है जिसने अपने मणिमय प्रसादों की प्रभाराशि से सूर्य, चन्द्र तथा वह्नि इन तीनों को उसी तरह निस्तेज कर दिया है जिस प्रकार दिन में (सूर्य के सामने) दीपक की प्रभा विनष्ट हो जाती है ॥ १८ ॥

एनां पुराणनगरीं नगरीतिसालां
सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराजः ।
हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां
राजा चिरादवति रावणनामधेयः ॥ १९ ॥

एनामिति । सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराजः—सालाः सर्जवृक्षास्तद्वत् सरलायततया सुन्दरैः भुजैर्विंशतिसंख्याकस्वबाहुभिः, निर्जितः पराभूतः, यक्षराजः कुबेरो येन स तथोक्तः, रावणनामधेयः–रावणो नामधेयं यस्य स तथोक्तः, हेलाभिभूतजगताम्—हेलया लीलया अभिभूतानि निर्जितानि जगन्ति चतुर्दशापि भुवनानि यैस्तेषां रजनीचराणां राक्षसानां राजा अधीश्वरः, नगरी-तिसालाम्—नगस्य पर्वतस्येव रीतिराकृतिर्यस्य तादृशः सालः प्राकारो यस्या-स्ताम् ('प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः) एनाम् पूर्वोक्तां लङ्कानाम्ना प्रसिद्धां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुराणनगरीम् प्राचीनां पुरीं चिरात् चिरकालादारभ्य (चिरादिति विभक्ति-प्रतिरूपकमव्ययपदम्), अवति पालयति । अनुप्रासोऽलङ्कारः ॥ १९ ॥

सालवृक्ष के समान (लम्बी) सुन्दर भुजाओं से कुबेर को परास्त करने वाला, अनायास सकल भुवन को परास्त करने वाले राक्षसों का राजा रावण पर्वततुल्यप्राकार (चहार दीवारी) से परिवृत इस प्राचीन नगरी का चिरकाल से पालन करता है ॥ १९ ॥

यद्बाहुराहुरसनायितशस्त्रधारा
दिक्पालकीर्तिमयचन्द्रमसं [1]ग्रसन्ति ।
[2]यद्वैरिणां रणमुखे शरणप्रदायी
नैवास्ति कश्चिदमुमन्तकमन्तरेण ॥ २० ॥

यद्बाहुरिति । यद्बाहुराहुरसनायितशस्त्रधाराः—यस्य रावणस्य बाहवो विंशति संख्याका भुजा एव राहव स्तेषां रसनायिताः रसना जिह्वा तद्वदाचरिताः, शस्त्रधाराः आयुधश्रेणयः । दिक्पाल कीर्तिमयचन्द्रमसम्—दिक्पालानामिन्द्रादिदिगीशानां कीर्त्तिमयो यशोरूपो यश्चन्द्रमाः तं ग्रसन्ति गिलन्ति । रावणो दिक्पालान्निर्जित्य कीर्तिरहितान् करोतीति भावः । रणमुखे युद्धस्थले, यद्वैरिणाम्—यस्य रावणस्य वैरिणां शत्रूणां शरणप्रदायी रक्षकः, अमुमिहैव भवतोऽग्रे विद्यमानमन्तकं यमराजमन्तरेण विना ('अन्तरान्तरेण युक्ते' इति द्वितीया) कश्चित् कोऽपि नास्त्येव । रावणस्य वैरिणो युद्धभूमौ रक्षकान्तराभावाद्विवशा यमसदनमेव गच्छन्तीत्यर्थः । रसनायितेत्यत्रेवशब्दलोपाल्लुप्तोपमा । 'बाहुराहु' इत्यत्र 'कीर्तिमय चन्द्रमसमि' त्यत्र च रूपकालङ्कारः । तयोरङ्गाङ्गिभावेनावस्थानात् सङ्करः ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २० ॥

जिस रावण के बाहुरूप राहु की जीभ के समान शस्त्र, दिक्पालों के कीर्तिरूप चन्द्रमा को ग्रस्त कर लेते हैं और युद्धक्षेत्र में जिस रावण के वैरियों को इस यमराज के अतिरिक्त कोई दूसरा शरण देने वाला नहीं होता है (अर्थात् विवश वे युद्ध में मरते ही हैं) ॥ २० ॥

---

१. 'ग्रसन्ते' इति पा० । २. 'तद्वैरिणाम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अम्भोजसम्भवममुं बहुभिस्तपोभि-
राराधयन् वरमवाप परैर्दुरापम् ।
तस्मादशेषभुवनं निजशासनस्य
लक्षीकरोति रजनीचरचक्रवर्ती ॥ २१ ॥

अम्भोजेति । (यः) रजनीचरचक्रवर्ती निशाचराधिनाथः, रावण इत्यर्थः । बहुभिर्नानाविधै स्तपोभिस्तपस्याभिः, अमुम् भवतः पुरोवर्तिनम्, अम्भोजसंभवम् कमलयोनिं ब्रह्माणमाराधयन् प्रसादयन्नित्यर्थः, परैः अन्यैः दुरापम् दुर्लभं वरमवाप प्राप्तवान्, तस्मात् वरप्राप्तिरूपहेतोः, अशेषभुवनं समस्तलोकानित्यर्थः, निजशासनस्य निजाज्ञायाः लक्षीकरोति विषयीकरोति, निजशासनेनैव समस्तलोकान् शास्तीत्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २१ ॥

उस निशाचराधिनाथ रावण ने नाना प्रकार की तपस्याओं से इन कमलयोनि ब्रह्मा को प्रसन्न कर इनसे ऐसा वर प्राप्त कर लिया जो अन्य जनों को दुर्लभ है उसी वर प्राप्ति के कारण वह रावण समस्त लोकों को अपने शासन का विजय बना रहा है (अर्थात् समस्त लोकों पर अपना शासन चला रहा है) ॥ २१ ॥

तेन वयं पराधीना इव भवामः ।

तेनेति । तेन रावणेन वयं देवाः पराधीना इव भवामः । यद्यपि भवानेवास्माकं स्वामी तथाप्यसौ रावणश्चण्डशासनतयाऽस्माँस्तथा पीडयति यथा वयं स्वातन्त्र्यं नानुभवाम इत्यर्थः ।

उस रावण के द्वारा हम सब पराधीन-से हो रहे हैं ।

तथा हि । सोऽयं [२]कदाचित्क्रीडाधराधरमारुह्य[३] सावरोधवधूजनश्चरणाभ्यां [४]सञ्चरेत चेदागमिष्यत्याग इत्यनाविष्कृतातपो भयेन भगवान्सहस्रभानुरपि सङ्कुचितभानुरेव तत्सानूनि नूनं [५]संश्रयते ।

पराधीनत्वं प्रतिपादयति—तथाहीति । सोऽयं रावण. कदाचित् कस्मिंचित्

---

१. 'समस्त' इति पा० ।
२. 'कदाचन' इति पा० ।
३. 'अधिरुह्य' इति पा० ।
४. 'तत इतः सञ्चरेत्' इति पा०
५. 'समाश्रयते' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समये सावरोधवधूजनः अन्तःपुरवर्त्तिस्त्रीजनेन सह, क्रीडाधराधरम् क्रीडापर्वतम् आरुह्य अधिष्ठाय चरणाभ्यां पादाभ्यां सञ्चरेत चेद्विहरेद्यदि (तदा) आगः चरणतलतापोत्पादनरूपोऽपराधः ('आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमरः) आगमिष्यति समापतिष्यति इति अस्माद्धेतोः भयेन रावणकोपसंभावनाजनितेनेति भावः। अनाविष्कृतातपः अप्रकटितप्रकाशः, ('प्रकाशो द्योत आतपः' इत्यमरः) भगवान् पूज्यः सहस्रभानुः–सहस्रं भानवः करा यस्य स सहस्रभानुः सूर्यः अपि, ('भानुः करो मरीचिः' इत्यमरः) संकुचितभानुरेव उपसंहृतकिरण एव नूनं निश्चयेन, तत्सानूनि तस्य क्रीडापर्वतस्य सानूनि शिखरप्रदेशान् संश्रयते अवलम्बते। यदान्तपुरवर्त्तिनीभी रमणीभिः सह दिवाविहाराभिलाषुको रावणः क्रीडापर्वतमारुह्य पादाभ्यां सञ्चरते तदा सहस्रकिरणैः सूर्ये तपति तत्किरणसन्तप्तशिलान्यस्ते रावणस्य चरणे ताप्यमाने रावणः कोपं गमिष्यतीति मत्वा भीतः सूर्योऽपि स्वकिरणानुपसंहृत्य तत्क्रीडापर्वतशिखरमाश्रयतीति सरलार्थः। अत्र सूर्यस्य सानुसमाश्रयणासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्त्याऽसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः।

रावण जब कभी दिन में अपनी रानियों के साथ क्रीडापर्वत पर चढ़ कर पैदल टहलने लगता है तब, 'कहीं रावण के चरण का तलवा सन्ताप का अनुभव करेगा तो मेरा महान् अपराध होगा' इस भय से अपने आतप को पूरा न प्रकट कर सहस्र किरणों वाले पूज्य सूर्य देव भी अपनी किरणों को संकुचित करके ही उसके क्रीडा पर्वत के शिखर प्रदेश को आश्रित करते हैं।

एष मृगाङ्कोऽपि मृगयायासपरिश्रान्तिविश्रान्त्यै ससंभ्रमं नमज्जनपरिवृते मज्जनगृहाभिमुखे [1]दशमुखे तत्रत्यविचित्रतरशातकुम्भस्तम्भाग्रप्रत्यग्रप्रत्युप्तस्फटिकशिलाशालभञ्जिकापुञ्जकरतलकलितनिजोपलमयकलशमुखादच्छाच्छाम[2]विच्छिन्नधाराम्बुधारां निजकराभिमर्शादापादयंस्तस्य प्रसादपिशुनानां सुनासीरच्चिरकाङ्क्षितानां [3]विंशतिविधवीक्षणानां क्षणमात्रं पात्रं भवति।

---

१. 'निर्जितशतमुखे' इति पा०। २. 'अविच्छिन्नपाताम्बुधाराम्' इति पा०।
३. विंशतिवीक्षणानाम् इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवं सूर्यावस्थां विज्ञाप्य ततश्चन्द्रावस्थां निवेदयति एष इति । एषः पुरो विद्यमानः, मृगाङ्कश्चन्द्रोऽपि, मृगयायासपरिश्रान्तिविश्रान्त्यै—मृगया आखेटः ('आखेटोमृगया स्त्रियाम्' इत्यमरः) तत्र य आयासस्तदनुकूलविविधव्यापारस्तस्माद्या परिश्रान्तिः श्रमस्तस्या विश्रान्त्यै अपनोदनार्थम्, ससंभ्रमं सभयं सत्वरं वा, नमज्जनपरिवृते—नमद्भिर्नमस्कारपरायणैर्जनैर्भृत्यादिभिः परिवृते वेष्टिते दशमुखे रावणे मज्जनगृहाभिमुखे स्नानागारोन्मुखे सति तत्रत्येत्यादिः—तत्रत्याः तत्र मज्जनगृहे भवा विचित्रतरा अत्याश्चर्यंकरा ये शातकुम्भस्तम्भाः स्वर्णनिर्मिताः स्तम्भाः तेषामग्रेषु उपरितनप्रदेशेषु प्रत्यग्रं नूतनं यथा तथा प्रत्युप्तः कीलितो यः स्फटिकशिला शालभञ्जिकापुञ्जः स्फटिकप्रस्तरनिर्मितपुत्तलिकाश्रेणिः, तस्य करतलेषु हस्तदेशेषु कलिताः संघटिताः निजोपलमयाः चन्द्रकान्तमणिविकारा ये कलशा घटास्तेषां मुखात् मुखाकारविवरदेशात्, (विकारार्थे मयट्, 'उपलः प्रस्तरे मणौ' इति विश्वः) अच्छाच्छाम् अतिशुभ्राम् अविच्छिन्नधाराम् अखण्डितसंपाताम् ('धारा संपात आसारः' इत्यमरः) अम्बुधाराम् जलप्रवाहम्, निजकराभिमर्शात् स्वकिरणसम्पर्कात् आपादयन् प्रादुर्भावयन्, तस्य रावणस्य प्रसादपिशुनानाम् अनुग्रहसूचकानाम् ('कर्णेजपः सूचकः स्यात् पिशुनः' इत्यमरः) सुनासीरचिरकाङ्क्षितानाम् सुनासीरेण इन्द्रेण चिरकाङ्क्षितानां न तु प्राप्तानामित्यर्थः, विंशतिविधवीक्षणानाम् विंशतिसंख्याककरुणाकटाक्षवीक्षितानाम्, क्षणमात्रमल्पकालमेव पात्रम् आश्रयः भवति ।

अयमाशयः—मृगयापरिश्रान्तो नमस्कारपरायणैर्भृत्यैरनुगम्यमो रावणः श्रमापनोदनाय स्नातुं स्नानागारमुपसीदति । तत्र स्वर्णनिर्मितस्तम्भाग्रप्रदेशे स्फटिकनिर्मिताः स्त्रीप्रतिमा नवनवकीलिता विद्यन्ते तासां करतलेषु चन्द्रकान्तमणिमयकलशाः सङ्घटिताः सन्ति । तेषां मुखाकारविवरेभ्यश्चन्द्रः स्वकिरणसम्पर्कात् स्वच्छतरामविच्छिन्नां शीतलां चाम्बुधारां रावणस्य कृते प्रवाहयति । चन्द्रकृतयाऽनया सेवया प्रसादं गतो रावणश्चन्द्रे स्वल्पकालं स्वविंशतिसंख्याककरुणाकटाक्षपातेनानुग्रहं सूचयति यदर्थमिन्द्रश्चिराय स्पृहयति ।

(स्नान के द्वारा) शिकार की थकावट दूर करने के लिए रावण, सभय एवं सत्वर प्रणाम करते हुए भृत्यों के साथ स्नानागार की ओर चल कर जब वहाँ पहुँचता है तब वहाँ के स्वर्ण निर्मित खम्भों के सिरों पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्फटिक की बनी स्त्री प्रतिमाओं के हाथों में लगे चन्द्रकान्तमणि के कलशों के मुखविवर से चन्द्रमा अपनी किरणों के सम्पर्क से अत्यन्तस्वच्छ अविच्छिन्न शीतल जलधारा रावण के लिये बहाता है और रावण (उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर) चन्द्रमा पर क्षण भर अपने बीसों करुणाकटाक्ष डाल कर अनुग्रह व्यक्त करता है जिसके लिए इन्द्र चिरकाल से तरस रहे हैं (किन्तु प्राप्त नहीं कर सके)।

तेन पुलस्त्यनन्दनेन सङ्क्रन्दननन्दना[१]त्स्वमन्दिरोद्यानमानीतस्य मन्दारप्रमुखस्य वृन्दारकतरुवृन्दस्य बन्दीकृतसुरसुन्दरीनयनेन्दीवर-[२]द्वन्द्वाच्च करारविन्दकलितकनककलशाच्च मन्दोष्णं [३]स्यन्दमानैरम्बुभि-र्जम्बालितालवालस्य पचेलिमानामपि कुसुमानां पतनभयमाशङ्कमानाः पवमानाः [४]परिस्पन्दितुमपि प्रभवो न भवन्ति।

अथ वायोरवस्थां प्रतिपादयदि—तेनेति। तेन पुलस्त्यनन्दनेन रावणेनेत्यर्थः। संक्रन्दननन्दात्—संक्रन्दनः इन्द्रस्तस्य नन्दनात् नन्दननामका दुद्यानात् (उद्धृत्य) स्वमन्दिरोद्यानमानीतस्य निजगृहविलासवाटिकां प्रापितस्य तत्र प्रत्यारोपितस्येत्यर्थः। बन्दीकृतेत्यादिः—बन्दीकृता याः सुरसुन्दर्यः देवाङ्गना—स्तासां नयतेन्दीवरद्वन्द्वात् नेत्रनीलकमलयुगलात् च (चकारः समुच्चयद्योतनार्थम्) करारविन्दकलितकनककलशाच्च—करारविन्दकलितः हस्तकमलेन गृहीतः यः कनककलशः स्वर्णकुम्भस्तस्माच्च (उभयत्रापि जातावेकवचनम्)। मन्दोष्णम् ईषदुष्णं यथा स्यात्तथा, शोकानलसंतप्ताश्रु-जलमिश्रणादितिभावः। स्यन्दमानैः प्रस्रवद्भिः, अम्बुभिः जलैः, जम्बालितालवालस्य—जम्बालितानि पङ्कयुक्तानि आलवालानि तरुमूलभागे सेचनार्थं निर्मिता गर्ता यस्य तस्य, मन्दारप्रमुखस्य वृन्दारकतरुवृन्दस्य पारिजातादिदेववृक्षनिकरस्य पचेलिमानामपि—पचेलिमानि पक्तव्यानि स्वयं पतनोन्मुखानीत्यर्थः, तादृशानामपि कुसुमानां पुष्पाणां पतनभयम् वृन्तच्युत्या रावण-

१. 'नन्दनवनात्' इति पा०।

२. 'द्वन्द्वात्तत्करारविन्दकनक' इति पा०।

३. 'स्पन्दमानैः' इति पा०।

४. 'सन्ततं परिस्पन्दितुम्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करिष्यमाणकोपाद् भीतिम्, आशङ्कमानाः सम्भावयन्तः पवमानाः मरुतः परिस्पन्दितुमपि किंचिच्चलितुमपि, किमुत यथेच्छं विहर्तुमिति भावः। प्रभवः समर्था न भवन्ति।

अयमाशय—रावणो नन्दनवनादुद्धृत्य पारिजातादितरून् आनीय स्वगृहोद्याने प्रत्यारोपितवान्। तेषां सेकार्थं बन्दीकृताः सुरललना आदिष्टवान्। तासां शोकसंतप्ताश्रुजलमिश्रणात् करकमलकलितस्वर्णकलशशीतलजलान्यपीषदुष्णानि जायन्ते। तैश्च तत्तरूणामालवालानि पङ्कमयानि भवन्ति। तेषां वृक्षाणां पक्वान्यतएव स्वयं पतनोन्मुखान्यपि पुष्पाण्यस्माकं चलनेन पतिष्यन्ति चेद्रावणः कोपं करिष्यत्यस्मान् दण्डयिष्यति चेति सम्भावयन्तो मरुतः किञ्चिदपि न चलन्ति, यथेच्छविहरणस्य का कथेति भावः।

रावण ने इन्द्र के नन्दनवन से पारिजातादि कुछ देववृक्ष लाकर अपने गृहोद्यान में लगाये हैं। उनकी सिंचाई करने के लिए वन्दिनी सुरललनाएँ नियुक्त की गयी हैं। वे बेचारी रोती हुई हाथ से जल पूर्ण कलश ढो-ढो कर उन्हें सींचतीं हैं। उनके शोक सन्तप्त अश्रुजल के मिश्रण से स्वर्ण कलश का भी जल थोड़ा उष्ण हो जाता है। उसी से उनकी सिंचाई होती है और उनके थाले पङ्किल हो जाते हैं। उन वृक्षों के पुराने पुष्प जो स्वयं पतनोन्मुख हो गये हैं, कहीं (हमारे चलने से) झड़ न जाँय इसी भय से (स्वच्छन्दतापूर्वक बहना तो दूर रहे) पवनदेव तनिक हिल भी नहीं पाते हैं।

एतेऽपि पावका रूढिशङ्कावहां[1] हुतवहाख्यां वहन्तस्तद्गृहे गार्हपत्य-[2]पुरोगाः [3]पौरोगवधुरं दधते[4]।

अथाग्न्यवस्थां निवेदयति—एतेऽपीति। गार्हपत्यपुरोगाः—गार्हपत्यः पुरोगः अग्रेसरो येषां ते तथोक्ताः, गार्हपत्याहवनीयदक्षिणनामका इत्यर्थः, एते पुरतो दृश्यमानाः, पावकाः अग्नयः अपि, रूढिशङ्कावहाम्—रूढिः अवयवार्थाभावेन समुदायप्रसिद्धिः। तल्लक्षणं यथा—'असत्स्ववयवार्थेषु

१. 'शङ्काम्' इति पा०। २. 'पुरःसराः' इति पा०।
३. 'पौरोगवीं धुरम्' इति पा०। ४. 'दधति' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योऽन्यत्रार्थे प्रयुज्यते। तत्रानन्यगतित्वेन समुदायः प्रसिद्धयति॥' इति। तच्छङ्कावहाम्,—तद्भ्रमकरीम्, हुतवहाख्याम्—हुतवहाभिधानं वहन्तः धारयन्तः, तद्गृहे रावणभवने, पौरोगवधुरम्—पौरोगवः महानसाध्यक्षस्तस्य धुरमधिकारम्, दधते धारयन्ति। पूर्वं हुतं यजमानैर्हूयमानं हविर्वहन्तीति हुतवहाः इत्यन्वर्थसंज्ञां ये गार्हपत्यादयोऽऽग्नयो वहन्ति स्म त एव साम्प्रतं रावणेनाध्वराणां विध्वंसितत्वाद्धविषामलाभेन रूढशब्दवद्योगार्थनिरपेक्षतया हुतवहा उच्यन्त इवेति भावः। 'समानौ रसवत्यां तु पाकस्थानमहानसे। पौरोगवस्तदध्यक्षः' इत्यमरः।

ये गार्हपत्यादि अग्निदेव भी रावण के घर में रसोई के कार्य में अधिकृत हैं (अब इन्हें यजमानों द्वारा हूयमान हवि तो दुर्लभ है) अतः रूढिसंज्ञा के रूप में ही अब 'हुतबह' कहे जाते हैं।

किं बहुना।

किमिति— किं बहुना—अतिविस्तरेण नास्ति प्रयोजनम्, संक्षेपेणैव परिस्थितिमवगमयामो वयम्।

अधिक कहने से क्या? (संक्षेप में जान लीजिए कि—

स एष[1]मानुषादवमाननमागमिष्यतीत्यमन्वानस्तदितरैरवध्यत्वं चतुराननवराल्लब्ध्वा समुद्धतः सम्प्रति सम्प्रहारसमाक्रान्तदिगन्तदन्तावलदन्तकुन्तव्रणकिणस्थपुटितवक्षःस्थलः स्थलकमलिनीं वनवारण इव रावणस्त्रिलोकीमभिभवन्भवदीयानित्यस्मान्न जातु किंचिदपि जानातीति।

सः इति। स एष रावणः, मानुषात् मनुष्येभ्य इत्यर्थः (जातावेकवचनम्) अवमाननमवज्ञा पराभव इत्यर्थः ('रीढावमाननावज्ञावहेलनम्' इत्यमरः)। आगमिष्यति भविष्यति इति अमन्वानः असम्भावयन् तेषां तृणप्रायत्वादिति भावः। तदितरैः तेभ्यो मनुष्येभ्य इतरैर्भिन्नैः सुरासुरादिभिरित्यर्थः। अवध्यत्वमहिंस्यत्वं चतुराननवरात् ब्रह्मणो वरदानात् लब्ध्वा प्राप्य समुद्धतः गर्वोद्रिक्तः सन् सम्प्रत्यधुना, सम्प्रहारेत्यादिः—सम्प्रहारेण युद्धेन

१. 'मानवादवमानः' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समाक्रान्ताः आहूता इत्यर्थः (संप्रहाराभिसंपातकलि संस्फोट संयुगाः' इति संग्रामपर्यायेष्वमरः) ये दिगन्तदन्तावला दिग्गजास्तेषां दन्ता एव कुन्ताः प्रासास्तैर्यानि व्रणानि क्षतानि तैर्जाता ये किणाः शुष्कमांसग्रन्थयस्तैः स्थपुटितं निम्नोन्नतीकृतं वक्षःस्थलमुरोदेशो यस्य तादृशो रावणः स्थलकमलिनीं स्थलप्ररूढपद्मिनीं वनवारणो वन्यगज इव त्रिलोकीम् त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी तां त्रिलोकीं लोकत्रयमभिभवन् पीडयन्नित्यर्थः। भवदीयान् भवत्सम्बन्धिनोऽस्मान् देवान् जातु कदापि न किञ्चिदपि जानाति न किमपि मन्यतेऽस्मान् देवान् त्वद्भक्तत्वेन तृणाय मन्यत इत्यर्थः।

मनुष्यों से हमारा पराभव उपस्थित होगा-ऐसी सम्भावना न कर रावण ब्रह्मा से मानवेतर से अवध्य होने का वरदान प्राप्त कर गर्वोद्धत हो उठा। उसने दिग्गजों को युद्धार्थ ललकारा। उनके दन्तरूप भालों के प्रहार से रावण के वक्षः स्थल में जो घाव हुए उनके सूख जाने से सूखी मांसग्रन्थियों (किण) से अब उसका वक्षःस्थल ऊँचा-नीचा ऊबड़-खाबड़ हो गया है। स्थलकमलिनी को वन्यगज के समान वह रावण त्रिलोकी को रौद रहा है और हम लोगों को तो आप (विष्णु) का भक्त समझकर कुछ समझता ही नहीं।

अथ भगवानाकर्ण्य गीर्वाणगणवाणीम्।
इन्द्रनीलाचलोदञ्चच्चन्द्रिकाधवलस्मितः।
वाचमूचे सुधाधारां मधुरां मधुसूदनः॥ २२॥

अथेति। अथ देवैरेवमुक्ते, भगवान् विष्णुः, गीर्वाणगणवाणीम्—गीर्वाणा देवास्तेषां गणः समूहस्तस्य वाणीं वाचमाकर्ण्य श्रुत्वा।

इन्द्रनीलेति। मधुं तन्नामकं दैत्यं सूदयतीति मधुसूदनः विष्णुः, इन्द्रनीलाचलोदञ्चच्चन्द्रिका धवलस्मितः - इन्द्रनीलाचले इन्द्रनीलगिरौ उदञ्चन्ती उल्लसन्ति या चन्द्रिका कौमुदी सेव धवलं शुभ्रं स्मितं हसितं यस्य स तथोक्तः, मधुरां माधुर्योपेताम्, सुधाधाराम् अमृतस्यन्दिनीम् वाचमूचे। उपमाऽलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ २२॥

इसके बाद भगवान् विष्णु ने देवगण की बातें सुन कर—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मधुसूदन विष्णु ने इन्द्रनीलगिरि पर उल्लसित चन्द्रिका के समान शुभ्र मुस्कान के साथ देवों से अमृत के समान मधुर वचन कहा ॥ २२ ॥

भवतामपराधविधायिनस्तस्य [1]यातुधानस्य निधनमधुनैव विधातुं शक्यम् ।

भवतामिति । भवतां युष्माकं देवानामपराधविधायिनोऽपकर्तुस्तस्य यातुधानस्य राक्षसस्य रावणस्य निधनं वधः, अधुनैव सम्प्रत्येव विधातुं कर्तुं शक्यं युक्तम् ।

आप सब के प्रति अपराध करने वाले उस राक्षस रावण का वध इसी समय किया जा सकता है ।

किंतु सरसिजासनशासनममोघीकुर्वन्नुर्वीतले पुत्रीयतः सुत्राममित्रस्य दशरथस्य मनोरथमपि पूरयितुमाहृतमानुषवेषः सन्नहमेव तं [2]हनिष्यामीति [3]व्याहृत्यान्तरधात् ।

किन्तु सरसिजेति । किंतु सरसिजासनशासनमपि--सरसि जासनो ब्रह्मा तस्य शासनं सुरासुरावध्यत्वरूपामाज्ञामपि ('शासनं राजदत्तोर्व्यां लेखाज्ञाशास्त्रशास्तिषु' इति विश्वः) अमोघीकुर्वन् सफलयन् (अभूततद्भावेच्विः) ब्रह्मवरस्यान्यथाकरणानौचित्यादिति भावः । उर्वीतले भुवि पुत्रीयतः–आत्मनः पुत्रमिच्छतः सुत्राममित्रस्य इन्द्रसुहृदः ('मित्रं सुहृदि मित्रोऽर्के') इति वैजयन्ती) दशरथस्य तन्नाम्नो राज्ञः मनोरथं वाञ्छितमपि पूरयितुं पूर्णं कर्तुम् आहृतमानुषवेषः—आहृतः गृहीत इत्यर्थः, मानुषस्य वेषः आकृतिर्येन स तथोक्तः, गृहीतमानवाकृतिः सन् अहमेव तं रावणं हनिष्यापि मारयिष्यामि इत्येवं प्रकारेण व्याहृत्योक्त्वा ('व्याहार उक्तिर्लपितम्' इत्यमरः) अन्तरधात् तिरोबभूव ।

किन्तु ब्रह्मा के वरदान को व्यर्थ न करता हुआ मैं पुत्रार्थी इन्द्रमित्र दशरथ के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए भूतल पर मनुष्यरूप में अवतीर्ण होकर स्वयम् उस रावण का वध करूँगा, ऐसा कह कर भगवान् तिरोहित हो गये ।

---

१. 'विधायिनो यातुधानस्य तस्य' इति पा० ।

२. 'वधिष्यामि' इति पा० । ३. 'उक्त्वा' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततः सा परिषदनि[1]मिषाणामुन्मिषितहर्षा[2] हृषीकेशादेशात्प्रशमित-दुर्दशानि निर्दशाननानि चतुर्दशभुवनानि बुद्ध्वा दुग्धसागरान्निरगात्।

तत इति। ततो विष्णुतिरोधानानन्तरम्, न निमिषन्तीत्यनिमिषा देवा-स्तेषाम्, 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इति कः। सा पूर्वोक्ता परिषत् मण्डली, हृषीकेशादेशात्-हृषीकाणीन्द्रियाणि तेषामीशः स्वामी भगवान् विष्णुस्तस्या-देशात् अहमेव रावणं हनिष्यामीति वाक्यप्रदानात् उन्मिषितहर्षा उन्मिषितः समुत्पन्नो हर्ष आनन्दो यस्याः सा तथोक्ता सती प्रशमितदुर्दशानि प्रशमिताः समाप्तिं गता दुर्दशा क्लेशा येषां तानि, निर्दशाननानि रावणविरहितानि चतुर्दशभुवनानि बुद्ध्वा मत्वा दुग्धसागरात् क्षीरसमुद्रात् सकाशात् निरगात् निर्जगाम ततः प्रातिष्ठतेत्यर्थः।

उसके बाद भगवान् विष्णु के दिये गये वचन से प्रसन्न देववृन्द ने चौदहो भुवनों के क्लेश समाप्त होंगे और रावण मारा जायगा' ऐसा विश्वास कर क्षीरसागर से प्रस्थान किया।

ततस्तानमरान् प्राह स्म पितामहः।

तत इति। ततः क्षीरसागरात् प्रस्थानानन्तरम्, तान् विष्णुनाऽऽश्वा-सितान् अमरान् देवान् पितामहो ब्रह्मा प्राह स्म ब्रूते स्म। 'लट् स्मे' इति भूतार्थे लट्।

उसके बाद ब्रह्मा ने उन देवों से कहा—

भवन्तस्तावदवतरिष्यतो लक्ष्मीसहायस्य साहाय्यार्थमप्सरःप्रभृतिषु युवतिषु [3]वानराच्छभल्लगोपुच्छनीलमुखवेषभृतः प्रथितप्रभावाः प्रजाः प्रजनयेयुरिति।

भवन्त इति। भवन्तो देवाः, तावत् सर्वप्रथमम्, कार्यान्तरमकृत्वैवेत्यर्थः, अवतरिष्यतो दाशरथिरूपेण संभविष्यतो लक्ष्मीसहायस्य श्रीपतेः साहाय्यार्थम्—सहायस्य भावः कर्म वा साहाय्यम् ('गुणवचन'—इत्यादिना ष्यञ्) तदर्थं सहायकर्म कर्तुम्, अप्सरः प्रभृतिषु—अप्सरसः स्ववेश्याः ('स्त्रियां

---

१. 'निमिषनयनानां' इति पा०। २. 'हर्षाणाम्' इति पा०।

३. 'वानरगोपुच्छभल्लूकवेषभृतः', 'वानरभल्लगोपुच्छवेशभृतः' इति च पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्याः' इत्यमरः) तत्प्रभृतिषु युवतिषु स्त्रीषु वानराच्छभल्लेत्यादिः—वानराः, अच्छभल्लाः भल्लूकाः, गोपुच्छाः गोलाङ्गूलोपमलाङ्गूलधारिणः, नीलमुखा मर्कटभेदास्तेषां वेषमाकारं बिभ्रति धारयन्ति यास्तादृशीः प्रथितप्रभावाः विख्यातप्रतापाः प्रजाः सन्ततीः पुत्रानित्यर्थः, ('प्रजा स्यात्संततौ जने' इत्यमरः) प्रजनयेयुः उत्पादयेयुः ।

सर्वप्रथम आप लोग, अवतार लेने वाले विष्णु भगवान् की सहायता के लिए अप्सरा आदि युवतियों में बन्दर-भालू के वेष धारण करने वाले प्रभावशाली पुत्र पैदा करें ।

[1]पुरैव किल मम जृम्भारम्भे [2]सम्भूतवाञ्जाम्बवानिति ।

पुरेति । पुरा पूर्वकाले सृष्टयादावेवेत्यर्थः, किलेति वाक्यालङ्कारे, मम ब्रह्मणो जृम्भारम्भे जृम्भणकाले जाम्बवान् तन्नामा भल्लूकाधिपतिः संभूतवान् उत्पन्नः (स साहाय्यं करिष्यत्येवेति भावः) ।

बहुत पहिले (सृष्टि के आदि में) ही मेरे जम्हाई लेने के समय जाम्बवान् (भल्लूकाधिपति) उत्पन्न हो चुका है (जो सहायता करेगा ही) ।

ततस्ते गीर्वाणास्तथाकुर्वन् ।

तत इति । ततो ब्रह्मण्येवमुक्तवति, गीर्वाणा देवास्तथा ब्रह्मणः कथनानुसारमकुर्वन्, अप्सरःप्रभृतिषु युवतिषु प्रथितप्रभावान् वानरभल्लूकादि वेषधारिणः पुत्राञ्जनयामासुरित्यर्थः ।

तदनन्तर देवों ने वैसा किया (ब्रह्मा के कथनानुसार अप्सरा आदि युवतियों में वीर वानर भल्लूकादिदेहधारी पुत्र पैदा किये) ।

अथ वैतानाद्वैश्वानरान्नरः प्राजापत्यः सहेमपात्रः कश्चिदुत्थाय [3]पुत्रीयते दशरथाय पायसममृतप्रायं प्रायच्छत् ।

अथेति । अथ अनन्तरं वैतानात्—वितानं क्रतुः पुत्रेष्टिरिति यावत् तस्यायं वैतानस्तस्माद् वैश्वानरात् अग्नेःसकाशात् ('क्रतुविस्तारयोरस्त्री वितानम्' इति, 'अग्निर्वैश्वानरोवह्निः' इति चामरः) । सहेमपात्रः स्वर्ण-

१. 'पुरा खलु' इति पा० । २. 'सम्भूतः' इति च पा० ।
३. 'दशरथाय पुत्रीयते' इति व्युत्क्रमेण पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मयपात्रपाणिरित्यर्थः, प्राजापत्यः प्रजापतिर्ब्रह्मा तस्यायं प्राजापत्यो ब्रह्मणा प्रेषित इति यावत् ('दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' इति ण्यः)। कश्चित् अदृष्टपूर्वो नरः पुरुषः उत्थाय निर्गत्य पुत्रीयते पुत्रानात्मन इच्छते दशरथाय तन्नाम्ने राज्ञे यजमानायामृतप्रायममृतकल्पं पायसं पयसा क्षीरेण संस्कृतं पायसं परमान्नम् ('परमान्नं तु पायसम्' इत्यमरः) 'संस्कृतं भक्षाः' इत्यण्। प्रायच्छत् प्रदत्तवान्।

इसके बाद यज्ञीय अग्नि से, ब्रह्मा द्वारा भेजा हुआ एक पुरुष हाथ में सुवर्णमय पात्र लिये हुए प्रकट हुआ। उसने पुत्रार्थी दशरथ को अमृतोपम पायस (खीर) प्रदान किया।

ततः—

कौसल्यायै प्रथममदिशद्भूपतिः पायसार्धं
प्रादादर्धं प्रणयमधुरं केकयेन्द्रस्य पुत्र्यै।
एते देव्यौ तरलमनसः पत्युरालोच्य भावं
स्वार्धांशाभ्यां स्वयमकुरुतां पूर्णकामां सुमित्राम्॥ २३॥

ततः कौसल्या इति। ततः तदनन्तरम्, पायसप्राप्त्यनन्तरमित्यर्थः। भूपतिर्दशरथ इत्यर्थः, कौसल्यायै—कोसलस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री कौसल्या ('वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' इति ञ्यङ्।) अग्रचमहिष्यै प्रथमं पूर्वं पायसार्धम्-पायसार्धंभागम्, अदिशत् दत्तवान्। केकेयेन्द्रस्य केकयदेशाधीश्वरस्य पुत्र्यै कैकेय्यै स्वमध्यमपत्न्यै प्रणयमधुरम्—प्रणयेन प्रेम्णा मधुरं यथा स्यात्तथा सस्नेहमिति यावत्। अर्धम् कौसल्यादत्तावशिष्टम् पायसार्धभागम्, प्रादात् प्रदत्तवान्। एते देव्यौ कौसल्याकैकेय्यौ राज्यौ, तरलमनसः सुमित्रायै पायसांशाप्रदानरूपापराधात् पर्याकुलचित्तस्य पत्युर्दशरथस्य भावं मनोऽभिप्रायमालोच्य विज्ञाय स्वार्धांशाभ्याम्—स्वकीयार्धभागयोरर्धभागाभ्याम्, स्वयमात्मनैव सुमित्रां पूर्णकामामकुरुताम्—स्वार्धभागौ प्रत्येकं द्विधा विभज्यैकमेकं भागमात्मार्थं निक्षिप्यावशिष्टभागौ सुमित्रायै ददतुरित्यर्थः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्॥ २३॥

राजा दशरथ ने उस चरु-पायस का आधा भाग कौशल्या को दिया। तदनन्तर अवशिष्ट आधा भाग सस्नेह कैकेयी को दिया। उन दोनों देवियों ने, (सुमित्रा को पायस न दिये जाने के कारण) पर्याकुलचित्त पति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(दशरथ) के मनोगत अभिप्राय को जान कर अपने-अपने भाग का आधा-आधा भाग देकर सुमित्रा का मनोरथ पूर्ण किया ॥ २३ ॥

अवभृथेऽवसिते सरयूतटादथ यथायथमुच्चलिते जने ।
दशरथः परिपूर्णमनोरथः पुरमगात्पुरुहूतपुरोपमाम् ॥ २४

अवभृत इति । अवभृथे यज्ञान्तस्नानादि कृत्ये, अवसिते समाप्ते, यज्ञे पूर्णतां गते सतीत्यर्थः, अथानन्तरम्, जने यज्ञसमवेतजनसमाजे, सरयूतटाद् यथायथं यथास्वं स्वगन्तव्यदेशमित्यर्थः ('यथास्वं तु यथायथम्' इत्यमरः) उच्चलिते प्रस्थिते सति, परिपूर्णमनोरथः सिद्धवाञ्छितः पुत्रलाभविनिश्चयादितिभावः । दशरथः पुरुहूतपुरोपमाम्—पुरु भूयिष्ठं हूयते यज्ञेष्विति पुरुहूत इन्द्रस्तस्य पुरं नगरी उपमा यस्यास्तादृशीम्—इन्द्रपुरीतुल्याम्, पुरम् नगरीमयोध्यामित्यर्थः, अगात् गतः । यज्ञसमाप्तौ सत्यां तत्रसमवेतजनेषु सरयूतटाद्यथास्वं प्रस्थितेषु पुत्रप्राप्तिरूपमनोरथसिद्धिविनिश्चयात् प्रसन्नहृदयो नृपो दशरथो देवाधिपतिपुरीसदृशीमयोध्यां नाम स्वपुरीं प्रविवेशेत्यर्थः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति ॥२४॥

यज्ञान्त स्नान समाप्त होने पर सब लोग सरयूतट से अपने-अपने गन्तव्य स्थानों को चल पड़े । राजा दशरथ भी अपने मनोरथ को सिद्ध समझकर प्रसन्न चित्त हो स्वर्गपुरीतुल्य अयोध्या नगरी को गये ॥ २४ ॥

अपाटवात्केवलमङ्गकानां मनोज्ञकान्तेर्महिषीजनस्य ।
शनैः शनैः [1]प्रोज्झितभूषणानि चकाशिरे [2]दौहृदलक्षणानि ॥ २५ ॥

अपाटवादिति । मनोज्ञकान्तेः—मनोज्ञा गर्भधारणत्पूर्वतोऽपि मनोहरा कान्तिः सौन्दर्यं यस्य तस्य, महिषीजनस्य कौसल्यादे राजपत्नीगणस्य, अङ्गकानाम्—अल्पानि कार्श्यंगतानीत्यर्थः, अङ्गानि हस्ताद्यवयवा इत्यङ्ग कानि तेषाम् (अल्पार्थेकः) केवलमत्यन्तम् अपाटवात्—पटुत्वाभावात् भूषणधारणविषयकसामर्थ्याभावादित्यर्थः, प्रोज्झितभूषणानि—प्रोज्झतानि विसर्जितानि भूषणानि कङ्कणाद्याभरणानि येषु तानि दौहृदलक्षणानि शरीरसादमुखपाण्डिमकृष्णचूचुकत्वादीनि गर्भचिह्नानि शनैः शनैः दिनक्रमेण, चकाशिरे परिलक्ष्य-

---

१. 'प्रोषित' इति पा०   २. 'दौर्हृद' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माणानि बभूवुरित्यर्थः। 'मातृजन्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयेन यत्। संबद्धं तेन गर्भिण्या नेष्टं श्रद्धावमाननम् ॥' इति वाग्भटोक्तेर्गर्भिणी स्वहृदयेन गर्भहृदयेन च द्विहृदयेत्युच्यते। तत्सम्बन्धित्वाद् गर्भो दौहृदमित्युच्यते। तद्दौर्हृदयुक्ता नारी दौहृदिनीत्युच्यते—'द्विहृदयां नारीं दौहृदिनीमाचक्षते' इति संग्रहोक्तेः। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' इति ॥२५॥

कौसल्यादि रानियों की शरीर कान्ति (गर्भधारण करने से) पहिले की अपेक्षा और अधिक बढ़ गयी। उसके कृश अङ्ग आभूषण धारण करने में अत्यन्त असमर्थ हो गये अतएव आभूषण उतार देने पड़े और क्रमशः (शरीर की दुर्बलता, मुख का पीलापन, स्तन के अग्रभाग चूचुक का अधिक काला पड़ जाना आदि) गर्भ के लक्षण स्पष्ट दिखायी पड़ने लगे ॥ २५ ॥

मन्दमन्दम[1]पयद्व[2]लित्रया गाधताविषयनाभिगह्वरा।
कोसलेन्द्रदुहितुः शनैरभून्मध्ययष्टिरपि दृष्टिगोचरा ॥ २६ ॥

मन्दमन्दमिति। मन्दमन्दम् शनैः शनैः 'प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्वित्वम्। 'कर्मधारयवदुत्तरपदेष्वपि' इति कर्मधारयवद्भावात्सुपो लोपः। अपयद्वलित्रया—अपयदपसरद्वलीनामुदररेखाणां त्रयं यस्याः सा तथोक्ता। गाधताविषयनाभिगह्वरा-गाधताविषयो गर्भगौरवाद् गाधीभूतो नाभिगह्वरो नाभिकुहरं यस्याः सा तथोक्ता। कोसेलेन्द्रदुहितुः कोसलराजकन्यायाः कौसल्यायाः मध्ययष्टिर्यष्टितुल्यमध्यभागः कटिप्रदेश इत्यर्थः, अपि शनैः क्रमेण दृष्टिगोचरा दृष्टिगोचरतामापन्ना अभूत्। गर्भगौरवात् कौसल्यायाः कटिप्रदेशो ववृधे येन पूर्वसूक्ष्मतयाऽविभाव्यमानोऽपीदानीं दृष्टिगोचरतामापन्नः। तदाश्रितमुदररेखात्रयं शनैः शनैरपगतम्, पूर्वमगाधमपि नाभिकुहरमिदानीं गाधतामगमदिति भावः। रथोद्धता वृत्तम्—तल्लक्षणं यथा—'स्यान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति ॥ २६ ॥

(गर्भगौरव से) कौसल्या का कटिप्रदेश बढ़ने के कारण क्रम से त्रिवली दूर होने लगी, पहिले जो नाभिकुहर अगाध था वह अब गाध बन गया

१. 'अपयात्' इति पा०। २. 'वलित्रयी' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और मध्यभाग जो सूक्ष्म होने के कारण पहिले ठीक-ठीक दिखायी नहीं पड़ता था, अब दिखायी देने लगा ॥ २६ ॥

न्यग्रोधपत्रसमतां क्रमशः प्रयाता-
मङ्गीचकार पुनरप्युदरं कृशाङ्ग्याः ।
जीवातवे दशमुखोरगपीडितानां
गर्भच्छलेन वसता प्रथमेन[1] पुंसा ॥ २७ ॥

न्यग्रोधेति । कृशाङ्ग्याः—कृशान्यङ्गानि शरीरावयवा यस्याः सा कृशाङ्गी कौसल्या, तस्या उदरम् कुक्षिः, ('पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम्' इत्यमरः) क्रमशो दिनक्रमेण शनैः शनैर्यौवनागमनेनेत्यर्थः, प्रयातामपगतां न्यग्रोधपत्रसमतां वटपत्रसादृश्यम् (वटपत्रसमं स्त्रीणामुदरं पुत्रदायकम्' इति सामुद्रिकोक्तिः) 'न्यग्रोधो बहुपाद्वटः' इत्यमरः । दशमुखोरगपीडितानाम् दशमुखो रावण एव उरगः सर्पस्तेन पीडितानां लोकानाम्, जीवातवे जीवनौषधार्थम्, रावणं निहत्य तत्पीडितान्जीवयितुमित्यर्थः । गर्भच्छलेन गर्भस्थार्भकव्याजेन वसता वासं कुर्वता प्रथमेन पुंसा आदिपुरुषेण विष्णुना हेतुना पुनर्भूयोऽप्यङ्गीचकार । कौसल्याया उदरं पूर्वं महाभाग्यलक्षणतया न्यग्रोधपत्रसममासीत्, सम्प्रति क्रमेण यौवनागमनेनोदराति कृशतया सा न्यग्रोधपत्रसमता यद्याप्यगता किन्तु रावणोरगपीडिताँल्लोकाञ्जीवयितुं गर्भच्छलेन तत्र निवसता वटपत्रशायिना विष्णुना तदुदरं पुनरपि वटपत्रसाम्यं बभारेत्यर्थः । विष्णोर्वटपत्रशायित्वं 'करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् । वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥' इति पद्येन सिद्धम् । गर्भच्छलेनेत्यत्र छलशब्देन गर्भस्यासत्यप्रतिपादनादपह्नुतिवेदविशेषः । तदुज्जीविता चेयं वटपत्रसादृश्याङ्गीकारोत्प्रेक्षा । सा च व्यञ्जकाप्रयोगादुगम्या । 'दशमुखोरग' इत्यत्र रूपकम् । उक्तरूपकोत्प्रेक्षयोः परस्परनैरपेक्ष्येणस्थितेः संसृष्टिः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २७ ॥

कृशाङ्गी कौसल्या का उदर पहिले महाभाग्यसूचक लक्षण के रूप में वटपत्र के समान था। यौवन के आगमन से उदर (कटि) के अतिकृश

---

१. 'परमेण' इति पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होने से शनैः शनैः वह वटपत्र समता जाती रही किन्तु रावण रूप सर्प से पीडित लोक को जीवन प्रदान करने के लिये गर्भ के व्याज से विष्णु के रहने लगने से उस उदर ने अपनी खोयी हुई वटपत्र समता को पुनः प्राप्त कर लिया (गर्भ रहने से उदर [कटि] में स्थूलता पुनः आ जाने से और गर्भरूप में भगवान् के वहाँ रहने से वह उदर पुनः वटपत्र सदृश शोभित हुआ) ॥ २७ ॥

अपि च—

मध्यं तनुत्वादविभाव्यमानमाकाशमासीदसितायताक्ष्याः ।
गर्भोदये विष्णुपदापदेशात्कार्श्यं विहायापि विहाय एव ॥ २८ ॥

मध्यमिति । असितायताक्ष्याः—असिते श्यामवर्णे आयते दीर्घे चाक्षिणी यस्यास्तस्याः, श्यामलविशाललोचनायाः कौसल्यायाः (बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति षच् 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष्) । मध्यम् उदरमित्यर्थः, तनुत्वात् कृशत्वाद्धेतोः अविभाव्यमानम् अपरिदृश्यमानं सत् आकाशम् अविभाव्यमानतया आकाशरूपमासीत्, पूर्वमिति शेषः । तथा कविसमयसिद्धत्वादिति भावः । (तत्कौसलामध्यमधुना) गर्भोदये गर्भदशायां (संजातस्थौल्यात्) कार्श्यम् कृशतां विहाय परित्यज्यापि विष्णुपदापदेशात् (१- विष्णोर्गर्भरूपेण विद्यमानस्य पदं स्थानम्, २- विष्णुपदमाकाशम्, तदपदेशात् विष्णुपदमिति शब्देन व्यवह्रियमाणत्वात्) विहाय एव आकाशमेवासीदिति शेषः । ('वियद्विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी'त्यमरः) ।

कौसल्याया मध्यम् (उदरम्) पूर्वं कृशत्वादविभाव्यमानत्वसाधर्म्येणाकाशमासीत्, सम्प्रति गर्भोदये संजातस्थौल्यादाकाशभावनिमित्तस्याविभाव्यमानत्वस्याभावेऽपि भगवतो विष्णोः पदं स्थानमित्यर्थकविष्णुपदमिति शब्देन व्यवह्रियमाणत्वात् 'विष्णुपदमाकाशमि'ति पर्यायतया आकाशमेवातिष्ठदित्यर्थः ।

अत्र पूर्वार्धे मध्यभागाकाशयोर्भेदेऽप्यभेदोक्तेर्भेदेऽभेदरूपातिशयोक्तिः । उत्तरार्धे त्वाकाशभावनिमित्तकार्श्याभावेऽपि तदेवासीदिति विरोधः । तदुज्जीविता चेयं विष्णुपदत्वरूपकारणान्तरमुक्त्वा कार्श्यरूपहेतुं विनाप्याकाशभवनरूपकार्योत्पत्तिरूपा विभावना । तदतिशयोक्तिविभावनयोरङ्गाङ्गिभावेन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संवलनात् संकरः। इन्द्रवज्रावृत्तम्-स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौजगौगः' इति लक्षणात् ॥ २८ ॥

श्यामल एवं विशाल नेत्रों वाली कौसल्या का मध्य भाग कृश होने के कारण दिखायी नहीं पड़ता था अतएव आकाश कहा जाया करता था। अब गर्भदशा में (मध्य भाग के स्थूल हो जाने से) यद्यपि उसकी कृशता नहीं रह गयी तथापि गर्भ में विष्णु के रहने से वह विष्णुपद (विष्णु का स्थान) कहा जाने लगा और वह प्रकारान्तर से विष्णुपद शब्दवाच्य आकाश ही कहा जाता रहा। दूसरी स्थिति में भी उसका आकाशत्व अखण्डित ही रहा ॥ २८ ॥

ततः—

उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि ।
निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारणे-
राविर्भूतमभूत[1] पूर्वमपरं यत्किंचिदेकं महः ॥ २९ ॥

तत इति, उच्चस्थ इति। ततो दौहृदलक्षणप्रकाशानन्तरम्, ग्रहपञ्चके ग्रहाणां सूर्य-भौम-गुरु-शुक्र-शनि-नामकानां पञ्चके, उच्चस्थे मेषादिस्वोच्चस्थानस्थिते, सुरगुरौ बृहस्पतौ सेन्दौ चन्द्रयुक्ते सति, पूषणि सूर्ये मेषं गते मेषराशिं प्रविष्टे सति, पुनर्वसुयुते पुनर्वसुनक्षत्रयुक्ते, कर्कटके लग्ने कर्कराश्युदयकाले, ('राशीनामुदयो लग्नम्' इत्यमरः) नवम्यां तिथौ निखिलाः समस्ताः पलाशसमिधः—पलं मांसमश्नन्ति खादन्तीति पलाशा राक्षसा एव पलाशसमिधः किंशुककाष्ठानि, अरणिजन्याग्नेर्नैयत्येन पलाशसमिद्दाहकत्वादिति भावः। निर्दग्धुं विनाशयितुं भस्मासात्कर्तुं च, मेध्यात् पवित्रात्, अयोध्याऽरणेः—अयोध्यैवारणिरग्निमन्थनदारुविशेष--स्तस्मात्-अपरम्—न विद्यते परं यस्मात्तदपरमद्वितीयम्, अभूतपूर्वम्-पूर्वोत्पन्न--सकल--विलक्षणम्, यत्किञ्चिदेकम् अनिर्वाच्यमद्भुतम्, महस्तेजस्तदेव महोऽग्निरिति श्लिष्टरूपकम्, आविर्भूतं स्वयमेव प्रकटीबभूव। 'अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरझषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः' इति प्रोक्तदिशा सूर्य-चन्द्र-भौम--बुध-गुरु-शुक्र-

१. 'पूर्वविभवं यत्किंचित्', 'पूर्वममवद्यत्किंचित्' इति च पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शनि--ग्रहाणां क्रमशो मेष--वृष--मकर--कन्या--कर्क--मीन--तुला--राशय उच्च-स्थानानि भवन्ति। एवं ग्रहस्थित्यादिवर्णनेन रामस्य प्रभावातिशयो द्योतितः। यस्य जन्मकाले पञ्चापि ग्रहाः स्वोच्चस्थास्तस्य देवतुल्यत्वमुक्तं कृष्णीये—'सुखिनः प्रकृष्ट--कार्या राजप्रति--रूप--काश्च राजानः। एकद्वित्रिचतुर्भिर्जायन्तेऽतः परं दिव्याः॥' इति। सूर्यस्य मेषराशिरुच्चस्थानमिति प्रसिद्धम् उच्चस्थे। ग्रहपञ्चके' इत्यनेनैव सूर्यस्य मेषगतत्वसिद्धौ पुनः 'मेषं गते पूषणि' इति गोबलीवर्दन्यायेनोक्तमिति ज्ञेयम्। शार्दूल--विक्रीडितं वृत्तं—'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात् ॥ २९ ॥

तदनन्तर जिस समय पाँच ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान में थे, चन्द्रमा और बृहस्पति एक ही स्थान में थे तथा सूर्य मेषराशि में थे, ऐसे शुभ योग से युक्त नवमी तिथि, कर्क लग्न और पुनर्वसु नक्षत्र में समस्त राक्षस रूप किंशुक समिधा को जलाने के लिए एक अद्वितीय अद्भुत तथा अभूतपूर्व (राम नामक) तेजो रूप अनल, पवित्र अयोध्या रूप अरणि (अग्निमन्थनदारु विशेष) से प्रकट हुआ ॥ २९ ॥

अपि च—

अथ रामाभिधानेन कवेःसुरभयन्[1] गिरः।
अलंचकार कारुण्याद्रघूणामन्वयं हरिः॥ ३० ॥

अथेति। अथ तदनन्तरम्, हरिर्विष्णुः, रामाभिधानेन—रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः। 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सदानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ पर--ब्रह्माभिधीयते॥' इत्युक्तेः। राम इत्यभिधानं तेन, रामनाम्ना कवेः—वाल्मीकेरित्यर्थः। गिरः—वाणीः, सुरभयन्—सुरभीर्मनोज्ञाः कुर्वन्, करिष्यन्नित्यर्थः। सुरभिशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्। तदन्ताल्लटः शत्रादेशः। वर्तमान-सामीप्ये वर्तमानप्रत्ययः। कारुण्यात् करुणैव कारुण्यम्, तस्मात् (स्वार्थे ष्यञ्)। रघूणामन्वयं वंशमलंचकार, अलङ्कृतवान्। रामरूपेणावतीर्य रघुवंशमनुगृहीतवानित्यर्थः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३० ॥

इसके बाद रामनाम से वाल्मीकि की वाणी को मनोज्ञ बनाने वाले हरि ने करुणावश रघुवंश को अलंकृत किया (अर्थात् रघुकुल में जन्म लिया) ॥३०॥

---

१. 'गिरा' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]तमेनमन्वजायन्त त्रयस्त्रेताग्नितेजसः ।
[2]अग्रजस्यानुकुर्वन्तस्तैस्तैर्लोकोत्तरैर्गुणैः ॥ ३१ ॥

तमिति । त्रेताग्नितेजसः—एक एवाग्निस्त्रीणि रूपाणि इतः प्राप्तस्त्रेता । स्त्रीत्वं लोकात्, 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य' इत्युक्तेः । त्रेताग्निः-आहवनीय-गार्हपत्यदक्षिणनामकमग्नित्रयम् ('अग्नित्रयमिदं त्रेता' इत्यमरः) त्रेताशब्देनैवाग्निं प्रतीतेः पुनरग्निशब्दप्रयोगः कर्णावतंसादिपदवदित्यवगन्तव्यम् । त्रेताग्नेस्तेज इव तेजो येषां ते तथोक्ताः, अतितेजस्विन इत्यर्थः । त्रयः-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्नाख्यास्त्रयो भ्रातरः, तैस्तैर्लोकोत्तरैः लोकेष्वसाधारणैर्गुणैर्विद्याविनयादिभिः, अग्रजस्य ज्येष्ठभ्रातुः, रामस्येत्यर्थः, सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । अनुकुर्वन्तस्तत्सदृशा इत्यर्थः 'तदन्वेत्यनुबन्धाति तच्छीलं तन्निषेधति । तस्य वानुकरोतीतिशब्दाः सादृश्यवाचकाः ।' इत्युक्तेः । तमेनं राममनु, तस्यैतस्य रामस्य पश्चात् 'अनुर्लक्षणे' इति कर्मप्रवचनीयत्वाद् द्वितीया । अजायन्त जाताः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३१ ॥

आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिण नामक तीन अग्नियों के समान अत्यन्त तेजस्वी, अपने लोकोत्तर गुणों से ज्येष्ठ भ्राता राम का अनुकरण करने वाले तीन भाई राम के बाद पैदा हुए ॥ ३१ ॥

भरतस्तेषु [3]कैकेय्यास्तनयो विनयोज्ज्वलः ।
अन्यौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां कृतोदयौ ॥ ३२ ॥

भरत इति । तेषु त्रिषु कुमारेषु विनयोज्ज्वलः—विनयेन नम्रतागुणेन-उज्ज्वलोऽभिरामः, विनयसम्पन्न इत्यर्थः, भरतो भरतनामा कैकेय्याः केकयाधिपतिकन्यायाः दशरथमध्यमपत्न्यास्तनयः पुत्रोऽजायतेति शेषः । अन्यौ-भरतादपरौ लक्ष्मण-शत्रुघ्नौ सुमित्रायां दशरथकनिष्ठभार्यायां कृतोदयौ समुत्पन्नावित्यर्थः, अभूतामिति शेषः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३२ ॥

उन तीनों कुमारों में विनयसम्पन्न भरत कैकेयी नामक रानी से और शेष दो लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न सुमित्रा से (युग्म) उत्पन्न हुए ॥ ३२ ॥

---

१. 'तमेवम्' इति पा०
२. 'अग्रजं तेऽनुकुर्वन्तः' इति पा०
३. 'कैकेय्याम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एते ववृधिरे वीरा [1]ब्रह्मक्षेमाय दीक्षिताः ।
[2]लोकानन्दमुकुन्दस्य चत्वार इव बाहवः ॥ ३३ ॥

एत इति । ब्रह्मक्षेमाय ब्राह्मणानां परिपालनाय (ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः' इत्यमरः) दीक्षिताः—दीक्षा संजातैषामिति दीक्षिताः कृतसङ्कल्पाः, दीक्षा-शब्दात् 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्' इतीतच्, तारकादेराकृति-गणत्वात् । चत्वारो रामादय एते पूर्वोक्ता वीराः शूराः, लोकानन्दमुकुन्दस्य जगदानन्दकरस्य विष्णोः, चत्वारो बाहव इवोक्त विशेषणविशिष्टाश्चत्वारो भुजा इव ववृधिरे वृद्धिमगमन् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणों के कल्याण के लिये कृत सङ्कल्प रामादि ये चारों वीर राजकुमार लोकहित परायण भगवान् विष्णु के चार हाथों की तरह बढ़ने लगे ॥ ३३ ॥

अथ कदाचिदपरिमेयमायाभयानकयुद्धसमुद्धतदैत्यबलावस्कन्दकांदि-शीकवृन्दारकानीकपरिवार्यमाणरथः[3] पङ्क्तिरथस्तपश्चर्याजातानामाश्च-र्याणामायतनं[4] त्रिशङ्कुयाजिनं भगवन्तं पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदं प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासं बुधमिव सोमसुतं कुशिकसुत[5]मद्राक्षीत् ।

अथेति । अथानन्तरम् तेषु रामादिराजपुत्रेषु वृद्धिं गच्छत्स्वित्यर्थः, कदाचित् कस्मिंश्चिद्दिने अपरिमेयेत्यादिः—अपरिमेया अनन्ता या माया विचित्रछलविद्या तया भयानकं भयङ्करं युद्धं तत्र समुद्धतं यत् दैत्यबलं दैत्य-सैन्यं, तस्य अवस्कन्देन आक्रमणेन, कान्दिशीकैर्भयद्रुतैर्वृन्दारकानीकैर्देवसैन्यैः परिवार्यमाण आवेष्ट्यमाणो रथो यस्य स तथोक्तः, विविधकपटैर्भीषणयुद्धोद्यत-दैत्यानामाक्रमणेन भीतैर्देववृन्दैः शरण्यत्वेत परिवृत इत्यर्थः पङ्क्तिरथो दशरथः ('पङ्क्तिश्छन्दोऽपि दशमम्' इत्यमरः) तपश्चर्याजातानाम्—तपो-नुष्ठानाज्जनितानामाश्चर्याणाम् विस्मयावहकर्मणाम् आयतनमास्पदम्, वसिष्ठस्पर्धया ब्राह्मणत्वावाप्त्यै स्वतपः प्रभावैः कृतविस्मयावहकर्माणमित्यर्थः,

---

१. 'प्रजाक्षेमाय' इति पा० । २. 'लोकानन्दा मुकुन्दस्य' इति पा० ।
३. 'प्रतिपाल्यमानमहारथः' इति पा० । ४. 'निःशङ्कं त्रिशङ्कु' इति पा० ।
५. 'अद्राक्षीदप्राक्षीच्च' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिशङ्कुयाजिनम्—त्रिशङ्कुं हरिश्चन्द्रपितरं सदेहस्वर्गप्राप्तये याजयति यज्ञे प्रवर्तयतीति त्रिशङ्कुयाजी तम्, यजेर्ण्यन्तात्ताच्छील्येणिनिः, भगवन्तं षडैश्वर्यसम्पन्नम्, पद्यप्रबन्धमिव पद्यनिबद्धकाव्यग्रन्थमिव दर्शितसर्गभेदः—दर्शितः प्रकटितः सर्गभेदः अनुभागबहुत्वं सृष्ट्यन्तरं च येन तम्, प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासम्—प्रकटितः प्रदर्शितो वर्णव्यत्यासः अक्षरविपर्ययः, क्षत्रियत्वपरित्यागेन ब्राह्मणवर्णस्वीकाररूपव्यत्यासश्च येन तम्। ('वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ स्तुतौ वर्णं तु वाक्षरे' इत्यमरः)। विश्वामित्रः क्षत्रियत्वं परित्यज्य ब्राह्मणत्वं स्वीकृतवानिति तद्वर्णव्यत्यासः। प्राकृतव्याकरणेऽपि वर्णव्यत्यासः प्रसिद्ध एव यथा—तालव्यशकारमूर्धन्यषकारयोः प्रायशो दन्त्यसकारभावः। बुधमिव ग्रहविशेषमिव सोमसुतं चन्द्रपुत्रम् सोमयाजिनं च, सोमं सुनोतीति सोमसुत् तम् (क्विप्प्रत्ययः) कुशिकसुतं कुशिकाख्यनृपपुत्रं विश्वामित्रमद्राक्षीत् ददर्श। श्लेषमूलोपमा।

इसके बाद एक दिन, बहुविध छलविद्या से युद्ध करने वाले दैत्यों की सेना के आक्रमण से भयभीत देवसैन्य के द्वारा (साहाय्य प्राप्त करने के उद्देश्य से) जिनका रथ घेर लिया जाया करता था ऐसे राजा दशरथ ने तपस्या जनित आश्चर्यों के आयतन, त्रिशंकु को यज्ञ कराने वाले पद्य प्रबन्ध की तरह सर्ग भेद (१. अनुभाग भेद, २. सृष्ट्यन्तर) करने वाले, बुध की तरह सोमसुत (१. चन्द्रपुत्र, २. सोम यज्ञ करने वाले) भगवान् विश्वामित्र का दर्शन पाया (विश्वामित्र राजा दशरथ के यहाँ पधारे)।

तदनु तथाविधि[1] कृतसपर्येण मर्यादातीतमहिम्ना[2] महितेन गाधेतरहृदयेन गाधिनन्दनेन सत्रपरित्राणार्थमित्थम[3]भ्यर्थितोऽभूत्।

तदन्विति। तदनु दर्शनानन्तरम्, यथाविधि—विधिमनतिक्रम्य यथाविधि शास्त्रोक्तविधिनेत्यर्थः। 'अव्ययं विभक्ति'—इत्यादिनाव्ययीभावसमासः। कृतसपर्येण—कृता विहिता दशरथेन सपर्या पूजा यस्य तेन। ('पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः' इत्यमरः)। मर्यादातीतमहिम्ना—अपरिमित-

---

१. 'प्रतिकृत', 'परिगृहीत' इति पा०। २. 'महिम्ना गाधेतर' इति पा०।
३. 'अभ्यर्थितः पार्थिवोऽभूत्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माहात्म्येन, महितेन पूजितेन, गाधेतरहृदयेन गाधमगम्भीरम्, तस्मादितरत् भिन्नमगाधमित्यर्थः हृदयं यस्य तेन गाधिनन्दनेन विश्वामित्रेण सत्रपरित्राणार्थम् यज्ञरक्षणाय, इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण (दशरथः) प्रार्थितः याचितः, अभूत्। राज्ञा दशरथेन शास्त्रोक्तविधिना विश्वामित्रस्य पाद्यार्घ्यादिभिः सत्कारः कृतः। अनन्तमाहात्म्यशाली सर्वपूजितो विश्वामित्रः स्वयज्ञरक्षणार्थं राजानं दशरथं वक्ष्यमाणप्रकारेणाभ्यर्थितवानित्यर्थः।

इसके बाद राजा दशरथ ने शास्त्रोक्त विधि से विश्वामित्र का सत्कार किया। अत्यन्त माहात्म्य शाली सर्वपूजित गम्भीर हृदय विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की रक्षा के लिए इस प्रकार दशरथ से अभ्यर्थना की।

राजन्, [1]भवतस्तनयेन विनयाभिरामेण रामेण [2]शरासनमित्रेण सौमित्रिमात्रपरिजनेन क्रियमाणक्रतुरक्षो रक्षोदुरितमुत्तीर्य कृतावभृथो भवितुमभिलषामीति।

राजन्निति। राजन्, भवतः विनयाभिरामेण विनयशीलेनेत्यत्यर्थः, एतेन रामस्याज्ञाकारित्वं सूचितम्। तनयेन पुत्रेण रामेण शरासनमित्रेण शरासनं धनुरेव मित्रं सुहृद् यस्य तेन, धनुर्मात्रसहायेनेत्यर्थः। सौमित्रिमात्रपरिजनेन—सौमित्रिमात्रं लक्ष्मण एव परिजनो यस्य तेन, क्रियमाणक्रतुरक्षः—क्रियमाणा विधीयमाना क्रतुरक्षा यज्ञरक्षणं यस्य तादृशोऽहं रक्षोदुरितम् सुबाहुमारीचादिराक्षसैः कृतं विघ्नम् उत्तीर्य तीर्त्वा समाप्येत्यर्थः, कृतावभृथः कृतयज्ञावसानस्नानः, भवितुमभिलाषामीच्छामि।

राजन्, आप के पुत्र विनयाभिराम राम धनुष धारण कर केवल लक्ष्मण के साथ मेरे यज्ञ की रक्षा करें, इस प्रकार मैं राक्षसों के उपद्रवों को पार कर (शान्ति के साथ यज्ञ पूर्ण होने से) यज्ञान्त स्नान करके पूर्ण काम होना चाहता हूँ।

[3]एतदाकर्ण्य कर्णपरुषं महर्षिभाषितमतिमात्रपुत्रवात्सल्यात्कौसल्याजानिः सशल्यान्तःकरणोऽभूत्।

---

१. 'तव कुमारेण' इति पा०। २. शरासनमात्रमित्रेण' इति पा०।
३. 'एवंविधमाकर्ण्य' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतदिति। कर्णपुरुषम्—कर्णोद्वेजकम्, एतत् पूर्वोक्तं रामप्रेषणपरं महर्षिभाषितम् विश्वामित्रवचः आकर्ण्य श्रुत्वा अतिमात्रपुत्रवात्सल्यात् अतिशयितसुतस्नेहाद्धेतोः कौसल्याजानिः—कौसल्या जाया यस्य स कौसल्याजानिर्दशरथः सशल्यान्तःकरणः खिन्नहृदयः अभूत्। अन्तःस्थितेन शल्येनेव तद्वचसा दशरथहृदयं व्यथामन्वभूदित्यर्थः।

महर्षि (विश्वामित्र) का यह कर्णोद्वेजक वचन सुन कर पुत्र पर अत्यधिक स्नेह होने से राजा दशरथ के हृदय में जैसे तीर चुभ गया।

ततस्तस्मिन्बहुप्र[1]कारैर[2]वार्यनिश्चये भगवति विश्वामित्रे दशरथस्तपनकुलहितेन पुरोहितेनैवमभिहितोऽभूत्।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्, तस्मिन् भगवति सर्वसामर्थ्यशालिनि विश्वामित्रे बहुप्रकारैः नानाविधैः 'अहमेव गमिष्यामि योद्धुं तैः कूटयोधिभिः। रामस्यास्य न पश्यामि मुनेऽहं युद्धयोग्यताम्॥ षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक। यत्नेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि॥' इत्याद्युक्तानेकोपायैरित्यर्थः। अवार्यनिश्चये—अवार्यः निवारयितुमशक्यः, निश्चयः रामप्रेषणात्मको विचारो यस्य, तादृशे सति दशरथः तपनकुलहितेन सूर्यकुलयोगक्षेमानुसन्धानपरायणेन पुरोहितेन वसिष्ठेन एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अभिहितः उक्तः अभूत्।

तदनन्तर अनेक प्रकार से समझाने-बुझाने पर भी विश्वामित्र के निश्चय में कोई परिवर्तन न दिखाई पड़ने पर सूर्यवंश के हितैषी पुरोहित वसिष्ठ ने दशरथ से इस प्रकार कहा।

[3]पर्याप्तभाग्याय भवानमुष्मै कुर्यात्सपर्यां कुशिकात्मजाय।
निर्यातुधानं वसुधां विधातुं निर्यातु रामः सह लक्ष्मणेन॥ ३४॥

पर्याप्तेति। भवान् दशरथः, पर्याप्तभाग्याय—पर्याप्तं प्रचुरं भाग्यं ब्रह्मवर्चसरूपं भागधेयं यस्य तस्मै। तादृशस्य महात्मनोऽनादरो न युक्त इति भावः। अमुष्मै अस्मै कुशिकात्मजाय विश्वामित्राय सपर्याम् पूजां कुर्यात् श्रीरामप्रदाने-

---

१. 'प्रकारैरपि' इति पा०।
२. 'अपरिहार्यं' इति पा०।
३. 'पर्याप्तकामाय' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेति भावः। अतः वसुधां पृथ्वीं निर्यातुधानां निर्गता यातुधाना राक्षसा यस्यास्तादृशीं राक्षससामान्यशून्यां विधातुं कर्तुं लक्ष्मणेन सह रामः निर्यातु निर्गच्छतु । इन्द्रवज्रावृत्तम् लाटानुप्रासः ॥ ३४ ॥

राजन्, आप ब्रह्मवर्च (ब्रह्मज्ञान से प्राप्त आत्मशक्ति अथवा तेज) से सम्पन्न विश्वामित्र जी का (राम को देकर) सत्कार करें। धराधाम को राक्षस विहीन करने के लिए लक्ष्मण सहित राम को जाने की अनुमति प्रदान करें ॥ ३४ ॥

एवं वसिष्ठेन प्रतिष्ठापितधृतिर्दशरथः सुतप्रदानेन कुशिकसुतमनोरथमेव पूरयामास ।

एवमिति । एवं प्रोक्तप्रकारेण वसिष्ठेन प्रतिष्ठापितधृतिः—प्रतिष्ठापिता पुनः संस्थापिता धृतिर्धैर्यं यस्य स तथोक्तः ('धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु' इति विश्वः) दशरथः सुतप्रदानेन सलक्ष्मणस्य रामस्य प्रदानेन समर्पणेन, सलक्ष्मणो रामो मुनिमनुयात्वित्यनुज्ञाप्रदानेनेत्यर्थः । कुशिकसुतमनोरथं विश्वामित्राभीष्टमेव पूरयामास अपूरयत्, न त्वप्रदानरूपं स्वमनोरथमित्येवकारार्थः ।

इस प्रकार वसिष्ठ द्वारा धैर्य बँधाये जाने पर दशरथ ने सलक्ष्मण राम को मुनि के साथ जाने की अनुमति प्रदान कर विश्वामित्र के अभिलाष को ही पूरा किया (अपने मनोरथ का तो विघात ही किया)।

योगेन लभ्यो यः पुंसां संसारापेतचेतसाम् ।
नियोगेन पितुः सोऽयं रामः कौशिकमन्वगात् ॥ ३५ ॥

योगेनेति । यो रामः संसारापेतचेतसाम्—संसारात् स्त्रीपुत्रधनादिरूपात् अपेतं विरक्तं चेतो मनो येषां तादृशां पुंसां योगिनामित्यर्थः । योगेन चित्तवृत्तिनिरोधरूपेण ध्यानेन ('योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु' इत्यमरः) लभ्यः गम्यः सोऽयं रामः पितुर्नियोगेनाज्ञया कौशिकं विश्वामित्रमन्वगात् अन्वगच्छत् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३५ ॥

संसार से विरक्त हृदय वाले योगीश्वर ध्यानद्वारा जिन राम को पाते हैं वैसे ये राम पिता के आदेश से कौशिक मुनि के पीछे-पीछे चले ॥ ३५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्र सत्रं परित्रातुं विश्वामित्रो महामुनिः ।
सौमित्रिसहितं रामं नयन्नयमवोचत ॥ ३६ ॥

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये अयं महामुनिर्विश्वामित्रः सत्रं यज्ञं परित्रातुं राक्षसोपद्रवेभ्यो रक्षितुं सौमित्रिसहितम्—सुमित्राया अपत्यं पुमानिति सौमित्रिर्लक्ष्मणः 'बाह्वादिभ्यश्च' इतीञ् । तेन सहितम्, रामं नयन् गमयन् अवोचत उक्तवान् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३६ ॥

उस समय यज्ञरक्षार्थ लक्ष्मण सहित राम को ले जाते हुए महामुनि विश्वामित्र ने (मार्ग में राम से) कहा ॥ ३६ ॥

बलेन तपसा लब्धे बलेत्यतिबलेति च ।
विद्येते मयि काकुत्स्थ विद्ये ते वितरामि ते ॥ ३७ ॥

बलेनेति । काकुत्स्थ—ककुत्स्थवंशज ! राम ! तपसां बलेन महिम्ना लब्धे प्राप्ते 'बला' इति 'अतिबला' इति च विद्ये मन्त्रात्मिके शक्ती मयि विश्वामित्रे विद्येते वर्त्तेते । ते विद्ये (कर्मणी) ते तुभ्यं वितरामि ददामि उपदिशामीत्यर्थः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३७ ॥

हे काकुत्स्थ (राम) ! मैंने तपस्या के बल से 'बला' और 'अतिबला' दो विद्याएँ प्राप्त की हैं, उन्हें तुमको दे रहा हूँ ॥ ३७ ॥

ततो [1]गृहीतविद्यस्य दाशरथेः [2]प्रदेशमेकं प्रदर्श्य भगवानित्थमकथयत्—

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, गृहीतविद्यस्य—गृहीते प्राप्ते विद्ये बलातिबलाख्ये येन तस्य दाशरथेः दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः 'अत इञ्' इतीञ् । तस्य रामस्येत्यर्थः एकं प्रदेशं भूविभागं प्रदर्श्य अङ्गुल्या निर्दिश्य भगवान् विश्वामित्रः इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण अकथयत् कथितवान् ।

इस प्रकार बलातिबला नामक विद्यायें प्राप्त कर लेने पर राम को एक प्रदेश विशेष दिखा कर भगवान् विश्वामित्र ने इस प्रकार कहा—

अस्मिन् पुरा पुरभिदः परमेश्वरस्य
[3]भालान्तरालनयनज्वलने मनोभूः ।

---

१. 'परिगृहीत': 'प्रतिग्रहीत' इति च पा० । २. 'एकं प्रदेशम्' इति पा० । ३. 'फालान्तराल' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सद्यः प्रपद्य शलभत्वममुञ्चदङ्गं
तस्मादमुं जनपदं विदुरङ्गसंज्ञम् ॥ ३८ ॥

अस्मिन्निति । पुरा प्राचीनकाले । अस्मिन् अत्र प्रदेशे मनोभूः कामदेवः पुरभिदस्त्रिपुरान्तकारिणः परमेश्वरस्य शिवस्य भालान्तरालनयनज्वलनेभालस्य मस्तकस्य अन्तराले मध्ये यन्नयनं तृतीयंनेत्रं तस्य ज्वलनः अग्निस्तस्मिन् सद्योऽविलम्बेन शलभत्वं पतङ्गभावं प्रपद्य प्राप्य अङ्गं शरीरममुञ्चत् त्यक्तवान्, तस्मात्कारणात् अमुं जनपदं देशं अङ्गसंज्ञं विदुर्जानन्ति पुराविद इति शेषः। अङ्गमोचनमेव निमित्तं कृत्वाऽमुं जनपदमङ्गनाम्ना व्यवहरन्ति जना इत्यर्थः। ('नीवृज्जनपदो देशविषयौ तूपवर्तनम्' इत्यमरः)। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३८ ॥

प्राचीन काल में इसी प्रदेश में त्रिपुरान्तक शिव जी के भालस्थ तृतीय नेत्र की अग्निज्वाला में शलभ भाव को प्राप्त होकर (अर्थात् भस्म होकर) कामदेव ने अङ्ग-त्याग किया था, इसलिए इस देश को लोग 'अङ्ग' नाम से व्यवहृत करते हैं ॥ ३८ ॥

तदनु मानससरःप्रसृतां सरयूमतिक्रम्य वृत्रवधप्रवृद्धवृद्धश्रवःपङ्कक्षालनलब्धमलयोर्मलदकरूशनाम्नोर्जनपदयोः सीम्नि कृतपदयोर्दाशरथ्योः पुनरप्येवमब्रवीत् ।[1]

तदन्विति । तदनु तदनन्तरं मानससरः प्रसृता मानसाख्यसरोवरात् प्रसूतां सरयूमतिक्रम्य उत्तीर्य वृत्रवधप्रवृद्धेत्यादिः—वृत्रस्य तन्नाम्नोऽसुरस्य वधेन हत्यया प्रवृद्धो वृद्धिगतः वृद्धश्रवसः इन्द्रस्य पङ्कः पापमेव पङ्कः कर्दम इति श्लिष्ट-रूपकम्, तस्य क्षालनेन लब्धमलयोः संक्रान्तपापयोरित्यर्थः। मलदकरूश—नाम्नोः जनपदयोः देशयोः सीम्नि पर्यन्तभुवि दाशरथ्योः रामलक्ष्मणयोः कृतपदयोः न्यस्तचरणयोः सतोः, पुनः भूयोऽप्येवं वक्ष्यमाण प्रकारेण अब्रवीत् उक्तवान् ।

इसके बाद मानसरोवर से निकली सरयू नदी को पार कर, वृत्रासुर के वध से उत्पन्न इन्द्र के पापपङ्क के प्रक्षालन से मलिन भाव को

---

१. 'लब्धमलदकरूशकनाम्नोः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रात मलद और करूश की सीमा में राम लक्ष्मण के प्रविष्ट होने पर विश्वामित्र ने फिर इस प्रकार कहा—

यक्षः सुकेतुर्द्रुहिणप्रसादाल्लेभे सुतां कामपि ताटकाख्याम् ।
सुन्दः किलैनां परिणीय तस्यां मारीचनीचं जनयांबभूव ॥३९॥

यक्ष इति । सुकेतुः तन्नामा यक्षः देवयोनिविशेषः ('विद्याधराप्सरो—यक्षरक्षो गन्धर्व-किन्नराः' इत्यमरः) । द्रुहिणप्रसादात्—द्रुहिणः ब्रह्मा तस्य प्रसादात् प्रदत्तवरप्रभावात्, ताटकाख्यां ताटकानाम्नीं कामप्येकां सुतां कन्यां लेभे प्राप्तवान्, जनयामासेत्यर्थः । एनां सुकेतुसुतां ताटकाम्, सुन्दः तन्नामा कश्चिद्यक्षः, परिणीय विवाह-विधिना परिगृह्य, किलेति वार्तायाम् । ('वार्तासंभाव्ययोः किल' इत्यमरः) तस्यां ताटकायां मारीचनीचम् नीचवृत्तिकं मारीचं नाम पुत्रं जनयांबभूव उत्पादयामास । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ३९ ॥

सुकेतु नामक यक्ष ने ब्रह्मा के प्रसाद से ताटका नाम की एक कन्या पायी थी (अर्थात् उत्पन्न किया था) । सुन्द ने उसके साथ विवाह कर उसी से नीच मारीच को पैदा किया ॥ ३९ ॥

[१]एकदा सुन्दे निहते[२] मारीचः [३]कुम्भसंभवमभिभूय तस्य शापादवाप कौणपताम् । [४]ताटकाप्यभूत्पुरुषादिनी ।

एकदेति । एकदा एकस्मिन् समये, सुन्दे सुन्दनाम्नि ताटकापतौ मारीचपितरि च निहते (अगस्त्येन) मारिते, मारीचः सुन्दपुत्रः, कुम्भसम्भवम् अगस्त्यम् ('अगस्त्यः कुम्भसंभवः' इत्यमरः) अभिभूय तिरस्कृत्य, पितृवधजनितरोषादिति भावः । तस्य अगस्त्यस्य शापात् कौणपताम्—कौणपः राक्षसः, तस्य भावः कौणपता, तां कौणपतां राक्षसत्वम्, ('राक्षसः कौणपः क्रव्यात्' इत्यमरः) अवाप प्राप्तवान् । ताटका मारीचमाताऽपि, पुरुषादिनी नरमांसभोजिनी राक्षसी अभूत् संजाता ।

एक समय (अगस्त्य के द्वारा) सुन्द के मारे जाने पर मारीच ने (पिता के वध से क्रुद्ध होकर) अगस्त्य का तिरस्कार कर उनके शाप से

---

१. 'एकदा तु सुन्दे' इति पा० । २. 'विनिहते' इति पा० ।
३. 'कुम्भसम्भवमुनिमभिभूय' इति पा० । ४, 'चाभूत्', 'अप्यासीत्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राक्षसत्व प्राप्त किया और (उसकी माता) ताटका भी (अगस्त्य के शाप से ही) नर-मांस खाने वाली राक्षसी हो गयी।

[1]सेयमब्जासनसिद्धसिन्धुरसहस्रप्राणात्मजेन[2] सह जनपदविपदं विदधाना व्यापादनीया त्वयेति।

सेयमिति । अब्जासनसिद्धसिन्धुरसहस्रप्राणा—अब्जासनो ब्रह्मा तेन, तत्प्रदत्तवरेणेत्यर्थः सिद्धाः निष्पन्नाः, सिन्धुरसहस्रस्य सहस्रसंख्यकगजानां प्राणाः बलं यस्याः सा तादृशी ('सिन्धुरः सामजः कुम्भी' इति गजपर्यायेष्वमरः) आत्मजेन पुत्रेण मारीचेन सह, जनपदविपदम् स्त्रावासदेशोपद्रवम् विदधाना कुर्वती सेयं ताटका त्वया व्यापादनीया मारणीया । इत्येवमब्रवीदिति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः ।

उस ताटका को ब्रह्मा के वरदान से हजार हाथियों का बल प्राप्त है। वह अपने पुत्र मारीच के साथ इस देश में उपद्रव करती रहती है अतः तुम उसका वध करो।

रामस्तमाकर्ण्य स्त्रीवधशङ्कामकरोत्।

राम इति । रामः तं विश्वामित्रोक्तं ताटकावृत्तान्तमाकर्ण्य श्रुत्वा स्त्रीवधशङ्काम्—स्त्रीवधे ताटकाया मारणे तस्याः स्त्रीत्वात् शङ्काम् विचिकित्सामित्यर्थः । अकरोत् कृतवान् । स्त्रीयमिति कथं मया व्यापादनीयेति रामस्य मनसि विचिकित्सा संजातेत्यर्थः ।

विश्वामित्र द्वारा कथित ताटका वृत्तान्त को सुन कर, ताटका स्त्रीजाति है, उसे मारना क्योंकर युक्त है, ऐसी शङ्का राम के मन में हुई।

किञ्च, वैरोचनीं मन्थरां वसुन्धरापराधधुरन्धरां पुरन्दरेण निहतां जनार्दनकृतमर्दनां[3] च भार्गवजननीं प्रदर्श्य दाशरथेरमन्दां सुन्दवधूवधविचिकित्सामुत्सारयामास[4]।

किंचेति । वसुन्धरापराधधुरन्धराम्--वसुन्धरायाः पृथिव्याः, अपराधे उपद्रवाचरणे धुरन्धराम् अग्रगण्याम्, वैरोचनीम्—विरोचननाम्नो राक्षसस्य

१. 'आजन्मसिद्ध इति पा० । २. प्राणा जनपदम्' इति पा० ।
३. 'कृतार्दनाम्' इति पा० । ४. 'उत्सादयामास' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुत्रीं मन्थरेति नाम्ना प्रसिद्धाम्, पुरन्दरेण इन्द्रेण निहताम् मारिताम्' जनार्दनकृतमर्दनाम्---जनार्दनेन परशुरामरूपेण विष्णुना कृतं मर्दनं शिरश्छेदो यस्यास्ताम्, भार्गवजननीम् परशुराममातरं रेणुकां प्रदर्श्य दृष्टान्ततया विज्ञाप्य दाशरथेः रामस्य अमन्दाम् महतीं सुन्दवधूवधविचिकित्साम्–सुन्दवधूः ताटका तस्याः वधे मारणे या विचिकित्सा शङ्का ताम्, उत्सारयामास निरास्यत् । पुरा किलेन्द्रो वसुधापराधधुरन्धरां विरोचनपुत्रीं मन्थरां हतवान् । परशुरामोऽपि पितुराज्ञया स्वमातू रेणुकायाः शिरश्छेदं चकार तस्मात्स्त्रीत्वेन ताटकावधविषयकं द्वैविध्यं परित्यज्य तां जहि 'न वधे आततायिनाम्' इति स्मृत्युक्तेरित्थं विश्वामित्रो रामस्य शङ्कां निरसितवानित्यभिप्रायः ।

समस्त पृथिवी पर उपद्रव करने वाली विरोचन नामक राक्षस की पुत्री मन्थरा को इन्द्र ने मारा। परशुराम ने स्वयम् अपनी माता रेणुका का शिर काटा । इस प्रकार दृष्टान्त देकर विश्वामित्र ने राम की स्त्रीवध-शङ्का को दूर कर दिया ।

आश्रुतः श्रुतवृत्तेन तेन सुन्दप्रियावधः ।
तमेवान्ववदत्तस्य चापः शिञ्जारवच्छलात् ॥ ४० ॥

आश्रुत इति । श्रुतवृत्तेन–श्रुतम् आकर्णितम्, वृत्तम् विश्वामित्रोक्तं मन्थरादिवधवृत्तान्तो येन तेन रामेण सुन्दप्रियावधः सुन्दप्रिया ताटका तस्य वधः मारणम्, आश्रुतः प्रतिज्ञातः । तस्य रामस्य चापः धनुः शिञ्जारवच्छलात् मौर्वीध्वनिव्याजात् तं ताटकावधमेव अन्ववदत् अनुसृत्योक्तवान् ('मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः) ताटकावधप्रतिज्ञासमनन्तरमेव ज्याटङ्कारं चकारेत्यर्थः । छलशब्देन शिञ्जारवस्यानुवादरूपतया तदसत्यत्वप्रतिपादनादपह्नुतिभेदः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४० ॥

विश्वामित्रोक्त मन्थरादिवध वृत्तान्त को सुनने से राम की स्त्रीवधशङ्का दूर हो गयी और उन्होंने ताटका-वध की प्रतिज्ञा की और उनके धनुष ने मौर्वी की टङ्कार से उसी अर्थ को दुहराया (अर्थात् प्रतिज्ञा के साथ ही धनुष की मौर्वी ने टङ्कार की) ॥ ४० ॥

तत्काले पिशिताशनाशपिशुना सन्ध्येव काचिन्मुने-
रध्वानं तरसा रुरोध रुधिरक्षोदारुणा दारुणा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वाधीने हनने पुरीं विदधती मृत्योः[1] स्वकृत्यात्यय-
क्रीडत्किंकरसंघसंकटमहाशृङ्गाटकां ताटका ॥ ४१ ॥

तत्काल इति। तत्काले शिञ्जारवसमये पिशिताशनाशपिशुना पिशितं मांसमश्नन्तीति पिशिताशा राक्षसास्तेषां नाशस्य पिशुना सूचिका श्रीरामेण हनिष्यमाणानां राक्षसानां स्वयं प्रथमत्वादितिभावः। संध्यापक्षे पिशिताशनानाम् राक्षसानाम् आशस्य भोजनस्य पिशुना, तस्या असुर-भोजनकालत्वेन प्रसिद्धेरिति भावः। ('कर्णेजपः सूचकः स्यात्पिशुनो दुर्जनः खलः' इत्यमरः)। रुधिरक्षोदारुणा—रुधिरक्षोदेन रुधिरपङ्केन, संध्यापक्षे रुधिरक्षोदवत् कुङ्कुमरज इव, अरुणा रक्तवर्णा। ('रुधिरं कुङ्कुमासृजोरिति विश्वः)। दारुणा भयंकरी एकत्र तथा भीषणाकारत्वादन्यत्र पिशाचादिसञ्चारादिति भावः। ('दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम्' इत्यमरः)। हनने जीवमारणे स्वाधीने स्वायत्ते सति, मृत्योः पुरीम् यमपुरीम् स्वकृत्यात्ययेत्यादिः-स्वकृत्यस्य प्राणिमारणरूप व्यापारस्य अत्ययेन विपर्ययेण ताटकयैव तद्व्यापारसम्पादनेनेतिभावः। क्रीडद्भिः किंकरसंघैः यमदूतसमुदयैः संकटं संकुलं ('संप्रोदश्च कटच्' इति कटच्:) महत् विशालं शृङ्गाटकं चतुष्पथं यस्यास्तां तादृशीम् विदधती कुर्वती ('शृङ्गाटकचतुष्पथे' इत्यमरः)। काचित्ताटका नाम राक्षसी तरसा वेगेन सन्ध्येव सायंसन्ध्येव मुनेर्विश्वामित्रस्य अध्वानम् मार्गम् रुरोध निरुध्य स्थिता। सन्ध्याऽपि सायन्तनविधिसम्पादनार्थं कस्यचिद्गच्छतो मुनेर्मार्गावरोधं करोत्येव। श्लेषमूलोपमा। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४१ ॥

धनुष के टङ्कार करते ही राक्षसों के नाश की सूचिका, रुधिरपङ्क से रक्तवर्णा भयङ्कर ताटका, राक्षसों के भोजन काल की सूचिका (पिशिताशन-आशपिशुना) कुङ्कुम रज (रुधिर क्षोद) के समान अरुण तथा (पिशाचादिसंचार से) भयङ्कर सन्ध्या की तरह वेगपूर्वक मुनि विश्वामित्र के मार्ग को अवरुद्ध कर (सामने) खड़ी हो गयी, जिसने प्राणियों के मारने का काम अपने हाथ में लेकर यमराजपुरी को ऐसा बना दिया था कि यमदूत लोग अपने कार्य से अवकाश-सा पा गये थे और वे लोग यमपुरी के चौक में केवल खेल-कूद मचाया करते थे ॥ ४१ ॥

---

१. 'स्वकृत्यात्ययात' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ[1] दाशरथेः कर्णमविशत्ताटकागुणः ।
तथा[2] धनुर्गुणस्तूर्णं[3] प्राविशत्तज्जिघांसया ॥ ४२ ॥

अथेति । अथानन्तरम्, ताटकागुणः ताटकायाः ताटकासम्बन्धी गुणः स्वभावः क्रौर्यादिरित्यर्थः ; दाशरथेः रामस्य कर्णम् श्रोत्रम् ('कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रम्' इत्यमरः) अविशत् प्रविष्टः, रामो विश्वामित्रात्ताटकायाः स्वभावं श्रुतवानित्यर्थः । तथा तत्कालमेव तज्जिघांसया—तस्यास्ताटकायाः जिघांसया हन्तुमिच्छया, धनुर्गुणः—धनुषश्चापस्य गुणः मौर्वी, तूर्णम् शीघ्रम् दाशरथेः कर्णं प्राविशत् रामो विश्वामित्रात्ताटकाया गुणं शृण्वन्नेव तां हन्तुं मौर्वीमाकर्णमाचकर्षेत्यर्थः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४२ ॥

(विश्वामित्र द्वारा कहे गये) ताटका के गुण (क्रूरतादि) राम के कानों तक पहुँचे ही थे कि धनुष की मौर्वी (भी) ताटका को मारने की इच्छा से उनके कान तक पहुँच गयी ॥ ४२ ॥

ततो भाविनि संग्रामे बद्धश्रद्धस्य ताटका ।
स्वप्राणान्[4] रामबाणस्य [5]वीरपाणमकल्पयत् ॥ ४३ ॥

तत इति । ततस्तदनन्तरं ताटका भाविनि संग्रामे राक्षसैः सह अग्रे भविष्यति युद्धे बद्धश्रद्धस्य बद्धा कृता श्रद्धा आदरो येन तादृशस्य सनद्धस्येत्यर्थः । रामबाणस्य स्वप्राणान् वीरपाणम् वीराणां पानमिति वीरपाणम् ('वा भावकरणयोः' इति णत्वम्) युद्धावसरे स्वोत्साहवृद्धये वीरैः क्रियमाणं मद्यपानम् अकल्पयत् कृतवती । राक्षसैः सह भावियुद्धोपक्रमे रामबाणस्ताटकाः प्राणान् वीरपाणमिवापिबत् । ताटकां हत्वा रामः प्रवृद्धोत्साहोऽभवदिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर भावी संग्राम के लिए तैयार राम के बाण के लिए ताटका ने अपने प्राणों को वीरपान के रूप में समर्पित कर दिया (अर्थात् उत्साह वर्धनार्थ वीर लोग युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व जैसे मद्य पान करते हैं उसी

१. 'यथा' इति पा० ।
२. 'यथा' इति पा० ।
३. 'तूर्णमविशत्' इति पा० ।
४. 'स्वप्राणै.' इति पा० ।
५, 'वीरपानम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकार राम के बाण ने ताटका के प्राणों को पी लिया जिससे उसका उत्साह बढ़ गया) ॥ ४३ ॥

[1]मुनिर्भृशाश्वोपज्ञानि ताटकामाथिने ददौ।
अस्त्राणि जृम्मकादीनि जम्भशासनशासनात् ॥ ४४ ॥

मुनिरिति। मुनिर्विश्वामित्रः जम्भशासनशासनात् जम्भशासनः इन्द्रः तस्य शासनात् निदेशात्, भृशाश्वोपज्ञानि भृशाश्वो नाम कश्चिदृषिस्तस्यौपज्ञा इति तथोक्तानि भृशाश्वेन आदौ ज्ञातानीत्यर्थः जृम्भकादीनि अस्त्राणि ताटकामाथिने–ताटकां मथ्नातीति ताटकामाथी ताटकाहन्ता श्रीरामस्तस्मै, ददौ अदात्, उपदिदेशेत्यर्थः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४४ ॥

मुनि विश्वामित्र ने इन्द्र की आज्ञा से, भृशाश्व द्वारा सर्वप्रथम ज्ञात जृम्भकादि अस्त्र राम को दिये अर्थात् (जृम्भकादि अस्त्रों का राम को उपदेश दिया) ॥ ४४ ॥

तत्र कञ्चन विरञ्चिलोकप्रत्यादेशं [2]प्रदेशं प्रदर्शयन्नवोचत।

तत्रेति। तत्र वने विरञ्चिलोकप्रत्यादेशम्—विरञ्चिलोकस्य ब्रह्मलोकस्य प्रत्यादेशःतिरस्कर्ता, ब्रह्मलोकातिशायीत्यर्थः। तादृशं कंचन कमपि प्रदेशं स्थानविशेषं प्रदर्शयन् अङ्गुल्या दर्शयन् अवोचत् उक्तवान् मुनिरिति शेषः।

वहाँ ब्रह्मलोक को भी मात करने वाले एक प्रदेश को दिखाते हुए मुनि ने (राम से) कहा—

प्रतिदिनमवदातैर्ब्रह्मनिष्ठैः
प्रशमितभवखेदैः सादरं [3]सेव्यमाने।
बलिनियमनहेतोर्वामनः काननेऽस्मिन्
बलिनियमपरः सन् ब्रह्मचारी चचार ॥ ४५ ॥

प्रतिदिनमिति। अवदातैः पवित्रान्तःकरणैः, ब्रह्मनिष्ठैः ब्रह्मपरायणैः प्रशमितभवखेदैः—प्रशमिता- शमं प्रापिताः भवखेदाः सांसारिकक्लेशाः येषां तैः, सांसारिकक्लेशविनिमुक्तैरित्यर्थः। ब्रह्मभिः ब्रह्मर्षिभिः प्रतिदिनं निरन्तरं

---

१. 'कृशश्वो' इति पा०।
२. 'प्रदेशमेकं प्रदर्श्यावोचदुपचीयमान-परमहर्षोमहर्षिः' इति पा०।
३. 'सेव्यमानः।' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सादरं सेव्यमाने अधिष्ठीयमाने अस्मिन् पुरो दृश्यमाने कानने वने ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतपालनतत्परः, वामनः वामनरूपेणावतीर्णो भगवान् विष्णुः, बलि-नियमनहेतोः बलिः तन्नामा विरोचनपुत्रो दैत्यः, तस्य नियमनहेतोः बन्धनार्थम्, बलिनियमपरः—बलयः इष्टदेवतोपहाराः, नियमाः शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानात्मकाः, तत्र परः आसक्तः सन् चचार अवात्सीदित्यर्थः । ('बलिः पूजोपहारे च करे दैत्यान्तरेऽपि च' इति नानार्थरत्नमाला) । मालिनी वृत्तम्—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात् ।। ४५ ।।

निर्मल अन्तःकरण वाले, सांसारिक दुःखों से विनिर्मुक्त तथा ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मर्षियों द्वारा निरन्तर सादर अधिष्ठित इस पवित्र वन में बलि नामक दैत्य को निगृहीत करने के लिए ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए भगवान् वामन ने बलि (इष्टदेवतोपहार) और शौचादि नियमों में आसक्त रहते हुए निवास किया था ।। ४५ ।।

अपहृतविबुधार्तेर्वामनस्याजमूर्ते-
रखिलभुवनभिक्षोराश्रमानोकहानाम् ।
ततिरियमतिनीला व्याप्तदिग्व्योमसीमा
स्वयमपि परिमातुं लोकमभ्युद्यतेव ।। ४६ ।।

अपहृतेति । अपहृता विनाशिता विबुधानामिन्द्रादिदेवानामार्तिः पीडा येन तस्य । ('आर्तिः पीडाधनुष्कोट्योः' इत्यमरः) । अजमूर्तेः विष्णोरंशभूतस्य, अखिलभुवनभिक्षोः--पादत्रयपरिमितभूयाञ्चापदेशेन त्रिभुवनयाचकस्य, वामनस्य आश्रमानोकहानाम्--आश्रमे तपोवने ये अनोकहाः वृक्षास्तेषाम्, ('अनोकहः कुटः सालः' इति वृक्षपर्यायेष्वमरः) । अतिनीला समधिकश्यामला व्याप्तदिग्व्योमसीमा—व्याप्ता आक्रान्ता दिशां व्योम्नश्च सीमाः यया सा, ततिः श्रेणि', स्वयमपि लोकम् संसारं परिमातुं परिक्षेत्तुम् अभ्युद्यता तत्परेव । पश्येति शेषः । त्रिभुवनपरिमातुर्वामनस्य साहचर्यवशात्तदाश्रमवृक्षश्रेणिरपि तथा कर्तुमभ्युद्यतेव प्रतीयत इत्यर्थः । उत्प्रेक्षालङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ।।४६।।

देवताओं के कष्ट को मिटाने वाले, त्रिभुवन-भिक्षुक, विष्णु के अंशभूत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वामन के तपोवन वृक्षों की अत्यन्त श्यामल तथा समस्त दिशाओं और आकाश तक पहुँची हुई श्रेणी स्वयं भी मानों (भगवान् वामन के साहचर्य से उन्हीं का अनुकरण करती हुई) संसार को नापने के लिए उद्यत हो रही है ॥ ४६ ॥

इति विविधरसाभिः कौशिकव्याहृताभिः
श्रुतिपथमधुराभिः पावनीभिः कथाभिः ।
गलितगहनकृच्छ्रं गच्छतोर्दाशरथ्योः
समकुचदिव सद्यस्तादृशं मार्गदैर्घ्यम् ॥ ४७ ॥

इतीति । इत्यनेन प्रकारेण विविधरसाभिः विविधा नानाप्रकाराः रसाः आस्वादः यासां ताभिः नानारसपूर्णा इत्यर्थः । श्रुतिपथमधुराभिः--श्रुतीनां पन्थाः इति श्रुतिपथं तस्य मधुराभिः श्रवणानन्ददायिनीभिः, पावनीभिः पवित्रकरीभिः कौशिकव्याहृताभिः--कौशिकेन विश्वामित्रेण व्याहृताभिः उक्ताभिः, कथाभिः उपाख्यानात्मकवार्ताभिः हेतुभिः गलितगहनकृच्छ्रम्--गलितमपगतं गहनस्य कृच्छ्रम् वनसञ्चारजनितकष्टं यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, ('स्यात्कष्टं कृच्छ्रमाभीलम्' इत्यमरः') गच्छतोः दाशरथ्योः रामलक्ष्मणयोः तादृशं तथाविधम्, अत्यधिकमित्यर्थः मार्गदैर्घ्यम् मार्गस्य दैर्घ्यम् विस्तारः सद्यः तत्क्षणमेव, समकुचदिव क्षीणतामगमदिव । दीर्घं विविधकष्टप्रदं च वनमार्गं रामलक्ष्मणौ विश्वामित्रोक्ता नानारसपूर्णाः कथाः शृण्वन्तावनायासेन तीर्णवन्तौ, मन्ये तन्मार्गदैर्घ्यं विश्वामित्रोक्तविविधरसात्मककथाभिः सङ्कोचमिवागमदिति भावः । उत्प्रेक्षालङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार विविध रसपूर्ण कर्ण-मधुर, विश्वामित्र द्वारा कही जाती हुई पवित्र कथाओं से वन-संचार-जनित कष्ट का अनुभव न कर राम लक्ष्मण चलते रहे । मानों उन सरस एवं पवित्र कथाओं ने मार्ग के विस्तार को सङ्कुचित कर दिया ॥४७॥

ततः सिद्धाश्रमं प्रविश्य विश्वामित्रः सत्रमारभत ।

ततस्तदनन्तरं विश्वामित्रः सिद्धाश्रमं तन्नाम तपोवनस्यैकं प्रदेशं प्रविश्य सत्रं यज्ञमारभत. क्रतुदीक्षितोऽभूदित्यर्थः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके बाद विश्वामित्र ने सिद्धाश्रम में प्रवेश कर यज्ञ आरम्भ कर दिया।

तदनन्तरमन्तरिक्षान्तरालादापन्तमन्तकानीकभयानकं[1] तं पलाशगणमवलोक्य पलायमानाः [2]करगलितसमित्कुशाः कुशिकनन्दनान्तेवासिनः ससम्भ्रममभिलषिताहवाय राघवाय न्यवेदयन्।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरम् यज्ञप्रारम्भानन्तरम् अन्तरिक्षान्तरालात् नभोमध्यदेशात् आपतन्तं सम्मुखमायान्तम् अन्तकानीकभयानकम् अन्तकानीकमिव यमसैन्यमिव भयङ्करम् तं विख्यातं पलाशगणम् पलाशानां सुबाहुमारीचादिराक्षसानां गणं समूहम् अवलोक्य दृष्ट्वा पलायमानाः विद्रवन्तः करगलितसमित्कुशाः—करेभ्यो गलिताः स्रस्ताः समिधः यज्ञकाष्ठानि कुशाः दर्भाश्च येषां तादृशाः, कुशिकनन्दान्तेवासिनः—कुशिकनन्दनस्य विश्वामित्रस्य अन्तेवासिनः शिष्याः, अभिलषिताहवाय—अभिलषितः अभीष्टः आहवः युद्धं यस्य तस्मै राघवाय श्रीरामाय ससंभ्रमम् सोद्वेगं न्यवेदयन् वक्ष्यमाणप्रकारेण व्यज्ञापयन्।

तदनन्तर आकाश के मध्य से आते हुए, यमराज के सैन्य के समान भयंकर उस राक्षस समूह को देख कर विश्वामित्र के शिष्य भाग खड़े हुए। उनके हाथों से समिधाएँ और कुश गिर गये और युद्धाभिलाषी श्रीराम से उन लोगों ने आकर घबड़ाहट के साथ (इस प्रकार) निवेदन किया।

हृत्वाद्रेः शिखराणि तानि परितः क्षिप्त्वा हसित्वा क्रुधा
कृत्वा हस्तविघट्टनं तत इतः स्थित्वा नटित्वा मुहुः।
सिक्त्वा क्ष्मामसृजा स्रजान्त्रकृतया बद्ध्वा कचान्खेचरान्
दग्ध्वाग्नेः सदृशा दृशा निशिचरा रुन्धन्ति रन्ध्रं दिवः॥४८॥

हृत्वेति। अद्रेः पर्वतस्य शिखराणि हृत्वा आनीय, तानि शिखराणि परितः समन्तात् क्षिप्त्वा विकीर्य, हसित्वा उच्चैर्हासं कृत्वा क्रुधा क्रोधेन हस्तविघटनं करास्फालनं कृत्वा इतस्ततः स्थित्वा, मुहुः भूयोभूयः नटित्वा

१. 'भयानकं पलाश' इति पा०।
२. 'करतलगलितपलाशसमित्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नृत्यं कृत्वा, असृजा रुधिरेण क्ष्माम् पृथिवीम् सिक्त्वा, अन्त्रकृतया अन्त्रनिर्मितया स्रजा मालया कचान् केशान् बद्ध्वा संयम्य अग्नेः सदृशा तुल्यया दृशा दृष्ट्या खेचरान् आकाशचारिणश्चारणादीन् दग्ध्वा निशिचराः राक्षसाः दिवः आकाशस्य रन्ध्रमन्तरालं आच्छादयन्ति। एवं न्यवेदयन्निति पूर्वेणान्वयः। शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४८ ॥

पर्वत शिखरों को लाकर चारों ओर डाल कर, अट्टहास कर, क्रोध से हाथ पर हाथ पटक कर, इधर-उधर खड़े होकर, बार-बार नाच कर, रुधिर से पृथिवी को सिक्त कर, आँत की माला से केशों को बाँध कर अग्नि की तरह दहकती दृष्टि से नभोचारियों (चारणादि) को दग्ध कर (ये) राक्षस आकाश को आच्छादित कर रहे हैं ॥ ४८ ॥

तत्र,

संक्रान्तवर्णान्तरगाधिसूनोः सम्पर्कपुण्यादिव [1]रामभद्रः।
क्षात्त्रक्रमात्पिप्पलदण्डयोग्यः पलाशदण्डादृतपाणिरासीत् ॥ ४९ ॥

तत्रेति। संक्रान्तेति। तत्र तस्मिन् समये, यदा विश्वामित्रशिष्यैरुक्तप्रकारेण रामभद्र उक्तस्तदेत्यर्थः। क्षात्रक्रमात् क्षत्रियोचिताचारात् पिप्पलदण्डयोग्यः अश्वत्थदण्डधारणार्हः, उपनयनसमये तथा विधिविहितत्वादिति भावः। रामभद्रः श्रीरामचन्द्रः संक्रान्तवर्णान्तरगाधिसूनोः संक्रान्तं प्राप्तं वर्णान्तरं क्षात्रियत्वं विहाय ब्राह्मणत्वं येन तादृशो यो गाधिसूनुः विश्वामित्रः तस्य सम्पर्कपुण्यादिव संसर्गकृतादिव पलाशदण्डादृतपाणिः—पलाशदण्डे पलाशदण्डधारणे आदृतः पाणिर्यस्य स तथोक्तः, ब्राह्मणस्य पलाशदण्डधारणविधानादिति भावः। तथा पलं मांसमश्नन्तीति पलाशाः राक्षसाः तेषां दण्डे निग्रहे आदृतकरः सज्जबाहुः आसीत्।

गृह्यकारेण क्षत्रियस्यौदुम्बरदण्डविधानेऽपि 'न्यग्रोधचलदलयोः क्षत्रियस्य' इति स्मृतिमनुसृत्य पिप्पल दण्डयोग्यत्वकथनं युक्तमेवेत्यवगन्तव्यम्।

पिपपलदण्डयोग्योपि पलाशदण्डपाणिरितिविरोधस्तत्र संक्रान्तवर्णान्तरविश्वामित्रस्य सम्पर्कपुण्यं हेतुत्वेनोत्प्रेक्षितम्। पलाशदण्डादृतपाणिरिति

---

१. 'रामचन्द्रः' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषणस्य राक्षसनिग्रहप्रवृत्तार्थकत्वात् विरोधपरिहारः इति विरोधाभासोत्प्रेक्षयोः संकरः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रणात् उपजातिर्वृत्तम् ॥ ४९ ॥

विश्वामित्र के शिष्यों के उक्त प्रकार से कहने पर राम पलाशदण्ड (राक्षसों के निग्रह) के लिए व्यग्रहस्त हो गये। क्षत्रियत्व त्याग कर ब्राह्मणत्व धारण करने वाले विश्वामित्र के सम्पर्क की महिमा से क्षत्रियोचिताचार क्रम से पिप्पलदण्ड के योग्य होने पर भी ब्राह्मणोचित पलाशदण्ड के लिए राम का व्यग्रहस्त होना उचित ही है। विश्वामित्र ने तो पूर्ण ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। उनके सम्पर्क से राम ने केवल ब्राह्मणधार्य पलाशदण्ड धारणार्थ व्यग्रहस्त होकर क्या बुरा किया? ॥ ४९ ॥

मारीचनीचमतिराहवमारचय्य
क्षिप्तः क्षणेन रघुनायकसायकेन।
मध्येपयोनिधि भयेन निमग्नमूर्ति-
र्वेषं पुपोष जलमानुषनिर्विशेषम् ॥ ५० ॥

मारीचेति—मारीचनीचमतिः मारीचनामा क्षुद्रबुद्धिः आहवम् युद्धम् ('आहवः संगरे यागे' इत्यमरः) आरचय्य कृत्वा रघुनायकसायकेन श्रीरामस्य वायव्यास्त्रेण क्षणेन क्षणमात्रेण क्षिप्तः प्रेरितः सन् मध्येपयोनिधि पयोनिधेः समुद्रस्य मध्ये भयेन दृश्यमाने सति रामबाणः पुनरप्यवपतेदिति भीत्या निमग्नमूर्तिः जलाभ्यन्तरे निलीनदेहः जलमानुषनिर्विशेषम् जलान्तर्वासिमानवतुल्यं वेषं पुपोष आकारं धारयामास। रामेण सह युध्यमानो मारीचो रामबाणेन सागरस्य मध्ये क्षिप्तस्तत्र भयेन निलीनो जलमानुष इव प्रतीयते स्मेति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५० ॥

मन्द मति मारीच राम के साथ युद्ध कर राम के बाण द्वारा सागर के बीच में फेंक दिया गया। वहाँ भी भय के कारण जल निमग्न रहा और इस प्रकार जल-मानुष से अभिन्न प्रतीत होता था ॥ ५० ॥

सुबाहुराहवोन्मत्तः कृत्तः काकुत्स्थपत्त्रिणा।
मुनीनामनभिप्रेतः प्रेत[1]नाथातिथिः कृतः ॥ ५१ ॥

---

१. 'प्रेतनाथातिथीकृतः इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुबाहुरिति—मुनीनाम् अनभिप्रेतः असंमतः शत्रुरित्यर्थः। आहवोन्मत्तः युद्धदृप्तः, सुबाहुस्तन्नामा राक्षसः काकुत्स्थपत्रिणा—काकुत्स्थस्य श्रीरामस्य पत्रिणा शरेण ('पत्रिणौ शरपक्षिणौ' इत्यमरः) कृत्तः छिन्नः सन् प्रेतनाथातिथिः प्रेतनाथस्य यमराजस्य अतिथिः कृतः यमलोकं गमितः इत्यर्थः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५१ ॥

मुनियों का द्वेषी युद्धोन्मत्त सुबाहु राम के बाण द्वारा क्षत-विक्षत करके यमराज का अतिथि बना दिया गया (अर्थात् यमलोक भेज दिया गया) ॥ ५१ ॥

वंशस्पृशा हृदयहारिफलान्वितेन
रामेरितेन [1]सहसा सहसायकेन।
[2]स्नेहार्दितेन निरगादनुरागिणीव
[3]प्राणावलिर्हृदयतः पिशिताशनानाम् ॥ ५२ ॥

वंशस्पृशेति। वंशस्पृशा–वेणुसंभवेन सत्कुलोत्पन्नेन च, हृदयहारिफलान्वितेन हृदयविदारकबाणाग्रयुतेन, मनोहरलाभसहितेन च स्नेहार्दितेन तैलादिशोधितेन प्रेमपूर्णेन च रामेरितेन रामेण ईरितेन प्रेरितेन, रामा कामिनी तया ईरितेन रत्यर्थं प्रेरितेन च, सायकेन बाणेन (नायकेनेति च गम्यते) सह, पिशिताशनानाम् राक्षसानां प्राणावलिः पञ्चप्राणश्रेणिः अनुरागवती युवतिरिव हृदयतः हृदय प्रदेशात् (पञ्चम्यास्तसिः) सहसा शीघ्रम्, निरगात् निरगमत्। यथा काचिदनुरागवती युवतिः सत्कुलप्रसूतेन, मनोहरलाभसमृद्धेन प्रेमपूर्णेन कयाचिदन्यया स्त्रिया दूतीरूपया प्रेरितेन नायकेन सह स्वगृहात् सहसा निर्गच्छति, तथैव वेणुसंभवेन हृदयविदारकाग्रभागयुतेन रामप्रेरितेन बाणेन सह राक्षसानां प्राणावलिः सहसा निर्जगामेत्यर्थः। 'वंशः पृष्ठास्थि देहोर्ध्वकाष्ठे वेणौ कुले गुणे' इति विश्वः। 'हृदयं मानसोरसोः' 'फलं बाणाग्रलाभयोः' इत्युभयत्र विश्वप्रकाशामरौ। 'स्नेहोऽस्त्री द्रवहार्दयोः' इति वैजयन्ती।

---

१. 'रघुनायकसायकेन' इति पा०। २. 'स्नेहान्वितेन' इति पा०।
३. 'प्राणावली' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्र प्राणावलिनिर्गमनसायकनिर्गमनयोः कार्यकारणयोः पौर्वापर्यस्यावश्यकत्वेऽपि सहभावोक्तेरतिशयोक्तिमूला सहोक्तिरलङ्कारः तथा 'अनुरागिणीवे'त्युपमालङ्कारः। प्रस्तुतसायकविशेषणसाम्यादप्रस्तुतनायकप्रतीतेः समासोक्तिरलङ्कारः। सा च समासोक्तिः पूर्वोक्तोऽभया श्लेषेण चोजीविता। तयोः सहोक्तिसमासोक्त्योश्च परस्परनैरपेक्ष्यात् संसृष्टिः॥ वसन्ततिलकं वृत्तम्॥५२॥

बाँस से उत्पन्न, हृदय-भेदक अग्रभाग (नुकीली धार) से युक्त तैलादि (स्नेह) से स्निग्ध, राम के द्वारा प्रेरित बाण के साथ राक्षसों की प्राणावलि हृदय-प्रदेश से उस अनुरागवती स्त्री की भाँति सहसा निकल गयी जो सद्वंशप्रसूत, आकर्षक लाभ से समृद्ध, प्रेमपूर्ण, किसी स्त्री (दूती) के द्वारा प्रेरित नायक के साथ सहसा अपने वासस्थान से निकल पड़ती है॥५२॥

अथ निशिचरमा[1]थाद्वीतवैतानविघ्नो
मुनिरवभृथकृत्यं विश्वहृद्यं समाप्य।
अमनुत जयलक्ष्म्या राममाजौ समेतं
यजनजनितमूर्त्या योक्तुमव्याजलक्ष्म्या॥ ५३॥

अथेति। निशिचरमाथात् निशिचराणां राक्षसानां माथः विनाशस्तस्मात् वीतवैतानविघ्नः—वीताः समाप्तिं गता वैतानः वितानस्य यागस्येमे इति वैतानाः यागीयाः ('तस्येदम्' इत्यण्) विघ्नाः प्रत्यूहाः यस्यः सः, मुनिः विश्वामित्रः, विश्वहृद्यम् जगत्प्रियम्, अवभृथकृत्यम् यज्ञान्तस्नानादिकर्म समाप्य कृत्वा आजौ युद्धे ('समित्याजिसमिद्युधः' इत्यमरः) जयलक्ष्म्या सहित रामम्, यजनजनितमूर्त्या-यजनात् जनकयज्ञात् जनिता मूर्तिर्यस्यास्तया, जनकयज्ञतोऽवतीर्णयेत्यर्थः, अव्याजलक्ष्म्या यथार्थतो लक्ष्मीरूपया सीतया योक्तुं विवाहपद्धत्या संघटयितुम् अमनुत अबध्यत निश्चयमकरोदित्यर्थः। मालिनी वृत्तम्॥ ५३॥

तदनन्तर राक्षसों के विनष्ट होने से यज्ञ-विघ्न के दूर हो जाने पर विश्वसम्मत यज्ञान्त स्नान समाप्त कर मुनि विश्वामित्र ने, युद्ध में जय

१. 'माताच्छान्त' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मी से युक्त होने पर भी राम को जनक के यज्ञ से अवतीर्ण सीता रूप वास्तविक लक्ष्मी से युक्त करने का निश्चय किया ॥ ५३ ॥

अथ मिथिलां प्रति प्रस्थितः [1]कौशिकः [2]काकुत्स्थमित्थमकथयत ।

अथेति अथ तादृशनिश्चयानन्तरम्, मिथिलां जनकपुरीं प्रति प्रस्थितः चलितः कौशिकः विश्वामित्रः काकुत्स्थम् श्रीरामचन्द्रम्, इत्थम् अनेन वक्ष्यमाण-प्रकारेण अकथयत् उक्तवान् ।

तदनन्तर मिथिला के लिए प्रस्थित विश्वामित्र ने राम से इस प्रकार कहा—

पुरा खलु कुशेशयासनजन्मा [3]कुशाभिधानो राजर्षिः [4]कुशाम्ब-प्रमुखैश्चतुर्भिः कौशाम्बी-महोदय-धर्मारण्य-गिरिव्रजाख्यानां पुरीणां [5]कर्तृभिः पुत्री बभूव ।

पुरेति । पुरा पूर्वकाले । खल्विति वाक्यालङ्कारे । कुशेशयासनजन्मा-कुशेशयासनात् ब्रह्मणो जन्म यस्य सः । कुशाभिधानः कुशनामा राजर्षिः कुशाम्ब-प्रमुखैः–कुशाम्बः प्रमुखः आद्यो येषां तैः, कुशाम्बादिभिश्चतुर्भिः, कौशाम्बी-महोदय--धर्मारण्य--गिरिव्रजाख्यानाम् तत्तन्नाम्ना प्रसिद्धानां पुरीणां कर्तृभिः निर्मातृभिः पुत्री पुत्रवान् (पुत्र शब्दान्मतुबर्थे 'अत इनिठनौ' इति इनिः ।) बभूव । ब्रह्मणो जातस्य कुशस्य कुशाम्बादयश्चत्वारः पुत्रा अभूवन् यैः कौशाम्बी-महोदय-धर्मारण्य-गिरिव्रजाख्याश्चतस्रः पुर्यो विरचिता इत्यर्थः ।

प्राचीन काल में ब्रह्मा से कुश नामक एक राजर्षि हुए। उनके कुशाम्बादि चार पुत्र हुए जिन्होंने कौशाम्बी, महोदय, धर्मारण्य, गिरिव्रज इन चार नगरियों को बसाया ।

कुशनाभस्तु घृताच्यां [6]कन्याशतमजनयत् ।

कुशनाभ—इति । कुशनाभः तन्नामा तेषु चतुर्षु कुशपुत्रेषु द्वितीयो पुत्रः ।

---

१. 'विश्वामित्र' इति पा० । २. 'काकुत्स्थयोः' इति पा० ।
३. 'कुशिकाभिधानो' इति पा० । ४. कुशनाभकुशाम्ब इति पा० ।
५. 'कर्तृश्चतुर्भिः' इति पा० । ६. 'कन्याशतं घृताच्याम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्वित्यवधारणार्थे । घृताच्याम्-घृताची नामाप्सरास्तस्याम् । कन्याशतम् शतसंख्याकाः कन्याः अजनयत् उत्पादयामास ।

(उन चार कुश पुत्रों में द्वितीय पुत्र) कुशनाभ ने घृताची अप्सरा में सौ कन्याओं को पैदा किया ।

कन्यास्ताः सन्नद्धयौवनाः कामयमानः पवमानः प्रत्याख्यानात्प्रत्यापन्नमन्युरासामवयवेष्वनार्जवमतनुत ।

कन्या इति । संनद्धयौवनाः संप्राप्तयौवनाः ताः कन्याः (कर्मणिद्वितीया) कामयमानः पत्नीभावेनाभिलषन् पवमानः वायुः प्रत्याख्यानात् कन्याकर्तृकात् अस्वीकारात् प्रत्यापन्नमन्युः प्रत्यापन्नः उत्पन्नः मन्युः क्रोधो यस्य स तथोक्तः जातकोपः सन् ('मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः) आसां कन्यकानाम् अवयवेषु अङ्गेषु अनार्जवम् कौटिल्यम् अतनुत अकरोत् । ता वक्रगात्राश्चकारेत्यर्थः यथोक्तं रामायणेऽपि—'तासां तद्वचनं श्रुत्वा वायुः परम कोपनः । प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः ॥' इति ॥

युवावस्था को प्राप्त होने पर उन कन्याओं को वायु ने (पत्नी बनाना) चाहा । उन कन्याओं के अस्वीकार करने से कुपित होकर वायु देव ने उनके अङ्गों को कुटिल कर दिया ।

अथ विदितवृत्तान्तेन [1]कुशनाभेन तेन क्षमामेव प्रतिक्रियां [2]मन्यमानेन चूलिसूनवे [3]सौमदेयाय राज्ञे ब्रह्मदत्ताय [4]दत्तास्ताः प्रकृतिस्था बभूवुः ।

अथेति—अथानन्तरम्, विदितवृत्तान्तेन-विदितः ज्ञातः वृत्तान्तः कन्याङ्ग कौटिल्यापादनरूपः येन तेन कुशनाभेन क्षमामेव प्रतिक्रियां मन्यमानेन क्षमैवात्र युक्ता न तु क्रोध इति मत्वा तूष्णींभूतेनेत्यर्थः चूलिसूनवे-चूलाः केशाः सन्त्यस्येति चूली तन्नामा मुनिस्तस्य सूनवे पुत्राय । चूलशब्दात् 'अत इनिठनौ' इति मतुबर्थे इनिः । सौमदेयाय-सोमदा नाम गन्धर्वकन्या, तस्या अपत्यं पुमान् सौमदेयस्तस्मै । स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढक् । चूलिना सोमदायामुत्पादि-

१. कुशनाभेन क्षमामेव' इति पा० । २. 'मन्वानेन' इति पा० ।
३. 'सौमतेयाय' इति पा० । ४. 'प्रदत्ताः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तायेत्यर्थः । राज्ञे ब्रह्मदत्ताय दत्ताः भार्यात्वेन समर्पिताः ताः कन्याः प्रकृतिस्थाः तन्महिम्ना यथापूर्वस्वरूपाः बभूवुः ।

तदनन्तर उक्त समाचार को जानकर कुशनाभ ने क्षमा को ही उपाय माना और चूली मुनि से सोमदा नामक गन्धर्वाङ्गना में उत्पन्न राजा ब्रह्मदत्त के साथ उन कन्याओं का विवाह कर दिया। ऐसा होते ही वे कन्याएँ पुनः प्रकृतिस्थ हो गयीं (अर्थात् उनके सकल अङ्ग कौटिल्य-विकार से रहित पूर्ववत् शोभन हो गये।)

पुनरपि कुशनाभस्तु [1]पुत्रीयन्पितुः [2]प्रसादादगाधसत्त्वान्गाधि-संज्ञानस्मत्तातपादानुदपादयत् ।

पुनरिति। कुशनाभस्तु पुनर्भूयोऽपि पुत्रीयन् आत्मनः पुत्रमिच्छन् क्यजन्ताल्लटः शत्रादेशः । पितुः कुशस्य प्रसादात् अनुग्रहात् अगाधसत्त्वान् अगाधम् अमितं सत्त्वं पराक्रमो येषां तान् अमितपराक्रमशालिनः, गाधिसंज्ञान् गाधिनाम्नः, अस्मत्तातपादान्, मम पितरम् (आदरार्थे बहुवचनम्) उद-पादयत् अजनयत् ।

कुशनाभ ने पुनः पुत्र की इच्छा कर अपने पिता कुश के अनुग्रह से अमित पराक्रमी गाधि नामक हमारे पिता को जन्म दिया।

इत्थं दाशरथिः कौशिकोत्पत्तिकथानिश[3]मननिरायामयामिनी-यामानुबन्धो[4]बन्धूकस्तवकसुन्दरबन्धुरेण संध्यारागेण[5]प्राचीमुखेन शोणीकृतेन शोणाभिधानं [6]दधानेन नदेन प्रवर्तितप्र[7]त्यूषकृत्यः कृतनि-यमेन मुनिना सह गङ्गामुपतिष्ठमानेन पथा प्रातिष्ठत ।

इत्थमिति। इत्थमनेन प्रकारेण दाशरथिः रामः कौशिकोत्पत्तीत्यादिः— कौशिकस्य विश्वामित्रस्य उत्पत्तिकथा आविर्भावोपाख्यानम् तस्याः निशमनेन श्रवणेन निरायामः आयामरहितः, सङ्कुचित इति यावत् यामिन्याः रात्रेः

१. पितृप्रसादात्' इति पा० । २. 'प्रसादादस्मत्तात इति पा०
३. 'निशमनेन निरायामायामिनीमनुभूय' इति पा० ।
४. 'स्तबकबन्धुरेण' इति पा० । ५. 'प्राचीमुखे शोणीकृते' इति पा० ।
६. 'दधाने नदे' इति पा० । ७. 'प्रत्यूषकृत्यः इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यामानुबन्धः प्रहराणां व्याप्तिकालः यस्य स तथोक्तः। बन्धूकस्तबकसुन्दर-बन्धुरेण-बन्धूकस्य स्तबकः गुच्छः तद्वत् सुन्दरः रक्ताभः बन्धुरः मनोज्ञश्च तेन सन्ध्यारागेण सन्ध्याकृतलौहित्येन (करणेन) अरुणोदयजातरक्तिम्नेत्यर्थः प्राचीमुखेन पूर्वदिग्भागेन (कर्त्रा) शोणीकृतेन रक्ततां नीतेन शोणाभिधानं दधानेन शोणसंज्ञां धारयता नदेन प्रवर्तितप्रत्यूषकृत्यः प्रवर्तितम् कृतम् प्रत्यूषकृत्यं प्रातःस्नानसन्ध्यावन्दनादिनित्यकर्म येन सः, कृतनियमेन कृताह्निककृत्येन मुनिना गङ्गामुपतिष्ठमानेन गङ्गागामिना पथा मार्गेण प्रातिष्ठत अचलत्। 'बन्धूकस्तवक सुन्दरबन्धुरेण' इत्यत्रोपमा। शोणीकृतेनेत्यत्र नदस्य स्वशुभ्रतां परित्यज्य प्राचीमुखरागहरणप्रतिपादनात्तद्गुणालंकारः। 'तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्योत्कृष्टगुणाहृतिः' इति लक्षणात्।

इस प्रकार कौशिक की उत्पत्ति कथा सुनते रहने से राम को रात के पहर की अवधि लम्बी नहीं प्रतीत हुई (रात बड़ी जल्दी बीत गयी।) प्रातः गुड़हल पुष्प के गुच्छ के समान सुन्दर तथा मनोज्ञ अरुणोदय जनित लाली से प्राची ने शोणनद के शुभ्र जल प्रवाह को लाल बना दिया। ऐसे शोणनद में राम ने प्रातः कृत्य करके, कृतनित्यक्रिय विश्वामित्र के साथ गङ्गा को जाने वाले मार्ग से प्रस्थान किया।

आजानपावनक्षीरां वृषानन्दविधायिनीम्।
श्रुतिप्रणयिनीं सोऽयमापगामाप गामिव॥ ५४॥

आजानेति। सोऽयं रामः आजानपावनक्षीराम् आजानः जन्म (आ + जन् + घञ्) आजानेन जन्मना स्वभावेनेत्यर्थः पावनं पवित्रं क्षीरं नीरं यस्यास्ताम्। पक्षे स्वभावतः शुद्धं क्षीरं दुग्धं यस्यास्ताम्। वृषानन्द-विधायिनीम्—वृषो धर्मः, आनन्दः सुखं च तयोः कर्त्रीम्, पक्षे रतिप्रदत्वेन वृषस्य वृषभस्यानन्दप्रदायिनीम्। ('वृषः स्याद्वासवे धर्मे सौरभेये च शुक्लजे।' इति विश्वः)। ('सुकृते वृषभे वृषः' इत्यमरश्च)। श्रुतिप्रणयिनीम् वेद-परिचितां वेदप्रतिपाद्यामित्यर्थः। 'सितासिते सरिते यत्र संगते' इत्यादि श्रुते-रिति भावः। पक्षे श्रुतिप्रणयिनीम् श्रुतिसखीम्, तत्सदृशीमित्यर्थः। 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि' इति श्रुत्या वेदवाचो धेनुत्वेन निरूपितत्वादिति भावः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गामिव धेनुमिव, आपगाम् भागीरथीं नदीम् लक्षणया तत्कूलम् आप प्राप्तवान् । श्लेषोत्थापितोपमाऽलंकारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५४ ॥

स्वभावतः पवित्र दूधवाली, (रति द्वारा) वृष (वृषभ) को आनन्द प्रदान करने वाली श्रुति सदृशी गाय के समान स्वभावतः पवित्र जल वाली, धर्म (वृष) को सुख और आनन्द प्रदान करने वाली श्रुति प्रतिपाद्य (भागीरथी) नदी को राम ने प्राप्त किया ॥ ५४ ॥

अथ भागीरथीकथां श्रोतुकामाय रामाय भगवानिदं[1] मभाषत ।

अथेति । अथानन्तरम्, भागीरथी कथाम् गङ्गावतरणवृत्तान्तम् श्रोतुकामाय श्रोतुं कामोऽभिलाषो यस्य तस्मै । 'तुं काममनसोरपि' इति तुमुनो मकार-लोपः । रामाय भगवान् विश्वामित्रः इदं वक्ष्यमाणं वचनमभाषत उक्तवान् ।

इसके बाद भागीरथी की कथा सुनने के लिए समुत्सुक राम से भगवान् विश्वामित्र ने इस प्रकार कहा—

पुरा[2] मनोरमा नाम सुमेरोरभवत्सुता ।
गृहमेधी तयैवासीच्चक्रवर्ती धराभृताम् ॥ ५५ ॥

पुरेति—पुरा पूर्वकाले मनोरमा नाम सुमेरोः सुता मेरुकन्यका अभवत् अजायत । ('मेरुः सुमेरुहेमाद्री रत्नसानुः सुरालयः' इत्यमरः) तया मनोरमयैव धराभृतां पर्वतानां चक्रवर्ती सम्राट् हिमवान् गृहमेधी-गृहैः दारैः मेधते सङ्गच्छते इति गृहमेधी ('मेधृसंगमे' इति धातोस्ताच्छील्येणिनिः' ।) गृहैः सङ्गतः गृहस्थ इत्यर्थः आसीत् । ('दारेष्वपि गृहाः स्मृता' इत्यमरः) तां मनोरमां हिमवान् पर्यणयदित्यर्थः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५५ ॥

प्राचीन काल में सुमेरु पर्वत के मनोरमा नामक कन्या हुई । पर्वत सम्राट् हिमवान् ने उसके साथ विवाह किया ॥ ५५ ॥

कन्याद्वयममुष्यासीदेका मन्दाकिनी तयोः ।
अन्या भगवती साक्षाच्चन्द्रचूडकुटुम्बिनी ॥ ५६ ॥

कन्येति । अमुष्य मनोरमाजानेर्गिरिचक्रवर्तिनो हिमवतः कन्याद्वय-मासीत् द्वे कन्ये अजायेताम् । तयोः कन्ययोर्मध्ये एका आद्या कन्या मन्दाकिनी

---

१. 'इत्थम्' इति पा०   २. 'तु मेनका नाम' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाम आसीत्। अन्या द्वितीया साक्षाद् भगवती परमेश्वरी चन्द्रचूडकुटुम्बिनी चन्द्रश्चूडायां यस्य स चन्द्रचूडः शिवस्तस्य कुटुम्बिनी भार्या। (भार्या जायाथ पुम्भूम्नि दाराः स्यात्तु कुटुम्बिनी' इत्यमरः)। अनुष्टुब्वृत्तम् ।।५६।।

(मनोरमा नें) हिमालय के दो कन्याएँ हुईं । एक मन्दाकिनी और दूसरी साक्षात् परमेश्वरी शिवभार्या ॥ ५६ ॥

तां नदीं विबुधा लब्ध्वा नाकलोकमनीनयन् ।
तपस्यन्तीं गिरिर्गौरीं देवाय महते ददौ ॥ ५७ ॥

तामिति । विबुधाः देवा, तां नदीं मन्दाकिनीं लब्ध्वा प्राप्य हिमवत इति भावः । नाकलोकम् स्वर्गलोकम् अनीनयन् प्रापयामासुः । गिरिः हिमवान् तपस्यन्तीं तपश्चरन्तीं महादेवमेव वरं लब्धुमिति भावः। गौरीं तन्नाम्नीं स्वपुत्रीम्, महते देवाय महादेवाय ददौ । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५७ ॥

(नदी रूप) मन्दाकिनी नाम की हिमालय-पुत्री को देवता लोग (हिमालय से) प्राप्त कर स्वर्ग लोक ले गये । दूसरी कन्या गौरी को, जो (महादेव को वररूप में पाने के लिए) तपस्या कर रही थी, हिमालय ने महादेव के हाथों में सौंप दिया ॥ ५७ ॥

शिवयोर्युञ्ज[1]तोर्वीर्यं [2]दृष्ट्वा धात्र्यां समर्पितम् ।
पावकः प्रतिजग्राह दैवतैरनुनाथितः[3] ॥ ५८ ॥

शिवयोरिति । शिवयोः—शिवश्च शिवा चेति शिवौ तयोः शिवयोः पार्वती-परमेश्वरयोः ('पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः)। युञ्जतोः मिथुन कर्मतत्परयोः सतोः (शिवेनैव स्वयं) धात्र्यां पृथिव्यां समर्पितम् निक्षिप्तं वीर्यं रेतो दृष्ट्वा दैवतैः देवैः अनुनाथितः प्रार्थितः पावकः अग्निः प्रतिजग्राह स्वीकृतवान्। अयं भावः–पार्वतीगर्भसमुत्पत्स्यमानमहौजःशालिपुत्रभीतैर्देवैः प्रार्थितः शिवः वीर्यं भुविनिक्षिप्तवान्। पुनश्च देवैः प्रार्थितः पावकस्तद्वीर्यं प्रतिगृहीतवानिति अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५८ ॥

---

१. 'युञ्जतः' इति पा० । २. 'धृत्वा धात्र्या' इति पा० ।
३. 'अनुमोदितः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिव और पार्वती के मैथुन परायण होने पर (स्वयं शिव द्वारा) पृथिवी पर गिराये गये वीर्य को देख कर देवों की प्रार्थना पर अग्नि ने ग्रहण कर लिया ॥ ५८ ॥

[1]अनपत्यानथामर्त्यान्बहुभार्यां च मेदिनीम् ।
अकरोदम्बिकाक्रोधः[2] पुत्रालाभसमुद्भवः ॥ ५९ ॥

अनपत्यानिति । अथानन्तरम्, पुत्रालाभसमुद्भवः–पुत्राप्राप्तिजनितः अम्बिकाक्रोधः पार्वती कोपः, अमर्त्यान् देवान् अनपत्यान् सन्ततिवर्जितान्, मेदिनीम् भुवं बहुभार्याम् बहूनां राज्ञां भार्यां चाकरोत् । देवप्रार्थनया हरेण मद्धार्यं स्ववीर्यं भुवि पातितं, भूरपि तत्र सहमताऽऽसीदिति कुपिता पार्वती भो देवाः 'अपत्यं स्वेषु दारेषु नोत्पादयतुमर्हथ' इत्युक्त्वा सुरान् शशाप तथा च 'अवनेऽनेकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यति' इत्येवं पृथिवीमपि शशापेत्यर्थः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५९ ॥

तदनन्तर (उक्त प्रकार से) पुत्र प्राप्ति में बाधा पड़ने से कुपित होकर पार्वती ने देवों को सन्तान न होने का, और पृथिवी को अनेक राजाओं की भार्या होने का शाप दे दिया ॥ ५९ ॥

अथ सेनान्यमिच्छद्भिरुक्तः सब्रह्मभिः सुरैः ।
वह्निरह्नाय जाह्नव्यां न्यषिञ्चद्वीर्यमैश्वरम् ॥ ६० ॥

अथेति । अथानन्तरम्, वह्निः अग्निः, सेनान्यम् सेनानायकमिच्छद्भिः तारकासुरसंहारार्थं कार्तिकेयं नाम सेनानायकमिच्छद्भिरित्यर्थः 'सेनानीरग्निभूर्गुहः' इत्यमरः) सब्रह्मभिः ब्रह्मादिभिः सुरैः देवैः उक्तः 'जाह्नव्यामेतद् वीर्यं क्षिप' इत्यादिष्टः सन्, ऐश्वरम्-ईश्वरस्येदमित्यैश्वरम् ('तस्येदमित्यण्) शिवसम्बन्धि, वीर्यं रेतः, जाह्नवी जह्नोरपत्यं स्त्री जाह्नवी गङ्गा ('तस्यापत्यम्' इत्यण्) तस्यां तत्पयसीत्यर्थः, अह्नाय झटिति ('स्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय द्राङ् मङ्क्षु सपदि द्रुते' इत्यमरः) न्यषिञ्चत् निक्षिप्तवान् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६० ॥

अनन्तर (तारकासुर के बध के लिए) सेनानी चाहने वाले ब्रह्मा सहित देवों के कहने से अग्नि ने महादेव के वीर्य को जाह्नवी में डाल दिया ॥ ६० ॥

---

१. 'तथा' इति पा० । २. 'कोपः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सापि सप्तार्चिषा क्षिप्तं तेजस्त[1] द्वोढुमक्षमा ।
हिमवत्प्रान्तकान्तारे श्रान्ता शरवणे जहौ ॥ ६१ ॥

सापीति। सा जाह्नव्यपि, सप्तार्चिषा अग्निना ('सप्तार्चिदमुनाःशुक्रः इत्यमरः) क्षिप्तं पातितं तदैश्वरं तेजः वीर्यं वोढुं धारयितुमक्षमा असमर्था सती, अतएव श्रान्ता खिन्ना हिमवत्प्रान्तकान्तारे हिमालयसमीपवर्तिनि वने शरवणे शरप्रचुरे वने जहौ परितत्याज । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६१ ॥

जाह्नवी ने भी अग्नि द्वारा डाले गये उस वीर्य को धारण करने में असमर्थ अतएव परिश्रान्त होकर हिमालय के समीपवर्ती अरण्य के सरकण्डे वाले वन में छोड़ दिया ॥ ६१ ॥

तत्राभूत्कृत्तिकाप्रीत्यै षोढारूढमुखाम्बुजम् ।
तारकध्वान्तविध्वंसि सद्यः षाण्मातुरं महः ॥ ६२ ॥

तत्रेति। तत्र शरवणे कृत्तिकाप्रीत्यै--स्तन्यं पाययितुं देवैः प्रेरितानां षट्संख्याकानां कृत्तिकामातृणाम् प्रीत्यै प्रसन्नतार्थं षोढारूढमुखाम्बुजम्--षोढा षड्भिः प्रकारैः ('प्रकारवचने थाल्' इति थाल्) आरूढानि प्रादुर्भूतानि मुखाम्बुजानि मुखकमलानि तस्य तादृशम्, षाण्मातुरम् षण्णां मातृणामपत्यं षाण्मातुरम् ('षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः' इत्यमरः) सद्यस्तत्कालं तारक-ध्वान्तविध्वंसि-तारकस्तन्नामाऽसुर एव ध्वान्तं तिमिरं विध्वंसयति नाशयतीति तारकध्वान्तविध्वंसि महः कार्त्तिकेयरूपं तेजः अभूत् जातम् । तत्र शरवणे षट्संख्याकाः कृत्तिका मातरः सेनान्यं स्तन्यं पाययितुं प्रेरिताः । एकैकेन मुखेन एकैकस्याः स्तन्यपानेन सर्वासां प्रीत्यर्थमिव षण्मुखोपेतं सद्यः तारक-तिमिरविनाशकं षाण्मातुरं कार्त्तिकेयरूपं तेजः प्रादुर्भूतमित्यर्थः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६२ ॥

उस शरवण में छः कृत्तिकाओं को प्रसन्न करने के लिए छः मुखों से युक्त, तारकासुर रूप तिमिर का अन्त करने वाला षाण्मातुर कार्तिकेय रूप तेज का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ६२ ॥

---

१. 'त्सोढुमक्षमा' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रविध्यं श्रूयतां वत्स सरितस्त्रिदिवौकसाम् ।
यथोक्तं हव्यमश्नत्या देवताया इवाध्वरे ॥ ६३ ॥

त्रैविध्यमिति । वत्स वात्सल्यभाजन ! त्रिदिवौकसाम् देवानां सरितः नद्याः, मन्दाकिन्या इत्यर्थः । अध्वरे यागे हव्यम् हूयमानमाज्यादिकम् अश्नन्त्याः भक्षयन्त्या देवताया इव अग्नेरिवेत्यर्थः । यथोक्तं यथाशास्त्रप्रसिद्धं त्रैविध्यं त्रिप्रकारकत्वं (मया वक्ष्यमाणं) श्रूयताम् । यथैकापि वह्निदेवताऽऽहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निरूपेण त्रिविधा भवति, तस्यास्तत् त्रैविध्यं च शास्त्रसमर्थितमस्ति तथैव सुरसरिदपि शास्त्रसमर्थितं त्रैविध्यं भजते । तन्मया वक्ष्यमाणं त्वया श्रूयतामित्याशयः । उपमालङ्कारः । तेन देवसरितो दिव्यत्वं पावनत्वं चावेदितम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६३ ॥

हे वत्स राम, जैसे यज्ञ में हव्य ग्रहण करने वाली अग्नि के यथा शास्त्रप्रसिद्ध आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिण तीन भेद हैं उसी तरह देवगङ्गा के भी तीन भेद हैं । उन्हें तुम मुझसे सुनो ॥ ६३ ॥

पुरीमयोध्यामध्यास्त सावित्रः सगरो नृप. ।
केशिनीसुमतिभ्यां च लङ्घितप्रथमाश्रमः ॥ ६४ ॥

पुरीमिति । सावित्रः-सवितुः सूर्यस्यापत्यं पुमान् सावित्रः सूर्यकुलोत्पन्नः केशिनीसुमतिभ्याम् तदभिधानाभ्यां स्त्रीभ्याम्, लङ्घितप्रथमाश्रमः-लङ्घितोऽतिक्रान्तः प्रथमाश्रमः ब्रह्मचर्याश्रमो येन स तथोक्तः, गृहीतगार्हस्थ्यः केशिनीसुमतिभ्यां सह कृतोद्वाह इत्यर्थः । सगरो नृपः सगर इत्याख्यो राजा अयोध्यां पुरीमध्यास्त अध्यतिष्ठत् । 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इत्याधारस्य कर्मत्वम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६४ ॥

अयोध्या पुरी में सूर्यकुलोत्पन्न सगर नामक एक राजा रहते थे। उन्होंने केशिनी और सुमति नामक दो स्त्रियों के साथ विवाह कर ब्रह्मचर्याश्रम छोड़ा था ॥ ६४ ॥

स पुत्रीयन् सपत्नीकस्तपस्तेपे[1] समा शतम् ।
भृगुः प्रीतमनास्तस्मै ददौ दायादसम्पदम् ॥ ६५ ॥

---

१. हिमालये इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स पुत्रीयन्निति । स सगरः पुत्रीयन् पुत्रमात्मन इच्छन् सपत्नीकः केशिनी-सुमतिभ्यां पत्नीभ्यां सहितः, शतं समाः शतवर्षाणि ('कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे' इति 'शतं समाः' इत्यत्र द्वितीया) तपस्तेपे तपोऽकरोत् । भृगुः तन्नामा महर्षिः, प्रीतमनाः सगरकृततपसा प्रसन्नहृदयः सन् तस्मै सगराय राज्ञे दायाद-सम्पदम् सुतरूपां सम्पत्तिं पुत्रधनमित्यर्थः ददौ प्रादात् । (दायादौ सुतबान्धवौ' इत्यमरः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६५ ॥

उन सगर ने सपत्नीक पुत्र की कामना से सौ वर्षों तक तप किया । (उनके तप से) प्रसन्न होते हुए भृगु महर्षि ने उन्हें पुत्रधन प्राप्त होने का वर दिया ।। ६५ ।।

[1]अक्षमञ्जं सुतं लेभे वैदर्भी केशिनी तयोः ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणां सुमतिश्च यवीयसी ॥ ६६ ॥

असमञ्जमिति । तयोः केशिनीसुमत्योर्मध्ये वैदर्भी विदर्भस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री वैदर्भी । 'तस्यापत्यमित्यण्' । 'टिड्ढाणञ्०'—इत्यादिना ङीप् । तन्नाम्नी ज्येष्ठपत्नी असमञ्जम् असमञ्ज इत्याख्यं सुतं लेभे प्राप । यवीयसी कनिष्ठा सुमतिश्च पुत्रसहस्राणां षष्टिम्, षष्टि सहस्रसंख्याकान् पुत्रानित्यर्थः । लेभे । तयोरभीष्टस्य तथात्वादिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६६ ॥

उन दोनों में वैदर्भी केशिनी ने असमञ्ज नामक एक पुत्र तथा कनिष्ठा रानी सुमति ने साठ हजार पुत्रों को प्राप्त किया ।। ६६ ।।

असमञ्जसचारित्रमसमञ्जम[2]पोह्य सः ।
आरब्धहयमेधः सन्नमुञ्चत तुरङ्गमम् ॥ ६७ ॥

असमञ्जसेति । स सगरः असमञ्जसचारित्रम्--असमञ्जसम् अयुक्तं चारित्रं स्वभावो यस्य तम्, प्रजोपद्रवकारितया निन्दितवृत्ताम्, असमञ्जम् असमञ्जनामानं केशिनीपुत्रम्, अपोह्य परित्यज्य, प्रारब्धहयमेधः उपक्रान्ताश्वमेधयज्ञः सन् तुरंगमम् यज्ञीयाश्वम् अमुञ्चत त्यक्तवान् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६७ ॥

---

१. 'असमञ्जसुतम्' इति पा० । २. 'अपास्य' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उस राजा सगर ने असमञ्ज का दुष्ट स्वभाव का होने के कारण त्याग कर दिया और अश्वमेध यज्ञ को प्रारम्भ कर यज्ञीय अश्व छोड़ा ॥ ६७ ॥

क्रव्यादवपुषा सोऽयमहारि हरिणा हयः।
ततस्तं नष्टमन्वेष्टुं सौमतेयाः प्रतस्थिरे ॥ ६८ ॥

क्रव्यादेति। सोऽयं हयः अश्वमेधीयाश्वः, क्रव्यादवपुषा राक्षसवेषधारिणा हरिणा इन्द्रेण ('हरिर्वातार्कचन्द्रेन्द्रयमोपेन्द्रमरीचिषु' इति शाश्वतः) अहारि अपहृतः स्वपदभ्रंशभयादिति भावः। ततः अश्वमेधीयाश्वहरणज्ञानानन्तरम्, सौमतेयाः सुमतेरपत्यानि पुमांसः सुमतिगर्भजाताः षष्ठिसहस्रसंख्याकाः सगरपुत्राः नष्टमपहृतं तं यज्ञीयमश्वमन्वेष्टुं परिमार्गयितुं प्रतस्थिरे प्रस्थिताः, ('समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम्) ॥ ६८ ॥

उस यज्ञीय अश्व को इन्द्र ने राक्षस वेष धारण कर हर लिया। उस खोये अश्व को ढूँढने के लिए सुमति के पुत्रों ने प्रस्थान किया ॥ ६८ ॥

सर्वे सपर्वतामुर्वीं खनन्तः सगरात्मजाः।
चक्रु[1]र्झर्झरितध्वान्तं नागलोकं नखांशुभिः ॥ ६९ ॥

सर्व इति। सर्वे षष्ठिसहस्रसंमितास्ते सगरात्मजाः सगरपुत्राः सपर्वताम्-पर्वतसहिताम्, उर्वीम् भुवं खनन्तः अवदारयन्तः सन्तः नखांशुभिः नखकिरणैः नागलोकम् पातालम् झर्झरितध्वान्तम्--झर्झरितं विनाशितं ध्वान्तं तमो यस्य तादृशम्, चक्रुः कृतवन्तः। यज्ञीयाश्वमन्विष्यन्तः सगरपुत्रा नखैरेव पातालपर्यन्तं भुवं चखनुरित्याशयः। ('अधोभुवनपातालं बलिसद्म रसातलम्। नागलोकः' इत्यमरः) ॥ ६९ ॥

सगर के सभी पुत्रों ने पृथिवी को पाताल तक खोद डाला जिससे उनके नखों की कान्ति से पाताल का अन्धकार विनष्ट हो गया ॥ ६९ ॥

त एते तपसा दीप्ते तमः[2]स्तोमप्रमाथिनि।
कापिले ज्वलने वीरा लेभिरे शलभोपमाम् ॥ ७० ॥

त एत इति। ते एते वीराः सर्वे सगरकुमाराः तपसा व्रतनियमादिरूपया तपस्यया दीप्ते प्रज्वलिते, तमःस्तोमःप्रमाथिनि—तमःस्तोममज्ञानान्धकारं

---

१. 'जर्जरित' इति पा०। २. 'स्तोय' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकर्षेण मथ्नाति विनाशयतीति तथोक्ते। ताच्छील्ये णिनिः। कापिले कपिलसम्बन्धिनि ('तस्येदम्' इत्यण्) ज्वलने अग्नौ कोपाग्नावित्यर्थः। शलभोपमाम्--शलभसादृश्यं लेभिरे प्राप्तवन्तः। इन्द्रोऽश्वमपहृत्य कपिलमुनेराश्रमसमीपे निबद्धवान्। सगरपुत्रास्तत्राश्वं दृष्ट्वा कपिलेनैवाश्वोऽपहृत इति मत्वा तमवमानयन्तः कपिलकोपाग्नौ भस्मतां गता इत्यर्थः॥ ७०॥

सगर के सभी वीर पुत्र, तपस्या से प्रज्वलित अज्ञानान्धकार को दूर करने में समर्थ कपिल मुनि के कोपानल में शलभ के समान भस्म हो गये॥ ७०॥

असमञ्जसुतं पौत्रमंशुमन्तमथाब्रवीत्।
सप्तिं हृत्वा समाधत्तां सप्ततन्तुं भवानिति॥ ७१॥

असमञ्जेति। अथ षष्टिसहस्रपुत्रमरणानन्तरं (सगरः) असमञ्जसुतम् असमञ्जस्य पुत्रम्, अंशुमन्तम् अंशुमानित्याख्यं पौत्रम्, सप्तिम् अश्वम् ('वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः) हृत्वा आनीय भवान् सप्ततन्तुं यज्ञं ('सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः' इत्यमरः) समाधत्तां समापयत्वित्यर्थः इति अब्रवीत् उक्तवान्॥ ७१॥

इसके बाद सगर ने असमञ्ज के पुत्र तथा अपने पौत्र अंशुमान् से कहा—तुम घोड़े को लाकर अश्वमेधयज्ञ को पूर्ण करो॥ ७१॥

सोऽपि गत्वा बिलं तत्र दृष्ट्वा भस्मीकृतान्पितॄन्।
साश्रुस्तेभ्योऽञ्जलिं[1] दित्सुश्च[2]रँल्लेभे तुरङ्गमम्॥ ७२॥

सोऽपीति। सोऽपि अंशुमानपि बिलं पातालाभ्यन्तरदेशं गत्वा तत्र बिले भस्मीकृतान् कपिलक्रोधाग्निना भस्मतां नीतान् पितॄन् पितृस्थानीयान् सुमतिपुत्रान् दृष्ट्वा साश्रुः बाष्पाकुलाक्षः सन् तेभ्यः पितृभ्यः अञ्जलिम् तर्पणाञ्जलिं दित्सुः दातुमिच्छुः (जलान्वेषणाय) चरन् पर्यटन् तुरंगमम् यज्ञाश्वम् लेभे प्राप्तवान्॥ ७२॥

वे अंशुमान भी पाताल में जाकर वहाँ भस्म किये गये पितरों को देख कर रोने लगे। उन्होंने उनको जलाञ्जलि देने की इच्छा की। (जल की खोज में, घूमते हुए उन्होंने घोड़े को प्राप्त किया॥ ७२॥

---

१. 'जलम्' इति पा०। २. 'चिरात्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मातुलो गरुडस्तेषामेनं तत्रैवमब्रवीत् ।
गङ्गामिहानयायुष्मन्नेषामेषा गतिः परा ॥ ७३ ॥

मातुल इति । तेषां सुमतिपुत्राणां मातुलः (मातुर्भ्राता तु मातुलः' इत्यमरः) गरुडः तत्र पाताले एनम् अंशुमन्तम् एवम् अनेन प्रकारेण अब्रवीत् । तदुक्तमेवाह—आयुष्मन्, इह पाताले गङ्गामानय । एषा गङ्गा एषाम् भस्मीकृतानां सुमतिपुत्राणां परा गतिः सर्वोत्तमस्तरणोपायः (अस्ति) ।

कपिल के कोपानल से दग्ध उन सगर पुत्रों के मामा गरुड़ ने इन अंशुमान से इस प्रकार कहा—आयुष्मन्, तुम यहाँ गङ्गा को ले आओ । इनके तरने का यही एकमात्र सर्वोत्तम उपाय है ॥ ७३ ॥

ततस्तनयवृत्तान्तं श्रुत्वा लब्धतुरङ्गमः ।
समाप्य सगरः सत्रं पुत्रशोकाद्दिवं गतः ॥ ७४ ॥

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, (अंशुमन्मुखात्) तनयवृत्तान्तं पुत्राणां विनाशवार्तां श्रुत्वा ('वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः) लब्धतुरङ्गमः—लब्धः प्राप्तः तुरङ्गमः यज्ञाश्वः येन सः, अंशुमताऽऽनीतत्वादिति भावः । सगरः सत्रं प्रारब्धं यज्ञं समाप्य पूर्णं कृत्वा पुत्रशोकाद् षष्टिसहस्रपुत्रमरणजनितशोकाद्धेतोः दिवं गतः मृत इत्यर्थः ॥ ७४ ॥

तदनन्तर (अंशुमान् के मुख से पुत्रों का मरण समाचार सुनकर तथा (अंशुमान् के द्वारा लाये गये) यज्ञाश्व को पाकर (लब्ध) यज्ञ को पूर्ण कर राजा सगर पुत्र-शोक से मर गये ॥ ७४ ॥

अथांशुमानयं राज्यं चिराय परिपालयन् ।
दिलीपे न्यस्तभूभारस्तपस्तेपे हिमालये ॥ ७५ ॥

अथेति । अथानन्तरम् अयम् सगरपौत्रः अंशुमान् राज्यं राज्ञःकर्म, 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्योयक्' इति सूत्रेण पुरोहितादित्वाद्यक् । चिराय चिरकालं परिपालयन् कुर्वन् दिलीपे दिलीपनाम्नि पुत्रे न्यस्तभूभारः—न्यस्तः निक्षिप्तः भुवः भारः भूपालनकार्यं येन स तथोक्तः, हिमालये तन्नाम्ना प्रसिद्धे पर्वते (गङ्गाया भूलोके अवतारणाय) तपस्तेपे तपश्चरितुमारब्धवानित्यर्थः ॥ ७५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सगर के मरणोपरान्त इस अंशुमान् ने बहुत दिनों तक राज्य करके अपने पुत्र दिलीप पर राज्य का भार डालकर (गङ्गा को भूलोक में लाने के लिए) हिमालय पर तप करना आरम्भ किया ॥ ७५ ॥

दिलीपेऽपि दिवं याते श्रुत्वा वृत्तं भगीरथः ।
[1]अमर्त्यसरितं कर्तुं मेने मर्त्यतरङ्गिणीम् ॥ ७६ ॥

दिलीप इति । दिलीपे अंशुमतः पुत्रेऽपि दिवं याते स्वर्गं गते वृत्तं कपिलकोपाग्निना स्वपूर्वजानां दहनं तदुद्धारायांशुमन्तं प्रति गरुडोपदिष्टं गङ्गानयनं च वृत्तान्तं श्रुत्वा वृद्धजनमुखाज्ज्ञात्वेत्यर्थः, भगीरथः दिलीपपुत्रः अमर्त्यसरितम् देवनदीं गङ्गाम् मर्त्यतरङ्गिणीम् मानवनदीं कुर्तुं मेने निश्चयमकरोत् । स्वपूर्वजानामुद्धारार्थं गङ्गां भुवमानेतुं समुद्यतो बभूवेत्यर्थः ॥ ७६ ॥

दिलीप के भी दिवंगत हो जाने पर उनके पुत्र भगीरथ ने (बड़े बूढ़ों से) सारा वृत्तान्त जान कर (अपने पूर्वजों के उद्धारार्थ) सुरनदी गङ्गा को भूलोक में लाने का निश्चय किया ॥ ७६ ॥

ततो गोकर्णमासाद्य तपस्यति भगीरथे ।
देवो देवापगां वोढुमन्वमंस्त दयानिधिः ॥ ७७ ॥

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, भगीरथे गोकर्णाख्यं सिद्धक्षेत्रम् आसाद्य प्राप्य तपस्यति दयानिधिः दयायाः परविपद्विनाशेच्छायाः निधिः समुद्रः परमदयालुः देवः शिवः देवापगां गङ्गां वोढुम् शिरसा धारयितुम् अन्वमंस्त अङ्गीकृतवान् ॥ ७७ ॥

इसके बाद गोकर्ण नामक प्रसिद्ध सिद्ध क्षेत्र में आकर तपस्या करते हुए भगीरथ पर परम कृपालु शिव जी ने प्रसन्न होकर (आकाश से पृथिवी पर गिरती हुई) गङ्गा को सिर पर धारण करने की स्वीकृति दे दी ॥ ७७ ॥

अथवीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा ।
शशाङ्कशङ्खसंभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा ॥ ७८ ॥

---

१. अस्मात्पूर्वं 'पितॄन्विधातुं सुगतीन्विदधे मतिमान् मतिम्' इति अधिकः क्वचिद् दृश्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथेति। अथानन्तरम्, वीचीचयच्छन्नेत्यादिः—वीचीचयैः तरङ्गपरम्पराभिः छन्नं व्याप्तं दिगन्तः गगनान्तरं नभोमध्यञ्च यस्याः सा तथोक्ता, शशाङ्के-त्यादिः–शशाङ्कश्चन्द्र एव शङ्खः तेन संभिन्नानि संगतानि ताराः नक्षत्राण्येव मौक्तिकानि मुक्तामणयस्तैर्दन्तुरा निम्नोन्नता। स्वर्गादापतन्त्या गङ्गाया तरङ्ग-मालया दिगन्तो नभोमध्यञ्च व्याप्तमभवत्, तदानीं चन्द्ररूपशङ्खेन सङ्गतैस्ता-रारूपमुक्तामणिभिर्गङ्गाऽपि व्याप्ताऽजायतेत्याशयः ॥ ७८ ॥

तदनन्तर तरङ्गों से दिगन्त तथा आकाश के अन्तराल को व्याप्त करती हुई और स्वयं भी चन्द्र रूप शङ्ख से मिलित नक्षत्र रूप मुक्तामणियों से व्याप्त सी होती हुई (गङ्गा भूलोक की ओर चली) ॥ ७८ ॥

तरङ्गाकृष्टमार्तण्डतुरङ्गायासितारुणा।
फेनच्छन्नस्वमातङ्गमार्गणव्यग्रवासवा ॥ ७९ ॥

तरङ्गेति । तरङ्गेत्यादिः—तरङ्गैः आकृष्टाः स्वमार्गादपसार्यान्यत्र प्रवर्तिताः ये मार्तण्डतुरंगाः सूर्याश्वास्तैः आयासितः पुनः स्वमार्गप्रवर्तनेन परिश्रान्तः कृतः अरुणः सूर्यसूतो यया सा। ('सूर्यसूतोऽरुणोऽनूरुः' इत्यमरः)। फेनच्छन्नेत्यादिः—फेनैः छन्नः आच्छादितः स्वमातङ्गः ऐरावतः तस्य मार्गणेऽ-न्वेषणे व्यग्रः उद्विग्नः वासवः इन्द्रः यया सा। फेनैः सर्वेषां जन्तूनां धवलीकृ-तत्वादैरावतस्य धवलत्वेन विविच्य ग्रहणेऽशक्ततयेन्द्रो व्यग्रतां प्रापित इति भावः। अत्र प्रस्तुतस्यैरावतस्याप्रस्तुतैरन्यैर्जन्तुभिः श्वैत्यगुणयोगादैक्यात्म्यं भेदानध्यवसादेकरूपत्वं निबद्धं तत्समानगुणयोगात् सामान्यालङ्कारः, 'सामान्यं प्रकृतस्यान्यतादात्म्यं सदृशैर्गुणैः' इति तल्लक्षणात् ॥ ७९ ॥

गङ्गा ने अपनी तरंगों से सूर्य के घोड़ों को मार्ग से दूर हटा कर सूर्य के सारथि को परिश्रान्त कर दिया और फेनों से आच्छादित कर सकल वस्तुओं को श्वेत बना दिया जिससे इन्द्र ने अपने गज ऐरावत को पहिचान कर ढूँढ लेने में कठिनाई का अनुभव किया ॥ ७९ ॥

आविः[1]शाखाशिखोन्नेयनन्दनद्रुमकर्षणा।
एकोदकनभोमार्गदिङ्मूढदिवसेश्वरा ॥ ८० ॥

---

१. 'शाखि' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आविरिति। आविःशाखेत्यादिः—आविः प्रत्यक्षाः याः शाखाशिखाः शाखाग्रभागास्ताभिरुन्नेयमनुमेयं नन्दनद्रुमाणां पारिजातादिनन्दनोद्यानतरूणां कर्षणं प्रवाहणं यस्याः सा। गङ्गाप्रवाहे पारिजातादयो नन्दनवृक्षा अवहन्। जलनिमग्नानां तेषां शाखाशिखा एवोपरिदृश्यमाना गङ्गाप्रवाहेण तत्तरूणां वाह्यमानत्वमभिव्यञ्जयन्तीति भावः। एकोदकेत्यादिः—एकोदकं केवलजलाप्लुतं यन्नभः व्योम तस्मिन्मार्गे दिङ्मूढः दिशाज्ञानहीनः दिवसेश्वरः सूर्यः यया सा। सम्पूर्णस्य नभसो जलमयत्वात्सूर्यः स्वमार्गनिर्धारणे व्यामोहं गत इति भावः॥ ८०॥

गङ्गा की धारा में पारिजातादि नन्दन वृक्ष वह रहे थे, उनकी शाखा के अग्रभाग जो पानी के ऊपर दिखायी दे रहे थे वे बता रहे थे कि धारा के भीतर निमग्न वृक्ष वह रहे हैं। व्योम में जल ही जल हो जाने से सूर्य को दिङ्मोह हो गया था वे अपना मार्ग निर्धारित नहीं कर पा रहे थे॥८०॥

आवर्तगर्तसम्भ्रान्तविमानप्लवविप्लवा।
नीलजीमूतशैवालकृतरेखा[1]हरित्तटा ॥ ८१॥

आवर्तेति। आवर्ताः अम्भसां भ्रमाः त एव गर्ताः विवराणि तेषु संभ्रान्ताः परिभ्रममाणा ये विमाना व्योमयानानि तेषां प्लवः मज्जनम् विप्लव उन्मज्जनं च यस्याः सा तथोक्ता। गङ्गाया गर्ताकारावर्तेषु विमाना मज्जन्ति उन्मज्जन्ति चेत्यर्थः। नीलजीमूतेत्यादिः—नीलजीमूताः श्याममेघाः एव शैवालानि तैः कृतरेखाः विरचिततटावबोधकसीमाचिह्नाः हरितः दिश एव तटाः कूलानि यस्याः सा तथोक्ता। दिश एव गङ्गायाः तटाः सन्ति, यत्र श्यामलमेघरूपतटपरिसरचारिशैवालानि तटावबोधकसीमारेखा इव विरचयन्ति। रूपकालङ्कारः॥ ८१॥

गङ्गा की भँवर के गर्त्त में पड़े हुए अतएव चक्कर खाते हुए विमान डूब-उतरा रहे थे। तथा दिशाएँ ही गङ्गा की धारा के दोनों तट थीं जहाँ श्याम मेघ रूप शैवालों की पंक्ति तट की सीमा रेखा-सी बना रही थी॥८१॥

अवलेपभराक्रान्ता सुरलोकतरङ्गिणी।
पपात पार्वतीकान्तजटाकान्तारगह्वरे[2] ॥ ८२॥

---

१. 'लेखा' इति पा०। २. 'मण्डल' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवलेपेति । अवलेपभराक्रान्ता—अवलेपः गर्वः 'को वा मदीयं वेगं सोढुंसमर्थं' इतिरूपः, तस्य भरेण भारेण आक्रान्ता, सातिशयगर्वभरितेत्यर्थः । सुरलोकतरङ्गिणी देवसरिन्मन्दाकिनी पार्वतीकान्तजटाकान्तारगह्वरे-पार्वतीकान्तस्य हरस्य जटा एव कान्तारः वनं तस्य गह्वरे महाकुहरे मध्यदेश इत्यर्थः, पपात अवततार इत्यर्थः । भाराक्रान्तस्य कुत्रचिद् विषमस्थले पतनं भवत्येवेति भावः ॥ ८२ ॥

हमारे वेग को कौन सँभाल सकेगा इस गर्व के भार से लदी हुई सुरसरित् गङ्गा जी शिव जी के जटा रूप कानन-कुहर में गिरीं ॥ ८२ ॥

अलब्धनिर्गमा शम्भोः कपर्दादमरापगा ।
दधौ दूर्वाशिखालग्नतुषारकणिकोपमाम् ॥ ८३ ॥

अलब्धेति । अमरापगा देवनदी शम्भोः शिवस्य कपर्दात् जटाजूटात् ('कपर्दोऽस्य जटाजूटः' इत्यमरः) । अलब्धनिर्गमा-न लब्धः प्राप्तः निर्गमः बहिर्गमनं यया सा तथोक्ता, बहिर्गन्तुमसमर्था सतीत्यर्थः, तद्गर्वचूर्णयितुं शम्भुना तथाकृतत्वादितिभावः । (हरजटाजूटस्य विशालतया) दूर्वाशिखालग्नेत्यादिः—दूर्वायाः शिखायामग्रभागे लग्ना संसक्ता तुषारकणिका हिमबिन्दुस्तस्या उपमाम् सादृश्यं दधौ धृतवती । ('तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः) एतेन हरजटाजूटस्य विशालत्वं तदपेक्षया गङ्गायाः समधिकाल्पत्वं च ध्वनितम् । उपमालंकारः ॥ ८३ ॥

शिव के जटाजूट से बाहर निकलने में असमर्थ गङ्गा जी उसके एक देश में स्थित ऐसी लगती थीं जैसे दूब के अग्रभाग पर स्थित ओस की बूँद ॥ ८३ ॥

अदृष्ट्वा तां नदीं तत्र तुष्टाव परमेश्वरम् ।
भगीरथो विधेः क्रौर्यात्परिक्षीणमनोरथः ॥ ८४ ॥

अदृष्ट्वेति । तत्र हरजटाजूटे तां नदीं सुरसरितम् अदृष्ट्वा तस्यास्तदेकदेशे निलीनत्वान्नावलोक्य विधेः दैवस्य क्रौर्यात् प्रातिकूल्यादित्यर्थः, परिक्षीणमनोरथः—परिक्षीणः प्रणष्टः मनोरथः गङ्गाऽऽनयनरूपो यस्य स तादृशः सन् परमेश्वरं शिवं तुष्टाव गङ्गायाः बहिर्निर्गमनार्थं स्तुतवान् ॥ ८४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भगीरथ ने जब महादेव की जटा में (विलीन) गङ्गा को नहीं देखा तो भाग्य की प्रतिकूलता से अपने मनोरथ की असफलता पर दुःखी होते हुए (जटाजूट से गङ्गा के निर्गमनार्थ) शिव जी की स्तुति की ॥ ८४ ॥

गङ्गा सप्ताकृतिर्जाता न्यपतद्धर[1]मूर्धनि ।
तेन स्तुत्या प्रसन्नेन क्षिप्ता बिन्दुसरस्यपि ॥ ८५ ॥

गङ्गेति। गङ्गा सप्ताकृतिर्जाता-एकधाराभावेन पतिष्यन्त्या मम वेगं हिमवान्न सहेत इति मत्वा स्वां धारां सप्तभिर्विभागैर्विभज्य सप्तस्रोतस्वती जातेत्यर्थः। धरमूर्धनि-धरतीति धरः पर्वतः हिमालय इत्यर्थः (पचाद्यच्) अस्य मूर्धनि शिखरे ('अहार्यधरपर्वताः' इत्यमरः)। न्यपतत् पपात। स्तुत्या भगीरथकृतस्तोत्रेण प्रसन्नेन तेन हरेण सा गङ्गा बिन्दुसरसि बिन्दुसरो नामके कासारविशेषेऽपि (भागीरथ सौकर्याय) क्षिप्ता ॥ ८५ ॥

गङ्गा सात धाराओं में विभक्त हो कर हिमालय के शिखर पर गिरीं। भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर शिव ने (भगीरथ की सुविधा के लिए) गङ्गा को बिन्दु सरोवर में भी डाल दिया ॥ ८५ ॥

तासु प्राचीं गतास्तिस्रस्तिस्रः प्राचेतसीं दिशम् ।
अन्या पितृक्रियो[2]द्युक्तभगीरथपथानुगा ॥ ८६ ॥

तास्विति। तासु गङ्गायाः सप्तसु धारासु तिस्रः धाराः प्राचीं पूर्वदिशम्, तिस्रः धाराः प्राचेतसीं वारुणीं पश्चिमदिशमित्यर्थः, गताः। अन्या अवशिष्टा एका धारा पितृक्रियोद्युक्तभगीरथपथानुगा-पितृक्रियायां स्वपूर्वजोद्धारे उद्युक्तस्य भगीरथस्य पन्थाः भगीरथपथः तमनुगच्छतीति तथोक्ता (जाता) स्वपूर्वजोद्धारे बद्धोद्योगं भगीरथमनुचचालेत्याशयः ॥ ८६ ॥

उन सात धाराओं में तीन धाराएँ पूर्व को और तीन पश्चिम को गयीं। अवशिष्ट सातवीं धारा, अपने पूर्वजों के उद्धारार्थ उद्योगशील भगीरथ के पीछे-पीछे चली ॥ ८६ ॥

सैषा भागीरथी जह्नोः सत्रक्षेत्रं समावृणोत् ।
तां स पीत्वा ततः शान्तो जहौ श्रोत्रेण वर्त्मना ॥ ८७ ॥

---

१. 'मूर्धतः' इति पा० । २. 'द्युक्ता भगीरथरथानुगा' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सैषेति। सैषा भागीरथी भगीरथस्यापत्यं स्त्री गङ्गेत्यर्थः। जह्नोः जह्नुरित्याख्यस्य मुनेः सत्रक्षेत्रं यज्ञभूमिम् समावृणोत् समन्तादावृतवती, जलमग्नमकरोदित्यर्थः। ततस्तस्माद्धेतोः स जह्नुः तां गङ्गां पीत्वा गङ्गायास्तथाचरणजनितकोपान्निपीय शान्तः भगीरथकृतस्तुत्या शमं गतः शान्तकोप इत्यर्थः, तां गङ्गां श्रोत्रेण वर्त्मना श्रोत्ररूपेण मार्गेण जहौ परित्यक्तवान् निःसारितवानित्यर्थः ॥ ८७ ॥

उस भागीरथी गङ्गा ने (कुछ दूर आने पर) जह्नु के यज्ञस्थान को जल मग्न कर दिया (जिससे क्रुद्ध होकर) जह्नु ने गङ्गा को पी डाला। तब (भगीरथ की स्तुति से) शान्त होकर उन्होंने गंगाको अपने श्रवण मार्ग से निकाल दिया ॥ ८७ ॥

तया तटिन्या जाह्नव्या[१] प्रापयत्त्रिदिवं पितॄन्।
भगीरथः पुरं प्राप परिपूर्णमनोरथः ॥ ८८ ॥

तयेति। भगीरथः तया जाह्नव्या जह्नोरपत्येन जाह्नव्या तटिन्या नद्या गङ्गया पितॄन् स्वपूर्वजान् कपिलकोपानलभस्मीकृतान् सुमतिपुत्रान् त्रिदिवं स्वर्गं प्रापयत्, स्वर्गलोकनिवासिनश्चकार। (ततः) परिपूर्णमनोरथः सफलाभिलाषः सन् पुरीमयोध्यां प्राप आजगामेत्यर्थः ॥ ८८ ॥

उस जाह्नवी नदी से भगीरथ ने अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराया और इस प्रकार सफल मनोरथ होकर अपनी नगरी अयोध्यापुरी को वापस आये ॥ ८८ ॥

अथ दाशरथिराकर्णितभागीरथीकथस्तां सरितं विलङ्घ्य विशालां विलोक्य[२] पुरीं कस्येयमिति गाधिनन्दनमपृच्छत्। सोऽप्येवमवोचत्।

अथेति। अथानन्तरम्, आकर्णितभागीरथीकथः-आकर्णिता श्रुता भागीरथ्याः कथा येन सः दाशरथिः रामः। तां सरितं गङ्गां विलङ्घ्य उत्तीर्य विशालां पुरीम् विशालानाम्नीं पुरीं विलोक्य दृष्ट्वा, कस्येयम्, अस्याः पुर्याः कः स्वामी इति गाधिनन्दनम् विश्वामित्रम् अपृच्छत् पृष्टवान्। सोऽपि विश्वामित्रोऽपि एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवोचत् उक्तवान्।

---

१. 'प्रापय्य' इति पा०। २. 'पुरीं विलोकयन्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राम ने गङ्गा की कथा सुनने के बाद गङ्गा को पार किया और विशाला नामक पुरी को देखकर विश्वामित्र से पूछा—यह किसकी पुरी है। विश्वामित्र ने भी इस प्रकार कहा—

पुरा खलु सुरासुराणां सुधानिमित्तं मिथोविरोधे प्रवृत्ते मायां विश्वमोहिनीं विश्वरूपः प्रदर्श्य दैतेयनिधनं शतधारपाणिना कारयामास।

पुरेति। पुरा पूर्वकाले। खल्विति वाक्यालङ्कारे। सुरासुराणाम्—सुराः देवाः, असुराः दानवास्तेषां सुधानिमित्तम् सुधालाभार्थम्, मिथोविरोधे परस्परवैरे प्रवृत्ते प्रसक्ते विश्वरूपः विष्णुः विश्वमोहिनीम् जगन्मोहकरूपान्वितां मायां स्त्रीरूपामित्यर्थः। प्रदर्श्य दर्शयित्वा, तद्रूपेण स्वयमेवाविर्भूयेत्यर्थः शतधारपाणिना शतधारं वज्रं पाणौ यस्य तेनेन्द्रेण दैतेयनिधनम्—दितेरपत्यानि पुमांसो दैतेयाः 'स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढक्। तेषां निधनं विनाशं कारयामास।

प्राचीन काल में अमृत के लिए देवों और दैत्यों का परस्पर विरोध होने पर भगवान् विष्णु ने विश्वमोहिनी माया को स्त्री रूप में दिखाकर इन्द्र से दैत्यों का वध कराया था।

तेषां[1] जननी दितिरतिवेलमन्युः[2] शतमन्युशासनं कमपि पुत्रं लब्धुकामा [3]पत्युर्मारीचस्य वचनात्कुशप्लवे[4] सुचिरं तपश्चचार।

तेषामिति। तेषाम् दैतेयानां जननी माता दितिः दितिरितिनाम्ना प्रसिद्धा अतिवेलमन्युः—वेलामतिक्रान्त इत्यतिवेलः मन्युः क्रोधो यस्यास्तादृशी सती अत्यन्तकुपितेत्यर्थः। पुत्राणां संहारादिति भावः। शतमन्युः—शतं मन्यवः क्रतवो यस्य स शतमन्युरिन्द्रः तं शास्तीति शतमन्युशासनस्तम् इन्द्रहन्तारमित्यर्थः ('मन्युः क्रोधे क्रतौ दैन्ये' इति विश्वः) कमपि सुतं पुत्रं लब्धुकामा ईप्समाना पत्युः भर्तुः मारीचस्य मरीचिपुत्रस्य कश्यपस्य वचनात् आदेशात् कुशप्लवे विशालातः पूर्वेणावस्थिते कुशप्लवनामके तपोवने सुचिरं बहुकालपर्यन्तम् तपश्चचार तपस्यामकरोत्।

---

१. 'तेषां तु' इति पा०।
२. 'अभ्युपगतमन्युः' इति पा०।
३. 'मारीचेः' इति पा०।
४. 'कुशप्लवने' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उन दैत्यों की माता दिति (पुत्रों के संहार से) अत्यन्त कुपित हुई और उसने एक इन्द्रहन्ता पुत्र को पाने की कामना से अपने पति कश्यप की आज्ञा से कुशप्लव नामक तपोवन में बहुत समय तक तप किया ।

तां कैतवेन [1]शुश्रूषमाणः शतधारपाणिः [2]पादकलितकचकलापामापन्ननिद्रामपवित्रेति निर्वर्ण्यावगाहिततदीयजठरः सप्तधा गर्भं निर्भिद्य निर्जगाम ।

तामिति । शतधारपाणिः इन्द्रः कैतवेन 'अवसरं लब्ध्वाऽस्या गर्भं निर्भेत्स्यामि' इतिच्छलेन ताम् दितिं शुश्रूषमाणः सेवमानः सन् पादकलितकच कलापाम् पादयोः पादस्थाने कलितः स्थापितः कचकलापः केशपाशो ययाताम्, शय्यायां पादस्थाने शिरः, शिरःस्थाने पादौ कृत्वा आपन्ननिद्राम् निद्राणाम्, (एतच्छास्त्र निषिद्धाचरणात्) अपवित्रा अशुचिरिति निर्वर्ण्यावलोक्य ('निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्यमरः) । अवगाहिततदीयजठरः— अवगाहितः तदीयः जठरो येन सः तस्याः कुक्षिं प्रविष्टः सन् गर्भम् दितेः कुक्षिस्थं भ्रूणं सप्तधा सप्तभिः भागैः निर्भिद्य विदीर्णं कृत्वा निर्जगाम बहिरागतः, जठराद्दितिशेषः ।

इन्द्र छल से उसकी सेवा करने लगे । (एक समय) दिति शय्या पर सिरहाने की ओर पैर करके सोयी थी, उस स्थिति में उसे अपवित्र देख कर उसके गर्भ में प्रविष्ट होकर इन्द्र उसके गर्भस्थ भ्रूण को सात खण्डों में विदीर्ण कर गर्भ से निकल आये ।

दितिरपि विदिततनयवृत्तान्ता[3] तान्यपि खण्डान्याखण्डलेन सप्तमरुतः कारयित्वा त्रिविष्टपं प्रविष्टा ।

दितिरपीति । दितिरपि विदिततनयवृत्तान्ता—विदितः, तनयस्य गर्भस्य शिशोः वृत्तान्तः सप्तधाविदारणात्मकवार्त्ता यया तादृशी सती तानि सप्तसंख्याकान्यपि खण्डानि आखण्डलेन इन्द्रेण सप्त मरुतः सप्तसंख्याकान् वायून् कारयित्वा त्रिविष्टपं प्रविष्टा दिवंगता मृतेत्यर्थः । सप्तमरुतां नामानि यथा— 'आवहः प्रवहश्चैव संवहोद्वहस्तथा । विवहाख्यः परीवाहः परावह इति क्रमात् ॥

---

१. शुश्रूषमाणः शक्रः' इति पा० । २. 'केश' इति पा० ।

३. 'कदना' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इति । "सप्तैते मारुतस्कन्धा महर्षिभिरुदाहृताः । आवहो वर्त्तयेद् वायु मेंघोल्कावृष्टिविद्युतः । वर्त्तयेत्प्रवहश्चापि तथा मार्त्तण्डमण्डलम् ॥ संवहो मारुतस्कन्धस्तथा शीतांशुमण्डलम् । वर्त्तयेदुद्वहश्चापि तथा नक्षत्रमण्डलम् ॥ पञ्चमो विवहाख्यस्तु तथैव ग्रहमण्डलम् । सप्तर्षिचक्रं स्वर्गङ्गां षष्ठः परिवहस्तथा ॥ परावहस्तथा वायुर्वर्त्तयेद् ध्रुवमण्डलम् ।"

दिति भी गर्भस्थ पुत्र की स्थिति जान गयी और इन्द्र से उन सातों गर्भखण्डों को सात वायु के रूप में परिणत करा के दिवंगत हो गयी ।

ततः—

अलम्बुषायामिक्ष्वाकोर्जातः कश्चिन्महीपतिः ।
[1]विशालेति स्वनाम्नात्र विशालां विदधे पुरीम् ॥ ८९ ॥

अलम्बुषायामिति । इक्ष्वाकोः युष्मद्वंशादिमनृपात्, अलम्बुषायां जातः उत्पन्नः कश्चित् महीपतिः विशालो नाम राजा स्वनाम्ना उपलक्षणभूतेन, विशालेति, 'विशाला' इति नाम्ना प्रसिद्धाम् अत्र कुशप्लवे विशालां महतीं पुरीम् विदधे निर्मितवान् । विशालनाम्ना राज्ञा निर्मिततया पुरीयं विशालेति नाम्ना प्रसिद्धिं गतेत्यर्थः ॥ ८९ ॥

तदनन्तर इक्ष्वाकु नामक राजा से अलम्बुषा नामक रानी में उत्पन्न विशाल नामक राजा ने अपने नाम से इस विशाला नामक विशाल नगरी को बसाया ॥ ८९ ॥

तदनु तद्वास्तव्येन सुमतिनाम्ना नृपतिना कृतातिथ्यः [2]सराजपुत्रो भगवान् विश्वामित्रस्तत्र निशीथिनीं नीत्वा मिथिलां प्रति प्रस्थितः प्रतपस्सामुत्तमस्य गौतमस्याश्रमं प्रदर्श्य तद्दारानुषक्तां कथामित्थमकथयत् ।

तदन्विति । तदनु विशालानगरीवृत्तान्तकथनानन्तरम्, तद्वास्तव्येन विशालाख्यनगरीनिवासिना सुमतिनाम्ना नृपतिना कृतातिथ्यः-कृतं विहितम्, आतिथ्यम् अतिथिसत्कारो यस्य सः, सराजपुत्रः राजपुत्राभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां सह, भगवान् विश्वामित्रः तत्र विशालायां निशीथिनीम् रात्रिम् ('निशा

१, 'विशालः स्वेन नाम्नात्र' इति पा० ।
२, 'सराजपुत्रो विश्वामित्रः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निशीथिनी रात्रिः' इत्यमरः) नीत्वा गमयित्वा मिथिलां प्रति प्रस्थितः चलितः, प्रतपसाम्-प्रकृष्टं तपोयेषां तेषां तपस्विप्रवराणाम् उत्तमस्य प्रधानस्य गौतमस्य तन्नामकस्य मुनेः आश्रमम् तपःस्थानम् प्रदर्श्य दर्शयित्वा तद्दारानुषक्ताम् गौतमपत्न्या अहल्यायाः सम्बन्धिनीम् कथाम् उपाख्यानम् इत्थम् अनेन वक्ष्यमाणप्रकारेण अकथयत् ।

तत्पश्चात् विशालावासी राजा सुमति ने राम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र का आतिथ्य सत्कार किया । राजपुत्रों के साथ विश्वामित्र वहीं रात बिताकर सवेरे मिथिला को चले । (मार्ग में) विश्वामित्र ने (राम को) महर्षि गौतम का आश्रम दिखा कर उनकी पत्नी अहल्या का वृत्तान्त इस प्रकार कहा—

अत्रागमद्गौतमधर्मदारानन्नार्यजुष्टेन पथा महेन्द्रः ।
स[1] च क्रुधा निर्वृषणं वृषाणं भार्यामदृश्यां च मुनिश्चकार ॥ ९० ॥

अत्रेति । अत्र आश्रमे महेन्द्रः सुराधिपः अनार्यजुष्टेन असाधुजनसेवितेन पथा मार्गेण जारभावेनेत्यर्थः, गौतमधर्मदारान् गौतमस्य धर्मपत्नीमहल्याम् अगमत् उपभुक्तवान् । सः मुनिर्गौतमश्च क्रुधा अहल्योपभोगजनितकोपेन वृषाणम् इन्द्रम् ('वासवो वृत्रहा वृषा' इतीन्द्रपर्यायेष्वमरः) निर्वृषणम् विगताण्डकोशम् ('मुष्कोऽण्डकोशो वृषणः' इत्यमरः) भार्याम् स्वपत्नीमहल्यां च अदृश्याम् तद्रूपं परित्यज्य पाषाणभावापन्नामित्यर्थः, चकार कृतवान् । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ९० ॥

इसी आश्रम में इन्द्र ने गौतम की धर्मपत्नी अहल्या का अनार्यसेवित मार्ग (अर्थात् जार भाव) से उपभोग किया था । इससे क्रुद्ध होकर गौतम ने (शाप द्वारा) इन्द्र को अण्डकोश रहित और पत्नी अहल्या को अदृश्य (अर्थात् शिला रूप में परिवर्तित) कर दिया ॥ ९० ॥

वनमेतद्गते रामे शापान्मुक्ता भविष्यसि ।
इत्युक्त्वा गौतमः पत्नीं हिमाद्रिं तपसे ययौ ॥ ९१ ॥

वनमिति । रामे श्रीरामचन्द्रे एतद् वनं गते प्राप्ते सति शापात् शिलाभावात् मुक्ता भविष्यसि इति पत्नीम् अहल्यामुक्तवा गौतमः तपसे तपश्चरितुं हिमाद्रिम् हिमालयं ययौ जगाम ॥ ९१ ॥

१, 'क्रुद्धस्ततो' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जब राम इस वन में आयेंगे, तब तू शाप से मुक्त होगी—ऐसा अहल्या से कह कर गौतम मुनि तप करने के लिए हिमालय को चले गये ॥ ९१ ॥

[1]इत्थं विदितवृत्तान्ते देवतानां गणे तदा ।
पितॄणां [2]प्राभवाल्लेभे मेषस्य वृषणं वृषा ॥ ९२ ॥

इत्थमिति । इत्थमनेन प्रकारेण देवतानां गणे देवसमुदाये विदितवृत्तान्ते गौतमशापादिन्द्रो निर्वृषणत्वं गतः इति ज्ञातवृत्तान्ते सति तदा तस्मिन् समये वृषा इन्द्रः पितॄणाम् पितृदेवतानाम् प्राभवात्-प्रभोर्भावः प्राभवम् तस्मात्, प्रभुत्वादित्यर्थः । 'इगन्ताचलघुपूर्वात्' इति सूत्रेण भावेऽण् । मेषस्य-एडकस्य पशुविशेषस्य वृषणं लेभे । इन्द्रस्य वृषणस्थाने मेषवृषणश्छित्त्वा योजित इत्यर्थः ॥ ९२ ॥

इस तरह से देवताओं को जब यह विदित हुआ कि इन्द्र गौतम के शाप से अण्डकोश रहित हो गये हैं तब पितृदेवताओं के प्रभुत्व से इन्द्र के वृषण-स्थान पर मेष का अण्डकोश काट कर जोड़ दिया गया ॥ ९२ ॥

तदेनामेनसो मुक्तां प्रतिगृह्णातु गौतमः ।
इति तस्याश्रमं भेजे साकं रामेण कौशिकः ॥ ९३ ॥

तदेनामिति । तत् तस्मात्कारणात् गौतमः एनसः परपुरुषसंभोगजनित-पापात्, (भवच्चरणरजोभिः) मुक्तां रहिताम्, एनामहल्यां प्रतिगृह्णातु पत्नीत्वेन पुनः गृह्णातु इति हेतो रामचरणरजोभिरहल्यां पापमुक्तां कुर्तुं कौशिकः विश्वामित्रः रामेण साकं रामेण सह तस्य गौतमस्य आश्रमं भेजे प्राप ॥ ९३ ॥

अतः (राम के चरणरज का स्पर्श पाकर) अहल्या इन्द्र-संभोग-जनित पाप से मुक्त होकर पुनः गौतम द्वारा पत्नी रूप में स्वीकार कर ली जाय, इस लिये विश्वामित्र राम के साथ गौतम के आश्रम में गये ॥ ९३ ॥

[3]दुःखे सुखे च रज एव बभूव हेतु-
स्तादृग्विधे महति गौतमधर्मपत्न्याः ।
यस्माद् गुणेन रजसा विकृतिं गता सा
रामस्य पादरजसा प्रकृतिं प्रपेदे ॥ ९४ ॥

१. 'ततो' इति पा० । २. 'प्रभावात्' इति क्वचित् ।
३. 'ततः । दुःखे' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दुःख इति। गौतमधर्मपत्न्याः अहल्यायाः तादृग्विधे अनिर्वचनीये महति दीर्घे दुःखे इन्द्रसंभोगजनितपापेन पाषाणभावजनितक्लेशे, सुखे रामचरण-रजसा पूर्वरूपप्राप्तिपूर्वकस्वपतिस्वीकृतत्वरूपे आनन्दे च (क्रमशः) रज एव रजोगुणो रामचरणरजश्चैव हेतुः कारणं बभूव। कामवासनाप्रवर्त्तकर-जोगुणमहिम्ना सेन्द्रससर्गात् पाषाणभावं गतेति दुःखे रज एव कारणम्, रामपादरजःस्पर्शेन पाषाणभावं विहाय पूर्वरूपं लब्ध्वा च सा पत्या स्वीकृतेति सुखेऽपि रज एव कारणं बभूवेत्यर्थः। तदेव विवृणोति-यस्मादिति। यस्मात् कारणात् सा अहल्या रजसा गुणेन रजोगुणेन विकृतिं पाषाणभाव-रूपविकारं गता प्राप्ता तथा रामस्य पादरजसा चरणरेणुना प्रकृतिं पूर्वरूप प्रपेदे पाषाणत्वं विहाय निजाकृतिं प्रापेत्यर्थः। अनेनप्रकारेणोभयोरपि स्थित्यो रजस एव हेतुत्वमुपपन्नमित्यहो रजो महिमेति भावः। ('रजोगुणे रेणावर्त्तवे च' इति नानार्थरत्नमाला)। पूर्वमदृश्यां चकारेत्युक्त्वा पुनः 'विकृतिं गता प्रकृतिं प्रपेदे' इति कथनेन तस्याः पाषाणभावः सूच्यते। पाद्मे यथा—'सा ततस्तस्य रामस्य पादस्पर्शान्महात्मनः। अभूत् सुरूपा वनिता समाक्रान्ता महाशिला॥' इति॥ रज इति प्रकृतार्थद्वयश्लेषः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥९४॥

गौतम की धर्मपत्नी अहल्या के महान् दुःख और सुख, दोनों में रज ही कारण बना; क्योंकि गुणरूप रज के कारण (कामासक्त होकर) शिलाभाव रूप विकार को प्राप्त हुई और राम के चरण रज के कारण शापमुक्त होकर पुनः अपने पूर्वस्वरूप को प्राप्त हुई॥ ९४॥

तस्मिन्न[1] हल्यया गौतमेन च कृतमातिथ्यं विश्वामित्रः सराजपुत्रः प्रतिगृह्य मिथिलोपकण्ठभुवि[2] जनकयजनभवनमभजत।

तस्मिन्निति। सराजपुत्रः रामलक्ष्मणाभ्यां सह विश्वामित्रः, तस्मिन् तत्र गौतमाश्रमे अहल्यया गौतमेन च कृतम् आतिथ्यमतिथिसत्कारं प्रतिगृह्य स्वीकृत्य मिथिलोपकण्ठभुवि मिथिलासमीपप्रदेशे जनकयजनभवनम् जनकं-नाम्नो राज्ञो यज्ञशालाम् अभजत प्राप्तवान्।

वहाँ गौतम के आश्रम में अहल्या और गौतम द्वारा किये गये आतिथ्य को स्वीकार करके राम और लक्ष्मण सहित विश्वामित्र मिथिला के समीप प्रदेश में विद्यमान जनक की यज्ञशाला में पहुँचे।

१. 'अहल्यया कृतं' इति पा०। २. 'भुवि जातं' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदनु जनकेन [1]विधिवदभ्यर्चिते [2]तस्मिन्निमिकुलपुरोधाः शतानन्दो रघुनन्दनमेवमभाषत ।

तदन्विति । तदनु सराजपुत्रस्य विश्वामित्रस्य जनकयजनभवनप्रवेशानन्तरम्, जनकेन विदेहराजेन विधिवत् शास्त्रोक्तरीत्या अभ्यर्चिते पूजिते तस्मिन् विश्वामित्रे निमिकुलपुरोधाः निमिवंशस्य पारम्पर्यागतपुरोहितः शतानन्दो नाम रघुनन्दनम् श्रीरामचन्द्रम् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अभाषत उक्तवान् ।

तत्पश्चात् जनक द्वारा यथाविधि विश्वामित्र का सत्कार हो जाने पर निमिवंश के पुरोहित शतानन्द ने श्रीरामचन्द्र से इस प्रकार कहा—

तिष्ठन् क्षत्रार्हवृत्तौ मुनिरगमदसावाश्रमं ब्रह्मसूनो-
रातिथ्यं तत्र लब्ध्वा निरवधि [3]सुरभेः प्राभवादित्यवेत्य ।
[4]सा तेन प्रार्थिताभूत्तदनु मुनिवरे नाभ्युपेते [5]चकर्ष
क्रोशन्तीं तां तयैव प्रचुरबलजुषा कान्दिशीको बभूव ।९५।

तिष्ठन्निति । असौ अयं मुनिः विश्वामित्रः (पुरा) क्षत्रार्हवृत्तौ क्षत्रियोचितव्यापारे राज्यपालनादौ तिष्ठन् वर्तमानः, मुनिभावात्पूर्वं यदाऽयं विश्वामित्रो विश्वरथो नाम राजाऽऽसीदित्यर्थः । (मृगयाप्रसङ्गेन) ब्रह्मसूनोः वसिष्ठस्य आश्रमम् अगमत्, तत्र निरवधि निस्सीमम् अनिर्वाच्यम् (वसिष्ठकृतम्) आतिथ्यम् अतिथिसत्कारं लब्ध्वा प्राप्य, (वसिष्ठेन कृतं तादृशमातिथ्यम्) सुरभेः कामधेनोः प्राभावात् सामर्थ्यादिति अवेत्य विज्ञाय, वसिष्ठस्य पार्श्वे कामधेनुरस्ति तस्या माहात्म्येनैवीदृशमातिथ्यं तेन कृतमिति ज्ञात्वेत्यर्थः । तेन विश्वामित्रेण सा वसिष्ठधेनुः प्रार्थिता याचिता अभूत्, विश्वामित्रः 'इयं मह्यं देहि' इति वशिष्ठमुद्दिश्य तां धेनुं ययाचे, तदनु विश्वामित्रकर्तृकयाचनानन्तरम्, मुनिवरे वसिष्ठे नाभ्युपेते न स्वीकुर्वति धेनुं दातुमनिच्छतीत्यर्थः । क्रोशन्तीम् आर्तस्वरं कुर्वन्तीं तां धेनुं चकर्ष बलात्कारेण तां नेतुं प्रायततेत्यर्थः । प्रचुरबलजुषा असाधारणसामर्थ्योपेतया तयैव धेन्वैव कान्दिशीकः भयद्रुतो बभूव, धेनुप्रभावादेव

१. अभ्यर्थिते' इति पा० । २. 'तस्मिन्कुशिकसुते निमि' इति पा० ।
३. 'सुरभि' इति पा० ४. 'सोऽनेन प्रार्थितोऽभूत्' इति पा० ।
५. 'च कर्षन' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विनष्टसकलसैन्यः सन् भयेन पलायितो बभूवेत्यर्थः। ('कान्दिशीको भयद्रुतः' इत्यमरः) स्रग्धरा वृत्तम्—'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयमि'ति तल्लक्षणात् ॥ ९५ ॥

ये विश्वामित्र जब क्षत्रियोचित व्यापर में वर्तमान अर्थात् राजा थे (एक बार मृगया के प्रसङ्ग से) वसिष्ठ के आश्रम में गये। वसिष्ठ ने इनका अवर्णनीय सत्कार किया। यह आतिथ्य धेनु के प्रभाव से हुआ है—ऐसा जानकर उन्होंने उस धेनु को माँगा। वसिष्ठ के न देने पर, चिल्लाती हुई उस धेनु को बलात् ले जाने के लिए खींचा--घसीटा। इसपर धेनु ने अपने प्रचुर बल से इनकी सेना को परास्त कर दिया और विश्वामित्र भय के मारे भाग खड़े हुए ॥ ९५ ॥

बहुशस्तद्बलचकितस्य तपोबलाधिगतविविधायुधनिगमस्य[1] भूयोऽपि सुरभिनिमित्तं समारब्धसमरस्य दिव्यास्त्रपरम्परां ब्रह्मदण्डेन निरुन्धन्नरुन्धतीजानिरवतस्थे;

बहुश इति। बहुशः बहुप्रकारेण, तद्बलचकितस्य तस्याः कामधेनोः बलात् शक्तेः चकितस्य भयभीतस्य, तपोबलेत्यादिः-तपसां बलेन अधिगताः प्राप्ताः विविधायुधनिगमाः अनेकप्रकारकास्त्रविद्याः येन तस्य, भूयोऽपि पुनरपि सुरभिनिमित्तं कामधेनोः कृते समारब्धसमरस्य प्रारब्धसंग्रामस्य विश्वामित्रस्य दिव्यास्त्रपरम्पराम् दिव्यानाम् समधिकसामर्थ्यशालिनाम् अस्त्राणां परम्पराम् संहतिम् ब्रह्मदण्डेन ब्रह्मतेजोमयदण्डेन निरुन्धन् निवारयन् व्यर्थयन्नित्यर्थः। अरुन्धतीजानिः—अरुन्धती जाया यस्य सः अरुन्धतीजानिः वसिष्ठः ('जायाया निङ्' इति निङादेशः)' अवतस्थे योद्धुमाभिमुख्येन स्थित इत्यर्थः।

विश्वामित्र ने बार-बार उस कामधेनु की शक्ति से चकित होकर तपस्या करके उसके बल से अनेक प्रकार के अस्त्र प्राप्त किये और उस धेनु के लिए युद्ध छेड़ा किन्तु उनके दिव्य अस्त्रों को वसिष्ठ ब्रह्मदण्ड से व्यर्थ करते हुए (सामने युद्धार्थ) स्थित रहे।

ततोऽयं जातव्यलीकः [2]क्षात्रात्तेजसः परं ब्राह्ममेव महो महीय इति निश्चित्य तत्सिद्धये दक्षिणस्यां दिशि तीव्रतरं तपश्चचार।

---

१. 'तस्मिन्कुशिकसुते निमि' इति पा०। २. 'क्षात्रतेजसः' इति पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत इति। ततस्तदनन्तरम्, जातव्यलीकः—जातं व्यलीकं दुःखं यस्य सः, उत्पन्न दुःखः ('व्यलीकमाप्रिये दुःखे' इति वैजयन्ती)। (अत एव) क्षात्रात् क्षत्रसम्बन्धिनः तेजसः बलात् ('तेजः प्रभावे दीप्तौ च बले' इत्यमरः) ब्राह्मम् ब्राह्मणसम्बन्धि महः तेज एव महीयः उत्कृष्टतरम् इति निश्चित्य निर्धार्य तत्सिद्धये ब्राह्मतेजोऽवाप्तये दक्षिणस्यां दिशि तीव्रतरम् अत्युग्रं तपश्चचार तपश्चरितुं प्रारब्धवान् इत्यर्थः।

इसके बाद दुःखी होकर विश्वामित्र ने 'क्षात्र तेज से ब्रह्मतेज ही उत्कृष्टतर है'—ऐसा विश्वास कर ब्रह्मतेज की प्राप्ति के लिए दक्षिण दिशा में अत्यन्त घोर तप करना प्रारम्भ किया।

अथ सावित्रः क्षत्रियस्त्रिशङ्कुः सशरीरः स्वर्गसिद्धिम[1]भ्यर्थयमानो वसिष्ठेन प्रत्याख्यातस्तस्य पुत्रैर्महोदयादिभिर्निर्बन्धकुपितैर्दत्तचण्डालभावस्तमेनं शरणमभजत।

अथेति। अथानन्तरम्, सावित्रः सवितुरपत्यं सूर्यकुलसम्भवः क्षत्रियः त्रिशङ्कुर्नाम सशरीरः शरीरसहितः स्वर्गसिद्धिम् स्वर्गलोकप्राप्तिम् अभ्यर्थयमानः सन् वसिष्ठेन कुलपुरोधसा प्रत्याख्यातः निराकृतः सशरीरस्वर्गगमनस्याशक्यत्वादिति भावः। तथा निर्बन्धकुपितैः तथाकरणाय मुहुर्मुहुरत्याग्रहेण कुपितैः क्रोधं गतैः तस्य वसिष्ठस्य पुत्रैः महोदयादिभिः दत्तचण्डालभावः दत्तः चण्डालभावो यस्य सः, शापेन चण्डालभावं प्रापितः, तम् एनं विश्वामित्रं शरणमभजत। तत्प्रतिपक्षतया सदेहं स्वर्गं गन्तुमनास्त्रिशङ्कुस्तपस्यन्तं विश्वामित्रं शरणं गत इत्यर्थः।

इसके बाद सूर्यवंशी राजा त्रिशंकु सदेह स्वर्ग प्राप्ति की कामना से अपने कुल पुरोहित वसिष्ठ से वैसा अनुष्ठान कराने की प्रार्थना की, किन्तु वसिष्ठ ने इनकार कर दिया। वसिष्ठ के पुत्र महोदय आदि ने बार-बार आग्रह करने पर क्रुद्ध होकर त्रिशंकु को चण्डाल हो जाने का शाप दे दिया। अन्त में त्रिशंकु विश्वामित्र की शरण में गया।

असावपि तन्मनोरथ[2]परिपूर्तये क्रतुमेकं[3] प्राक्रमत।

---

१. 'प्रार्थयमानो' इति पा०। २. 'पूर्तये' इति पा०।
३. 'क्रतुं प्राक्रमत' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

असाविति । असौ विश्वामित्रः अपि तन्मनोरथपरिपूर्तयेत्रिशङ्कोः सदेहस्वर्गप्राप्तिरूपमनोरथसिद्धये एकं सदेहस्वर्गप्रापकं क्रतुं यज्ञं प्राक्रमत प्रारब्धवान् ।

विश्वामित्र ने भी त्रिशंकु के मनोरथ को परिपूर्ण करने के लिए एक यज्ञ प्रारम्भ कर दिया।

तत्र समागतेषु ब्राह्मणेषु जुगुप्सया [1]त्रिशङ्कोरनागतान्वसिष्ठपुत्रानयं शापेन श्वभक्षकानकरोत् ।

तत्रेति । तत्र तस्मिन् यज्ञे समागतेषु, त्रिशङ्कोः तन्नाम्नो नृपात् ('जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इति त्रिशङ्कोरित्यत्र पञ्चमी) जुगुप्सया घृणया अनागतान् वसिष्ठस्यपुत्रान् वसिष्ठपुत्रान् श्वभक्षकान् चाण्डालान् अयं विश्वामित्रः अकरोत् । इमे वसिष्ठपुत्राः मदुपक्रान्तयज्ञं प्रति जुगुप्सया न समागतास्ततश्श्वभक्षकाश्चाण्डालो भवन्त्विति शशापेत्यर्थः ।

विश्वामित्रोपक्रान्तयज्ञं प्रति सर्वे ब्राह्मणाः समागताः किन्तु वसिष्ठपुत्रा ईर्ष्यया नागता इति हेतोः कुपितोऽयं विश्वामित्रस्तान् शापेन चाण्डालानकरोदिति सरलार्थः ।

उस यज्ञ में सभी ब्राह्मण आकर सम्मिलित हुए किन्तु वसिष्ठ के पुत्र त्रिशंकु के प्रति घृणा रखने के कारण नहीं आये, अतः विश्वामित्र ने उन्हें चाण्डाल हो जाने का शाप दे दिया।

[2]ततः क्रतुभुजां वर्गेऽपि स्वर्गादनवतीर्णे ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम् क्रतुभुजाम् देवानां वर्गे समुदायेऽपि स्वर्गादनवतीर्णे–जुगुप्सयैव हविर्ग्रहीतुं स्वर्गादनागते ।

तदनन्तर स्वर्ग से इन्द्रादि समुदाय के भी न आने पर —

अयं महात्मा तपसः प्रभावादारोपयामास दिवं त्रिशङ्कुम् ।
नीलाम्बरं निहुतराजवेषं वर्षानिशीथादविशेषवेषम् ॥ ९६ ॥

अयमिति । महात्मा महानुभावः अयं विश्वामित्रः तपसः– स्वकृततपस्यायाः प्रभावात् सामर्थ्यात् नीलाम्बरम् नीलवस्त्रं चण्डालाकृतिधारित्वादिति भावः । अन्यपक्षे नीलाकाशम् मेघाच्छन्नत्वादितिभावः । ('अम्बरं

१. 'त्रिशङ्कुयजनेऽनागतान्' इति पा० ।   १. 'तत्र' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाससि व्योम्नि' इति विश्वः) । निह्नुतराजवेषम्–प्रच्छन्ननृपवेषम्, पक्षे प्रच्छन्नचन्द्रमण्डलम् ('राजा प्रभौ नृपेचन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः' इतिविश्वः) वर्षानिशीथाद् वर्षाकालसम्बन्धिरात्रिसमयाद् अविशेषम्–अविशेषः विशेष-रहितः वेषो यस्य तादृशम्, तत्तुल्यमित्यर्थः । त्रिशङ्कुम् तदाख्यं राजानम् दिवम् स्वर्गम् आरोपयामास प्रेषितवानित्यर्थः । श्लेषोत्थापितोपमालङ्कारः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ९६ ॥

इन महात्मा विश्वामित्र ने नीलाम्बर (मलिनवस्त्रधारी) तथा राजवेष से रहित अतएव नीलाम्बर (मेघों से आवृत होने के कारण मलिन आकाश-वाला) तथा राजवेष (चन्द्रमण्डल के प्रकाश) से रहित वर्षाकालिक निशाकाल के सदृश त्रिशंकु को अपने तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग भेजा ॥ ९६ ॥

ततः—

अपातयत्स्वर्गमुपाश्रयन्तं संजातमन्युः शतमन्युरेनम् ।
ततोऽवलम्ब्यास्य नियोगशङ्कुं लेभे त्रिशङ्कुर्गगने प्रतिष्ठाम् ॥ ९७ ॥

ततोऽपातयदिति । स्वर्गम् उपाश्रयन्तं प्रविशन्तम् एनं त्रिशङ्कुम्, शतमन्युः इन्द्रः, संजातमन्युः 'चाण्डालोऽयं किमिति स्वर्गं प्रेषितः' इति समुपजातक्रोधः सन् ('मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः) अपातयत् स्वर्गादधः निक्षिप्तवानि-त्यर्थः । ततस्तदनन्तरं त्रिशङ्कुः स्वर्गादधः पतन्, अस्य विश्वामित्रस्य 'तत्रै-वतिष्ठ, माऽधःपत' इति नियोगशङ्कुम् आदेशरूपस्थूणाम् अवलम्ब्य गगने आकाशे प्रतिष्ठां स्थितिं लेभे प्राप्तवान् । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ९७ ॥

इन्द्र ने क्रुद्ध होकर, स्वर्ग में प्रवेश करते हुए त्रिशंकु को स्वर्ग से गिरा दिया । इसके बाद इन विश्वामित्र के आदेशरूप खूँटे का अवलम्बन पाकर वह त्रिशंकु वहीं आकाश में ठहर गया ॥ ९७ ॥

ततो [1]गीर्वाणगणप्रार्थनया परित्यक्तभुवनान्तरनिर्माणकर्माणं तत्र तपःप्रत्यूहः प्रत्युद्भूत इति पश्चिमायां दिशि पुष्करे पुष्कलं तपश्च-रन्तममु[2]मम्बरीषयज्ञपशुविनाशप्रायश्चित्तार्थं बह्वीभिर्गोभिः क्रीत्वा नरपशुतां नीयमानस्तावदृचीकस्य मध्यमपुत्रः शुनःशेपः शरणमयाचत ।

१. 'सर्वगीर्वाणगण' इति पा० । २. 'अम्बरीषम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत इति। ततः त्रिशङ्कोः गगनप्रतिष्ठापनान्तरम्, गीर्वाणगणप्रार्थनया देववृन्दयाञ्चया परित्यक्तभुवनान्तरनिर्माणकर्माणम्—परित्यक्त भुवनान्तरस्य अन्यस्य स्वर्गस्य निर्माणं रचना तस्य कर्म येन तं तथोक्तम्। त्रिशङ्कुम् गगने प्रतिष्ठाप्येन्द्रं प्रति कुपितो विश्वामित्रः स्वर्गान्तरनिर्माणे प्रवृत्तः, देवैर्बहुशः प्रार्थितः स्वर्गान्तरनिर्माणाद्विरतोऽभूदिति तादृशं विश्वामित्रमित्यर्थः। तत्र दक्षिणस्यां दिशि तपःप्रत्यूहः तपोविघ्नः प्रत्युद्भूतः संजातः इति पश्चिमायां दिशि पुष्करे तन्नाम्नि तीर्थविशेषे पुष्कलम् समग्रं तपः चरन्तम् कुर्वन्तम् अमुं विश्वामित्रम्। अम्बरीषेत्यादिः—अम्बरीषस्य तन्नाम्नोराज्ञः यज्ञपशुः बलितया निर्धारितोऽजादिस्तस्य विनाशे निमित्ते प्रायश्चित्तार्थं—प्रायश्चित्तं करणाय प्रारब्धकर्मलोपजनितपापनिष्कृत्यर्थं क्रियमाणकर्मविशेषः तदर्थं बह्वीभिः गोभिः मूल्यतया प्रदत्ताभिरितिभावः क्रीत्वा नरपशुतां नीयमानः बलितयाः वध्यनरभावं प्राप्यमाणः तावत् ऋचीकस्य तन्नाम्नो ब्राह्मणस्य मध्यमपुत्रः शुनःशेपः शुन इव शेपोयस्य सः शुनःशेपः 'शुनः शेपपुच्छलाङ्गुलेषु' इति षष्ठ्या अलुक्। शुनःशेपनामा। शरणमयाचत—प्राणरक्षणार्थं प्रार्थितवानित्यर्थः।

इसके बाद विश्वामित्र देवताओं के बहुत अनुनय-विनय करने पर अन्य स्वर्ग की रचना से विरत हुए। वहाँ तप में बहुत विघ्न पड़ने पर ये पश्चिम दिशा में पुष्कर तीर्थ में जाकर घोर तप करने लगे। वहाँ अम्बरीष के यज्ञ में बलि के लिये चुने गये पशु के विनष्ट हो जाने पर (शास्त्रविधि के अनुसार) प्रायश्चित्तार्थ नरबलि के लिये सौ गायों को देकर खरीदा गया ऋचीक ब्राह्मण का मँझला पुत्र शुनःशेप प्राणरक्षार्थ विश्वामित्र की शरण में आया।

अयं भगवान्निजतनयविनिमयेन रक्षितुमेनमुन्मुखः पराङ्मुखेभ्यस्तेभ्यो हविष्यन्दादिभ्यः शापेन वसिष्ठपुत्रदशां दत्त्वा गाथाद्वयप्रीताभ्यामिन्द्रोपेन्द्राभ्या[1]मम्बरीषं शुनःशेपं च परिपूर्णमनोरथौ कारयामास।

अयमिति। अयं भगवान् महात्मा विश्वामित्रः निजतनयविनिमयेन अनेकपुत्रेष्वन्यतमस्य स्वपुत्रस्य शुनःशेपस्थाने समर्पणेन एवं शुनःशेपं

१. 'अम्बरीषं च शुनःशेपं च' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रक्षितुं बलिभावात् त्रातुम् उन्मुखः तत्परः, पराङ्मुखेभ्यः विश्वामित्रविचारं न स्वीकुर्वद्भ्यः तेभ्यः हविष्यन्दादिभ्यः स्वपुत्रेभ्यः शापेन वसिष्ठपुत्रदशाम् चाण्डालभावमित्यर्थः, दत्त्वा गाथाद्वयप्रीताभ्यां—गाथाद्वयेन विश्वामित्रोप दिष्टेन शुनःशेपगीतेनेन्द्रोपेन्द्रप्रसादकेन सूक्तद्वयेनेत्यर्थः प्रीताभ्यां प्रसादं गताभ्यामिन्द्रोपेन्द्राभ्यां (नरबलिं विनैव यज्ञपूरणेन) अम्बरीषम्, (प्राणदानेन) शुनः शेपं च परिपूर्णमनोरथौ सफलाभिलाषौ कारयामास।

ये महात्मा विश्वामित्र अपने पुत्रों में से किसी एक को शुनःशेप के स्थान पर बलि होने के लिए देकर इस शुनःशेप को बलि होने से बचाने के लिये तत्पर हुए किन्तु उनके हविष्यन्दादि पुत्रों ने जब इस बात को अस्वीकार कर दिया तो विश्वामित्र ने उन्हें भी वसिष्ठपुत्रों की भाँति चाण्डाल होने का शाप देकर दो गाथाओं से परितुष्ट हुए इन्द्र और उपेन्द्र से अम्बरीष और शुनःशेप दोनों का मनोरथ पूर्ण करवाया।

ततस्तपस्यन्तमेनं मेनकासङ्गतस्तपोभङ्गश्चिरमङ्गीचकार।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्, तपस्यन्तम् तपस्यां कुर्वन्तम् एनम् विश्वामित्रम्, मेनकासङ्गतः मेनकानाम्न्या अप्सरसः सङ्गात् तपोभङ्गः तपस्या त्याग इत्यर्थः, चिरं बहुकालपर्यन्तम् अङ्गीचकार अनुसृतवान्। मेनकाख्ययाऽप्सरसा सह कामकेलिं कुर्वन्नयं विश्वामित्रश्चिरकालपर्यन्तं तपोविरतोऽतिष्ठदित्यर्थः।

इसके वाद ये विश्वामित्र तपोनिष्ठ हुए किन्तु मेनका के संसर्ग से बहुत दिनों तक तप से विरत रहे।

[1]पश्चात्पश्चात्तापाभिभूतोऽयमुत्तरे भूभृति कौशिकीतीरे घोरं तपश्चचार।

पश्चादिति। पश्चात् तदनन्तरम् पश्चात्तापाभिभूतः—मेनकासङ्गरूपासदाचरणजनितानुतापेन अभिभूतः आक्रान्तः अयं विश्वामित्रः उत्तरे भूभृति उत्तरदिगवस्थिते पर्वते हिमालय इत्यर्थः ('पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इति स्मिन्नादेशस्य वैकल्पिकत्वात्तदभावः)। कौशिकीतीरे कौशिक्या नद्यास्तीरे घोरं तपश्चचार पपस्यामकरोत्।

---

१. 'ततः' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पीछे पश्चात्ताप से युक्त होकर इन विश्वामित्र ने हिमालय पर्वत पर जाकर कौशिकी नदी के किनारे उग्र तप किया।

तत्र जम्भारिप्रहितां रम्भां शैली भवेति शप्त्वा पूर्वस्यां दिशि निरस्तनिःश्वासं तपश्चरत्यमुष्मिन्नूष्मणा तपोऽग्नेरु[1]द्विग्नितामरसखस्तामरसासनः सन्निधाय जितेन्द्रियत्वाद् ब्रह्मर्षिरसि, वसिष्ठोऽप्येवं व्याहरतु भवन्तमित्यभाषत।

तत्रेति। तत्र कौशिकीतीरे जम्भारिप्रहिताम्—जम्भारिः इन्द्रस्तेन प्रहिताम् तपस्याभङ्गार्थं प्रेषिताम् रम्भाम् रम्भाख्यामप्सरसम् ('स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः। घृताची मेनका रम्भा उर्वशी च तिलोत्तमा' इत्यमरः) शैली भव शिलाभावं गच्छ इति शप्त्वा पूर्वस्यां दिशि निरस्तनिःश्वासम् निरुद्धप्राणवायुनिर्गमं यथा स्यात्तथा सप्राणायाममित्यर्थः। अमुष्मिन् विश्वामित्रे तपश्चरति तपस्यां कुर्वति सति तपोऽग्नेः विश्वामित्रक्रियमाणतपोरूपाग्नेः ऊष्मणा तापेन उद्विग्नितामरसखः उद्विग्निताः भयसंभ्रान्ता येऽमरा देवास्तेषां सखा हितैषी तत्सखः तामरसासनः कमलासनो ब्रह्मा सन्निधाय विश्वामित्रसकाशमागत्य जितेन्द्रियत्वाद् ब्रह्मर्षिरसि—यतस्त्वया विषयवैमुख्येन जितइन्द्रियग्रामस्तत इतः प्रभृति त्वं ब्रह्मर्षिरभवः। वसिष्ठोऽपि तव प्रतिपक्षोऽपि एवम् 'त्वं ब्रह्मर्षिरसि' इति प्रकारेण भवन्तं त्वां व्याहरतु वदतु इति अनेन प्रकारेण अभाषत उक्तवान्।

वहाँ (विश्वामित्र के तप में बाधा डालने के लिए) इन्द्र ने रम्भा नामक अप्सरा को भेजा। विश्वामित्र ने उसे शाप दे दिया कि तुम शिला हो जाओ। शाप देकर वे पूर्व दिशा में जाकर प्राणायाम द्वारा श्वासनिरुद्ध करके तप करने लगे। उनके तप रूप अग्नि की ज्वाला से देवता लोग घबड़ा उठे। देवताओं के हितैषी ब्रह्मा ने विश्वामित्र के पास आकर कहा कि आप ने इन्द्रियों को जीत कर वश में कर लिया है अतः आप ब्रह्मर्षि हैं, आप के प्रतिपक्षी वसिष्ठ भी आप को ब्रह्मर्षि कहें (यह मेरा वरदान है)।

असौ वसिष्ठनिर्देशाद् ब्रह्मर्षित्वमविन्दत।
यथोपनयसंस्काराद् द्विजन्मा ब्रह्मवर्चसम्॥ ९८॥

---

१. 'उद्विग्नमानसः' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

असविति। असौ विश्वामित्रः वसिष्ठनिर्देशात् वसिष्ठस्य निर्देशात् ब्रह्मणोऽनुरोधाद् वसिष्ठेन विश्वामित्रस्य ब्रह्मर्षित्वं स्वीकृतमिति हेतोरित्यर्थः। ब्रह्मर्षित्वम् अविन्दत प्राप्तवान्। यथा द्विजन्मा ब्राह्मणः उपनयनसंस्काराद् ब्रह्मवर्चसम् ब्रह्मतेजः विन्दते। उपमाऽलङ्कारः॥ ९८॥

बसिष्ठ के स्वीकार कर लेने पर विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त किया, जैसे उपनयन संस्कार से ब्राह्मण ब्रह्मतेज को प्राप्त करता है॥ ९८॥

इति जनकपुरोधःश्लाघितो गाधिसूनुः
सह नृपतनयाभ्यां शर्वरीं तत्र नीत्वा।
विधिवददिशदर्घ्यं पुष्पदर्भाग्रगर्भं[1]
सरसिजदयिताय ज्योतिषे छान्दसाय॥ ९९॥

इतीति। इति पूर्वोक्तप्रकारेण जनकपुरोधः श्लाघितः—जनकस्य पुरोधाः पुरोहितः शतानन्दः, तेन श्लाघितः प्रशंसितः। गाधिसूनुः—गाधिनामकनृपति पुत्रः विश्वामित्रः नृपतनयाभ्यां दशरथपुत्राभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां सह, तत्र यज्ञशालायां शर्वरीम् रात्रिम्, नीत्वा गमयित्वा, (प्रभाते) सरसिजदयिताय कमलबान्धवाय छान्दसाय—तिसृष्वपि सन्ध्यासु क्रमेण ऋगादिवेदत्रयमयाय। 'ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव इयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्येः अह्नः। सामवेदेनास्तमये महीयते' इति श्रुत्युक्तेः। ज्योतिषे सूर्याय पुष्पदर्भाग्रगर्भम् पुष्पकुशाग्रमिश्रितम् अर्घ्यम् अर्घः पूजा तदर्थं जलमर्घ्यम् जलाञ्जलिम्, विधिवत् शास्त्रोक्तविधिना अदिशत् दत्तवान्। 'तदुह वा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः सन्ध्यायां गायत्र्याभिमन्त्रिता आप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति। ता एता आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति' इति श्रुत्युक्तेः मालिनी वृत्तम्॥ ९९॥

इसप्रकार जनक के पुरोहित शतानन्द के द्वारा प्रशंसित गाधिनन्दन विश्वामित्र ने रामलक्ष्मण के साथ उस यज्ञशाला में रात बिताकर (प्रातः) कमलमित्र वेदस्वरूप सूर्य को पुष्प-कुशांकुर मिश्रित अर्घ्य दिया॥ ९९॥

तदनु जनकराजधानीं रामलक्ष्मणनिरीक्षणकौतुकादनवरतपतितेन[2] विकचकुवलयनिचयोपचीयमानमेचकमरीचिमलिम्लुचेन[3] पौरनारी-

---

१. 'दर्भापगर्भं' इति पा०। २. 'पातितेन' इति पा०।
३. 'मरीचिवीचिमलि' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लोचन[1]रोचिषा कवचितनरपतिपथां विश्वामित्रः प्रविश्य दशरथतनयाविदम[2]भाषत।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात् विश्वामित्रः, रामलक्ष्मणेत्यादिः—रामलक्ष्मणयोः (कर्मणोः) निरीक्षणे विलोकने यत् कौतुकं कौतूहलं तस्मात्, अनवरतपतितेन अनवरतं सततं पतितेन प्रसृतेन, विकचेत्यादिः—विकचानि विकसितानि यानि कुवलयानि नीलकमलानि तेषां निचयः समूहस्तस्य उपचीयमानाः सतत प्रवर्धमानाः याः मेचकमरीचयः श्यामलकान्तयः तासां मलिम्लुचेन पाटच्चरेण लुण्ठाकेनेत्यर्थः, तद्वन्नीलवर्णेनेति यावत्। पौरनारीलोचनरोचिषा—पौरनारीणां लोचनरोचिषा नेत्रकान्त्या, कवचितनरपतिपथाम्—कवचितः आवृतः नरपतेः पन्थाः नरपतिपथः राजमार्गः यस्यास्ताम् जनकराजधानीम् मिथिलानगरीं प्रविश्य दशरथतनयौ रामलक्ष्मणावुद्दिश्य इदम् वक्ष्यमाणम् अभाषत उक्तवान्। पुरसुन्दरीणां नीलकमलवन्नीलवर्णानि नयनानि रामलक्ष्मणविलोकनाय सततं राजमार्गे पतन्ति स्म तन्नेत्राणां प्रभया राजमार्गस्तदानीं संवलित इव भवतिस्म। तादृशीं जनकपुरीं प्रविश्य विश्वामित्रोऽनेन प्रकारेण रामलक्ष्मणावभाषतेत्याशयः। 'कौतूहलं कौतुकं च कुतूहलम्' 'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामल मेचकाः।' 'प्रतिरोधिपरस्कन्दि पाटच्चर मलिम्लुचाः।' इति सर्वत्रामरः।

तत्पश्चात् रामलक्ष्मण को देखने के कुतूहल से निरन्तर पड़ने वाली, विकसित नीलकमल समूह की प्रवर्धमान कान्ति को हरने वाली, पौराङ्गनाओं की नेत्रकान्ति से जिसका राजमार्ग आच्छन्न हो रहा था ऐसी जनक की राजधानी मिथिलापुरी में प्रवेश कर विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण से इस प्रकार कहा—

अस्यां खलु नगर्यामारब्धयज्ञस्य जनकस्य भागधेयात्सीता नामधेयभाजनमजीजनत्कन्यारत्नं रत्नगर्भा भगवती।

अस्यामिति। अस्यां नगर्यां मिथिलायाम्, खल्विति वाक्यालङ्कारे। भगवती पूज्या रत्नगर्भा पृथिवी, आरब्धयज्ञस्य प्रारब्धमखस्य जनकस्य भागधेयात् भाग्याद्धेतोः। 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः'

१. 'पौरनारीजनविलोचन' इति पा०। २. 'इत्थम्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्यमरः। सीतानामधेयभाजनम्–सीतेति नामधेयस्य भाजनं पात्रम्, कन्यारत्नम् श्रेष्ठां कन्यकामित्यर्थः। अजनत् जनयामास। 'रत्नं श्रेष्ठे मणावपि' इति विश्वः।

इस मिथिला नगरी में यज्ञ करते हुए राजा जनक के भाग्य से भगवती रत्नगर्भा (पृथिवी) ने सीता नामक कन्यारत्न को जन्म दिया (रत्नगर्भा से रत्न का जन्म युक्त ही है)।

अस्याः[1] पुनः किमपरं[2] माहात्म्यम्।

अस्या इति। अस्याः मिथिलायाःकिं पुनः अपरम् इतोऽन्यत्, माहात्म्यं (वर्णनीयमस्ति)। यत्र भगवती सीता जन्मालभतास्या मिथिलायाः नेतः परं किमपि माहात्म्यं वर्णनीयमस्ति।

इस मिथिलापुरी का इसके अतिरिक्त कौन सा माहात्म्य कहा जाय। (सीता का यहाँ जन्म लेना ही इस नगरी का सबसे बड़ा माहात्म्य है)।

यतः[3]—

देव्या[4] यस्या वसनमुदधिः पीठिका हाटकाद्रि-
र्हारः सिन्धुः सगरतनयस्वर्गमार्गैकबन्धुः।
क्रीडाशैलः [5]प्रथमपुरुषक्रोडदंष्ट्रा च तस्याः
सीतामातुर्जगति मिथिलां सूतिकागेहमाहुः॥ १००॥

यतः, देव्या इति। यतः यस्मात् कारणात्। यस्याः देव्याः पृथिव्याः, उदधिः समुद्रः, वसनम् वस्त्रम्। हाटकाद्रिः सुवर्णगिरिः सुमेरुः (स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम्' इत्यमरः) पीठिका उपवेशनसाधनपीठम्। सगरतनयस्वर्गमार्गैकबन्धुः–सगरतनयानां कपिलकोपाग्निना दग्धानाम् स्वर्गमार्गे एकबन्धुः मुख्यसुहृत्, 'स्वर्गलोकप्रापिका' इत्यर्थः। सिन्धुः सरित् गङ्गेत्यर्थः ('देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः)। हारः मुक्तामाला। प्रथमपुरुषक्रोडदंष्ट्रा-प्रथमपुरुषः विष्णुः, स चासौ क्रोडः वराहश्च, तस्य दंष्ट्रा दन्तविशेषश्च। क्रीडाशैलः विहारपर्वतः, अभूत्। तस्याः सीतामातुः

१. 'तस्याः पुनः' इति पा०। २. 'किं परं किमपि' इति पा०।
३. 'कुतः' इति पा०। ४. 'यस्याः पृथ्व्याः' इति पा०।
५. 'परमपुरुष' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीताजन्मदात्र्याः पृथिव्याः, जगति संसारे मिथिलां सूतिकागेहम् प्रसवगृहम् आहुः कथयन्ति। अत्रोदध्यादिषु वसनत्वादिरूपणाद्रूपकालङ्कारः। तादृश्या महत्तरायाः पृथिव्या अल्पतरायां मिथिलायामाधेयत्वप्रतिपादनादधिकोऽलङ्कारः। तस्य च रूपकानुप्राणितत्वात् संकरः॥ मन्दाक्रान्ता वृत्तम्॥१००॥

जिस देवी (पृथिवी) का उदधि वस्त्र है, सुमेरु पीठ (आसन) है, सगर पुत्रों को स्वर्ग पहुँचाने में बन्धु का कार्य करने वाली गङ्गा गले का हार है, वराह भगवान् की दंष्ट्रा क्रीडापर्वत हैं उस सीता की जननी पृथ्वी देवो का यह मिथिला नगरी प्रसवगृह कही जाती है॥ १००॥

तत्र[1] सीताविवाहार्थममरैरपि दुष्करम्।
जनकः कल्पयामास धनुरारोपणं पणम्॥ १०१॥

तत्रेति। तत्र मिथिलापुर्याम्, जनकः जनको नाम राजा सीतायाः पिता, सीताविवाहार्थम् सीतायाः विवाहार्थम्, अमरैरपि इन्द्रादिदेवैरपि दुष्करम् कर्तुमशक्यम्, धनुरारोपणम्—धनुषः हरकोदण्डस्य आरोपणम् आनमनम् पणम् मूल्यम् (पणो द्यूतादिषूत्सृष्टे भृतौ मूल्ये धनेऽपि च' इत्यमरः) कल्पयामास निर्धारितवान्। यः कोऽपि धनुरारोपयिष्यति स एव सीतां परिणेष्यतीति प्रतिज्ञातवानित्यर्थः॥ १०१॥

उस मिथिला में सीता के विवाहार्थ जनक ने धनुष के आनमन का प्रण किया है (अर्थात् जो धनुष का आरोपण कर देगा उसी के साथ सीता का विवाह होगा—ऐसी प्रतिज्ञा की है) जो देवताओं के लिए भी दुःसाध्य है॥ १०१॥

ततो महर्षिर्जनकस्य राज्ञः सभां सुधर्मासदृशीं प्रपेदे।
तौ चापतुश्चापविलोकलोलौ [2]सचापकौ कोसलराजपुत्रौ॥ १०२॥

तत इति। ततः सीताविवाहपणकथनानन्तरम्, महर्षिः विश्वामित्रः, सुधर्मासदृशीम् सुधर्मा देवसभा तत्सदृशीम् तत्तुल्याम् ('स्यात्सुधर्मा देवसभा' इत्यमरः) राज्ञः जनकस्य सभाम् प्रपेदे प्राप्तवान्। चापविलोकलोलौ धनुर्दर्शनसमुत्सुकौ सचापकौ धनुर्धारिणौ तौ कोसलराजपुत्रौ दशरथतनयौ रामलक्ष्मणौ च आपतुः तां सभामाप्तवन्तौ। उपजातिर्वृत्तम्॥ १०२॥

---

१. 'अत्र' इति पा०। २. सचापलौ' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इतना कहने के बाद देवसभा तुल्य राजाजनक की सभा में महर्षि विश्वामित्र पहुँचे और उनके साथ उस धनुष को देखने के लिए समुत्सुक धनुर्धारी राम और लक्ष्मण भी गये ॥ १०२ ॥

तत्र विधिवदभ्यर्चितः कथितदशरथतनयवृत्तान्तः [1]कौशिकः कौशिकप्रमुखैरमरैरस्मत्कुलमहत्तरे देवराते निक्षिप्तं विशेषतः सीता-शुल्कार्थं मया रक्षितमिदमिति जनकेन प्रदर्शितस्य चापस्या[2]रोपणाय राममादिदेश ।

तत्रेति । तत्र सभायाम् विधिवत् शास्त्रोक्तविधिना अभ्यर्चितः राज्ञा जनकेन पूजितः, कथितदशरथतनयवृत्तान्तः—कथितः जनकं प्रति वर्णितः दशरथतनयस्य रामस्य वृत्तान्तः यज्ञरक्षणताटकावधादिरूपो येन स तथोक्तः, कौशिकः विश्वामित्रः, कौशिकप्रमुखैः इन्द्रादिभिः ('महेन्द्रगुग्गुलूलूक व्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः) अमरैः देवैः अस्मत्कुलमहत्तरे मद्वंशश्रेष्ठे देवराते तन्नाम्नि राजनि निक्षिप्तम् समर्पितम्' विशेषतः प्राधान्येन सीता-शुल्कार्थम् सीतायाः शुल्कार्थम् विवाहमूल्यार्थम् सीताविवाहे पणत्वेनोद्-घोषयितुमित्यर्थः, मया जनकेन रक्षितम् स्थापितमिदं धनुरित्येवं कथयित्वा जनकेन प्रदर्शितस्य चापस्यारोपणाय आनमनाय रामम् आदिदेश आज्ञप्तवान् ।

वहाँ सभा में राजा जनक ने विश्वामित्र का विधिवत् सत्कार किया। विश्वामित्र ने राजा जनक से राम और लक्ष्मण का सारा वृत्तान्त कहा। इसके बाद जनक ने धनुष को दिखाते हुए कहा कि यह धनुष इन्द्रादि देवों से हमारे वंश में श्रेष्ठ पूर्वज राजा देवरात को मिला था, मैंने इसे सीता के विवाह में पण बनाने के लिए रक्खा है। जनक के ऐसा कहने पर महर्षि विश्वामित्र ने धनुष के आरोपण के लिए राम को आदेश दिया।

ततः[3]—

रामे बाहुबलं विवृण्वति धनुर्यज्ञे गुणारोपणं
मा[4] भूत्केवलमात्मना तिलकिते वंशेऽपि वैकर्तने ।

---

१. 'वृत्तान्तः कौशिकप्रमुखैः' इति पा० । २. 'आरोपणे' इति पा० ।
३. 'ततः' इति क्वचिन्न । ४. 'नाभूत्' पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आकृष्टं नितरां तदेव न परं सीतामनोऽपि द्रुतं
भङ्गस्तस्य न केवलं क्षितिभुजां दोःस्तम्भदम्भस्य च ॥१०३॥

ततः राम इति । ततः विश्वामित्रादेशश्रवणानन्तरम् । रामे बाहुबलम् स्वभुजसामर्थ्यम् विवृण्वति प्रकटयति सति, केवलं धनुर्वंशे धनुर्दण्डे गुणारोपणम् प्रत्यञ्चायोजनम् मा भूत् नाजायत, (किन्तु) आत्मना स्वेन रामेण तिलकिते अलंकृते वैकर्तने विकर्तनस्य सूर्यस्य सम्बन्धिनि वंशे कुलेऽपि गुणारोपणम् शौर्यादिगुणार्पणमभूत्। सूर्यवंशावतंसेन रामेणैव धनुष आरोपितत्वात्तद्वंशस्य प्रतिष्ठा संवर्धितेत्यर्थः। ('वंशो वेणौ कुलेऽपि च' इति विश्वः) ('मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्वशौर्यसंध्यादिके गुणः' इत्यमरः)। तद् धनुरेव नितराम् अत्यन्तम् न आकृष्टम् आनमितम्, परं किन्तु सीतामनः सीताया मनः हृदयमपि द्रुतं शीघ्रम् आकृष्टम् स्वाभिमुखीकृतम्। धनुराकर्षणेन हेतुना सीतामनो रामं प्रत्याकृष्टमभूदित्यर्थः। केवलं तस्य शिवधनुषो भंगः द्विधाभवनम् न अभूत्, किन्तु क्षितिभुजाम् भूपतीनाम् दोःस्तम्भदम्भस्य-भुजदण्डगर्वस्य च भंगः विनाशः अभूत्। ('दम्भस्तु कैतवे गर्वे' इति विश्वः)। शिवधनुर्भंगेन हेतुना राज्ञां भुजदण्डबलगर्वो विनाशं गत इत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १०३ ॥

राम ने जब अपना बाहुबल प्रकट किया तो केवल धनुष के वंश (दण्ड) पर ही गुण (मौर्वी) का आरोपण नहीं हुआ किन्तु सूर्यवंश में भी गुण (शौर्यादि) का आरोपण हुआ (अर्थात् सूर्य कुलोत्पन्न राम के द्वारा धनुष का आरोपण होने से सूर्यवंश की प्रतिष्ठा जगत् में विख्यात हो गयी)। केवल वह धनुष हीं नहीं आकृष्ट हुआ (नहीं खींचा गया) किन्तु सीता का हृदय भी राम के प्रति शीघ्र आकृष्ट हुआ (अर्थात् धनुष के खिंच जाने से सीता का हृदय राम की ओर खिंच गया)। केवल धनुष ही नहीं टूटा किन्तु राजाओं के भुज-बल का गर्व भी टूट गया (अर्थात् धनुष के टूटते ही राजाओं के पराक्रम का गर्व जाता रहा) ॥ १०३ ॥

रामाकर्षणभग्नकार्मुकभुवा ध्वानेन रोदोरुधा
दृप्तक्षत्रयशःसितच्छदकुले जीमूतनादायितम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वीरश्रीप्रथमप्रवेशसमये पुण्याहघोषायितं
[1]सीतायाः किल मानसे परिणये माङ्गल्यतूर्यायितम् ॥१०४॥

रामाकर्षणेति । रामाकर्षणभग्नकार्मुकभुवा—रामाकर्षणेन रामकर्तृका कर्षणेन भग्नम् त्रुटितं यत् कार्मुकं तस्माद् भुवा जातेन, रोदोरुधारोदसी द्यावाभूमी रुणद्धि आवृणोतीति रोदोरुत् तेन रोदोरुधा सर्वत्र व्यापिनेत्यर्थः । ध्वानेन ध्वनिना, दृप्तक्षत्रयशःसितच्छदकुले—दृप्ताः दर्पयुक्ताः ये क्षत्राः क्षत्रियाः तेषां यश एव सितच्छदकुलम् हंससमुदायः तत्र, जीमूतनादायितम् मेघशब्द-वदाचरितम् । यथा मेघशब्दश्रवणेन हंसास्तिरोभूय न दृश्यन्ते तथैव रामभग्न-धनुर्ध्वनिं श्रुत्वा दृप्तानां राज्ञां यशांसि लुप्तान्यभवन् । वीरश्रीप्रथमप्रवेशसमये वीरश्रियः वीरलक्ष्म्याः प्रथमप्रवेशसमये, पुण्याहघोषायितम् स्वस्तिवाचन-शब्दवदाचरितम् । हरचापध्वनिः श्रीरामविजयलक्ष्म्याः प्रथमागमनसमये पुण्याहवाचनरूपकार्यं सम्पादितवानित्यर्थः । किलेति निश्चये । सीतायाः मानसे मनस्यनुष्ठीयमाने परिणये विवाहे माङ्गल्यतूर्यायितम् माङ्गल्यार्थं तूर्यध्वनि-वदाचरितम् । हरचापध्वनिमाकर्ण्य सीताया मनसि रामेण सह विवाहोऽनु-ष्ठितस्तत्र हरचापध्वनिस्तूर्यध्वनिकृत्यं सम्पादितवानित्यर्थः । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १०४ ॥

राम के खींचने से जो शिव धनुष टूटा, उसके टूटने से जो ध्वनि हुई वह भूमि से लेकर आकाश तक फैल गयी । उस ध्वनि को सुनकर गर्वीले राजाओं का यश उसी तरह लुप्त हो गया जैसे मेघों की ध्वनि से हंस तिरोहित हो जाते हैं । रामचन्द्र की विजयश्री के प्रथम आगमन रूप माङ्गलिक कार्य में उस ध्वनि ने पुण्याहवाचन का कार्य किया तथा सीता के मानसिक विवाह कृत्य में उस ध्वनि ने मंगल बाजे का कार्य किया ।। १०४ ॥

[2]नवः कठिनकर्षणत्रुटितचापजन्मा क्षणा-
दिशां द्विरद[3]धीङ्कृतः कृतहरित्पतिस्वागतः ।
जगद्भ्रमणकौतुकोच्चलितरामकीर्त्यङ्गना-
प्रयाणपटहध्वनिं प्रथयति स्म [4]तारध्वनिः ॥ १०५ ॥

---

१. 'मैथिल्याः' इति पा० । २. 'रवः' इति पा० ।
३. 'फीत्कृतैः' इति पा० । ४. 'ताराध्वनिः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नव इति। कठिनकर्षणत्रुटितचापजन्मा—कठिनकर्षणेन दृढाकर्षणेन त्रुटितः भग्नो यश्चापः हरधनुः तस्माज्जन्म यस्य सः, दृढाकर्षणभग्नचापसम्भूतः। क्षणात् अतिशीघ्रम्, दिशां द्विरदधीङ्कृतैः—दिग्गजकृतधीङ्कारध्वनिभिः कृतहरित्पतिस्वागतः—कृतं हरित्पतिभिर्दिगीशैः स्वागतं सत्कारो यस्य सः। क्षणादेव दिगन्तव्यापीत्यर्थः। नव अभूतपूर्वः, तारध्वनिः उच्चध्वनिः। जगद्भ्रमणेत्यादिः— जगद्भ्रमणे लोकसंचरणे यत् कौतुकं कौतूहलम् तस्माद्धेतोः उच्चलिता प्रस्थिता या रामकीर्तिरेवाङ्गना युवतिः तस्याः प्रयाणे यात्रारम्भे पटहध्वनिम् भेरीझङ्कारम् प्रथयति स्म प्रकटयति स्म ताद्रूप्यमवापेत्यर्थः। दृढाकर्षणेन भग्नं यद्धरकोदण्डस्तस्मादभूतपूर्व उच्चध्वनिः समुत्पन्नः। स क्षणेनैव दिगन्तव्यापी अभवत्। ततो भीता दिग्गजा यच्चीत्कारमकुर्वन् तेनैव दिक्पालास्तस्य ध्वनेः स्वागतमिवाकुर्वन्। किञ्च संसारसञ्चरणकौतुकाच्चलिताया रामकीर्तिरूपयुवत्या यात्रारम्भे स उच्चध्वनिरिव समजायतेत्याशयः। रूपकालङ्कारः। पृथ्वी वृत्तम्। जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' इति च तल्लक्षणम् ॥ १०५ ॥

जोर से खींचने के कारण धनुष के टूटने से जो अभूतपूर्व घोर शब्द हुआ वह क्षण भर में दिगन्त तक फैल गया। (उससे भयभीत होकर) दिग्गजों के चिग्घाड़ने का जो शब्द हुआ, मानो सभी दिक्पाल उसके द्वारा उस धनुर्भङ्गजन्य शब्द का स्वागत कर रहे हैं और वह धनुर्भङ्ग जन्य शब्द, संसार में संचरणार्थ उत्सुक रामकीर्तिरूप युवती के चल पड़ने पर उसके यात्रा प्रारम्भ में मङ्गल सूचक पटह ध्वनि का रूप प्राप्त कर रहा था ॥ १०५ ॥

तत्र[1] दशरथः सीतापरिणयकृतनि[2]श्चयजनकप्रहितदूताहूतः पुरोहिताभ्युपगमान्मिथिलामुपागमत्[3]।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् काले, सीता परिणयेत्यादिः—सीतायाः परिणयाय रामेण सह विवाहाय कृतःनिश्चयः येन तेन प्रहितः प्रेषितो यो दूतस्तेन आहूतः, पुरोहिताभ्युपगमात्—पुरोहितस्य वसिष्ठस्य अभ्युपगमात् अङ्गीकारात् ('अङ्गीकाराभ्युपगम'—इत्यमरः) मिथिलामुपागमत् आगतः।

उस समय राम के साथ सीता के विवाह का निश्चय करके राजा जनक

१. 'तत्र सीता' इति पा०। २, 'नियम' इति पा०।
३. 'उपागमद्दशरथः' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने दूत भेज कर दशरथ को बुलावा भेजा और पुरोहित वसिष्ठ की स्वीकृति पाकर दशरथ मिथिला आ गये।

यत्कीर्तिस्तिलकायते सुरवधूसंगीतगोष्ठीमुखे
येनाद्यः पितृमान्पुमान्वसुमती येनैव राजन्वती।
इन्द्रः संगरसंकटेषु विजहौ वीरस्य यस्यो[1]न्मुख-
प्रेङ्खत्स्यन्दनकेतनाम्बरदशासंदर्शनाद्दुर्दशाम् ॥ १०६ ॥

यत्कीर्तिरिति। यत्कीर्तिः—यस्य दशरथस्य कीर्तिः, सुरवधूगीतगोष्ठीमुखे सुरवधूनाम् देवाङ्गनानाम् या गीतगोष्ठी सङ्गीतसभा तस्याः मुखम् प्रारम्भ एव मुखम् वदनं तत्र तिलकायते तिलकबिन्दुरिवाचरति सङ्गीतगोष्ठी-प्रारम्भे यस्य कीर्ति देवाङ्गनाः प्रथमं गायन्तीत्यर्थः। मुखं प्रारम्भएव मुखं वदनमिति श्लिष्ट रूपकम्। ('मुखं प्रधानेन प्रारम्भे वक्त्रे' इति नानार्थर-त्नमाला)। येन दशरथेन आद्यः पुमान् पुराणपुरुषो विष्णुः पितृमान् (अभूत्) पुत्रभावेन अवतीर्णत्वाद्विष्णोरपि यः पितृपदं लब्धवानित्यर्थः। येनैव येन दशरथेन, नान्येन वसुमती पृथिवी राजन्वती सुराजशालिनी (अभूत्)। वीरस्य यस्य दशरथस्य, उन्मुखेत्यादिः—उन्मुखमभिमुखं यथा स्यात्तथा प्रेङ्खन्त्यः वायुवशाच्चलन्त्यः स्यन्दनकेतनाम्बरदशाः रथनिबद्धध्वजपताका-ञ्चलानि तासां संदर्शनात् विलोकनात्, इन्द्रः संगरसंकटेषु युद्धरूपदुःस्थितिषु दुर्द-शाम् दीनां दशाम् विजहौ त्यक्तवान्। यं दशरथं साहाय्यार्थमायन्तं विलोक्ये-न्द्रोऽपि देवासुरयुद्धे स्वविजयस्यावश्यंभावित्वात् स्वां दीनां दशां परित्यज्य प्रसन्नतां जगामेत्यर्थः। सोऽयं दशरथो मिथिलामुपागमदिति पूर्वेण सम्बधः। ('वर्त्य-वस्थांशुकांशेषु दशा' इति रत्नमाला) 'तिलकायते' इत्यत्र लुप्तोपमा। 'मुखे' इत्यत्र श्लिष्टरूपकम्। तयोरङ्गाङ्गिभावेन संवलनात् सङ्करः ॥ १०६ ॥

जिसकी कीर्ति को सर्व प्रथम गा कर देवाङ्गनायें अपनी गीत गोष्ठी का श्री गणेश करती हैं। जिन्हें पिता के रूप में पाकर पुराण पुरुष (विष्णु भी) पिता वाले हो गये। जिनसे पृथ्वी राजवन्ती हुई और जिसके रथ की ध्वजा के अञ्चल को वायु द्वारा लहराता और अपनी ही ओर आता देखकर इन्द्र युद्ध संकटों में दुर्दशा का परित्याग करते हैं (अर्थात् जो इन्द्र को साहाय्य प्रदान कर संकट-मुक्त करते हैं, वे राजा दशरथ मिथिला आ गये) ॥१०६॥

१. 'न्मुखः' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]जनकः स्वकनीयांसमाजुहाव कुशध्वजम् ।
हत्वा युधि सुधन्वानं साङ्काश्ये स्थापितं पुरे ॥ १०७ ॥

जनक इति । जनकः मिथिलाधीशः, सुधन्वानम् तदभिधो नृपविशेषम्, युधि रणे हत्वा व्यापाद्य सांकाश्ये पुरे सांकाश्यनाम्नि सुधन्वनगरे स्थापितम् प्रतिष्ठितम्, स्वकनीयांसम् स्वानुजम् कुशध्वजम् (दूतमुखेन) आजुहाव, तत्पुत्र्योरपि विवाहचिकीर्षयाऽऽहूतवानित्यर्थः ॥ १०७ ॥

जनक ने अपने अनुज कुशध्वज को जो युद्ध में सुधन्वा नामक राजा को मार कर उसके सांकाश्य नामक नगर में प्रतिष्ठित किये गये थे (दूत द्वारा) बुला भेजा ॥ १०७ ॥

तदनु ताभ्यामभ्यर्चितः सपुरोहितो दशरथस्तत्र पुत्राणां गोदानमङ्गलं निर्वर्तयामास ।

तदन्विति । तदनु कुशध्वजागमनानन्तरम्, ताभ्याम् जनककुशध्वजाभ्याम् अभ्यर्चितः विधिवत् पूजितः सपुरोहितः वसिष्ठसहितः दशरथः तत्र तस्मिन् समये पुत्राणाम् रामादिपुत्रचतुष्टयस्य गोदानमङ्गलम्-गावो लोमानि दीयन्ते खण्ड्यन्त इति गोदानम् केशान्तः, विवाहात्प्राक्करणीयं केशान्ताख्यं कर्म, तदेव मङ्गलम् निर्वर्तयामास विवाहदीक्षाङ्गभूतत्वेन कृतवान् । ('नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाण लोमसु' इति गोपर्यायेषु केशवः) ।

इसके बाद जनक और कुशध्वज ने बसिष्ठ सहित राजा दशरथ का विधिवत् सत्कार किया और राजा दशरथ ने वहीं पर अपने पुत्रों का गोदान (केशान्त) संस्कार-विशेषरूप मंगल कार्य सम्पन्न कराया ॥

जग्राह जनकात्सीतां तातादेशेन राघवः ।
आम्नायशासनेनार्चां यजमानादिवानलः ॥ १०८ ॥

जग्राहेति । राघवः श्रीरामचन्द्रः तातादेशेन तातस्य पितुर्दशरथस्य आदेशेन आज्ञया, जनकात् दातुः, सीताम् तदभिधानां तस्य पुत्रीम् आम्नायशासनेन वेदवचनेन यजमानात् यजनशीलात् गृहस्थादेः अर्चाम् होमादिसत्क्रियाम्, अनलः अग्निरिव जग्राह गृहीतवान् । यथाऽनलो वेदवचसा यजमानाद्धोमादिसत्क्रियां गृह्णाति तथैव रामो दशरथादेशेन जनकात् सीतां गृहीतवानित्यर्थः । उपमालङ्कारः ॥ १०८ ॥

१. 'ततः । जनकः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिता की आज्ञा से रामचन्द्र ने जनक द्वारा प्रदत्त सीता को स्वीकार किया, जैसे वेदवचन से यजमान द्वारा प्रदत्त होमादि सत्क्रिया को अग्नि देव स्वीकार करते हैं ॥ १०८ ॥

आश्चर्यमेतत् ।

आश्चर्यमिति । एतत् आश्चर्यम् अद्भुतम् (अजायत)

यह एक आश्चर्य की बात हुई ।

गुणमनिमिषचापे कञ्चिदारोप्य सीतां
कुशिकतनयवाक्यादग्रहीद्रामभद्रः ।
तदनु तदनुजन्मा मैथिलेन्द्रस्य चित्ते
निहितबहुगुणः सन्नूर्मिलां लक्ष्मणोऽपि ॥ १०९ ॥

गुणमिति । रामभद्रः श्रीरामचन्द्रः, कुशिकतनयवाक्यात् विश्वामित्र-निदेशात् अनिमिषचापे—अनिमिषः देवः, महादेव इत्यर्थस्तस्य चापे धनुषि, कञ्चित् कमपि, एकमित्यर्थः, गुणम् मौर्वीम् ('गुणोऽप्रधाने रूपादौ मौर्व्यां सूदे' इति विश्वः)। आरोप्य समासज्य सीताम् जनकतनयाम् अग्रहीत् परिणीतवानित्यर्थः। तदनु सीतापरिणयानन्तरम् तदनुजन्मा तस्य रामस्यानुजः लक्ष्मणोऽपि मैथिलेन्द्रस्य जनकस्य चित्ते हृदये निहितबहुगुणाः-निक्षिप्ताः बहवः विद्याविनयादयोऽनेके गुणा येन स तथोक्तः सन् ऊर्मिलाम् तन्नाम्नीं जनकस्यौरसीं पुत्रीम्, अग्रहीत् इत्येतदाश्चर्यमिति पूर्वेण सम्बन्धः।

शिवधनुष्येकं गुणं (मौर्वीम्) समासज्य रामकर्तृकसीताग्रहणं युक्तमेव, चापस्य मूर्तत्वेन तत्र गुणारोपस्य सुकरत्वात्। अमूर्ते जनकचित्ते परयोगं विनैव कनीयान् सन्नपि लक्ष्मणो न ह्येकं किन्तु बहून् गुणान् समासज्योर्मिलामग्रहीदित्येवाश्चर्यमित्यर्थः। हरचापारोपणेन जनकप्रतिज्ञां पूरयता श्रीरामेण यो लोकोत्तरपराक्रमः प्रदर्शितस्तेन परितुष्टो जनकस्तच्छुल्कतया सीतां रामाय ददौ। रामवदेव तदनुजो लक्ष्मणोऽपि विद्याविनयादिगुणोपेत इत्यालोच्य जनको लक्ष्मणायोर्मिलां ददाविति भावः। मालिनी वृत्तम् ॥ १०९ ॥

रामचन्द्र ने विश्वामित्र की आज्ञा से हर धनुष पर केवल एक गुण (मौर्वी) को आरोपित कर सीता को स्वीकार किया और उसके बाद उनके अनुज लक्ष्मण ने जनक के हृदय में अनेक गुण (शौर्यादि) निहित कर ऊर्मिला को स्वीकार किया ॥ १०९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततो भरतशत्रुघ्नौ कुशध्वजनियोगतः।
माण्डवीश्रुतकीर्तिभ्यामभूतां गृहमेधिनौ ॥ ११० ॥

तत इति। ततस्तदनन्तरम्, भरतशत्रुघ्नौ कुशध्वजनियोगतः कुशध्वजवचनात्, पञ्चम्यास्तसिः। माण्डवीश्रुतकीर्तिभ्याम् गृहमेधिनौ गृहस्थौ, अभूताम्। क्रमेण माण्डवीश्रुतकीर्त्याख्ये कुशध्वजपुत्र्यौ परिणीतवन्ताविर्थः ॥ ११० ॥

तदनन्तर कुशध्वज के बचन से भरत और शत्रुघ्न क्रम से माण्डवी और श्रुतकीर्ति के साथ विवाह कर गृहस्थ बने ॥ ११० ॥

अथ दशरथः [1]तनयैः सह कृतविवाहैर्विदेहेभ्यः प्रतिनिवर्तमानः [2]संवर्तसमयसमुज्जृम्भितहुतवहदुः[3]सहरोषं भीषणदुर्वारपराक्रमं क्षत्रवर्गगर्वसर्वंकषपरश्वधधाराधीनरुधिरधारा[4]कल्पितपितृतर्पणं दर्पवतामग्रेसरमुग्रप्रतापिनं[5] तपःसमुचित[6]वल्कलवसनमपि वासनावशादनतिपरिमुषितयुद्धश्रद्धं मध्येमार्गं [7]भार्गवं मुनिं राममद्राक्षीत्।

अथेति। अथ पुत्रचतुष्टयविवाहे सम्पन्नतां गते कृतविवाहैः विहितदारपरिग्रहैः नववधूसंगतैरित्यर्थः। तनयैः रामादिपुत्रैः सह विदेहेभ्यः मिथिलाप्रदेशात् प्रतिनिवर्त्तमानः स्वराजधानीमयोध्यां प्रत्यावर्त्तमानः दशरथः संवर्तसमयेत्यादिः—संवर्तसमये प्रलयकाले समुज्जृम्भितः प्रचण्डतां गतो यो हुतवहः अनलः तद्वत् दुःसहः सोढुमशक्यः रोषः क्रोधो यस्य तम्, भीषणदुर्वारपराक्रमम्-भीषणः भयङ्करः, दुर्वारः निवारयितुमशक्यश्च पराक्रमो यस्य तम्, क्षत्रवर्गेत्यादिः—क्षत्रवर्गस्य क्षत्रियसमूहस्य यो गर्वः शौर्याहङ्कारः तस्य सर्वङ्कषः साकल्येण विनाशको यः परश्वधः परशुस्तस्य धारा तीक्ष्णाग्रभागः तस्या अधीना तया प्रवाहितेत्यर्थः या रुधिरधारा छिन्नक्षत्रियाणां शोणितप्रवाहः तया कल्पितमनुष्ठितं पितृतर्पणं येन तादृशम्, दर्पवतामग्रेसरम् दर्पः शौर्यादिजनितगर्वस्तद्वतामग्रेसरम् अग्रगण्यम् अतिगर्वोद्धतमित्यर्थः। उग्रप्रतापिनम् प्रचण्डप्रतापशालिनम्, तपःसमुचितवल्कलवसनम् तपस्योचितं वल्कलवसनं धार-

१. 'स्वतनयैः' इति पा०। २. दुर्निमित्तदूयमानान्तरङ्गः संवर्त' इति पा०।
३. 'दुःसहरोषभीषणम्' पा०। ४. 'परिकल्पित' इति पा०।
५. 'समुदग्रतापम्' इति पा०। ६. 'वल्कलमयवसनं वसानम् इति पा०।
७. भार्गवमुनिमन्विष्टरामभद्रम्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यन्तमित्यर्थः । तथापि वासनावशात् प्राक्तनसंस्कारवशात् क्षत्रियायां जातत्वादित्यर्थः अनतिपरिमुषितयुद्धश्रद्धम्–नात्यन्तं परिमुषिता अपगता युद्धश्रद्धा समरादरो यस्यतम्' भार्गवम् भृगुवंशजम् मुनिं रामम् परशुरामम्' मध्येमार्गम् पथि अद्राक्षीत् दृष्टवान् ।

विवाहित पुत्रों के साथ राजा दशरथ मिथिला से जब (अपनी राजधानी अयोध्या को) वापस आ रहे थे, मार्ग में उन्हें उस भार्गव वंशीय परशुराम का दर्शन मिला, जो (उस समय) प्रलय काल में प्रचण्ड हुए अग्नि की तरह रोषयुक्त हो रहे थे। जिनका पराक्रम अत्यन्त भीषण और अनिवार्य था। जिन्होंने क्षत्रियों के गर्व को दूर करने वाले परशु की धार से बहायी गयी (क्षत्रियों के) रुधिर की धार से अपने पितरों का तर्पण किया था। जो दर्प वालों में अग्रगण्य थे। जिनका प्रताप अत्यन्त प्रचण्ड था। तपोऽनुकूल वल्कल वसन धारण कर लेने पर भी पूर्व संस्कारवश जिनकी युद्धप्रियता सर्वथा दूर नहीं हो सकी थी।

अप्राक्षीच्च तन्निरीक्षणादेव प्रक्षीणहर्षोऽपि महर्षिभिः [१]सह विधाय सपर्यामा[२]र्यशील, कुशलमिति।

अप्राक्षीदिति । तन्निरीक्षणादेव–तस्य परशुरामस्य निरीक्षणात् दर्शनादेव, प्रक्षीणहर्षः विगतानन्दोऽपि, महर्षिभिः सह वसिष्ठादिसहितः, सपर्याम् परशुरामस्य विधिवत् सत्कारम्, विधाय कृत्वा, आर्यशील सत्स्वभाव ! कुशलम् ? अपि भवतः कुशलम् इति अप्राक्षीत् पृष्टवान् । 'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्' इति स्मृत्युक्तेः ।

परशुराम को देखते ही दशरथ का हर्ष जाता रहा तथापि (वसिष्ठादि) महर्षियों को साथ लेकर उन्होंने परशुराम का विधिवत् सत्कार किया और 'हे आर्यशील, आप कुशल से तो हैं'—इस प्रकार कुशल-प्रश्न किया।

अथ दशरथवाणीं तामश्रृण्वन्प्रसन्नां
भृगुपतिरिदमूचे [३]प्रश्रितं रामभद्रम् ।
अवजिगमिषुरासं जीर्णचापात्तकीर्ते-
रविदितपरशोस्ते दोर्मदं कार्मुकेऽस्मिन् ॥१११॥

१. 'समम्' इति पा० । २. 'आर्यशीलः कुशलमन्वयुक्त' इति पा० ।
३. 'प्रस्थितम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथेति। अथ दशरथे कुशलं पृष्टवति, प्रसन्नाम् प्रसादगुणयुक्ताम् मधुरामित्यर्थः तां दशरथवाणीम् पूर्वोक्त दशरथवचनम् अशृण्वन् अनाकर्णयन् उपेक्षमाण इत्यर्थः। भृगुपतिः परशुरामः, प्रश्रितम्--परशुरामस्य ब्राह्मणत्वेन तं प्रति विनीतम्, रामभद्रम् श्रीरामम् इदम् वक्ष्यमाणम् ऊचे उक्तवान्। जीर्णचापात्तकीर्तेः--जीर्णः पुराणः गतसार इत्यर्थः, यश्चापः शिवधनुस्तेन तद्-भजनेनेत्यर्थः आत्ता लब्धा कीर्तिः यशो येन तस्य, अविदितपरशोः--न विदितः ज्ञातः परशुः मदीयपरशुप्रभावो येन तस्य, ते तव रामस्य, दोर्मदम् भुजदर्पम्, अस्मिन् मदीये कार्मुके धनुषि, अवजिगमिषुः अवगन्तुं ज्ञातुमिच्छुः, आसम् अभवम्। तस्मादित आगतोऽस्मि इति भावः। दशरथोक्तं वचनमुपेक्षयाऽश्रृण्न्निव परशुरामो विनीतं राम प्राह--"त्वं जीर्णधनुर्भञ्जनेन यशोलब्धवान् मम परशुना त्रिःसप्तकृत्वः क्षत्रिया विदारिता इति परशुप्रभावं न जानासि। तव भुजबलं स्वकीयेऽस्मिन् धनुषि परीक्षितुकामोऽहमित आगतः" इति। मालिनीवृत्तम् ॥ १११ ॥

इसके बाद दशरथ के मधुर वचन को (उपेक्षाभाव से) अनसुना करके परशुराम ने विनीत राम से कहा--तुम ने शिव के पुराने धनुष को तोड़ कर यश प्राप्त कर लिया। मेरे परशु का प्रभाव तुम्हें विदित नहीं है। तुम्हारे भुजबल की इस अपने धनुष पर परीक्षा करने की इच्छा थी, इसलिए मैं इधर चला आया हूँ ॥ १११ ॥

आदाय तत्सगुणमाशु विधाय तत्र
सन्धाय बाणम[1]वधार्य तपोधनत्वम्।
[2]तज्जीवितस्य दयमानमना मनीषी
सम्भूतघोरसमराद्विरराम रामः ॥ ११२ ॥

आदायेति। मनीषी विवेकसम्पन्नः रामः तत् भार्गवधनुः आदाय गृहीत्वा आशु तत्कालमेव सगुणं आततज्यम् ('मौर्वीज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः) तत्र धनुषि बाणं सन्धाय शरमारोप्य, तपोधनत्वम् परशुरामस्य तपोधनत्वेनावध्यत्वमित्यर्थः। अवधार्य विचार्य, तज्जीवितस्य तस्य परशुरामस्य-जीवितस्य जीवनस्य दयमानमनाः दयालुहृदयः सन् ('अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति सूत्रेण 'जीवितस्य' इत्यत्र षष्ठी) सम्भूतघोरसमराद्--समुपस्थितभयङ्कर युद्धात्, विरराम विरतोऽभूत्।

१. 'अवधाय' इति पा०। २. 'तज्जीविताय' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विवेकशीलो रामः परशुरामधनुर्गृहीत्वा तत्क्षणमेव तद्धनुराततज्यं कृत्वा तस्मिन् शरमारोप्य 'अयं तपस्वी ब्राह्मणश्च तस्मादवध्यः' इति विचार्य दयमानमनाः सन् प्रहारमकुर्वन् समुपस्थितादपि युद्धाद्विरतोऽभूदित्यर्थः ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ११२ ॥

विवेक शील राम ने परशुराम का धनुष लेकर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर बाण (भी) आरोपित कर दिया। वे परशुराम को तपस्वी ब्राह्मण समझ कर उनके जीवन के प्रति दया करते हुए उस उपस्थित घोर युद्ध से विरत हो गये ॥ ११२ ॥

तावुभौ भृगुवंशसम्भवौ चापदण्डजमदग्निसम्भवौ।
प्रह्वभावमवलम्ब्य केवलं राघवार्पितगुणौ बभूवतुः ॥ ११३ ॥

तावुभाविति । भृगुवंशसम्भवौ-भृगुः तन्नामाऋषिः वंशः वेणुः, तौ सम्भवः उत्पत्तिस्थानं ययोस्तौ, चापदण्डजमदग्निसम्भवौ धनुर्दण्डपरशुरामौ तावुभौ प्रह्वभावम् आरोपणताप्रयुक्तनम्रत्वं विनयावनतत्वं च अवलम्ब्य केवलम् राघवार्पितगुणौः-राघवेण अर्पितः गुणः प्रत्यञ्चा सत्त्वगुणश्च ययोस्तौ तथोक्तौ बभूवतुः सञ्जातौ। धनुर्नतभावमवलम्ब्य रामार्पितप्रत्यञ्चायुक्तं सञ्जातम्, तद्दृष्ट्वा गर्वं विहाय नतभावमवलम्ब्य परशुरामश्च रामार्पितसत्त्वगुण-सम्पन्नो जातः इत्यर्थः। अत्र चापदण्डपरशुरामयोः केवलप्रकृतयोः प्रह्वभावा-बलम्बन -- राघवार्पितगुणयुक्तभवनरूपसमानगधर्माभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिताऽ-लंकारः। गुणपदे च श्लेषालङ्कारः। तयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ॥ रथोद्धता वृत्तम् ॥ ११३ ॥

भृगु तथा बाँस से उत्पन्न परशुराम तथा धनुर्दण्ड दोनों नम्रता का अव-लम्बन लेकर केवल राम द्वारा अर्पित गुण (१—सत्त्वगुण, २—मौर्वी) से युक्त हो गये। (परमुराम राम का पराक्रम देखकर नम्र बन गये इस प्रकार राम ने उन्हें सत्त्वगुण से युक्त कर दिया और धनुर्दण्ड झुक गया तों राम ने उसे गुण—मौर्वी से युक्त कर दिया) ॥ ११३ ॥

युगपत्प्राप्तगुणयोश्चाप[1]भार्गवरामयोः ।
ऋजुता वक्रतां प्राप वक्रतापि तथार्जवम् ॥ ११४ ॥

युगपदिति । युगपत् एकस्मिन्नेवकाले, प्राप्तगुणयोः-प्राप्तः गुणः मौर्वी

१. 'भार्गवयोस्तयोः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्त्वगुणश्च ययोस्तयोः, चापभार्गवरामयोः धनुर्दण्डपरशुरामयोः (क्रमेण) ऋजुता धनुर्दण्डगता सरलता वक्रताम् कौटिल्यमाप प्राप्तवती, वक्रता परशुरामगतकौटिल्यमपि आर्जवम् सारल्यं साधुत्वं प्राप प्राप्तवती । समौर्वीकत्वाद्धनुर्दण्डस्यार्जवमपगतं तत्स्थानं कौटिल्येन गृहीतम् । अहङ्कारपरित्यागेन परशुरामस्य वक्रताऽपगता तत्स्थानं साधुत्वेन गृहीतमित्यर्थः । अत्र प्राप्तगुणपदार्थस्य ऋजुतावक्रतयोरितरेतरभावप्राप्तौ हेतुत्वात् काव्यलिङ्गम् । 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' इति लक्षणात् । धनुर्गुणप्राप्त्यनन्तरकालीनत्वेपि भार्गवगुणप्राप्तेरेककालीनत्वप्रतिपादनेन तदसम्बन्धेऽपि सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः । 'ऋजुता वक्रताम्, वक्रता चार्जवं प्राप' इत्यत्र विरोधाभासालङ्कारः । तेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ११४ ॥

यद्यपि धनुष और परशुराम दोनों को एक ही साथ गुण (१—मौर्वी, २—सौम्यता) प्राप्त हुआ, किन्तु धनुष की सरलता कुटिलता में और परशुराम की कुटिलता सरलता में परिणत हो गयी ॥ ११४ ॥

ततस्तत्क्षणममोघेन राघवः शरेण भार्गवस्य [1]स्वर्गतिं रुरोध ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, राघवः श्रीरामचन्द्रः, अमोघेन अव्यर्थेन शरेण बाणेन तत्क्षणम् तस्मिन्नेव काले भार्गवस्य परशुरामस्य स्वर्गतिम् स्वर्गगमनम् रुरोध भग्नां कृतवान् ।

इसके बाद राम ने अपने अमोघ बाण से परशुराम का स्वर्गगमन रोक दिया ।

स्थाने हि तत् ।

स्थान इति । तत् परशुरामस्य स्वर्गतिनिरोधनम्, स्थाने हि युक्तं खलु । "युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः ।

राम के द्वारा परशुराम के स्वर्गगमन का रोका जाना ठीक ही है ।

नूनं जनेन पुरुषे महति प्रयुक्त-
मागः परं तदनुरूपफलं प्रसूते ।
कृत्वा रघूद्वहगतेः क्षणमन्तरायं
यद्भार्गवः परगतेर्विहतिं प्रपेदे ॥ ११५ ॥

---

१. स्वर्गगतिम्' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नूनमिति। जनेन केनापिजनेन, महति पुरुषे महानुभावे पुरुषे विजये प्रयुक्तम् कृतम् आगः अपराधः ('आगोऽपराधोमन्तुश्च' इत्यमरः) नूनं निश्चयेन परम् अत्यन्तम् तदनुरूपफलम् अपराधानुरूपफलं प्रसूते जनयति। कोऽपिजनो महति पुरुषे विषये अपराधं कृत्वा तदनुरूपफलमवश्यं प्राप्नोतीत्यर्थः। दृष्टान्तेनोक्तार्थमेव समर्थयति—कृत्वेति। यत् यस्मात्कारणात् भार्गवः परशुरामः रघूद्वहगतेः रघूद्वहस्य रामस्य गतेः मिथिलातोऽयोध्यां प्रतिगमनस्य क्षणम् कियन्तं कालम् अन्तरायम् विघ्नं कृत्वा परगतेः स्वर्लोकगमनस्य विहतिम् बाधाम् प्रपेदे प्राप्तवान्। विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः। बसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ११५॥

कोई भी मनुष्य महान् पुरुष के विषय में घोर अपराध करने पर तदनुरूप फल अवश्य पाता है। मिथिला से अयोध्या वापस जाते समय परशुराम ने राम के गमन में क्षण भर बाधा पहुँचायी तो उनका (भी) स्वर्गगमन बाधित हो गया॥ ११५॥

अथ सङ्क्रान्तया जामदग्न्यशक्तिसम्पदा सम्पन्नं पन्नगपरिवृढभोगभुजाभिरामं राम[1]मविरलमालिङ्ग्य मूर्ध्न्युपाघ्राय दशरथः[2]परिखयेव परिसरे परिसरन्त्या सरयूसरितानुविद्धामयोध्यां दारकान् सदारान् सादरमवलोकयन्तीनां पौरपुरन्ध्रीणां[3]नीरन्ध्रितगवाक्षैः कटाक्षैः सौन्दर्यवञ्चितता[4]पिञ्छैः[5]पिञ्छातपत्रायमाणधवलातपत्रः प्रविवेश।

अथेति। अथानन्तरम्, संक्रान्तया परशुरामं परित्यज्य रामं प्रविष्टया जामदग्न्यशक्तिसंपदा परशुरामसामर्थ्यसम्पत्त्या संपन्नम् युक्तम्, पन्नगपरिवृढभोगभुजाभिरामम्—पन्नगानां सर्पाणां परिवृढः स्वामी शेषनाग इत्यर्थः तस्य भोगः कायः स इव भुजौ बाहू ताभ्या अभिरामम् मनोहरम् ('भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः)। एतेन रामभुजयोरसाधारणसामर्थ्यशालित्वं सूचितम्। रामम् अविरलम् गाढम् आलिङ्ग्य आश्लिष्य मूर्ध्नि शिरसि उपाघ्राय आघ्राणं कृत्वा, पुत्रे कृच्छ्रान्मुक्ते वात्सल्यवशात्तथाकरणमिति प्राचीनाचारादितिभावः। परिखया—परिखा निखातजलाधारदुर्ग-

१. अविरलपुलकम् इति पा०। २. 'सपरिखयेव' इति पा०।
३. 'नीरन्ध्रत' इति पा०। ४. 'तापिच्छैः' इति पा०।
५. 'पिच्छातपत्रा' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः तयेव, परिसरे पर्यन्तभुवि समीपप्रदेशे ('पर्यन्तभूः परिसरः' इत्यमरः) परिसरन्त्या प्रवहन्त्या सरयूसरिता सरयूनाम्न्या नद्या अनुविद्धाम् वेष्टिताम् अयोध्याम् तदभिधानां स्वराजधानीम्, सदारान् सपत्नीकान् रामादिपुत्रान् सादरम् सस्नेहमित्यर्थः। अवलोकयन्तीनाम् पौरपुरन्ध्रीणाम् नगरवर्त्ति-सौभाग्यसम्पन्नललनानाम्, नीरन्ध्रितगवाक्षैः–नीरन्ध्रिताः आच्छादिताः, छिद्रशून्याः कृता इत्यर्थः गवाक्षाः वातायनानि यैस्तादृशैः, सौन्दर्यवञ्चित-तापिञ्छैः--सौन्दर्येण वञ्चितानि निर्जितानि तापिञ्छानि तमालतरुकुसुमानि यैस्तादृशैः, कटाक्षैः दृष्टिभिः ('कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिञ्छः' इत्यमरः) पिञ्छातपत्रायमाण धवलातपत्रः—पिञ्छातपत्रम् मयूरबर्हनिर्मितंछत्रम् तदिवाचरति पिञ्छातपत्रायमाणम्, धवलम् शुभ्रम् आतपत्रं छत्रं यस्य स तथोक्तः, ('पिञ्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः) दशरथः प्रविवेश प्रविष्टवान्। अयमाशयः–परशुरामाद्वैष्णवी शक्तिः श्रीरामे सङ्क्रान्ता ततः महाशक्तिसम्पन्नं शेषनाग-कायोपभुजशालिनं रामं परशुरामसंभावितकृच्छ्राद्‌उन्मुक्ततया दशरथो दृढमा-श्लिष्य शिरस्याघ्राय च स्वपुरीं प्रविवेश या शत्रुप्रवेशनिवारणार्थमिव परिखयेव परिसरे प्रवहन्त्या सरय्वा वेष्टिता विद्यते। सपत्नीकान् रामादीन् तत्तनयान् द्रष्टुं सोत्कण्ठा अयोध्यापुरनार्यः स्वकटाक्षैः गवाक्षान् छिद्रशून्यानकुर्वन्। तदानीं गवाक्षमार्गेण निर्गताभिस्तमालपुष्पवच्छ्यामाभिस्तन्नेत्रकान्तिभि-र्दशरथस्य श्वेतमपिच्छत्रं श्यामतया मयूरपिच्छनिर्मितमिव प्रतिभातिस्मेति। अत्रातपत्रस्य स्वश्वैत्यपरित्यागेन कटाक्षनीलत्वस्वीकरणेन तद्गुणालङ्कारः।

परशुराम के परास्त हो जाने पर, उनमें से निकल कर वैष्णवी शक्ति राम में सङ्क्रान्त हो गयी। उस शक्ति से सम्पन्न, शेषनाग के शरीर के तुल्य भुजाओं से मनोहर राम का दशरथ ने दृढ आलिङ्गन कर और सिर सूँघ कर अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। साथ में विद्यमान बधूसमेत रामादि पुत्रों को देखने के लिए पुरनारियाँ समुत्सुक हो रही थीं। उन्होंने अपने कटाक्षों से झरोखों को छिद्रशून्य बना दिया। सुन्दरता में तमालपुष्प को भी मात करने वाली उनकी नेत्र प्रभा से राजा दशरथ का श्वेत छत्र (श्याम होने से) मयूरपुच्छ का बना हुआ-सा प्रतीत हो रहा था।

[1]लज्जावशादविशदस्मरविक्रियाभि-
स्ताभिर्वधूभिरतिवेलमवाप्तसौख्यान्।

१. 'तत्र। लज्जा' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इक्ष्वाकुनाथतनयान् प्रथमो रसानां
तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे ॥ ११६ ॥

लज्जेति । लज्जावशात्–मुग्धतया लज्जायत्तत्वाद्धेतोः, अविशदस्मर-विक्रियाभिः–अविशदाः स्पष्टमप्रकाशिताः स्मरविक्रियाः कामचेष्टाः याभिस्ता-दृशीभिः, ताभिर्वधूभिः सीतादिस्वस्वनववधूभिः, अतिवेलम् समधिकम्, अवाप्तसौख्यान् लब्धानन्दान्, चतुरः चतुःसंख्याकान् इक्ष्वाकुनाथतनयान् इक्ष्वाकुनाथः दशरथस्तस्य तनयान् पुत्रान् श्रीरामादीन् तारुण्ययोगचतुरः-तारुण्ययोगेन यौवनागमनेन चतुरः निपुण आनन्दप्रद इत्यर्थः, रसानां प्रथमः नवविधरसानां प्रथमः शृङ्गारः संभोगशृङ्गार इत्यर्थः। सिषेवे सेवितवान्। समुग्धवधूकानां तरुणानां चतुर्णां रामादिराजपुत्राणां सम्भोग शृङ्गारः प्रवृत्त इत्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्ताम् ॥ ११६ ॥

लज्जावश कामजन्यविकारों को स्पष्ट न प्रकट करने वाली मुग्धा सीतादि वधुओं से आनन्द प्राप्त करने वाले तरुण रामादि चारों राजपुत्र यौवनागम में आनन्दप्रद संभोगशृङ्गार का आनन्द प्राप्त करने लगे ॥ ११६ ॥

विद्ययेव त्रयीदृष्टया दर्भपत्राग्रधीः सुधीः ।
राजपुत्र्या तथा रामः प्रपेदे प्रीतिमुत्तमाम् ॥ ११७ ॥

विद्ययेति । दर्भपत्राग्रधीः–कुशाग्रबुद्धिः, सुधीः विद्वान् त्रयीदृष्टया त्रयी वेदत्रयम्, तस्याः दृष्टया पर्यालोचनेन तज्जनितया विद्यया ज्ञानेनेव तया राजपुत्र्या सीतया उत्तमां प्रीतिम् परमानन्दम् प्रपेदे प्राप्तवान्। यथा कश्चित्कुशाग्रबुद्धिर्विद्वान् वेदत्रयपर्यालोचनजन्यविद्यया परमानन्दमनुभवति तथैव श्रीरामचन्द्रः सीतया परमानन्दं लब्धवानिति भावः उपमालङ्कार ॥११७॥

इति श्रीविदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे बालकाण्डं समाप्तम् ।

जैसे कुशाग्रबुद्धि विद्वान् तीनों वेदों के पर्यालोचन से जनित विद्या के द्वारा परमानन्द का अनुभव करता है उसी प्रकार राम सीता के द्वारा परम आनन्द प्राप्त करने लगे ॥ ११७ ॥

॥ इति बालकाण्ड ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ अयोध्याकाण्डम्

गच्छता दशरथेन निर्वृतिं भूभुजामसुलभां भुजाबलात् ।
मातुलस्य नगरे युधाजितः स्थापितौ भरतलक्ष्मणानुजौ ॥ १ ॥

गच्छतेति । भुजाबलात्–स्वबाहुपराक्रमात् ('अथो भुजा द्वयोर्बाहौ करे' इति मेदिनी)। भूभुजाम्—अन्येषां राज्ञाम्, असुलभाम् अप्राप्याम्, निर्वृतिम् सुखम्, ('निर्वाणं निर्वृतिं सुखम्' इत्यमरः) गच्छता लभमानेन अनुभवतेत्यर्थः दशरथेन, भरतलक्ष्मणानुजौ भरतशत्रुघ्नौ, मातुलस्य भरतमातृ-भ्रातुः ('मातुर्भ्राता च मातुलः' इत्यमरः) युधाजित–युधाजिन्नाम्नो नगरे अश्वमेधपुरे स्थापितौ अरक्ष्येताम् । दौहित्रवात्सल्यवशात् तद्द्रष्टु-कामेन केकयेनादिष्टो तत्पुत्रो युधाजित्तदानयनार्थमयोध्यामागतस्तेन सह राज्ञा दश-रथेन तनयौ भरतशत्रुघ्नौ प्रेषितावित्यर्थः। महर्षिबाल्मीकिना श्रीरामायणेऽयोध्याकाण्डप्रारम्भे 'गच्छता मातुलकुलम्' इत्यादि पद्यं निबध्नता 'गच्छता' इति पदं प्रयुक्तम् । तद् भोजेनापि मङ्गलाचरणकामनया चमत्कारप्रदर्शनार्थं वाऽयोध्याकाण्डप्रारम्भे तदाद्यपदं 'गच्छता' इति प्रयुक्तम् । एवमुत्तरत्रापि तत्तत्काण्डप्रारम्भे तत्तदाद्यपदं भोजेन प्रयुक्तमित्यवधेयम् । रथोद्धता वृत्तम्–रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात् ॥ १ ॥

अथ अयोध्या काण्ड

राजा दशरथ अपने बाहुबल से (प्रजा को अकुतोभय कर) अन्य नृपों के लिए दुर्लभ आनन्द का अनुभव कर रहे थे और उन्होंने भरत-शत्रुघ्न को उनके मामा युधाजित् के (आग्रह करने पर) अश्वमेधपुर नामक नगर (ननिहाल) में कर दिया था ॥ १ ॥

अथ दशरथः पुत्रं रामं स्वतस्त्रिजगत्पतिं
स्वविषयमहीमात्रे कर्तुं पतिं विदधे मतिम् ।
भुवनभरणे [1]कल्यं कल्याणभूधरमादरा-
त्स्वगृहपटलीधुर्यस्तम्भं विधातुमना इव ॥ २ ॥

---

१. कल्पं' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथेति । अथानन्तरम् । दशरथः स्वतः स्वभावतः त्रिजगत्पतिम् विष्णोरंशतया त्रिलोकस्वामिनम् पुत्रम् पुत्रत्वेनावतीर्णं रामम् स्वविषयमही-मात्रे—स्वविषया स्वशासनान्तर्गता या मही पृथ्वी तन्मात्रे तावत्यां पृथिव्याम् पतिम् स्वामिनं कर्तुं मतिं विदधे बुद्धिं कृतवान् निर्धारितवान् भुवनभरणे त्रिलोकोद्वहने कल्यं समर्थम्, कल्याणभूधरम् स्वर्णगिरिम् सुमेरुम् ('कल्याण-मक्षये स्वर्णे कल्याणं मङ्गलेऽपि च' इति विश्वः) आदरात् औत्सुक्यात् स्वगृह-पटली-धुर्यम्तम्भम्—स्वगृहपटलभारवाहकस्तम्भम् विधातुमना इव कर्तुकाम इव । विष्णोरवतारतयाऽखिललोकाधीशस्य रामस्य स्वशासितमहीपतिकरण-निर्धारणं त्रैलोक्योद्वहनसमर्थस्य सुमेरोर्गृहपटलभारवाहिस्तम्भकरणनिर्धारण-मिवेति भावः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । हरिणी वृत्तम् 'भवति—हरिणी न्सौ म्रौ स्लौ गो रसाम्बुधि विष्टपैः' इति तल्लक्षणात् ॥ २ ॥

इसके बाद दशरथ ने रामचन्द्र को, जो स्वभावतः तीनों लोकों के स्वामी हैं, स्वशासित महीमात्र का पति (राजा) बनाना चाहा । जैसे वे भुवन के उद्वहन में समर्थ सुमेरु को बड़ी उत्सुकता से, मात्र अपने घर की छत का भार सम्हालने वाला स्तम्भ बनाना चाह रहे हों ॥ २ ॥

तदनन्तरमसौ संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सह पौरवृद्धान् वृद्धश्रवः पुरोधः[1]समान्समाहूय समादिदेश ।

तदिति । तदनन्तरम् तादृशनिर्धारणानन्तरम्' असौ दशरथः मन्त्रिभिः सह संमन्त्र्य विचार्य, वृद्धश्रवः पुरोधसः—वृद्धश्रवाः इन्द्रः तस्य पुरोहितः वृहस्पतिः, तस्य समान् विद्याबुद्धयादिभिस्तत्सदृशान् पौरवृद्धान् पुरे भवाः पौराः, पौराश्चते वृद्धाः इति पौरवृद्धास्तान् आहूय आकार्य समादिदेश उक्तवानित्यर्थः ।

इसके बाद मन्त्रियों से विचारविमर्श कर दशरथ ने इन्द्रपुरोहित वृहस्पति के समान (विद्या-बुद्धि के वैभव से सम्पन्न) नगर के बड़े-बूढ़ों को बुला कर कहा—

विदितमेव हि भवतां शिवतातिमेव मतिं दधानाः सुपथा[2] संच-रमाणाः प्राणिनां दयमानमानसा मानधनाः यशः[3]समार्जनजागरूकाः

१. 'समान् पुरोहितान्' इति पा० । २. 'सुसञ्चरमाणाः' इति पा० ।
३. 'अयशःसंसरणिसंमार्जनजागरूका' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जनोपताप[४] संमार्जनतत्पराः परां निर्वृतिमुपेत्य देवभूयं गताः सर्वे नः पूर्वपुरुषा इति ।

विदितमिति । हीति निश्चये । भवतां विदितमेव—जानन्त्येव भवन्तः, न तु मया विज्ञापनीयमित्यर्थः । किं तदित्याह—शिवतातिमेवेति । शिवतातिम् कल्याणकरीमेव मतिं बुद्धिं दधानाः धारयन्तः लोककल्याणमेव कामयमाना इत्यर्थः । सुपथा सन्मार्गेण संचरमाणाः प्रवर्तमानाः नीतिशास्त्रोक्तमार्गेण व्यवहरन्त इत्यर्थः । 'संचरमाणाः' इत्यत्र 'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यात्मनेपदम्' ततः शानच् । प्राणिनां दयमानमानसाः सकलजीवेषु दयापूर्णहृदयाः, मानधनाः स्वाभिमानशालिनः, यशः समार्जनजागरूकाः—यशसः समार्जने सम्पादने जागरूकाः सावधानाः 'यशसि चाभिरुचिरिति नीतिशास्त्रोक्तेरितिभावः । जनोपतापसंमार्जनतत्पराः—जनानां य उपतापाः क्लेशास्तेषां संमार्जने दूरीकरणे तत्पराः संलग्नाः, परां निर्वृतिम् परमानन्दम् उत्पेत्य प्राप्य, देवभूयम् देवत्वम् ('भुवो भावे' इति क्यप्) गताः प्राप्ताः सर्वे नः पूर्वपुरुषाः अस्माकं पूर्वजाः ।

भवन्तो जानन्त्येव यदस्माकं पूर्वजा जनकल्याणमेव कामयमानाः, नीतिशास्त्रोक्तपद्धत्या व्यवहरन्तः, सकलजीवेषु दयां कुर्वन्तः, स्वाभिमानं रक्षन्तः, यशसामर्जने तत्पराः, जनसन्तापान् अपहरन्तः परमानन्दं प्राप्य देवत्वमाप्तवन्त इत्याशयः ।

सुपथा—सुशोभनः पन्था इति सुपन्थाः प्रादिसमासः । पूज्यः पन्था इत्यर्थः । 'पूजायां स्वतिग्रहणं कर्त्तव्यमिति वार्तिकेनात्र 'सु' इत्युपसर्गस्य पूजार्थकत्वम् । तेन सुपथा । 'न पूजनात्' इति सूत्रेण समासान्तनिषेधात् 'ऋक्पूरब्धूपथामानक्षे' इति अप्रत्ययो न भवति । अत्र 'पथोविभाषा' इति वैकल्पिकत्वात्समासान्ताभाव इति कथनं तु चिन्त्यम्, 'पथोविभाषा' इति सूत्रस्य नञ्तत्पुरुष एव प्रवृत्तेरित्यवगन्तव्यम् ।

आप लोगों को ज्ञात ही है (हमें बताने की आवश्यकता नहीं है) कि हमारे सभी पूर्वज जो सदा कल्याणकारिणी बुद्धि रखते थे, सन्मार्ग पर ही चलते थे, प्राणियों पर दया रखते थे, स्वाभिमान ही जिन का धन था, जो यश

---

४. 'मार्जनपराः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्जन करने में जागरूक रहते थे, जो जनता के कष्टों को दूर करने में तत्पर रहते थे; वे (इस प्रकार के आचरण से) परमानन्द प्राप्त करके देवत्व को प्राप्त हो गये।

तस्मादस्माभिरपि तेषां[1] मनीषामनुसरमाणैरेतावन्तं कालं परिपालिताः किल सकलाः प्रजाः।

तस्मादिति। तस्मात् पूर्वजानां तथोक्ताचारत्वाद्धेतोः, अस्माभिरपि तेषां पूर्वजानाम् मनीषाम् बुद्धिम् ('बुद्धिर्मनीषा धिषणा' इत्यमरः) अनुसरमाणैः पितुराचारः पुत्रैरपि पालनीयः इति पूर्वजवदेवाचरद्भिः, एतावन्तं कालम् अद्यपर्यन्तम् सकलाः प्रजाः परिपालिताः रक्षिताः किलेति वाक्यालङ्कारे।

इस लिए हमने भी उन्हीं पूर्वजों की बुद्धि का अनुसरण करते हुए इतने समय तक समस्त प्रजा का पालन किया।

प्रमाणमत्र परिपालन[2]क्रियामिमां मदीयामनुभवन्तो ननु भवन्त[3] एव।

प्रमाणमिति। अत्र अस्मिन् मदुक्तेऽर्थे इमां प्रवर्तमानां मदीयाम् परिपालनक्रियाम् प्रजापालनकृत्यम् अनुभवन्तः अवगच्छन्त इत्यर्थः, भवन्त एव, प्रमाणम् ननुसाक्षिणः नन्वित्यामन्त्रणे। भवन्तो मम प्रजापरिपालनक्रियामवगच्छन्ति, तन्ममैतत्कथनस्य याथार्थ्यं प्रमापयितुं समर्थाः, प्रमाणान्तरोपन्यासेन किंप्रयोजनमिति भावः।

इस विषय में मेरी प्रजापालनपद्धति को अनुभव करने वाले आप लोग ही प्रमाण हैं (प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं है)।

भवताम[4]भ्युपगमानां निगमानां प्रतीपगामिनीं पदवीं न प्रत्येति खलु लोकस्तदस्ति किंचिदभ्यर्थनीयम्।

भवतामिति। भवताम् युष्माकम्, अभ्युपगमानाम् अङ्गीकाराणाम् ('अङ्गीकाराभ्युपगम'–इत्यमरः) भवद्भिः सिद्धान्तयाऽङ्गीकृतानामित्यर्थः,

---

१. 'एतेषां सरणिमनु' इति पा०। २. 'क्रियामनुमवन्तो' इति पा०।
३. 'एवम्' इति पा०।
४. 'अभ्युपगतानां निगमानां वा' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निगमानां नीतिशास्त्राणां प्रतीपगामिनीं प्रतिकूलवर्तिनीम् पदवीम् मार्गम् लोकः जनः न प्रत्येति नानुवर्तते खलु। लोको भवदङ्गीकृतसिद्धान्तं नीतिशास्त्रं मत्वा तद्विरुद्धमार्गाश्रयणं न करोतीत्यर्थः। तत् तस्मात् किञ्चिद् अभ्यर्थनीयम् वक्तव्यमस्ति। अहमपि किञ्चिन्निवेदयितुकामः सन् तत्र विषये भवतां कीदृशी सम्मतिरिति ज्ञातुमिच्छामीत्यर्थः।

आप लोगों के द्वारा सिद्धान्त रूप में अङ्गीकृत नीतिशास्त्र के विरुद्ध मार्ग पर लोग विश्वास नहीं करते हैं अतः मुझे आप से कुछ निवेदन करना है।

मम सुरनरगीतख्यातिभिर्हेतिभिर्वा
दिवि भुवि च समानप्रक्रमैर्विक्रमैर्वा।
नियतमपरिहार्या या जरा सा मदङ्गे
विकचकमलषण्डे[1] चन्द्रिकेवाविरासीत् ॥ ३ ॥

ममेति। सुरनरगीतख्यातिभिः—सुरैर्देवैः, नरैः मानवैश्च गीता संस्तुता ख्यातिः प्रतिष्ठा यासां ताभिः, हेतिभिः शस्त्रैः, ('हेतिः शस्त्रेऽपि नृस्त्रियोः' इति केशवः) वा, दिवि स्वर्गे, भुवि भूलोके च समानप्रक्रमैः समानानुपातैः विक्रमैः पराक्रमैर्वा या जरा वार्धक्यम्, नियतम् निश्चितम् अपरिहार्या परिहर्तुं दूरीकर्तुमशक्या, सा जरा मदङ्गे मम शरीरे विकचकमलषण्डे विकसित-कमलसमूहे चन्द्रिका ज्योत्स्नेव प्रादुरभूत् प्राकटत्। ('मृणालं बिसमब्जादि-कदम्बे षण्डमस्त्रियाम्।' 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्युभयत्राप्यमरः)

देवैर्मनुष्यैश्च येषां ख्यातिं स्तुवन्ति तादृशैर्मदीयैरायुधैर्या जरा दूरीकर्तुमशक्या, स्वर्गे भूलोके च तुल्यरूपैर्मदीयपराक्रमैर्वा या परिहर्त्तुमशक्या सा जरावस्था मम शरीरे प्राकटत्। तया मम शरीरावयवास्तथैव सङ्कोचमाप्नुवन्ति यथा चन्द्रिकया कमलानि सङ्कोचं यान्तीत्याशयः। उपमालङ्कारः। मालिनी वृत्तम्॥ ३॥

जो देवों और मानवों से प्रशंसित मेरे शस्त्रों द्वारा, अथवा स्वर्ग और भूलोक में समानरूप से फैले हुए मेरे पराक्रम द्वारा दूर नहीं की जा सकती

१. 'खण्डे' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है, वह वृद्धावस्था मेरे शरीर में, प्रफुल्ल कमल समूह पर चन्द्रिका के समान प्रकट होने लगी है ।। ३ ।।

तस्मात्समस्तक्षत्त्रवर्गगर्वपाटन[1] वरिष्ठधारापरश्वधभरणभीषणवेषभार्गवभङ्गादपरिच्छिन्नतरशौर्यशालिनि सौजन्यभाजने जनानुरागनिलये निर्मत्सरे[2] वत्सले वत्सेऽस्मिन्विश्वंभराभारं चिरकालधार्यमाणमा[3]र्यैरनुमतः सन्नवतार्य विश्रान्तिसुखमनुभवितुमभिलषामिति ।

तस्मादिति । तस्मात् स्वशरीरे जराविर्भावाद्धेतोः, समस्तक्षत्रेत्यादिः—समस्तक्षत्रवर्गस्य कार्तवीर्यादि समस्तक्षत्रियसमूहस्य गर्वस्य शौर्यदर्पस्य पाटने विदलने वरिष्ठा—अयमेषामतिशयेन उरुः इति वरिष्ठः, स्त्री चेत् वरिष्ठा ख्यातिं गतेत्यर्थः। उरु शब्दात् इष्ठनि, 'प्रियस्थिर'—इत्यादिना उरोर्वरादेशः। तादृशी धारा तीक्ष्णाग्रभागः यस्य तादृशो यः परश्वधः परशुः तस्य भरणेन धारणेन भीषणः भयङ्करः वेषः स्वरूपं यस्य तादृशस्य भार्गवस्य परशुरामस्य भङ्गात् मानमर्दनात् अपरिच्छिन्नतरशौर्यशालिनि अपरिमितपराक्रमशालिनि सौजन्यभाजने सौजन्ययुक्त इत्यर्थः। जनानुरागनिलये लोकप्रेमास्पदे निर्मत्सरे अनसूये, वत्सले वात्सल्यभाजने अस्मिन् प्रोक्तसकलसद्गुणगणान्विते वत्से श्रीरामे चिरकालधार्यमाणम् बहुकालादुह्यमानम् विश्वंभराभारम्–विश्वम्भरा पृथिवी तस्याः भारम् पृथ्वीपरिपालनव्यापारम् आर्यैः अत्रभवद्भिः अनुमतः अनुज्ञातः सन्, अवतार्य निवेश्य निक्षिप्येत्यर्थः विश्रान्तिसुखम्–विश्रामजन्यमानन्दम् अनुभवितुमुपभोक्तुम् अभिलषामि इच्छामीति । 'एवमादिदेश' इति पूर्वोक्तेनान्वयः ।

मैं बूढ़ा हो चला हूँ, अतः आप सब की अनुमति से पृथ्वीपालन का भार जिसे मैं बहुत दिनों से ढोता आ रहा हूँ, राम पर डालकर पूर्ण विश्राम सुख का अनुभव करना चाहता हूँ। राम (भी) समस्त क्षत्रिय जाति के गर्व को दूर करने में विख्यात धार वाले कुठार को धारण करने से विकराल वेष

१. 'पटुधारा' इति पा० । २. 'मत्समे च' इति पा० ।
३. 'आर्यैरमात्यै' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परशुराम का मानमर्दन कर अपने अपरिमित पराक्रम का परिचय दे चुके हैं। वे सौजन्यभाजन तथा लोगों के प्रेमास्पद एवम् असूयाशून्य सर्वथा स्निग्ध हैं।

[1]ततः प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहस्तनितनादाकर्णनसमुदीर्णनिरतिशयाह्लाद[2]संसर्गनिरर्गलनिर्गलत्केकालापिनः कलापिन इव जनाः प्रमदभ[3]वकलकलरवमुखरितहरिन्मुखा बभूवुः।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्। प्रावृषेण्येत्यादिः—प्रावृषेण्यः—प्रावृषिभवः प्रावृषेण्यः वर्षाकालसमुद्भूतः ('प्रावृष एण्यः' इति एण्यप्रत्ययः) यः पयोवाहव्यूहः मेघसमूहस्तस्य यः स्तनितशब्दः गर्जितध्वनिः, तस्य आकर्णनेन श्रवणेन समुदीर्णः समुत्पन्नः यः निरतिशयाह्लादः समधिकानन्दः तस्य संसर्गेण सम्बन्धेन निरर्गलम् अनियन्त्रितं यथा स्यात्तथा निर्गलन्ती निर्गच्छन्ती केका मयूरवाणी ('केका वाणी मयूरस्य' इत्यमरः) ताम् आलपन्ति कूजन्ति तच्छीलाः कलापिनः मयूरा इव जनाः तत्रस्थिता लोकाः, प्रमदभवेत्यादिः—प्रमदभवः हर्षोत्थः यः कलकलरवः कलकलध्वनिः तेन मुखरितम् मुखरीकृतं हरिन्मुखम् दिगन्तरमेव मुखं यस्ते तथोक्ताः बभूवुः समजायन्त। दशरथोक्तं श्रीरामाभिषेकविषयकं वचनमाकर्ण्य वर्षाकालसमुद्भूतमेघसमूहकृतगर्जितध्वनिमाकर्ण्य समुत्पन्नहर्षातिरेकेण केकाध्वनिं कुर्वन्तो मयूरा इव तत्रस्थिताः पौरजना आनन्दजन्यकलकलध्वनिभिर्दिगन्तराणि मुखरीकृतवन्त इत्यर्थः।

दशरथ के इस प्रस्ताव को सुनते ही, वर्षाकालिक मेघ समूह की गर्जित ध्वनि सुनने से अत्यधिक आनन्द के कारण अनियन्त्रित भाव से निकलने वाली केकाध्वनिका आलाप करने वाले मयूरों के समान पौरजनों ने हर्षजनित कलरव से दिशाओं को मुखरित कर दिया!

आनन्दबाष्पविसरो [4]वदने प्रजाना-
माविर्बभूव मकरन्द इवारविन्दे।

---

१. 'निनदाकर्णन' इति पाठान्तरम्।
२. 'निसर्गनिर्गलनिर्गलत्केका' इति पाठान्तरम्।
३. 'भरभव' इति पाठान्तरम्। ४. 'नयने' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामस्य कान्तिमभिषेकदिने भवित्रीं
प्रक्षाल्य चक्षुरिव वीक्षितुमादरेण ॥ ४ ॥

आनन्देति। अरविन्दे कमले मकरन्दः पुष्परस इव, प्रजानाम् जनानां वदने मुखे आनन्द-वाष्प-विसरः—आनन्दाश्रुपूरः, अभिषेकदिने राज्याभिषेक-काले भवित्रीम् भाविनीम् रामस्य कान्तिम् शोभाविशेषम्, चक्षुः नेत्राणीत्यर्थः, प्रक्षाल्य प्रमृज्य आदरेण स्नेहेन वीक्षितुम् द्रष्टुमिव, आविर्बभूव प्रादुरासीत्। यथा जना द्रष्टव्यं वस्तुविशेषं समधिकस्नेहेन द्रष्टुं चक्षुषी प्रमार्जयन्ति तथैव ते पौरजना रामराज्याभिषेकश्रवणजनिताश्रुजलेन स्वनेत्राणि रामस्याभिषेककाले भाविनीं शोभामादरेण द्रष्टुं प्रक्षालयामासुरिवेत्यर्थः। पूर्वार्धे उपमालङ्कारः। उत्तरार्धे फलोत्प्रेक्षा। तयोः परस्परनैरपेक्ष्येण स्थितेः संसृष्टिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥४॥

कमल पर मकरन्द की तरह प्रजा के मुखमण्डल में आनन्दाश्रु छलक पड़े। मानों प्रजा अभिषेक के दिन होने वाली राम की कान्ति को आदर से मन-भर देखने लिए (अभी से) नेत्रों को धोकर स्वच्छ कर लेना चाहती हो ॥ ४ ॥

राजापि तेषां संपत्स्यमानमहोत्सवोत्सुकजनसंमर्दजनिष्यमाणरजोराजिपात[1]परिजिहीर्षयेव रोमाञ्चप्रपञ्चेन कञ्चुकिताङ्गानां प्रमाणातीतां प्रीतिं प्रपन्नानां हर्षप्रकर्षेण द्विगुणीकृतमानन्दमन्तर्नियम्य सुमन्त्रप्रमुखान् मन्त्रिमुख्यानेवमाचख्यौ।

राजापीति। राजा दशरथः अपि, संपत्स्यमानेत्यादिः—संपत्स्यमानेन संभविष्यमाणेन महोत्सवेन रामराज्याभिषेकरूपेण उत्सुकानां जनानां संमर्देन संघातेन जनिष्यमाणः उत्पत्स्यमानः यः रजोराजिपातः धूलिराशिपतनम् तस्य परिजिहीर्षयेव परिहारेच्छयेव रोमाञ्चप्रपंचेन रोमहर्षणप्रसारेण ('रोमाञ्चो रोमहर्षणम्' इत्यमरः) कञ्चुकिताङ्गानाम्—कंचुकितानि कञ्चुकयुक्तानि आच्छादितानीत्यर्थः, अङ्गानि येषां तेषाम् प्रमाणातीताम् अपरिमिताम् प्रीतिम् हर्षम् प्रपन्नानाम् प्राप्तवतां तेषां जनानां हर्ष-प्रकर्षेण

---

१. 'व्रात' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आनन्दाधिक्येन द्विगुणीकृतम् द्विगुणभावं प्रापितम् आनन्दम् अन्तर्नियम्य हृदये निरुध्य सुमन्त्रप्रमुखान् सुमन्त्रादीन् मन्त्रिमुख्यान् अमात्यप्रवरान् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण आचख्यौ उवाच।

राजा दशरथ ने, रामचन्द्र के होने वाले राज्याभिषेक रूप महोत्सव के लिए उत्सुक जनों की भीड़ से उठने वाली धूल से मानों अपने को बचाने के लिए रोमाञ्चप्रसार से शरीर को ढक कर रखने वाले पौरजनों के अपार हर्ष से दुगुने कर दिये गये अपने आनन्द को हृदय में किसी तरह छिपाकर सुमन्त्रादि मुख्य मन्त्रियों से इस प्रकार कहा—

अस्माननाश्रिततपोवनभूमिभागा-
नुन्मुच्यमार्ग परिपालनजागरूकान्।
अम्लानमौग्ध्यमचिरादवलम्ब्य राम-
मेवंविधः कथमुदेति जनानुरागः॥ ५॥

अस्मानिति। अनाश्रिततपोवनभूमिभागान्—न आश्रितः अधिष्ठितः तपोवनभूमिभागः तपोवनभूप्रदेशः यैस्तान्, वानप्रस्थाश्रममस्वीकृतवत इत्यर्थः। मार्गपरिपालनजागरूकान्—मार्गेण नीतिशास्त्रोक्तविधिना परिपालने प्रजासंरक्षणे जागरूकान् सावधानान् उन्मुच्य परित्यज्य, अम्लानमौग्ध्यम्—अम्लानम् अक्षीणम् विद्यमानमित्यर्थः मुग्धभावः बाल्यमित्यर्थः यस्य तम्, रामम् अवलम्ब्य आश्रित्य अचिरात् शीघ्रम्, एवंविधः एतादृशः जनानुरागः लोकप्रीतिः कथम् उदेति उत्पद्यते, आश्चर्यमिदमिति भावः। वृद्धे नृपे विद्यमाने सत्यपि, यूनि राजपुत्रे प्रजानामनुरागस्योदये हेतुद्वयं प्रसिद्धम्, वृद्धस्य नृपस्य स्वीकृत-वानप्रस्थाश्रमत्वं, प्रजासंरक्षणेऽक्षमत्वं वा, तादृशकारणाभावेऽपि बालेऽस्मिन् रामे प्रजानुराग उत्पद्यत इत्याश्चर्यम्। त्रिजगत्पते रामस्य बालकभावकथनेन तस्मिन् दशरथस्य वात्सल्यातिशयः सूचितः। बालेऽपि रामे प्रजानुरागोदयं जानतः पितुर्दशरथस्य हृदये नासूयोदयः किन्तु हर्ष एव 'पुत्रादिच्छेत् पराभवम्' इत्युक्तेरित्यवगन्तव्यम्। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ५॥

अभी हम (वानप्रस्थ लेकर) तपोवन में नहीं गये, नीतिशास्त्रोक्त पद्धति से प्रजा का पालन हम कर ही रहे हैं तथापि इस बालक राम में इतनी जल्दी प्रजा का अनुराग कैसे उत्पन्न हो रहा है॥ ५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तेऽपि नियमितनिजमनोरथाय दशरथाय सविनयमेवं व्यजिज्ञपन् ।

तेऽपीति। ते सुमन्त्रादयोऽमात्या अपि, नियमितनिजमनोरथाय–नियमितः निर्धारितः निजमनोरथः रामराज्यभिषेकरूपो येन तस्मै दशरथाय सविनयम् विनयपूर्वकम्, एवं वक्ष्यमाण प्रकारेण व्यजिज्ञपन् न्यवेदयन्।

सुमन्त्रादि उन मन्त्रियों ने भी, रामराज्याभिषेक को अवश्य करना है ऐसा निश्चय कर चुके हुए दशरथ से सविनय ऐसा निवेदन किया—

देवे स्थितेऽपि तनयं तव रामभद्रं
लोकः स्वयं भजतु नाम किमत्र चित्रम् ।
चन्द्रं विना यदुपलम्भनहेतुभूतं
क्षीरोदमाश्रयति किं तृषितश्चकोरः ॥ ६ ॥

देव इति। देवे भवति राज्ञि, स्थितेऽपि प्रजापालनतत्परेऽपि सति तव भवतः तनयम् पुत्रं रामभद्रम् श्रीरामचन्द्रम् लोकः जनः स्वयम् आत्मनैव भजतु आश्रयतु नृपत्वेन वाञ्छतु नाम, अत्र तेषामीदृशेऽभिलाषे किं चित्रम् किमाश्चर्यम्, न किमप्याश्चर्यमित्यर्थः । तत्र दृष्टान्तमाह–चन्द्रं विनेति। तृषितः पिपासितश्चकोरश्चन्द्रिकापायी पक्षिविशेषः, चन्द्रं विना चन्द्रमुन्मुच्येत्यर्थः, तदुपलम्भनहेतुभूतम्–तस्य चन्द्रस्योपलम्भने अवाप्तौ, उत्पत्तावित्यर्थः, हेतुभूतम् कारणभूतम्, क्षीरोदम् क्षीरसागरम्, आश्रयति सेवते किम्? नाश्रयत्येवेत्यर्थः। चकोरश्चन्द्रमेवाश्रयति न तु चन्द्रजनकं क्षीरसागरम्, प्रजाजनोऽपि श्रीराममेवाश्रयति न तु तज्जनकं त्वामित्यत्र न किमप्याश्चर्यमित्यर्थः। दृष्टान्तालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

आप के रहते हुए भी प्रजा आप के पुत्र रामचन्द्र को चाह रही है, इसमें आश्चर्य की क्या बात है ! प्यासा चकोर (जिसकी प्यास चन्द्रिका पान से ही बुझती है) चन्द्रमा का ही आश्रय लेता है, उसके जनक क्षीरसागर का नहीं ॥ ६ ॥

तदनन्तरं[1]त्वरे तत्परस्तत्त्वविदां[2]वरिष्ठस्य वसिष्ठस्य शासनादभिषेकोपकरणाहरणाय सामात्यः पौरवर्गः ।

---

१. 'त्वरे तत्त्वविदां' इति पाठान्तरम्। २. 'वरस्य' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदनन्तरमिति । तदनन्तरम्—मन्त्रिभिः सह प्रोक्तप्रकारेण राज्ञि विचार-विमर्शं कृतवति सतीत्यर्थः। तत्त्वविदाम् आगमरहस्यवेतॄणां वरिष्ठस्य श्रेष्ठस्य वसिष्ठस्य सूर्यकुलपुरोहितस्य तदाख्यस्य महर्षेः शासनात् आदेशात् अभिषेकोपकरणाहरणाय—अभिषेकस्य रामराज्याभिषेकस्य उपकरणानि पुण्यतीर्थजल-परिपूरितकनककलशछत्रचामरभद्रासनादीनि, तेषामाहरणाय तान्याहर्तुमित्यर्थः, तत्परः आसक्तः सन् ('तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमरः) सामात्यः मन्त्रिसहितः पौरवर्गः पुरजन समूहः तत्वरे त्वरां चकार ।

इसके पश्चात् तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि की आज्ञा से मन्त्रिगण समेत पुरवासी लोग राम के अभिषेक की सामग्री जुटाने के लिए तत्पर होकर शीघ्रता करने लगे ।

आहूय रामं विनयाभिराममाविः प्रमोदः प्रभुरेवमूचे ।
तवोत्तमाङ्गे मुकुटं विधातुमह्नाय तिष्ये दिवसे यतिष्ये ॥ ७ ॥

आहूयेति । प्रभुः दशरथः, विनयाभिरामम्—विनयेन प्रश्रयेण अभिरामम् रमणीयम्, विनयोपेतमित्यर्थः, रामं श्रीरामचन्द्रम्, आहूय आकार्य स्वसमीपे समुपस्थाप्येत्यर्थः । आविः प्रमोदः—समुपजातहर्षः, प्रमुदितः सन्नित्यर्थः । एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण ऊचे उक्तवान् । अह्नाय = सपदि, तिष्ये दिवसे सर्वार्थ-साधकपुष्यनक्षत्रयुक्ते दिवसे श्व एवेत्यर्थः । ('पुष्ये तु सिध्यतिष्यौ' इत्यमरः) तव रामस्य उत्तमाङ्गे शिरसि ('उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्, इत्यमरः) मुकुटम्—राजलक्षणं स्वर्णनिर्मितशिरोभूषणविशेषम्, विधातुम् कर्तुं स्थाप-यितुमित्यर्थः यतिष्ये यत्नं करिष्ये ।

राजा दशरथ ने, विनययुक्त राम को बुलाकर प्रमुदित हो इस प्रकार कहा—मैं शीघ्र ही (कल) पुष्य नक्षत्र में तुम्हारे सिर पर मुकुट रखने का यत्न करूँगा ॥ ७ ॥

अथ दशरथमनोरथं कौशल्यायै निवेद्य स्वभवनमुपागतस्य रामस्य भगवान् वसिष्ठः संजातकौतुकः कौतुकमङ्गलं निर्वर्तयामास ।

अथेति । अथानन्तरम्, दशरथमनोरथम्—राज्याभिषेकरूपं दशरथा-भिलाषं कौसल्यायै तदाख्यायै स्वजनन्यै निवेद्य विज्ञाप्य स्वभवनम् निज-मन्दिरम् उपागतस्य आयातस्य रामस्य, सञ्जातकौतुकः समुत्पन्नहर्षः भग-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वान् वसिष्ठः कौतुकमङ्गलम् रक्षासूत्रबन्धनरूपं मङ्गलं निर्वर्तयामास चकार। मङ्गलार्थतया शास्त्रोपदिष्टत्वादिति भावः। ('कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः)

तदनन्तर श्रीराम जी राजा दशरथ के उस संकल्प को अपनी माता कौसल्या से निवेदित कर अपने आवासगृह को आ गये। वहाँ वसिष्ठ ने प्रसन्न होकर राम के हाथ में मङ्गलार्थ रक्षासूत्र बाँधा।

आपूरयन्मङ्गलतूर्यघोषैराशावशावल्लभकर्णतालान्।
उज्जृम्भितः कोऽपि गिरामभूमिरुन्मस्तकः पौर[1]जनप्रमोदः ॥ ८ ॥

आपूरयन्निति। मङ्गलतूर्यघोषैः मङ्गलवाद्यध्वनिभिः आशावशावल्लभकर्णतालान्—आशासु दिक्षु ये वशानाम् करिणीनां वल्लभाः प्रिया दिग्गजा इत्यर्थः, तेषां कर्णतालान् कर्णसंचालनोत्थध्वनीन् आपूरयन् वर्धयन्, मङ्गलवाद्यध्वनीनां दिगन्तव्यापित्वादितिभावः। ('वशा स्त्री करिणी वन्ध्या' इत्यमरः) कोऽपि अभूतपूर्वः, गिराम् वाचाम् अभूमिः अविषयः अवर्णनीय इत्यर्थः। उन्मस्तकः उन्नतशिराः, अतिप्रभूत इत्यर्थः, पौरजनानां पुरवासिनां प्रमोदः आनन्दः उज्जृम्भितः उदितोऽभूत्।

पुरवासियों के हृदय में अभूतपूर्व एवम् अवर्णनीय आनन्द का उदय हुआ जो मङ्गलवाद्यों की ध्वनियों से दिग्गजों की कर्णताल ध्वनि को बढ़ाने लगा ॥ ८ ॥

तत्र—

यामेवाहुर्निशिचरकुलोन्मूलने मूलहेतुं
यस्याश्चित्तं प्रकृतिकुटिलं गात्रमित्र बभूव।
अम्भोजिन्याःशिशिर[2]सरसं कासरीवाच्छमम्भः
कैकेय्याः सा [3]हृदयमदयं मन्थरा निर्ममन्थ ॥ ९ ॥

तत्र, यामेवेति। तत्र तस्मिन् पौरजनानां प्रमोदोज्जृम्भणसमये, याम्

१. 'पौरजनातिमोदः' इति पाठान्तरम्।
२. 'सरितः' इति पाठान्तरम्। ३. 'सदयहृदयं' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मन्थरामेव निशिचरकुलोन्मूलने रावणादिराक्षसानां वंशविनाशे मूलहेतुम् आद्यकारणम् आहुः कथयन्ति, जना इति शेषः। यस्याः मन्थरायाः प्रकृतिकुटिलम् प्रकृत्या स्वभावेन कुटिलं वक्रम् चित्तं गात्रमित्रं शरीरसदृशं बभूव, मन्थरायाश्चित्तमपि तद्गात्रवदेव स्वभावतो वक्रमासीदित्यर्थः। सा मन्थरा कैकेयीदासी, अम्भोजिन्याः वाप्याः शिशिरसरसम् शिशिरं शीतलं च तत्सरसं मधुरम् अच्छम् निर्मलम् अम्भः जलम्, कासरी वनमहिषी सेव कैकेय्याः शिशिरसरसम् शीतलमधुरम् अच्छं निर्मलम् हृदयम्, अदयं निर्दयभावेन क्रियाविशेषणमेतत्, निर्ममन्थ आलोडयामास, ईर्ष्यामुद्पाद्य मलिनीचकारेत्यर्थः। यथा काचिद् वनमहिषी सरसीं प्रविश्य तस्याः शीतलं मधुरं निर्मलं पयःपूरं पङ्किलं करोति तथैव मन्थरा कैकेय्या हृदये विश्वासमुत्पादयन्ती स्वप्रवेशं कृत्वा तस्याः स्निग्धं पवित्रं निर्मलं हृदयमीर्ष्यया पङ्किलमकरोदित्यर्थः। ('लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः)। पूर्णोपमाऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ ९ ॥

जिसको राक्षसकुल के विनाश का आदि कारण कहते हैं, जिसका चित्त भी उसके देह की तरह स्वभावतः कुटिल था उस मन्थरा ने कैकेयी के शीतल सरस निर्मल हृदय को निर्दयता से क्षुब्ध कर ईर्ष्या से गन्दा बना दिया जैसे भैंस वापी में पैठकर उसके शीतल, मधुर, निर्मल जल को पङ्किल कर देती है ॥ ९ ॥

अलघुचलितझञ्झावातनिष्पेषदोषा-
दशनिरिव कठोरः शीतलाम्भोदपङ्क्तौ।
अपहृतजनसौख्यान्मन्थराभेदवाक्या-
दपि भरतजनन्यां हन्त दौर्जन्यमासीत् ॥ १० ॥

अलध्विति। अलघुचलितझञ्झावातनिष्पेणदोषात्–अलघु सवेगं चलितः प्रवृत्तो यो झञ्झावातः सूक्ष्माम्बुवर्षणसहितो महामारुतः, तेन यः निष्पेषः सङ्घट्टनं स एव दोषस्तस्मात्, शीतलाम्भोदपङ्क्तौ शीतलमेघपटले कठोरः तीक्ष्णः अशनिः वज्रमिव, अपहृतजनसौख्यात्–अपहृतं विनाशितं जनानां सौख्यं रामराज्याभिषेकमहोत्सवजनितानन्दो येन तस्मात्, मन्थराभेदवाक्यात्–'रामे नृपे सति तवोत्पीडनं भविष्यति तस्माद्दशरथप्रदत्तेन वरद्वयेन रामस्य वन-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गमनं भरतस्याभिषेकं च याचस्वे'त्यादिरूपाद् भेदजनकवाक्यात्, भरत-जनन्याम् कैकेय्याम्, सौजन्यशालिनो भरतस्य मातृत्वेन तथाविधसौजन्य-गुणयुक्तायामपि दौर्जन्यम् दुर्जनभावः श्रीरामाभिषेकबाधकत्वरूपः, आसीत् प्रादुरभवत्। हन्तेति खेदे। ('हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः)। यथा झञ्झावातकृतसङ्घट्टनात् शीतलेऽपि पयोदपटले वज्रमाविर्भवति तथैव मन्थराया भेदवाक्यात् कैकेय्यां सौजन्यशालिन्यामपि दौर्जन्यं प्रादुर्बभूवेत्यर्थः। उपमालङ्कारः। मानिनी वृत्तम् ॥ १० ॥

जैसे वेग से चलने वाले झंझावात के द्वारा किये गये सङ्घर्षण से, शीतल मेघपङ्क्ति में भी वज्र उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार लोगों के सुख को अपहृत करने वाले मन्थरा के भेदजनक वाक्य से भरत-जैसे सौजन्य-शाली पुत्र को पैदा करने वाली (अत एव सौजन्यशील) कैकेयी में भी दुर्जनता का प्रादुर्भाव हो उठा (मन्थरा के बहकाने से वह भी कुटिल बन गयी)।१०।

सैषा मन्थरा[1]भिधानपिशाचिकावेशपरवशनिजाशया पूर्वं दण्डके वैजयन्तपुरवास्तव्यशम्बरासुरसंगरसंगतवेदना[2]पनोदनार्थमात्मने[3] वितीर्णं वराय दशरथाय वरद्वयं न्यवेदयत्।

सैषेति। सा एषा कैकेयी, मन्थराभिधानेत्यादिः—मन्थराभिधाना मन्थरा-नाम्नी या पिशाची एव पिशाचिका महाभूतग्रहः तस्या आवेशेन प्रवेशेन आक्रमणेनेति यावत्। परवशः पराधीनः, विवेकरहित इति यावत्, निजाशयः स्वान्तःकरणं यस्यास्तादृशी सती पूर्वं पुरा दण्डके तन्नाम्नि वने वैजयन्तपुर-वास्तव्यः वैजयन्तपुरनाम्नि नगरे वसन् यः शम्बरासुरः शम्बरो नाम दैत्यस्तेन सह यः सङ्गरः संग्रामः तत्र संगता प्राप्ता या वेदना तदस्त्रप्रहारजनितपीडा तस्या अपनोदनार्थम् निवारणहेतुकम्। आत्मने स्वस्यै कैकेय्यै इत्यर्थः विती-र्णम् दशरथेन पारितोषिकतया प्रदत्तम् वरद्वयम् वराय भर्त्रे न्यवेदयत् व्यजिज्ञपत्।

मन्थरा रूप पिशाची के आवेश से पराधीन (अर्थात् विवेक-शून्य)

---

१. 'आवेशनिजाशया' इति पाठान्तरम्।

२. 'अपोदनवेत्तनार्थम्' इति पाठान्तरम्।

३. 'वितीर्णवराय' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तः करण वाली उस कैकेयी ने, पूर्वकाल में दण्डक वन में वैजयन्तपुर वासी शम्बरासुर के साथ हुए युद्ध में (शस्त्रप्रहार-जनित) वेदना का निवारण करने से (प्रसन्न दशरथ द्वारा) दिये गये दो वरदानों के विषय में अपने पति दशरथ से निवेदन किया।

तयोरेकस्य संरम्भो भरतस्याभिषेचनम्।
अन्यस्य वन्यवृत्त्यैव वने रामस्य वर्तनम्॥ ११॥

तयोरिति। तयोः द्वयोर्वरयोर्मध्ये एकस्य वरस्य संरम्भः संवृत्तिः मूल्यमिति यावत्। भरतस्य अभिषेचनम् राज्याभिषेकः। अन्यस्य अपरस्य वरस्य (मूल्यम्) वन्यवृत्त्या जटावल्कलधारणकन्दमूलफलाशनरूपव्यापारेणैव रामस्य वनेऽरण्ये वर्तनम् वृत्तिः वास इत्यर्थः। पुरा भवता यौ द्वौ वरौ दत्तौ तयोरेकेन भरतस्य राज्याभिषेकोऽपरेण वन्यवृत्त्या रामस्य वनवास इत्याज्ञाप्यतामिति भावः॥११॥

उन दोनों वरों में एक वर का मूल्य भरत का राज्याभिषेक और दूसरे का मूल्य वन्यवृत्ति से राम का वनवास हो (ऐसा कैकेयी ने दशरथ से निवेदन किया)

तस्मिन् क्षणे वरयुगं चिर[1]तप्तताम्र-
नाराचवेधपरुषं श्रवसी विदार्य।
सत्यप्रहाणचकितस्य नृपस्य काम-
मूरीचकार हृदये पुटपाकरीतिम्॥ १२॥

तस्मिन्निति। तस्मिन् क्षणे तत्काले। चिरतप्तताम्रनाराचवेधपरुषम्—चिरं चिरकालं यावत्, तप्तः अग्नौ संतप्तः अत एव ताम्रः रक्तवर्णो यो नाराचः तीक्ष्णशस्त्रविशेषस्तस्य वेधः भेदनम् तद्वत् परुषम् कठोरम् दुःसहमिति यावत् वरयुगम् सत्यप्रहाणचकितस्य-सत्यस्य प्रहाणेन भङ्गेन चकितस्य भयसंभ्रान्तस्य नृपस्य दशरथस्य श्रवसी विदार्य कर्णौ विभिद्य हृदये नृपचित्ते कामम् अत्यन्तम् पुटपाकरीतिम् पुटपाकपद्धतिम् पुटपाकसदृशीमन्तर्दाहदशामित्यर्थः। ऊरीचकार अङ्गीचकार। कैकेय्याः वरप्रार्थना नाङ्गीकारे सत्यभङ्गो भवेदिति भयसंभ्रान्तस्य नृपस्य कर्णौ कैकेयी वचनं चिरतप्तरक्त-

---

१. 'क्षणतप्त' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्णनाराचवत् विभिद्य अन्तः प्रविश्य च पुटपाकतुल्यां व्यथामुदपादयदिति भावः। मूषिकायन्त्रमध्ये सुवर्णादिकं निक्षिप्याग्निसन्तापनं पुटपाकः ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १२ ॥

कैकेयी के द्वारा माँगे गये उन दोनों वरों ने उस समय सत्यभङ्ग के भय से संभ्रान्त राजा दशरथ को चिरकाल तक तपाये हुए अत एव रक्तवर्ण नाराच की तरह दुःसह प्रतीत होते हुए उनके दोनों कानों को चीर कर हृदय में पहुँच पुटपाक तुल्य व्यथा उत्पन्न कर दी।

[1]तनयविरहवार्तामात्रसंतप्यमाना-
दथ दशरथचित्ताच्चेतना निर्जगाम।
दवहुतवहरोचिर्ज्वालया [2]लेह्यमाना-
ज्झटिति गहनगुल्मादुज्जिहाना मृगीव ॥ १३ ॥

तनयेति। अथानन्तरं तनयविरहवार्तामात्रसन्तप्यमानात्-तनयस्य श्रीरामचन्द्रस्य यो विरहः वनवासजनिष्यमाणवियोगस्तस्य वार्तामात्रेण वृत्तान्तश्रवणेनैव संतप्यमानात् दह्यमानात्, दशरथस्य चित्तात् हृदयात् चेतना संज्ञा, दवहुतवहरोचिर्ज्वालया-दवहुतवहस्य दावानलस्य रोचिर्ज्वालया दीप्तिशिखया लेह्यमानात् दह्यमानादित्यर्थः, गहनगुल्मात् काननकुञ्जात् उज्जिहाना पलायमाना मृगी हरिणीव झटिति त्वरितं निर्जगाम। उपमाऽलङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ १३ ॥

पुत्र राम के वियोग की बात मात्र से सन्तप्यमान दशरथ के हृदय से चेतना उसी प्रकार तुरन्त जाती रही, जैसे दावानल की लपटों से जलते हुए कानन-कुञ्ज से मृगी निकल कर भाग खड़ी होती है ॥ १३ ॥

अथ दशरथः कथमपि लब्धसंज्ञः कैकेयीमभाषत।

अथेति। अथानन्तरम्' दशरथः कथमपि केनापि प्रकारेण कृच्छ्रेणेत्यर्थः लब्धसंज्ञः प्राप्तचेतनः सन् कैकेयीं वक्ष्यमाणप्रकारेण अभाषत उक्तवान्।

इसके बाद जब किसी तरह दशरथ होश में आये तब उन्होंने कैकेयी से कहा—

---

१. 'तदनुतनयवार्ता' इति पाठान्तरम्। २. 'लिह्यमानात्' इति पाठान्तम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामः काममुपाश्रयिष्यति वनं त्यक्त्वा धृतं कौतुकं
लोकस्त्यक्ष्यति कौतुकं चिरधृतं तस्याभिषेके कथम् ।
धर्मापायभयेन वत्सविरहं [1]वक्ष्यामि वक्ष्यामि किं
यावत्कल्पमकीर्तिरार्तिजननी जायेत जाये तव ॥ १४ ॥

राम इति । रामः धृतम् राज्याभिषेकाङ्गत्वेन वसिष्ठेन परिधापितमात्मना धृतम कौतुकम् हस्तसूत्रं त्यक्त्वा हस्तादपसार्य कामम् सप्रसादम् वनम् उपाश्रयिष्यति गमिष्यति । धर्मपरायणत्वादिति भावः । लोकः प्रजाजनः तस्य रामस्य अभिषेके विषये चिरधृतम् चिरकालादारभ्य रक्षितं कौतुकं हर्षं कथं केन प्रकारेण त्यक्ष्यति विस्रक्ष्यति, कथमपि न त्यक्ष्यतीत्यर्थः । इत्थं स्वमनोरथभङ्गाल्लोको विद्रोहायोद्यतो भविष्यतीति भावः । धर्मापायभयेन सत्यभङ्गभीत्या वत्सविरहम् पुत्रवियोगजन्यदुःखं वक्ष्यामि धारयिष्यामि (वह प्रापणे इत्यस्माद्धातोर्लृट्) किं वक्ष्यामि (अत्र ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि इत्यस्माद्धातोर्लृट्) रामवनगमनकारणं पृच्छति प्रजाजने किमुत्तरं दास्यामीत्यर्थः, यथार्थकारणस्य घृणास्पदत्वेन वक्तुमशक्यत्वादिति भावः । (तत्) जाये भार्ये, तव यावत्कल्पम् कल्पपर्यन्तम् ('यावदवधारणे' इत्यव्ययीभावः) आर्तिजननी सकलजनपीडाकरी ('आर्तिः पीडाधनुष्कोटयोः' इत्यमरः) श्रीरामचन्द्राभिषेकविहननजनितं दुर्यशः जायेत प्रादुर्भवेत् । तस्मान्मम क्लेशकरत्वेन तवाप्यपकीर्तिप्रदत्वेन चेदृशो दुराग्रहो जायया त्वया परित्याज्य एवेतिभावः । वृत्त्यनुप्रासोऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १४ ॥

राम (हाथ में) धारण किये गये (राज्यभिषेकाङ्गभूत) हस्तसूत्र को उतार कर (धर्मपरायण होने के कारण) प्रसन्नता पूर्वक बन चले जाँयगे किन्तु प्रजा (अपने हृदय में) राम के राज्याभिषेक के लिए बहुत दिनों से जो हर्ष (कौतुक) सँजोये हुए है वह उसे कैसे छोड़ेगी ? सत्यरूप धर्म के भङ्ग होने के भय से मैं पुत्र राम के वियोग को सह लूँगा किन्तु (प्रजा द्वारा रामवनगमन का कारण पूछे जाने पर) क्या उत्तर दूंगा ? प्रिये, इस प्रकार के दुराग्रह से तुम्हें वह कलङ्क लगेगा जो कल्पान्त तक न मिट पायेगा और वह सदा लोगों दुःखी बनाता रहेगा ॥ १४ ॥

---

१. 'द्रक्ष्यामि' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वत्सं कठोरहृदये नयनाभिरामं
राम विना न खलु तिष्ठति जीवितं मे ।
धातुर्बलादुपयमस्त्वयि जातपूर्वः
कैकेयि मामुपयमं नयतीति मन्ये ॥ १५ ॥

वत्समिति । कठोरहृदये–कठोरं कठिनं हृदयं चित्तं यस्यास्तत्सम्बुद्धौ हे कठोर हृदये ! रामवनवासाभिलाषप्रकाशनादिति भावः । नयनाभिरामम्-सर्वलोकनेत्रानन्दकरम् । वत्सम् वात्सल्यभाजनम् । रामं विना (विनायोगे द्वितीया) मे मम जीवितं जीवनं न तिष्ठति खल्विति निश्चये । मे मरणं ध्रुवमित्यर्थः । हे कैकेयि, भार्यानामग्रहणेनेदृक्दुष्कृत्य कारिण्या अभार्यात्व-पात्रत्वमेवोचितमिति द्योतितम् । धातुर्बलात् विधिवशात् जातपूर्वः पूर्वं जातः त्वयि त्वद्विषये उपयमः विवाहः ('विवाहोपयमौ समौ' इत्यमरः) मां दशरथम् उपयमम् यमस्य समीपम् ('अव्ययं विभक्ति'–इत्यादिनाऽव्ययीभावः) नयति प्रापयतीति मन्ये सम्भावयामि । ईदृश्या दुराशया त्वया सह पूर्वं जातो विवाह-सम्बन्ध एव मम मरणाय भवतीत्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १५ ॥

हे कठोर हृदय वाली कैकेयि ! सकल लोगों के नेत्रों को आनन्द देने वाले वत्स राम के विना मेरा जीवन नहीं रहेगा यह निश्चित है । (यह जान कर भी तुम अपना दुराग्रह नहीं छोड़ रही हो तो) यही मानना पड़ेगा कि भाग्यवश तुम्हारे साथ जो मेरा विवाह (उपयम) हुआ था वही (आज) मुझे (उपयम) यम के पास ले जा रहा है ॥ १५ ॥

तदनु निजमनोरथैक[1]परिपूरणे कृतादरा कैकेयी[2]सोपहासमवादीत् ।

तदन्विति । तदनु दशरथवचनानन्तरम् । निजमनोरथैकपरिपूरणे निजमनोरथैकस्य स्वाभिलाषमात्रस्य परिपूरणे निष्पादने कृतादरा बद्धासक्तिः, कैकेयी सोपहासम् सोल्लुण्ठनम् अवादीत् उक्तवती । (सोल्लुण्ठनं तु सोत्प्रासं सोपहासं समास्त्रयः' इति हलायुधः) ।

इस प्रकार दशरथ के बहुत समझाने बुझाने पर भी कैकेयी की आसक्ति अपने मनोरथ के ही पूर्ण करने में पूर्ववत् बनी ही रही (उसमें तनिक भी

१. 'पूरणकृतादरा' इति पाठान्तरम् । २. 'सापहासम्' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिवर्तन नहीं हुआ) और उसने उपहास पूर्वक ऐसा कहा—

सत्यविप्लवमपत्यसंगतः संगतं भृशमपश्यतस्तव ।
आश्रुतस्य विफलत्वमस्ति चेदाः श्रुतस्य रचितोऽयमञ्जलिः॥१६॥

सत्येति । अपत्यसंगतः–पुत्रमोहात् (पञ्चम्यास्तसिः) संगतम् उपस्थितम्, सत्यविप्लवम् सत्यवाक्यभङ्गम्, भृशम् अत्यन्तम् अपश्यतः ईषदपि न गणयत इत्यर्थः । तव दशरथस्य आश्रुतस्य 'वरद्वयं ते दास्यामीत्येवं रूपस्य प्रतिज्ञावचनस्य विफलत्वं वैयर्थ्यं मिथ्यात्वमिति यावत् अस्ति भवति चेत् यदि, 'आः' इत्युपहासे । श्रुतस्य धर्मशास्त्रस्य अयमञ्जलिः प्रणामः रचितः कृतः । पुत्रानुरागवशाद् भवादृशो धर्मशास्त्रज्ञोऽपि नृपः प्रतिज्ञातार्थस्य वैयर्थ्यं समुपेक्षते सत्यवचनभङ्गं च न पश्यति चेत्तर्हि कोऽन्यो धर्मशास्त्रानुवर्तनं करिष्यति तस्मात्तेन प्रयोजनं नास्ति, तस्मै दूरत एव नमोऽस्त्विवति भावः । उपहासादावपि नमस्कारविधानं दृश्यते । यथा–'बिन्दुद्वन्द्वतरङ्गिताग्रसरणिः कर्त्ता शिरोबिन्दुकम्, कर्मेतिक्रमशिक्षितान्त्रयकला ये केऽपि तेभ्योऽञ्जलिः ।' इति । रथोद्धता वृत्तम् ॥ १६ ॥

पुत्र के मोहवश आप अपने सत्य के भङ्ग होने की अवहेलना कर रहे हैं । यदि इस प्रकार आप ही अपनी प्रतिज्ञा को असत्य करते हैं तो धर्मशास्त्र को नमस्कार है । (जब आप-जैसे धर्मशास्त्रवेत्ता ही पुत्रमोहवश धर्मशास्त्र का अनुवर्तन नहीं करेंगे तो भला दूसरा कौन उसका पालन करेगा । अतः धर्मशास्त्र का प्रयोजन ही जाता रहा) ॥ १६ ॥

किं नागतस्ते श्रवसोः सकाशमरिंदमः सत्यगिरां पुरोगः ।
श्येनामिषीभूतकपोतपोतजीवातवे शस्त्रनिकृत्तगात्रः ॥ १७ ॥

किमिति । सत्यगिराम्–सत्या गीर्वाणी येषां ते सत्यगिरः सत्यसन्धा इत्यर्थः तेषां पुरोगः अग्रगण्यः । श्येनामिषीभूतकपोतपोतजीवातवे–श्येनस्य श्येनवेषधारिण इन्द्रस्य आमिषीभूतः भोग्यवस्तुभूतः यः कपोतपोतः कपोतशिशुः कपोतपोतवेषधारी यम इत्यर्थः, तस्य जीवातवे जीवनौषधार्थम् तज्जीवनरक्षार्थमित्यर्थः । ('आमिषं भोग्यवस्तुनि' इति केशवः) ('जीवातुर्जीवनौषधम्' इत्यमरः) । शस्त्रनिकृत्तगात्रः–शस्त्रेण खड्गेन निकृत्तं खण्डितं गात्रं शरीरं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

येन स तथोक्तः। अरिन्दमः—अरीन् दमयतीत्यरिन्दमः शिबिरित्यपराभिधानो महाराजः। ('संज्ञायां भृतॄ०'—इत्यादिना खच्। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्', इति मुमागमः।) ते = तव दशरथस्य श्रवसोःसकाशम् कर्णयोःसमीपम् कणपथमित्यर्थः नागतः किम्, एतादृशस्य सत्यसन्धस्य महाराजस्य नाम भवता न श्रुतं किमित्यर्थः। आसीत्पुरा शिबिर्नाम सत्यसन्धो धर्मात्मा च राजा। तस्य सत्यसन्धतायां विवदमानाविन्द्रयमौ तत्परीक्षणार्थं श्येनकपोतवेषं गृहीत्वा गतौ। कपोतभूतो यमः श्येनोपद्रुतमात्मानं प्रदर्शयन् यागदीक्षितं शिबिं शरणं जगाम। श्येनश्च स्वामिषीभूतं कपोतं शिबिमयाचत। शिबिरपि शरणागतस्य रक्षणीयत्वाच्छ्येनाय तत्तुलितं स्वमांसं दातुमुद्यतः। तस्मिन्नेवं कुर्वति सति कपोतभूतो यमः स्वभारमवर्धयत्तस्माच्छिबिः प्रतिज्ञाभङ्गभयात् समस्तमेव स्वशरीरं निकृत्तवानिति पौराणिकी कथा॥ उपजातिर्वृत्तम्॥ १७॥

क्या आपने सत्यवादियों में अग्रगण्य शिबि का नाम नहीं सुना है जिन्होंने बाज के आहार बने हुए कबूतर की रक्षा के लिए खड्ग से काट-काट कर समूचा शरीर दे दिया था॥ १७॥

किञ्च—

अभ्यर्च्य कस्मैचिदुपाश्रिताय वितीर्य विप्राय विलोचने स्वे।
आपूरयत्कश्चिदलर्कसंज्ञः प्राज्ञः प्रतिज्ञां प्रथितप्रभावः॥ १८॥

किञ्च, अभ्यर्च्येति। दृष्टान्तरमाह—किञ्चेति। प्राज्ञः मनीषी ('धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः' इत्यमरः) प्रथितप्रभावः—प्रख्याततेजाः ('स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' इत्यमरः) कश्चित् अलर्कसंज्ञः अलर्को नाम राजा कस्मैचित् उपाश्रिताय अतिथिभावेन समीपमुपागताय विप्राय ब्राह्मणाय अभ्यर्च्य संपूज्य स्वेविलोचने स्वकीये नेत्रे वितीर्य दत्त्वा प्रतिज्ञां सत्यसन्धताम् आपूरयत् अरक्षत्। अलर्कापेक्षया तव तु मत्प्रार्थितवरद्वयापूरणे नातिक्लेशस्तस्मात् त्वया सत्यसन्धता परिपालनीयेति भावः। पुरा किल कश्चिदलर्कसंज्ञो महातेजाः प्राज्ञो नृप आसीत् तदन्तिके कश्चिद्विप्र आगत्य प्रार्थितं दातुं प्रतिज्ञया बद्धवान्। तदनन्तरमसौ विप्रस्तस्य नयने याचितवान्। सोऽलर्कोऽपि ससमादरं तस्मै विप्राय स्वचक्षुषी दत्त्वा प्रतिज्ञामापूरयदिति। अलर्कः कस्मै-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिदनुपकारिणे विप्राय प्रतिज्ञां पूरयितुं स्वचक्षुषी दत्त्वान्, त्वं तु मत्सदृशपरमोपकारिणेऽर्धाङ्गभूताय जनायानतिक्लेशकरवस्तुप्रदातुं नोत्सहत इत्यहो तव कृपणतेति भाव: । पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ १८ ॥

मनीषी प्रताप-शाली राजा अलर्क ने याचनार्थ आये हुए किसी ब्राह्मण को बड़े आदर से अपने नेत्र देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी ॥ १८ ॥

असुरसमरवेलाजातबाधावसाने
वरयुगमदिशस्त्वं प्रीतिपूर्वं यया मे ।
अशिथिलगुणबन्धाः सत्यसंधा नरेन्द्रा
जललिपिरिति कामं संगिरन्तां गिरं ताम् ॥ १९ ॥

असुरेति । असुरसमरबेलायाम्–शम्बरासुरेण सह युद्धस्य काले, जाता समुत्पन्ना या बाधा असुरशस्त्रप्रहारजनितवेदनया समुपस्थित: प्राणसंशय:, तस्य अवसाने समाप्तौ युद्धभूमेरपसार्य मया कृतया सेवया तद्बाधानिवारणे कृत इत्यर्थ: । त्वं दशरथ:, यया गिरा वाचा, मे मह्यं कैकेय्यै प्रीतिपूर्वम् बाधानिवारणजनितपरितोषपूर्वकम् वरयुगं वरद्वयम् अदिश: दत्तवान्, पारितोषिकत्वेन वरद्वयं दातुं यां प्रतिज्ञां कृतवानसीत्यर्थ: । तां गिरं वाचं प्रतिज्ञामित्यर्थ: । अशिथिलगुणबन्धाः–अशिथिल: अविच्छिन्न: गुणबन्ध: दानदाक्षिण्यादिगुणग्रहो येषां ते तथोक्ता:,सत्यसंधा:-सत्या संधा प्रतिज्ञा येषां ते ('संधा विधौ प्रतिज्ञायाम्' इत्यमर:) नरेन्द्रा: राजान: ('नरेन्द्र: पार्थिवे राज्ञि विषवैद्येऽपि च स्मृत:' इति वैजयन्ती) जललिपि:–जलाक्षरविन्यासरूपा ('लिखिताक्षर विन्यासे लिपिर्लिबिरुभे स्त्रियौ' इत्यमर:) इति कामं यथेच्छं संगिरन्ताम् कथयन्तु । यथा जले लिखिताया लिपे: सत्ता तत्क्षणमेव नश्यति तथैव तव प्रतिज्ञातवचनं सत्ताहीनमिति सत्यपरायणा नृपास्त्वां निन्दन्त्विति लज्जास्पदं भवादृशानां सत्यसन्धानामिति भाव: ॥ मालिनीवृत्तम् ॥ १९ ॥

शम्बरासुर के साथ युद्ध होते समय (उसके शस्त्र प्रहार से) उत्पन्न वेदना के दूर होने पर (मेरी सेवा से प्रसन्न) आपने परितोष पूर्वक जिस वाणी से मुझे दो वर दिये थे उस वाणी को (अब) दानदाक्षिण्यादि गुणों को रखने वाले सत्यप्रतिज्ञ राजा लोग पानी पर की लिपि कहें (यह आप के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए लज्जा की बात होगी) जैसे पानी पर की लिपि का ठिकाना नहीं, वैसे ही आप की बात का कोई ठिकाना नहीं रह गया ॥ १९ ॥

किं बहुना ।

किं बहुना किमिति । किं बहुना अधिककथनेन किं प्रयोजनम् ।

अधिक क्या कहूँ ।

सत्योद्यां गिरिमिह निर्वहस्व मा वा
सन्मानं भुवि न सहेय राममातुः ।
संस्थास्ये विषमुपभुज्य पश्यतस्ते
संनाहं त्यजसि न चेत्प्रवर्तमानम् ॥ २० ॥

सत्योद्यामिति । इह सम्प्रति, गिरम् वरयुगं दास्यामीत्येवं रूपां वाचम्, सत्योद्यां यथार्थाम् निर्वहस्व समर्थयस्व, मावा उत मा निर्वहस्व, प्रदत्तां स्वां वाचं सत्यां कुरु वा असत्यां कुरु, नात्र, ममाग्रहः, भवान् पूर्णस्वतन्त्र इत्यर्थः । (किन्तु) भुवि लोके राममातुः कौसल्याः सन्मानम् राजमातृपद-जनितप्रतिष्ठाम् न सहेय-सोढुं न शक्नुयामित्यर्थः सपत्नीसन्मानस्य दुःखाव-हत्वादिति भावः । (अतः) प्रवर्तमानम् प्रारभ्यमाणं सन्नाहम् सुसज्जां न त्यजसि न जहासि-न निरुणत्सि चेत्, ते पश्यतः पश्यन्तं त्वामनादृत्येत्यर्थः ('षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी) विषम् गरलम् उपभुज्य संस्थास्ये मरिष्यामि ('समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम्) अत्र रामायणश्लोकः-'अहं हि विषमद्यैव पीत्वापि हि तवाग्रतः । पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते ।' इति । प्रहर्षिणी वृत्तम् । 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति तल्लक्षणम् ॥ २० ॥

आप अपना वचन सत्य सिद्ध करें अथवा न करें (इसमें आप स्वतन्त्र हैं) किन्तु मैं कौसल्या के (राजमाता कहलाने के) सन्मान को (कदापि) नहीं सह सकती, अतः यदि आप रामराज्याभिषेक के लिए होती हुई इस तैयारी को रोक नहीं देते हैं तो मैं आप के देखते-देखते विष खाकर प्राण-त्याग कर दूँगी ॥ २० ॥

एवं वादिनीमेनां भूयोऽपि भूपतिरवदत् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवमिति । एवमित्थं वादिनीम् कथयन्तीम्, एनाम् कैकेयीं, भूपतिः दशरथः भूयोऽपि अवदत् अवोचत ।

इस प्रकार कहती हुई कैकेयी से राजा दशरथ ने फिर कहा —

अयि कठिनहृदये, [1]किमुन्मुक्तलोकमर्यादया दयापेतया त्वयेति ।

अयीति । अयि कठिनहृदये कठोरचित्ते, उन्मुक्तलोकमर्यादया–उन्मुक्ता परित्यक्ता लोकमर्यादा सांसारिकव्यवहारो यया तादृश्या, दयापेतया निर्दयया त्वया किम्, नास्ति त्वया ममप्रयोजनम् । पुनः पुनरनुनयेऽपि तव हृदयं काठिन्यं न परित्यजति, लोकव्यवहारं च न पश्यसि त्वम्, तर्हि त्वादृश्याः क्रूराया जीवनेन किं फलम् ? विषमुपभुज्य तव मरणमेववरमिति भावः ।

अरी क्रूर-चित्ते, तुझ-जैसी लोकमर्यादा का त्याग करने वाली निर्दय स्त्री के जीने से क्या लाभ ?

नैवाभवस्त्वमिह शीलवतीषु गण्या-
[2]नैवाभजत्पितृमतां गणनां स रामः ।
नैवापमात्मजसुखान्यहमप्यनार्ये
नैवापमम्बु भरतेन न मे प्रदेयम् ॥ २१ ॥

नैवेति । अनार्ये दुःस्वभावे, त्वम् कैकेयी इह लोके शीलवतीषु सद्वृत्तिमतीषु स्त्रीषु ('शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः) गण्या मान्या नैवाभवः । लोकस्त्वां सुशीलां न गणयिष्यति । सः सर्वप्रियः रामः पितृमताम् जीवत्पितृकाणां मध्ये गणनां नैवाभजत्, तस्य पितृप्रदेयसुखवञ्चिततत्वादितिभावः । अहम् दशरथोऽपि आत्मजसुखम् पुत्रसुखं नैव आपम् प्राप्तवान्, रामवनगमनेन मन्मरणस्यावश्यं भावित्वादिति भावः । मे मह्यम् भरतेन (त्वादृश्या अनार्यायाः पुत्रतयाऽयोग्यत्वात्) नैवापम्–निवापः पितृतर्पणम् ('पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः) तस्येदमिति नैवापम् पितृतर्पणसम्बधि अम्बु जलं नैव प्रदेयम् न प्रदातव्यम् । एतेन रामे प्रव्राजिते स्वनिधनं सूचयित्वा राजा तां तस्मादभिनिवेशान्निवारयितुं प्रयत्नं कृतवान् । अत्र मृतस्य निवापोदकमिष्टमेव, तस्यापि न देयमिति निषेधितत्वादिष्टनिषेधस्यानुपपद्यमानतयाऽऽभासत्वात्तेन निजमरणमाक्षिप्यत इत्याक्षेपालङ्कारः । 'समानार्थतयानिष्टविध्याभासोऽप्याक्षेप

१. 'किमुक्तं मुक्त' इति पाठान्तरम् । २. 'अगमत्' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्यभ्युपगम्यते। यथा चेष्टनिषेधस्याप्यनुपद्यमानतयाऽऽभासत्वम्, तयाऽनिष्ट-विधेरप्यनुपपद्यमानतयाऽऽभासत्वमिति' विद्यानाथः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥२१॥

(इस प्रकार के कुकृत्य से) शीलवती स्त्रियों में गिनी जाने योग्य तू नहीं रह गयी, वह राम (भी) (पिता के द्वारा दिये जाने वाले सुख से वञ्चित होने के कारण) पितृमान् जनों में नहीं गिना जा सका। हे दुःशीले ! मुझे (बुढ़ापे में) पुत्र से मिलने वाले सुख न मिल सके। (तुम्हारे इस कुकृत्य के कारण यदि मेरा मरण हो जाय तो तुझ-जैसी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण पापपराहत) भरत मुझे तर्पण के निमित्त जलाञ्जलि न दे (इसका ध्यान रखना) ॥ २१ ॥

किञ्च—

वासस्त्वचां भवतु किञ्चन तारवीणां
छायाद्रुमाश्च भवनानि भवन्तु धन्याः।
कैकेयि तस्य शयनानि कथं भवेयु-
स्त्वच्चेतसोऽपि कठिनानि शिलातलानि ॥ २२ ॥

किंच, वास इति। हे कैकेयि, तारवीणाम्—तरुसम्बन्धिनीनाम् ('तस्येदम्' इति सूत्रेणाण्, 'टिड्ढाणञ्'०–इत्यादिना ङीप्) त्वचां वल्कलानाम् ('त्वक् स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियामि'त्यमरः) वासः वस्त्रं तस्य दिव्यवस्त्रधारिण इत्यर्थः, रामस्य किञ्चन कथञ्चिदित्यर्थः भवतु जायताम्। तथा च (दिव्यभवनवासिनः) तस्य रामस्य (निवाससम्बन्धेन) धन्याः कृतार्थाः छायाद्रुमाः छायाप्रधानाः द्रुमाः वृक्षाः नमेरु तरवः (शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः) 'छाया वृक्षो न मेरुः स्यात्' इति शब्दार्णवः। भवनानि गृहाणि भवन्तु। एतद्द्वयं कथंचित् सोढुं शक्यत इति भावः। त्वच्चेतसः तव हृदयादपि कठिनानि कठोराणि शिलातलानि पर्वतशिलाः, तस्य नितान्तसुकुमार-शरीरस्य रामस्य शयनानि शय्याः कथं केन प्रकारेण भवेयुः। दिव्यवस्त्रधारी रामस्तद्वस्त्राण्यपहाय तरुवल्कलं धारयितुं, दिव्यभवनं च विहाय छायावृक्षमूले निवासं कर्तुं कथञ्चित् समर्थो भवेत्' किन्तु तव (कैकेय्याः) हृदयादपि कठिनतरेषु शिलातलेषु स नितान्तसुकुमारशरीरतया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथं शयिष्यत इत्यपि त्वया चिन्तनीयमिति दशरथोक्तेराशयः। पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ २२ ॥

(दिव्य वस्त्र-धारण करने वाला) राम किसी तरह वनवास में वृक्षों के वल्कलों को वस्त्र बना भी ले तथा (उसे आश्रय देकर कृतार्थ होने वाले) छाया-वृक्षों का घर के रूप में किसी तरह उपयोग भी भले ही कर ले किन्तु (यह तो सोचो कि) वह शिलाओं पर किस प्रकार सो सकेगा। जो (शिलाएँ) तुम्हारे हृदय से भी अधिक कठिन हैं और राम कोमलशय्या पर ही आज तक सोता रहा है ॥ २२ ॥

एवं भर्त्रा भर्त्सिताप्यार्द्रचित्ता [1]नाभूदेषा मन्थराक्रान्तवृत्तिः।
राकाचन्द्रे राजमानेऽप्य[2]बाधं वीरुच्छन्ना चन्द्रकान्तस्थलीव ॥२३॥

एवमिति। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण भर्त्रा पत्या दशरथेन भर्त्सिता निन्दितापि मन्थराक्रान्तवृत्तिः—मन्थरया तदाख्यया दास्या आक्रान्ता आच्छन्ना वृत्तिः वर्तनं यस्याः सा ('वृत्तिर्वर्तनजीवने' इत्यमरः) एषा कैकेयी राकाचन्द्रे पूर्णिमाचन्द्रे ('पूर्णे राका निशाकरे' इत्यमरः) अबाधम् मेघाद्यभावेन निष्प्रतिवन्धम् (क्रियाविशेषणमेतत्) राजमाने प्रकाशमानेऽपि वीरुच्छन्ना लताभिराच्छादिता ('लता प्रतानिनी वीरुत्' इत्यमरः) चन्द्रकान्तस्थलीव चन्द्रकान्तमणिमयी भूमिरिव आर्द्रचित्ता दयार्द्रहृदया नाभूत् नाजायत। कैकेय्या 'वृत्तेर्मन्थरयाऽऽक्रान्तत्वाद् दशरथेनाक्रुष्टापि कैकेयी दयार्द्रा नाभूद्यथा मेघाद्यावरणाभावेन निर्बाधं पूर्णचन्द्रे प्रकाशमानेऽपि लताभिराच्छादिता चन्द्रकान्तस्थली चन्द्रकिरणप्रकाशवञ्चिता सती न द्रवतीत्याशयः। शालिनीवृत्तम्—तल्लक्षणं तथा—'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति ॥ २३ ॥

इस प्रकार पति (दशरथ) के द्वारा कोसी जाने पर भी, मन्थरा द्वारा सद्वृत्ति के आच्छादित हो जाने से कैकेयी का हृदय द्रवित नहीं हुआ, जैसे पूर्णचन्द्र के निर्बाध प्रकाशमान रहने पर भी लताओं से आच्छादित चन्द्रकान्तमणिमयी भूमि नहीं द्रवित होती है ॥ २३ ॥

---

१. 'मा भूत' इति पाठान्तरम्।

२. 'निशाया' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदनु मुहूर्तमात्रमपि राममुखावलोकनसुखम[1]नुबुभूषुर्दशरथः कुमारमानयेति सुमन्त्रमादिदेश।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात् मुहूर्तमात्रम् रामवनगमनात्पूर्वमल्पकालं यावत् ('मुहूर्तमल्पकाले स्याद् घटिकाद्वितयेऽपि च' इति विश्वः)। एतेन कैकेयीनिश्चयस्यानिवार्यतया रामवनगमनविनिश्चयः सूच्यते। राममुखावलोकनसुखम्—रामस्य मुखावलोकनेन यत्सुखं तद् अनुबुभूषुः अनुभवितुमिच्छुः रामं दिदृक्षुः सन्नित्यर्थः (भुवः सन्नन्तात् 'सनाशंसभिक्ष उः' इति 'उ'प्रत्ययः।) दशरथः कुमारं राममानय उपस्थापय इति सुमन्त्रं तदाख्यं स्वमन्त्रिणम् आदिदेश आज्ञापितवान्।

तेन सत्वरं राजभवनं[2]प्रवेशितो रामः कृतप्रणामः पितरमयथाभूतमुखविका[3]समारादालक्ष्य चकितः[4] किमिदमिति कैकेयीमन्वयुङ्क्तः।

तेनेति। तेन सुमन्त्रेण सत्वरं झटिति राजभवनं प्रवेशितः आनीतः कृतप्रणामः कृतः प्रणामः पितृचरणाभिवादनं येन स तथोक्तः। रामः पितरं दशरथम् अयथाभूतमुखविकासम् अयथाभूतः अस्वाभाविकः क्षीण इत्यर्थः मुखविकासः आननश्रीः यस्य तादृशम्, आरात् समीपे ('आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः) आलक्ष्य दृष्ट्वा चकितः साश्चर्यः, किमिदम् 'कुतो हेतोरीदृशी पितुर्दशा' इति कैकेयीम् अन्वयुङ्क्त अपृच्छत् ('प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः)।

कैकेयी के निश्चय को अपरिहार्य समझ कर कुछ ही काल तक राम के मुख को देख कर सुख का अनुभव कर लें, इस इच्छा से दशरथ ने सुमन्त्र को आदेश दिया कि कुमार राम को मेरे पास ले आओ।

सुमन्त्र (राजा की आज्ञा पाते ही) झट-पट राम को राजभवन में ले आया। रामने पितृचरणों को प्रणाम किया। इसके बाद वे समीप से पिता की मुखश्री उतरी देख कर हक्का-बक्का हो गये और उन्होंने कैकेयी से पिता की इस दशा का कारण पूछा।

१. 'अनुबुभूषुः कुमारम्' इति पाठान्तरम्।
२. प्रवेशितस्ततः' इति पाठान्तरम्। ३. 'विलास' इति पाठान्तरम्।
४. 'चकितमतिः' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सापि पापाशया प्रत्यवादीत् ।

सापीति । पापाशया दुरभिप्राया सा कैकेय्यपि प्रत्यवादीत् वक्ष्यमाणप्रकारेणोत्तरमदात् ।

दुष्ट अभिप्राय रखने वाली उस कैकेयी ने भी उत्तर दिया—

वत्स, प्रतिश्रुतवरद्वयनिर्वहणे निपुणेतरस्तातस्ते सम्प्रति सानुशयस्तनयवात्सल्यात्सत्यव्यत्यासत्रासाच्च गाढम[1]गाधे शोकसागरे निमज्जतीति ।

वत्सेति । वत्स राम, ते तव तातः पिता ('तातस्तु जनकः पिता' इत्यमरः) सम्प्रत्यधुना प्रतिश्रुतवरद्वयनिर्वहणे—प्रतिश्रुतं मह्यं दातुं प्रतिज्ञातं वरद्वयं तस्य निर्वहणे पूरणे, निपुणेतरः—निपुणः प्रवीणस्तस्मादितरः अक्षम इत्यर्थः (अतएव) सानुशयः अनुतापयुक्तः ('अथानुशयो दीर्घद्वेषानुतापयोः' इत्यमरः) तनयवात्सल्यात् तनये पुत्रे त्वयि रामे वात्सल्यात् स्नेहात्, सत्यव्यत्यासत्रासात्—सत्यवचनभङ्गभयाच्च अगाधे गम्भीरे शोकसागरे गाढम् भृशम् निमज्जति निमग्नो भवतीत्येवं प्रत्यवादीदिति पूर्वोक्तेनान्वयः ।

बेटा, तुम्हारे पिता ने मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु अब उसे पूरा करने में अपने को असमर्थ पाने के कारण पश्चात्ताप कर रहे हैं तथा पुत्रस्नेह की परवशता एवं सत्यभङ्गजनित भय के कारण अगाध शोकसिन्धु में डूबे हुए हैं ।

वरद्वयं तावत्तव मु[2]निवृत्त्यैव वने वर्तनमवनेरवनं[3] भरतस्येति ।

वरद्वयमिति । तव रामस्य, मुनिवृत्त्यैव तापसाचरणेनैव वने वर्तनम् अवस्थानम्, चतुर्दश वर्षाणि यावदिति भावः । भरतस्य मम पुत्रस्य अवनेः पृथिव्याः अवनं रक्षणं च, राज्याभिषेक इत्यर्थः, इति वरद्वयं तावत्-इदमेव वरयुगलं मया प्राथ्यते ।

वे दो वर ये हैं—तुम मुनिवृत्ति से (चौदह वर्ष तक) वन में वास करो (यह पहला वर है) और भरत भूपालन के अधिकारी हों (यह दूसरा वर है) ।

रामस्तदाकर्ण्य प्रमुदितहृदयः कृताञ्जलिरेनां[4] प्रति व्यजिज्ञपत् ।

---

१. 'अगाधशोक' इति पाठान्तरम् । २. 'वन्यवृत्त्यैव' इति पाठान्तरम् ।
३. 'भरतस्य चेति' पाठान्तरम् । ४. 'एनां व्यजिज्ञपत्' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राम इति । तत् कैकेयीवचनम् आकर्ण्य श्रुत्वा प्रमुदितहृदयः—प्रसन्नचित्तः रामः कृताञ्जलिः बद्धकरयुगलः एनां कैकेयीं प्रति व्यजिज्ञपत् अवोचत । एतेन रामस्य धीरोदात्तत्वं सूचितम् । तल्लक्षणं यथा—'महासत्त्वोऽतिगम्भीरः कृपावानविकत्थनः । सुवर्णाचलवद् धीरो धीरोदात्तः सुसंमतः ॥' इति ।

कैकेयी का वचन सुनकर प्रसन्नचित्त राम ने हाथ जोड़ कर कहा—

भीतो भूभरतः किमम्ब भरतः किंवा वनात्पावना-
त्त्रस्तोऽहं सगरान्ववायककुदस्तातः कुतः शोचति ।
दिव्यायाः सरितो निवापकरणाल्लध्वीं प्रतिज्ञामिमा-
मावाभ्याम[1]भिपूरयिष्यति न चेत्पुत्री कथं स्यादयम् ॥२४॥

भीत इति । अम्ब मातः, ('अम्बा माताऽथ बाला स्यात्') इत्यमरः । ('अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति ह्रस्वः) । भरतः तदभिधानो मम लघुर्भ्राता, भूभरतः भुवः पृथिव्याः भरः पालनरूप भारः ततः पृथिवीपालनरूपभार स्वीकारादित्यर्थः, भीतः संत्रस्तः किम् ? नैतत्संभाव्यं तस्य महासत्त्वादिति भावः । वा अथवा पावनात् पावयतीति पावनं पवित्रकरं तस्मात् वनात् अहं रामः त्रस्तः भीतः किम् ? ईदृश्यपि स्थितिर्नास्तीति भावः । आवां द्वावपि भ्रातरौ तथाकर्तुं सज्जावेव स्व इत्यर्थः । तत् सगरान्ववायककुदः—सगरस्य तन्नाम्नो भूपेन्द्रस्य अन्ववाये वंशे ('वंशोऽन्ववायः संतानः' इत्यमरः) ककुदः श्रेष्ठः ('ककुद्वत्ककुदौ श्रेष्ठवृषाङ्गे राजलक्ष्मणि' इति विश्वप्रकाशः) तातः पिता दशरथः कुतः किमिति शोचति खिद्यते, तेन खेदो न कर्त्तव्य इत्यर्थः । दिव्यायाः दिवि भवा दिव्या तस्याः स्वर्गवाहिन्याः सरितः मन्दाकिनीत्यभिधानायाः नद्याः निवापकरणात् पितृतर्पणाञ्जलिरूपत्वेनोपस्थापनात् लघ्वीम् अल्पाम् अनायाससाध्याम् इमाम् वरद्वयरूपां प्रतिज्ञाम् अयम् अस्मत्पिता आवाभ्यां मया भरतेन च न पूरयिष्यति न पूर्णां करिष्यति चेद्यदि तर्हि कथं कुतः पुत्री पुत्रवान् (प्रशंसायामिनिः) प्रशस्तपुत्रवानित्यर्थः स्याद् भवेत् ? कथमपि न स्यादित्यर्थः । वरप्रदानरूपसत्यवचनभङ्गविषयकचिन्ता तातेन तदैव कर्तव्या, यदा भरतो भूपालनाद्भीतो भवेदथवाऽहं वनगमनात्

१. 'इह पूरयिष्यति' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रस्तो भवेयम् किन्त्वीदृशी कापिस्थितिर्न विद्यते तत् मम पिता सगरकुलश्रेष्ठः सन्नपि व्यर्थमेव चिन्तया खिद्यते। अस्मिन्नेव कुले जातो भगीरथो दिव्यां नदीं मन्दाकिनीं पातालं नीत्वा तामेव निवापजलं कृत्वा स्वपितॄणामुद्धरणरूपां स्वप्रतिज्ञां निर्व्यूढवान्, तस्मिन्नेव कुले जातो मम पिता वरप्रदानरूपामिमां लघ्वीमपि प्रतिज्ञां, सत्यपि मयि भरते च पुत्रे, नाभिपूरयति चेत्तर्हि वयं कथं पुत्रशब्दवाच्या भवेम कथं वाऽयं पुत्रवान् सिद्ध्येदिति रामोक्तेराशयः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २४ ॥

माँ, क्या भरत पृथिवी-पालन से डरता है अथवा मैं पावन वन से घबराता हूँ ? फिर सगरकुलश्रेष्ठ पिताजी (वरपूर्ति के विषय में) क्यों शोक करते है। दिव्य सरिता (मन्दाकिनी) को पितृतर्पण के जलरूप में उपस्थित करने की, (भगीरथ) की प्रतिज्ञा से छोटी इस प्रतिज्ञा को पिता जी मेरे और भरत-जैसे साधन रूप पुत्र से नहीं पूरा करेंगे तो मुझसे और भरत से वे कैसे कहलायेंगे ॥ २४ ॥

वनभुवि तनुमात्रत्राणमाज्ञापितं मे
सकलभुवनभारः स्थापितो वत्समूर्ध्नि।
तदिह सुकरतायामावयोस्तर्कितायां
मयि पतति गरीयानम्ब ते पक्षपातः ॥२५॥

वनभुवि इति। अम्ब मातः, मे मह्यं वनभुवि अरण्यप्रदेशे तनुमात्रत्राणम् मदीयशरीरमात्रस्य रक्षणम् आज्ञापितम् आदिष्टम्, यन्मम सुकरमिति भावः। वत्समूर्ध्नि—वत्सो बालः, (अतएव भारोद्वहनासमर्थः) भरतस्तस्य मूर्ध्नि शिरसि सकलभुवनभारः समस्तलोकपरिरक्षणभारः (अतएव दुर्वहः) स्थापितः निक्षिप्तः। इह अस्मिन् विषये, आवयोः मम भरतस्य च सुकरतायां तर्कितायाम् कस्य कार्यं सुकरमिति विवेचनायां मयि मद्विषये ते तव गरीयान् महत्तरः पक्षपातः आदरातिशयः पतति सिद्ध्यतीत्यर्थः। मह्यं ज्येष्ठाय तनुमात्राणरूपं सुकरं कार्यं, कनिष्ठाय भरताय सकलभुवनपालनरूपं दुष्करं कार्यं ददत्यास्तव मयि स्नेहाधिक्यजन्यपक्षपातः स्फुट एवेति रामोक्तेराशयः॥ मालिनी वृत्तम् ॥ २५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माँ, मुझे तूने वन में अपने शरीरमात्र की रक्षा का कार्य दिया और वत्स भरत के सिर पर सकललोक के पालन का भार डाल दिया। यहाँ हम दोनों में किस का कार्यं सुकर है—यह विचार करने पर मेरे विषय में (स्नेहाधिक्य के कारण) तुम्हारा महान् पक्षपात स्पष्ट सिद्ध है (अतएव लोग तुम पर इस पक्षपात का दोषारोपण करेंगे) ॥ २५ ॥

किञ्च—

तातः स्ववाचा व्यवहृत्य हृद्यं वत्साभिषेकोत्सवमङ्गलं मे।
प्रणामसंज्ञस्य मयार्पितस्य किं पूर्णपात्रस्य न पात्रमासीत् ॥ २६ ॥

किञ्च, तात इति। (तातः पिता स्ववाचा स्वमुखोच्चारितवचनेन हृद्यं प्रियं वत्साभिषेकोत्सवमङ्गलं भरताभिषकोत्सवरूपं कल्याणं व्यवहृत्य उक्त्वा, मयार्पितस्य दत्तस्य प्रणामसंज्ञस्य नमस्काररूपस्य पूर्णपात्रस्य उत्सवावसरे श्रेष्ठेभ्यो देयवस्तुनः पात्रम् योग्यः न आसीत् किम्) (उत्सवादिषु यद्देयं पूर्णं पात्रं तदुच्यते' इत्यभियुक्ताः) ('योग्यभाजनयोः पात्रम्' इत्यमरः)। (पिता स्वमुखेन स्वयं मम प्रियं भरताभिषेकोत्सवमङ्गलरूपं निवेद्य प्रियसूचकतया मया दत्तस्य प्रणामात्मकपूर्णपात्रस्य पात्रं किं नासीत्।) एतदेवोचितमासीद्यत् भरताभिषेकरूपं मम प्रियं श्रावयित्वा स्वीकृतिसूचकं मत्प्रणामं स्वीकुर्यात्किन्तु तथाऽकृत्वा भवत्या मुखेन तं मत्प्रियं समाचारं सूचयतीत्येतस्य कारणं न जाने' इति रामोक्तेरभिप्रायः) अत्रोत्तरार्द्धे पूर्णपात्रस्य (आरोप्यमाणस्य) विषयात्मतया (प्रणामात्मतया) प्रकृतार्थोपयोगित्वात् परिणामालंकारः। 'विषयात्मतयाऽरोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि। परिणामो भवेत्तुल्याधिकरणो द्विधा' इति तल्लक्षणात्। उपजातिर्वृत्तम् ॥ २६ ॥

पिता जी स्वयं निजवचन से वत्स भरत के राज्याभिषेकोत्सव रूप मङ्गल की, जो मुझे अत्यन्त प्रिय है सूचना देकर मेरे द्वारा अर्पित प्रणामात्मक पूर्णपात्र के योग्य नहीं थे क्या ? (अर्थात् उचित तो यह था कि पिता जी मुझसे स्वयम् इस मङ्गल और प्रिय समाचार को मुझसे कहते और मेरा स्वीकृति सूचक प्रणाम स्वीकार करते परन्तु न जाने क्यों वे वैसा न कर यह प्रिय एवं शुभ-सूचना आपके द्वारा दे रहे हैं) ॥ २६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्क्षणमशनिहत इव पर्वतः सर्वतः परीतदवदहन इव वनस्पतिः दिवस्पतिपदभ्रंशविधुर इव नहुषः पपात निःसंज्ञः पङ्क्तिरथः।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् = तस्मिन्नेव काले, एवमुक्तवति रामे सत्येवेत्यर्थः। अशनिहतः = वज्रहतः पर्वतः इव, सर्वतः=सर्वदिक्षु, परीतदवदहनः=व्याप्त-दावानलः, वनस्पतिः = वृक्ष इव ('वनस्पतिर्वृक्षमात्रे विना पुष्पैः फलद्रुमे' इति विश्वः)। दिवस्पतिपदभ्रंशविधुरः=दिवस्पतिः इन्द्रस्तस्य पदात् भ्रंशेन पातेन विधुरः दुःखी नहुषः तदभिधानो नृपविशेष इव। निःसंज्ञः=मूर्च्छितः, पंक्तिरथः=दशरथः, पपात=भूमौ पतितः। ('पङ्क्तिश्छन्दोऽपि दशलम्' इत्यमरः)। चन्द्रवंशोत्पन्नो नहुषो नाम मनीषी बलवाँश्च राजा बभूव। अयं आयुर्नाम्नो राज्ञः पुत्रः पुरूरवसः पौत्रः, ययातेः पिताऽऽसीत्। सः कुतश्चित् पुण्योदयादिन्द्रत्वं प्राप्य स्वाहङ्कारहुङ्कारेणागस्त्यं प्रकुपितं कृत्वा तेन शप्तः स्वर्गात् भूमौ पपात् इति पौराणिकी कथात्रानुसन्धेया। उपमालङ्कारः।

राम के इतना कहते ही राजा दशरथ तत्काल वज्राहत पर्वत के समान, चारों ओर से दावाग्नि के द्वारा घिरे हुए वृक्ष के समान, इन्द्रपद से गिरने के कारण दुःखी नहुष के समान मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

ततः सा पितृनिदेश[1]माचरेति राममादिदेश।

तत् इति। ततः धरण्यां दशरथपतनानन्तरम्। सा कैकेयी, पितृनिदेशम् पितुराज्ञाम् आचर पालय, वनं गन्तुमुद्युक्तो भवेत्यर्थः, इत्येवं प्रकारेण रामम् आदिदेश रामम् आज्ञापयामास।

इसके बाद उस (कैकेयी) ने राम से कहा–'पिता की आज्ञा का पालन करो।'

स एषः—

मातुराज्ञां वहन्मूर्ध्ना मालामिव महायशाः।
वनाय रामो वव्राज जगतामवनाय च॥ २७॥

स एषः, मातुरिति। स एषः महायशाः पित्राज्ञापालनाय कैकेय्याऽऽदिष्टोऽयं कीर्त्तिमान् रामः, मातुः कैकेय्याः आज्ञां मालामिव—पितृनिदेशमाचरे-

---

१. 'निदेशविचारमचिरम्', 'निदेशमविचारम्' इति च पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्येवं रूपामाज्ञाम् पुष्पमालामिव मूर्ध्ना शिरसा वहन् धारयन् वनाय वनं प्रति, तथा जगताम् त्रयाणामपि लोकानाम्, अवनाय राक्षसनिग्रहद्वारा-संरक्षणाय वव्राज जगाम गन्तुमुद्यतो बभूवेत्यर्थः। 'मातुराज्ञाम् मालामिवे-त्यत्रोपमा। 'वनाय अवनायेत्यत्र विरोधाभासः। तयोर्नैरपेक्ष्येण संसृष्टिः ॥ २७ ॥

कैकेयीद्वारा आदिष्ट कीर्तिमान् रामचन्द्र जी माता की आज्ञा को माला की तरह सिर पर धारण कर (राक्षसों के संहार द्वारा) संसार की रक्षा के लिए वन जाने के लिए उद्यत हो गये ॥ २७ ॥

असौ [1]समासाद्य सद्यः कौसल्यासदनमभिषेकप्रतिबन्धं कैकेयी-निर्बन्धमात्मनश्च वनवासं प्रणामानन्तरं तस्यै न्यवेदयत् ।

असाविति। असौ रामः सद्यः तत्कालमेव कौसल्याभवनम् स्वजननीगृहं समासाद्य गत्वा अभिषेकप्रतिबन्धम् स्वराज्याभिषेकस्य विघ्नभूतम् कैकेयी-निर्बन्धम् वरद्वयपूर्त्यर्थं भूयो भूयो राजानं प्रति कैकेय्या दुराग्रहं आत्मनो वनवासं च प्रणामानन्तरं कौसल्यायै न्यवेदयत् कथितवान्।

राम तुरन्त कौसल्या के भवन में पहुँच कर प्रणाम करने के बाद अपने अभिषेक के प्रतिबन्धरूप कैकेयी के आग्रह की तथा अपने वनवास की सूचना कौसल्या को दी।

सैत[2]दाकर्ण्य विदीर्णहृदया विषदिग्धमुखशिलीमुखविद्धश्रवणयुग-लेव सहसा निपत्य[3] विललाप ।

सैतदिति। सा कौसल्या एतत् रामवनवासवचनम् आकर्ण्य श्रुत्वा विदीर्ण-हृदया विदीर्णं विदलितं हृदयं मानसं यस्याः सा तथोक्ता सती, विषदिग्धे-त्यादिः—विषेण दिग्धं विषाक्तं मुखमग्रभागो यस्य तादृशो यः शिलीमुखः बाणः, तेन विद्धं छिन्नं श्रवणयुगलं कर्णयुग्मं यस्याः सा, सहसा त्वरितं निपत्य भूमौ पतित्वा विललाप विलपितुं प्रवृत्ता। 'कौसल्या रामवनवासं श्रुत्वा स्थातुमशक्यत्वाद् भूमौ पपात तस्या हृदयं विदीर्णमिवाभवत्, तस्य कर्णद्वयं केनचिद्विषाक्तेन बाणेन विद्धमिवाभवत्, तथा च सा विलपितुं प्रारेभे' इति

१. समासाद्य कौसल्या' इति पाठान्तरम्। २. 'एतत्' इति पाठान्तरम्।
३. 'भूम्यां निपत्य' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भावः । 'मुखं स्यादग्रभागेऽपि' 'अलि बाणौ शिलीमुखौ' इत्युभयत्राप्यमरः ।

वनवास की बात सुनते ही कौसल्या सहसा भूमि पर गिर पड़ीं, मानों उसका हृदय फट गया, जैसे उसके कान किसी विषाक्तबाण से बिंध से गये हों और वह विलाप करने लगी।

रेखारथाङ्गसरसीरुहशङ्खचिह्ने
क्षेमङ्करे तव करे जगतां त्रयाणाम् ।
कान्तारकन्दखननं रचयेति नून-
माबद्धवान्प्रतिसरं भगवान्वसिष्ठः ॥ २८ ॥

रेखेति। रेखाः रेखारूपाणि रथाङ्गं चक्रम्, सरसीरुहं कमलं शङ्खश्च तेषां चिह्नानि यत्र तादृशे चक्रकमलशङ्खाकाररेखायुक्त इत्यर्थः, एतेन रामस्य सामुद्रिकशास्त्रोक्तमहाभाग्यसम्पत्तिः सूचिता । त्रयाणां जगताम् त्रैलोक्यस्य क्षेमङ्करे कल्याणकरे तव करे श्रीरामस्य करे नूनं निश्चयेन भगवान् वसिष्ठः त्रिकालदर्शी वसिष्ठो मुनिः कान्तारकन्दखननं-वन्यकन्दमूलाद्यवदारणं रचय कुरु इत्युद्दिश्य प्रतिसरं रक्षासूत्रं बद्धवान्। मन्ये वसिष्ठेन त्रिकालदर्शितया वने कन्दमूलादिखननार्थमेव महाभाग्यसम्पत्तिसूचके करे हस्तसूत्रं बद्धमन्यथा कथमेवं भवेदित्याशयः उत्प्रेक्षालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥२८॥

चक्रकमलशङ्खादि की (महाभाग्यसम्पत्ति सूचक) रेखओं से युक्त, त्रैलोक्य-कल्याणकारी तुम्हारे हाथ में वसिष्ठ ने जो रक्षा सूत्र बाँधा था, मानों वह वन में कन्दमूल खोदने के लिए ही बाँधा था (नहीं तो ऐसा कैसे होता) ॥ २८ ॥

तत्र सौमित्रिरतिमात्रप्रवृद्धमन्युः शतमन्युसमानमेवमग्रजमकथयत्।

तत्रेति। तत्र तस्मिन्नवसरे, सौमित्रिः सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिः लक्ष्मणः ('बाह्वादिभ्यश्च' इतीञ्) अतिप्रवृद्धमन्युः—अतिशयेन प्रवृद्धः समेधितः मन्युः क्रोधो यस्य तादृशः सन् रामवनवासगमनस्य श्रोतुमशक्यत्वा-दिति भावः। शतमन्युसमानम् इन्द्रतुल्यम् अग्रजम् रामम् एवम् वक्ष्यमाण-प्रकारेण अकथयत् अवोचत ।

उस समय (रामवनवास को सुनकर) लक्ष्मण अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने इन्द्रसदृश अपने अग्रज राम से इस प्रकार कहा—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आर्य, [1]अकार्यमिदं [2]लोकगर्हणार्हाया: कैकेय्या [3]वचसा रजसा जरसा च समाक्रान्तस्वान्ततया कृत्याकृत्यविवेकमूकस्य राज्ञः प्रज्ञाशैथिल्यान्निःसृतेन वचसा सन्त्यज्य राज्यमटवीपर्यटनं विधातुम् ।

आर्येति । आर्य पूज्य ! लोकगर्हणार्हाया: लोकनिन्द्यायाः ('कुत्सा निन्दा च गर्हणे' इत्यमरः) कैकेय्याः वचसा रजसा रजोगुणेन कामासक्तिकरेण, जरसा वार्द्धक्येन च समाक्रान्तस्वान्ततया—समाक्रान्तं समभिभूतं स्वान्तं मानसं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया (रजोगुणे धूलौ परागार्तवयोरपि' इति शाश्वतः) ('स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः) कृत्याकृत्यविवेकमूकस्य = कार्याकार्यविवेकशून्यस्य राज्ञः दशरथस्य प्रज्ञाशैथिल्यात् = बुद्धिमान्द्यात् . निःसृतेन निर्गतेन वचसा वनं याहीति निरर्थकवचनेनेत्यर्थः, राज्यं वंशपरम्पराधिगतं भूपालनरूपराज्यं सन्त्यज्य त्यक्त्वा अटवीपर्यटनं वनाद्वनान्तरे भ्रमणं विधातुं कर्तुम्, अकार्यमिदम् = अयुक्तमिदम् ।

आर्य, लोकनिन्द्य कैकेयी के कहने से, रजोगुण और बुढ़ापे से अभिभूत-हृदय अतएव कृत्याकृत्य के विवेचन में असमर्थ राजा (दशरथ) की मूर्खतापूर्ण आज्ञा को मान कर राज्य का परित्याग कर वन-वन भटकना युक्त नहीं है ।

किन्तु, तुभ्यमनभ्यर्थमानाय प्रथममेव पित्रा प्रदत्ता ननु पृथिवी ।

किन्त्विति । किन्तु, अनभ्यर्थमानाय अयाचमानाय तुभ्यं रामाय पित्रा दशरथेन प्रथममेव पूर्वमेव पृथिवी भूः, राज्यमित्यर्थः, प्रदत्ता ननु । त्वया तु राजा पृथिवीं स्वयं न याचित आसीत् ' स तु स्वयं तुभ्यं पृथिवीं प्रदत्तवान् । तव राज्याधिकारो न्याय्योप्यस्ति । राजा स्वयं प्रदत्तां पृथिवीमपहर्तुं कथमपि न शक्नोति । वनगमनादेशस्तु कैकेय्या अनुरोधेन राज्ञा प्रदत्तो, न हि तत्र तस्य स्वरसस्तस्माद्राज्यं सन्त्यज्य तव वनगमनमयुक्तमेवेत्याशयः ।

परन्तु पिता जी ने पहिले ही, विना माँगे आप को राज्य दे दिया था ।

---

१. 'न कार्यम्' इति पाठान्तरम् । २. 'लोकगर्हणीयायाः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'वचसा जरसा' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्षत्रधर्मोऽपि [1]धर्म्यात्पथः [2]प्रमाद्यापि वर्णाश्रमरक्षणतः समीचीनः प्रायेण पुरुषं निःश्रेयसे नियोजयेत्।

क्षत्रधर्म इति। धर्म्यात् धर्मादनपेतः धर्म्यः धर्मसङ्गतः, तस्मात् पथः मार्गात् (धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत्) प्रमाद्यापि प्रमादं प्राप्यापि ('धर्म्यात्पथः' इत्यत्र जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इति पञ्चमी।) वर्णाश्रमरक्षणतः—वर्णा ब्राह्मणादयः, आश्रमा ब्रह्मचर्यादयस्तेषां रक्षणतः = पालनात्, समीचीनः शुद्धः, क्षत्रधर्मोऽपि क्षत्रियाचारोऽपि प्रायेण बाहुल्येन पुरुषं जनं निःश्रेयसे = मोक्षे, नियोजयेत् प्रवर्त्तयेत् मोक्षाधिकारिणं कुर्यादित्यर्थः। क्षत्रियः क्वचिदंशे स्वानुष्ठेयात् प्रमादं प्राप्यापि यदि वर्णाश्रमरक्षणं कुर्यात्तदा तस्य क्षत्रियधर्मो दोषं न गच्छति परमशुद्ध एव वर्तते, एवं पालितः क्षत्रियधर्मः पालकं नरं प्रायेण मोक्षाधिकारिणं करोति। भवानपि क्वचिदंशे पित्राज्ञोल्लङ्घनाद् धर्म्यात्पथः प्रमाद्यापि प्रजापालनरूपं स्वधर्मं यदि पालयति तदा निःश्रेयसमाप्नुयादेव। तस्माद्वनगमनाद्राज्यपालनमेव श्रेयस्तस्य क्षत्रधर्मविरुद्धत्वात्। उक्तञ्च—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥' इति भावः।

धर्म में थोड़ी सी त्रुटि आजाने पर भी, वर्णाश्रम की रक्षा करते रहने से क्षत्रियधर्म शुद्ध ही बना रहता है, उस थोड़ी सी त्रुटि के कारण वह दूषित नहीं होता और प्रायः मनुष्य के लिए मोक्षप्रद सिद्ध होता है। (आप भी यदि क्षत्रियधर्म के अनुसार वर्णाश्रम की रक्षा करते रहते हैं तो अवश्य निःश्रेयस के अधिकारी होंगे, भले ही पिता की आज्ञा का उलङ्घन करने से उसमें थोड़ी सी त्रुटि समझी जाय किन्तु इतने से धर्म दोषग्रस्त नहीं होता। प्रजापालन क्षत्रियधर्म की रीढ़ है, वह है तो उसकी समीचीनता में कोई कमी नहीं है। अतः आपके लिए वन जाने की अपेक्षा प्रजापालन निःश्रेयसकर है)।

नियतं [3]नियतिबलमतिलङ्घ्य पौरुषमेव [4]धीरस्य पुरुषार्थो[5]ऽसमर्थयेत्।

---

१. 'सत्यात्पथः' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रमाद्योऽपि' इति पाठान्तरम्।
३. 'नियतेर्वलं' इति पाठान्तरम्। ४. 'पुरुषस्य धीरस्य' इति पा०।
५. 'र्थानर्थयेत् समर्पयेत्' इति च पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियतमिति । नियतं निश्चयेन नियतिबलम् दैवबलम्, अतिलङ्घ्य तिरस्कृत्य, अनवलम्ब्येत्यर्थः, पौरुषम् पुरुषकार एव ('पौरुषं पुरुषस्योक्ते भावे कर्मणि तेजसि' इति विश्वः)। धीरस्य = धैर्यशालिनः, वीरस्येत्यर्थः, पुरुषार्थान् धर्मादिचतुर्विधपुरुषार्थान् समर्थयेत् साधयेदित्यर्थः। भवान् भाग्यवादं विसृज्य पौरुषावलम्बेन राज्यं गृह्णातु भाग्यलब्धं वनगमनं च परिहरत्विति भावः।

निश्चय ही भाग्यवाद को तिरस्कृत कर पौरुष ही वीर पुरुष के पुरुषार्थों को सिद्ध कर सकेगा (अतः आप वीर होने के नाते पौरुष का आश्रयणकर राज्य ग्रहण करें, भाग्यवादी की तरह वन जाने की बात न करें)।

मा भूत्त्वत्पदपद्मयोररुणिमा कान्तारसंचारतः
पाणौ पाटलिमा मनाक्प्रसरतु ज्याकर्षणादेव मे।
कैकेयीपरिभूततातवचने नम्रो भवान्मा स्म भू-
[1]त्किञ्चिन्मामकमार्य शौर्यजलधे नम्रं धनुर्वर्तताम् ॥ २९ ॥

मा भूदिति । आर्य = पूज्य, शौर्यजलधे = शौर्यसिन्धो, अपारशौर्ययुक्त इत्यर्थः, शूरत्वादस्माकं पौरुषमेवावलम्बनं स्यादित्यभिप्रायेणेदं सम्बोधनपदं प्रयुक्तमित्यवगन्तव्यम् । त्वत्पादपद्मयोः त्वच्चरणकमलयोः, कान्तारसंचारतः काननभ्रमणात् अरुणिमा लौहित्यं मा भूत मास्तु, मे मम लक्ष्मणस्य पाणौ करे (एव) ज्याकर्षणात् मौर्व्याकर्षणात् एव, मनाक् ईषत् पाटलिमा रक्तिमा प्रसरतु जायताम् (मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः।' 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्युभयत्राप्यमरः)। तथा भवान् श्रीरामः कैकेयीपरिभूततातवचने—कैकेय्या परिभूतस्य स्वच्छलप्रपञ्चेन वशीकृतस्य तातस्य पितुर्दशरथस्य वचने 'वनं याहीति' निदेशे नम्रः नतः मा स्म भूत्, भवान् सौशील्यवशादेतादृशस्य स्त्रैणस्य वचो नम्रीभूय मा स्वीकरोत्वित्यर्थः। किन्तु मामकं मदीयं धनुरेव किञ्चित् ईषत् नम्रम् आकर्षणेन वक्रं वर्तताम् जायतामित्यर्थः। कामपरायणत्वा त्स्त्रीवशीभूतस्य पितुर्वचनं नतशिराः सन् भवानङ्गीकृत्य वनं मा गमत्, अहं स्वधनुरुद्यम्य स्त्रैणं नृपं तद्वञ्चिकां कैकेयीं तत्सहायाँश्च सर्वान्निहन्मीति लक्ष्मणो-

---

१. 'किं वा' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्तेराशयः। राम चरणधार्यारुण्यस्य निषेधमुखेन लक्ष्मणहस्ते पाटलत्वस्य, तथा च रामधार्यनम्रत्वं वर्जयित्वा लक्ष्मणधनुषि नम्रत्वस्य नियमनात् परिसंख्यालङ्कारः। तल्लक्षणं यथा—'एकस्य वस्तुनः प्राप्तावनेकत्रैकदा यदा। एकत्र नियमः सा हि परिसंख्या निगद्यते' ॥ इति ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

हे शौर्यसागर आर्य, वन में इधर-उधर भटकने से आप के कमल के समान कोमल चरणों में (स्वाभाविक लाली के अतिरिक्त) लाली न हो, केवल हमारे हाथ में ही धनुष की डोरी खींचने से तनिक लाली आ जाय। कैकेयी के वशीभूत (स्त्रैण) पिता के आदेश के सामने आप नम्र न हों केवल हमारा यह धनुष ही नम्र (अर्थात् डोरी खीचने से वक्र) हो जाय ॥ २९ ॥

एवमाचक्षाणं लक्ष्मणं रामः सान्त्वयन्नेवावोचत्।

एवमिति। एवं पूर्वोक्त प्रकारेण आचक्षमाणं वदन्तं लक्ष्मणं सान्त्वयन् सामवादैः प्रबोधयन्नेव न तु तदुक्तं समर्थयन्, = रामः अवोचत् उक्तवान्। "सामसान्त्वमुभे समे' इत्यमरः।

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण को समझाते हुए राम ने कहा—

वत्स, सवितृवंशजातानां पितृनिदेश एव देशिकः सर्वकर्मसु।

वत्स = वात्सल्यभाजन लक्ष्मण, सवितृवंशजातानाम्—सूर्यकुलोत्पन्नानाम् पितृनिदेश एव पित्रादेश एव, सर्वकर्मसु कृत्याकृत्येषु सकल कर्मसु देशिकः आचार्यः उपदेष्टेत्यर्थः। सूर्यवंशोद्भवाः सकलकर्मसु पितुरादेशमेव प्रमाणं मन्यन्ते, ते पितुरादेशेन कृत्यमप्यकृत्यमकृत्यं च कृत्यं मन्यन्ते। हितुरादेश-पालने कृत्या-कृत्यं न विचारयन्तीति रामोक्तेरभिप्रायः।

वत्स, सूर्य कुल में उत्पन्न सभी लोग सब कार्यों में पिता के आदेश को ही आचार्य अथवा उपदेशक मानते रहे हैं (अर्थात् उनके लिए पिता का आदेश ही सर्वोपरि रहा है, उसमें कृत्याकृत्य का विचार नहीं करते रहे हैं, अतः हमें भी पिता के आदेश को कृत्य ही समझ कर पालन करना अनिवार्य है)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बहवः खलु [1]पितृनिदेशगौरवाद्गोहत्यामपि मातृवधमपि तारुण्यविनिमयमपि [2]कण्डुरैणुकेयपूरुप्रभृतयः [3]कुर्वाणा निर्विचारमाचारवतामग्रण्या इति गण्यन्ते ।

बहव इति । कण्डुरैणुकेयपूरुप्रभृतयः—कण्डुर्नाम महर्षिः, रैणुकेयः रेणुकाया अपत्यं पुमान् रैणुकेयः परशुरामः ('स्त्रीभ्योढक्') पूरुः = ययातिनन्दनः, ते प्रभृतिरादिर्येषां ते तथोक्ताः बहवः पितृनिदेशगौरवात् पितुराज्ञायां समादरातिशयात्, गोहत्यामपि निकृष्टतरं गोवधमपि, मातृवधमपि अतिगर्हितं जननीहत्यामपि, तारुण्यविनिमयमपि पित्रे स्वतारुण्यं प्रदाय तद्वार्धक्यग्रहणमपि निर्विचारम् इदं कृत्यमिदमकृत्यमिति कृत्याकृत्यविचारं विनैव, कुर्वाणाः, आचारवताम् सदाचारशालिनामग्रगण्याः श्रेष्ठाः गण्यन्ते । न हि सूर्यवंश्या एवापित्वन्येऽपि पूर्वपुरुषाः पितृनिदेशपालनं कुर्वन्तोऽद्यापि सदाचारशालिषु जनेषु श्रेष्ठा गण्यन्ते, यथा कण्डुर्नाम कश्चिन्महर्षिः पितुरादेशेन निर्विचारं गोवधमकरोत्, परशुरामः स्वमातुः शिरोऽच्छिनत्, ययातितनयः पूरुश्च पितुर्वार्धक्यं गृहीत्वा स्वतारुण्यं तस्मै प्रदत्तवान् । तत्पित्रादेशपालनविषये त्वया विरोधो न कर्त्तव्य इति रामोक्तेराशयः ।

(सूर्यवंशी ही नहीं, अन्य भी पूर्वपुरुषों ने पिता के आदेश का पालन कर लोक के सामने आदर्श प्रस्तुत किया है) कण्डु नामक महर्षि ने पिता की आज्ञा से, विना कुछ सोचे-समझे गोहत्या की, परशुराम ने विना किसी झिझक के, माता का वध किया और ययातिपुत्र पूरु ने विना 'ननु न च' किये अपनी जवानी पिता को देकर स्वयं उनकी बुढ़ापा ले ली (इस प्रकार के तमाम दृष्टान्त भरे पड़े हैं)। ऐसा करने पर भी वे लोग आज भी सदाचारियों में मूर्धन्य माने जाते हैं (अतः हमें भी विना किसी हिचक के, पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए)।

तस्मादवश्यं वश्य एव पितुरवगाहे गहनमिति ।

तस्मादिति । तस्मात् पितृनियोगस्यावश्यमनुष्ठेयत्वाद्धेतोः, अवश्यम्

---

१. 'वचन' इति पाठान्तरम् । २. 'मृकण्डु' इति पाठान्तरम् ।
३. 'कुर्वाणास्तेऽपि इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निश्चयेन, पितुः वश्यः आज्ञाकर एव, गहनं वनम् अवगाहे गच्छामीत्यवोचदिति पूर्वेण अन्वयः।

इस लिए पिता की आज्ञा को मानते हुए ही मैं वन को जा रहा हूँ।

तत्र विस्तृतपुत्रवात्सल्या कौसल्या तेन सह गन्तुमभिलषन्ती कृतप्रणामेन रामेण सविनयमेवमभिहिता।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये, रामे पूर्वोक्तप्रकारेणोक्तवति सतीत्यर्थः, विस्तृतपुत्रवात्सल्या—विस्तृतं समधिकं पुत्रे वात्सल्यं स्नेहो यस्याः सा कौसल्या तेन रामेण सह (वनं) गन्तुमभिलषन्ती कामयमाना, कृतप्रणामेन पादयोः पतितेन रामेण सविनयमेवमभिहिता वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रबोधितेत्यर्थः।

राम के ऐसा कहने पर अत्यन्त अधिकपुत्रस्नेह वश कौसल्या ने भी उन (राम) के साथ वन जाने की अभिलाषा व्यक्त की, तब रामने उसके पैरों पर गिर कर उसे विनय पूर्वक यों समझाया—

कान्तारभाजि मयि केकयराजपुत्र्याः
कार्कश्यकन्दलितया दलितस्य वाचा।
तातस्य शोकदहनग्लपितं शरीरं
मातस्त्वया न तु कदाचिदुपेक्षणीयम्॥ ३०॥

कान्तारेति। हे मातः, मयि रामे कान्तारभाजि अरण्यं गते सति, केकयराजपुत्र्याः कैकेय्याः, कार्कश्यकन्दलितया—कार्कश्येन काठिन्येन कन्दलितया प्ररूढया दुःसहयेत्यर्थः, वाचा वाण्या ('कर्कशं कठिनं क्रूरम्' इत्यमरः) दलितस्य पीडितस्य तातस्य पितुर्दशरथस्य, शोकदहनग्लपितम्—शोकः मद्विरहजन्यदुःखम्, स एव दहनः अनलः, तेन ग्लपितम् सन्तप्तम्, शरीरम्, त्वया मात्रा कौसल्यया तु कदाचित् कदापि न उपेक्षणीयम्। मयि वनं गते कैकेय्याः कर्कशवाचा पीडितस्य पितुर्मद्विरहजन्यशोकानलसन्तप्तशरीरस्य रक्षणमवेक्षणं चावश्यकं तत्तु गृहे तिष्ठन्त्या त्वयैव कर्त्तुं शक्यते, मया सह त्वमपि वनं गच्छसि चेत्तदा को जनस्तातस्य रक्षणमवेक्षणं च कुर्यात्तत्त्व मया सह गमनं नितान्तमयुक्तमिति रामोक्तेरभिप्रायः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३०॥

मेरे वन चले जाने पर, कैकेयी के कठोर वचन से विदीर्णहृदय पिता जी के शोकानलसन्तप्त शरीरकी उपेक्षा तुम्हें तो कदापि नहीं करनी चाहिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(अतः तुम्हें अयोध्या में ही रहना उचित है, मेरे साथ वन चलना ठीक नहीं होगा) ॥ ३० ॥

ततः सा तनयस्य स्वस्त्ययनाय समस्तदेवताकीर्तनपुरःसरीमाशिषमाचचक्षे ।

तत इति । ततस्तदनन्तरं सा कौसल्या तनयस्य पुत्रस्य रामस्य स्वस्त्ययनाय कल्याणाय समस्तदेवताकीर्तनपुरःसरीम् इन्द्रादिसकलदेवस्तुतिपूर्विकाम्, आशिषं शुभकामनापूर्णं वाक्यविशेषम्, आचचक्षे उवाच ।

इसके बाद कौसल्या ने पुत्र राम के कल्याण के लिए सकल देवों की स्तुति करके आशीर्वचन कहा ।

[1]तदनु रामस्तामभिवन्द्य निष्क्रान्तः प्रक्रान्तनेपथ्यायाः सीतायाः प्रसादमाससाद ।

तदन्विति । तदनु मातुराशीर्वादं गृहीत्वा रामः तां मातरमभिवन्द्य प्रणम्य निष्क्रान्तः मातुर्गृहाद्विनिर्गतः, प्रक्रान्तनेपथ्यायाः प्रक्रान्तं समारब्धं नेपथ्यं राज्याभिषेकोचितवेषपरिग्रहो यया तादृश्याः सीतायाः स्वप्रियायाः प्रासादम् सदनम्, आससाद विवेश । स्ववनगमनं सूचयितुमिति भावः ।

माता का आशीर्वाद ग्रहण करने के बाद वहाँ से बाहर निकल कर राम सीता जी के प्रासाद में पहुँचे । उस समय सीता जी अभिषेकोचित वेष धारण करने में लगी हुई थीं ।

कल्याणवादसुखितां सहसैव कान्तां
कान्तारचारकथया कलुषीचकार ।
अम्भोदनादमुदितां विपिने मयूरीं
संत्रासयन्निव धनुर्ध्वनिना पुलिन्दः ॥ ३१ ॥

कल्याणवादेति । कल्याणवादसुखिताम्—कल्याणवादेन केनापि पूर्वं सूचितेन राज्याभिषेकसमाचारेण सुखिताम् संजातहर्षाम्, तां कान्तां प्रियतमां सीताम्, (रामः) सहसैव अकस्मादेव कान्तारचारकथया स्ववनगमनवृत्तान्तकथनेन विपिने वने अम्भोदनादमुदिताम् अम्भोदनादेन मेघगर्जितेन मुदितां

१. 'तदनु' इति क्वचिन्न दृश्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुप्रसन्नाम्, मयूरीम् धनुर्ध्वनिना धनुष्टङ्कारेण संत्रासयन् भीषयन् पुलिन्दः शबर इव कलुषीचकार संक्षोभयामास। ('भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छ-जातयः' इत्यमरः) यथा कश्चिद् व्याधो मेघध्वनिना सुप्रसन्नां मयूरीं सहसा धनुष्टङ्कारेण व्यथयति तथैव रामो राज्याभिषेकवार्त्तया प्रमुदितां सीतामकस्मात् स्ववनगमनवृत्तान्तकथनेन व्यथयामासेत्यर्थः। उपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अभिषेक के शुभ समाचार से सुप्रसन्न प्रियतमा सीता को रामने अकस्मात अपने वनगमन की बात-चला कर उसी तरह व्यथित कर दिया, जैसे वन में मेघ का गर्जन सुन कर प्रमुदित मयूरी को कोई व्याध अपने धनुष की टङ्कार से भयभीत करता हुआ व्यथित कर देता है ॥ ३१ ॥

अयमेनामनु[1]गन्तुमुपक्रान्तामकथयत्।

अयमिति। अयं रामः, अनुगन्तुम् रामेण सह वनं गन्तुम् उपक्रान्ताम् उद्युक्ताम् एनां सीतां प्रति अकथयत् उक्तवान्।

इन (राम) ने अपने साथ सीता जी को भी वन चलने के लिए तैयार देख कर कहा—

प्रिये जनकनन्दिनि प्रकृतिपेशलामीदृशीं
कथं ग्लपयितुं सहे तव शिरीषमृद्वीं तनूम्।
गृहीतहरिणीगणत्रिकविसारिनानाशिरा-
[2]क्षतक्षरितशोणितारुणवृकानने कानने ॥ ३२ ॥

प्रिय इति। हे प्रिये जनकनन्दिनि जनकराजपुत्रि, गृहीतेत्यादिः—गृहीतं बुभुक्षया दष्टं हरिणीगणस्य मृगीसमूहस्य त्रिकम् पुच्छाग्रभागः ('पृष्ठवंशाधरे त्रिकम्' इत्यमरः) तत्र विसारिण्यः इतस्ततः प्रसृता या नानाशिरा बहुविधा रक्तवहा नाड्यः ('नाडी तु धमनिः शिरा' इत्यमरः) तासां क्षतेभ्यः व्रणेभ्यः क्षरितेन परिस्रुतेन शोणितेन रुधिरेण अरुणानि रक्तानि वृकाणाम् ईहामृगाणाम् ('कोकस्त्वीहामृगो वृकः' इत्यमरः) आननानि मुखानि यस्मिंस्तादृशे, मृगीगणो मांसबुभुक्षून् वृकान् पश्यन्नेव पलायते। वृका अपि तमनुधावन्तः

---

१. 'उपगन्तुम्' इति पाठान्तरम्। २. 'क्षति' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथमं तदीयं त्रिकमेव प्राप्य तत्र दन्तानासञ्जयन्ति। एवं कृते सति प्रसृतानां शिराणां क्षतेभ्यः सततं च्यवमानेन रुधिरेण वृकाणां मुखानि रक्तानि संजायन्ते यस्मिन् तादृश इत्यर्थः, हिंस्रप्रचुरतयाऽत्यन्तभयङ्कर इति भावः। कानने अरण्ये तव सीतयाः ईदृशीम् सर्वथा सुखोपचारोचिताम्, प्रकृतिपेशलाम् प्रकृत्या पेशलां चारुतराम् ('चारौ दक्षे च पेशलः' इत्यमरः) शिरीषमृद्वीम् शिरीषपुष्पसन्नितान्तकोमलाम् तनूम् देहं ग्लपयितुं परिक्लेशयितुं कथं सहे क्षमे, न कथञ्चिदपि सह इत्यर्थः। पृथ्वी वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'जसौ यसजला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः'। इति।

हे प्रिये जनक-नन्दिनि, (भागती हुई) हरिणियों के पुच्छ भाग में दाँतों से काट लेने पर वहाँ की शिराओं से निरन्तर बहते हुए रुधिर से (पीछे-पीछे दौड़ने के कारण) अरुणमुख वाले वृकों से युक्त (अत्यन्त भयङ्कर) वन में तुम्हारे इस अकृत्रिम सुन्दर, शिरीष पुष्प के समान कोमल शरीर को कष्ट देने का साहस कैसे करूँ (अर्थात् किसी भी प्रकार से यह मुझे सह्य नहीं है कि तुम जैसी सुकुमारी सुन्दरी वन में चलकर कष्ट भोगे) ॥ ३२ ॥

तदनु नानाविध[1]प्रयत्नेनाप्यनुन्मिषदनुजिगमिषाशैथिल्यां मैथिल्यां लक्ष्मणेऽप्यनवसितानुगमनव्यवसाये वासिष्ठाय सुयज्ञाय भूषणसशेषं नागसहस्रेण सह शत्रुञ्जयाह्वयं [2]मातुलदत्तं मत्तहस्तिनमगस्त्यकौशिकाभ्यां च [3]महार्घाणि रत्नानि वितीर्य तदनु निर्जरारिवीर्यमुषो धनुषी निरपायत्राणकर्मणी वर्मणी निर्मर्यादशिलीमुखकृतानुषङ्गौ निषङ्गौ निर्वर्तितवीरपाणौ कृपाणौ वरुणेन जनकसदसि दत्तमेतत्स[4]मस्तमायुधजातमादाय मामनुगच्छेति सौमित्रिमन्वग्रहीत्।

तदन्विति। तदनु तदनन्तरम्। नानाविधप्रयत्नेन वनवासकष्टावबोधकेन विविधप्रयासेनापि, अनुन्मिषदनुजिगमिषाशैथिल्यायाम्—अनुन्मिषत् अनुदयत् अलक्ष्यमाणमिति यावत्, अनुजिगमिषायाः अनुगन्तुमिच्छायाः शैथिल्यं

१. 'प्रयत्नशतेन' इति पा०।

२. 'अतुलं मातुलदत्तं हस्तिनम्' इति पा०।

३. 'महार्हाणि च रत्नानि वितीर्य निर्जराराति' इति पाठान्तरम्।

४. सर्वमादाय' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मान्द्यं यस्यास्तस्यां मैथिल्याम् सीतायाम्, सीताया रामानुगमनसमीहायां कथमपि मन्दतां न गतायामित्यर्थः। तथा लक्ष्मणेऽपि अनवसितानुगमनव्यवसाये—अनवसितः न निवर्तितः अनुगमनस्य रामानुसरणस्य व्यवसायः उद्योगः यस्य तस्मिन् (उभयत्रापि भावे सप्तमी) वासिष्ठाय—वसिष्ठस्य अपत्यं पुमान् वासिष्ठः ('तस्यापत्यम्' सूत्र से अण्) तस्मै सुयज्ञाय सुयज्ञनाम्ने, अशेषम् समस्तं भूषणं कुण्डलकेयूरादिकं स्वालङ्कारजातम्, नागसहस्रेण सह सहस्रसंख्याकैर्गजैः सह शत्रुञ्जयाह्वयं शत्रुञ्जयाभिधानेन प्रसिद्धम्, मातुलदत्तं मातुलेन मातुर्भ्रात्रा दत्तं मत्तहस्तिनम् मदकरिणं ('ग्राहाग्राहिगजा नागाः' इति वैजयन्ती) वितीर्य दत्त्वा, तथा च अगस्त्यकौशिकाभ्याम्—अगस्त्यः कुम्भसम्भवः प्रसिद्धोमुनिः, कौशिकः विश्वामित्रश्च ताभ्यां महार्घाणि बहुमूल्यानि रत्नानि मरकतवैदूर्यादीनि च वितीर्य प्रदाय, तदनु तदनन्तरम्, निर्जरारिवीर्यमुषी—निर्जराः देवाः ('अमरा निर्जरा देवाः' इत्यमरः) तेषामरयः शत्रवः दैत्या इत्यर्थः, तेषां वीर्यं सामर्थ्यं मुष्णतः अपहरतो ये ते तथोक्ते। ('वीर्यं शुल्के प्रभावे च तेजः सामर्थ्ययोरपि' इति शाश्वतः) धनुषी शरासने, निरपायत्राणकर्मणी—निरपायं निर्भयं त्राणकर्म रक्षणकृत्यं ययोस्ते, वर्मणी कवचौ, निर्मर्यादशिलीमुखकृतानुषङ्गौ—निर्मर्यादाः संख्यातीताः ये शिलीमुखाः बाणास्तैः कृतः अनुषङ्गः अनुबन्धः ययोस्तौ, असंख्येयसायकपूर्णौ, अक्षयसायकाविति यावत्। निषङ्गौ तूणीरौ ('तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः' इत्यमरः)। निर्वर्तितवीरपाणौ—निर्वर्तितं निष्पादितं वीरपाणं भाविने रणाय वीरोचितमधुपानं ययोस्तौ युद्धाय संनद्धावित्यर्थः। कृपाणौ खड्गौ, वरुणेन जनकसदसि जनकयज्ञसभायां दत्तं मे समर्पितम्, एतत् उक्तसंज्ञकम् समस्तं सकलम् आयुधजातम् अस्त्रकलापमादाय गृहीत्वा मामनुगच्छ अनुसर इत्यनेन प्रकारेण सौमित्रिम् लक्ष्मणम् अन्वग्रहीत् अनुगृहीतवान्, आज्ञापितवानित्यर्थः।

इसके बाद जब अनेक प्रयत्न करने पर भी सीता की रामानुगमनविषयक इच्छा शिथिल नहीं हुई और लक्ष्मण का (भी) अनुगमन विषयक उद्योग समाप्त नहीं हुआ, तब राम ने वसिष्ठ के पुत्र सुयज्ञ को अपने सकल भूषण तथा हजार अन्य हाथियों के साथ, मामा द्वारा उपहृत किये गये शत्रुञ्जय नामक मत्तगज को दे दिया, एवम् अगस्त्य और विश्वामित्र को अपने बहुमूल्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रत्न समर्पित कर दिये। ऐसा करने के बाद उन्होंने लक्ष्मण को यह कह कर अनुगृहीत किया कि राक्षसों के सामर्थ्य को हर लेने वाले दोनों धनुष, निर्विघ्न रक्षा करने वाले दोनों कवच, संख्यातिग बाणों से भरे हुए (अर्थात् अक्षय-सायक) दोनों तरकस, वीरपाण किये हुए (अर्थात् युद्ध के लिए संनद्ध) दोनों तलवारें, जनक की सभा में वरुण द्वारा दिये गये इन अस्त्रों को लेकर मेरे साथ चलो।

सीतापि निजाभरणजातं[1] सुयज्ञपत्न्यै[2]न्यदात्।

सीतापीति। सीताऽपि निजाभरणजातं स्वधार्यालङ्कारसमुदयं सुयज्ञपत्न्यै: सुयज्ञोनाम वसिष्ठपुत्रस्तस्य पत्न्यै भार्यायै न्यदात् दत्तवती।

यस्मै सुयज्ञाय श्रीरामः स्वभूषणजातं दत्तवान् तत्पत्न्यै सीताऽपि निजाभरणजालं दत्तवतीत्युचितमेवेति भावः।

सीता ने भी अपने सकल आभरण वसिष्ठपुत्र की पत्नी को दे दिये।

[3]ततः सौमित्रिरपि स्वाधीनेन धनेन कञ्चित्कौसल्याश्रितमुपाध्याय-मतोषयत्।

तत इति। ततः तदनन्तरम्, सौमित्रिः लक्ष्मणोऽपि स्वाधीनेन स्वायत्तेन ('अधीनोनिघ्न आयत्तः' इत्यमरः) धनेन रत्नसुवर्णादिना द्रव्येण कौसल्या-श्रितम् कौसल्याश्रये वर्तमानम्, कंचित् उपाध्ययम् कमपि विप्रमतोषयत् सन्तुष्ट-मकरोत्। एतेन स्वमातुरपेक्षया लक्ष्मणस्य कौसल्यायामत्यन्तादरः सूच्यते।

तदनन्तर लक्ष्मण ने भी अपने अधीन धन से कौसल्या के आश्रय में रहने वाले किसी विप्र विशेष को सन्तुष्ट किया (अर्थात् अपना सारा धन उसे दे दिया)।

तत्र सकुटुम्बाय [4]त्रिजटाभिधानाय निर्धनाय द्विजातये [5]स्वहस्त-निक्षिप्तदण्डपतितदेशावधिकं गोधनं च[6] कपिञ्जलादिभ्यो द्विजातिभ्यश्च रघुपतिर्वित्तानि विविधानि विततार।

---

१. 'गणम्' इति पाठान्तरम्। २. 'विदघे' इति पाठान्तरम्

३. 'सौमित्रिरपि स्वधनेन' इति पा०। ४. 'त्रिकटामिधाय द्विजातये' इति पा०।

५. 'स्वहस्तनिक्षिप्तदण्देशा' इति पा०। ६. 'काम्पिल्यादिम्यो' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्रेति। तत्र तस्मिन् प्रस्थानसमये रघुपतिः श्रीरामचन्द्रः, सकुटुम्बाय सपरिवाराय त्रिजटाभिधानाय त्रिजटनाम्ने निर्धनाय दरिद्राय द्विजातये ब्राह्मणाय स्वहस्तनिक्षिप्तदण्डपतितदेशावधिकम्—स्वहस्तेन त्रिजटकरेण निक्षिप्तो दण्डो यावद् दूरे पतति, तदवधिके प्रदेशे यावद् गोधनं स्थातुं शक्नोति तावदित्यर्थः गोधनम् गोव्रजम् 'गोकुलं तु गोधनं स्याद् गवां व्रजे' इत्यमरः। कपिञ्जलादिभ्यः कपिञ्जलो नाम ब्राह्मण आदिर्येषां तेभ्यः, द्विजातिभ्यः ब्राह्मणेभ्यः, विविधानि नानाप्रकाराणि वित्तानि धनानि गोरत्नाम्बरयानादीनि विततार ददौ।

उस समय राम ने सपरिवार त्रिजटनामक दीन ब्राह्मण को, उसके हाथ से फेंक गया दण्ड जितनी दूरी पर गिरा उतनी दूर में जितनी गायें खड़ी हो सकीं उतनी गायें देकर कपिञ्जल आदि ब्राह्मणों को नाना प्रकार के धन प्रदान किये।

ततस्ते पौरनारीणां [1]निःश्वासझञ्झानिलचलदधरकिसलयाना[2]मस्रसलिलासारेण शोकपावकेन च वपूंषि मनांसि च सिक्त्वा दग्ध्वा च निषिद्धपरिजनानुगमनतया प्रकाशितप्रवास[3]सिद्धान्ताः शुद्धान्तान्निश्चक्रमुः।

तत इति। ततः दानानन्तरम्, निःश्वासझञ्झानिलचलदधरकिसलयानाम्—निःश्वासाः सवेगं निर्गच्छन्तः श्वासा एव झञ्झानिलाः सवर्षमहामारुतास्तैः चलन्ति कम्पमानानि अधरकिसलयानि ओष्ठपल्लवाः या स ताद्दशीनां पौरनारीणाम् पुरवासिनीनां स्त्रीणाम् वपूंषि शरीराणि अस्रसलिलासारेण तन्नेत्रसमुत्थाश्रुजलवृष्ट्या ('अस्रमश्रुणि शोणिते' इति विश्वः) सिक्त्वा, मनांसि हृदयानि च शोकपावकेन रामविरहजन्यदुःखानलेन च दग्ध्वा संताप्येत्यर्थः निषिद्धपरिजनानुगमनतया—निषिद्धम् वारितं परिजनानां भृत्यानाम् अनुगमनं यैस्तेषां भावस्तत्ता तया प्रकाशितप्रवाससिद्धान्ताः—प्रकाशितः प्रकटीकृतः प्रवासस्य वनगमनस्य सिद्धान्तः, अस्मान्नेकोऽप्यनुगच्छतु, अस्माभिस्त्रिभिरेव वनं गन्तव्यमित्येवं रूपः स्वसिद्धान्तः यैस्ते, ते सीतारामलक्ष्मणाः शुद्धान्तात् अन्तःपुरात् निश्चक्रमुः बहिर्निजग्मुः।

१. विश्वासान्निःश्वासजृम्भानिल' इति पाठान्तरम्। २. 'अश्रु' इति पाठान्तरम्।
३. 'सिद्धान्ताव्' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके बाद सीता, राम और लक्ष्मण, दीर्घ निःश्वास रूप झञ्झावात से जिनका अधरपल्लव काँप रहा था उन पुर वनिताओं के देह को उनके अश्रु-प्रवाह से आर्द्र कर और उनके हृदय को स्वविरहजन्य शोकानल से दग्ध करके, परिजनों के अनुगमन को रोक कर अपने वनवास के सिद्धान्त को प्रकट करते हुए अन्तः पुर से निकल पड़े।

तत्र—

सीता पुरा गगनचारिभिरप्यदृष्टा
मा भूदियं सकलमानवनेत्रपात्रम्।
इत्याकलय्य नियतं पिदधे विधाता
[1]बाष्पोदयेन नयनानि शरीरभाजाम्॥ ३३॥

तत्र—

तत्र, सीतेति। तत्र तस्मिन् प्रस्थानसमये, पुरा इतः पूर्वं गगनचारिभिः आकाशगामिभिरपि, किमुतान्यैरिति भावः। अदृष्टा अनवलोकिता, इयं स्वधर्मपालनाय पतिमनुसरन्ती सीता सकलमानवनेत्रपात्रम्—सकलजननेत्र-विषयः, नाभून् न जायताम् इति आकलय्य विचिन्त्य नियतं निश्चितं विधाता ब्रह्मा शरीरभाजाम् सकलप्राणिनां नयनानि नेत्राणि बाष्पोदयेन अश्रुजलोत्पा-दनेन पिदधे आच्छादितवान्। 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इत्यपेर-कारलोपः श्रीरामादिवनगमनसमये तद्विरहजन्यदुःखेन जनानां नेत्राण्यश्रुप्र-पूरितान्यजायन्त, मन्ये या सीता पूर्वं गगनचारिभिरपि (का कथाऽन्येषां प्राणिनाम्) न द्रष्टुं शक्याऽऽसीत् सेयं पतिपरायणतया पतिमनुसरन्ती पथि सकलजन-दृग्गोचरा मा भूदिति मनसि विभाव्येव ब्रह्मा युक्तायुक्तसाधनप्रवीणतया सकलजननेत्रेष्वश्रुजलमाविष्कृत्येत्थं तदवलोकशक्तिं निरुद्ध्य सीताया राज-परिग्रहत्वमरक्षदित्याशयः। हेतूत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्। तल्लक्षणं पूर्वमेवान्यत्रोक्तम्॥ ३३॥

उस समय, "जिस सीता को इससे पहिले आकाश में विचरने वाले प्राणी भी नहीं देख सके हैं, आज उसी को सकल जन न देख सकें"—मानों ऐसा

---

१. 'बाष्पोदकेन इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही सोच कर विधाता ने सभी के नेत्रों को आँसू से भर दिया (इस प्रकार लोगों की दृष्टिशक्ति को अवरुद्ध कर विधाता ने सीता की मर्यादा बचा ली) ॥ ३३ ॥

[1]ततः—

रुद्धापि यान्तमनुगच्छति मैथिली मां
वत्सो जहाति न कदाचन लक्ष्मणोऽपि ।
इत्येतयोरनुगतिं प्रतिबोध्य गन्तुं
भूयोऽपि राजभवनं प्रविवेश रामः ॥ ३४ ॥

ततः,

ततः रुद्धापीति । ततः तदनन्तरम् । मैथिली सीता रुद्धापि नानाविधप्रयत्नेन निवारितापि यान्तं वनाय प्रतिष्ठमानं माम् राममनुगच्छति अनुसरति, वत्सः प्रियोऽनुजः कदाचन कदापि मां न जहाति न त्यजति, सोऽपि मामनुगच्छतीत्यर्थः । इत्येवं वर्तमानाम् , एतयोः सीतालक्ष्मणयोः अनुगतिम् अनुगमनम् प्रतिबोध्य (पित्रे) निवेद्य गन्तुं वनं प्रति यातुं रामः भूयोऽपि पुनरपि राजभवनं दशरथगृहं प्रविवेश । पित्राऽहमेव वनं गन्तुमादिष्टः । सीतालक्ष्मणावपि मामनुगच्छतस्तत्पित्राज्ञाविरुद्धम् । तस्मादेतद्वार्ता पित्रेऽवश्यमेव निवेदनीयेति मनसि कृत्वा, पित्रे तन्निवेद्यैव वनं गन्तुकामो रामः पुनरपि दशरथप्रासादं प्राविशदित्याशयः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर, रोकने पर भी सीता मेरे पीछे चल रही है, और वत्स लक्ष्मण भी हमारा साथ कभी छोड़ने वाले नहीं हैं, अतः इन दोनों के इस अनुगमन की सूचना पिता को देकर ही वन जाने के लिए, राम पुनः राजभवन में प्रविष्ट हुए ॥ ३४ ॥

तस्मिन्सुमन्त्रेण विज्ञाय [2]प्रदर्शिते भूपतिर्भूताविष्ट इव विष्टरान्निपत्य सदारः सदारचितपरिदेवनो वनोत्कण्ठां स्वयमप्यकरोत् ।

तस्मिन्निति । सुमन्त्रेण सुमन्त्रनाम्ना प्रसिद्धेन दशरथमन्त्रिणा विज्ञाप्य 'रामोऽपि भवद्दर्शनार्थं समायातः' इति निवेद्य तस्मिन् रामे प्रदर्शिते नेत्र-

१. 'ततः' इति क्वचिन्नास्ति । २. 'दर्शिते दाशरथौ' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गोचरीकृते सति, भूपतिः राजा दशरथः भूताविष्ट इव पिशाचाक्रान्त इव, ('भूतं क्ष्मादौ पिशाचादौ न्याय्ये सत्योपमानयोः' इति विश्वः)। विष्टरात् आसनात् ('वृक्षासनयोर्विष्टरः' इति निपातनात्) निपत्य भूमौ पतित्वा सदारचितपरिदेवनः—सदा निरन्तरम् (क्रियाविशेषणमेतत्) रचिता कृता परिदेवना विलापः येन स तथोक्तः सन्, सदारः कौसल्यासहितः स्वयमपि वनवासोत्कण्ठाम् वनगमनस्पृहाम् अकरोत्।

सुमन्त्र ने ज्योंही राम के आने की सूचना देकर उन्हें दशरथ के सामने किया त्यों ही राजा दशरथ (शोकावेग के कारण) आसन से भूताविष्ट की तरह गिर कर निरन्तर विलाप करने लगे और उन्होंने कौसल्या सहित स्वयं भी वन जाने की स्पृहा प्रकट की।

तदा सुमन्त्रः कैकेयीमब्रवीत्।

तदेति। तदा तस्मिन्काले सुमन्त्रः, कैकेयीम् अब्रवीत् अबोचत।

उस समय सुमन्त्र ने कैकेयी से कहा—

देवि, विरम[1] रामाभिषेकसमुन्मिषिताह्लादाङ्कुरावग्रहादाग्रहात्।

देवीति। देवि! कैकेयि! रामेत्यादिः—रामस्य यः अभिषेकः राज्यारोहणं स एव अभिषेकः जलसेकः तेन समुन्मिषितः समुत्पन्नः यः आह्लादाङ्कुरः आनन्दप्ररोहः, तस्य अवग्रहात् प्रतिबन्धकात्, आग्रहात् वरयाचनारूपाभिनिवेशात् विरम विरता भव। ('व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम्)। देवि, यथा कथंचिज्जलसेकेन समुत्पन्नमङ्कुरमवग्रहः (अवर्षणम्) विनाशयति तथैव रामराज्याभिषेकेण लोकहृदये समुत्पन्नमानन्दं तवायं वरयाचनारूपो दुराग्रहो विनाशयति तस्माल्लोककल्याणाय त्वयाऽयं दुराग्रहः परित्याज्य इति सुमन्त्रोक्तेराशयः।

देवि, राम के राज्याभिषेक से उत्पन्न आनन्द रूप अङ्कुर के लिए अवग्रह (अवर्षण) के समान प्रतिबन्धक अपने इस आग्रह को छोड़ दें।

पुरा खलु [2]वरदप्रसादादवगतसकलप्राणिभाषणतया पर्यङ्कपर्यन्तपरिसरत्पिपीलिकालापे कृतहासं तव पितरं हसनकारणं पृष्ट्वा तद्विवरणं

1. 'विरम विरम' इति पाठान्तरम्। 2. 'ब्रह्मणो वरप्रसादात्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पत्युर्मर[1]णकरमित्यवेत्यापि भूयसो निर्बन्धात्कुपितेन राज्ञावज्ञाताया मातुस्ते [2]विधां मानुकुर्वीथा इति ।

पुरेति । पुरा पूर्वकाले, खल्विति वाक्यालङ्कारे, वरदप्रसादात्—वरदः वर प्रदाता कोपि योगी, तस्य प्रसादात् अनुग्रहात् । अवगत-सकल-प्राणि-भाषणतया अवगतं विज्ञातं सकल-प्राणिनां भाषणं भाषा येन तस्य भावस्तत्ता तया सकल-जीवभाषावेत्तृतया हेतुना, पर्यङ्क-पर्यन्तपरिसरत्पिपीलिकालापे—पर्यङ्कस्य शय्यायाः पर्यन्ते समीपे परिसरन्त्योः पिपीलिकयोः क्षुद्रजन्तुविशेषयोः आलापे परस्परसम्भाषणे विषये कृतहासम्—कृतो हासो येन तं हसितुं प्रवर्तमानमित्यर्थः तव पितरं हसन-करणं केन हेतुना हससीति पृष्ट्वा, तद्विवरणं तस्य हसन-कारणस्य कथनं पत्युः भर्तुः मरणकरं मृत्युकारकमिति (तद्वचनादेव) अवेत्यापि ज्ञात्वापि भूयसः बहुलात् निर्बन्धात् आग्रहात् भूयो भूयस्तस्यैव प्रश्नस्यावर्तनादित्यर्थः । कुपितेन कोपं गतेन राज्ञा केकयेन अवज्ञातायाः अवमानितायाः, ते तव मातुः जनन्याः विधाम् प्रकारम् ('विधा विधौ प्रकारे च' इत्यमरः) माऽनुकुर्वीथाः माऽनुहरेः, इत्यब्रवीदिति पूर्वेण सम्बन्धः ।

प्राचीन काल में वरदाता योगी के अनुग्रह से सभी प्राणियों की भाषा समझ सकने के कारण पलङ्ग के पास चलती हुई चीटियों की बात चीत सुनकर तुम्हारे पिता हँस पड़े । तुम्हारी माता ने उनसे हँसने का कारण पूछा । (राजा के कहने से) वह जानती थी कि हँसी का कारण बता देने से पति की मृत्यु हो जायगी फिर भी उसने बहुत आग्रह किया । इससे तुम्हारे पिता ने क्रोध में आकर तुम्हारी माता की अवज्ञा कर दी । वैसा ही आग्रह तुम भी करके अपनी माता का अनुकरण मत करो ।

ततः—

कृतासमञ्जनिर्यासं सगरं केकयात्मजा ।
[3]निदर्शनत्वे निर्दिश्य निरबध्नान्निजं पतिम् ॥ ३५ ॥

ततः, कृतेति । ततः स्वजननीतिवृत्तश्रवणानन्तरम्, केकेयात्मजा केकय

१. 'मरणहेतुः' इति पाठान्तरम् । २. 'मार्गे मा कुर्वीथाः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'निदर्शनेन' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुत्री कैकेयी, कृतासमञ्जनिर्यासम्—कृतः असमञ्जस्य असमञ्जनाम्नः स्वपुत्रस्य निर्यासः परित्यागो येन तं तथोक्तम्, असमञ्जपुत्रत्यागिनमित्यर्थः, सगरम्, सगरनामानं दशरथपूर्वजम्, निदर्शनत्वे दृष्टान्तस्थाने निर्दिश्य समुपस्थाप्य निजं स्वकीयं पतिं दशरथं निरबघ्नात्—स्ववरपूर्त्तिविषये भूयोप्याग्रह्णात्। मम वरपूरणाय रामं वनं सम्प्रेष्य न किमप्यपूर्वं करिष्यसि, त्वत्पूर्वजः सगर एव स्वपुत्रमसमञ्जं निर्विषादं परितत्याज स इव त्वमपि पुत्रं परित्यज, निजसत्यवचनं च पालयेति भूयो भूय आग्रहं कृतवतीति भावः ॥ ३५ ॥

इसके बाद कैकेयी ने, अपने असमञ्जस नामक पुत्र का त्याग करने वाले सगर का उदाहरण उपस्थित कर अपने पति दशरथ से (वर पूरा करने के लिए) पुनः आग्रह किया ॥ ३५ ॥

तत्र—

सिद्धार्थको महामात्यस्तत्परित्यागमब्रवीत्।
सरयू[1]पातितानेकप्रजामरणकारणात् ॥ ३६ ॥

तत्र सिद्धार्थक इति। तत्र तस्मिनवसरे सिद्धार्थकः–सिद्धार्थकनाम्ना प्रसिद्धः महामात्यः मुख्यमन्त्री, तत्परित्यागम्–तस्य असमञ्जस्य त्यागम् पितृकृतं त्यागम्, सरयूपातितानेकप्रजाकारणात्-सरय्वां सरयूधारायां पातितानाम् निक्षितानाम् अनेकेषां बहुसंख्यानां प्रजानां मरणकारणात् मृत्युरूपकारणात्, अब्रवीत। भवत्या सगरकृतासमञ्जत्यागो दृष्टान्ततया यत्समुपस्थापितस्तत्र बहुसंख्याः प्रजाः सरयूप्रवाहे पातयित्वा तासां तासां मारणमिति तस्यासमञ्जस्यात्याचारं एव कारणम्, न तादृशं कारणं रामपरित्यागे दृश्यते, तत्त्वत्समुपस्थापितो दृष्टान्तो न सङ्गच्छत इत्याशयः ॥ ३६ ॥

उस अवसर पर (कैकेयी द्वारा दिये गये दृष्टान्त का खण्डन करते हुए) महामात्य सिद्धार्थक ने कहा कि असमञ्जस का त्याग सगर ने इस कारण से किया था कि वह अनेक प्रजाजन को सरयू के प्रवाह में डाल कर मार दिया करता था। (राम के परित्यागमें) ऐसा कोई कारण नहीं दीखता है, अतः यह दृष्टान्त बनता नहीं है) ॥ ३६ ॥

---

१. 'पतिता' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ दशरथेन रामः सपरिच्छद एव गच्छेति निर्दिष्टः केवलं खनित्रपिटकौ[1] वल्कलयुगलं च प्रार्थयत ।

अथेति । अथ अनन्तरम्, सपरिच्छदः सपरिजननित्योपयोगिसामग्रीकः गच्छेति दशरथेन निर्दिष्टः आज्ञप्तः रामः केवलं खनित्रपिटकौ खनित्रं खननसाधनं कुद्दालादिकम्, पिटकः फलाद्याहरणयोग्यः कण्डोलः तं च, वल्कलयुगलम् वल्कलवस्त्रयुग्मञ्च प्रार्थयत अयाचत । ('खनित्रमवदारणे', 'कण्डोलपिटकौ च' इति चामरः) । वनमेव गन्तव्यं चेद्भृत्यवर्गेण नित्योपयोगिवस्तुभिः सह गच्छेति दशरथेननिर्दिष्टो रामस्तत्प्रस्तावं निषिध्य केवलं खनित्रपिटकौ वल्कलयुग्मं च तदपेक्षिततया याचितवानिति भावः ।

इसके बाद दशरथ ने राम से कहा कि यदि वन जाना ही है तो साथ में परिजन और सामान-असबाब लेते जाओ किन्तु राम ने केवल कुदाल, टोकरी और एक जोड़ा वल्कल की ही माँग की ।

सुखोचितानां सुव्यक्तदिव्यलावण्यसम्पदाम् ।
त्रयाणामपि कैकेयी [2]वल्कलादीन्युपाहरत् ॥ ३७ ॥

सुखोचितानामिति । (रामे खनित्रपिटकौ वल्कलयुगलं च प्रार्थितवतिसति) कैकेयी (स्वयम्) सुखोचितानाम् सुखेनाद्ययावत् जीवनं यापयतामित्यर्थः सुव्यक्तदिव्यलावण्यसंपदाम्–सुव्यक्ता स्पष्टं दृश्यमाना दिव्या लोकोत्तरा लावण्यसम्पद् सौन्दर्यसम्पत्तिर्येषां तेषां त्रयाणामपि सीतारामलक्ष्मणानाम् वल्कलादीनि (परिधानाय) उपाहरत् अर्पितवती ॥ ३७ ॥

(राम ने जब उपर्युक्त वस्तुएँ माँगीं तब) कैकेयी ने (स्वयम्) अब तक सुख से जीवन यापन करने वाले, लोकोत्तरसौन्दर्य सम्पन्न सीता राम लक्ष्मण तीनों को वल्कलादि (मुनिवस्त्र) अर्पित कर दिये ॥ ३७ ॥

अथ रघुकुलनाथो मध्यमाम्बानियोगा-
द्गुणवति परिधाने मङ्गलार्हे निराशः ।
अधिकुचतटवल्गज्जानकीबाष्पसेका-
दपगतखरभावं वल्कलं पर्यधत्त ॥ ३८ ॥

---

१. पिटके' इति पाठान्तरम् । २. 'वल्कलान्युदपाहरत' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथेति । अथानन्तरम् । रघुकुलनाथः रघुपतिः श्रीरामः, मध्यमाम्बानियोगात्, मध्ये भवा मध्यमा ('मध्यान्मः' इति मप्रत्ययः) न ज्येष्ठा, नापि कनिष्ठा, मध्यमा चासावम्बा इति मध्यमाम्बा कैकेयी तस्याः नियोगात्— 'परिधत्स्व वल्कलम्' इत्यादेशात्, गुणवति मार्दवसौन्दर्यादिगुणसम्पन्ने, मङ्गलार्हे राज्याभिषेकरूपमङ्गलावसरोचिते परिधाने अधोवस्त्रे ('अन्तरीयोपसंव्यानपरिधानान्यधोंशुके' इत्यमरः) निराशः निःस्पृहः सन्, अधिकुचेत्यादिः— अधिकुचतटम्, कुचतटे इत्यधिकुचतटम् (विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः) स्तनप्रान्ते वल्गन्तः प्लवन्तः, (समीपस्थायाः) जानक्याः सीतायाः बाष्पाणां नेत्राश्रुविन्दूनां सेकात् आर्द्रीकरणात्, ('वाष्पो नेत्राम्बुधूमयोः' इत्यभिधानात्) अपगतखरभावम्—अपगतः विनष्टः खरभावः कार्कश्यं यस्य तादृशम्, वल्कलं पर्यधत्त परिदधौ । कैकेय्या वल्कलं परिधातुमादिष्टो रामः कोमले मङ्गलावसरयोग्ये क्षौमवस्त्रादौ निःस्पृहः सन् यदा वल्कलं परिधातुमुद्युक्त एव बभूव तदैव समीपस्थायाः सीताया नेत्राभ्यां प्रवहद्भिः, स्तनप्रान्ते पतित्वा खण्डशोभूत्वाऽधः पतद्भिरश्रुजलैरार्द्रीकृतत्वात्स्वकार्कश्यं विहाय मृदुतां गतं वल्कलं सुखेन पर्यधादित्याशयः । मालिनी वृत्तम् ।। ३८ ।।

इसके वाद मझली माता (कैकेयी) के आदेश से श्रीराम ने, मृदुल मंगल-अवसर पर पहनने योग्य रेशमी वस्त्र के विषय में निःस्पृह होकर, सीता के स्तन प्रान्त पर गिरते हुए उसके नेत्राश्रुजल से सिक्त अत एव कर्कशता से रहित वल्कल धारण कर लिया ।। ३८ ।।

[1]तत्राचित्रीयन्त सर्वे निर्विकारवदनक्ष्मीकमिक्ष्वाकुकुलाध्यक्षमध्यक्षयन्तस्तेषामेव शोक[2]शङ्कुकीलितमानसानामाननेषु पारम्पर्येणास्फुरद्विकारः ।

तत्रेति । तत्र श्रीरामकर्तृकवल्कलधारणसमये, निर्विकारवदनलक्ष्मीकम्— निर्विकारा धीरोदात्तत्वाद्विकारं न गता, अम्लानैवेत्यर्थः, वदनलक्ष्मीः मुखशोभा यस्य तम्, इक्ष्वाकुकुलाध्यक्षम् इक्ष्वाकुवंशश्रेष्ठं श्रीरामम् अध्यक्षयन्तः अध्यक्षं प्रत्यक्षं कुर्वन्तः, पश्यन्त इत्यर्थः । (अध्यक्षशब्दात्तत्करोतितदाचष्टे' इति णिच् । णिजन्ताल्लटः शत्रादेशः) । सर्वे अचित्रीयन्त । ('नमो वरिवश्चित्रङः

१. 'तत्र ये' इति पाठान्तरम् । २. 'संकीलित' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथच्) चित्रङो ङित्त्वादात्मने पदम् । तेषां रामस्याम्लानमुखशोभां दृष्ट्वाऽऽश्चर्यान्वितानामेव, शोकशङ्कुकीलितमानसानाम्--शोकशङ्कुना शोकशल्येन कीलितं विद्धं मानसं हृदयं येषां तेषाम् आननेषु पारम्पर्येण क्रमशः विकारः वैकल्यवैवर्ण्यम्लानत्वादिः अस्फुरत् प्राकट्यं गतः । वल्कलं परिदधानस्य श्रीरामस्य मुखश्रीस्तु म्लानत्वादिविकारं न गतेति दृष्ट्वा सर्वेजना आश्चर्यान्विता अभूवुस्तथा च स्वयमेव ते राममीदृशं दृष्ट्वा शोकसन्तप्ता विकृतमुखा अजायन्तेत्यर्थः । निर्विकारस्य रामस्य दर्शनेन दर्शकानां मुखे विकारो--त्पत्तिरित्याश्चर्यमिति भावः ।

उस समय इक्ष्वाकुकुलश्रेष्ठ श्रीराम की मुख शोभा को निर्विकार (अम्लान) देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित हो गये और शोकसन्तप्त-हृदय उन दर्शकों के मुखों पर ही विकलता, विवर्णता, म्लानता इत्यादि भाव एक के बाद एक दिखायी देने लगे ।

किन्तु[1]—

सवल्कले दाशरथौ विषादादामीलिताक्षो यदभूद्वसिष्ठः ।
तदेव जातं करणं महर्षेः काकुत्स्थयाथार्थ्यविलोकनस्य ॥ ३९ ॥

किन्तु सवल्कल इति । दाशरथौ श्री रामे सवल्कले वल्कलं वस्त्रत्वेन धृतवति सति, विषादात् मनःखेदात्, वसिष्ठः यत् आमीलिताक्षः आमीलिते द्रष्टुमशक्यत्वात्किञ्चिन्मुद्रिते अक्षिणी नयने यस्य स तथोक्तः ('बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति षच्) अभूत्, तदेव नयनामीलनमेव, महर्षेः तस्य वसिष्ठस्य काकुत्स्थ याथार्थ्यविलोकनस्य--काकुत्स्थस्य श्री रामस्य तारक ब्रह्मरूपस्य यत् याथार्थ्यं वास्तविकं रूपं तस्य विलोकनं दर्शनं स्पष्टप्रत्यक्षज्ञान-मित्यर्थस्तस्य करणं साधनं जातम् । विषादात् वसिष्ठ आमीलितनयनोऽभू-न्मन्ये नेत्रद्वयम् आमील्य रामस्य वास्तविकं तारकब्रह्मरूपं दध्याविति भावः । अत्र विषादकृतनयनामीलनस्य तत्त्वानुसन्धान साधनत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा । सा च व्यञ्जकाप्रयोगाद् गम्या । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ३९ ॥

श्रीराम के वल्कल धारण करने पर विषाद के कारण वशिष्ठ ने आँखें जो थोड़ी-सी मूँद लीं वही उन वशिष्ठ के लिए राम के वास्तविक तारक

१. 'किन्तु' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्रह्म रूप के दर्शन का साधन हो गया। (मानों उन्होंने विषादवश नहीं राम के यथार्थ स्वरूप का ध्यान करने के लिए आँखें मूँद लीं ॥ ३९ ॥

अस्य पीताम्बरत्यागे किं जाता विक्रियाऽपुरा।
इति प्रत्यग्दृशां श्रेष्ठो वसिष्ठो नातिविव्यथे ॥ ४० ॥

अस्येति। अस्य श्रीरामस्य पीताम्बर-त्यागे कौशेयवस्त्रापसारणे अपुरा अपूर्वदृष्टा नूतना कापि विक्रिया विकारः जाता उत्पन्ना किम् ? मुखमालिन्यादिरूपा कापि विक्रिया न जातेत्यर्थः। इति पीताम्बर-त्याग-पूर्वकं रामस्य वल्कलधारणेऽपि निर्विकारत्वं दृष्ट्वा प्रत्यग्दृशाम्–प्रत्यक् ब्रह्म पश्यन्तीति प्रत्यग्दृशः तेषां ज्ञानिनामित्यर्थः, श्रेष्ठः अग्रगण्यः, वसिष्ठः, नातिविव्यथे अत्यन्तं क्लेशं नानुबभूव, किञ्चित्तु विव्यथ एव लोकानुवर्तनादित्यति शब्दार्थः। पीताम्बरं त्यक्त्वा तत्स्थाने वल्कलं गृहीतवतो रामस्य बाह्याभ्यन्तर विकार--रहिततया विशुद्धचित्स्वभावमनुसन्दधन्मुनिर्वसिष्ठो न शुशोचेत्यर्थः ॥ ४० ॥

इन राम को पीताम्बर त्यागने (तथा उसके स्थान पर वल्कल धारण करने) में कोई नया (मुखमालिन्यादि) विकार उत्पन्न हुआ क्या ? (अर्थात् नहीं हुआ) ऐसा विचार कर ज्ञानिश्रेष्ठ वशिष्ठ को अधिक व्यथा नहीं हुई ॥ ४० ॥

सोऽयं मैथिलीवल्कलधारणमरुणदरुणसारथिकुलगुरुः।

सोऽयमिति। सोऽयम् अरुणसारथिकुलगुरुः – अरुणः सारथिर्यस्य सः अरुणसारथिः सूर्यस्तस्य कुलं वंशस्तस्य गुरुः वसिष्ठः, मैथिलीवल्कलधारणम् सीता-कर्तृकवल्कलपरिधानम् अरुणत् न्यवारयत्, नेयं सुकुमारी राजकुमारी वल्कलधारणार्हेति निवारितवानित्यर्थः।

ज्ञानिश्रेष्ठ इन सूर्यकुल के गुरु वशिष्ठ ने सीता को वल्कल धारण करने से रोक दिया।

तत्र प्रयाणाय प्रणिपतन्तीं स्नुषा[1]माश्लिष्य प्रस्नुतपुत्रवात्सल्या कौसल्या बाष्पगद्गदमवदत्।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये प्रायाणाय वनं गन्तुम् प्रणिपतन्तीम् प्रणामं कुर्वतीम् स्नुषाम् पुत्रवधूं सीताम्, आश्लिष्य आलिङ्ग्य, प्रस्नुतपुत्र

१. 'आलिङ्ग्य कौसल्या गद्गदम्' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वात्सल्या–प्रस्नुतमुद्रिक्तं पुत्रवात्सल्यं पुत्रस्नेहो यस्याः सा कौसल्या वाष्पगद्गदम् साश्रुतयाऽविस्पष्टम् अवदत् अवोचत् ।

उस समय वन जाने के लिए सीता जब प्रणाम करने लगी तब कौसल्या का पुत्र-वात्सल्य उमड़ कर हृदय में न समा सकने के कारण बहने लगा और उन्होंने सीता को हृदय से लगा कर गद्गद् स्वर में ऐसा कहा—

घर्मे निदाघकिरणस्य करैः कठोरैः
कान्तारमध्यपदवीषु नखंपचासु ।
त्वां वीक्ष्य [1]संस्थुलपदां वनदेवताभि-
र्निन्दिष्यते नियतमेव निमेषहानिः ॥ ४१ ॥

घर्म इति । घर्मे ग्रीमकाले निदाघकिरणस्य उष्णांशोः सूर्यस्येत्यर्थः, कठोरैः तीक्ष्णैः करैः किरणैः, नखम्पचासु नखान् पचन्ति सन्तापयन्तीति नखम्पचास्तासु ('मितनखे च' इति खच् । 'अरुर्द्विषदजन्तस्यमुम्' इति मुमागमः) नखानपि सन्तापयन्ति का कथा कोमल चरणानामिति भावः । कान्तारमध्यपदवीषु अरण्यान्तरालमार्गेषु संस्थुलपदाम् परिस्खलत्पादविन्यासां त्वां सीताम् वीक्ष्य दृष्ट्वा वनदेवीभिः, नियतमेव निश्चयेनैव, निमेषहानिः स्वनिर्निमेषत्वम्, निन्दिष्यते धिक्करिष्यते । ग्रीष्म-काले सूर्यस्य किरणैः नखानपि संदह्यमानान् कुर्वत्सु वनान्तरालमार्गेषु परिस्खलच्चरणां चलन्तीं त्वां दृष्ट्वा वनदेव्यो दुःखाभिभूततया स्वनेत्राणि निमीलयितुमसमर्था स्वनिनिर्मेषतां धिक्करिष्यन्ति । ब्रह्मणा किमेतत्कृतम् ? अस्याः सुकुमार्या इमां कष्टां दशां द्रष्टुमेव ब्रह्मणा वयं निनिर्मेषाः कृता अन्यथा कथमीदृशी दशां पश्येमेति वक्ष्यन्तीति भावः ।

ग्रीष्मकाल में सूर्य की तीखी किरणों से नखों को भी भून देने वाली वन की राहों पर लड़खड़ाते पैरों से चलती हुई तुम (सीता) को देख कर वन देवियाँ अपने निर्निमेष होने की अवश्य निन्दा करेंगी । अर्थात् वे ऐसा सोचने के लिए विवश हो जायेंगी कि ब्रह्मा ने हम लोगों के साथ बुरा किया । मानों उसने इस सुकुमारी की यह दुर्दशा देखने के लिए ही हमें

---

१. 'निस्तुलपदम्' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्निमेष कर दिया, नहीं तो हम अपनी आँखें मूँद कर इस कष्ट दशा को देखने से अपने को बचा लेतीं ॥ ४१ ॥

अथ मैथिलीनाथः सलक्ष्मणः सप्रदक्षिणं राजानं जननीजनं च प्रणम्य प्रतिषिद्धप्रतिहारचक्रो निश्चक्राम ।

अथेति । अथानन्तरम्, लक्ष्मणोपेतः लक्ष्मणसहितः मैथिलीनाथः सीतापतिः श्रीरामः, अत्र मैथिलीपदं तथापि सहेति सूचनार्थम् । सप्रदक्षिणं प्रदक्षिणापूर्वकम्, राजानं दशरथं जननीजनं कौसल्यादिमातृश्च प्रणम्य नमस्कृत्य प्रतिषिद्धप्रतिहारचक्रः--प्रतिषिद्धम् अनुगमनान्निवारितः प्रतिहारचक्रम् द्वारपालनिवहो येन स तथोक्तः सन् (अन्तःपुरात्) निश्चक्राम निर्जगाम ।

इसके बाद राम ने लक्ष्मण के साथ पिता (दशरथ) और माताओं को प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम किया और द्वारपालों को अनुगमन से रोक कर अन्तः पुर से निकल पड़े ।

रथोऽपि[1] दशरथाज्ञापरतन्त्रेण सुमन्त्रेण द्वारि समानीतः ।

रथोऽपीति । दशरथाज्ञापरतन्त्रेण दशरथाज्ञावशंवदेन दशरथनियुक्तेनेत्यर्थः, सुमन्त्रेण तदाख्येन मन्त्रिणा रथोऽपि द्वारि द्वार प्रदेशे समानीतः समुपस्थापितः ।

दशरथ की आज्ञा से सुमन्त्र ने रथ भी लाकर द्वार पर खड़ा कर दिया ।

प्रारब्धयात्रस्य रघूद्वहस्य प्रागेव सीता रथमारुरोह ।
आनीलरथ्यं रथमारुरुक्षोरह्नां प्रभोरग्रसरी प्रभेव ॥ ४२ ॥

प्रारब्धयात्रस्येति । प्रारब्धयात्रस्य--प्रारब्धा यात्रा येन तस्य, वनं जिगमिषोरित्यर्थः, रघूद्वहस्य रघुकुलश्रेष्ठस्य श्रीरामस्य अग्रसरी पुरःसरी सती सीता, आनीलरथ्यम्--आनीलाः ईषन्नीलाः, हरिद्वर्णा इति यावत्, रथं वहन्तीति रथ्याः अश्वाः यस्य तं रथम् आरुरुक्षोः आरोढुमिच्छोः अह्नां प्रभोः अहर्पतेः सूर्यस्य अग्रसरी प्रभेव, रथमारुरोह आरूढवती । यथोदेतु कामस्य हरिद्वर्णाश्वयुतं रथमारुरुक्षोः सूर्यस्य प्रभाऽग्रेसरी सती ततः प्रागेव तद्रथमारोहति तथैव वनं जिगमिषो रथमारुरुक्षोः रामस्याग्रसरी सती सीता ततः प्रागेव रथमारुरोहेत्यर्थः । उपमाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ४२ ॥

१. 'अपि' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वनयात्रा के लिये तैयार राम के रथ पर पहिले ही सीता जी चढ़ गयीं जैसे हरे रंग के अश्वों से युक्त रथ पर चढ़ने के इच्छुक सूर्य की प्रभा उससे आगे ही चला करती है ॥ ४२ ॥

दाशरथी च रथमारुरुहतुः ।

दाशरथीति । दाशरथी रामलक्ष्मणौ च रथम् आरूढवन्तौ ।

(रथ पर सीता जी के बैठने के बाद) राम और लक्ष्मण भी रथ पर चढ़ गये ।

यथा यथा राघवराजधानीं विहाय सीता विपिनोत्सुकाभूत् ।
तथा तथाऽजायत यातुकामा लङ्कां विना राक्षसराजलक्ष्मीः ॥४३॥

यथेति । सीता यथा यथा (वीप्सायां द्विर्वचनम्) यावतांऽशेन, राघव-राजधानीम् अयोध्यां विहाय त्यक्त्वा विपिनोत्सुकाऽभूत्, सीताऽयोध्यां विहाय वनमार्गे यावद् दूरमग्रे सरतीति भावः । तथा तथा तावतांऽशेन राक्षसराजलक्ष्मीः रावणराजलक्ष्मीः, लङ्कां विना लङ्कां विहाय यातुकामा गन्तुमनाः अजायत । रावणराजलक्ष्मीर्लङ्कातस्तावद्दूरं पलायितुमियेष । तद्विनाशस्य सीता-वनवास-मूलकत्वादिति भावः । उपजातिर्वृत्तम्, इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणात् ॥ ४३ ॥

सीता जी ज्यों-ज्यों रघुकुल की राजधानी अयोध्या को छोड़ कर वन जाने के लिए उत्कण्ठित हुईं त्यों-त्यों रावण की राजलक्ष्मी लंका का त्याग कर जाने की इच्छा करने लगी ॥ ४३ ॥

आबालवृद्धमनुगच्छति रामभद्र-
मेषा पुरी तदिह मा खलु निर्गुणा स्याम् ।
इत्यादरादिव धरा बहुधा विधाय
धूलिच्छलान्निजतनुं तमनु प्रतस्थे ॥ ४४ ॥

आबालेति । बालाश्च वृद्धाश्चेति बालवृद्धास्तानभिव्याप्ये त्याबालवृद्धम् । ('आङ्मर्यादाऽभिविध्योः' इत्यव्ययीभावः) । एषा अयोध्यापुरी रामभद्रम्—वनं गच्छन्तं श्रीराममनुगच्छति, अनुसरति, तत् तस्मात् रामानेनुसरणादिह संसारे (अहम्) निर्गुणा गुणहीना निन्दनीयेत्यर्थः, मा खलु स्याम् न भवेयम्,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इति हेतोः आदरादिव रामे बहुमानादिव, धरा पृथिवी, धूलिच्छलात् रजोव्याजात् स्वां तनुं शरीरं बहुधा बहुप्रकारां विधाय कृत्वा तम् रामम् अनुप्रतस्थे = अनुचचाल। उत्प्रेक्षाऽलंकारः। धूलिच्छलादित्यत्र छलशब्देनासत्यत्व-प्रतिपादनादपह्नुतिः। तयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥४४॥

यह अयोध्यापुरी आबालवृद्ध, रामभद्र का अनुगमन कर रही है, मैं (इस परमकर्तव्य का पालन न करने से) जगत् में कहीं निर्गुण-निन्द्य न होऊँ ऐसा सोच कर पृथ्वी ने मानों राम के प्रति आदर विशेष होने से, अपने शरीर को धूलि के व्याज से बहुप्रकार की कर के राम का अनुगमन किया। (राम के पीछे-पीछे जनता के चलने से जो धूल उड़ी उससे ऐसा प्रतीत हुआ कि पृथ्वी भी धूलि के रूप में बहुत रूप धारण कर राम के पीछे-पीछे चल रही है ॥ ४४ ॥

नृपसुखविमुखेन स्वेन कान्तेन साकं
दुहितरि विधिपाकात्काननाय व्रजन्त्याम्।
अकुशलमिति मत्वा नूनमह्नाय धात्री
परिजनमुखबाष्पं पांसुभिः पर्यहार्षीत् ॥ ४५ ॥

नृपेति। नृपसुखविमुखेन—नृपाणां राज्ञां यत्सुखं भोगविलासस्तस्माद् विमुखेन विरक्तेन स्वेन स्वकीयेन कान्तेन प्राणनाथेन श्रीरामेण साकं सार्धम्' विधिपाकात् भाग्यदोषात् वनाय व्रजन्त्याम् गच्छन्त्यां दुहितरि स्वपुत्र्यां सीतायां सत्याम्, 'अकुशलम्' अमङ्गलमिति मत्वा संभाव्य, धात्री पृथिवी जननी च ('धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु' इति विश्वः)। नूनमित्युत्प्रेक्षायाम्। अह्नाय झटिति, परिजनमुखबाष्पम्—भृत्यवदनप्रसृतनेत्रजलम्, पांसुभिः समन्तादुत्थितैर्धूलिभिः पर्यहार्षीत् परिहृतवती। यात्राकालेऽमङ्गल-जनकवस्तुदर्शनस्य शास्त्रनिषिद्धत्वात् सीताया जननी पृथिवी, राजसुखं परित्यज्य रामेण सार्धं सीतायां वनं गच्छन्त्यां, भृत्यानां मुखषु प्रसृतमश्रुजलममङ्गलं संभाव्य तत्क्षणमेव धूलिभिरपसारयामासेत्याशयः। उत्प्रेक्षाऽलंकारः। मालिनी वृत्तम ॥ ४५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाग्यदोष से राजसुख से विमुख प्राणनाथ राम के साथ मेरी पुत्री सीता वन को जा रही है। सेवकों के मुखमण्डल में फैले हुए आँसू यदि गिरेंगे तो यह रोदनरूप अमङ्गल होगा, इस आशङ्का से पृथ्वी ने झट-पट (उड़ती हुई) धूलियों से उस अश्रुजल को सुखाकर, अमङ्गल दूर कर दिया ॥ ४५ ॥

रामानुसाररस[1]निर्गतपौरवर्गा
संस्थानमात्रगृहचत्वरराजमार्गा !
निर्मुक्तभोगभुजगगिव क्षणेन
लध्वी बभूव रघुपुंगवराजधानी ॥ ४६ ॥

रामेति। रामानुसाररसनिर्गतपौरवर्गा--रामस्य वनं गच्छतो रामभद्रस्य अनुसारः अनुगमनं तत्र यो रसः अनुरागः, तेन निर्गतः निष्क्रान्तः, रामानुगमनार्थमितिभावः, पौरवर्गः पुरवासिजनसमूहो यस्याः सा। संस्थानमात्र गृहचत्वरराजमार्गा--संस्थानमात्राः, नराणामविद्यमानतया स्थलमात्राः शून्या इति यावत्। गृहाः चत्वराणि प्राङ्गणानि राजमार्गाश्च यस्यां-सा। रघुपुंगवराजधानी--रघुपुंगवः रघुकुलश्रेष्ठः दशरथ इत्यर्थः, तस्य राजधानी अयोध्या क्षणेन अल्पेनैव कालेन निर्मुक्तभोगभुजगत्वगिव-निर्मुक्तः त्यक्तः भोगः कायो यया सा चासौ भुजगत्वक् निर्मोक इव, ('भोगःसुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः) लध्वी निःसारा बभूव। उपमाऽलंकारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥४६॥

श्रीराम के अनुसरण में अनुराग होने के कारण सभी पुरजन जहाँ से निकल चुके और जहाँ के घर, आँगन तथा सड़क सब संस्थान मात्र भर रह गये वह दशरथ की राजधानी अयोध्या क्षण भर में साँप के शरीर को छोड़ देने वाली केंचुल की तरह निःसार हो गयी ॥ ४६ ॥

अथ दशरथः सान्तःपुरजनः पुरान्निर्गत्य गत्यन्तराभावात्तमेव रामं सुचिरमा[2]लोकयन्नालोकपथमतिक्रान्ते सुमन्त्राक्रान्तस्यद्ने[3] रघुनन्दने स्यन्दमानबाष्पप्रवाहो मोहमुपगम्य भूम्यां पपात।

---

१. 'सह' इति पाठान्तरम्। २. 'अवलोकयन्' इति पाठान्तरम्।
३. स्यन्दमान' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथेति। अथानन्तरम्। सान्तःपुरजनः- अन्तःपुरस्त्रिभिःसह, दशरथः, पुरात् अयोध्यानगरात्, निर्गत्य निष्क्रम्य, गत्यन्तराभावात्-अन्या गतिः गत्यन्तरम्, रामपरावर्तनाद्युपायान्तरं तस्य अभावात् असंभवात्, ('दशोपायगमे गतिः' इति वैजयन्ती) तं गच्छन्तं राममेवं सुचिरं बहुकालम् अवलोकयन् पश्यन्, सुमन्त्राक्रान्तस्यन्दने—सुमन्त्रेण तन्नाम्ना मन्त्रिणा सम्प्रति सारथिना आक्रान्तः अधिष्ठितः वाह्यमान इति यावत्, स्यन्दनःरथो यस्य तस्मिन् रघुनन्दने श्रीरामे आलोकपथम्—दर्शनमार्गम् ('आलोकौ दर्शनद्योतौ'' इत्यमरः) अतिक्रान्ते लङ्घितवति सति, स्यन्दमानबाष्पप्रवाहः—स्यन्दमानः बाष्पप्रवाहः अश्रुपूरो यस्य स तयोक्तः, रुदन्नित्यर्थः, सोहम् मूर्छाम् उपगम्य प्राप्य, भूम्यां पपात पतितः।

राम के निकल जाने के बाद अन्य कोई उपाय न रह जाने से राजा दशरथ अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ पुर से बाहर निकल कर, जाते हुए राम को चिरकाल तक देखते रहे और राम, जिनके रथ को सुमन्त्र चला रहा था जब आँखों के ओझल हो गये तब रोते हुये दशरथ मूर्छित हो भूमि पर गिर गये।

ततः परिजनकृताश्वासाल्लब्धसंज्ञाय राज्ञे कौसल्यासदनमरोचत।

तत इति। ततः नृपमूर्च्छानन्तरम्, परिजनकृताश्वासात्—परिजनैः सेवकैः कृतो य आश्वासः मूर्च्छापगमोचितोपचारस्तस्माद्धेतोः, लब्धसंज्ञाय पुनःप्राप्तचेतनाय राज्ञे दशरथाय कौसल्यासदनम्—कौसल्यायाः सदनम् गृहमरोचत, कौसल्याभवने वासः प्रियोऽभूत्, तस्मात्तद्गृहं प्रविवेशेतिभावः। एतेन नृप इतःपूर्वं कैकेयीभवने निवसति सूच्यते।

इसके बाद सेवकों द्वारा मूर्छा दूर किये जाने का उपचार होने से राजा दशरथ होश में आये और उन्हें (अब) कौसल्या के भवन में रहना पसन्द आया।

[1]अथ [2]दाशरथिरहमहसिकया सम्मूर्च्छन्महाजनौघदुरवगाहतया मन्दायमानस्यन्दनवेगः सकलजनविवेककोकनदं मुकुलयन् मोहतमसा

---

१. 'अथ' इति नास्ति क्वचित्। २. 'दाशरथिरपि' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तमसातटमुपगमत् । चरमगिरितटमपि[1] सहस्रदीधितिः ।

अथेति । अथानन्तरम् । दाशरथिः दशरथपुत्रः श्रीरामः, अहमहमिकया— अन्योऽन्यं प्रति श्रेष्ठोऽहमित्यभिमानोऽहमहमिका तया ('अहमहमिका तु सा स्यात्परस्परं यो भवत्यहङ्कारः' इत्यमरः) अहं पूर्वमहंपूर्वमिति स्पर्धयेत्यर्थः, समूर्च्छन्महाजनौघदूरगाहतया—सम्मूर्छतः सम्मिलतः, महतः विशालस्य जनौघस्य जनसमुदायस्य दुरवगाहतया दुष्प्रवेशतया, अग्रे भवितुमनसां जनानां सम्मर्देन मार्गावनोधादितिभावः। मन्दायमानस्यन्दनवेगः—मन्दायमानः मन्दीभवन् स्यन्दनस्य रथस्य वेगो यस्य स तथाभूतः सन्, मोहतमसा— मोहः अज्ञानमेव तमः अन्धकारस्तेन, सूर्यपक्षे मोह इव तमस्तेन । सकलजनविवेककोकनदम्-सकलजनानां विवेक एव कोकनदं रक्तकमलं तत्, पक्षे सकलजनविवेक इव कोकनदं तत्, मुकुलयन् सङ्कोचयन्, ('रक्तोत्पलं कोकनदम्' इत्यमरः) तमसातटम्—तमसा तदभिधानानदी, तस्यास्तटंतीरम्, उपागमत् प्राप, सहस्रदिधितिः सूर्योऽपि चरमगिरितटम् अस्ताचलशिखरम् उपागमत् । अत्र प्रस्तुतस्य दाशरथेः, अप्रतस्तुतस्य सहस्रदीधितेश्च 'मुकुलयन्' 'उपागतम्' इत्येकधर्माभिसम्बन्धाद्दीपकालङ्कारः । नात्र तुल्ययोगिताऽलङ्कारस्तस्य प्रस्तुतानामेवैकधर्माभिसम्बन्धे, अप्रस्तुतानामेव वा समानधर्माभिसम्बन्धे प्रवृत्तेः । अत्र तु प्रस्तुताप्रस्तुतयोरेकधर्माभिसम्बन्धः, न तु प्रस्तुतयोर्न वाऽप्रस्तुतयोः । दीपकलक्षणं यथा—'प्रस्तुताप्रस्तुततयोर्दीपकं तु निगद्यते ।' इति ।

इसके बाद हम 'पहिले साथ हो लें' ऐसी स्पर्धा की भावना से एकत्र जमते गये लोंगों की भीड़ से (मार्ग के अवरुद्ध हो जाने पर) राम के रथ की गति धीमी पड़ गयी और वे सब लोगों के विवेक कमल को मोहान्धकार से सङ्कुचित करते हुए (अर्थात् सब को मोह में डालकर) तमसा नदी के तट पर पहुँचे। उधर भगवान सूर्य भी विवेक सदृश कमल को मोह-सदृश अन्धकार से सङ्कुचित करते हुए अस्ताचलशिखर पर पहुँचे ।

आविः प्रलापमटवीं भजतो जनस्य

काकुत्स्थपादविरहासहमानस्य ।

---

१. 'शिखरम्' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आस्तीर्णपर्णशयनान्यभवन्गृहाणि
मूलस्थलानि तमसातटभूरुहाणाम् ॥ ४७ ॥

आविः प्रलापमिति । काकुत्स्थपादविरहासहमानसस्य—काकुत्स्थस्य श्रीरामस्य पादयोश्चरणयोर्विरहस्य असहम्—न सहन इत्यसहम् असहिष्णु (पचाद्यच्) तादृशं मानसं हृदयं यस्य तस्य । आविःप्रलापम् – आविर्भवन् प्रलापो यस्मिन् कर्मणि तद्यथा भवति तथा सविलापमित्यर्थः । अटवीम् अरण्यम् भजतः आश्रयतः रामेण सह वने भ्राम्यत इत्यर्थः । जनस्य लोकस्य, तमसातटभूरूहाणाम्—तमसातटवर्तीवृक्षाणाम्, आस्तीर्णपर्णशयनानि-आस्तीर्णानि विकीर्णानि पर्णानि शुष्कपत्राण्येव शयनानि शय्या यत्र तानि मूलस्थलानि अधस्तलानि गृहाणि भवनानि अभवन् अजायन्त, रात्रौ तत्रैव जना विशश्रमुरित्यर्थः । मूलस्थलेषु गृहत्वारोपणाद्रूपकालङ्कारः ।

जिनलोगों का हृदय श्रीराम के चरणों का वियोग सह नहीं सका अतएव विलाप करते हुए (राम के साथ) वन में चलते रहे, (शाम होने पर) तमसातटवर्ती वृक्षों का अधोदेश ही उनका घर बन गया जहाँ पत्तों का बिछावन (पहिले से ही) बिछा हुआ था (अर्थात् लोगों ने वहाँ के वृक्षों के नीचे पत्तों पर विश्राम किया) ॥ ४७ ॥

अथ निशीथे दाशरथिः सुमन्त्रेण संमन्त्र्य वञ्चितजनसंहतिरतिविनतानन्दनेन स्यन्दनेन वेदश्रुतिगो[1]मतीनिष्यन्दिकानामनदीत्रयपरिष्कृतामिक्ष्वाकवे मनुना दत्तां वसुमतीमतीत्य विविधवनगहनवीरुत्तृणपटलपिहितरथतुरगखुरमुद्रया पदव्या गङ्गातरङ्गसंगतमूलं गगनगङ्गालिङ्गितशृङ्गं शृङ्गवे[2]रपुरालंकारमिङ्गुदीपादपमुपागमत् ।

अथेति । अथानन्तरम्, दाशरथिः रामः, निशीथे अर्धरात्रे ('अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ' इत्यमरः) । सुमन्त्रेण मन्त्रिणा संमन्त्र्य अनुगच्छद्भ्यः पौरेभ्यो मुक्तिविधिं परामृश्य वञ्चितजनसंहतिः प्रतारित–पौरजनसमुदयः सन् अतिविनतानन्दनेन-विनतानन्दनं गरुडमतिक्रान्त इत्यतिविनतानन्दनस्तेन ('अत्या-

१. 'गोमतीनिष्यन्दिनी' इति पाठान्तरम् । २. 'शृङ्गिवेर' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति समासः) गरुडाधिकवेगेन स्यन्दनेन वेदश्रुति-गोमतीनिष्यन्दिकानामनदीत्रयपरिष्कृताम्-वेदश्रुतिः, गोमती च निष्यन्दिका चेति नाम यस्य तेन नदीत्रयेण परिष्कृतां भूषिताम्, वेदश्रुतिगोमतीनिष्यन्दि-काभिधानाभिस्तिसृभिरपि नदीभिः सस्यश्यामलतां पवित्रतां च प्रापितामित्यर्थः। इक्ष्वाकवे इक्ष्वाकुनाम्ने स्वपुत्राय मनुना वैवस्वतमनुना तत्पित्रा दत्तां वसुमतीं पृथ्वीं कोसलदेशमित्यर्थः। अतीत्य लङ्घयित्वा विविधवनेत्यादिः—विविधाः नानाप्रकाराः वनस्य याः वीरुधः लताः तृणानि घासाश्च तेषां पटलेन जालेन पिहिता आच्छादिता अदृश्यतां नीतेत्यर्थः रथतुरगखुरमुद्रा रथाश्वखुरचिह्नम् यस्यां तथा पदव्या मार्गेण गङ्गातरङ्गसङ्गतमूलम्-गङ्गयाः तरङ्गैः सङ्गतं मूलं यस्य तं तथोक्तम्, जाह्नवीतरङ्गपवित्रीकृतमूलप्रदेशमित्यर्थः। गगनगङ्गालिङ्गित-शृंगम्-गगनगङ्गाया आकाशगङ्गाया आलिङ्गितमाश्लिष्टं शृङ्गमग्रभागो यस्य तं तथोक्तम् गगनचुम्बिशिखरमित्यर्थः, अत्युन्नतमिति यावत्। शृङ्गवेरपुरालङ्कारम् शृंगवेरपुरभूषणभूतम्, तच्छोभावर्धकमिति यावत्। इङ्गुदीपादपम् तदाख्यं तापसतरुविशेषम् ('इङ्गुदी तापसतरुः' इत्यमरः) उपागमत् प्रापत्।

इसके बाद आधी रात के समय सुमन्त्र के साथ परामर्श करके राम ने लोगों को धोखा देकर उन्हें सोते छोड़कर, गरुड़, के वेग को भी तिरस्कृत करने वाले रथ से वेदश्रुति, गोमती और निष्यन्दिका इन तीन नदियों से भूषित, मनु के द्वारा (अपने पुत्र) इक्ष्वाकु को दी गयी भूमि (अर्थात् कोसलदेश) को लाँघ कर, वन की विविध एवं घनी लताओं और घास-फूस आदि से जिसमें रथ के घोड़ों के खुर चिन्ह अदृश्य हो गये ऐसे मार्ग से शृङ्गवेरपुर के भूषणभूत उस इङ्गुदीवृक्ष को प्राप्त किया, जिसका मूल भाग (गङ्गातटवर्ती होने से) गङ्गा की लहरों से प्रक्षालित एवं पवित्र था और उर्ध्वभाग आकाश गङ्गा से चुम्बित (अर्थात् अत्यन्त उन्नत) था।

ततः[1]—

दृष्ट्वा राममनेकजन्मरचितैर्दृश्यं शुभैः कर्मभिः
श्रुत्वा मातृवरद्वयादुपगतां वृत्तिं च वैखानसीम्।

---

१. 'तत्र' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्युज्जृम्भितहर्षशोकजनितैर्बाष्पैर्निषादाधिपः
शीताशीतगुणान्वितैरविरलैःसम्पृक्तवक्त्रोऽभवत् ।४८।

ततः, दृष्ट्वेति । ततः तदनन्तरम् । निषादाधिपः—अधिकंपातीत्यधिपः राजा, निषादानामधिपः निषादाधिपः निषादराजः गुह इत्यर्थः । अनेकजन्मरचितैः अनेकजन्मकृतैः शुभैः उत्तमैः कर्मभिः व्रतोपवासनियमादिभिः दृश्यं साक्षात्कर्तुं योग्यं रामं दृष्टवा, मातृवरद्वयात् मातुः कैकेय्याः वरद्वयात् पूर्वोक्ताद् वरयुग्माद्धेतोः उपगतां प्राप्तां वैखानसीं वृत्तिम् तापसोचितां गतिं श्रुत्वा सुमन्त्रादिमुखादाकर्ण्य च अत्युज्जृम्भितहर्षशोकजनितैः-अत्युज्जृम्भितौ उद्रिक्तौ यौ हर्षशोकौ श्रीरामदर्शनाद्धर्षः वनवासश्रवणाच्छोकश्च, ताभ्यां जनितैः, (अतएव) शीताशीतगुणान्वितैः शीतोष्णगुणाभ्यामुपेतैः अविरलैः निरन्तरस्यन्दमानैः वाष्पैः अश्रुभिः संपृक्तवक्त्रः-संपृक्तं युक्तं वक्त्रं मुखं यस्य स तथोक्तः अभवत् अजायत । नानाजन्मकृतैः पुण्यकर्मभिर्यं रामं केचिदेव योगिनः पश्यन्ति तस्य रामस्य दर्शनेन परमानन्दजनितशीतलाश्रुभिः निषाद्राजस्य गुहस्य मुखं परिक्लिन्नमभूत् तस्मिन्नेव काले कैकयीवरेण मुनिवृत्तिं दधानो रामोऽत्र वने भ्रमत इत्याकर्ण्य शोकजनितोष्णवाष्पैस्तदेव मुखं सपृक्तमभवत्तदित्थं युगपदेव तस्य मनसि हर्षशोकावजायेतामिति भावः । यथासंख्यमलङ्कारः । 'यथासंख्यमनूद्देश उद्दिष्टानां क्रमेण यत्' । इति तल्लक्षणात् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। ४८ ।।

अनेक जन्मों में किये गये पुण्य कर्मों से जिन राम का दर्शन हो पाता है उन राम को सामने देख कर तथा कैकेयी द्वारा माँगे गये दो वरदानों के कारण प्राप्त उनकी मुनि वृत्ति को सुन कर निषादाधिप का मुख अत्यन्त उत्कट हर्षशोकजनित शीतल तथा उष्ण अश्रुप्रवाह से भर गया ।। ४८ ।।

सोऽयं [1]प्रियसुहृत्समासाद्य गुहः कृताञ्जलिरञ्जसा रघुनाथमनुनाथितवान् ।

सोऽयमिति । सोऽयं प्रियसुहृत् प्रियमित्रं गुहः ('सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति निपातः) समासाद्य समीपमागत्य कृताञ्जलिः सन् अञ्जसा

१. 'प्रिय ' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्त्वतः, न त्वौपचारिकभावेन ('तत्त्वे त्वद्धाञ्जसा द्वयम्' इत्यमरः) रघुनाथं श्रीराममनुनाथितवान् प्रार्थितवान्।

उस प्रियमित्र गुह ने राम के पास आकर, हाथ जोड़ कर यथार्थ भाव से प्रार्थना की—

देव, पितृनियोगप्रवणान्तःकरणमपि भवन्तं [1]विज्ञापयितुम[2]ज्ञजानपदरीतिर्भारती मां मुखरयति।

देवेति। हे देवः ! पितृनियोगप्रवणान्तःकरणम्—पितुःनियोगे आदेशे प्रवणमनुरक्तम् अन्तःकरणं हृदयं यस्य तादृशमपि भवन्तं श्रीरामम् विज्ञापयितुं किञ्चित्कथयितुम् अज्ञजानपदरीतिः—अज्ञानां मूर्खाणां जानपदानां ग्राम्याणां रीतिः शैली यस्यां सा तथोक्ता भारती वाणी मां मुखरयति मुखरीकरोति। यद्यपि भवान् पितुरादेशपालनोद्यतस्तथापि मूर्खग्रामीणजनोचिता वाणी, भवन्तं प्रति किञ्चिद् विज्ञापयितुं मां प्रेरयत्यतो विज्ञापयामीति भावः।

देव, यद्यपि आप पिता के आदेश-पालन में आसक्त हैं तथापि मूर्खग्रामीणोचित वाणी आप से कुछ निवेदन करने के लिए मुझे मुखर कर रही है।

अस्त्येतदनिवार्यवीर्योद्भट[3] भटदुर्गवर्गयुक्तमनुषक्तभोग्यजातमन्थरं मन्थराहृदयतोदावहमस्मदीयं राज्यम्।

अस्तीति। अनिवार्येत्यादिः—अनिवार्येण अनतिक्रमणीयेन वीर्येण पराक्रमेण उद्भटाः उज्जृम्भिताः ये भटाः योधाः, तैः, दुर्गवर्गैः गिरिदुर्गादिरक्षासाधनैश्च युक्तम्, अनुषक्तभोग्यजातमन्थरम्—अनुषक्तं सततसुलभं यद् भोग्यजातम् भोगयोग्यवस्तुसमुदयः, तेन मन्थरम् परिपूर्णम्, मन्थराहृदयतोदावहम्—मन्थरायाः युष्मद्राज्याभिषेकविघातकारिण्याः हृदयस्य चेतसः तोदावहम् व्यथाकरम्, तत्कृतरामराज्यप्राप्तिविघटनस्य वैयर्थ्यसम्पादनादितिभावः एतत् अस्मदीयं राज्यमस्ति वर्तते।

हमारा यह राज्य मौजूद है, जो अजेय पराक्रम वाले योद्धाओं और

---

१. 'विज्ञापितुम्'। इति पाठान्तरम्। २. 'अज्ञात' इति पाठान्तरम्।
३. भटवर्गदुर्गयुक्तम्' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विविधदुर्गों से युक्त है, सततसुलभभोग्यसामग्री से पूर्ण है और मन्थरा के हृदय में व्यथा उत्पन्न कर देने वाला है।

[1]तदेतदनिदम्प्रथमप्रवृत्तं परिगृह्य किञ्चिदनुगृह्य च[2] परिजनयोग्य[3] भाग्यभाजनममुं जनममुञ्चन्नेव [4]तातादेशं देशेऽस्मिन्विस्मयनीयानुभावमुनिवृन्दे मन्दाकिनीसन्दर्शनेन मन्दायमानजननीजनवियोगदुर्दशश्चतुर्दशदशरथकथिताः समाः समापयतु भवानिति।

तदेतदिति। अनिदम्प्रथमप्रवृत्तम्—इदं प्रथमं प्राथम्येन प्रवृत्तं प्राप्तं न भवतीति तथा, पूर्वत एव मादृशस्य जनस्य राज्ये भवतः सर्वथा प्रभुत्वस्य सत्त्वादिति भावः। तदेतत् मदीयं राज्यं परिगृह्य स्वीकृत्य, परिजनयोग्यभाग्यभाजनम्—भृत्यजनोचितसौभाग्यपात्रम्, अमुम् मल्लक्षणं जनं किञ्चित् ईषत् अनुगृह्य अनुकम्प्य च तातादेशम् पितुराज्ञाम् अमुञ्चन् अपरित्यजन्नेव विस्मयनीयानुभावमुनिवृन्दे—विस्मयनीयः आश्चर्यकरः अनुभावः तपसां प्रभावः यस्य तादृशं मुनिवृन्दं यत्र तादृशेऽस्मिन् देशे जनपदे मन्दाकिनीसन्दर्शनेन मन्दायमानजननीजनवियोगदुर्दशः—मन्दायमाना मन्दीभवन्तीजननीजनविरहदुर्दशा मातृवर्गवियोगजनितविषादो यस्य स तथोक्तः सन्, दशरथकथिताः दशरथेन निर्दिष्टाः चतुर्दश समाः वत्सरान् ('संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः इत्यमरः।) भवान् समापयतु यापयतु इत्यनुनाथितवानिति पूर्वेणान्वयः।

(आप का सेवक होने के नाते मैं अपने इस राज्य पर पहिले से ही आप की सर्वतोमुखी प्रभुता मानता रहा हूँ इस लिए) यह राज्य आपको नया तो मिल नहीं रहा है, आप इसे स्वीकार करें। दास होने योग्य सौभाग्य के पात्र मुझ-जैसे जन पर तनिक दया करें, पिता के आदेश का उलङ्घन न करते हुए ही, आश्चर्यजनक प्रभाववाले मुनिवृन्द से युक्त इस देश में त्रैलोक्य की माता गङ्गा के दर्शन से आपका मातृ-वियोग-जन्य दुःख

---

१. 'तदिदमनिशम्' इति पाठान्तरम्। २. 'च' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'योग्यभाजनम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'तातादेशेन' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुछ हल्का हो जायगा, इस प्रकार दशरथ द्वारा निर्दिष्ट चौदह वर्षों को यहीं बितायें।

तस्मिन्नित्थं प्रार्थनाभाजि सख्यौ प्रत्याचख्यौ रामभद्रः प्रियोक्त्या।
मातुर्वाक्याद्वल्कलेनावृतं मे गात्रं क्षात्रप्रक्रियां नार्हतीति ॥ ४९ ॥

तस्मिन्निति। सख्यौ मित्रे तस्मिन् निषादराजे इत्थमनेन प्रकारेण प्रार्थनाभाजि प्रार्थनां कुर्वति सति, मातुः कैकेय्याः वाक्यात् वरप्रार्थनारूपात्, वल्कलेन आवृत्तम् आच्छादितं मे मम गात्रं शरीरं क्षात्रप्रक्रियाम् राज्यपालनम् नाम क्षत्रियाचारं नार्हति इति प्रियोक्त्या तद्वाक्यस्यावश्यपालनीयत्वं पितुर्निर्दोषत्वञ्च सूचितम्। शालिनी वृत्तम् ॥ ४९ ॥

सखा निषादराज के इस प्रकार प्रार्थना करने पर उसे रामभद्र ने "माता के वाक्य से वल्कल धारण करने वाला मेरा यह शरीर राज्य पालन आदि क्षत्रियोचित कार्य की अर्हता ही नहीं रखता है" इस मधुर वचन के द्वारा निराकृत कर दिया ॥ ४९ ॥

ततस्तु तदनुरोधेन रोधस्तरोरधस्तात्सुमन्त्रनियन्त्रितरथ्ययोः[1]दाशरथ्योरातिथ्यं समधुपर्कं कर्तुमिव मन्दमन्दमरविन्दवृन्दस्यन्दमानमकरन्दबिन्दुसंदोहवाहिनि वाहिनीतरङ्गमरुति वाति काननगमनावस्थां काकुत्स्थस्य प्रेक्षितुमक्षमायामिव क्ष्माभृति चरमे तिरोहितायामह्नामधिदेवतायां सन्ध्यां चरमां रामः समाप्य तस्यां तरुमूलभुवि लक्ष्मणकल्पितं पर्णतल्पमभजत्।

तत इति। ततः निषादराजप्रार्थनाप्रत्याख्यानानन्तरम्, तदनुरोधेन तस्य गुहस्य अनुरोधेन अनुवर्तनेन रोधस्तरोः गङ्गातटवर्तिनः कस्यचिद् वृक्षस्य अधस्तात् अधोदेशे सुमन्त्रनियन्त्रितरथ्ययोः सुमन्त्रनिरुद्धाश्वयोः दाशरथ्योः रामलक्ष्मणयोः समधुपर्कम् मधुपर्कः मधुगुडादिमिश्रितः पदार्थः तेन सह समधुपर्कम् आथित्यम् अतिथिसत्कारं कर्तुमिवेति हेतूत्प्रेक्षा, अरविन्देत्यादिः—अरविन्दवृन्दात् कमलसमूहात् स्यन्दमानः प्रस्रवन् यः मकरन्दबिन्दु सन्दोहः पुष्परसशीकरसमुदयः, तं वहति सह नयति तादृशे वाहिनीतरंग-

---

१. रथ्ये' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मरुति गङ्गातरङ्गसम्पृक्तवायौ मन्दमन्दं शनैः-शनैः वाति चलति सति (वातेः शतृप्रत्ययः) काकुत्स्थस्य श्रीरामस्य काननगमनावस्थां वनवासदशां प्रेक्षितुं द्रष्टुमक्षमायाम् असहमानायामिवेत्युत्प्रेक्षा अह्नां दिनानाम् अधिदेवतायां सूर्ये इत्यर्थः चरमे क्ष्माभृति अस्ताचले तिरोहितायाम् अन्तर्हितायां सत्याम्, अस्तङ्गते सवितरीत्यर्थः, रामः चरमां पश्चिमां सन्ध्यां सन्ध्योपासनां समाप्य सायं सन्ध्यावन्दनं कृत्वेत्यर्थः, तस्यां तरुमूलभुवि पूर्वोक्तायां वृक्षमूलभूमौ लक्ष्मणकल्पितं लक्ष्मणविरचितम् पर्णतल्पम् पर्णमयशय्याम् ('तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्यमरः) अभजत् समुपाविशत् विश्रामायेत्यर्थः।

इसके बाद सखा निषादराज के अनुरोधवश गङ्गातटवर्तीय पूर्वोक्त इङ्गुदी वृक्ष के नीचे सुमन्त्र ने रथ खींचने वाले घोड़ों को बाँध दिया। दाशरथि राम और लक्ष्मण का मधुपर्क के साथ मानों अतिथ्य सत्कार करने के लिए कमलों से चू रहे मकरन्दबिन्दुराशि को लेकर गङ्गा की लहरों को स्पर्श करते हुए (शीतल) वायु मन्द-मन्द बहने लगा। श्रीराम की वनवास-दशा को देख न सकने के कारण भगवान सूर्य अस्ताचल पर तिरोहित हो गये, तब राम सायंकालिक सन्ध्योपासन करके उसी वृक्ष के नीचे भूमि पर लक्ष्मण द्वारा तैयार की गयी पत्तों की शय्या पर (विश्रामार्थ) बैठे।

रामे विदेहसुतया तरुमूलसंज्ञ-
मन्तःपुरं विशति लक्ष्मणसौविदल्लम्।
निध्याय तं नियमितासितबाष्पवृष्टि-
र्निद्रां निरस्य निषसाद निषादनाथः॥ ५०॥

राम इति। रामे विदेहसुतया श्री जानक्या, सहेत्यर्थः, (सहार्थाप्रयोगेऽपि तदर्थ गम्यत्वे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इति सहार्थे तृतीया, 'वृद्धो यूना'— इतिसूत्रनिर्देशात्। लक्ष्मणसौविदल्लम्–लक्ष्मण एव सौविदल्लः कञ्चुकी यत्र तत्, लक्ष्मणकृतावेक्षणमित्यर्थः, तरुमूलसंज्ञम् तरूमूलरूपमित्यर्थः, अन्तःपुरं विशति प्रविशष्टवति सति, ('सौविदल्लाः कञ्चुकिनः' इत्यमरः) निषादनाथः गुहः तं तथाभूतं वृक्षाधोदेशे भूतले शयानं रामं निध्याय अवलोक्य नियमितामितवाष्पवृष्टिः–नियमिता अन्तर्निरुद्धा अमिता अविछिन्ना बाष्पवृष्टिः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अश्रुसंपातो येन स तथाभूतः सन् निद्रां निरस्य परित्यज्य निषसाद, लक्ष्मणेन सह संलापं कुर्वन् जाग्रदेव तां निशामनैषीदित्यर्थः '(निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्यमरः)। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५० ॥

श्रीराम जी जानकी के साथ, लक्ष्मणरूप कञ्चुकी से युक्त तरुमूल नामक अन्तःपुर में जब जा बैठे तब उन्हें देखकर अपने सतत बहने वाले अश्रु-प्रवाह को रोककर निषादनाथ गुह (लक्ष्मण के साथ बातचीत करता हुआ) निद्रात्याग कर बैठा रह गया ॥ ५० ॥

व्यतीतायां विभावर्यामर्यममरीचिमालाहारिणि[1] पूर्वोर्वीधरमूर्ध्नि विरचितजटाबन्धौ[2] सह सीतया दाशरथी भागीरथीकच्छमगच्छताम्।

व्यतीतायामिति। विभावर्याम् रात्रौ व्यतीतायाम् अपगतायां ('विभावरी-तमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी' इत्यमरः) पूर्वोर्वीधरमूर्ध्नि—पूर्वोर्वीधरः उदयाचलः, तस्य मूर्ध्नि शिखरे, अर्यममरीचिमालाहारिणि—अर्यम्णः सूर्यस्य मरीचयः किरणाः तेषां मालया समुदयेनैव हारिणि हारवति सति, सूर्यकिरणै-रुद्भासिते सतीत्यर्थः। विरचितजटाबन्धौ—विरचितः कृतः जटानां बन्धः वटवृक्षक्षीरैः ग्रथनं याभ्यां तौ दाशरथी रामलक्ष्मणौ, सीतया सह भागीरथी-कच्छम् गङ्गातटम् अगच्छताम् गतौ। ('जलप्रायमनूपं स्यात् पुंसि कच्छस्त-थाविधः' इत्यमरः)

रात बीत जाने पर जब उदयाचल का शिखर भगवान् सूर्य की किरणमाला के हार से मण्डित हो गया तब राम और लक्ष्मण (वटवृक्ष के क्षीर से) जटाबन्ध रच कर सीता सहित भागीरथी के तट पर पहुँचे।

तत्र रामः प्रहृष्टचेताः सीतामाचष्ट।

तत्रेति। तत्र गङ्गातीरे प्रहृष्टचेताः प्रसन्नहृदयः गङ्गादर्शनेनेतिभावः। रामः सीताम् वक्ष्यमाण प्रकारेण आचष्ट अवदत।

वहाँ (गंगा के दर्शन से) प्रसन्नचित्त राम ने सीता से (इस प्रकार) कहा—

---

१. 'अर्यममरीचिवीचिमाला' इति पा०। २. 'जटाबन्धी दाशरथी' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेध्याश्वमार्गपरिमार्गण[1]संभवस्य
दिव्यौषधिं कपिलकोपमहाज्वरस्य।
तातानुतर्पणपचेलिमभागधेयां
भागीरथीं भगवतीं शरणं भजामः॥ ५१॥

मेध्याश्वेति। मेध्यः पवित्रः यज्ञीयश्च, (मेधं यज्ञमर्हतीति मेध्यः 'तदर्हति' इति यत् यद्वा मेधे यज्ञे साधुः मेध्यः 'तत्र साधुः' इति यत्। ('मेधः क्रतौ धियां मेधा' इति विश्वः) योऽश्वस्तस्य मार्गः पन्थाः तस्य परिमार्गणे अन्वेषणे संभवः उदयो यस्य तादृशस्य मत्पूर्वजैरश्वमेधीयाश्वान्वेषणे क्रियमाणेऽभ्युदितस्येत्यर्थः, कपिलकोपमहाज्वरस्य कपिलः तन्नामा महामुनिस्तस्य यः कोपः अवमानजनितः क्रोधः, स एव महाज्वरः अति सन्तापकव्याधिस्तस्य दिव्यौषधिम् अलौकिकामोघभेषजरूपाम्, तातानुतर्पणपचेलिमभागधेयाम् तातानामस्मत्पूर्वजानामनुतर्पणेन सन्तर्पणेन मोक्षणेनेति यावत् पचेलिमं परिणतं समेधितमिति यावत्, भागधेयम् भाग्यं यस्यास्ताम्, अस्मत्पूर्वजानामुद्धारकर्तृतया परोपकारकृतजन्मसाफल्यामित्यर्थः, भगवतीम् महनीयां भागीरथीं गङ्गां शरणं भजामः प्राप्नुमः। रूपकमलंकारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥५१॥

अश्वमेधीय पवित्र अश्व के मार्ग को ढूँढने के समय उदित, कपिलमुनि के कोपरूप महाज्वर की दिव्य औषधिरूप तथा (हमारे) पितरों के तर्पण द्वारा (उद्धाररूप परोपकार करने से) समृद्ध सौभाग्य वाली भगवती गङ्गा की शरण में हम सब आ रहे हैं॥ ५१॥

तदनन्तरं रामः सान्त्ववचननिवारितसुमन्त्रः ससौमित्रिर्मङ्गलानि प्रार्थयमानया तया मैथिल्या सह गुहेनानीतां नावमारुरोह।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरम् पूर्वोक्तप्रकारेण गङ्गास्तवनानन्तरम् सान्त्ववचननिवारितसुमन्त्रः सान्त्ववचनैः प्रियोक्तिभिः निवारितः तदनुगमनं निषिध्यायोध्यां प्रति परावर्तितः सुमन्त्रो येन स तथोक्तः रामः। ससौमित्रिः सलक्ष्मणः सन्। मङ्गलानि शुभानि प्रार्थयमानया गङ्गां याचमानया तया

१. 'दुर्नयस्य' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुचलन्त्या मैथिल्या सीतया सह गुहेन निषादराजेन आनीताम् उपस्थापितां नावम् नौकाम् आरुरोह अधिष्ठितवान् ।

इसके वाद राम ने सान्त्वनापूर्ण वचनों से सुमन्त्र को लौटा दिया और लक्ष्मण एवं (गङ्गाजी से) मङ्गल की प्रार्थना करती हुई सीता के साथ, गुह द्वारा प्रस्तुत नाव पर बैठ गये ।

स एष निषिध्य निषादाधिपतेरनुगमनमपि तूर्णमेव [1]वितीर्णसुरसरित्पूरः संपूर्णसस्ये वत्साभिधाने जनपदे कृतपदश्च [2]लक्ष्यवेधनचतुरश्चतुरो मृगान्निहत्य कुत्रचिद्वनस्पतिमूले निशामनैषीत् ।

स एव इति । सः सुमन्त्रानुगमननिषेधकः, एषः रामः निषादराजानुगमनम् निषादराजस्य गुहस्य अनुगमनम् अपि निषिध्य, अनुगच्छन्तं गुहमपि परावर्त्येत्यर्थः यथा प्रियोक्तिभिः सुमन्त्रम् तथैव गुहमपि परावर्त्येति भावः तूर्णं शीघ्रमेव वितीर्णसुरसरित्पूरः वितीर्णः लंघितः सुरसरितः गङ्गायाः पूरः प्रवाहो येन स तथोक्तः सन्, सम्पूर्णसस्ये धान्यादिपूर्णे वत्साभिधाने वत्सनाम्नि जनपदे देशे ('नीवृज्जनपदो देशविषयौ' इत्यमरः) कृतपदः समागतः चललक्ष्यवेधनचतुरः—चञ्चलमृगादिलक्ष्यभेदननिपुणः (अतएव) चतुरः चतुःसंख्याकान् मृगान् वराहादीन् निहत्य व्यापाद्य, कुत्रचित् कस्मिञ्चिद् वनस्पतिमूले वृक्षाधोदेशे निशां रात्रिम् अनैषीत् व्यतियापितवान् ।

श्रीरामचन्द्र जी (सुमन्त्र की तरह) निषादराज गुह के भी अनुगमन को रोक कर शीघ्र ही गङ्गा को पार कर धान्यादि सस्य से पूर्ण वत्स नामक देश में पहुँचे और चल लक्ष्य को भेदने में चतुर राम ने (वराहादि) चार पशुओं को मारकर एक वृक्ष के नीचे निवास कर रात वितायी ।

अन्येद्युर्वन्येन पथा प्रयातास्ते [3]प्रयागे [4]प्रतायमानहोमधूमप्राग्भारं भारद्वा[5]जाश्रमं श्रयन्तश्चाभिवन्द्य तमसन्दहर्षं [6]महर्षिमनेनादिष्टवर्त्मना वैकर्तनीपूरोपप्लवं प्लवेन वैणवेन निस्तीर्य शमधनजनसन्निधान-

---

१. 'अवतीर्णसरित्पारः' इति पाठा० । २. चलल्लक्ष्य' इति पाठा० ।
३. 'प्रभाते' इति पाठा० । ४. 'प्रतीयमान'''प्राग्द्वारं' इति पाठा० ।
५. 'भारद्वाजाश्रममाश्रयन्तः' इति पाठा० । ६. 'महर्षिजनेन' इदि पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शमित[1]शात्रवसकलसत्त्व[2]चरित्रविचित्रं[3] चित्रकूटाचलम[4]भजन् ।

अन्येद्युरिति । अन्येद्युः अन्यस्मिन् दिने, वन्येन वने भव इति वन्यः तेन ('तत्र भवः' इति यत्) पथा वनगतमार्गेण प्रयाताः प्रस्थिताः ते सीतारामलक्ष्मणाः प्रयागे प्रयागनाम्नि प्रसिद्धे तीर्थस्थाने प्रतायमानहोमधूमप्राग्भारम् प्रतायमानः व्याप्नुवन् सर्वतः प्रसरन् होमधूमस्य प्राग्भारः समूहो यत्र तम् (प्राग्भारशब्दः समूहार्थे रूढः इति बुधेन्द्रः) भरद्वाजाश्रमम्-भरद्वाजो नाम प्रसिद्धो मुनिः तस्य आश्रमम् निवासस्थानम्, श्रयन्तः प्राप्नुवन्तः, आनन्दहर्षम् (रामदर्शनेन) अमन्दः समधिकः हर्षः आनन्दो यस्य तं तथोक्तम्, तम् भरद्वाजनामानम् , महर्षिम् मुनिम् अभिवन्द्य प्रणम्य, अनेन भरद्वाजेन मुनिना आदिष्टवर्त्मना आदिष्टेन विज्ञापितेन वर्त्मना मार्गेण, वैकर्तनीपूरोपप्लवम्-विकर्तनः सूर्यः, तस्यापत्यं स्त्री वैकर्तनी यमुना ('तस्यापत्यमित्यण् स्त्रियां ङीप्) तस्याः पूरः प्रवाहः, स एव उपप्लवः मार्गप्रतिरोधकरूपो विघ्नः तम्, वैणवेन वेणुः वंशः, तन्निर्मितेन प्लवेन उडुपेन ('उडुपं तु प्लवः कोलः' इत्यमरः) निस्तीर्य उल्लंघ्य शमधनेत्यादिः—शमः शान्तिरेव धनं येषां ते शमधनाः महर्षयस्तेषां संविधानेन साहचर्येण शमितम् अपगतं शात्रवं शाश्वतिकं वैरम् येषां तादृशानि (शत्र शब्दाद्भावे 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्' इत्यण्) यानि सकलसत्त्वानि गोव्याघ्रादिसमस्तजन्तवः तेषां चरित्रेण निर्विशंकभावेनैकत्रावस्थानरूपेण विचित्रमाश्चर्यकरं चित्रकूटाचलं चित्रकूटनामानं गिरिम् अभजन् प्राप्तवन्तः ।

दूसरे दिन जंगली रास्ते से चल कर वे सब प्रयाग में विद्यमान, होमधूम से व्याप्त भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे । (राम के दर्शन से) परम प्रसन्न भरद्वाज को उन सब ने प्रणाम किया और उनके बताये हुए मार्ग से यमुनातट पर पहुँच कर बाँस के बने बेड़े से यमुना को पार करके शमशील महामुनियों के साहचर्य से पारस्परिक शाश्वतिकविरोध छोड़ कर

---

१. 'शात्रवसत्त्वचारित्रम्' इति पाठा० ।

२. 'चरित्रं विचित्रम्' 'सत्त्वचारित्रम्' इति पाठा० ।

३. 'चित्रकूटमचलम्' इति पाठा० । ४. 'अभजन्त' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक साथ रहते हुए सकल जन्तुओं के चरित्र से लोगों को आश्चर्य-चकित करने वाले चित्रकूट गिरि को उन सब ने प्राप्त किया।

अनुजरचितपर्णागारहृद्यासु माद्य-
त्परभृत[1]गलचञ्चत्पञ्चमैर[2]ञ्चितासु।
जनकदुहितृयोगाज्जातसाकेतसौख्य-
श्चिरमरमत रामश्चित्रकूटस्थलीषु ॥ ५२ ॥

अनुजेति। अनुजरचितपर्णागारहृद्यासु—अनुजेन लक्ष्मणेन रचितैः कृतैः पर्णागारैः पर्णशालाभिः तेन हृद्यासु मनोहरासु। तथा च माद्यत्परभृतगलचञ्चत्पञ्चमैः—माद्यन्तः मत्ता ये परभृताः पिकास्तेषां गलेभ्यः कण्ठेभ्यः चञ्चन्तः निःसरन्तः पञ्चमाः पञ्चमस्वरास्तैः, अञ्चितासु पूजितासु रमणीयास्विति यावत्। चित्रकूटस्थलीषु चित्रकूटपर्वतस्याकृत्रिमभूमिषु (वन प्रियः परभृतःकोकिलः पिकः' इत्यमरः)। जनकदुहितृयोगात् जनकदुहिता जनकराजपुत्री सीता तस्या योगात् सङ्गमात् (योगः संनहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु' इत्यमरः) जातसाकेतसौख्यः—जातमुत्पन्नम् साकेतस्य अयोध्यायाः सौख्यं यस्य स तथोक्तः, रामः चिरं चिरकालपर्यन्तम् अरमत् विहरन्। ('साकेतं स्यादयोध्यायां कोसलानन्दिनी तथा' इति यादवः)। अत्र चित्रकूटे साकेतसुखजातत्वासम्भवात्तत्सुखसदृशं सुखमित्यवगमनाच्चित्रकूटवासस्य साकेतवासस्य च बिम्बप्रतिबिम्बभावोऽवबोध्यते तदेकवाक्यगा असम्भवद्वस्तुसम्बन्धनिदर्शना। मालिनीवृत्तम् ॥५२॥

अनुज लक्ष्मण द्वारा बनाये गये उटजों से मनोहर, पिकों के कण्ठ से निकले पञ्चमस्वर से गुंजित चित्रकूट स्थली में जानकी के साथ रहने से राम को अयोध्या के-से सुखों की अनुभूति हुई और वहाँ वे बहुत दिनों तक विहार करते रहे ॥ ५२ ॥

अथ मां वनवासनैर[3]स्यादपि[4]नाम रामः समाह्वयेदिति [5]प्रत्याशया

१. 'कुलं' इति पाठा०। २. 'रञ्जितासु' इति पाठा०।
३. 'वैरस्यात्' इति पाठा०। ४. 'नाम' नास्ति क्वचित् इति पाठा०।
५. 'प्रत्याशयी' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परतन्त्रः सुमन्त्रः कानिचिदहानि गुहसकाशे नीत्वा निराशस्ततः प्रतिनिवृत्तो निवृत्तोत्सवामयोध्यामासाद्य [1]निर्दाशरथिरयं समागत इति शोकातिरेकातुरपौरजनजनितदीनाक्रन्दमन्दीभूतनेमि[2]घोषादवरुह्य रथाद्दशरथं प्रयाणोन्मुखप्राणम् प्राणंसीत् ।

अथेति । अथ रामेण सुमन्त्रे परावर्तिते, वनवासनैरस्यादपिअनुरोधस्तु नैष्फल्यं गतः, कदाचित्क्लेशभूयिष्ठत्वेन वनसञ्चारस्याप्रीतिकरत्वादपि, नामेति सम्भावनाम्, रामः मां सुमन्त्रं समाह्वयेत्, आकारयेत्, इत्येवं भूतया प्रत्याशयाऽभिकाङ्क्षया परतन्त्रः बद्धः सन् सुमन्त्रः कानिचिदहानि द्वित्राणि दिनानि गुहसकाशे गुहनिकटे नीत्वा गमयित्त्वा, ततः परावर्तनार्थं रथोपस्थापनार्थं वा रामकर्तृकस्वाह्वान्निराशः सन् प्रतिनिवृत्तः अयोध्यां प्रति परावृत्तः निवृत्तोत्सवाम्–निवृत्तः समाप्तः उत्सवः आनन्दो यस्यास्ताद्दशीम्, रामविरहेण निरानन्दाम् अयोध्यामासाद्य प्राप्य निर्दाशरथिः रामलक्ष्मणरहितः एकाक्येव अयं सुमन्त्रः समागतः इति हेतोः शोकातिरेकेत्यादिः–शोकातिरेकेण दुखाधिक्येन आतुराः क्लेशिता ये पौरजनाः पुरवासिनः तैः जनितः कृतः दीनाक्रन्दः करुणचीत्कारः तेन मन्दीभूतः अन्तर्हितः नेमिघोषः रथचक्रसञ्चारध्वनिर्यस्य ताद्दशाद्रथात् अवरुह्य अवतीर्य प्रयाणोन्मुखप्राणम्–प्रयाणोन्मुखाः रामविरहजन्यशोकस्य सोढुमशक्यतया निर्गन्तुकामाः प्राणा यस्य ताद्दशं प्राणंसीत् प्रणतवान् ।

इसके बाद, सम्भवतः राम को वनवास नीरस लगे अतएव मुझे वे (साथ रहने के लिए अथवा लौटने के लिए रथ प्रस्तुत करने के उद्देश्य से) बुलाएँ–इस आशा से सुमन्त्र ने निषादराज गुह के पास कुछ दिन बिताये किन्तु (अन्त में) निराश होकर वे, हर्षशून्य अयोध्या को वापस आ गये। लोगों को जब मालूम हुआ कि राम लक्ष्मण के विना ही सुमन्त्र आये हैं तो वे शोकाधिक्य से विह्वल हो करुण क्रन्दन करने लगे जिसमें उनके रथ के पहियों की घड़घड़ाहट दब गयी। सुमन्त्र ने उस रथ से उतर कर आसन्न मृत्यु दशरथ को प्रणाम किया।

---

१. 'निर्दाशरथिः सारथिरिति शोकातिरेकात्पौर' इति पा० ।
२. 'नेमे' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतद्दर्शनेन विसंज्ञो दशरथः कौसल्यासुमित्राभ्यां समाश्वासितः कथं प्रयातं रामेण कथं कथितं मैथिल्या किंवृत्तः सौमित्रिरिति मुहुर्मुहुरश्रुकुण्ठितकण्ठः सुमन्त्रमन्वयुङ्क्त।

एतदिति। एतद्दर्शनेन—एतस्य सुमन्त्रस्य एकाकिन एव दर्शनेन विलोकनेन, रामादयो न प्रत्यागता इति विज्ञायेति भावः। विसंज्ञः—विगता संज्ञा चेतना यस्य सः, मूर्च्छित इत्यर्थः दशरथः कौसल्यासुमित्राभ्यां समाश्वासितः व्यजनवीजनाद्युपचारेण चेतनां प्रापितः, रामः कथं केन प्रकारेण प्रयातम् गमनं कृतम्, तथा मैथिल्या सीतया कथं केन प्रकारेण कथितमुक्तम्, तथा सौमित्रिः लक्ष्मणः किं वृत्तः कीदृग्व्यापारः, प्रयाणसमये रामस्य दुःखं तु नाभवत् किम्? सीता निर्वेदेन तु न कथितं किम् लक्ष्मणेन रामानुवर्तनं कृतं न वा किम्? इत्याशयः, इत्येवं मुहुर्मुहुः भूयोभूयः, अश्रुकुण्ठितकण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषकण्ठः सन् सुमन्त्रम् अन्वयुङ्क्त अपृच्छत्। ('प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः।

(अकेले) सुमन्त्र को देखते ही दशरथ मूर्च्छित हो गये। कौशल्या और सुमित्रा के द्वारा होश में लाये जाने पर दशरथ ने सुमन्त्र से बार-बार यही पूछा कि राम कैसे गये, सीता ने क्या कहा, लक्ष्मण का क्या हाल है।

सोऽपि राज्ञे व्यजिज्ञपत्।

सोऽपीति। सः सुमन्त्रः अपि राज्ञे दशरथाय व्यजिज्ञपत् न्यवेदयत्—

उन्होंने भी राजा से (इस प्रकार) कहा—

देव, कथं ब्रवीमि, कठिनहृदयोऽहम्।

देवेति। देव राजन्, कथं केन प्रकारेण ब्रवीमि कथयामि, तद्वृत्तान्तस्य वक्तुमशक्यत्वादिति भावः। कठिन हृदयः कठोरचित्तः अहं सुमन्त्रः तदवस्थान् तान् घोरे वने विहाय परावृत्तत्वादिति भावः।

राजन्, मैं कैसे कहूँ! मैं बड़ा कठोर हृदय हूँ (जो उन्हें वन में छोड़कर चला आया)।

सेवारसानुगतपौरमनोरथस्य
[1]दूरे रथस्य च सुतौ तव वर्तमानौ।

---

१. 'पारे' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूत्वा विदेहदुहितुर्नवसौविदल्लौ
भागीरथीतटवने पथिकावभूताम् ॥ ५३ ॥

सेवारसेति। सेवारसानुगतपौरमनोरथस्य–सेवा परिचर्या तस्यां यो रसः अनुरागस्तेन अनुगताः अनुयाता ये पौराः पुरजनास्तेषां मनोरथस्य अनुगमन-रूपाभिलाषस्य, रथस्य मच्चाल्यमानस्यन्दनस्य च दूरे विप्रकर्षे वर्तमानौ स्थितौ तमसा तीरे प्रसुप्तान् पौरान् विहाय, वनवासतत्पराणामस्माकं किमनेन रथेनेति रथं परावर्त्य चेति भावः। तव सुतौ रामलक्ष्मणौ विदेहदुहितुः वैदेह्याः नवसौविदल्लौ नूतनकञ्चुकिनौ तद्रक्षणपरावित्यर्थः, भूत्वा, भागीरथीतटवने गङ्गातीरवर्तिन्यरण्ये पथिकौ पादचारिणौ अभूताम् तद्वनम् प्राविशतामित्यर्थः। अत्र पूर्वार्धे प्रस्तुतयोर्मनोरथस्य रथस्य च दूरीकृतत्वरूपैकधर्माभिसम्बन्धात केवल प्रस्तुतगोचरा तुल्ययोगिता। उत्तरार्द्धे तु दाशरथ्योर्नवसौविदल्लत्वोत्प्रे-क्षणादुत्प्रेक्षेति संसृष्टिरलङ्कारद्वयस्य नैरपेक्ष्यात्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥५३॥

सेवानुराग से पीछे-पीछे चलनेवाले पुरवासियों के साथ चलने के मनोरथ और हमारे रथ से दूर होकर (अर्थात् पहिले सोते हुए पुरवासियों को और अन्त में हमारे रथ को भी छोंड़ कर) आप के पुत्र राम-लक्ष्मण, दोनों भाई सीता के नये कञ्चुकी जैसे बन कर भागीरथी के तटवर्ती वन के पथिक हुए (उस वन को पैदल ही चले गये) ॥ ५३ ॥

किञ्च[1]—

देव त्वत्तनयस्य कुन्तलभरं क्षीरैः स्वधेनूद्भवैः
सेक्तुं नालमरुन्धतीपतिरभूत्तस्याभिषेकोत्सवे।
सिक्तो हन्त स एष मैथिलसुतावाष्पोदकोत्पादक-
न्यग्रोधक्षरितैर्जटां रचयितुं क्षीरैर्निषादाहृतैः ॥ ५४ ॥

देवेति। अरुन्धतीपतिः वसिष्ठः अभिषेकोत्सवे राज्याभिषेकरूपे उत्सवे स्वधेनूद्भवैः कामधेनुसंभूतैः क्षीरैः दुग्धैः त्वत्तनयस्य तवपुत्रस्य श्रीरामस्य कुन्तलभरम् केशकलापं सेक्तुमार्द्रीकर्तुं, गोक्षीराभिषेकस्य विघ्नविहतत्वादिति-भावः। (सेक्तुमित्यत्र 'पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु' इति तुमुन्। 'अलं भूषण-

१. 'किन्तु' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इत्यमरः) हन्तेति खेदे। स एव कुन्तलभरः जटां रचयितुं ग्रथयितुम् निषादाहृतैः निषादेन अपवित्रनिषादत्वजातिविशिष्टेन आनीतैः मैथिलसुतावाष्पोदकोत्पादकैः मैथिलसुतायाः सीतायाः नयनयोः अश्रुप्रवाहं प्रवर्त्तयद्भिः (अतएव दुःखोत्पादकैःरमङ्गलजनकैश्च) न्यग्रोधक्षरितैः वटवृक्षोद्भवैः ('न्यग्रोधो बहुपाद्वटः इत्यमरः) क्षीरैः दुग्धैः सिक्तः इति हन्त विषमा वामा विधेर्वृत्तय इति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥५४॥

और,

देव, तुम्हारे पुत्र राम के जिस केश-कलाप को अभिषेक काल में गुरु वसिष्ठ (अभिषेक रुक जाने के कारण) अपनी कामधेनु के दूध से सिक्त नहीं करने पाये, शोक का विषय है कि उनका वही केश-कलाप जटा बनने के लिए निषाद के द्वारा लाये गये वटवृक्ष के दूध से सिक्त किया गया। उस दूध को देखकर सीता जी के नेत्र आँसुओं से भर गये ॥ ५४ ॥

तस्या विदेहदुहितुः पदयोर्नखेषु
लाक्षां विनाप्यरुणिमा सहसा बभूव ।
वन्ये पथि प्रियतमेन सह व्रजन्त्या
वैवर्ण्यमाविरभवन्न कदापि वक्त्रे ॥ ५५ ॥

तस्या इति। वन्ये पथि अरण्यमार्गे प्रियतमेन प्राणनाथेन श्रीरामेण सह व्रजन्त्याः गच्छन्त्याः तस्याः पतिव्रताग्रगण्यायाः विदेहदुहितुः जानक्याः पदयोः चरणयोर्नखेषु लाक्षां विनापि अलक्तकद्रवलेपाभावेऽपि ('लाक्षामित्यत्र विनेति पदयोगे द्वितीया) सहसा अविलम्बेन अरुणिमा रक्तिमा बभूव प्रादुरभवत् किन्तु वक्त्रे आनने कदापि कस्मिन्नपि काले वैवर्ण्यं मालिन्यं न आविरभवत् न प्रादुरभूत। अत्र लाक्षारूपकारणं विनापि नखेषु आरुण्यरूपकार्यप्रतिपादनाद्विभावना, वन्यमार्गसञ्चाररूपकारणसद्भावेऽपि वैवर्ण्यरूपकार्यानुत्पत्तिप्रतिपादनाद्विशेषोक्तिश्च, तदनयोः परस्परनैरपेक्ष्येण संसृष्टिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

प्रियतम राम के साथ वनमार्ग पर चलती हुई उन सीता के चरणों के नखों में लाक्षा (अलक्तक द्रव) के विना भी सहसा लालिमा पैदा हो गयी किन्तु उनके मुख की कान्ति कभी फीकी नहीं पड़ी ॥ ५५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीतापतेः किसलयैः परिकल्प्य तल्पं
सञ्चार्य सत्त्वदमनाय निशासु दृष्टिम् ।
धन्वी तदङ्घ्रिभजनादिव पुण्यलभ्या-
दस्वप्न एव वनवर्त्मनि लक्ष्मणोऽभूत् ॥ ५६ ॥

सीतापते रिति । धन्वी धनुर्धारी लक्ष्मणः वनवर्त्मनि अरण्यमार्गे निशासु रात्रिषु सीतापतेः श्रीरामस्य किसलयैः नवपल्लवैः तल्पं शय्यां परिकल्प्य विरचय्य सत्त्वदमनाय हिंस्रजन्तुनिग्रहाय ('सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः) दृष्टिं संचार्य इतस्ततः निक्षिप्य पुण्यलभ्यात् पुण्यैरनेकजन्मकृतैः सुकृतैः लभ्यात् प्राप्यात् तदङ्घ्रिभजनात् तस्य श्रीरामस्य अङ्घ्रिभजनात् पद्सेवाया इव अस्वप्नः निर्निद्र एव अभूत्, कदापि न सुष्वापेति भावः । सीतारामशयनार्थं पल्लवैः शय्यां विरचय्य तत्र शयानयोस्तयोर्लक्ष्मणो धनुर्गृहीत्वोपद्रावकजन्तु-निवारणार्थं दिक्षु स्वां दृष्टिं प्रसार्य पुण्यप्राप्तां श्रीरामचरणसेवां निरन्तरं कर्तुमिव वनमार्गे कदापि निद्रां नासेवतेति भावः वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५६ ॥

लक्ष्मण, सीतापति राम की शय्या किसलयों से तैयार कर, हिंस्रजन्तुओं का दमन करने के लिए धनुष लिये हुए चारों ओर रात में दृष्टि डाल कर, वनमार्ग में मानो बड़े पुण्य से मिले हुए राम चरण-भजन के कारण जागते ही रहे (कभी सोये नहीं) ॥ ५६ ॥

एवं सुमन्त्रनिवेदितपुत्रचरित्रश्चरमगिरिशिखरजुषि निगमवपुषि ज्योतिषि हृदयलग्नशोकशल्यां कौसल्यां[1]समाश्वास्य नरपतिरित्थम-कथयत् ।

एवमिति । एवमुक्तप्रकारेण, सुमन्त्रनिवेदितपुत्रचरित्रः—सुमन्त्रेण निवेदितः विज्ञापितः पुत्रस्य रामस्य चरित्रं चरितं यस्य सः, नरपतिः दशरथः निगमवपुषि त्रयीमय इत्यर्थः, ज्योतिषि सूर्ये चरमगिरिशिखरजुषि अस्ताचल शिखरभाजि, अस्तंगते सूर्य इत्यर्थः । हृदयलग्नशोकशल्याम्—हृदयेलग्नं प्रविष्टं शोकः पुत्रवियोगजन्यदुःखमेव शल्यं शङ्कुर्यस्यास्तादृशीम् कौसल्यां राम-जननीम्, समाश्वास्य सान्त्ववचनैर्धैर्यं प्रदाय इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण अकथयत् कौसल्यामवदत् ।

---

१. 'आश्वास्य' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार राम का चरित सुमन्त द्वारा कहे जाने पर, वेदस्वरूप सूर्य के अस्ताचल के शिखर पर पहुँच जाने पर, जिसके हृदय में शोकशल्य गड़ा हुआ था उस कौसल्या को सान्त्वना देकर राजा दशरथ ने इस प्रकार कहा—

पुरा खलु सरयूरोधसि विविधतरुनिवहपिहितदिव[1]स्पतौ मृगयास्पृहया कमपि समयमगमयम् ।

पुरेति । पुरा पूर्वकाले । खल्विति वाक्यालङ्कारे । विविधतरुनिवहपिहितदिवस्पतौ—विविधानां नानाजातीयानां तरूणां वृक्षाणां निवहेन समूहेन पिहितः आच्छादितः दिवस्पतिः सूर्यो यत्र तस्मिन् । एतेन तस्य स्थानस्य मृगयायोग्यत्वमुक्तम् । सरयूरोधसि सरयूतीरे, मृगयास्पृहया आखेटाभिलाषेण कमपि समयम् कञ्चित्कालम् अगमयम् अहं यापितवान् ।

बहुत पहिले विविध वृक्षसमूह से सूर्य को आच्छादित करने वाले सरयूतट पर मैंने आखेट की स्पृहा से कुछ समय बिताया था ।

तत्र,

तोयादान[2]सनादपुष्करगजभ्रान्त्या तपस्वी मया
विद्धः कश्चन शब्दवेधनविदा पाथः [3]सरय्वां हरन् ।
तत्पित्रोर्जरदन्धयोरनुमृतिं कर्तुं[4]चितिं चिन्वतोः
शापो मय्यपतद्भवानपि सुतप्रेम्णा प्रणश्येदिति ॥५७॥

तत्र, तोयादानेति । तत्र सरयूतटे, तोयादानसनादपुष्करगजभ्रान्त्या-तोयादानेन जलग्रहणेन सनादं सशब्दं पुष्करं शुण्डाग्रं यस्य तादृशो यो गजः हस्ती तस्य भ्रान्त्या भ्रमेण ('पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले' इत्यमरः) जलमादत्ते कश्चिद्गजस्तस्यैव शुण्डाग्रं शब्दायत इति मत्वेत्यर्थः, सरय्वां पाथः जलं हरन् कमण्डलुना संगृह्णन् ('कबन्धमुदकं पाथः इत्यमरः) कश्चन् तपस्वी श्रवणनामा मुनिपुत्रः शब्दवेधनविदा शब्दवेधिबाणप्रयोगकुशलेन मया विद्धः मारितः । जरदन्धयोः वृद्धयोर्दृष्टिविहीनयोश्च तत्पित्रोः तस्य हतस्य तपस्विनो मातुः पितुश्च अनुमृतिं कर्तुम् मृतं पुत्रमनुगन्तुम्

१. 'विवस्वति वेतस्वति मृगया' इति पाठा० । २. 'निदान' इति पाठा० ।
३. 'सरय्वा हरन्' इति पाठा० । ४. 'चितान्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चितिम् चिन्वतोः चितां रचयतोः सतोः भवान् मत्पुत्रहन्ता अपि सुतप्रेम्णा पुत्रवियोगेनेत्यर्थः प्रणश्येत् म्रियेत इति शापः मयि दशरथे अपतत् तच्छापादेव पुत्रप्रेम्णाऽहं म्रिये, तदलं शोकेनापरिहार्येऽर्थेऽस्मिन्निति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम ॥५७॥

सरयू तट पर (कमण्डलुमें) जल भरते हुए एक तपस्वी को, जलग्रहण करने से शब्द करते हुये शुण्डाग्र वाले हाथी के भ्रम से, शब्दवेधी बाण चलाने में कुशल मैंने बाण से विद्ध कर दिया। (प्रियपुत्र के मर जाने पर) उसका साथ देने के लिए चिता चुनते हुए उस तपस्वी के अन्धे और बूढ़े माता-पिता ने मुझे शाप दे दिया कि आप भी पुत्र-प्रेम के कारणप्र ाणत्याग करेंगे ॥५७॥

अहं वैश्यस्य शूद्रायां जातस्तस्मान्न संभवेत्।
ब्रह्महत्येति मामुक्त्वा स्वर्गतो दुर्गतो मुनिः ॥ ५८ ॥

अहमिति। दुर्गतः मच्छरप्रहारेण दुरवस्थामापन्नः मुनिः तपस्वी अहं वैश्यस्य वणिजः शुद्रायां शूद्रत्वजातिविशिष्टायामङ्गनायां जातः पुत्रः अतएव करणः 'वैश्यात्करणः शूद्रायाम्' इति याज्ञवल्क्योक्ते वैश्योऽपि नास्मीति भावः ('शूद्राविशोस्तु करणः' इत्यमरश्च) तस्मात्कारणात् ब्रह्महत्या हते मयि ब्राह्मणवधकृतपातकं न संभवेत् न जायेत इति मां दशरथमुक्त्वा स्वर्गतः स्वर्गं गतः ('स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः इत्यमरः)।

(प्राणान्त समय) वह छटपटाता तपस्वी (जिसे मैंने बाण से आहत किया था) 'मैं शूद्रामें वैश्य का पुत्र हूँ (अर्थात् करण हूँ) अतः आप को ब्रह्महत्या नहीं लगेगी' ऐसा कह कर स्वर्ग सिधार गया था ॥ ५८ ॥

तदवश्यं वश्य एवास्मि मृत्योरिति [1]स्मृतिपथगतराम एव विरराम।

तदिति। तत् तस्मात् कारणान्मुनिशापादित्यर्थः। अवश्यं निश्चितम् मृत्योः वश्यः वशं गत एवास्मि इत्येवमुक्त्वा स्मृतिपथगतरामः—स्मृतिपथं गतः रामो यस्य तथाविधः सन् रामं स्मरन्नेव विरराम निर्वचनोऽभूत्, मरणासन्नोऽभूदित्यर्थः। ('व्याङ्परिभ्योरमः' इति परस्मैपदम्)।

इस शाप के कारण मैं अब मृत्यु के अधीन हो चुका हूँ। ऐसा कह कर दशरथ ने राम का स्मरण किया और उनकी बोली बन्द हो गयी।

---

१. 'नरपतिः श्रुतिमार्गगत' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुनिशापकृतोत्पत्तिर्विपत्तिर्निष्प्रतिक्रिया ।
दशरथायाशु दिदेश दशमीं दशाम्[1] ॥ ५९ ॥

मुनिशापेति । ततः तदनन्तरम् मुनिशापकृतोत्पत्तिः——मुनिः हतपुत्रकान्धो, मुनिः, तस्य शापेन कृता उत्पत्तिर्यस्याः सा तथोक्ता निष्प्रतिक्रिया प्रतिकार-रहिता केनाप्युपायेन निवारयितुमशक्या विपत्तिः आपत् आशु शीघ्रम् दशरथाय दशमीं दशाम् मरणावस्थां दिदेश दत्तवती, अमोघमुनिशापवशाद् दशरथो ममार इत्यर्थः । दशसु कामदशासु चरमा दशमी दशा मृत्युस्तस्मादेव दशम्या दशया मृत्योर्निदेशः कृत इति बोध्यम् ॥ ५९ ॥

उस (अन्धे और बूढ़े) तपस्वी के शाप से जनित और प्रतीकार रहित उस विपत्ति ने दशरथ को दसवीं दशा (अर्थात् मृत्यु) दे दी ॥ ५९ ॥

[2]नाक्रान्तस्त्रिदिवः परः सुमनसां कान्ता न वन्दीकृता
नाकीर्णं पुरुहूतशासनधरैः साकेतबाह्याङ्गणम् ।
[3]नादिष्टाः सचिवाश्च भूतलपरित्राणाय यद्यप्यसौ
नाकं शोकवशादगाद्दशरथो नास्थां वहन्वाहने ॥ ६० ॥

नाक्रान्त इति । यद्यपि त्रिदवः स्वर्गः परैः शत्रुभिर्दैत्यैरित्यर्थः न आक्रान्तः, सुमनसाम् देवानाम् ('सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्री देवबुधयोः पुमान्' इति वैजयन्ती) कान्ताः ललनाः न वन्दीकृताः नोपगृहीताः शत्रुभिः, ('प्रग्रहो-पग्रही वन्द्याम्' इत्यमरः) तथा च पुरुहूतशासनधरैः इन्द्राज्ञावाहकैर्दूतैः साकेतबाह्याङ्गणम् अयोध्यापुर्याः बाह्यचत्वरं न आकीर्णं व्याप्तम्, इन्द्राज्ञया तदाह्वानाय दूता अयोध्यां नागता इत्यर्थः । भूतलपरित्राणाय भूमण्डलरक्षणाय सचिवाः सुमन्त्रादयश्च न आदिष्टाः, देशान्तरं गच्छन् राजा स्वराज्यं रक्षितुं सचिवानादिशतीत्यपि न कृतमित्यर्थः । (तथापि) असौ दशरथः शोकव-शात् पुत्रवियोगजनितशोकपारवश्यात् वाहने रथादौ आस्थाम् आदरं न वहन्' वाहनं विहायैवेत्यर्थः, नाकं स्वर्गमगात् अगमत् ('आकाशेत्रिदिवे नाकः' इत्यमरः) पूर्वं त्रिदिवे शत्रुभिराक्रान्ते, देवाङ्गनासु परैरुपगृहीतासु, तदाह्वाना-

१. एतदनन्तरम् 'किं बहुना' इति क्वचित्
२. 'नाक्रान्तं त्रिदिवम्' इति पाठान्तरम् । ३. 'नादिष्टां' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

येन्द्रप्रेषितेषु दूतेष्वयोध्यां समागतेषु राज्यभारं मन्त्रिषु निक्षिप्य रथमारूढो दशरथो देवलोकं गच्छति स्म किन्तु सम्प्रति तादृङ्निमित्ताभावेऽपि पुत्रशोकात्तत्स्वर्गगतिरतिविचित्रेति भावः। विभावना। सा चोक्तनिमित्ता, शोकरूप निमित्तस्योक्तत्वात्। तल्लक्षणं यथा–'विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते। उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता'। इति। शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६० ॥

यद्यपि शत्रुओं ने स्वर्ग पर आक्रमण नहीं किया, न देवाङ्गनाएँ ही बन्दी बनायी गयीं न इन्द्र का सन्देश लेकर आये हुए दूतों से अयोध्या का प्राङ्गण ही भरा और न ही भूमण्डल की रक्षा के लिए मन्त्रियों को आदेश दिया, फिर भी राजा दशरथ शोकवश वाहन की भी उपेक्षा कर स्वर्ग को चले गये ॥ ६० ॥

अथ दशरथप्रशंसामांसलैः कैकेयीनिन्दाकन्दलितै रामगुणकीर्तन-[1]गुणितैरवरोधवधूजनपरिदेवनारवैर्मुखरितेषु दिङ्मुखेषु।

अथेति। अथ दशरथमरणानन्तरम्, दशरथप्रशंसामांसलैः दशरथस्य सत्यसन्धत्वादिपरकस्तुत्या गम्भीरैः, कैकेयीनिन्दाकन्दलितैः पापिष्ठयाऽनया रामः प्रव्राजितस्तच्छोकेन च राजा त्रिदिवं गत इति कैकेयीनिन्दया समुत्पन्नैः रामगुणकीर्तनगुणितैः रामस्य पितृभक्त्यादि गुणवर्णनेन गुणितैः वृद्धिं गतैः अवरोधवधूजन परिदेवनारवैः अन्तःपुर-स्त्रीजनविलापशब्दैः दिङ्मुखेषु दिगन्तरालेषु मुखरितेषु शब्दायमानेषु प्रतिध्वनितेषु सत्स्वित्यर्थः।

तदनन्तर दशरथ की प्रशंसा से गम्भीर, कैकेयी की निन्दा से समुत्पन्न तथा राम के गुणों से वृद्धि को प्राप्त, अन्तःपुर की रानियों के करुण विलाप से दिङ्मडल के भर जाने पर—

अभूदराजकम्लानसद्गणं गगनाङ्गणम्।
आलोक्येव तदा शान्तमशेषं च महीतलम् ॥ ६१ ॥

अभूदिति। तदा तस्मिन् काले दशरथे स्वर्गते सतीत्यर्थः। अराजकम्लानसद्गणम्–न विद्यते राजा चन्द्रो यस्य सः अराजकः, अतएवम्लानः तेजोहीनः

---

१. 'नद्धिगुणितैः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सद्गणः नक्षत्रमण्डलं यस्य तादृशम् गगनाङ्गणम् नभस्तलमालोक्य दृष्ट्वेवेत्युत्प्रेक्षा। अशेषं समग्रं महीतलम् भूमण्डलं च अराजकः दशरथरहितः अतएव-म्लानः शोकाकुलः सद्गणः सज्जनसमुदयो यस्य तत्तथोक्तं सत् शान्तं निश्चेष्टमभूत्। यथा चन्द्रेगते नभस्तलं प्रभाशून्यनक्षत्रमण्डलं भवति तथैव दशरथ-रहितं समग्रं भूमण्डलमपि शोकेन प्रभाहीनसाधुजनसमुदयं सन्निश्चेष्टमभू-दित्यर्थः। 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे' इति विश्वः। अराजकम्लान सद्गण—मित्यत्र श्लेषः। उत्प्रेक्षाश्लेषयोरङ्गाङ्गिभावेन संवलनात् सङ्करः ॥ ६१ ॥

उस समय मानों चन्द्रमा के न रहने पर निष्प्रभ नक्षत्रों से युक्त आकाश को देखकर राजा दशरथ के मर जाने पर शोकाकुल सज्जनवृन्द से युक्त सारा भूमण्डल निश्चेष्ट एवं स्तब्ध हो गया ॥ ६१ ॥

ततः प्रभाते वसिष्ठवचसा [1]सचिवास्तैलद्रोण्यां[2] निक्षिप्य क्षितिपतेस्तनुं क्षिप्रमेव भरतमकथितदशर[3]थकथा एव आनयतेति दूतान् केकयेषुप्रेषयामासुः।

तत इति। ततः दशरथमरणानन्तरम्, प्रभाते प्रातःकाले सचिवाः मन्त्रिणः वसिष्ठवचसा वसिष्ठाज्ञया क्षितिपतेः नृपस्य दशरथस्य तनुम् शवम् तैलद्रोण्याम् तैलपूरितनौकायाम् निक्षिप्य स्थापयित्वा भरतागमनपर्यन्तं शवस्योच्छूनत्वादि वैरूप्याभावार्थमिति भावः। अकथितदशरथकथाः अनिवेदित-दशरथमरणवृत्तान्ता एवं क्षिप्रं भरतमानयत मातुलगृहाच्छीघ्रमेव भरतमयोध्यां प्रापयतेत्येवमादिश्य दूतान् केकयेषु केकयदेशे प्रेषयामासुः प्रहितवन्तः।

इसके बाद प्रातःकाल वसिष्ठ की आज्ञा से मन्त्रियों ने राजा के शव को तैल से भरी नाव में रख कर दूतों को यह आदेश देकर केकय देश को भेजा कि दशरथ के समाचार को बताये विना ही भरत को बहुत शीघ्र अयोध्या ले आओ।

तेऽपि जितपवनजवनवा[4]जिसंकोचितपथास्तुरगपतिपुरे [5]दुःस्वप्नदूयमानमानसं भरतमभिवन्द्य गुरुनि[6]योगं व्यजिज्ञपन्।

---

१. 'सचिवा' इति नास्ति क्वचित्। २. नरपति निक्षिप्य क्षिप्रमेव' इति पा०।
३. रथमेव' इति पाठा०। ४. 'जवनहय' इति पाठा०।
५. 'दुःखप्रदूयमान' 'दुस्वप्नदर्शनदूय' इति। ६. 'निदेशम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तेऽपीति। ते दूता अपि, जितपवनेत्यादिः—जितपवनाः वेगातिशयित-वायवः जवानाः द्रुतगामिनश्च ये वाजिनः अश्वाः तैः संकोचितः संकोचं प्रापित इव पन्थाः दीर्घमार्गः येषां ते तथोक्ताः, तुरगपतिपुरे—तुरगपतिः अश्वपतिः कैकेयीपिता तस्य पुरे नगरे दुःस्वप्नदूयमानमानसम्—दुःस्वप्नेन अशुभसूचकस्वप्नदर्शनेन दूयमानं खिद्यमानं मानसं हृदयं यस्य तं तथोक्तं भरतम् अभिवन्द्य प्रणम्य गुरुनियोगम् गुरोः वसिष्ठस्य नियोगमादेशम् व्यजिज्ञपन् विज्ञापितवन्तः।

उन दूतों ने भी वायु से भी बढ़कर द्रुतगामी अश्वों से मार्ग की दूरी को संकुचित कर (अर्थात् लम्बे मार्ग को शीघ्र तय कर) अश्वपति के नगर में दुःस्वप्न देखने से सन्तप्त हृदय भरत को प्रणाम कर गुरु वसिष्ठ का आदेश कहा।

सोऽयं मातामहेन युधाजिता चानुज्ञातः कतिपयैरेव दिनैर[1]-निमित्तसम्पातेन सातङ्कः साकेतमाससाद।

सोऽयमिति। सोऽयं भरतः, मातामहेन मातुः पित्रा अश्वपतिना, युधाजिता मातुलेन च अनुज्ञातः गन्तुमनुमतः, कतिपयैरेव दिनैः स्वल्पैरेवाहोभिः (अपवर्गे तृतीया) अनिमित्तसंपातेन अशकुनपरम्परया सातङ्कः भयसम्भ्रान्तः सन् साकेतमयोध्यामाससाद प्राप।

वे भरत अपने नाना और मामा युधाजित से अनुज्ञा प्राप्त कर कुछ ही दिनों में बार-बार अपशकुन होने से घबड़ाये हुए अयोध्या पहुँचे।

अतिचकितमतिः पुरैव पश्यन् पुरमयथापुरचारपौरवर्गम्।

न्यविशत भरतः परीतदूतः [2]पितृभवनं पितृकाननादनूनम्॥६२॥

अतिचकितेति। अयथापुरचारपौरवर्गम्—पुराभावमनतिक्रम्येति यथापुरम् न यथापुरमि त्यथापुरम् चारः व्यवहारो यस्य तादृशः पौरवर्गः पुरवासिसमुदयो यत्र तादृशं पुरं नगरम्, पुरैव सर्वप्रथममेव पश्यन् अवलोकयन्, अतिचकित-मतिः अत्यन्तभयसम्भ्रान्तबुद्धिः, परीतदूतः—परीताः समन्तादवर्तमानाः दूता

---

१. 'अनिमित्तसम्भूतस्वान्ताङ्कः' इति पा०। २. 'पितृकाननादनूने' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यस्य स तथोक्तः, भरतः, पितृकाननात् श्मशानात् अनूनम् अन्यूनम् , आक्रन्द-युक्तत्वेनानन्दराहित्येन च श्मशानतुल्यमित्यर्थः, पितृभवनम्–पितुर्दशरथस्य भवनं गेहं न्यविशत् प्रविष्टः। ('श्मशानं स्यात् पितृवनम्' इत्यमरः)। दूतैः परिवृतो भरतः सर्वप्रथमं नगरमेवापश्यद्यत्र पुरवासिनां पूर्वव्यवहार-विलक्षणव्यवहारो दृश्यमान आसीत्, एतद्दृष्ट्वा भरतो भयसम्भ्रान्तः सन् पितुर्दशरथस्य गेहं प्रविष्टो यच्छ्मशानतुल्यं भयङ्कारं शून्यं च प्रतीयते स्मेति भावः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। तल्लक्षणं श्रुथा–'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।' इति ॥ ६२ ॥

भरत जी ने दूतों के साथ सर्व प्रथम अयोध्यापुरी के पुरजनों के व्यवहार पहिले जैसे नहीं देखे तो उनकी बुद्धि चकरा उठी। वे श्मशानतुल्य (भयावह और शून्य) दशरथ के सदन में प्रविष्ट हुए ॥ ६२ ॥

स पितरमनवेक्ष्य तत्र मातुः सदनगतः प्रणिपत्य तामपृच्छत्।
क्वनु मम गतवान्पितेति सैषा परुषतरं भरताय वाचमूचे ॥६३॥

स इति। सः भरतः, तत्र पितृभवने पितरम् जनकं दशरथम् , अनवेक्ष्य विद्यमानमदृष्ट्वा, मातुः कैकेय्याः सदनगतः सदनं भवनं गतः प्रविष्टः, ताम् मातरं कैकेयीं प्रणिपत्य प्रणम्य, मम भरतस्य पिता दशरथः क्वनु कुत्र गतवान् अगच्छत् इत्येवम् अपृच्छत् पृष्टवान्। सा भरतेन पृष्टा एषा कैकेयी भरताय भरतं प्रतीत्यर्थः, परुषतरं कठोरतरं यथा भवति तथा वाचम् वाणीम् ऊचे उक्तवती। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ६३ ॥

दशरथ के सदन में भरत जी ने जब पिता (दशरथ) को नहीं देखा तब वे माता (कैकेयी) के भवन में प्रविष्ट हुए और माता को प्रणाम कर उन्होंने पूछा कि पिता जी कहाँ गये। इस पर कैकेयी ने उन से अत्यन्त कठोरता के साथ (वक्ष्यमाण) वचन कहा ॥ ६३ ॥

वनचर इव साकं मैथिलीलक्ष्मणाभ्यां
पितृविधिमभिरोद्धुं प्रस्थितो रामभद्रः।
तदनु तव पिताऽभूत्कालधर्मानु[1]यात-
स्त्वमनुभव यथेच्छं निःसपत्नां धरित्रीम् ॥ ६४ ॥

---

१. 'अनुकूलः' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वनचर इति। रामभद्रः श्रीरामचन्द्रः, मैथिलीलक्ष्मणाभ्यां साके सह पितृविधिम् पितुरादेशम् अभिरोद्धुम् पालयितुं वनचर इव मुनिरिव धृतमुनिवेष इत्यर्थः प्रस्थितः वनंगतः। तदनु तत्पश्चात् तव भरतस्य पिता दशरथः कालधर्मानुयातः कालधर्मम् मरणमनुयातः अनुगतः मृत इत्यर्थः अभूत् ('स्यात्पञ्चता कालधर्मः' इति मृतिपर्यायेष्वमरः) त्वं भरतः निःसपत्नाम् विरोधिजनरहितां निष्कण्टकामित्यर्थः, धरित्रीं पृथिवीं राज्यमित्यर्थः यथेच्छं स्वच्छन्दं अनुभव भुङ्क्ष्व। मालिनी वृत्तम्॥ ६४॥

रामचन्द्र पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए सीता और लक्ष्मण के साथ मुनि की तरह वन चले गये। उसके बाद तुम्हारे पिता मृत्यु को प्राप्त हो गये। अब तुम निष्कण्टक राज्य का स्वच्छन्द उपभोग करो॥ ६४॥

मयूरीव महानागं केकया केकयात्मजा।
भारत्या भरतं चक्रे परिक्षुभितमानसम्॥ ६५॥

मयूरीव। केकयात्मजा कैकेयी भारत्या पूर्वोक्तवाण्या भरतम्, मयूरी केकया स्ववाण्या ('केका वाणी मयूरस्य' इत्यमरः) महानागं सर्पमिव परिक्षुभितमानसम् कम्पितहृदयम्, चक्रे अकरोत्। यथा मयूर्या वाणीमाकर्ण्य सर्पस्तद्विरोधित्वात् ततो बिभेति तथा कैकेय्या वाणीं श्रुत्वा भरतः कम्पितहृदयो बभूवेति भावः। पूर्णोपमाऽलङ्कारः॥ ६५॥

जैसे मयूरी की वाणी सुनते ही साँप काँप उठता है, उसी प्रकार कैकेयी का पूर्वोक्त वचन सुनते ही भरत का हृदय काँप उठा॥ ६५॥

तदनु भरतश्चिरतरं विलप्य विलुप्यमानविवेकः कैकेयीमकथयत्।

तदन्विति। तदनु तदनन्तरम्, भरतः चिरतरम् बहुकालपर्यन्तं विलप्य विलापं कृत्वा विलुप्यमानविवेकः विलुप्यमानः लोपं गच्छन् विवेकः कृत्याकृत्य बुद्धिर्यस्य स तथोक्तः सन् कैकेयीम् अकथयत् अवदत्।

इसके बाद बहुत समय तक विलाप कर कृत्याकृत्य-विवेक-शून्य भरत ने कैकेयी से कहा—

परिणतिपरुषाणां पाप्मनां सन्निपाता
न्न हि भवसि चतुर्णां सा त्वमस्माकमम्बा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदिह तनयवत्यः संलपिष्यन्ति कामं
श्रुतिपुटरचितार्तेस्त्वां सवित्रीमकीर्तेः ॥ ६६ ॥

परिणतिपरुषाणामिति। परिणतिपरुषाणाम् परिणामे भयङ्करफलप्रदायिनां पाप्मनां पापानां सन्निपातात् सङ्घात् त्वय्येकत्रीभूय संवासादित्यर्थः। सा तथाभूता त्वम् कैकेयी चतुर्णाम् श्रीरामादीनामस्माकम् अम्बा माता न हि भवसि न जायसे खलु, ईदृक्पापकार्यकारिणी त्वमस्माकं माता भवितुं नार्हसीत्यर्थः। तत् तस्मात् कारणात् इह अस्मिँल्लोके तनयवत्यः अन्याः पुत्रवत्यः स्त्रियः, श्रुतिपुटरचितार्तेः श्रुतिपुटयोः कर्णगोलकयोः रचिता विहिता आर्तिः पीडा यया तस्याः, कर्णोद्वेगकारिण्या इत्यर्थः, अकीर्तेः दुर्यशसः सवित्रीम् जननीं त्वां कैकेयीं काममत्यन्तं संलपिष्यन्ति। अतिदुरन्तनानाविधपापानां त्वयि सहभूय संवासात्त्वमस्माकं माता नासि तथा च लोकेऽस्मिन् पुत्रवत्यः स्त्रियस्तवेमां कर्णोद्वेगकारिणीं दुष्कीर्तिं मिथर्मुहुर्मुहुः संलपिष्यन्तीति भावः। ('अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा' इत्यमरः)। अत्र प्रकृतं कैकेय्या निजमातृत्वं प्रतिषिध्याकीर्तिमातृत्वस्य प्रकृतस्य सत्यत्वस्थापनादपह्नुतिरलङ्कारः। 'प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिरिति' तल्लक्षणात्। मालिनी वृत्तम्॥ ६६ ॥

परिणाम में दुःखदायी पाप तेरे अन्दर भरे पड़े हैं, इस लिये तू हम चारों भाइयों की माता नहीं है। संसार की पुत्रवती स्त्रियाँ (तुम्हारे इस अकृत्य के कारण) तुम्हें इस कर्णोद्वेजक अकीर्ति की जननी कहा करेंगी ॥ ६६ ॥

तदनु तन्मुखादाकृष्टदृष्टिरनुजमिदमवादीत्।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात्, तन्मुखात् द्रष्टुमयोग्यात् कैकेयीमुखात् आकृष्टदृष्टिः अपसारितनयनः, (भरतः) अनुजम् शत्रुघ्नं प्रति, इदं वक्ष्यमाणम् अवादीत् अवोचत्। ईदृगपकारकारिण्या मुखदर्शनमपि पापकरमिति जुगुप्सया भरतः कैकेयीमुखाद् दृष्टिमपसारयन् शत्रुघ्नं प्रति वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवानित्यर्थः।

इसके बाद उस (कैकेयी) के मुख की ओर से अपनी दृष्टि हटा कर भरत ने शत्रुघ्न से कहा—

[1]अविरलमिनवंशं दग्धुमाश्रित्य तापं
जनमनसि किरन्त्यां हन्त सत्यां भवत्याम्।

---
१. 'अविकलम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुसवनमपापैर्देवता पूज्यमाना
वहति कथमिदानीमाश्रयाशाभिधानम् ॥ ६७ ॥

अविरलमिति अविरलम्–समृद्धम् पुत्रपौत्रादिसम्पन्नम्, पक्षे घनम्। इन-वंशम् सूर्यकुलम्, वेणुवनं च गम्यते। दग्धुम् नाशयितुम्, पक्षे भस्मीकर्तुम्। आश्रित्य अधिष्ठाय जनानां मनसि हृदये तापम् संतापम् पक्षे औष्ण्यम्, किरन्त्याम् ददत्यां भवत्यां पूज्यमानाया मस्यां कैकेय्यां सत्यां विद्यमानायाम्, हन्तेति खेदे, अनुसवनम्--सवने यज्ञे इति अनुसवनम् (विभक्तार्थेऽव्ययीभावः) यज्ञावसर इत्यर्थः, अपापैः धार्मिकैः पूज्यमाना देवता (वह्निः) इदानीम् अस्मिन्नवसरे, आश्रयाशाभिधानम्--आश्रयम् काष्ठादिकमश्नातीति आश्रयाशः, आश्रयाश इत्याभिधानं नामधेयं कथं वहति धारयति? ('आश्रयाशो वृहद्भानु कृशानुः पावकोऽनलः' इत्यमरः)। इत पूर्वं वह्निरेव आश्रयाशपदवाच्यो भवति स्म स्वाश्रयवेणुतृणकाष्ठादिदाहकत्वात् किन्त्विदानीं कैकेयी स्वाश्रयं सूर्यवंशं दग्ध्वा लोकानां मनः सन्तप्तमकरोत्तदग्नेराश्रयाशपदवाच्यत्वमनयाऽपहृतमिति भावः। मालिनी वृत्ताम्। अत्रोपमेयस्य स्वाश्रयसूर्यवंशदाहकत्वकथनेनोपमानस्य, वह्नेराश्रयाशपदवाच्यत्वस्यनैष्फल्याभिधानात् प्रतीपालङ्कारः। 'प्रसिद्धस्योप-मानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्। निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते॥' इात तल्लक्षणात्॥ ६७॥

खेद का विषय है कि सर्वथा समृद्ध सूर्यवंश को जला कर खाक कर देने के लिए ही अपने को इस वंश से सम्बद्ध कर आज लोगों के हृदय में सन्ताप उत्पन्न करने वाली इन पूज्यमान (कैकेयी) के रहते हुए (जिन्होंने अपने आश्रय सूर्यवंश को दग्ध करने के कारण 'आश्रयाश' की संज्ञा प्राप्त कर ली) अब यज्ञ में धार्मिक यजमानों द्वारा पूज्यमान आग को ही 'आश्रयाश' क्यों कर कहा जायगा! ६७॥

अविरतक्रुषितान्तं[1] वत्समालोक्य धेनो-
रपि [2]समजशतानां मातुरस्रं बभूव।
तदिह तनयशोकं [1]सन्तरेदेकपुत्रा
कथय कथमिदानीं कोसलेन्द्रस्य पुत्री॥ ६८॥

---

१. 'तृषितार्तम्' इति पाठान्तरम्। २. 'तनुज' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविरतेति। अविरतकृषितान्तम्—अविरता अविच्छिन्ना या कृषिः कृषिकर्म क्षेत्रकर्षणरूपम्, तया तान्तं खिन्नम्, वत्सम् तर्णकम् ('वत्सो ना कुटजे वर्षे तर्णके तनयादिके' इति विश्वः) आलोक्य दृष्ट्वा समजशतानाम्—समं तुल्यं जायन्त इति समजाः पुत्रास्तेषां शतानां मातुः, बहुसंख्याकपुत्रजनन्या इत्यर्थः। धेनोः गोरपि अस्रं रुदितम् ('रोदनं चास्रमश्रु च' इत्यमरः) बभूव प्रकटीबभूव, तत् तस्मात् कारणात्, इह अस्यामवस्थायामिदानीम् एकपुत्रा एकः श्रीराम एव पुत्रो यस्याः सा कोसलेन्द्रस्य पुत्री कौसल्या तनयशोकम् पुत्रविरहजनितदुःखम् कथं केनोपायेन संतरेत् तरितुं शक्नुयादिति कथय, अति दुस्तरं पुत्रशोकं कथमपि न तरितुं शक्नोतीति भावः। बहुपुत्रवती गौरपि स्वपुत्रेष्वेकं पुत्रं अविरतक्षेत्रकर्षणेन क्लान्तं दृष्ट्वा रोदिति, तदैकपुत्रायाः कौसल्यायाः का कथेति भावः। कस्याश्चिद्गोः स्ववत्सकष्टासहत्वे कौसल्यायाः पुत्रक्लेशासहत्वस्यार्थापन्नतयाऽर्थापत्तिरलङ्कारः मालिनी वृत्तम्॥ ६८॥

सौ बछड़ों की माँ होने पर भी कोई गाय अपने एक बछड़े को निरन्तर खेत जोतते देख कर रो पड़ती है तो बताओ कि कोसलराजा की पुत्री (कौसल्या) के तो रामचन्द एकमात्र पुत्र हैं, फिर वह कैसे पुत्रविरह-जनित शोक को पार कर सकेगी॥ ६८॥

अपिबदियमसन्त्रे कालयोगान्नरेन्द्रे
वरयुगरसनाभ्यां प्राणवायुम् तदीयम्।
अपनगरममुष्या वर्तनं युक्तरूपं
पितृवनवसुमत्यां क्वापि वल्मीकवत्याम्॥ ६९॥

अपिबदिति। इयम् कैकेयी, (सर्पिणी च गम्यते) कालयोगात् कालवशात् नरेन्द्रे नृपे दशरथे विषवैद्ये च ('नरेन्द्रो वार्तिके राज्ञि विषवैद्ये च कथ्यते' इति विश्वः) अमन्त्रे मन्त्रणारहिते उपायचिन्तनविहीने विस्मृतसर्पस्तम्भनमन्त्रे च सति वरयुगरसनाभ्याम् वरयुगमेव रसने जिह्वे ताभ्याम्, तदीयम् राजसम्बन्धिनं विषवैद्यसम्बन्धिनं च प्राणवायुम् अपिवत् पीतवती। यथा कापि सर्पिणी कालवशाद्विस्मृतविषशमकमन्त्रस्य विषवैद्यस्य प्राणवायुं द्वाभ्यामपि रसनाभ्यां पिबति तथैवेयं कैकेयी कालवशादुपायचिन्तनरहितस्य राज्ञो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशरथस्य प्राणवायुं वरयुगेनाहरत्। अमुष्याः तदेवं सर्पिणीभूताया अस्या कैकेय्याः, अपनगरम् नगराद्बहिः ('अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' इत्यव्ययीभाव-समासः) वल्मीकवत्याम् वामलूरप्रचुरायाम् ('वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम्' इत्यमरः) क्वापि कुत्रापि पितृवनवसुमत्याम् श्मशानभूमौ वर्तनं स्थानम्, युक्तरूपमुचितम्। अत्र पूर्वार्द्धवाक्यार्थस्योत्तरार्द्धवाक्यार्थं प्रति हेतुत्वेन काव्यलिङ्गमलाङ्कारः। 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' इति तल्लक्षणात्। मालिनी वृत्तम् ॥ ६९ ॥

जैसे कोई विषवैद्य कालवश समय पर विषवेगशमक मन्त्र भूल गया और सर्पिणी ने उसके प्राणवायु को दोनों जीभों से पी लिया उसी प्रकार कालवश राजा दशरथ उपाय चिन्तन से रहित हो गये और इस कैकेयी ने अपने दोनों वररूप जीभों से उनके प्राण वायु को पी लिया। अतः इस (कैकेयी) को नगर के बाहर किसी बल्मीक प्रचुर श्मशान भूमि में रहना चाहिए (जहाँ साँप रहा करते हैं) ॥६९॥

एषा निकृष्टमतिरात्मगुणोचितेषु
वंशेषुसत्सु बहुधा पिशिताशनानाम्।
माकन्दशालिनि वने विषवल्लरीव
हा हन्त केकयकुले कथमाविरासीत् ॥ ७० ॥

एषेति। निकृष्टमतिः नीचबुद्धिः एषा कैकेयी आत्मगुणोचितेषु स्वदुर्गुणै-र्जन्मयोग्येषु पिशिताशनानाम् राक्षसानां बहुधा अनेकशः वंशेषु कुलेषु सत्सु विद्यमानेषु, हा हन्तेति खेदे। माकन्दशालिनि चूतवृक्षयुते वने उद्याने विष-वल्लरी विषलतेव केकयकुले कथम् केन प्रकारेण आविरासीत् जन्म अलभत। अस्या दुर्गुणाया जन्मतु कस्मिंश्चिद् राक्षसकुले समीचीनमासीदियं रसालोद्याने विषलतेव सकललोकश्लाघ्ये तादृशे केकयस्य राज्ञः कुले जन्माग्रहीदिति तु कदापि नोचितमिति भावः। उपमाऽलंकारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७० ॥

यह नीच बुद्धि (कैकेयी) अपने गुणों के योग्य अनेक राक्षस वंशों के रहते हुए भी, आम्रोद्यान में विषलता की तरह' केकय कुल में कैसे उत्पन्न हो गयी ? ॥७०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जननीतिविहीना मे जननीति स धर्मवित्।
निरयान्निरयाद्वीरो निरयादिव सानुजः ॥ ७१ ॥

जननीतिति । वीरः वीर्यशाली सः धर्मवित् धर्मज्ञः भरतः, मे मम भरतस्य जननी माता कैकेयी जननीतिविहीना लोकमर्यादारहिता इति हेतोः निरयादिव नरकादिव निरयात् निलयात् (रलयोरभेदात्) कैकेयीगृहात् ('स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम्' इत्यमरः) सानुजः सशत्रुघ्नः निरयात् निरगच्छत् । उपमानुप्रासयोः संसृष्टिः ॥ ७१ ॥

बीर धर्मज्ञ भरत 'मेरी माता लोकमर्यादारहित है' ऐसा सोचकर शत्रुघ्न सहित नरकतुल्य उसके घर से बाहर निकल आये ॥७१॥

तत्र[1] सामात्यः [2]समुपेत्य [3]पत्युश्चिताधिरोहणमभिलषन्ती कौसल्या भरतः शपथशतैर्निवार्य वसिष्ठा[4]दिष्टेन पथा दशरथाय सदा[5] यागशीलाय यायजूकाभिप्रेतं प्रेतकृत्यम[6]करोत्।

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये, भरतः सामात्यः मन्त्रिभिः सह, समुपेत्य कौसल्यासमीपम् आगत्य, पत्युः भर्तुर्दशरथस्य चिताधिरोहणम् अनुगमनम् अभिलषन्तीम् कामयमानाम् कौसल्याम् शपथशतैः अनेकशपथैः निवार्य चिताधिरोहणनिश्चयान्निवर्त्य वसिष्ठादिष्टेन वसिष्ठेन निजकुलपुरोहितेन ब्रह्मर्षिणा आदिष्टेन उपदिष्टेन पथा अन्त्येष्टिपद्धत्या सदा यागशीलाय दशरथाय यायजूकाभिप्रेतम् यायजूकः अश्वमेधादियज्ञकर्ता तस्याभिप्रेतम् तदभिमतम् प्रेतकृत्यम् दाहादिमृतसंस्कारम् अकरोत् ('इज्याशीलो यायजूकः' इत्यमरः)।

उस समय मन्त्रियों के साथ भरत ने कौशल्या के पास पहुँचकर दशरथ की चिता में उनके साथ प्रवेश करने की इच्छा रखने वाली कौशल्या को सैकड़ों शपथ द्वारा रोक कर वसिष्ठ द्वारा बतायी गयी पद्धति से सदा यज्ञपरायण दशरथ का याज्ञिकोपयुक्त दाहादिमृतकसंस्कार किया।

---

१. 'ततः' इति पाठान्तरम् । २. 'समुपेत्य' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'चितारोहणम्' इति पाठान्तरम् । ४. 'अधिष्ठितेन' इति पाठान्तरम् ।
५. 'सदा यागशीलाय' इति नास्ति क्वचित् । ६. 'प्रेतकृत्यमशेषम्' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तातं पितृवनं याते यातुं भ्रातृवनं तथा ।
भरतः प्रार्थयामास प्राञ्जलिः प्रकृतीः कृती ॥ ७२ ॥

तात इति । कृती—कृतमनेनेति कृती कृतपितृप्रेतकृत्यतया कृतकृत्यः भरतः ताते पितरि दशरथे पितृवनं श्मशानं याते गते, परलोकं गते सतीत्यर्थः । तथा—येन प्रकारेण रामोगतस्तेन प्रकारेण भ्रातृवनम् भ्रात्रा रामेणाधिष्ठितं वनम् यातुम् गन्तुं प्राञ्जलिः कृताञ्जलिः सन् प्रकृतिः प्रजाः प्रार्थयामास । पितृप्रेतकृत्यं सम्पाद्य भरतः कृताञ्जलिः सन् रामाध्युषितवनं गन्तुं प्रजां आहूतवानिति भावः ।

पिता (दशरथ) के श्मशान चले जाने पर (अर्थात् दिवंगत हो जाने पर) उनके सकल प्रेतकृत्यों को सम्पन्न कर भरत ने हाथ जोड़कर प्रजा से रामद्वारा अधिष्ठित वन को चलने की प्रार्थना की ॥७२॥

अथ[1] ताभ्यां सुमित्राकौसल्याभ्यामन्तःपुरजनेन च [2]साकमनुनीतो भरतो भवनमभजत ।

अथेति । अथानन्तरम् । अनुनीतः प्रार्थितः वसिष्ठसुमन्त्रादिभिरिति भावः । भरतः ताभ्याम् भरतेन कैकेयीमनादृत्य मातृत्वेन प्रख्यापिताभ्यां सुमित्रा कौसल्याभ्याम् अन्तःपुरजनेन अन्येन राजावरोधस्त्रीजनेन च साकं सह, भवनम् प्रसादम् अभाजत प्रविवेश ।

इसके बाद (वसिष्ठ-सुमन्त्रादि के द्वारा) प्रार्थित भरत कौसल्या सुमित्रा और अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों के साथ प्रासाद में गये ।

अथ यथाविधिविहितौर्ध्वदैहिकं गमितचतुर्दशदिवसं दिवसकरकुलहितेन[3] पुरोहितेन नगरवृद्धैः सार्धममात्याः समुपेत्य [4]मुकुटस्य भरणाय प्रार्थयामासुः ।

अथेति । अथ राजभवनगमनान्तरम्, यथाविधिविहितौर्ध्वदैहिकम्—विधिमनतिक्रम्येति यथाविधि यथाशास्त्रं विहितं कृतम् और्ध्वदैहिकम् मर-

१. 'अथ' इति नास्ति क्वचित् । २. सह 'भरतः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'हितकरैर्नगरवृद्धैः' इति पा० ।
४. 'मुकुटाभरणाय भरतं प्रार्थयामासुः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

णात्परतः कृत्यं श्राद्धम् येन तं तथोक्तम्, गमितचतुर्दशदिवसम् गमिताः नीताः चतुर्दशसंख्याका दिवसा येन तं तथोक्तं भरतम् दिवसकरकुलहितेन सूर्यकुलहितकरेण पुरोहितेन वसिष्ठेन नगरवृद्धैश्च सार्धम् सह, अमात्याः अमासह वर्त्तन्त इत्यमात्याः मन्त्रिणः ('अव्ययात्त्यप्' इति त्यप्।) समुपेत्य समीपं गत्वा, मुकुटस्य राजधार्यशिरोभूषणविशेषस्य भरणाय धारणाय प्रार्थयामासुः राज्यभारवहनाय प्रार्थनां कृतवन्तः।

इसके बाद भरत ने यथाविधि श्राद्ध क्रिया की जिसमें उनको चौदह दिन लगे। उसके बाद मन्त्रियों ने सूर्यकुल पुरोहित वसिष्ठ और नगर के बड़े-बूढ़ों के साथ भरत के पास जाकर राज्यभार वहन करने की प्रार्थना की।

ततस्तान्निर्बध्नतः सोऽयं प्रत्यवादीत्।

तत इति। ततः तदनन्तरम्, निर्बध्नतः मुकुटधारणायात्याग्रहं कुर्वतस्तान् मन्त्रिणः सोऽयंभरतः प्रत्यवादीत् वक्ष्यमाणमुत्तरमदात्।

मुकुट धारण करने के विषय में अत्यन्त अधिक आग्रह करते हुए मन्त्रियों को भरत ने उत्तर दिया—

बहुभिरिह किमुक्तैस्त्यक्तसौमित्रिवृत्ति-[1]
मुकुटमपि[2] वहेयं युष्मदाज्ञा हि पूज्या।
मम परमवकाशः पर्णशालानुकूलः
क्वचिदपि विपुलायां नास्ति चेद्दण्डकायाम्॥७२॥

बहुभिरिति। इह मुकुटधारणविषये बहुभिः बहुप्रकारैः उक्तैः वचनैः (भावे क्तः) किम्, नास्ति किमपि फलमित्यर्थः। त्यक्तसौमित्रिवृत्तिः—त्यक्ता सौमित्रेः लक्ष्मणस्य वृत्तिर्वर्तनं रामानुगमनरूपं येन सोऽहं मुकुटमपि वहेयम् धारयेयम्, हि यतः युष्मदाज्ञा भवतामादेशः पूज्या माननीया। परम् किन्तु विपुलायाम् अति विस्तृतायाम् दण्डकायाम् रामाध्युषितारण्यभूमौ मम भरतस्य पर्णशालानुकूलः पर्णशालानिर्माणापेक्षित इत्यर्थः। क्वचिदपि कस्मिन्नप्येकदेशे अवकाशः स्थानं नास्ति न भवति चेत्। लक्ष्मण इवाहं रामानुगमनं न कृतवान्, भवदाज्ञया मुकुटमपि धारयेयम्, अत्रविषये समधिकाग्रहप्रयोजनं

१. 'वृद्धि' इति पाठान्तरम्। २. 'अथ' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नास्ति। किन्त्वेतत्तदैव कर्तुं शक्नोमि यदाऽतिविस्तृतायां रामाध्युषितदण्डकारण्यभूमौ कुत्रचिदप्येकदेशे मम पर्णशालानिर्माणयोग्यं स्थानं न भविष्यतीत्यर्थः। मालिनी वृत्तम् ॥ ७३ ॥

इस विषय में आप लोगों को अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। अब मैंने लक्ष्मण की वृत्ति छोड़ दी (अर्थात् लक्ष्मण की तरह रामानुगमन नहीं किया) तो मुझे मुकुट धारण करना ही है क्योंकि आप लोगों की आज्ञा का मुझे आदर करना चाहिए किन्तु (मुझे ऐसा तभी करना चाहिए) जब विशाल दण्डकारण्य के एक कोने में पर्णशाला बनाने भर के लिए स्थान नहीं मिल पाता है ॥७३॥

इत्युक्त्वा [1]श्रीरामसेवोत्सुकमना निश्चक्राम।

इतीति। इत्यनेन प्रकारेणोक्त्वा श्रीरामसेवोत्सुकमनाः श्रीरामस्य सेवां कर्तुमुत्कण्ठितहृदयः सन् भरतो निश्चक्राम गृहान्निर्जगाम।

ऐसा कह कर राम की सेवा के लिए अत्यन्त उत्सुक हृदय भरत घर से बाहर निकल पड़े।

तत्र—

[2]अनुपधि रचयित्वा सत्पथे पांसुलत्वं
[3]सुजननयनसौख्यप्रातिकूल्यं च कृत्वा।
नरपतिगृहमध्यात्तूर्णमुद्घूर्णमाना
कुटिलगतिरुदस्थान्मन्थरा नाम वात्या ॥ ७४ ॥

तत्र, अनुपधीति। तत्र तस्मिन् भरतनिर्गमनसमये। अनुपधि अकपटं प्रकटमिति यावत्। क्रियाविशेषणमेतत्। ('कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयः' इत्यमरः) सत्पथे रामराज्याभिषेकरूपसन्मार्गे पांसुलत्वं रचयित्वा तद्विघातेन विकृत्य, पक्षे सत्पथे प्रशस्तमार्गे धूलिं विकीर्य, सुजननयनसौख्यप्रातिकूल्यं च कृत्वा—सुजनानां सतां नयनसौख्यम् रामाभिषेकदर्शनोत्सवस्तस्य प्रातिकूल्यं च कृत्वा, पक्षे लोकनेत्रसुखावलोकनविरोधं च कृत्वा, उद्घूर्णमाना वर्तुलाकारेण

---

१. 'राम' इति पाठान्तरम्। २. 'अनवधि' इति पाठान्तरम्।
३. 'भुवन' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भ्रमन्ती कुटिलगतिः वक्रगमना मन्थरा नाम वात्या वातसंहतिः नरपतिगृह-मध्यात् राजभवनाभ्यन्तरात् तूर्णं क्षिप्रम् उदस्थात् उत्थितवती निर्गतवतीत्यर्थः। वेगेनोत्थिता वात्या प्रशस्ते मार्गे प्रकटभावेन धूलिं प्रक्षिपति, लोकनयनसुखावलोकनविरोधं करोति, वर्तुलाकारेण भ्रमति वक्रगमना च भवति। तथाभूता मन्थरा नाम दास्यपि रामराज्याभिषेकरूपं सत्पथं रामं वनं गमयित्वा विकृतवती, लोकानां रामाभिषेकदर्शनसुखं विहतवती, लोकवृत्तमवगन्तुमितस्ततो भ्रमति, कुब्जत्वाद् वक्रगतिश्चेति श्लेषमूलकं रूपकमलङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ ७४ ॥

उस समय (न्याय प्राप्त राम के राज्याभिषेक विघात से) सत्पथ को विकृत कर, (रामराज्याभिषेक जन्य आनन्द के विघात से) सज्जनों के नेत्रानन्द में विघ्न डालकर, चक्कर, काटती हुई वक्रगमना मन्थरा नाम की आँधी राजभवन से वेग के साथ बाहर निकली ॥७४॥

केशहस्तं स्वहस्तेन गृहीत्वा तद्वधोद्यतम्।
कौसल्या वारयामास क्रुद्धं रामानुजानुजम् ॥ ७५ ॥

केशहस्तमिति। क्रुद्धम् मन्थरां दृष्ट्वा कुपितम्, स्वहस्तेन, केशहस्तम् मन्थरायाः कचकलापम् ('पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः) गृहीत्वा, तद्वधोद्यतम्—तस्याः मन्थराया वधे मारणे उद्यतम् उद्युक्तम्, रामानुजानुजम्—रामानुजो लक्ष्मणस्तस्य अनुजं शत्रुघ्नं कौसल्या किमनेन वराकीनिग्रहेणेति तद्वधाभिनिवेशान्निवारितवतीत्यर्थः। एतेन कौसल्याया दयादिगुणसम्पत्तिः सूचिता ॥ ७५ ॥

[राजभवन से निकली मन्थरा को देखकर] क्रुद्ध शत्रुघ्न उसका केश अपने हाथ से पकड़कर उसे मार डालने के लिये उद्यत हो गये परन्तु कौसल्या ने उन्हें (ऐसा करने से) रोक दिया ॥७५॥

तत्र[1] सान्तःपुर एव पुरान्निर्गत्य शिल्पिवर्गसमीकृतसरणिर्भरतः पुरतः[2] प्रसृतनरगजरथतुरगचरणक्षुण्णक्षोणीतलसमुत्कीर्णेन रेणुनिकुरुम्बेण जम्बालयन्नम्बरगङ्गां च सुमन्त्रभणितगुणनिवहगुहानुसरया

१. 'ततः' इति पाठान्तरम्। २. 'पुरतः' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निस्तीर्य दूरादेवाश्रम[1]द्वारे निवेशितबलभारो भरद्वाजाभिवन्दनमकरोत्।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये सान्तःपुरः—कौसल्याद्यन्तःपुरवधूजनसहित एव भरतः, पुरात् अयोध्यानगरात् निर्गत्य निष्क्रम्य शिल्पिवर्गसमीकृतसरणिः—शिल्पिवर्गेण खनकादिकारुसमुदयेन समीकृता गर्तपाषाणगुल्मादिनिरसनेन सरलीकृता सरणिर्मार्गः यस्य स तथोक्तः सन्। पुरतः अग्रे, प्रसृतेत्यादिः—प्रसृताः चलिता ये नराः मनुष्याः, गजाः हस्तिनः, रथतुरगाः रथाश्वाश्च तेषां चरणैः पादैः क्षुण्णम् मर्दितं यत् क्षोणीतलं भूतलम्, तस्मात् समुत्कीर्णेन समुत्थितेन रेणुनिकुरम्बेण धूलिपटलेन अम्बरगङ्गां जम्बालयन् पङ्किलयन् ('निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमरः) 'तत्करोति तदाचष्टे' इति जम्बालशब्दाण्णिच्। ततो लटः शत्रादेशः। सुमन्त्रभणितगुणनिवहगुहानुमत्या—सुमन्त्रेण भणितः वर्णितः गुणनिवहः सौजन्यादिगुणगणो यस्य तादृशो यो गुहो निषादराजस्तस्यानुमत्या तरणोपयुक्तस्थानं क्वेत्यापृच्छ्येत्यर्थः, गङ्गां भूतलवाहिनीं च निस्तीर्य तीर्त्वा दूरात् दूरत एव आश्रमद्वारे आश्रमस्य बहिर्देशे निवेशितबलभारः स्थापितसैन्यसमूहः सन् भरद्वाजाभिवन्दनम् भरद्वाजस्य तन्नाम्नो मुनेरभिवन्दनम् चरणवन्दनमकरोत्। सकलान्तःपुरवधूजनेन सह भरतो रामं द्रष्टुं चलितः। अग्रे चलद्भिः शिल्पिवर्गैः निम्नोन्नता सरणिः समीकृता। अग्रे गच्छद्भिर्नरगजरथाश्वादिभिश्चूर्णितायाः भूमेर्धूलिभिराकाशगङ्गायाः प्रवाहः पङ्किलतां गतः। भूतलवाहिनीं गङ्गां च गुहसंमत्या तीर्त्वा भरतः भरद्वाजाश्रममासादितवान्। आश्रमस्य बहिर्देशे सेनाः संस्थाप्य भरतो भरद्वाजस्य मुनेः पादाभिवन्दनमकरोदित्याशयः।

उस समय अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ ही भरत जी नगर से निकल पड़े। कारीगर लोग आगे-आगे उनके [ऊबड़-खाबड़] मार्ग को समतल करते जाते थे। आगे-आगे चलने वाले मनुष्यों, गजों और रथ के घोड़ों के पैरों से खोंदी गयी धरती की धूल उड़कर आकाशगङ्गा की धारा को पङ्किल बना रही थी। सुमन्त्र ने पहिले ही जिसके गुणों को बता दिया था उस गुह की सम्मति से भरत ने गंगा को पार किया और आश्रम से दूर

---

१. 'द्वारि' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बाहर ही सेनाओं को रोककर भरद्वाज मुनि के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया।

सोऽयं प्रीतमना [1]मुनिर्भरद्वाजो भरतं जननीजनमपि प्रत्येकमालोक्य [2]सेनामप्याहूय यथोचितमातिथ्यमकुरुत।

सोऽयमिति। सोऽयं मुनिर्भरद्वाजः, प्रीतमनाः भरतागमनेन प्रसन्नहृदयः सन् भरतं, जननीजनम् कौसल्यादिमातृवर्गं च प्रत्येकम् आलोक्य कृपादृष्ट्या विलोक्य सेनाम् महर्षेरमर्षोदयभिया बहिर्दूरदेशे स्थापितां सेनामपि आहूय भरतभृत्यमुखेन आश्रमाभ्यन्तरं प्रापय्य यथोचितम् यथार्हमातिथ्यम् अतिथिसत्कारम् अकुरुत कृतवान्।

[भरत के आगमन से] प्रसन्नचित्त उन भरद्वाजमुनि ने भरत तथा उनकी सभी माताओं को एक-एक करके [दयादृष्टि से] देखा तथा [बाहर दूरस्थित] सेना को भी आश्रम में बुलवाकर सब का यथोचित सत्कार किया।

तथातिथ्यं चक्रे भरतबलभाजां तनुभृतां
भरद्वाजः सोऽयं भ्रुकुटिभट[3]कल्पाखिलसुरः।
तपस्तप्त्वा घोरं दिवि सुमनसस्तत्फलभुजो
यथा तेषां तोषं क्षणमभिलषेयुर्मुनिकृतम्॥ ७६॥

तथातिथ्यमिति। भ्रुकुटिभटकल्पाखिलसुरः—भ्रूकुट्या भ्रूभङ्गमात्रेण सङ्केतमात्रेणेति यावत्। भटकल्पाः भृत्यप्राया इत्यर्थः अखिलाः सकलाः सुराः देवाः यस्य स तथोक्तः, सोऽयं भरद्वाजः भरतबलभाजाम् भरतस्य चमूचराणां तनुभृतां शरीरिणां नरगजाश्वादिसकलचमूचरप्राणिनामित्यर्थः। तथा तादृशमातिथ्यमतिथिसत्कारं चक्रे कृतवान् यथा घोरं दुष्करं तपः व्रतोपवासादि तप्त्वा कृत्वा सुमनसः देवाः सन्तः दिवि स्वर्गे तत्फलभुजः कृततपोजनित सुखरूपफलानां भोक्तारः सन्तः, तेषां चमूचराणां मुनिकृतं भरद्वाजविहितं तोषम् आनन्दं क्षणम् क्षणमात्रमभिलषेयुः कामयेरन्। भरद्वाजो मुनिश्चमूचराणां नरगजाश्वादिसकलप्राणिनां तथा सत्कारं कृतवान् यथा दुष्करं तपस्तप्त्वा देवभावमासाद्य स्वर्गे स्वतपस्याफलत्वेन प्राप्तानां सुखानां

१. 'मुनिर्भरतं तज्जननी' इति पाठान्तरम् २. 'अप्याहूय' इति पाठान्तरम्।
३. 'कल्या' (सज्या:) इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोक्तारोऽपि 'क्षणमात्रमप्येतादृशं सुखमस्माकं संभवेद्यदि कृतार्था भवेम' इति कामयेरनित्यर्थः। सर्वेऽपि चमूचराः शरीरिणो भरद्वाजमुनिकृतातिथ्येन स्वर्गसुखादप्यधिकं सुखमनुबभूवुरिति भावः। अत्र स्वर्गफलभोक्तॄणां तत्परितोषाभिलाषाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्तेरसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्। 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी' इति लक्षणात् ॥ ७६ ॥

भ्रूभङ्गमात्र [अर्थात् संकेतमात्र] से सकल सुर जिसके आज्ञापालक बन जाते हैं, उन भरद्वाज मुनि ने भरत के चमूचर पुरुष-गज-अश्व आदि सकल प्राणियों का वह आतिथ्य सत्कार किया और उससे उन अतिथियों को वह परितोष प्राप्त हुआ जिसके लिए, कठोर तप करके देवभाव को प्राप्त कर स्वर्गसुख भोगने वाले भी क्षण भर के लिए अभिलाषा करें ॥ ७६ ॥

इति [1]तद्दिनं दिनशतकल्पं तत्र नीत्वा मुनेर्निदेशेन [2]सर्वे चित्रकूट-वनोद्देशमविशन्।

इतीति। इत्यनेन प्रकारेण तद्दिनं भरद्वाजाश्रमवासदिनम् दिनशत-कल्पम् श्री राममिलनौत्सुक्येन दुर्याप्यत्वाद् दिनशततुल्यं तत्र भरद्वाजाश्रमे नीत्वा गमयित्वा मुनेर्भरद्वाजस्य निदेशेन आज्ञया सर्वे भरतादयः चित्रकूट-वनोद्देशम् चित्रकूटस्य पर्वतस्य वनप्रदेशमविशन् प्रविष्टवन्तः।

इस प्रकार भरद्वाज के आश्रम में उस दिन को सौ दिन की तरह बिता कर भरद्वाज मुनि की आज्ञा से सब लोगों ने चित्रकूट के वन प्रदेश से प्रवेश किया।

तत्र संन्यस्तसैन्यस्तत इतो गुहेन सह राममन्विष्यन् हव्यगन्धिना गन्धवहेन [3]धूमगन्धेन च दूरादेव विभाव्यमानम[4]चलमृगगणमदृश्य-रूपाभिर्वनदेवताभिरवकीर्यमाणबलिकुसुमम[5]शेषपिशिताशनपिशाचोच्चा-टनमन्त्रायमाणलक्ष्मणचापघोषश्रवणसमुचितसामीप्यप्रदेशं नूतनपरिक्-लिपतपर्णशालावास्तव्यवैखानसकुटुम्बि[6]निबिरीसभूभागमनोकहशाखा-

१. 'दैनंदिन' इति पाठान्तरम्। २. सर्वेऽपि' इति पाठान्तरम्।
३. 'होमधूमेन' इति पाठान्तरम्। ४. 'अचपलमृग' इति पाठान्तरम्।
५. 'अशेषित' इति पाठान्तरम्। ६. 'नीनिबिडित' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वलम्बमानवल्कलाजिनममर[1]तरु[2]शाखापचितैरभिनवपल्लवभङ्गशबलै-रम्बरचर[3]पतिपृतनागणकरकिसलयविमुक्तैर[4]विरलैःकुसुमनिकरैरभ्य-र्च्यमानजानकीनिवासतरुमूलवेदिकमालक्ष्यमाणखड्गकार्मुकनिषङ्गम-तिथिजनसपर्यापर्युत्सुकसौमित्रिसमाहृतकन्दमूलफलकल्पितैकदेशमवि-नाभूतजनकदुहितृचरणनलिनविन्यासमपहसित[5]साकेतरामणीयकं रामाश्रमं भरतः ससम्भ्रममभजत।

तत्रेति। तत्र चित्रकूटवनोद्देश एव संन्यस्तसैन्यः अवस्थापितसैन्यनिवहः सन् भरतः गुहेन निषादराजेन सह तत इतः यत्र तत्र रामम् अन्विष्यन् मृगयन् हव्यगन्धिना हवनीयाज्यादिद्रव्यगन्धयुतेन गन्धवहेन वायुना, धूमगन्धेन होमधूमसौरभ्येण च दूरादेव दूरदेशत एव विभाव्यमानम् अनुमीयमानम् अचलमृगगणम्—अचलाः निर्भयत्वात्सुखोपविष्टाः मृगगणाः हरिणादिपशुयूथाः यत्र तादृशम्, अदृश्यरूपाभिः अप्रकटस्वरूपाभिः वनदेव-ताभिः अवकीर्यमाणबलिकुसुमम्—अवकीर्यमाणानि निक्षिप्यमाणानि बलि-कुसुमानि पूजोपहारपुष्पाणि यत्र तादृशम्, अशेषाः सकला ये पिशिताशना राक्षसास्त एव पिशाचा भूतास्तेषामुच्चाटनमन्त्रायमाणः अपसरण प्रयोजक-मन्त्रवदाचरन् यो लक्ष्मणचापघोषः लक्ष्मणधनुष्टंकारस्तस्य श्रवणसमुचितः तच्छ्रवणयोग्यः सामीप्यप्रदेशः प्रान्तभूमिर्यस्य तम्, नूतनपरिकल्पिताः अभिनवनिर्मिता या पर्णशालास्तत्र वास्तव्या वसन्तो वैखानसकुटुम्बिनो वानप्रस्थावलम्बिनः परिवारास्तैर्निबिरीसो निबिडो भूभागो यस्य तम्, अनोकहानां वृक्षाणां शाखासु अवलम्बमानानि वल्कलानि चीरवसनानि अजिनानि मृगचर्माणि च यत्र तादृशम्, अमरतरोः कल्पवृक्षस्य शाखाभ्योऽप-चितैर्लूनैः अभिनवपल्लवभङ्गशबलैः प्रत्यग्रकिसलयशकलमिश्रणकर्बुरवर्णैः ('चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इत्यमरः) अम्बरचरपतेः—अम्बर-चरा आकाशचारिणो ये सिद्धगन्धर्वादय स्तेषां पतिरीश्वर इन्द्रस्तस्य पृतना-

१. 'अमुं तरु' इति पाठान्तरम्। २. 'शाखारचितैः अम्बर' इति पाठान्तरम्।
३. 'सेना' इति पाठान्तरम्। ४ 'इव नवपल्लवभङ्गशबलैः' इति पाठान्तरम्।
५. 'साकेतम्' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गणः सैन्यसमुदयस्तस्य करकिसलयविमुक्तैः पाणिपल्लवविकीर्णैः अविरलैः सान्द्रैः कुसुमनिकरैः पुष्पराशिभिः अभ्यर्च्यमाना पूज्यमाना जानकीनिवास-तरुमूलवेदिका सीतानिवासवृक्षाधोदेशवेदी यत्र तादृशम्, आलक्ष्यमाणो दृश्यमानः खड्गः कार्मुकं धनुर्निषङ्गस्तूणीरं च यत्र तादृशम्, अतिथि जनानामागन्तुकानां सपर्यायामातिथ्ये पर्युत्सुकेनोत्कण्ठितेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन समाहृतैरानीतैः कन्दमूलफलैः कल्पितः पूर्णः एकदेशो यस्य तथाविधम्, अविनाभूता निरन्तरविद्यमानाः जनकदुहितृचरणनलिनविन्यासाः—सीता-चरणकमलमुद्राः यत्र तथोक्तम्, अपहसितसाकेतरामणीयकम्—अपहसितं तिरस्कृतं साकेतरामणीयकम् अयोध्यापुरसौन्दर्यं येन तं तथोक्तम्, रामाश्रमम् श्रीरामनिवासस्थानम्, ससंभ्रमम् सत्वरम् अभजत आसादितवान्। 'निबिडं निबिरीसं च' इत्यमरः। अतिशयोक्तिरलङ्कारः।

चित्रकूट वन में सेना को एक जगह ठहरा कर भरत निषादराज गुह के साथ रामको इधर-उधर ढूँढते हुए हव्य वस्तुओं की गन्ध से युक्त वायु तथा होमधूम की गन्ध से अनुमित होने वाले, निःशङ्कभाव से बैठे हुए मृगों से युक्त राम के आश्रम पर शीघ्रता से पहुँच गये। जहाँ अदृश्यरूप वनदेवताओं द्वारा पूजोपहारस्वरूप सुमन विकीर्ण किये गये थे, समस्त राक्षसरूप पिशाचों के उच्चाटनमन्त्रसदृश लक्ष्मण के धनुर्घोष से जिसकी समीपस्थता का पता चल रहा था, जिसका भूभाग नयी-नयी बनी पर्णशालाओं में निवास करने वाले वानप्रस्थावलम्बी परिवार से व्याप्त था, जहाँ वृक्षों की शाखाओं में वल्कल और मृगचर्म लटके हुए थे, सीता के निवास स्थानभूत वृक्ष के नीचे की वेदी इन्द्र के सैनिकों के हाथ से अर्पित किये गये कल्पवृक्ष की डालों से चुने हुए नूतनकिसलय युक्त पुष्पों से पूजित की गयी थी, तलवार, धनुष और तरकस रखे हुए दिखायी दे रहे थे, जिसके एक कोने में अतिथियों के सत्कार के लिए समुत्सुक लक्ष्मण के द्वारा लाये गये कन्द-मूल-फल आदि रक्खे हुए थे, जो सीता के चरणकमल के चिह्नों से व्याप्त था और अयोध्या पुर की शोभा को मात कर रहा था।

अथावासं शान्तेरकृत सुकृतानामसुलभं
नवाम्भोदश्यामं नलिननयनं वल्कलधरम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जटाजूटापीडं भुजगपतिभोगोपमभुजं
दद‍र्श श्रीमन्तं विपिनभुवि सीतासहचरम् ॥७७॥

अथावासमिति। अथ आश्रमप्राप्त्यनन्तरम्, (भरतः) शान्तेः शमस्य आवासम् आश्रयस्थानम्, परमशान्तमित्यर्थः। अकृतसुकृतानाम्—न कृतं सुकृतं सत्कर्म यैस्तादृशानां जनानामसुलभम् दुष्प्रापम्, नवाम्भोदश्यामम् नूतनजलधर इव श्यामः श्यामवर्णस्तम्, नलिननयनम् कमलनेत्रम्, वल्कलधरम् वल्कलधारिणम्, जटाजूटापीडम्—जटाजूट एव आपीडः शेखरोः यस्य तम् ('शिखास्वापीडशेखरौ' इत्यमरः)। भुजगपतिभोगोपमभुजम्-भुजगपतेः शेषस्य भोगः कायः स उपमा ययोस्तौ भुजौ यस्य तम् वृत्तायत-पीवरबाहुमित्यर्थः. श्रीमन्तम् नित्यशोभासम्पन्नम्, सीतासहचरम् जानकी-नाथं श्रीरामं विपिनभुवि काननभूमौ ददर्श दृष्टवान्। शिखरिणी वृत्तम्।

इसके बाद भरत ने शान्तिनिकेतन, पापियों के लिए दुर्लभ, नूतनघन के समान श्याम, कमलनयन, वल्कलधारी, सिर पर जटाजूट बाँधे, शेषनाग के शरीर के समान वृत्ताकार, लम्बी एवं मांसल] भुजाओं वाले श्रीमान जानकी समेत राम को देखा ॥ ७७ ॥

ततस्तस्योपान्ते जनकयजनाधीनजननां
ववन्दे वैदेहीं रजनिकररेखामिव नवाम्।
अरण्यानां पुण्यात्पदकमलमुद्रापरिचया-
दयोध्यासध्रीचीमविकलमवस्थां विदधतीम् ॥७८॥

तत इति। ततः श्रीरामदर्शनानन्तरम्। तस्य श्रीरामस्योपान्ते पार्श्वदेशे वामभाग इत्यर्थः। नवाम् नूतनां रजनिकररेखामिव चन्द्रकलामिव, जनक-यजनाधीनजननाम्—जनकस्य राज्ञो यजनाधीनं यज्ञायत्तं जननं जन्म यस्यास्ताम्, जनककृतयज्ञसमुद्भूताम्, ('अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः)। पुण्यात् पवित्रात् पदकमलमुद्रापरिचयात् स्वचरणकमलविन्यासाद्धेतोः, अरण्यानाम्, वनानाम्, अविकलम् समग्रभावेन अयोध्यासध्रीचीम् अयोध्या-सदृशीमित्यर्थः (अतएवोपमालंकारः) अवस्थां दशां शोभामिति यावत्। विदधतीं कुर्वतीम्, वैदेहीं सीताम्, ववन्दे नमश्चकार। नवां रजनिकररे-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खामिवेत्यत्रोत्प्रेक्षा, रजनिकररेखाया भूलोकगतत्वाप्रसिद्धेरुपमाया नावकाशः। अयोध्यासध्रीचीमित्यत्रोपमा। द्वयोः संसृष्टिः। शिखरिणी वृत्तम्॥ ७८॥

तदनन्तर भरत ने राम के समीप नूतन चन्द्रकला-सी स्थित, जनक के यज्ञ से उत्पन्न, अपने पवित्र चरणकमल के विन्यास से वन को अयोध्या की सी शोभा प्रदान करती हुई सीता को प्रणाम किया॥ ७८॥

स्वतःसिद्धं यस्मिन्नितरदुरवापं विजयते
सुमित्रापुत्रत्वादपि जगति रामानुजपदम्।
यदीयाक्षिद्वन्द्वप्रतिनिधि भवेदम्बुजयुगं
निशीथे निर्निद्रं यदि तमपि साक्षादकृत सः॥७९॥

स्वतः सिद्धमिति। यस्मिन् लक्ष्मणे इतरदुरवापम् भ्रात्रन्तर दुर्लभम्, भिन्नगर्भतयाऽनुजपदाधिकारित्वाभावादिति भावः। सुमित्रापुत्रत्वादपि—सुमित्राजातत्वे सत्यपि रामानुजपदम् रामानुजशब्दवाच्यत्वम्, स्वतःसिद्धम् अकृत्रिमम्, रामचरणसेवापरायणत्वादिति भावः, जगति संसारे विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्तते। तथा यदि अम्बुजयुगम् कमलपुष्पद्वयम्, निशीथे अर्धरात्रे निर्निद्रं विकसितं भवेत्, (तदा) यदीयाक्षिद्वन्द्वप्रतिनिधि यस्य लक्ष्मणस्य अक्षिद्वन्द्वम् नेत्रयुगलं तस्य प्रतिनिधि उपमानं भवेत्, तं लक्ष्मणमपि सः भरतः साक्षादकृत दृष्टवान्। यो लक्ष्मणः सुमित्रागर्भसम्भूतत्वेऽपि रामचरणसेवापरायणत्वाद् वैमात्रभ्रात्रन्तर-दुष्प्रापं रामानुजशब्दवाच्यत्वं लोकेऽस्मिन्नकृत्रिमभावेन प्रसिद्धं कुर्वन्नास्ते यस्य च लक्ष्मणस्य नयनसादृश्यं निशीथे विकसितमेव कमलद्वयमात्मर्हति तं लक्ष्मणमपि भरतो ददर्शेत्याशयः। अत्र कमलानां निशासु विकासासम्बन्धेऽपि तत्संभावनया सम्बन्धकथनादतिशयोक्तिः। शिखरिणी वृत्तम्॥ ७९॥

जिस लक्ष्मण में [अकृत्रिमभाव से राम के चरणों की सेवा में रत रहने के कारण] अन्य भाइयों के लिए दुर्लभ, सुमित्रा का पुत्र होने पर भी रामानुजपद स्वतःसिद्ध होकर जगत् में प्रख्यात हो रहा है और यदि कमल आधी रात को विकसित हो तभी जिनके नेत्रों की उपमा प्राप्त कर सकता है ऐसे लक्ष्मण को भी भरत ने देखा॥ ७९॥

तदनन्तरं मरुपथे पृथुतरग्रीष्मोष्मणि दैवात्कृतोपलम्भमम्भोरुह-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तटाकं सुधा[1]सारपूरितापं भूरितापः सतृष्ण इव कृष्णसारः [2]सरभसं समुपेत्य[3] पादयोर्निपत्य चिरं रुदन्दशरथकथां[4] कथयित्वा मैथिलीसहिताय सलक्ष्मणाय रामाय शोकमूर्च्छां प्रायच्छत् ।

तदनन्तरमिति । तदनन्तरम् लक्ष्मणस्यापि दर्शनात् परतः । पृथुतरग्रीष्मोष्मणिपृथुतरः अत्यन्तबहुलः ग्रीष्मोष्मा ग्रीष्मर्तुकृतसन्तापो यस्मिंस्तादृशे मरुपथे ऊषरदेशस्थमार्गे दैवात् भाग्यवशात् ('दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यम्' इत्यमरः) कृतोपलम्भम् प्राप्तमित्यर्थः, सुधासारपूरितापम् सुधासारपूरिताः अमृतसारपूर्णाः अमृतमिव शीतलाः आस्वाद्याश्च आपो जलानि यस्मिंस्तादृशम् अम्भोरुहतटाकम् कमलसरोविशेषम् भूरितापः बहुलसन्तापः (अतएव) सतृष्णः पिपासाकुलः कृष्णसारः मृगविशेष इव भरतः सरभसम् सवेगं ('रभसोवेगहर्षयोः' इत्यमरः) रामं समुपेत्य सामासाद्य पादयोर्निपत्य चिरं बहुकालपर्यन्तं रुदन् रोदनं कुर्वन् दशरथकथाम् दशरथमरणवृत्तान्तं कथयित्वा मैथिलीसहिताय सीतायुताय सलक्ष्मणाय रामाय शोकमूर्च्छाम् शोककृतमूर्च्छां प्रायच्छत् प्रदत्तवान् । भरतमुखात् पितृमरणवृत्तान्तं श्रुत्वा सीतारामलक्ष्मणा मूर्च्छिता बभूवुरित्यर्थः ।

इसके बाद ग्रीष्म के अत्यधिक सन्ताप से तप्त मरुस्थल मार्ग में भाग्यवश प्राप्त अमृतोपम जल से परिपूर्ण कमलसरोवर के पास जैसे अधिक सन्तप्त प्यासा मृग जल्दी से दौड़कर जाता है उसी तरह भरत राम के पास गये । उनके चरणों में गिरकर बड़ी देर तक रोते रहे, फिर उन्होंने दशरथ के मरने का समाचार कह कर सीता लक्ष्मण समेत राम को मूर्च्छित कर दिया ।

[6]वेलोल्लंघनमेतेषां शोकोदन्वति तन्वति ।
अगस्त्यायितमेतस्मिन्वसिष्ठेनात्मवेदिना ॥८०॥

वेलोल्लङ्घनमिति । एतेषां श्रीरामादीनाम् एतस्मिन् पूर्वोक्ते शोकोदन्वति शोकसागरे, वेलोल्लङ्घनम् मर्यादातिक्रमणं तन्वति कुर्वति सति, आत्मवेदिना

१. 'धारा' इति पाठान्तरम् । २. 'सरभसमुपेत्य' इति पाठा० ।
३. 'निपत्य पादयोश्चिरतरं इति पाठा० । ४. 'कथामपि' इति पाठा० ।
६. एतत्पूर्वं 'जननीजनोऽपि तत्र निपत्य सुचिरमरोदीत्' इति क्वचिद् दृश्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आत्मतत्त्वज्ञेन वसिष्ठेन महर्षिणा अगस्त्यायितम् अगस्त्येनेवाचरितम् । अगस्त्यः समुद्रमिव वसिष्ठो रामादीनां शोकं संसारानित्यतामुपपाद्य नियन्त्रितमकरोदिति भावः ॥ ८० ॥

इन (सीताराम लक्ष्मण) का शोकसिन्धु बढ़कर जब मर्यादा का उल्लंघन करने लगा तब आत्मतत्ववेत्ता वसिष्ठ ने अगस्त्य का काम किया। (जैसे अगस्त्य ने बढ़ते हुए समुद्र को पीकर उसे मर्यादा-बद्ध किया था उसी तरह वसिष्ठ ने उन्हें आत्मतत्व का उपदेश देकर उनके शोक को नियन्त्रित किया) ॥ ८० ॥

ततः[१]प्रतिपद्य संज्ञामनुज्ञया गुरोरमरसरिति विरचितसमुचितनिवापकृत्यं प्रणिपत्य [२]रामं प्रतिनिवर्तयितुं भरतः [३]प्रावर्तत ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम् । संज्ञाम् चेतनां प्रतिपद्य प्राप्य ('संज्ञा नामनि गायत्र्यां चेतनायां रविस्त्रियाम्' इति विश्वः)। गुरोः वशिष्ठस्य अनुज्ञया आदेशेन अमरसरिति देवनद्यां गङ्गायाम् विरचितसमुचितनिवापकृत्यम् विरचितं कृतं समुचितं विधिवत् निवापकृत्यम् पितृतर्पणानुष्ठानं येन तं तथोक्तं रामं प्रणिपत्य नमस्कृत्य भरतः प्रतिनिवर्तयितुम् वनादयोध्यां परावर्त्तयितुम् प्रावर्तत । श्रीरामं परावर्तनाय प्रार्थयितुमारब्धवानित्यर्थः ।

इसके बाद चेतना प्राप्त कर राम जब गंगा तट पर समुचित पितृश्राद्ध सम्पन्न कर चुके तब भरत ने उनके चरणों पर गिर कर (वन से अयोध्या को) वापस लौटने के लिए उनसे प्रार्थना की ।

विकर्त्तनकुलस्य यदनुकूलं गुणगणस्य यदनुगुणं यशोरूपस्य यदनुरूपं समाचारस्य यत्समुचितं प्राचीनभाग्यस्य यद्योग्यं लोक[५]गर्हणाय यदनर्हं श्रुतस्य वा यत्सदृशं तादृशमाशयं प्रकाशयन्ती भरतोपज्ञा विज्ञापना ।

विकर्तनकुलस्येति । विकर्तनकुलस्य सूर्यकुलस्य यत् अनुकूलं योग्यम्, गुणगणस्य विद्याविनयादिगुणगणस्य यत् अनुगुणम्, यशोरूपस्य प्रशस्तयशसः

---

२. 'प्रपद्य' इति पाठा० । ३. 'राममसकृत्प्रवर्तयितुम्' इति पाठा० ।
४. 'प्रार्थयत्' इति पाठा० । ५. 'गर्हणीयाय' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

('प्रशंसायां रूपप्' इति रूपप् प्रत्ययः) यत् अनुरूपम् योग्यम्, समाचारस्य समुचिताचारस्य यत् समुचितम् युक्तम्, प्राचीनभाग्यस्य पुरातनपुण्यस्य यत् योग्यम् उचितम्, लोकगर्हणाय लोकनिन्दायै यत् अनर्हम् अयोग्यम्, लोकैरनिन्द्यमिति यावत्। श्रुतस्य शास्त्रस्य वा यत् सदृशम् अविरुद्धम् ('श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' इत्यमरः) तादृशमाशयमभिप्रायं प्रकाशयन्ती प्रकटयन्ती ('आशयः स्यादभिप्राये मानसाधारयोरपि' इति विश्वः) विज्ञापना प्रार्थना, भरतोपज्ञा–उपज्ञायत इत्युपज्ञा, भरतस्योपज्ञेति भरतोपज्ञा, भरतेनैवादौ ज्ञातेत्यर्थः। 'आतश्चोपसर्गे' इत्यङ्प्रत्ययः। कर्तरि षष्ठी। षष्ठीतत्पुरुषसमासे कृते 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्यचिख्यासायाम्' इति नपुंसकत्वेऽपि विधेयप्राधान्यात् स्त्रीलिङ्गता। ('उपज्ञोपक्रमाणां च तदादित्वप्रकाशनम्' इत्यमरः।')

भरत ने जो प्रार्थना की उसकी शैली भरत की अपनी थी, वे ही ऐसी प्रार्थना जानते थे। उनकी प्रार्थना ठीक सूर्यकुल के अनुकूल, भरत के गुणों के समान ही वैशिष्ट्यपूर्ण उनके प्रशस्त यश के अनुरूप, सदाचारोचित, पुरातन पुण्य के योग्य, लोकनिन्दा के अयोग्य और शास्त्रानुकूल अभिप्राय प्रकट कर रही थी।

तत्क्षणं क्षणप्रभाभङ्गुरलक्ष्मीसमावेशलक्ष्मणि क्षोणीपतिशतधृतोज्झिते मुकुटे विघटिताशं[1] सादरं प्रणिपत्य मां पादुकाभ्यां परिष्कुरुतं युवामिति रघुवरचरणौ[2] स्वयमेव प्रार्थ्य[3] प्रतिश्रावयितुं स्थण्डिलशायि[4]चरणमिव बभार भरतस्योत्तमाङ्गम्।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम्, तत्कालम् क्षणप्रभा विद्युत् सेव भङ्गुरा विनाशशीला चञ्चलतरेत्यर्थः, या लक्ष्मीः राज्यलक्ष्मीः, तस्याः समावेशः प्राप्तिस्तस्य लक्ष्मणि चिह्नभूते, क्षोणीपतीनां राज्ञां शतैः पूर्वं धृते स्वशिरःसु स्थापिते, पश्चादुज्झिते त्यक्ते (एतादृशे हेये) मुकुटे राजशिरोभूषणे विघटिताशम् विघटिता त्यक्ता आशा स्पृहा येन यत्तथोक्तम्, भरतस्य उत्तमाङ्गम् शिरः (कर्तृ) सादरं प्रणिपत्य श्रीरामचरणयोः प्रणिपातं कृत्वा, युवां श्रीरामचरणौ पादुकाभ्यां स्वधार्याभ्यां मां भरतोत्तमाङ्गं परिष्कुरुतमलङ्कुरुतम्, न हि मे

१. 'रामं प्रणिपत्य सादरम्' इति पाठा०। २. चरणद्वयम्' इति पाठा०।
३. 'परिचरितुम्' इति पाठा०। ४. 'चरितम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुकुटालङ्कारेण प्रयोजनं युवयोः सतोरिति भावः। इत्येवं प्रकारेण रघुवरचरणौ (कर्मणी) स्वयमेव आत्मनैव प्रार्थ्यं निवेद्य प्रतिश्रावयितुं स्वप्रार्थनां स्वीकारयितुम् स्थण्डिलशायिचरणमिव स्थण्डिले भूतले शेत इति स्थण्डिलशायी तस्य चरणमाचरणमिव बभार दधार। यथा कश्चिद्व्रती स्वेष्टदेवाराधनं कुर्वन् तदनुग्रहपर्यन्तं भूमौ शेते तथैव भरतशिरोऽपि श्रीरामचरणयोः पुरतः पादुका प्रदानरूपप्रसादपर्यन्तं भूमौ निपतितमतिष्ठदित्याशयः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

जो केवल विद्युत की भाँति अस्थिर राजलक्ष्मी की प्राप्ति का सूचक चिह्न मात्र है तथा सैकड़ों राजा जिसे धारण कर चुके और फिर छोड़ चुके हैं, ऐसे (हेय) राजमुकुट के लिए स्पृहा न रखने वाला भरत का सिर तत्काल सादर राम के चरणों में झुक गया और 'आप दोनों अपनी पादुकाओं से मुझे अलंकृत करें'—ऐसी प्रार्थना स्वयं करके, उसे उन चरणों से स्वीकृत कराने के लिए मानों भरत के सिर ने स्थण्डिलशायी के आचरण को धारण कर लिया (अर्थात् जब तक उसे पादुका उनसे मिल नहीं गयी तबतक वह भूतल पर ही पड़ा रहा)।

[1]त्वया मया च [2]कर्तव्यः सत्यवाचः [3]पितुर्विधिः।
इति प्रत्यादिशद्रामो भारतीमपि भारतीम् ॥८१॥

त्वयेति। सत्यवाचः सत्या वाक् यस्य तादृशस्य सत्यप्रतिज्ञस्य पितुः दशरथस्य विधिरादेशः 'त्वया पृथिवी पालनीया मया च मुनिवृत्त्या वने वस्तव्यमितिरूपः,' त्वया भरतेन मया रामेण च कर्तव्यः अवश्यं पालनीयः। इत्येवमुक्त्वा रामः भारतीम् भरतस्येयं भारती तां भरतसम्बन्धिनीमपि भारतीं वाचं प्रत्यादिशत् प्रत्याख्यातवान्, न स्वीकृतवानित्यर्थः। अपि शब्देन भरतप्रार्थनाया अप्रत्याख्येयत्वं, रामस्य सत्यसन्धत्वं च सूचितम् ॥ ८१ ॥

सत्यवादी पिता का आदेश तुम्हें और मुझे दोनों को ही पालन करना चाहिए, इस प्रकार कह कर राम ने भरत की भी प्रार्थना को अस्वीकृत कर दिया ॥ ८१ ॥

[4]तत्र जाबालिप्रार्थनायामपि व्यर्थायाम्।

---

१. एतत्पूर्वम् 'तथाहि' इति क्वचित्। २. कर्तव्यम्' इति पाठा०।
३. 'पितुर्वचः' इति पाठा०। ४. 'तत्र' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्रेति । तत्र तस्मिन् विषये, भरतप्रार्थनानङ्गीकारानन्तरं जाबालि-प्रार्थनायामपि जाबालेर्महर्षेः प्रार्थनायामपि व्यर्थायाम् निष्फलायां सत्याम् ।

इसी विषय में महर्षि जाबालि की प्रार्थना भी अस्वीकृत हो गयी तब—

भरतस्तदनु प्रार्थ्य लेभे लाभविदां वरः ।

काकुत्स्थपादुकाकारं [1]महार्घं मुकुटद्वयम् ॥८२॥

भरत इति । तदनु तत्पश्चात् लाभविदां वरः अधिकाधिकलाभविधिज्ञानां श्रेष्ठः, भरतः प्रार्थ्य प्रार्थनां कृत्वा काकुत्स्थपादुकाकारम् श्रीरामपादुकारूपं महार्घम् बहुमूल्यं मुकुटद्वयं लेभे प्राप । ज्येष्ठे भ्रातरि परित्यक्तराज्ये सति कनिष्ठस्य राज्यग्रहणमनुचितमिति ज्येष्ठस्य भ्रातुः पादुकाद्वयं प्रार्थ्य तदेव महार्घं मुकुटद्वयं मत्वा भरतो राज्यासने तदेव संस्थाप्य राज्यं पालयितुं शिरसा दधारेत्याशयः । अत्र लाभविद्वरपदार्थस्य मुकुटद्वयप्राप्तिपदार्थहेतुत्वात्काव्य-लिङ्गमलङ्कारः ॥ ८२ ॥

इसके बाद लाभ समझने वालों में श्रेष्ठ भरत जी ने प्रार्थना करके श्रीराम की पादुका रूप दो अमूल्य मुकुट प्राप्त कर लिये ॥ ८२ ॥

स एष सानुजः प्रायादयोध्यां भ्रातृशासनात् ।

अटवीं पितृसंदेशाद्ययौ रामः सलक्ष्मणः ॥८३॥

स एष इति । सानुजः शत्रुघ्नसहितः स एष भरतः भ्रातृशासनात् भ्रातुः रामस्य शासनात् आदेशात् अयोध्यां प्रायात् अगच्छत् तथा सलक्ष्मणः लक्ष्मण-सहितः रामः पितृसंदेशात् पितुर्दशरथस्य संदेशात् वचनात् अटवीं दण्डकारण्यं ययौ जगाम । भरतो भ्रात्राज्ञां पित्राज्ञापेक्षयापि गरीयसीं मत्वा तदनुपाल-नपरो बभूव, रामश्च पित्राज्ञापरिपालनपरायणो जात इत्याशयः ॥ ८३ ॥

भरत भ्राता राम की आज्ञा मान कर शत्रुघ्न सहित अयोध्या वापस आ गये और रामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित, पिता के आदेश से वन को चले गये ॥ ८३ ॥

विलङ्घ्य विविधान्देशान्भरतो धृतवल्कलः ।

विषयं [2]स्वमुपाश्रित्य विषये विमुखोऽभवत ॥८४॥

विलङ्घ्येति । भरतो धृतवल्कलः सन् , रामस्य धृतवल्कलत्वादिति भावः ।

---

१. 'महर्घम्' इति पाठा० ।   २. 'समुपाश्रित्य' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विविधान् देशान् विलङ्घ्य अतिक्रम्य स्वं विषयं कोसलदेशमुपाश्रित्य प्राप्य विषये राजोचिते भोगे विमुखो निःस्पृहोऽभवत्, श्रीरामवदेव सकलविषयपराङ्मुखो जात इत्यर्थः ॥ ८४ ॥

[ज्येष्ठ भ्राता के वल्कलधारी होने के कारण] भरत जी ने (भी) वल्कल धारण कर लिया और विविध देशों को पार कर अपने देश अयोध्या में आकर [रामचन्द्र से परित्यक्त होने के कारण] वे भी सकलभोग्य विषयों से पराङ्मुख हो गये ॥ ८४ ॥

ततश्चायं यावदार्यस्य प्रत्यागमनं तावदयोध्यां नाध्यासे । तस्मिन्नवधिमतिक्रम्य[1] चिरायति सद्य एवाश्रयाशमाश्रित्यापि[2] प्राणान्नन्दयिष्यामीति नन्दिग्रामसंज्ञमाश्रममशिश्रयत् ।

ततश्चायमिति । ततस्तदनन्तरं च अयं भरतः, यावत् आर्यस्य श्रीरामस्य प्रत्यागमनं तावत् [अहं भरतः] अयोध्यां न अध्यासे नाधितिष्ठामि । (अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम्) । रामे वनमधिवसति सति मन्नगरनिवासस्यानौचित्यादिति भावः । तस्मिन् श्रीरामे अवधिम् चतुर्दशवर्षात्मकं नियतं कालमतिक्रम्य व्यतियाप्य चिरायति विलम्बमाने सति सद्यः तत्क्षणमेव आश्रयाशम् आश्रयं तृणकाष्ठादिकमश्नातीत्याश्रयाशोऽनलस्तमाश्रित्य प्रविश्यापि प्राणान् नन्दयिष्यामि सन्तोषयिष्यामि, व्यतीतेऽप्यवधौ रामेऽनागच्छति मरणमेव भ्रातृविरहासहस्य मम शरणमिति भावः । इति एवं निश्चित्य नन्दिग्रामसंज्ञं नन्दिग्रामनामानम् आश्रमम् आवासस्थानम् अशिश्रयत् आश्रितवान् । श्रीरामचन्द्रपादुकाद्वयस्य राज्याभिषेकं कृत्वा तदधीनतया राज्यं रक्षन्नतिष्ठत्तत्रेत्याशयः ।

इसके बाद 'जब तक आर्य (राम) का लौटना नहीं होगा तब तक अयोध्या में नहीं रहूँगा और अवधि बीत जाने पर भी यदि वे विलम्ब करेंगे तो अग्नि में प्रविष्ट होकर भी प्राणों को (श्रीरामविरहानल के सन्ताप से मुक्त कर) आनन्दित करूँगा'—ऐसा निश्चय कर भरत ने नन्दिग्राम को अपना आवासस्थान बनाया ।

---

१. 'चिरायतीत्यस्याग्रे 'यदि' क्वचिदुपलभ्यते ।

२. 'प्राणानपि निन्दिष्यामीति' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दाशरथिरपि शमधनजनकथितनिशिचरगण[1]रचितकदनपरिहरणाय गहनजठरमवजगाहे ।

दाशरथिरिति । दाशरथिः श्रीरामचन्द्रोऽपि शमधनजनैर्महर्षिभिः कथितं निवेदितं निशिचरगणरचितं राक्षसवृन्दकृतं यत्कदनं पापमाश्रमोपप्लवरूपं तस्य परिहरणाय निराकरणाय राक्षसानां संहारेण मुनीनां भयं दूरीकर्तुमित्यर्थः गहनजठरम् गहनस्यारण्यस्य जठरम् उदरमन्तरालमित्यर्थः अवजगाहे प्रविवेश ।

श्रीरामचन्द्र ने भी मुनियों द्वारा निवेदित राक्षसों द्वारा किये जाते हुए उपद्रव को दूर करने के लिए वन के भीतरी भाग में प्रवेश किया ।

विस्तीर्णाक्षैर्विपिनहरिणैर्वीतभीतिप्ररोहै-
दर्भग्रासेऽप्यकृतरुचिभिः सस्पृहं वीक्ष्यमाणः ।
रामः प्राप्य प्रकृतिमहितं स्थानमत्रेर्महर्षे-
र्जग्राहास्य प्रमुदितधियः प्रेमपर्यां सपर्याम् ॥८५॥

विस्तीर्णाक्षैरिति । वीतभीतिप्ररोहैः—वीतः अपगतः भीतिप्ररोहः भयाविर्भावो येषां तैः, स्वभावसौम्यानां रामादीनां दर्शनादीषदपि न बिभ्यद्भिरित्यर्थः । विस्तीर्णाक्षैः—विस्तीर्णानि अकुतोभयत्वेन भूयोभूयोऽलौकिकसौन्दर्यं द्रष्टुं विस्फारितानि अक्षीणि नेत्राणि येषां तैः दर्भग्रासेऽपि दर्भाणां कुशानां ग्रासे कवलेऽपि अकृतरुचिभिरकृतादरैः, रामादिदर्शने नितान्तासक्तचित्ततया मुखगृहीतदर्भग्रासनिगरणमपि विस्मरद्भिरित्यर्थः विपिनहरिणैः वनमृगैः सस्पृहं साभिलाषं यथा तथा वीक्ष्यमाणोऽलोक्यमानः रामः, प्रकृतिमहितम् प्रकृत्या स्वभावेन महितं पूजनीयम् अत्रेः अत्रिनाम्नो महर्षेः स्थानं प्राप्य आसाद्य. प्रमुदितधियः प्रसन्नमनसः रामागमनादिति भावः । अस्य अत्रेर्महर्षेः, प्रेमपर्याम् प्रीतिपूर्विकां सपर्याम् पूजामातिथ्यं जग्राह स्वीकृतवान् । ('पूजा नमस्यापचितिः सपर्याचार्हणाः समाः' इत्यमरः) ॥ ८५ ॥

भय के लेश से भी रहित तथा विस्फारित नेत्रों वाले वन मृगों के द्वारा दर्भग्रास में भी रुचि त्याग कर देखे जाते हुए राम ने स्वभावतः पूज्य, महर्षि

१. 'रचित' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्रि के आश्रम में पहुँच कर, प्रसन्न महर्षि अत्रि द्वारा प्रीतिपूर्वक किये गये अतिथि सत्कार को स्वीकार किया ॥ ८५ ॥

सीतामप्यनसूयाभिधानास्य पत्नी स्वभूषणैस्तोषयत् ।

सीतामिति । अनसूयाभिधाना अनसूयानाम्नी अस्य अत्रेर्मुनेः पत्नी सीतामपि स्वभूषणैः स्वीयालङ्कारैः अतोषयत् मुदितामकरोत् । स्त्री स्त्रियै स्वालंकारप्रदानेन तस्यां स्वस्नेहाधिक्यं प्रकटीकरोतीति लोकरीत्यनुसरणादिति भावः ।

अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया ने सीता को भी अपने आभूषण देकर प्रसन्न किया ।

खण्डनाय वसुधावधूमनःपुण्डरीकतुहिनत्विषां द्विषाम् ।
दण्डकावनमवाप राघवश्चण्डभानुरिव मेघमण्डलम् ॥८६॥

इति विदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणेऽयोध्याकाण्डः समाप्तः ।

खण्डनायेति । राघवः श्रीरामचन्द्रः, वसुधा पृथव्येव वधूर्भार्या रामस्य विष्णुतया परमार्थतः पृथिव्याः पतित्वादिति भावः । तस्या मन एव पुण्डरीकं कमलं तस्य कृते तुहिनत्विषां चन्द्राणां, द्विषां राक्षसरूपशत्रूणां खण्डनाय संहाराय चण्डभानुः सूर्यो मेघमण्डलं नभोदेशमिव दण्डकावनम् अवाप प्राप्तवान् । कमलं ग्लपयतश्चन्द्रस्य निरासाय यथा सूर्यो नभोमण्डलमधितिष्ठति तथैव स्वदुष्कृत्यैः पृथिवीं ग्लपयतां राक्षसानां संहाराय श्रीरामचन्द्रो दण्डकारण्यमासादितवानित्याशयः । लोकेऽपि मानी पुरुषः स्वभार्याया मानसोल्लासनिरासकं शत्रुं न क्षमत इति । पूर्वार्द्धे रूपकम्, उत्तरार्द्धे चण्डभानुरिवेत्यत्रोपमा । तयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः । रथोद्धतावृत्तम् । 'रान्नराविहरथोद्धता लगौ' इति लक्षणात् ॥ ८६ ॥

इति रामनाथत्रिपाठिप्रणीतायां कल्याण्याख्यायां चम्पूरामायणव्याख्यामयोध्याकाण्डः समाप्तः ।

वसुधा रूप अङ्गना के मन रूप कमल को विषण्ण करने में चन्द्ररूप राक्षस शत्रुओं का संहार करने के लिए श्रीरामचन्द्र जी दण्डकारण्य में उसी तरह पहुँचे जैसे चन्द्रमा की प्रभा को दूर करने के लिए सूर्य भगवान् आकाश में पहुँचते हैं ।

॥ इति अयोध्याकाण्ड ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ आरण्यकाण्डम्

प्रविश्य विपिनं महत्तदनु मैथिलीवल्लभो
महाबलसमन्वितश्चलितनीलशैलच्छविः ।
निशाचरदवानलप्रशमनं विधातुं शरै-
श्चचार सशरासनः सुरपथे तडित्वानिव ॥ १ ॥

प्रविश्येति । तदनु तदनन्तरम्, महाबलसमन्वितः समधिकपराक्रमशाली, मेघपक्षे महाबलेन पवनेन समन्वितः तत्प्रेरित इत्यर्थः । चलितनीलशैल-च्छविः—चलितस्य जङ्गमस्य नीलशैलस्य इन्द्रनीलपर्वतस्य छविः कान्तिरिव छविर्यस्य स तथोक्तः । मैथिलीवल्लभः सीतापतिः, सीतासहचर इति यावत् । श्रीरामः महत् विशालं विपिनमरण्यं प्रविश्य शरैः बाणैः मेघपक्षे नीरैः ('शरो-दध्याद्यग्रसारे बाणे काण्डे तृणान्तरे। शरं तु नीरे' इति नानार्थरत्नमाला)। निशाचरदवानलप्रशमनम्–निशाचरा राक्षसा दवानला वनवह्नय इव वनवासिनां मुनीनां सन्तापकत्वादिति भावः । तेषां प्रशमनं विनाशं पक्षे निर्वापणं विधातुं कर्तुम् सशरासनः धनुर्धरः सन्, पक्षे सेन्द्रचापः, सुरपथे आकाशे तडित्वान् मेघ इव चचार बभ्राम । यथा पवनप्रेरित अतएव चलितनीलगिरिशोभो मेघो नीरै दर्वानलप्रशमनं कर्तुं सेन्द्रचापो विद्युद्युतश्चाकाशे भ्रमति तथैव समधिकपरा-क्रमशाली चलितनीलगिरिच्छविः श्रीरामो राक्षसानां विनाशं कर्तुं धनुर्धरः सन् सीतया सह दण्डकारण्ये बभ्राम । श्लेषानुप्राणितोपमाऽलङ्कारः । पृथ्वी वृत्तम् ॥ १ ॥

इसके बाद वन में प्रवेश कर अत्यन्त पराक्रमशील, चलते-फिरते नीलगिरि के सदृश कान्तिमान् सीता सहित रामचन्द्र जी अपने बाण-रूप जल से निशाचर-रूप दावानल को बुझा देने के लिए धनुष लिये हुए दण्डकारण्य में उसी प्रकार घूमने लगे जैसे इन्द्रधनुष और विद्युत् से युक्त, चलते-फिरते नीलगिरि के सदृश श्याम मेघ पवन से प्रेरित होकर आकाश में घूमा करता है ॥ १ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]तदनु[2]कण्डूलवरशुण्डालकपोलकषणविषमि[3]तामितविटपसालषण्ड-निर्यातनिर्यासगन्धानप्यात्तगन्धान्विदधानै[4]राहुति[5]गन्धैरनुमीयमानानविनाभूतजलाशयानाश्रमभागानभितश्चरतोरातिथ्यश[6]मितमार्गश्रमयो[7]रामलक्ष्मणयोरध्वानं[8]रुरोध विराधाभिधानो यातुधानः।

तदन्विति। कण्डूलाः कण्डूः खर्जूर्नाम चर्मरोगविशेषः, तां लान्ति गृह्णन्तीति कण्डूलाः ('आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः। 'आतो लोप इटि च' इत्याल्लोपः)। शुण्डाः सन्त्येषामिति शुण्डालाः गजाः ('प्राणिस्थादातोलजन्यतरस्याम्' इति मत्वर्थीयो लच्)। कण्डूलावरशुण्डालकपोला मत्तकरिगण्डस्थलानि तेषां कषणेन घर्षणेन विषमिताः निम्नोन्नतीकृताः अमिताः अनेके विटपाः शाखाः यस्य तादृशो यः सालषण्डः सर्जकतरुसमुदयस्तस्मान्निर्यातो निर्गतो निर्यासगन्धः निर्यासस्य मज्जाविशेषस्य गन्धः आमोदः येषां ते तथोक्तास्तान् (इदमग्रे वक्ष्यमाणस्य आश्रमभागानित्यस्य विशेषणम्) अपि आत्तगन्धान् पुनर्गृहीतामोदान् विदधानैः कुर्वद्भिः, आहुतिगन्धैः होमसुगन्धैः अनुमीयमानान् अभ्यूह्यमानान् 'इमे ऋष्याश्रमाः, आहुतिगन्धवत्त्वात् अन्याश्रमवदित्यनुमितिविषयीक्रियमाणानित्यर्थः; अविनाभूताः सर्वत्र वर्तमानाः जलाशयाः सरोवरा यत्र तादृशान् आश्रमभागान् मुनिनिवासप्रदेशान् अभितः समन्तात् ('अभितः-परितः'—इत्यादिना द्वितीया) चरतोः भ्रमतोः, आतिथ्येन मुनिकृतातिथिसत्कारेण शमितः दूरीकृतो मार्गश्रमः मार्गगमनजनितखेदो ययोस्तयोः। 'श्रमः खेदोऽध्वरत्यादे'रिति लक्षणम्। रामलक्ष्मणयोरध्वानं मार्गं विराधाभिधानः विराधनामा यातुधानो राक्षसः रुरोध निरुध्याग्रे स्थितः। मत्तैभानां कण्डूयुक्तगण्डस्थलघर्षणेन वृक्षेभ्यो निर्यासगन्धो बहिर्याति तथापि होमगन्धैस्तद्गन्धक्षतिपूरणाद्येष्वाश्रमेषु गन्धन्यूनता नानुभूयते तथा च तैरेव होमगन्धैर्मुन्याश्रमा इमे इत्यनुमीयन्ते, यत्र च सर्वत्र जलाशया वर्त्तन्ते

---

१. 'ततः' इति पाठा०। २. 'कण्डूलापनयनपटुशुण्डाल' इति पा०।
३. 'मितानमितविकटविटप' इति पा०। ४. 'ऋचाहुति' इति पाठा०।
५. 'गन्धैर्धूमस्तोमैः' इति पा०। ६. श्रमित' 'प्रश्रमित' इति च पाठा०।
७. 'दाशरथ्योः' इति पा०। ८. 'तरसा रुरोध', 'सहसा रुरोध' इति च पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तादृशानाश्रमान् परितो विचरन्तौ रामलक्ष्मणौ मुनिकृतातिथिसत्कारेणभ्रमणजनितखेदं शमयतः। तादृशयो रामलक्ष्मणयोर्मार्गं विराधनामा रासक्षो निरुध्याग्रेस्थितोऽभूदिति स्पष्टार्थः।

इसके बाद, मदमत्त हाथियों द्वारा खुजलाहट युक्त गण्डस्थलों के रगड़े जाने से जिनकी डालियों का वल्कल छिल गया अतएव ऐसे सालवृक्षों से (क्षीर वहने के कारण) सारगन्ध के निकलते रहने पर भी जो आश्रम होम की सुगन्ध से पुनः गन्ध से पूर्ण हो गये थे तथा होम सुगन्ध से ही उनके आश्रम होने का पता चलता था एवं सर्वत्र जलाशय विद्यमान थे, मुनियों के ऐसे आश्रम भागों के चारों तरफ राम-लक्ष्मण विचर रहे थे और मुनियों के द्वारा किये गये अतिथि सत्कार से उनका मार्ग-कष्ट हल्का हो रहा था, इतने में ही विराध नामक राक्षस उनके मार्ग को रोक कर सामने खड़ा हो गया।

स एष रोषभी[1]षणवेषस्त्रिशिखशि[2]खावतंसितविविधमृगशव[3]शतहृदयः शतह्रदातनयः सीतामपजहार, व्याजहार च दाशरथी।

स एष इति। रोषभीषणवेषः—रोषेण क्रोधेन भीषणो भयङ्करो वेषः स्वरूपं यस्य स तथोक्तः। त्रिशिखस्य त्रिशूलस्य शिखयाऽग्रभागेन अवतंसितानि भूषणत्वेन धृतानि प्रोतानीत्यर्थः विविधानां मृगाणां सिंहादीनां वन्यपशूनां शवशतस्य शतसंख्याकमृतदेहानां हृदयानि वक्षःस्थलानि येन स तथोक्तः स एषः शतह्रदायाः तदभिधानायाः स्त्रियाः तनयः पुत्रो विराध इत्यर्थः, सीतामपजहार अपहृतवान्, दाशरथी रामलक्ष्मणौ प्रति च व्याजहार वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवान्। रामायणेऽप्युक्तम्—'त्रीन् सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान् द्वौ वृकौ पृषतां दश। सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत्॥ अवसज्यायसे शूले निनदन्तं महास्वनम्' इति।

रोष से भयङ्कर वेष वाला त्रिशूल के अग्रभाग में [भक्षणार्थ सिंहादि] नानावन्य-पशुओं के शवों के हृदयभाग को भूषणभाव से अवसक्त किये हुए शतह्रदा के पुत्र विराध ने सीता का अपहरण कर लिया और राम लक्ष्मण से कहा—

---

१. 'भीषणस्त्रिलोकी' इति पाठा०। २. 'शिखरावतंसित' इति पाठा०।
३. 'शतः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कौ युवां युवानौ, कुतस्त्यौ, वामाचारवत्प्रति[1]भाति वामाचारः। चीरं वपुषि, जटाः शिरसि, करे च चण्डकोदण्डः। क्वायमाकल्पः, क्वच कल्पलताकल्पेयमनल्पाभरणा तरुणीति।

कौ युवामिति। युवानौ तरुणौ युवां कौ किं परिचयौ ? कुतस्त्यौ कुत आगतौ ? वामाचारः--वाम् युवयोः ('युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीयास्थयोर्वांनावौ' इति वामादेशः) आचारः प्रवृत्तिः वामाचारवत् विपरीत व्यवहारवत् ('तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इति वति प्रत्ययः) प्रतिभाति प्रतीयते। तदेवोपपादयति--वपुषि देहे चीरम् वल्कलं, शिरसि जटाः, (अपरतः) करे हस्ते चण्डकोदण्डः चण्डो भयङ्करः कोदण्डो धनुश्च। क्व कुत्र अयं परिदृश्यमानः जटावल्कलधारणादिरूपः आकल्पः वेषः। ('आकल्पवेषौ नेपथ्यम्' इत्यभिधानात्) क्व च कल्पलताकल्पा कल्पलतासदृशी सकलमनोरथपूरणसमर्थेत्यर्थः, अनल्पाभरणा सकलभूषणभूषिता इयं पुरतो दृश्यमाना तरुणी युवतिः ? द्वयोर्महान् विरोध इति भावः। इत्येवं व्याजहारेति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः।

तुम दोनों युवक कौन हो ? कहाँ से आये हो ? तुम दोनों का आचार बड़ा उलटा-पुलटा-सा मालूम पड़ रहा है। देह पर वल्कल और सिर पर जटा है किन्तु हाथ में प्रचण्ड धनुष है। कहाँ ऐसा वेष और कहाँ यह कल्पलता के समान और अनेक भूषणों से भूषित युवती है।

दाशरथिरपि कथितनिजान्वयो विराधाङ्के वेपमानां विदेह[2]दुहितरं विलोक्य सकोपः सौमित्रिणा साकं रक्षोवक्षसि शिलीमुखान्नि[3]चखान।

दाशरथिरिति। दाशरथिः श्रीरामचन्द्रोऽपि कथितनिजान्वयः कथितः उक्तो निजान्वयः स्ववंशो येन स तथोक्तः सन्। विराधाङ्के विराधस्य क्रोडप्रदेशे वेपमानाम् भयात्कम्पमानां विदेहदुहितरं सीतां विलोक्य दृष्ट्वा सकोपः कुपितः सन् सौमित्रिणा लक्ष्मणेन साकं सह रक्षोवक्षसि रक्षसः विराधस्य वक्षसि हृदयदेशे शिलीमुखान् शिलीशल्यं मुखेऽग्रभागे येषां तान् बाणानित्यर्थः ('अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः) निचखान निखातवान् बाणैर्विराधस्य हृदयदेशं विदारयामासेत्यर्थः।

---

१. 'प्रतिभाति मे' इति पाठा०। २. 'विदेहराज' इति पाठा०।
३. निजघान' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राम अपने वंश का परिचय देकर, विराध के अङ्क में भय से काँपती सीता को देख कर लक्ष्मण के साथ क्रुद्ध होकर विराध की छाती पर बाणों से प्रहार करने लगे।

[१]विशिखे[२]विशिखे तस्मिन्विधातृवरवर्मणि।
सीतां विक्षिप्य[३]चिक्षेप शूलं रक्षो रघूद्वहे॥ २॥

विशिख इति। विधातुर्ब्रह्मणो वर एव वर्मकञ्चुकं यस्य तस्मिन्, ब्रह्मवर-प्रसादक्षतत्वं गते तस्मिन् विराधे विषये विशिखे रामबाणेषु (जातावेकवचनम्) विशिखे विगता त्रुटितेत्यर्थः शिखा अग्रभागो यस्य तादृशे जाते सति, निष्फलतां गतेष्वित्यर्थः, रक्षः विराधः सीतां विक्षिप्य अङ्काद्भूमावस्थाप्य रघूद्वहे श्रीरामे लक्ष्ये शूलमस्त्रविशेषं चिक्षेप प्रयुयोज॥ २॥

विधाता का वरदान ही जिसका कवच बन गया, उस विराध पर राम के बाण जब निष्फल हो गये तब विराध ने सीता को अङ्क से अलग कर राम पर शूल चलाया॥ २॥

तदनु शूलमखण्डयदञ्जसा शितशिखं रघुनायकसायकः।
नियतमेव विराधविरोधिनां हृदयशूलमपि त्रिदिवौकसाम्॥ ३॥

तदन्विति। तदनु तदनन्तरम्। रघुनायकस्य श्रीरामस्य सायको बाणः, शितशिखं तीक्ष्णाग्रभागं शूलं विराधप्रयुक्तं शूलम् अञ्जसा त्वरितम् अखण्डयत् अच्छिनत्, तथा विराधविरोधिना विराधकृतोपद्रवसन्तप्ततया तच्छत्रुभूतानां त्रिदिवौकसां देवानां हृदयशूलं मनोव्यथामपि नियतमवश्यमेव अखण्डयत् विराधप्रयुक्तं शूलं रामबाणेन खण्डितं दृष्ट्वा रामविजयसम्भावनया देवानां मनःखेदोऽपगत इत्यर्थः। अत्र प्रकृतयोर्द्वयोः शूलयोरेकक्रियाभिसम्बन्धात्तुल्य-योगिताऽलङ्कारः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्, 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति लक्षणात्॥ ३॥

इसके बाद राम के बाण ने विराध के तीक्ष्ण नोकीले शूल को तुरन्त खण्डित कर दिया, इस प्रकार उस रामबाण ने निश्चय ही विराध के विरोधी

२. एतत्पूर्वम् 'ततः' इति पाठान्तरं क्वचित्।
३. 'तत्र' इति पाठा०। ४. निक्षिप्य' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवताओं के हृदयशूल-मनोव्यथा को खण्डित कर दिया—उन्हें आश्वस्त किया ॥३॥

विराधोऽपि क्रुधा सरभसमभिपत्य स्कन्धे निधाय रामलक्ष्मणौ गतिनिरोधा[1]पराधपरिहाराय हिमकराहि[2]मकरौ प्रस्थे वहन्विन्ध्य इव प्रतस्थे ।

विराध इति । विराधोऽपि क्रुधा क्रोधेन स्वशूलखण्डजनितेनेति भावः । सरभसम् सवेगं ('रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः) अभिपत्य अभ्युपगम्य गतिनिरोधापराधपरिहाराय—पूर्वं स्वकृतस्य रामलक्ष्मणोर्गतिनिरोधरूपापराधस्य परिहाराय मार्जनाय स्वकृतगतिनिरोधापराधं परिजिहीर्षयेवेत्यर्थः रामलक्ष्मणौ स्कन्धे निधाय आरोप्य हिमकरं चन्द्रम्, अहिमकरं सूर्यं चेति तौ प्रस्थे सानुनि वहन् धारयन् विन्ध्यः विन्ध्यगिरिरिव प्रतस्थे चचाल । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् । ('स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्' इत्यमरः) । पुरा खलु समधिकोच्छ्रायं गतेन विन्ध्येन सूर्याचन्द्रमसोर्गतिर्निरुद्धा, तेन कुपितौ सूर्याचन्द्रमसौ प्रसादयितुं विन्ध्यगिरिस्तौ स्वशिखरेऽवस्थाप्य चचाल, तथैव विराधेनापि रामलक्ष्यणयोर्गतिर्निरोधः कृतस्तदपराधं परिजिहीर्षुरिव विराधो रामलक्ष्मणौ स्वस्कन्धेऽवस्थाप्य प्रतस्थ इत्याशयः । उपमाऽलङ्कारः ।

विराध भी क्रोध से झपट कर पूर्वकृत गतिरोध रूप अपने अपराध का परिहार करने के विचार से, राम-लक्ष्मण को कन्धे पर रख कर, शिखर पर सूर्य-चन्द्र को धारण किये हुए विन्ध्यगिरि की तरह चल पड़ा ।

रामस्तत्र विराधवधोद्युक्तं सौमित्रिमेवमभिदधे ।

रामस्तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये विराधवधोद्युक्तम् विराधं हन्तुमुद्यतं सौमित्रिम् लक्ष्मणं रामः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अभिदधे उवाच ।

उस समय विराध को मारने के लिए उद्यत लक्ष्मण से राम ने इस प्रकार कहा—

या तु नः पदवी सैषा[3] यातुनश्वास्य लक्ष्मण ।
यातुकामं तयैवेदं यातु कामं न हन्यताम् ॥ ४ ॥

---

१. 'परिहरणायैव' इति पाठा० । २. 'मिहिरहिमकरौ' इति पाठा० ।
३. 'सेवम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

या तु न इति। हे लक्ष्मण ! या तु यैव (त्वित्यवधारणे) नः अस्माकं पदवी मार्गः, सैषा सैव अस्य यातुनः रक्षसो विराधस्य पदवी मार्गः ('नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इत्यमरः)। तयैव पदव्या यातुकामम् यातुं कामः इच्छा यस्य तद् यातुकामम् ('तुं काममनसोरपी'ति तुमुनो मकारलोपः) गन्तुमिच्छद्, इदं रक्षः विराध इत्यर्थः, कामं यथेच्छं यातु गच्छतु, न हन्यताम्, न व्यापाद्यताम्। अस्य स्कन्धे देशे स्थिता वयमप्यनायासेन स्वमार्गं लङ्घयिष्यामस्तस्मान्न मारणीय इत्यर्थः। अत्र काकतालीयन्यायेन रक्षोवहन रूप कारणान्तरयोगात् रामकर्तृक कान्तारसुखसञ्चरणरूपकार्यस्य सौकर्यात् समाधिरलङ्कारः। 'कारणान्तरयोगात् कार्यस्य सुकरत्वं समाधिः' इत्यलङ्कारसर्वस्वकारोक्त-सूत्रात् ॥ ४ ॥

हे लक्ष्मण, जो हमारा मार्ग है, इस राक्षस का भी वही मार्ग है। यदि उसी मार्ग से यह चलना चाहता है तो यथारुचि चले, इसे मारो मत। (इसके कन्धे पर बैठे हम भी सुख से कुछ मार्ग तय कर लगे ॥४॥

अयि कवलय मामम् विमुञ्चेत्यतिकरुणं रुदतीमवेक्ष्य सीताम्।
अरमरचयतामुभावसिभ्यां पिशितभुजं भुजभारहीनमेनम् ॥ ५ ॥

अयीति। अयि हे राक्षस ! मा सीतां कवलय भक्षय। अमू रामलक्ष्मणौ विमुञ्च परित्यज इत्येवमुक्त्वेति शेषः। अतिकरुणमतिदीनं रुदतीं रोदनं कुर्वाणां सीतामवेक्ष्यावलोक्य उभौ रामलक्ष्मणौ, अरं द्रुतम् ('लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्' इत्यमरः)। असिभ्याम् खड्गाभ्याम् एनं पिशितभुजं राक्षसं विराधं भुजभार-हीनम् भुजकृतभारविहीनम् अरचयताम् अकुरुताम्, तस्य भुजौ चिच्छिदतु-रित्यर्थः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। 'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात् ॥ ५ ॥

'हे राक्षस, मुझे खा ले, इन दोनों को छोड़ दे'–इस प्रकार सीता को करुण रोदन करती देखकर रामलक्ष्मण ने शीघ्र अपनी-अपनी तलवार से विराध को भुजाओं के भार से विहीन कर दिया ॥५॥

ततस्तीक्ष्णतर[1]प्रहरणगर्वाक्षतवक्षसा रक्षसा न परित्यक्तेषु प्राणेषु पराक्रमाविषयपराक्रमौ प्राक्रमेतामेतौ तदङ्गगलितरुधिरधारासेकेन

१. 'क्षुरप्रप्रहरम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खननक्षमायां काननक्षमायां राक्षसशवोचितम[1] वटमतिविशङ्कटमुत्पादयितुम् ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, तीक्ष्णतरैः समधिकनिशितैः प्रहरणैः विविधशस्त्रैः करणैः गवाक्षितं गवाक्षरूपं कृतं शतच्छिद्रयुतमित्यर्थः' वक्षः उरोदेशो यस्य तादृशेन रक्षसा विराधेन न परित्यक्तेषु प्राणेषु, तादृश्यामवस्थायामपि महासत्त्वाद् ब्रह्मवरप्रभावाद् वा जीवत्येव विराधे सति, पराक्रमाविषयपराक्रमौ पराक्रमस्य अन्येषां प्राक्रमस्य अविषये परकीयपराक्रमासाध्यकार्ये पराक्रमो ययोस्तौ, दिव्यपराक्रमसम्पन्नावित्यर्थः । एतौ रामलक्ष्मणौ, तस्य विराधस्य अङ्गेभ्यो देहावयवेभ्यो गलिता परिस्रवन्ती या रुधिरधारा शोणितप्रवाहस्तया सेकेन सेचनेन खननक्षमायाम् मृदुतया खननयोग्यतां गतायाम् काननक्षमायां वनभूमौ ('क्षितिक्षान्त्योः क्षमा' इत्यमरः) राक्षसशवोचितम् राक्षसदेहपरिमित्युनुरूपम् अतिविशङ्कटम् अत्यन्तविशालम् ('विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्' इत्यमरः) अवटं गर्तं ('गर्तावटौ भुविश्वभ्रे' इत्यमरः) उत्पादयितुं रचयितुं खनितुमिति यावत्, प्राक्रमेताम् प्रारभेताम् तस्मिन् गर्ते जीवत एव विराधस्य शरीरस्थापनायेति भावः ।

इसके बाद विविध तीखे अस्त्रों के प्रहार से छेद-छेद कर विराध की छाती को पूरा झरोखा (बहु छिद्रों से युक्त) बना दिया, फिर भी उसके प्राणों के न निकलने पर [लोकहित के लिए उसे जीवित ही भूमि में गाड़ देने के लिए] अलौकिक पराक्रमशाली राम और लक्ष्नण ने उसके अङ्गों से बहती रुधिर धारा से सिक्त होंने से खोदने योग्य बनी वन भूमि में राक्षस के शव की नाप का अत्यन्त विशाल गड्ढा खोदना प्रारम्भ कर दिया ।

तत्क्षणमेव क्षणदाचरोऽपि संजातप्रत्य[2]भिज्ञो रामाय व्यजिज्ञपत ।

तत्क्षणमिति । तत्क्षणमेव तस्मिन्नेव काले क्षणदाचरः निशाचरः विराधोऽपि संजात प्रत्यभिज्ञः–संजाता उत्पन्ना प्रत्यभिज्ञा पुरातनघटनास्मृतिर्यस्य स तथोक्तः सन् रामाय व्यजिज्ञपत् न्यवेदयत् । 'त्रियामा क्षणदा क्षपा' इति रात्रिपर्यायेष्वमरः ।

---

१. 'विकटमवटम्' इति पाठा० । २. 'प्रत्यभिज्ञः सन् रामं' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसी समय विराध को पुरानी बात याद हो आयी और उसने राम से कहा—

आत्मनो गन्धर्वकुलसंभवं रम्भापरि[1]रम्भणारम्भसंरम्भं तच्छ्रवणकुपितवैश्रवणदत्तां[2]रक्षोरूपिणीं शापव्यापदं तस्यास्तथाविधमवसानम् च।

आत्मन इति। आत्मनः स्वस्य, गन्धर्वकुलसंभवम्, गन्धर्वा देवयोनिविशेषा देवगायकास्तेषां कुले संभवं जन्म। तथा रम्भा तदभिधाना युवतिः नलकूबरस्य पत्नी, कुबेरस्य स्नुषा तस्य परिरम्भणमालिङ्गनं तस्य आरम्भे प्रयासे संरम्भम् संभ्रमम्, तथा तच्छ्रवणेन रम्भापरिरम्भणारम्भसंरम्भाकर्णनेन कुपितः क्रुद्धो यो वैश्रवणः कुबेरस्तेन दत्ताम् ('किं नरेशो वैश्रवणः' इत्यमरः) रक्षोरूपिणीम् राक्षसभावप्राप्तिस्वरूपाम्, शापव्यापदम् शापरूपामापत्तिम्, तस्याः शापव्यापदः तथाविधं तत्प्रकारकं वनवाससंचारतत्परराम कृतवधरूपमित्यर्थः, अवसानम् समाप्तिं च व्यजिज्ञपत् इति पूर्वोक्तक्रिययाऽन्वयः। उक्तश्चायमेवार्थो रामायणे–'अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम्। तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन ह॥ प्रसाद्यमानश्च मया सोऽब्रवीन्मां महायशाः। यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे॥ तदा प्रकृतिमापन्नो भवान् स्वर्गं गमिष्यति। इति वैश्रवणो राजा रम्भासक्तमुवाच ह'॥ इति॥

गन्धर्वकुल में अपना जन्म, रम्भा के बलाद् आलिङ्गन करने की चेष्टा, इस बात को सुनकर कुपित कुबेर के द्वारा राक्षस हो जाने का शाप दिया जाना तथा राम के द्वारा मारे जाने पर उस शाप का अन्त (यह सारा वृत्तान्त राम को बताया)।

रक्षोवधः प्रकृत इत्ययमेव शंसेत्
स्वर्गाय गायकपदं गमितो विराधः।
नागालयाय वपुरस्य वदेदितीव
श्वभ्रे तदक्षिपदिषुप्रहतं स रामः॥ ६।

रक्षोवध इति। रक्षोवधः–रक्षसां राक्षसानां वधः विनाशः प्रकृतः प्रारब्धो रामेण इत्येतं वृत्तान्तं, गायकपदं गमितः शापावसानात् गन्धर्वभावं प्रापितः

---

१. 'परिरम्भ' इति पाठा०।   २. 'दत्तः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अयं विराधस्तदभिधानो राक्षसः स्वर्गाय स्वर्गलोकवासिजनाय देवगणायेत्यर्थः, शंसेत् कथयेत्, तथा च अस्य विराधस्य वपुः शरीरम् (पातालपर्यन्तगम्भीरे गर्ते स्थापितत्वात्पातालं गत्वा) तमेव पूर्वोक्तं वृत्तान्तं नागालयाय पातालवासिजनाय वदेत् कथयेत्, स्वर्गलोकगतं विराधं दृष्ट्वा 'रक्षोवधो रामेण प्रकृतः' इति देवा-जानीयुस्तथा च अस्य शरीरं पाताललोकगतं दृष्ट्वा नागलोकोऽपि प्रवृत्तं रक्षोबधं जानीयान्मृत्युलोके तु प्रसिद्धमेवेति भावः। इतीव अस्माद्धेतोरिव स रामः इषुप्रहतम् इषुभिर्बाणैः प्रहतम् अत्यन्तविद्धं तत् विराधवपुः, श्वभ्रे गर्ते अक्षिपत् क्षिप्तवान्। हेतूत्प्रेक्षाऽलंकारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

'राक्षसों का वध (राम के द्वारा) प्रारम्भ हो गया' यह बात स्वर्ग-निवासियों (देवताओं) से यह विराध गन्धर्वभाव को प्राप्त होकर स्वयं कहे और इसका शरीर नागलोकवासियों से इस बात को कहे, मानों इसीलिये राम ने बाणों से अत्यन्त विद्ध विराध के शरीर को गड्ढे में डाल दिया ॥६॥

तदनु नाकलोकभजनाय पुरुहूतेन समाहूतस्य भगवतः शरभङ्गस्या-श्रमपदं रघुपतिरभजत।

तदनु विराधमारणानन्तरम्, रघुपतिः श्रीरामचन्द्रो, नाकलोकभजनाय स्वर्गनिवासाय पुरुहूतेन इन्द्रेण समाहूतस्य सादरमामन्त्रितस्य भगवतः पूज्यस्य शरभङ्गस्य शरभङ्गाभिधानस्य महर्षेः, आश्रमपदं तपोवनस्थानम् अभजत प्राप्तवान्।

इसके बाद श्रीरामचन्द्र, इन्द्र के द्वारा स्वर्ग में रहने के लिए सादर आमन्त्रित किये गये भगवान् शरभङ्ग मुनि के आश्रम में गये।

तत्र—

दशशतनयनेऽपि वीक्ष्यमाणे दशरथपुत्रसिषेविषैव जाता।
मनसिजशरभङ्गकारिवृत्तेर्मनसि मुनेः शरभङ्गनामभाजः ॥ ७ ॥

तत्र,

तत्र, दशेति। तत्र तस्मिन् समये, दशशतनयने इन्द्रे, वीक्ष्यमाणे दृश्यमाने सत्यपि, स्वर्गं गमिष्यता शरभङ्गेणेन्द्रे साक्षात्कर्त्तुं शक्येऽपीत्यर्थः। मनसिजः कामदेवः, तस्य शराः बाणास्तेषां भङ्गं वैफल्यं करोतीति मनसिजशरभङ्ग-कारिणी वृत्तिर्वर्त्तनं यस्य तस्य, जितेन्द्रियस्येत्यर्थः, शरभङ्गनामभाजः शरभङ्ग-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाम्नोमुनेर्मनसि हृदये दशरथपुत्रस्य श्रीरामस्य सिषेविषा सेवेच्छा एव जाता समुत्पन्ना, स्वर्गसुखभोगादिन्द्रसाक्षात्काराच्च रामदर्शनं तज्जनितसुखं च श्रेयोऽमन्यत स मुनिरिति भावः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ७ ॥

उस समय इन्द्र के साक्षात्कार का सदवसर मिलने पर भी कामदेव के बाणों को विफल करनेवाली वृत्ति रखनेवाले शरभङ्ग मुनि के हृदय में राम की सेवा करने की इच्छा ही उत्पन्न हुई (उस समय राम की सेवा का लाभ उठाना ही अच्छा समझ कर स्वर्गगमन को कुछ दिनों के लिए टाल दिया) ॥ ७ ॥

स मुनिराश्रमस्थं काकुत्स्थमातिथ्येन समाराध्य तत्सान्निध्याच्छुद्धां मन्त्रपूता[1]माहृतिमि[2]वात्मतनुं अतनूष्मणि तनूनपाति पातयित्वा शाश्वतं पदं समाश्रितवान्।

स मुनिरिति। स मुनिः शरभङ्गः, आश्रमस्थम् आश्रममागतम् काकुत्स्थम् श्रीरामम् आतिथ्येन अतिथिसत्कारेण समाराध्य पूजयित्वा तत्सान्निध्यात् तस्य श्रीरामस्य सान्निध्यात् सम्पर्कात् शुद्धाम् विगतसकलदोषाम्, आत्मतनुं स्वशरीरं मन्त्रपूतां मन्त्रेण पवित्राम् आहुतिमिव अतनूष्मणि—अतनुः अमन्दः प्रचण्ड इत्यर्थः ऊष्मा तापो यस्य तादृशे, जाज्वल्यमाने तनूनपाति वह्नौ ('कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात' इत्यमरः) पातयित्वा निक्षिप्य शाश्वतं नित्यं पदं ब्रह्मपदं समाश्रितवान् प्राप्तवान्, मुक्तोऽभूदित्यर्थः। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इत्यादिश्रुतेः परमात्मारूपश्रीरामदर्शनस्य मुक्तिहेतुत्वादिति भावः। शरभङ्गस्याग्निप्रवेशो न धर्मविरुद्धः 'अनुष्ठानासमर्थस्य वानप्रस्थस्य जीर्यतः। भृग्वग्निजलसंपातैर्मरणं प्रविधीयते ॥' इति स्मृत्युक्तेः।

उन शरभङ्ग मुनि ने अपने आश्रम में आये हुए भगवान राम को अतिथिसत्कार से प्रसन्न कर, उन (राम) के सम्पर्कमाहात्म्य से शुद्ध अपने शरीर को मन्त्रपूत आहुति की तरह जाज्वल्यमान अग्नि में डालकर शाश्वतपद (अर्थात् ब्रह्मपद) को प्राप्त किया।

---

१. 'आहूतिम्' इति पाठा०। २. 'आत्मनस्तनुम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततस्तीक्ष्णतपसः [1]सुतीक्ष्णस्य निदेशेन[2] देशात्तस्मादुच्चलितः सलिलनिधिपानसम्भावितजीवनाभावशङ्कया शरणाश्रयणाय लम्बमाननीलाम्बुदकुटुम्बसन्देहावहेन नानानोकहनिवहेन पिहिताभोगमगस्त्याश्रमं [3]रामः ससम्भ्रममाससाद। अकथयच्च मैथिलीम्।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्। रामः तीक्ष्णं तीव्रं तपो यस्य तथोक्तस्य सुतीक्ष्णस्य सुतीक्ष्णाभिधानस्य मुनेर्निदेशेनाज्ञया। सुतीक्ष्णदर्शनमपि कृतवानित्येतेन सूचितम्। तस्माद् देशात् सुतीक्ष्णाश्रमप्रदेशात् उच्चलितः प्रस्थितः सन्, सलिलनिधिः समुद्रस्तस्य पानमगस्त्यकृतमाचमनं तेन सम्भाविता कल्पिता जीवनस्य जलस्य प्राणधारणस्य वा अभावशङ्का अभावसम्भावना तया ('पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्' इति जलपर्यायेष्वमरः)। शरणाश्रयाय भगवन्तमगस्त्यं शरणं गन्तुं लम्बमानाः अधो भूमितलमाप्नुवन्तो ये नीलाम्बुदा कालमेघास्तेषां कुटुम्बः परिवारः समूह इत्यर्थः, तत्सन्देहावहेन तत्सन्देहमुत्पादयता नानानोकहनिवहेन विविधतरुसमुदयेन, पिहिताभोगम्–पिहितः आच्छादितः आभोगः परिसरो यस्य तादृशमगस्त्याश्रमं ससंभ्रमम् सादरं सवेगं च आससाद प्राप, मैथिलीं सीतामकथयदुक्तवाँश्च। तीव्रतपसः सुतीक्ष्णस्यादेशेन रामोऽगस्त्याश्रमं प्राप यस्य परिसरस्तादृशैर्गगनचुम्बिभिर्वृक्षैराच्छादित आसीद्यान् वृक्षान् पश्यतां जनानां मनसि सन्देहो जायते यदगस्त्यमुनिना समुद्रे पीते जलाभावेन जीवननिर्वाहस्याशक्यतया मेघपरिवारा एवैते अगस्त्यं शरणमागता इति भावः।

तीव्र तपस्यापरायण सुतीक्ष्ण मुनि के आदेश से राम वहाँ से चलकर, समुद्र के पी लिये जाने से जल के अभाव में जीवन न रह जाने की सम्भावना से शरणागत होने के लिये यह मेघ परिवार ही आ गया है–ऐसा सन्देह उत्पन्न करने वाले विविध वृक्षों से आच्छादित परिसर वाले अगस्त्याश्रम में सादर शीघ्रता से पधारे और उन्होंने (उस समय) सीता से कहा—

तस्येदमाश्रमपदं [4]सरसीरुहाक्षि
संख्यविहीनमहिमैकनिकेतनस्य।

---

१. 'सुतीक्ष्ण' इति पाठा०। २. 'निदेशात्' इति पाठा०।
३. 'रामः ससंभ्रमम्' इति नास्ति क्वचित्। ४. 'सरसीरुहाक्षी' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भर्ता समस्तसरितां कुपितस्य यस्य
हस्तारविन्दमकरन्ददशामवाप ॥ ८ ॥

तस्येदमिति। सरसीरुहाक्षि कमलनयने, इदं दृश्यमानम्, संख्याविहीनाः अगणनीयाः महिमानः प्रभावास्तेषामेकनिकेतनस्याद्वितीयाश्रमस्य तस्य अगस्त्यस्य आश्रमपदमाश्रमस्थानम् (अस्ति), समस्तसरितां गङ्गादिसकलनदीनां भर्ता पतिः समुद्रः, कुपितस्य क्रुद्धस्य यस्य मुनेरगस्त्यस्य, हस्त एवारविन्दं कमलं तत्र मकरन्ददशां मकरन्दस्य पुष्परसबिन्दोः दशामवस्थां तुलनामिति यावत्, अवाप प्राप्तवान्। अत्र परिमितेऽगस्त्यकरेऽपरिमितस्य समुद्रस्याधेयत्वप्रतिपादनादधिकप्रभेदोऽलङ्कारः। 'आधाराधेययोरानुरूप्याभावेऽधिको मतः' इति लक्षणात्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८ ॥

हे कमलनयने, यह, असंख्य प्रभावों के अद्वितीय आश्रम उन महामुनि का आश्रमस्थान है, कुपित होने पर जिनके करकमल में सकल नदियों का स्वामी समुद्र मकरन्द विन्दु की दशा को—तुलना को प्राप्त हो गया ॥८॥

इह समदगजेन्द्रन्यस्तहस्तातिभारात्-
पथि [1]नियमितशाखः सल्लकीवृक्ष एषः।
अभिनयति निकामं संगतोच्छ्रायहानि-
र्मुनिवरकरपाताद् भुग्नविन्ध्याद्रिमुद्राम् ॥ ९ ॥

इहेति। इह अत्र आश्रमपदे पथि मार्गे समदः मत्तो यो गजेन्द्रः महामतङ्गजस्तेन न्यस्तस्य विश्रामाय पल्लवभक्षणाय वा स्थापितस्य हस्तस्य स्वशुण्डादण्डस्य अतिभारात् भाराधिक्यात् नियमितशाखः भुग्नशाखः, अतएव सङ्गता प्राप्ता उच्छ्रायहानिः औन्नत्यभङ्गो येन स तथोक्तः। श्रिञ् धातोः 'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे' इति घञि कृते श्रायः। उत्कृष्टः श्राय इत्युच्छ्रायः इति प्रादिसमासः। एष दृश्यमानः सल्लकीवृक्षः गजभक्ष्यवृक्षविशेषः ('गन्धिनी गजभक्ष्या तु सुवहा सुरभी रसा। मेहरणा कुन्दरुकी सल्लकी ह्लादिनीति च' इत्यमरः)। निकाममत्यन्तं मुनिवरस्य अगस्त्यस्य करपातात् हस्तनिपातात् भुग्नः अवनतो यो विन्ध्याद्रिः विन्ध्यपर्वतस्तस्य मुद्रां दशामभिनयति प्रकटयति। पुरा किल

१, 'विनमित' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेरुस्पर्धया प्रवृद्धिं गच्छन्तं सूर्याचन्द्रमसोर्मार्गावरोधकं विन्ध्याचलं सुरप्रार्थितो मुनिरगस्त्यः स्वकरं पातयित्वा भुग्नं कृतवानिति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया। मालिनी वृत्तम् । अत्राभिनयतेः सादृश्यपर्यवसानादुपमाऽलंकारः ॥ ९ ॥

यहाँ मार्ग में स्थित यह सल्लकी वृक्ष, मत्तगजेन्द्रों के द्वारा डाले गये शुण्डादण्ड के भारी भार से जिसकी डालियाँ झुक गयी हैं अतएव ऊंचाई कम हो गई है, महामुनि अगस्त्य के हाथ के पड़ने से झुके हुए बिंन्ध्यगिरि की मुद्रा का अभिनय कर रहा है—उसकी समता को प्राप्त हो रहा है ॥९॥

[1]अस्मिन्महापथधिया वदनं विगाह्य
निर्गन्तुमक्षमतया जठरे लुठद्भिः ।
वन्यैर्गजैरजगराः पिशिताशनेभ्यो
वातापिदानवदशामुपदेशयन्ति ॥ १० ॥

अस्मिन्निति । अस्मिन्नाश्रमे महापथधिया महानयं मार्ग इति भ्रान्त्या (अतएव भ्रान्तिमानलंकारः) वदनं विवृतं मुखमजगराणामितिभावः । विगाह्य प्रविश्य निर्गन्तुं बहिरागन्तुमक्षमतया असमर्थतया, जठरे तेषामजगराणामुदरे लुठद्भिर्निर्गन्तुं प्रयत्नशीलतयाऽऽवर्तमानैः वन्यैर्वनभवैर्गजैः हस्तिभिः अजगराः सर्पविशेषाः पिशिताशनेभ्यः राक्षसेभ्यः वातापिदानवदशाम् वातापिनामकदानवावस्थामुपदेशयन्ति ज्ञापयन्ति । वन्या गजाः पिशिताशनेभ्यो वातापिदानवदशामुपदिशन्ति' अजगराः प्रेरयन्तीति वन्यैर्गजैरजगराः पिशिताशनेभ्यो वातापिदानवदशामुपदेशयन्ति, तदुपदेशकर्तारो वन्या गजा एवेत्यवगन्तव्यम् । अजगराणां विवृतं मुखं महापथं मत्वा गजाः प्रविष्टाः किन्तु निर्गन्तुमक्षमतया तेषां कुक्षिप्रदेश एवावर्तमाना राक्षसेभ्य उपदिशन्ति यदेवमेवास्य महात्मनोऽगस्त्यस्योदरे वातापी नाम दानवो लुठन् प्राणांस्त्यक्तवानतोऽस्मादाश्रमाद् दूर एव युष्माभिः स्थातव्यमिति भावः । अत्रोक्तार्थासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः । 'महापथधिया' इत्यत्र भ्रान्तिमान् । तयोः सापेक्ष्येण सङ्करः । पुराऽगस्त्येन महर्षिणा वातापी दानवो भक्षितः । यथा स्मर्यते–'आतापी भक्षितो येन वातापी च महाबलः । समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥' इति ॥ १० ॥

---

१. 'तस्मिन्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस आश्रम में अजगरों के उद्घाटित मुँह को लम्बी-चौड़ी सड़क समझकर वन्यगज उसमें घुस तो जाते हैं किन्तु बाहर निकलने में असमर्थ होने के कारण उनके पेट में ही चक्कर काटते रहते हैं। उन वनगजों से वे अजगर राक्षसों से वातापी दानव की दशा का उपदेश दिलाया करते हैं (हमारी ही तरह वातापी दानव अगस्त्य मुनि के पेट में चक्कर काटता पच गया था, अतः अपनी कुशल चाहते हो तो तुम लोग इस आश्रम से दूर ही रहो) ॥ १० ॥

[१]किञ्च—

चुलु[२]कगतसमुद्रास्वादने कुम्भयोने-
रितरकरनिरस्ता मक्षिकोत्साररीत्या।
गगनगतिविहीना ये घनाः पल्वलान्ते
विपिनमहिषवेषैः केवलं ते वलन्ते ॥ ११ ॥

किंच, चुलुकेति। ये घनाः मेघाः चुलुकगतसमुद्रस्य दक्षिणकरतलस्थ सागरस्य आस्वादने पानसमये मक्षिकोत्साररीत्या मक्षिकनिराकरणप्रक्रियया कुम्भयोने: अगस्त्यस्य ('अगस्त्यः कुम्भसंभवः' इत्यमरः)। इतरकरेण वामकरेण निरस्ताः दूरे प्रक्षिप्ताः, ते घनाः गगनगतिविहीनाः अगस्तकृतदूर प्रक्षेपणजनिताङ्गभङ्गेन नभोमार्गसंचरणसामर्थ्यरहिताः सन्तः केवलं विपिनमहिषवेषैः वन्यमहिषाकारैः वन्यमहिषव्याजेनेत्यर्थः। पल्वलान्ते अल्पसरोमध्ये ('वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः) वलन्ते सञ्चरन्ति, परिलुठन्तीत्यर्थः। अत्र वेषशब्देन महिषत्वमपह्नुत्यविशिष्टघनत्वोत्प्रेक्षणात् सापह्नवोत्प्रेक्षा। मालिनी वृत्तम् ॥ ११ ॥

दाहिने करतल पर स्थित समुद्र का पान करते समय [समुद्र में घूमनेवाले] जिन मेघों को अगस्त्य ने बायें हाथ से मक्खी की तरह निकालकर दूर फेंक दिया [उससे अंग-भंग हो जाने के कारण] आकाश में चलने में असमर्थ वे ही मेघ वनमहिषों के वेष में केवल [यहाँ के] छोटे जलाशयों में घूम रहे हैं—उसमें लोट रहे हैं ॥११॥

एवं विपिनविलोकनविस्मितमतिस्तदुटजनिकटमासाद्य रामः

१. 'तत्र' इति पाठा०। २. 'चुलक' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिष्यैः प्रवेशितः सकललोकवन्द्यमानचरणारविन्दमर[1]विन्दसम्भवमिव वृन्दारकैर्मुनिवृन्दारकैश्च परिवृतं कोपहुंकारनिरहङ्कारराय नहुषाय भुजङ्गभावदूषिताय [2]दत्तभुजङ्गभावं खगगतिनिरोध[3]कल्यवैपुल्ययोर्दुरवगाहमहावनयोर्विन्ध्यशैलसिन्धुराजयोर्गाधतागाधतातस्करकरोदर[4]मुदरजातवेदोविरचितवातापिदानवाव[5]लेपलोपं लोपामुद्रावल्लभं सकलसरिद्वल्लभनिःशेषीकरणवाडवं[6] वाडवप्रशस्तमपास्तसमस्ताशमप्युपगतदक्षिणाशं वृषैकतानजन्मानमपि कुम्भजन्मानं भगवन्तमगस्त्यमपश्यत् ।

एवमिति । एवमुक्तप्रकारेण विपिनविलोकनेन वनदर्शनेन विस्मिता आश्चर्यंचकिता मतिर्बुद्धिर्यस्य स तथोक्तः, रामः तदुटजनिकटमासाद्य तस्य अगस्त्यस्य महामुनेः उटजनिकटम् पर्णशालासमीपदेशमासाद्य प्राप्य ('पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः) । शिष्यैरगस्त्यस्यान्तेवासिभिः प्रवेशितः अगस्त्यसमीपं प्रापितः सन् सकलोकेन समस्तजनेन वन्द्यमाने नमस्क्रियमाणे चरणारविन्दे पादपद्मे यस्यतं तथोक्तम्, वृन्दारकैः देवैः ('वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवताः स्त्रियाम्' इत्यमरः) अरविन्दसंभवम् कमलयोनिं ब्रह्माणमिव, मुनिवृन्दारकैः मुनिमुख्यैः ('वृन्दारकौ रूपिमुख्यौ' इत्यमरः) परिवृत्त परिवेष्टितं सकलमुनिजनसेव्यमित्यर्थः । कोपहुङ्काराय-कोपहुङ्कारेण कोपसूचकहुङ्कारशब्देन निरहङ्काराय निर्गतः अहङ्कारो यस्य तस्मै, भुजङ्गभावदूषिताय–भुजङ्गभावः इन्द्रभार्यायां शच्यां लम्पटत्वं तेन दूषिताय निन्दिताय नहुषाय नहुषाभिधानाय राज्ञे दत्तभुजङ्गभाव दत्तः भुजङ्गभावः सर्पत्वं विशालत्वं ययोस्तयोस्तथोक्तयोः, दुरवगाहमहावनयोः-दुरवगाहं दुष्प्रवेशं महत् विशालमनन्तं च वनं जलं च ययोस्तयोः । ('वने सलिलकानने' इत्यमरः) विन्ध्यशैलसिन्धुराजयोः विन्ध्याचलसमुद्रयोः गाधता औन्नत्यम् अगाधता गाम्भीर्यञ्च तयोस्तस्करमपहारकं करोदरम् करोहस्तः, उदरं कुक्षिश्च यस्य तं तथोक्तम्, उदरजातवेदसा

---

१. 'अरविन्दभवमिव वृन्दारकवृन्दैः' इति पाठा० ।

२. 'दत्तभुजङ्गमाय मतिनिरोध' इति पाठा० ।

३. 'कल्प' इति पाठा० !

४. 'उदरजातवेदोजितवातापि' इति पाठा० ।

५. 'लेपम्' इति पाठा० ।

६. 'ब्राह्मणश्रेष्ठम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जठरानलेन विरचितः कृतः, वातापी नाम दानवस्तस्य योऽवलेपो गर्वस्तस्य लोपः विनाशो येन तादृशम्, लोपामुद्रावल्लभम् लोपामुद्राया वल्लभं दयितम्, सकलसरितां सकलनदीनां वल्लभः प्रियः समुद्रः तस्य निःशेषीकरणे पानेन विनाशने वाडवं वडवानलरूपं, वाडवप्रशस्तम् वाडवा ब्राह्मणास्तेषु प्रशस्तं श्रेष्ठम्, ('वाडवो वडवानलः', 'आश्रमोऽस्त्री द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' इत्युभयत्रामरः)। अपास्तसमस्ताशम्—अपास्ताः त्यक्ताः समस्ताः समग्राः आशाः स्पृहा येन तं निःस्पृहमित्यर्थः, अपि, उपगतदक्षिणाशम् प्राप्तदक्षिणारूपद्रव्यातिस्पृहमिति विरोधः अधिष्ठितयाम्यदिशमित्यर्थेन विरोध परिहाराद्विरोधाभासः। ('आशा दिगतितृष्णयोः' इति वैजयन्ती)। अगस्त्यो दक्षिणामाशामाश्रित्याधितिष्ठतीत्यत्र ब्रह्माण्डपुराण वचनम्-'अगस्त्यो दक्षिणामाशामाश्रित्य नभसि स्थितः' इति। तथा वृषैकतानजन्मानम्—वृषैकतानं सुकृतैक निकेतनं जन्म यस्य तम्, वृषभायत्तजन्मानमिति च प्रतीयते। तथापि कुम्भजन्मानं घटोद्भवमिति विरोधः, सुकृतैकायतनमित्यर्थेन विरोध-परिहाराद्विरोधाभासः। भगवन्तं सकलसामर्थ्यसंपन्नमगस्त्यमपश्यत्। ('सुकृते वृषभे वृषः' इत्यमरः)। पुरा किल नहुषो नाम राजा पुण्यवशादिन्द्रभावं प्राप्य शच्या सह रन्तुं शिविकामारुह्य शचीभवनं प्रति गच्छन्, कामातुरतया शिविकावाहकान् अगस्त्यादीन् मुनीन् 'सर्प सर्प' इत्यवोचत्। तेन क्रुद्धो मुनिरगस्त्यस्तं 'सर्पो भव' इति शशापेति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया।

इस प्रकार वन के दर्शन से आश्चर्य-चकित राम अगस्त्य की पर्णशाला के पास पहुँचे तब मुनि के शिष्य उन्हें मुनि के पास ले गये। वहाँ उन्होंने उन भगवान् अगस्त्य का दर्शन किया, जिनके पादपद्म की वन्दना सकल लोक किया करते हैं, देवों से परिवृत ब्रह्मा के समान जो मुनियों से परिवृत रहते हैं, जिन्होंने [शची के प्रति] जारभाव ग्रहण करने के कारण दूषित नहुष के अहङ्कारको अपने कोपसूचक हुङ्कार से दूर कर उसे सर्पयोनि प्राप्त करायी, जिनके हाथ और उदर ने क्रमशः उस विन्ध्याचल और उस समुद्र की ऊँचाई तथा गहराई का अपहरण कर अवनत और रिक्त कर दिया, जिसके वन की विशालता और जिसके जल की अनन्तता का पार पाना गगनचारी पक्षियों के भी वश की बात नहीं थी। जिन्होंने जठराग्नि के द्वारा वातापी दानव के दर्प

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को नष्ट कर दिया, जो लोपामुद्रा के स्वामी प्रसिद्ध हैं और सकलनदियों के स्वामी समुद्र को निःशेष करने में वडवानल के समान हैं, जो ब्राह्मणों में अग्रगण्य हैं, जो सकल आशाओं को त्यागने पर भी दक्षिणाशा (१-दक्षिणदिशा, २-दक्षिणा की आशा) को अङ्गीकृत कर चुके हैं, जिनका जन्म वृषैकतान (१-सुकृत का अद्वितीय आश्रय २-वृषभायत्त) है, तथापि जो कुम्भज कहे जाते हैं।

प्रभामिवार्कीं तमसां निहन्त्रीं ब्राह्मीं दधानं नियमेन लक्ष्मीम्।
तपोनिधिं शौर्यनिधिः [1]प्रसन्नः स्वनाम संकीर्त्य ननाम रामः ॥१२॥

प्रभामिवेति। अर्कस्य सूर्यस्येयमित्यार्की सूर्यसम्बन्धिनी तां प्रभां कान्तिमिव तमसां मोहजनिताज्ञानानामन्धकाराणां च निहन्त्रीं विनाशकारिणीं ब्राह्मीं लक्ष्मीं ब्रह्मतेजः नियमेन धार्मिकसाधनया दधानं धारयन्तं तपोनिधिं तपस्विश्रेष्ठमगस्त्यं प्रसन्नः तादृशमुनिदर्शनेन प्रसन्नतां गतः, शौर्यनिधिः महाञ्छूरः रामः स्वनामसंकीर्त्य उच्चार्य ननाम नमश्चकार। गुरुजननमस्कारे तथा शास्त्रविधानादिति भावः। प्रभामिवेत्युपमाऽलङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम् ॥१२॥

अन्धकार–विनाशकारिणी सूर्यप्रभा-सी, अज्ञानान्धकार को दूर करने वाली ब्राह्मण्य समृद्धि को अपने धार्मिक अनुष्ठान द्वारा धारण करने वाले तपोनिधि अगस्त्य को प्रसन्न तथा शौर्यनिधि राम ने स्वनामोच्चारण पूर्वक प्रणाम किया ॥ १२ ॥

ततः परमहर्षेण महर्षिणा प्रणीताभिराशीभिः सह मुरशासनशरासनं सरसिजासनास्त्रं सौत्रामणं तूणीरयुग्मं रुक्ममयकोशं खड्गं च [2]प्रतिगृह्य तदाज्ञया गोदावरी[3]तटनिकटप्रकटितां पञ्चवटीमसेवत।

तत इति। ततः मुनिनमस्कारानन्तरम्, परमहर्षेण अतिप्रसन्नेन,ब्रह्मरूपस्य रामस्य स्वयमेवागत्य दर्शनदानेन धन्यम्मन्यत्वादिति भावः। महर्षिणा अगस्त्येन प्रणीताभिर्विरचिताभिराशीर्भिः सह शुभाशंसाभिः साकं (रामः) मुरशासनशरासनम्–मुरशासनो विष्णुस्तस्य शरासनं धनुः, सरसिजासनास्त्रम्–सरसिजासनः ब्रह्मा तस्य अस्त्रम्, सौत्रामणम् सुत्रामा इन्द्रस्तस्य

---

१. 'प्रपन्नः' इति पाठा०। २. 'प्रगृह्य' इति पाठा०।
३. 'तटप्रकटिताम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्धि तूणीरयुग्मम् अक्षयसायकं-तूणयुगलम्, रुक्ममयकोशम्—रुक्ममयः सुवर्णनिर्मितः कोशः पिधानं यस्य तं तथोक्तं खड्गम् असिं च ('कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघ-दिव्ययोः' इत्यमरः) प्रतिगृह्य आसाद्य तदाज्ञया अगस्त्यादेशेन गोदावरीतटस्य निकटे प्रकटितां प्रसिद्धां पञ्चवटीम्—पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी ताम्, तदुपलक्षिततया पञ्चवटीत्याख्यया प्रसिद्धां भूमिम् असेवत आश्रयत्वेन स्वीकृतवानित्यर्थः ।

इसके बाद परमप्रसन्न महर्षि अगस्त्य के द्वारा दिये गये आशीर्वाद के साथ वैष्णव धनुष, ब्रह्मास्त्र, इन्द्र के दो तरकस, सोने के म्यान से युक्त खड्ग प्राप्त करके राम ने उन्हीं महर्षि की आज्ञा से गोदावरी तट से समीप पञ्चवटी नामक स्थान को आश्रयरूप में स्वीकार किया ।

तत्र विस्तृतपक्षद्वन्द्वमप्यप्रति[1]द्वन्द्वं शौर्यावस्था[2]प्रत्ययं कृतापरोक्षमिव तार्क्ष्यं महामहीध्रकल्पं गृध्रराजमद्राक्षीत् ।

तत्रेति । तत्र पञ्चवट्यां (श्रीरामः) विस्तृतपक्षद्वन्द्वम् विस्तृतं विशालं पक्षद्वन्द्वं पक्षयुगलं यस्य तं तथोक्तमपि अप्रतिद्वन्द्वम्—न विद्यते प्रतिद्वन्द्वः प्रतिस्पर्धी यस्य तं तथोक्तम्, अद्वितीयवीरमित्यर्थः । शौर्यावस्थाप्रत्ययम्—शौर्यावस्थाया मूर्तिमत्याः शौर्यावस्थायाः प्रत्ययः बोधस्तम्, स्वदर्शनेन शौर्यावस्थां साक्षात्कारयन्तमित्यर्थः । कृतापरोक्षम्—कृतम् अपरोक्षं प्रत्यक्षं दर्शनं यस्य तं तथोक्तं तार्क्ष्यं गरुडमिव महामहीध्रकल्पम् अतिविशालपर्वतसदृशम् गृध्रराजं जटायुषम् अद्राक्षीत् दृष्टवान् । ('गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यः' इत्यमरः) ।

वहाँ विशालपक्षद्वन्द्व [पक्षयुगल] से युक्त होने पर भी अप्रतिद्वन्द्व [मुकाबिले में आनेवाले शत्रु से विहीन] शौर्यावस्था की प्रतीति करानेवाला अर्थात् मूर्तिमान् शौर्य-सा, प्रत्यक्ष दृश्यमान गरुड के समान महाभूधराकार गृध्रराज जटायु को राम ने देखा ।

पानेन हीनजलमब्धिमपास्य नूनं
मैनाक एष मुनिमाश्रयतीति जाताम् ।
शङ्कामिमां रघुपतेः कथितात्मवंश-
स्त्वत्तातमित्रमहमित्यहरज्जटायुः ॥ १३ ॥

---

१. 'अप्रतिद्वन्द्वशौर्यं' इति पाठा० ।   २. 'प्रत्ययाय' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पानेनेति। पानेन अगस्त्यमुनिकृतपानकरणेन हीनजलं जलविहीनं अब्धिं समुद्रमपास्य त्यक्त्वा नूनं निश्चयेन एषः दृश्यमानः मैनाकः तदाख्यपर्वतः मुनिमगस्त्यम् आश्रयति, इन्द्रकर्तृकपक्षच्छेदभयादात्मानं त्रातुं मुनिमगस्त्यं शरणमापन्न इत्याशयः। इत्येवं जातामुत्पन्नामिमां रघुपतेः श्रीरामचन्द्रस्य शङ्कां भ्रान्तिम्, कथितात्मवंशः वर्णितस्ववंशवृत्तान्तः जटायुः, त्वत्तातमित्रम् तव तातस्य पितुर्दशरथस्य मित्रमहमिति, अहरत् निराकरोत्। भ्रान्तिमानलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १३ ॥

अगस्त्य द्वारा पीलिये जाने से जलविहीन समुद्र को छोड़कर निश्चय ही यह मैनाक पर्वत मुनि (अगस्त्य) की शरण में आया हुआ है–राम के इस भ्रम को जटायु ने अपने कुल का परिचय देकर और अपने को राजादशरथ का मित्र कह कर दूर कर दिया ॥ १३ ॥

रामस्तु दशरथमिव तं पश्यन् [1]काश्यपसंभूतं संपातेरनुजमनुजरचितपर्णशालः पञ्चवटयां कञ्चित्कालं गमयामास।

रामस्त्विति। रामस्तु काश्यपसंभूतम्-कश्यपस्यापत्यं पुमान् काश्यपः गरुडाग्रजः अरुणः, तस्मात् संभूतमुत्पन्नम्, संपातेः तन्नाम्नो गृध्रराजस्य अनुजं कनिष्ठभ्रातरं तं जटायुषं दशरथमिव पश्यन् सादरमवलोकयन् पितृमित्रत्वान्नितरां संमानयन्नित्यर्थः, अनुजरचितपर्णशालः–अनुजेन लक्ष्मणेन रचिता निर्मिता पर्णशाला उटजो यस्मै स तथोक्तः, पञ्चवटयां कञ्चित्कालं कियन्तं समयं गमयामास यापितवान्।

राम ने कश्यपपुत्र अरुण से उत्पन्न, संपाति के अनुज उस जटायु को पिता की भाँति आदरदृष्टि से देखा और अनुज लक्ष्मण के द्वारा रचित पर्णशाला में रहते हुए पञ्चवटी में कुछ समय विताया।

अथ कदाचिदुपचीयमानमनोभववैभवः पाककपिश[2]कलममञ्जरीपुञ्जपिञ्जरीभूतकेदारप्रपञ्चः[3]पञ्चबाणरणप्रयाणोचितवीरपाणवत्पत्रपुटपात्रदृश्यावश्यायबिन्दुसंदोहश्चन्द्रातपे निरानन्दतां चन्दनानुलेपने निर्लोलुपतां चन्द्रशालायां निराशतां [4]चन्द्रोपलस्थले निरास्थतां वाताय-

---

१. 'काश्यपकुलसंभूतम्' इति पाठा०। २. 'कलममञ्जमञ्जरी' इति पाठा०। ३. 'पञ्चबाणप्रयाणो' इति पाठा०। ४. 'चन्द्रकान्तस्थले' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नसेवने निरुत्सुकतां वापीकूपोपकण्ठे निरुत्कण्ठतां वासरावसानेऽ[1]नाद-रतां वारिविहारे निराकाङ्क्षतामुत्पलमालायामुपेक्ष्यतामुपवनभजनेऽप्युद्विग्नतां [2]च जनानां जनयन्गम्भीराभोगगर्भगृहस्य च [3]घनेष्टकारचितभित्तेरश्लक्ष्णतिरस्करिणीपटलस्य च शशोदररोममृदुकम्बलस्य च कालागरुधूमस्य च काश्मीराङ्गरागस्य च निर्धूमाङ्गारभरितहसन्तिकायन्त्रस्य च सुभगंकरः, रेणु[4]कणायमानतुषारधूलिधूसरवासरः सरसीरुह[5]दावपावकस्तुहिनव्रणितला[6]सिकाधरदलदूरीकृतदंशकृत्यः प्रक्षीणतारुण्यपण्याङ्गनाङ्गवत्प्रयातसौभाग्यप्रपासन्निवेशस्तालवृन्तविश्रान्ति – कालः[7]कामिनीस्तनभरगिरिदुर्गसीम्नि निर्भयनिलीननिदाघभावो दिवाभीतव्रातस्याप्यनतिभयंकरदिवाकरश्चकोरनिकरस्याप्यनतिक्षेमङ्करसुधा[8]करः कादम्बकदम्बस्याप्यनतिप्रियं[9]करकमलाकरः[10]कृतकरयुगलस्वस्तिकाबन्धनतया[11]नीहारातङ्कशङ्कया हृदयकमलमिव गोपायन्तमश्रान्तदन्तवीणाव्यापारवेपमानाधरपुटतया शीतिकापिशाचिकानिर्हरणाय निपुणं मन्त्रजपमिव कुर्वन्तमविरलपुलकपालीककम्बलितकलेवरतया सकरुणविधिवितीर्णरोमकम्बलकृताङ्गरक्षमिव भिक्षामटन्तं दुर्गतवर्गं निर्घृणा कदाचिदपि कमलानालो[12]कितवतीति तस्यै सासूय इव तदीयावासताम[13]रसं सपत्रकोशं विनाशयन्गगनमतङ्गजकरपुष्करोत्थि[14]तशीकरनिकराकारैरतिपरुषस्मरशरता[15]पप्रतप्तगगनाङ्गनाङ्गस्वेद

---

१. 'निरादरताम्' इति पाठा० । २. 'च' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'घनेष्टिकारचितभित्तिश्लक्ष्ण' इति पाठा० ।
४. 'करेणुकरनिकरवर्मकणायमान' इति पा० । ५. 'गहनदाव वनदाव' इति च पा०
६. 'लासिकाधरदूरीकृतवंशकृत्यः' इति पाठा० । ७. 'करः' इति पाठा० ।
८. 'निशाकरः' इति पाठा० । ९. 'प्रीतिकर' इति पाठा० ।
१०. 'करयुगकृत' इति पाठा० । ११. 'नीहारान्तक' इति पाठा० ।
१२. 'नालोकयतीति' इति पाठा० ।
१३. 'तामरसकोशं नाशयन्नङ्गजमतंगज' इति पाठा० ।
१४. 'शशिकर' इति पाठा० । १५. 'जाततापं' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्स्वेद[1]सदृक्षैर[2]क्षीर्णहिमप्रकरैरध्वगान्तःकरणानि सीमन्तयन्हेमन्तसमयः समुदजृम्भत ।

अथेति । अथ पञ्चवट्यां कियत्कालव्यतियापनान्तरम्, कदाचित् कस्मिंश्चित्काले, शरत्कालावसान इत्यर्थः । उपचीयमानमनोभववैभवः—उपचीयमानः प्रवर्धमानः मनोभवस्य कामस्य वैभवः प्रभावो यस्मिन् स तथोक्तः, पाकेन पक्वभावेन कपिशा ईषत्पीतवर्णा याः कलमञ्जर्यः शालिकणिशानि तासां पुञ्जेन समुदयेन पिञ्जरीभूतः पीतवर्णतां गतः केदारप्रपञ्चः क्षेत्रविस्तारो यस्मिन् स तथोक्तः ('कणिशं सस्यमञ्जरी' इत्यमरः) पञ्चबाणस्य कामदेवस्य यत् रणप्रयाणं युद्धयात्राप्रारम्भः तदुचितं यत् वीरपाणं युद्धोत्साहवर्धनार्थं वीरैरवश्यकरणीयं मधुपानम् तद्वत् तदिव पत्रपुटपात्रेषु पत्रपुटान्येव पात्राणि चषकास्तेषु दृश्यः संलक्ष्यमाणः अवश्यायविन्दुसन्दोहः नीहारकणसमूहो यस्मिन् स तथोक्तः, ('अवश्यायस्तु नीहारः' इत्यमरः) । चन्द्रातपे चन्द्रिकायां निरानन्दताम् आनन्दराहित्यम्, चन्दनानुलेपने चन्दनचर्चायां निर्लोलुपतां निरपेक्षतां चन्द्रशालायाम् शिरोगृहे ('चन्द्रशाला शिरोगृहम्' इत्यमरः) निराशताम् अभिलाषराहित्यं चन्द्रोपलस्थले चन्द्रकान्तमणिबद्धकुट्टिमे ('उपलः प्रस्तरे मणौ' इति विश्वः) । निरास्थतामासक्तिराहित्यम्, वातायनसेवने गवाक्षेभ्य आगच्छतो वायोः सेवन इत्यर्थः निरुत्सुकतामनुत्कण्ठतां वापीकूपोपकण्ठे वापीनां कूपानां चोपकण्ठे परिसरसञ्चारे निरुत्कण्ठतां निरुल्लासताम्, वासरावसाने दिनावसानसमये अनादरताम् अनादरभावम् वारिविहारे जलक्रीडायां निराकांक्षताम् आकाङ्क्षाराहित्यम्, उत्पलमालायाम् कमलस्रजि उपेक्ष्यताम् उदासदीनताम्, उपवनभजने उद्यानसेवनेऽपि उद्विग्नताम् असहताम् जनानां जनयन् उत्पादयन्, चन्द्रातपादयः शीतलोपचारा हेमन्तकालेऽनुपयुक्तत्वेन लोकैर्नाद्रियन्त इति भावः । गम्भीराभोगगर्भगृहस्य गम्भीरः तुषारवातादिदुष्प्रवेशगाम्भीर्ययुक्तः आभोगो विस्तारो यस्य तादृशं यत् गर्भगृहं वासगृहम् ('गर्भागारं वासगृहम्' इत्यमरः) तस्य च तथा घनेष्टकारचित्तभित्तेः घनं निबिडं यथा तथा इष्टकाभिः रचिता या भित्तिः कुड्यं तस्याः शीतनि-

---

१. 'स्वेदबिन्दु' इति पाठा० । २. 'अक्षीणमहिमहिमप्रसारैः' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रोधकतयोपयोगित्वादिति भावः। अश्लक्ष्णं सुघटितं यत् तिरस्करिणीपटलं जवनिकापटलं तस्य च, ('प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा' इत्यमरः)। शशोदररोममृदुकम्बलस्य शशस्य शशकस्य उदरे कुक्षिप्रदेशे यानि रोमाणि तद्वत् मृदु कोमलं यत्कम्बलं तस्य च, कालागरुधूमस्य च, काश्मीराङ्गरागस्य कुङ्कुमलेपस्य च, तस्य शीतदोषनिवर्तकत्वादिति भावः। निर्धूमाङ्गारैः धूमरहितज्वलदङ्गारैः भरितं पूर्णं यत् हसन्तिकायन्त्रमङ्गारशकटी नाम यन्त्रं तस्य च ('अङ्गारधनिकाङ्गारशकट्यपि हसन्त्यपि' इत्यमरः)। सुभगंकरः सौभाग्यकरः, शैत्यक्लेशनिवर्तकत्वेन गर्भागारादीनां प्रीतिपात्रत्वादिति भावः। अत्र तुल्ययोगिताऽलङ्कारः, गर्भगृहादीनां सौभाग्यलाभरूपैकधर्माभिसम्बन्धात्। रेणुकणायमानाः रेणुकणवत् संलक्ष्यमाणाः अतिसूक्ष्मा इत्यर्थः तुषारधूलयः नीहारचूर्णाः ताभिः धूसरः मलिनः वासरः दिनं यस्मिन् स तथोक्तः। सरसीरुहदावपावकः– सरसीरुहाणां कमलानां दावपावकः वनानलः दाहक इति यावत् तुषारपातेन तद्विनाशकत्वादिति भावः। तुहिनेन तुषारेण व्रणितानि व्रणयुक्तानि कृतानि यानि लासिकानां वेश्यानामधरदलानि ओष्ठपल्लवानि तेषां दूरीकृतं स्फुटिततया दंशक्रियाऽसहत्वात् परित्याजितं दंशकृत्यं दन्तक्षतक्रिया येन तादृशः, ('नर्तकीलासिके समे' इत्यमरः) प्रक्षीणतारुण्यपण्याङ्गनाङ्गवत्प्रयातसौभाग्यप्रपासन्निवेशः- प्रक्षीणतारुण्याः अपगतयौवनाः याः पण्याङ्गनाः वेश्यास्तासामङ्गानि शरीरावयवाः, तद्वत् तानीव प्रयातसौभाग्यः अपगतरामणीयकः प्रपासन्निवेशः पयश्शालासंस्थानं यस्मिन् तादृशः, यथा वार्द्धक्ये वेश्यानामङ्गानि कामिजनेभ्यो न रोचन्ते तथैव प्रपा हेमन्ते पथिकेभ्यो न रोचन्त इति भावः। उपमा' लंकारः। तालवृन्तविश्रान्तिकालः – व्यजनानां विश्रामसमयः, गीष्मर्ताविव तेषामानन्दप्रदायित्वादिति भावः। (व्यजनं तालवृन्तकम्' इत्यमरः)। कामिनीस्तनभरगिरिदुर्गसीम्नि–कामिनीनां तरुणीनां स्तनभरः कुचभार एव गिरिदुर्गसीमा गिरिदुर्गस्थानं तत्र, निर्भयनिलीननिदाघभावः – निर्भयं निरातङ्कं यथा तथा निलीनः प्रच्छन्नः निदाघभावः ऊष्मा यस्मिन् स तथोक्तः। तदानीं कामिनीकुचभरस्योष्णत्वादिति भावः। अतो रूपकोत्प्रेक्षयोः संकरः। दिवाभीतव्रातस्यापि – दिवाभीताः उलूकपक्षिणस्तेषां व्रातस्य समुदयस्यापि ('उलूके तु वायसारातिपेचकौ। दिवान्धः कौशिको घूको दिवाभीतो निशाटनः'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ इत्यमरः)। अनतिभयंकरदिवाकरः–अनतिभयंकरः प्रकाशमान्द्यादीषत्--भयंकरः दिवाकरः सूर्यो यस्मिन् स तथोक्तः। चकोरनिकरस्यापि–चकोराणां चन्द्रिकापायिपक्षिणां निकरस्य समुदयस्यापि। अनतिक्षेमङ्करसुधाकरः–अनतिक्षेमङ्करः नीहारावृत्ततया मन्दरश्मित्वादीषद्धितसाधकः सुधाकरः चन्द्रो यत्र स तथोक्तः। कादम्बकदम्बस्य हंसनिवहस्यापि ('कादम्बः कलहंसः स्यात्' इत्यमरः) अनतिप्रियङ्करः शैत्याधिक्यादनभीष्टः कमलाकरः पद्मसरो यस्यिन् स तथोक्तः। कृतं करयुगलस्य स्वस्तिकाबन्धनं शीतबाधया व्यत्यस्तभावेनोर--स्यवस्थापनं येन स तथोक्तस्तस्य भावस्तत्ता तया, नीहारातङ्कशङ्कयातुषारभयसंभावनया हृदयकमलम् स्वहृदयपद्मं गोपायन्तं रक्षन्तमिवेत्युत्प्रेक्षा। दरिद्रो जनो वसनकम्बलाद्याच्छादनाभावे मन्ये कमलमिव स्वहृदयं तुषारभ-याद्रक्षितुमेव स्वबाहू तदुपरि स्वस्तिकाकारेण स्थापयतीति भावः। अश्रान्तं निरन्तरं यो दन्तवीणा व्यापारः दन्तरूप-वीणावादनम्, शैत्यजनितकम्पवशाद् दन्तानां कटकटाकरणमित्यर्थः, तेन वेपमानः कम्पमानः अधरपुटो यस्य भावस्तत्ता तया, शीतिका शैत्यबाधैव पिशाचिका तस्या निर्हरणाय निराकरणाय निपुणां तत्र कर्मणि दक्षं मन्त्रजपं मन्त्रोच्चारणं कुर्वन्तमिवेत्युत्प्रेक्षा। अविरलपुलकपाली सान्द्ररोमाञ्चराजिस्तया कम्बलितमाच्छादितं कलेवरं शरीरं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया, सकरुणेन दयालुना विधिना ब्रह्मणा वितीर्णं प्रदत्तं यद्रोम-कम्बलं लोमरूपकम्बलं तेन कृता अङ्गरक्षा यस्य तमिव, दरिद्रजनस्य शरीरे शैत्येन रोमाञ्चो जायते, मन्ये सदयो विधाता दत्तेन तद्रूपकम्बलेन तच्छरीरं शैत्याद्रक्षतीत्यर्थः। तादृशं भिक्षामटन्तं भिक्षाचरणपरायणं दुर्गतवर्गम् दरिद्र-समुदयम् ('दरिद्रो दुर्गतोऽपि सः' इत्यमरः) निर्घृणा निष्करुणा ('कारुण्यं करुणा घृणा' इत्यमरः) कमला लक्ष्मीः कदाचिदपि न आलोकितवती करुणा-कटाक्षेण कदापि कृतार्थं न कृतवतीत्यर्थः, इति हेतोः तस्यै कमलायै ('क्रुध-द्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इति चतुर्थी) सासूयः सेर्ष्यः सन्निवेत्युत्प्रेक्षा। सपत्रकोशम् पर्णकुड्मल-सहितं वाहनार्थौघसहितं च ('पत्रं वाहनपर्णयोः' इति विश्वः, 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इत्यमरश्च) तदीयं कमलासम्बन्धि आवासतामरसं निवासकमलम् (पङ्केरुहं तामरसम्' इति कमलपर्यायेष्वमरः)। विनाशयन् तुषारेण दहन्नित्यर्थः। गगनमेव मतङ्गजः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गजस्तस्य करपुष्करेण शुण्डाग्रेण उत्थितः उत्क्षिप्तो यः शीकरनिकरः जलकण-निवहः तदाकारैः तत्तुल्यैः, अतिपरुषस्मरशरतापेन अतिपरुषः अतिभीषणो यः स्मरशरतापः मन्मथबाणज्वरः तेन प्रततं सन्ततं यद् गगनमेवाङ्गना युवतिः तस्या अङ्गं शरीरं तस्मात् स्रवन् च्यवमानो यः स्वेदो घर्मजलकणनिवहस्तत्स-दृक्षैस्तत्तुल्यैः अक्षीणहिमप्रकरैः अविच्छिन्नतुषारासारैः करणभूतैः अध्वगान्तः करणानि अध्वगाः पन्थास्तेषामन्तःकरणानि हृदयानि सीमन्तयन् द्विधाकुर्वन् विदारयन्निति यावत् । सीमन्तं कुर्वन्निति सीमन्तयन् ('तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच् । णिजन्ताल्लटः शत्रादेशः । हेमन्तसमयः हेमन्तकालः समुदजृम्भत प्राकटत् । लक्ष्मीप्रतीकारदुष्करतया तदीयावासकमलविनाशनप्रतिपादनात् प्रत्यनीकाऽलङ्कारः । 'प्रत्यनीकमशक्तेन प्रतीकारे रिपोर्यदि । तदीयस्य तिरस्कारस्तस्यैवोत्कर्षसाधकः ॥' इति लक्षणात् । तत्रापि लक्ष्मीकर्तृकदरिद्रजनकर्म-कावलोकनाभावजन्यैष्यरूपहेतोरुत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा । अतो द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः । अन्यत्र सर्वत्र रूपकोत्प्रेक्षयोः संकरः ।

पञ्चवटी में सीता–लक्ष्मण के साथ राम को रहते कुछ दिन बीत जाने पर हेमन्त का समय आ गया । कामदेव का प्रभाव बढ़ने लगा । पकी-पकी, पीली-पीली धान की बालियों से खेत पीले-पीले दिखायी देने लगे । पत्रपुट रूप चषक में ओस की बूँदे, वीर कामदेव की रणयात्रा से उसके लिए प्रस्तुत 'वीरपाण' के सदृश प्रतीत हो रही थीं । हेमन्त ने लोगों के हृदय में चन्द्रिका के प्रति निरानन्दता, चन्दनलेप के प्रति उपेक्षा, अटारी के प्रति अनिच्छा, चन्द्रकान्तमणिजटित फ़र्श पर बैठने में अरुचि, झरोखों के प्रति निरुत्सुकता, वापी, कूप आदि शीतल स्थानों पर टहलने में निरुत्कण्ठता, दिनावसान के प्रति अनादरभाव, जलक्रीड़ा में अनाकाङ्क्षा, कमलमाल्य के प्रति उदासीनता एवं उद्यान-सेवन के प्रति उद्विग्नता उत्पन्न कर दी । (इसके विपरीत) शीतलवायु आदि जिसमें न जा सके ऐसे गम्भीर आवासगृह, ईंटों की बनी ठोस दीवार, सुघटित कनात-पर्दा, खरगोश के उदर के रोंये के समान मुलायम कम्बल, अगर के धूम, कुङ्कुम के लेप एवं धूमरहित जलते अंगारों से भरी अँगीठी के सौभाग्य को बढ़ा दिया । दिन, धूल कणों के समान [अति सूक्ष्म] तुषार कणों से मलिन हो गया । कमलों के लिए दावानल स्वरूप हेमन्त ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शैत्याधिक्य से वाराङ्गनाओं के अधरपल्लवों को (फाड़कर) ऐसा व्रणयुक्त बना दिया कि वे कामिजनों की दन्तक्षत क्रिया से छुट्टी पा गये। प्रपा (पौसला) का स्थान बूढ़ी वेश्या के अङ्गों के समान सौभाग्यहीन हो गया। तालवृन्तों (पंखा) को विश्राम मिल गया। ग्रीष्म का ताप [हेमन्त के डर से भाग कर] कामिनियों के कुचमण्डल रूप गिरिदुर्ग में जाकर निर्भयभाव से छिप गया। सूर्य का प्रकाश इतना मन्द पड़ गया कि वह उलूकों को भी [पहिले की तरह] अब बहुत भयंकर नहीं लगता है। [तुषाराच्छन्न अतएव मन्दरश्मि] चन्द्रमा चकोरों के लिए भी उतना हितसाधक नहीं रह गया। पद्मसरोवर हंसों को भी उतना प्रिय नहीं रह गया। दरिद्रजन दोनों बाहुओं को स्वस्तिक के आकार में (अर्थात् एक को दूसरे पर रख कर) समेटे हुए, मानों पाले के भय की संभावना से अपने हृदयरूप कमल की रक्षा में तत्पर हैं। उनके दाँत निरन्तर कटकटाया करते हैं, जिससे होंठ काँपा करते हैं, मानो वे ठंडक पिशाचिनी को भगाने के लिए अमोघ मन्त्र जप रहे हैं। उन गरीबों का शरीर रोमाञ्च से आच्छादित रहता है, मानों दयालु ब्रह्मा ने उनके शरीर पर रोमकम्बल डाल दिये हों जिनसे उनके शरीर की रक्षा हो रही हो। भीख माँगने वाले ऐसे दीन दुःखी लोगों को इस निर्दय लक्ष्मी ने अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से कभी नहीं देखा, इसी से लक्ष्मी के विरुद्ध होकर हेमन्त ने उसके आवासस्थान कमल को पत्र [१–पर्ण २–वाहन और कोश [१–कुड्मल २–निधि] के सहित ध्वस्त कर दिया। आकाश–रूप गज के शुण्डाग्र से निकलने वाले जलबिन्दुओं के समान तथा अत्यन्त भीषण कामज्वर के सन्ताप से सन्तप्त आकाशरूप रमणी के अङ्गों से चूने वाले स्वेदबिन्दुओं के समान प्रतीत होने वाले अत्यन्त तुषारापात से वह हेमन्त, बटोही जनों के हृदय को विदीर्ण करने लगा।

यत्र कान्ता न पश्यन्ति क्लान्ता विरहवह्निना।
निशावसानवेलां च वेलां च व्यसनाम्बुधेः॥ १४॥

यत्रेति। यत्र यस्मिन् हेमन्ते, विरहवह्निना प्रियवियोगाग्निना क्लान्ताः सातिशयपीडिताः निशावसानवेलां रात्रिसमाप्तिकालं व्यसनाम्बुधेः दुःखसागरस्य वेलां तटं न पश्यन्ति। दुःसहविरहवेदनावशाद् रात्रिरीदृशी दीर्घतरा प्रतीयते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत्तस्या अन्तं न सम्भावयन्ति तथा च दुःखसागरस्य तटं कदाचित् प्राप्स्याम इत्याशां न कुर्वन्तीत्याशयः। अत्र प्रकृतयोः वेलयोरदर्शनरूपैकधर्माभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिताऽलङ्कारः ॥ १४ ॥

जिस हेमन्त ऋतु में विरहाग्नि से पीड़ित स्त्रियाँ रात के अन्त होने के समय को तथा दुःख सागर के तट को नहीं देखती हैं (अर्थात् इस रात और इस दुःख का कभी अन्त भी होगा—ऐसी आशा उन्हें दिखायी नहीं पड़ती है) ॥ १४ ॥

तत्र पर्णशालामध्यमध्यासीनं लक्ष्मणाग्रजमु[1]पससाद शूर्पणखा ।

तत्रेति। तत्र हेमन्ते, शूर्पणखा शूर्पवन्नखानि यस्याः सा शूर्पणखा नाम रावणभगिनी ('नखमुखात्संज्ञायाम्' इति न ङीप्। 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वम्।) पर्णशालामध्यम् उटजाभ्यन्तरम् ('अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम्) अध्यासीनम् अधितिष्ठन्तम्, लक्ष्मणाग्रजं श्रीरामम् उपससाद प्राप। कामातुरा शूर्पणखा रामस्य समीपे समागतेत्यर्थः।

उसी समय पर्णशाला में बैठे हुए श्रीराम जी के पास शूर्पणखा नाम की राक्षसी पहुँची।

तस्मिन्नुज्जृम्भितोष्णस्तनतटदयिताहीनसंहारकाले
काले प्रालेयधाराकवचितगगनाभोगदिक्चक्रवाले।
कामान्धा राक्षसी सा पतिमतिमतनोन्मैथिलीप्राणनाथे
लक्ष्मीलीलारविन्दे नवपिशितधियं तन्वती श्येनिकेव ॥१५॥

तस्मिन्निति। प्रालेयधाराभिस्तुषारासारैः कवचितः आच्छादितः गगनाभोगः आकाशमण्डलं दिक्चक्रवालं दिङ्मण्डलं च यस्मिंस्तादृशे, उज्जृम्भितः प्रवृद्धः उष्णः ऊष्मा यस्मिन् तादृशं स्तनतटं कुचमण्डलं यासां तादृशीभिर्दयिताभिः प्रियाभिर्हीना वियुक्ता विरहिण इत्यर्थः, तेषां संहारः मारणम्, तत्र काले कृतान्तरूपे तस्मिन् हेमन्ते काले, लक्ष्मीलीलारविन्दे–लक्ष्मीकरवर्तिक्रीडाकमले, नवपिशितधियम् प्रत्यग्रमांसखण्डबुद्धिं तन्वती कुर्वती प्रत्यग्रमांसखण्डं मन्यमानेत्यर्थः (भ्रान्तिमान् अलंकारः) ('पिशितं तरसं मांसम्' इत्यमरः)

---

१. 'उपससर्प इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्येनिकेव श्येनाङ्गनेव सा कामान्धा कामेन मन्मथेन अन्धा सदसद्विवेकशून्या आकुलेत्यर्थः, राक्षसी शूर्पणखा मैथिलीप्राणनाथे सीतावल्लभे श्रीरामचन्द्रे पतिमतिम् स्वामिबुद्धिमतनोत् अकरोत् रामो मे पतिर्भवत्विति बुद्ध्या राममुपससादेत्यर्थः। उपमाऽलंकारः। सा चोक्तेन भ्रान्तिमता संकीर्यते। स्रग्धरावृत्तम् ॥ १५ ॥

हिमवृष्टि से आकाश एवं दिङ्मण्डल को व्याप्त करने वाले तथा उष्णकुचमण्डलयुक्त तरुणियों से वियुक्त जनों को मारने में कृतान्त स्वरूप उस हेमन्त काल में, लक्ष्मी के लीला कमल को ताजा मांस खण्ड समझने वाली श्येनी की तरह उस कामान्धा राक्षसी शूर्पणखा ने मैथिली-वल्लभ श्रीराम जी के विषय में पति बुद्धि कर ली [अर्थात् उन्हें अपना पति बनाने के विचार से उनसे उस विषय में प्रार्थना की] ॥ १५ ॥

ततस्तेन जानकीजानिरिति जानीहि [1]जनमिमं ममानुजमतिमनुज-[2]बलमबालमबलावियुक्तं युक्तमाश्रयितुं तवेति रामेण प्रत्याख्याता सौमित्रिमुपेत्य यथामनीषितमभाषत।

तत इति। ततः तदनन्तरम्, इमं मल्लक्षणं जनं जानकी जाया यस्य स जानकीजानिः सीतापतिः इति जानीहि अवगच्छ ('जायायानिङ्' इति निङादेशः) अहं सीतया भार्यया युक्तस्तस्मान्नाहं तव योग्य इति जानीहीत्यर्थः। मम अनुजं सोदरं लघुभ्रातरम् अतिमनुजबलम्—मनुजानतिक्रान्तमतिमनुजम् (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति प्रादि समासः) अतिमनुजं बलं भुजबलं यस्य तं तथोक्तम्, मानवाधिकभुजबलसम्पन्नमित्यर्थः। अबालम् तरुणम्, अबलावियुक्तम् प्रियारहितम् आश्रयितुम् भार्यात्वेनानुवर्तितुं तव युक्तम् योग्यम्, त्वं तमेव पतिं वृण्विति भावः। इत्येवं प्रकारेण रामेण प्रत्याख्याता निराकृता (सा शूर्पणखा) सौमित्रिमुपेत्य लक्ष्मणसकाशमुपगम्य यथामनीषितम् यथास्वाभिलषितम् अभाषत अवोचत, 'भवान् मे स्वामी भवतु' इति प्रार्थयामासेत्यर्थः।

इसके बाद राम ने शूर्पणखा से कहा—'तुम जान लो कि मेरे पास मेरी स्त्री जानकी विद्यमान है, [अतः मेरा वरण करना तुम्हारे लिए ठीक नहीं

१. 'जनममुम्' इति पाठा०। २. 'बलमबला' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है] मेरा छोटा भाई मनुष्यों से अधिक सामर्थ्यशाली, तरुण तथा स्त्री-रहित यह लक्ष्मण तुम्हारे योग्य है, उसका आश्रय लेना तुम्हारे लिए ठीक होगा।' इस प्रकार राम से तिरस्कृत होकर उसने लक्ष्मण के पास पहुँचकर उनसे अपना मनोरथ कहा।

तेनापि भद्रे! तस्य दासोऽहं दासभार्यापदमनार्यं नन्वार्याया: [1]कुलजातायास्तस्मात्तमेव[2]भजेथाः।

तेनापीति। तेन लक्ष्मणेन अपि, (साऽभिहितेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः) भद्रे! कल्याणि! तस्य आर्यस्य रामस्य अहं लक्ष्मणो दासः, आर्यायाः पूज्यायाः कुलजातायाः सत्कुलोद्भवाया भवत्याः, दासभार्यापदम् दासस्य भृत्यस्य भार्या तस्याः पदं स्थानम् दासीत्वमित्यर्थः ('पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः) अनार्यं ननु अयुक्तं खलु। तस्मात्कारणात् तमेव आर्यं श्रीराममेव भजेथाः प्राप्नुयाः दासस्वामिनोर्मध्ये स्वामिवरणमेव भवत्या आर्याया युक्तमिति भावः।

लक्ष्मण ने भी शूर्पणखा से कहा—'भद्रे! मैं तो उनका दास हूँ। आप जैसी आर्या और कुलजा के लिए दास की भार्या होना उपयुक्त नहीं है, इसलिए आप [मुझे छोड़कर] उन्हीं को ही वरण करें।

[3]अक्रूरसत्त्वां भयानककाननसञ्चाराचतुरां विहाय वैदेहीं तत्रभवतीमेवासौ परिग्रहीष्यतीति लक्ष्मणेनाभिहिता [4]वीतमतिः सा तदीयं [5]वचनमनुमतममनुत।

अक्रूरेति। अक्रूरसत्त्वाम् मृदुचित्ताम्, भयानके भयङ्करे कानने अरण्ये सञ्चारः सञ्चरणं तत्र अचतुराम् अनिपुणाम् अशक्तामिति यावत्, वैदेहीं सीतां विहाय त्यक्त्वा तत्रभवतीम् पूज्यां त्वामेव कठिनहृदयतया कठिनकार्यक्षमां काननभ्रमणनिपुणाम् असौ रामः परिग्रहीष्यति भार्यात्वेन स्वीकरिष्यति इत्येवं प्रकारेण लक्ष्मणेन अभिहिता उक्ता वीतमतिः नष्टबुद्धिः सा शूर्पणखा तदीयं

१. 'कुलसम्भूतायाः' इति पाठा०। २. 'एतदनन्तरम्' 'किञ्च' इत्यधिकं क्वचित्।
३. 'क्रूरसत्त्व' इति पाठा०। ४. 'विहितं हितमिति तदीयम् इति पाठा०।
५. 'वचनममनुत' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मणोक्तं वचनमनुमतमनुकूलम् अमनुत अजानात्—तदुक्तौ विश्वासमकरोदित्याशयः। अत्र वीतमतिपदार्थस्य 'अमनुत' इति क्रियापदार्थं प्रति हेतुत्वात् पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

कोमल चित्तवाली और वनभ्रमण में अशक्ता सीता को छोड़ कर राम जी तुम्हें ही स्वीकार करेंगे, इस प्रकार लक्ष्मण द्वारा कही गयी नष्टबुद्धि वह [शूर्पणखा] उनकी बात को अनुकूल समझ बैठी।

दशरथात्मजयुग्मनिरीक्षणक्षणसमाकुलबुद्धिरियं दधौ।
उभयकूल[1]समस्थितशाद्वलभ्रमगतागतखिन्नगवीदशाम् ॥ १६ ॥

दशरथेति। दशरथात्मजयुग्मस्य दशरथपुत्रद्वितयस्य रामलक्ष्मणयोरित्यर्थः, निरीक्षण–क्षणेन कामातुरदृष्टया विलोकनोत्सवेन समाकुला अतिव्यग्रा बुद्धिर्यस्याः सा तथोक्ता, अनयोः कतरं भजामीति निर्णेतुमपारयन्तीत्यर्थः, इयं शूर्पणखा उभे च ते कूले च उभयकूले (वृत्तिविषये उभशब्दस्थाने उभयशब्दप्रयोग एव साधुः 'उभादुदात्तो नित्यम्' इति नित्यग्रहणस्येदं प्रयोजनं वृत्तिविषय उभशब्दप्रयोगो मा भूत् उभयशब्दस्यैव यथा स्यादिति कैयटोक्तेः) तयोः पूर्वोत्तरतटयोः समस्थितौ समभावेन वर्तमानौ शाद्वलौ शष्पसम्पन्नदेशौ तयोर्यो भ्रमः कुत्रत्यं शष्पमश्नामीति चित्तसंभ्रमः, तेन यद्गतागतम् यातायातं तेन खिन्ना खेदं प्राप्ता परिश्रान्ता या गौः तस्या दशामवस्थां दधौ प्राप। यथोभयोः कूलयोः समभावेन स्थितौ शष्पश्यामलप्रदेशौ विलोक्य कतरस्मिन् कूले स्थितं घासमश्नामीति निर्णेतुमशक्ता काचिद् गौः क्षणमेकं कूलं याति क्षणमपरं कूलमायातीति यातायातेन परिश्रान्ता जायते तथैव समभावेन सौन्दर्यसम्पन्नौ रामलक्ष्मणौ विलोक्य शूर्पणखा कतरमाश्रयामीति विषये निश्चयं कर्तुमपारयन्ती क्षणं रामपार्श्वे क्षणं लक्ष्मणसकाशं यात्यायाति चेति यातायातेनात्मानं खेदयन्ती तयोः कमपि नावाप्नोदिति भावः। अत्रान्यस्य धर्मं कथमन्यो वहत्विति शूर्पणखाया गोदशाधारणमसम्भवात्तद्दशासदृशीं दशामवगमयञ्छूर्पणखाया गोश्च बिम्बप्रतिबिम्बभावं बोधयतीत्यसंभवद्वस्तुसम्बन्धनिदर्शनाऽलङ्कारः। तल्लक्षणं यथा—'सम्भवन् वस्तु-

१. 'समुत्थित' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित्। यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना ॥' इति। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्। 'द्रुतविलम्बितमाहनभौ भरौ' इति तल्लक्षणात् ॥ १६ ॥

दशरथ के दोनों पुत्रों [राम और लक्ष्मण] को देखने की प्रसन्नता में [किसका वरण करूँ इस विषय में] दोलायमान चित्ता शूर्पणखा उस गाय की दशा को प्राप्त हुई जो [किसी नदी के] दोनों तटों पर घास से हरे-भरे प्रदेश को देखकर अनिश्चयवश दोनों जगह बार-बार जाने-आने से परेशान होती है ॥ १६ ॥

वृषस्यन्ती वृषस्कन्धं राघवं रावणानुजा।
भूयः शूर्पणखा भेजे शूर्पकारातिबाधिता ॥ १७ ॥

वृषस्यन्तीति। वृषं पुरुषमात्मन इच्छतीति वृषस्यन्ती कामुकी ('वृषस्यन्ती तु कामुकी' इत्यमरः, 'वृषः स्याद् वासवे धर्मे सौरभेये च शुक्लजे। पुंराशि-भेदयोः शृङ्ग्यां मूषक-श्रेष्ठयोरपि' ॥ इति विश्वः) रावणानुजा रावणभगिनी शूर्पणखा शूर्पकारातिबाधिता—शूर्पकः शम्बरापरनामधेयः कश्चिदसुरस्तस्य अरातिः शत्रुः कामदेवः, तेन बाधिता पीडिता सती, वृषस्य वृषभस्य स्कन्धाविव स्कन्धौ यस्य तं राघवं श्रीरामं भूयः पुनरपि भेजे प्राप ॥ १७ ॥

कामुकी कामपीडिता रावणभगिनी शूर्पणखा [एक बार तिरस्कृत होने पर भी] वृषभस्कन्ध राम के पास पुनः आयी ॥ १७ ॥

तदनु जनकदुहितुरनितर[1]युवतियोग्यं भाग्यं [2]रामस्य रूप-रामणीयकं च[3] निरूप्य पुनरेवमचिन्तयत्।

तदन्विति। तदनु रामभजनानन्तरम् [इयं शूर्पणखा] जनकदुहितुः सीतायाः अनितरयुवतियोग्यम् इतर-सामान्ययुवतिजनदुर्लभम्, भाग्यं-सौभाग्यं श्रीरामपत्नीत्वरूपम्। तथा रामस्य रूपरामणीयकम् रूपसौन्दर्यं च निरूप्य निपुणं निरीक्ष्य पुनः भूयः, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अचिन्तयत्।

इसके बाद, इतर सामान्य स्त्रियों के लिए दुर्लभ सीता के भाग्य को

---

१. 'युवती' इति पाठा०। २. 'रामस्य रामणीयकम्' इति पाठा०।
३. 'च' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और राम के रूप सौन्दर्य को भलीभाँति देखकर [शूर्पणखा ने] फिर विचार किया—

लावण्याम्बुनिधेरमुष्य दयितामेनामिवैनं जनं
कस्मान्नासृजदस्मदन्वयगुरोरुत्पत्तिभूः पद्मभूः ।
आस्तां[1] तावदरण्यवासरसिके हा कष्टम[2]स्मिन्निमां
कान्ति काननचन्द्रिकासमदृशां किं निर्ममे निर्ममे ॥ १८ ॥

लावण्येति । अस्मदन्वयगुरोः अस्मत्कुलादिपुरुषस्य पुलस्त्यस्य उत्पत्तिभूः जन्मस्थानं जनयितेत्यर्थः । पद्मभूः ब्रह्मा, लावण्याम्बुनिधेः सौन्दर्यसागरस्य अपरिमितसौन्दर्यसम्पन्नस्य अमुष्य रामलक्षणस्य जनस्य, एनां दयितां प्रियां सीतामिव एनं मल्लक्षणं जनं कस्मात् कुतः कारणात् न असृजत् न निर्मितवान्, अस्माकं प्रपितामहः सन्नपि ब्रह्मा स्ववंश्यां मां परमसुन्दरस्य रामस्य प्रियां सीतामिव नासृजदित्यहो तस्य प्रमाद इति भावः । आस्तां तावत्— विधाता तथा नासृजत् न सृजतु, एतेन गतशोचनेन किमित्यर्थः, (किन्तु) अरण्यवासरसिके वनवासप्रिये वनितादिभोगनिःस्पृह इत्यर्थः, निर्ममे निदये, अस्मल्लक्षणेऽपि जने दयामकुर्वाण इत्यर्थः अस्मिन् रामे काननचन्द्रिकासमदशाम् वनविकीर्णज्योत्स्नासदृशीम्, अरण्यविकीर्णचन्द्रिकामिव वनप्रदेशमुद्भासयमानां तथाप्युभोगानुपयोगितया वैयर्थ्यं गच्छन्तीमित्यर्थः, इमामेतादृशीं स्पृहणीयामित्यर्थः, कान्तिं शोभासम्पत्तिं किम् किमर्थं निर्ममे निर्मितवान् । हा कष्टमिति खेदे । धिग् विधातुरपण्डिततामिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १८ ॥

हमारे कुल के श्रेष्ठ पुलस्त्य के जन्मदाता [अतएव हमारे प्रपितामह होते हुए भी] ब्रह्मा ने इस सौन्दर्य सागर पुरुष [राम] की इस प्रिया [सीता] के समान [रूपवती] मुझे क्यों नहीं बनाया ? अथवा इस बात को छोड़िए, सोचने की बात तो यह है कि वनवास में ही आनन्द अनुभव करने वाले निर्दय इस राम की इस कान्ति को, जो जंगल की चाँदनी की तरह [वन प्रदेश को जगमगाती हुई किन्तु उपभोग न किये जाने के कारण व्यर्थ बीती जा रही है] क्यों बनाया ? ॥ १८ ॥

---

१. 'एतदरण्य' इति पाठा० । २. 'अस्मिञ्जने' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीतामाहर्तुकामामसुलभविषयप्रार्थनोद्दामकामां
सौमित्रिः शस्त्रपाणिर्दशमुखभगिनीं तामनार्यां निवार्य ।
कामक्रोधात्मकानामहमहमिकया प्रेङ्खतामायतानां
तस्याः श्वासानिलानामकुरुत तरसा मार्गविस्तारकृत्यम्॥१९॥

सीतामिति । सीताम् आहर्तुकामाम् आहर्तुं कामः इच्छा यस्यास्ताम्, कृतावमानजनित–कोपात् सीताहरणायोद्युक्तामित्यर्थः । असुलभविषयप्रार्थनोद्दामकामाम्—असुलभः दुर्लभो यो विषयः रामपत्नीत्वरूपः अर्थस्तस्य प्रार्थनायां प्रार्थनापूर्तावित्यर्थः, उद्दामः प्रवृद्धः कामः अभिलाषो यस्यास्तादृशीम्, दुर्लभरामपत्नीपदकाङ्क्षिणीमित्यर्थः, अनार्याम् दुष्टचारित्राम् दशमुखभगिनीम् रावणानुजां तां शूर्पणखाम्, शस्त्रपाणिः खड्गहस्तः, सौमित्रिः लक्ष्मणः, निवार्य सीताहरणान्निवर्त्य कामक्रोधात्मकानाम्, कामः रामविषयकवासनालक्षणः, क्रोधः तदपूर्त्या मनः प्रज्वलनरूपः, तदात्मकानाम् तत्प्रभवानाम् अहमहमिकया अहं पूर्वमहं पूर्वमिति प्रतिस्पर्धया प्रेङ्खताम् सनिष्पेषं बहिर्निगच्छताम्, आयतानां दीर्घाणाम् तस्याः शूर्पणखायाः श्वासानिलाम् निःश्वासमारुतानां तरसा वेगेन मार्गस्य पथः विस्तारकृत्यं विस्तारक्रियाम् अकुरुत कृतवान्, तच्छ्वासानिलानां निर्बाधं निर्गमायेव तन्मार्गभूतां नासिकां चिच्छेदेत्यर्थः । अत्र लक्ष्मणकर्तृकनासिकाच्छेदनरूपं प्रस्तुतमेव गम्यं कारणं वैचित्र्यविशेषप्रतिपत्तये लक्ष्मणस्य प्रस्तुतेनैव मार्गविस्तारणरूप कार्यद्वारेणाभिहितम्' तस्मात्पर्यायोक्तिरलङ्कारः । 'पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते ।' इति तल्लक्षणात् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १९ ॥

दुर्लभ रामपत्नी पद की उद्दाम अभिलाषा रखने वाली दुश्चरित्रा रावणानुजा शूर्पणखा ने [अपने अभिलाष की पूर्ति में बाधाभूत] सीता का हरण करना चाहा किन्तु शस्त्रपाणि लक्ष्मण ने उसका निवारण किया और कामक्रोध जनित एवं परस्पर स्पर्धावश जोरों से निकलने वाले उसके दीर्घ निःश्वासों के निर्गममार्ग को विस्तृत कर दिया [अर्थात् उसकी नाक काट ली] ॥ १९ ॥

ततस्तस्या निकृत्तकर्णनासिकायाः कानीयस्याः परिभवं वदने

१. 'अधिकानाम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वचने च दृष्ट्वा श्रुत्वा च जनस्थानवर्ती समरमुखमुखरः खरश्चतुर्दश-सहस्र[1]संख्याकशाखं चतुर्दशाध्यक्षरक्षितं रक्षोबलं रामलक्ष्मणौ जिघृक्षुः प्रेषयामास।

तत इति। ततः तदनन्तरम्, जनस्थानवर्ती—जनस्थानं नाम दण्डकारण्यस्य भागविशेषः, तत्र वर्तितुं शीलमस्येति जनस्थानवर्ती जनस्थानाधिप इत्यर्थः (ताच्छील्ये णिनिः)। समरमुखमुखरः—समरमुखे रणस्थले मुखरः सिंहनादकरः, रणशूर इत्यर्थः। खरः तदभिधानो राक्षसाधिपः, निकृत्तं छिन्नं कर्णनासिकं यस्यास्तथोक्तायाः कनीयस्याः अनुजायाः, तस्याः शूर्पणखायाः परिभवम् लक्ष्मणकृतावमानम् वदने मुखे कर्णाभ्यां नासिकया च विहीने दृष्ट्वा, वचने नासिकाया निकृत्ततया ह्यनुनासिकवर्णोच्चारणविलक्षणायां तदुक्ता वित्यर्थः, श्रुत्वा आकर्ण्य च (यथाक्रममन्वयाद्यथासंख्याऽलङ्कारः)। तदनन्तरमेव शूर्पणखया तमुपगम्य विकृतं स्वमुखं प्रदर्श्य सकलवृत्तान्तस्य श्रावितत्वादिति भावः। रामलक्ष्मणौ जिघृक्षुः ग्रहीतुमिच्छुः सन्। चतुर्दशसहस्रसंख्याकशाखम्—चतुर्दशसहस्रसंख्याकाः शाखाः अनुभागा यस्य तत्तथोक्तम्, अत्र चतुर्दशपदस्य 'शाखाः' इतिपदेनान्वयोऽवगन्तव्यः। तथा सहस्रसंख्याकराक्षसकलित एको व्यूह अनुभागो वा, तदित्थं चतुर्दशव्यूहसमन्वितमित्यर्थः। अत एव चतुर्दशाध्यक्षैः चतुर्दशसेनानायकैः रक्षितम् व्यवस्थापितम्, रक्षोबलम् राक्षससैन्यम्, प्रेषयामास प्रहितवान्।

तदनन्तर [दण्डकारण्य के भागविशेष] जनस्थान नामक प्रदेश में रहने वाले [अर्थात् वहाँ के राक्षसों का अधिपति] संग्राम में सिंहनाद करने वाले [अर्थात् रणशूर] खर नामक राक्षस ने अपनी अनुजा के अपमान को उसके [नाक कान कटे हुए] मुख में प्रत्यक्ष देखकर और उसकी [भनभनाती] वाणी में सुनकर, राम लक्ष्मण को पकड़ने की इच्छा से, राक्षससैन्य को भेजा, जिसमें एक-एक हजार राक्षसों की चौदह टुकड़ियाँ थीं और [उन चौदहों टुकड़ियों की] चौदह सेनानायक देखभाल कर रहे थे।

१. 'सहस्रसंख्यं' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ दाशरथिर्निरीक्ष्य दिक्षु रक्षोगणमुपसर्पन्तमपसर्पभूतया[1] शूर्पणखया [2]दर्शितसरणि[3]मरणिरिव मन्थनात्पूर्वम[4]नाविष्कृततेजः[5]प्रसरः सीतारक्षणे लक्ष्मणमादिश्य यातुधानवधं तथाविधम[6]करोत् ।

अथेति । अथानन्तरम् । दाशरथिः श्रीरामचन्द्रः, अपसर्पभूतया चरकार्यं कुर्वत्या ('अपसर्पश्चरः स्पशः' इत्यमरः) । शूर्पणखया दर्शितसरणिम् निवेदितमार्गम्, अत एव उपसर्पन्तम् स्वसमीपमागच्छन्तम्, दिक्षु समन्ततः, निरीक्ष्य दृष्ट्वा मन्थनात् सङ्घर्षणात् पूर्वं प्राक् अरणिः मन्थनकाष्ठमिव ('निर्मन्थ्यदारुणि त्वरणिः' इत्यमरः) । अनाविष्कृततेजःप्रसरः—अनाविष्कृतः अप्रकटितः तेजः प्रसरः प्रभावस्फूर्तिः पक्षे अनलप्रकाशश्च येन स तथोक्तः सन्, (अत एवोपमाऽलङ्कारः) । ('तेजोऽनले प्रभावेऽह्नि' इति वैजयन्ती) लक्ष्मणं सीतारक्षणे आदिश्य आज्ञाप्य तथाविधं तादृशं यातुधानवधम् राक्षसविनाशम् अकरोत् कृतवान्—यथेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः । ('यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इत्यमरः) ।

इसके बाद गुप्तचर का काम करने वाली शूर्पणखा ने जिन्हें मार्ग दिखा दिया, ऐसे राक्षसों को चारों ओर से अपने पास आते देख कर मन्थन से पूर्व अरणि (मन्थन काष्ठ) की तरह संघर्ष से पूर्व अपने तेज को प्रकट न करने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण को सौंप कर उस प्रकार से राक्षसों का वध किया ।

यथा[7] तपोधननिधनकरकरनिकुरुम्बमिदं परुषभाषणस्पृहयालु[8]तालुजातमिदं परदारनिरीक्षणनिरपत्रपनेत्रवृन्दमिदं [9]तापसावसथचारणचतुरं चरणयुगलमिदमिति निशिततरनिज[10]शरश[11]कलीकृतनिशि-

---

१. 'भूतया तया' इति पाठा० ।
२. 'निर्दर्शित' इति पाठा० ।
३. 'अरणिमिव' इति पाठा० ।
४. 'प्राक्' इति पाठा० ।
५. 'प्रसर' इति पाठा० ।
६. 'अतनुत' इति पाठान्तरम् ।
७ 'यथा' इति नास्ति क्वचित् ।
८. 'तालुबालमिदं' इति पाठा० ।
९. 'तापसावसथचारणचतुरं चरणयुगलमिदं' इति नास्ति क्वचित् ।
१०. 'निज' इति नास्ति क्वचित् ।
११. 'शरशतशकलित' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चरशरीरा[1]वयवानाहृत्याहृत्य प्रत्युटजं [2]प्रदर्शयद्भिस्तपोधनाध्वशुद्धिं विधद्ध्वमिति गृध्रराजनिदेशादिव देशान्तरा[3]दापतद्भिः कङ्ककाक[4]-प्राचीकप्रायैः [5]पतद्भिरनवकाशमभूदाकाशम् ।

यथेति । यथा येन प्रकारेण (तथाविधमिति प्रागुक्तं यातुधान वधप्रकार-मेवास्मिन् सन्दर्भे विवृणोति) इदम् एतत्, तपोधनानां तपस्विनां निधनकरं विनाशकरम् कर-निकुरम्बं बाहुकदम्बकम् ('निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्यमरः) । इदं दृश्यमानम् परुषभाषणाय कठोरवचनाय स्पृहयालु स्पृहावत् तालुजातम् तालुनामकमुखावयवविशेषनिवहः, इदं पुरोवर्त्ति परदारानिरीक्षणे परकीय-स्त्रीविलोकने निरपत्रपम् निर्लज्जं नेत्रवृन्दम् नयननिकुरम्बम्, इदमेतत् तापसनां तपस्विनाम् आवसथेषु निवासेषु आश्रमप्रदेश इत्यर्थः, यच्चारणं यथेच्छसंचारस्तत्र चतुरं दक्षं चरणयुगलम् पादयुग्मम्, इत्येवं प्रकारेण निशित-तरैः अतितीक्ष्णैः निजशरैः स्वबाणैः शकलीकृतान् खण्डितान् निशिचराणाम् राक्षसानां शरीरावयवान् हस्तादिदेहाङ्गानि आहृत्याहृत्य आनीयानीय प्रत्युटजं प्रतिपर्णशालं प्रदर्शयद्भिः उपद्रवकारिराक्षसाङ्गानीदृशीं दशां गतानीति मुनि-जनानन्दार्थं प्रत्यक्षीकुर्वद्भिः (उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः) तपोधनाध्वशुद्धिं विधद्ध्वम् तपस्विजनमार्गशोधनं कुरुत राक्षसशवभक्षणेनेति भावः, इत्येवंभूताद् गृध्रराजस्य जटायुषः निदेशात् आदेशादिवेति हेतूत्प्रेक्षा देशान्तरात् विभिन्नप्रदेशात् आप-तद्भिः समागच्छद्भिः, कङ्को गृध्रः ('कङ्को गृध्रो लोहपृष्ठः' इति वैजयन्ती) काकः वायसः, प्राचीकः मांसभक्षी पक्षिविशेषः, तत्प्रायैः तद्बहुलैः पतद्भिः पक्षिभिः ('पतत्पत्त्ररथाण्डजाः' इति पक्षिपर्यायेष्वमरः) । आकाशं नभोमण्डलम् अनवकाशम् व्याप्तमभूत् । रामस्तथा यातुधानवधमकरोत् यथा समन्ततो गृध्रादिपक्षिणो मन्ये राक्षसशवभक्षणेन मुनिजनमार्गशुद्धये जटायुषो निदेशं लब्ध्वा समागत्य ताँस्तानत्याचारान्कृतवन्ति तानि तानि रामशरखण्डितानि

---

१. 'निशिचरावयवान्' इति पाठान्तरम् । २. 'दर्शयद्भिः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'आपतद्भिः पतद्भिः' इति पाठा० । ४. 'काक' इति नास्ति क्वचित् ।
५. 'पतद्भिः' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राक्षसाङ्गान्यानीयानीय लब्धमेभिः स्वदुष्कृतफलमिति प्रत्युटजं प्रदर्श्य मुनीन् हर्षनिर्भरान्कुर्वन्तीति भावः ।

[राम ने इस प्रकार से राक्षसों का वध किया] जिससे विभिन्न देशों से आने वाले गृध्र, काक, प्राचीक आदि पक्षियों से आकाश भर गया। मानों उन्हें गृध्रराज जटायु का आदेश मिला हो कि तुम लोग [राक्षसों के शव का भक्षण कर] मुनियों का [राक्षसों के शव से पटा हुआ] मार्ग शुद्ध करो। वे पक्षी, [देखिए] ये मुनियों के निधनकर्ता हाथ हैं, कठोर वचन का प्रयोग करने वाले ये तालु हैं, तपस्वियों के आश्रम प्रदेश में स्वच्छन्द विचरण करने वाले ये चरण हैं, इस प्रकार रामशरखण्डित राक्षसों के शरीरावयवों को ला-लाकर प्रति कुटी में [मुनियों को] दिखा रहे थे।

[6]ततो निकृत्तशिरसि त्रिशिरसि विस्रगन्धिना शरीरस्रुतवसास्रोतसा प्रेत्यापि क्रियमाणाश्रमदूषणे दूषणे [7]च रोषभीषणवीक्षणखरः खरो राघवमाह्वायाह्वयत।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्, त्रिशिरसि—त्रिशिराः तन्नामा राक्षससेनानायकः, तस्मिन् निकृत्तशिरसि रामशरच्छिन्नमस्तके सति, दूषणे दूषणनामके सेनानायके, प्रेत्य मृत्वाऽपि विस्रगन्धिना आमगन्धशालिना ('विस्रं स्यादामगन्धि यत्' इत्यमरः) शरीरस्रुतवसास्रोतसा—शरीरात् रामशरविदीर्णनिजदेहात् स्रुतेन क्षरितेन वसास्रोतसा हृन्मेदः प्रवाहेण ('हृन्मेदस्तु वपा वसा' इत्यमरः)। क्रियमाणाश्रमदूषणे—क्रियमाणं विधीयमानम् आश्रमदूषणं मुनिजनावासापवित्रीकरणं येन तस्मिन् तथोक्ते सति, दूषणेऽपि हते सति चेत्यर्थः। रोषभीषणवीक्षणखरः—रोषात् क्रोधावेशाद् भीषणे भयङ्करे ये वीक्षणे नेत्रे ताभ्यां खरः तीक्ष्णः, दुर्दर्श इति यावत्। खरः तन्नामा राक्षसः, आहवाय युद्धाय, राघवम् श्रीरामम् आह्वयत आहूतवान्। 'स्पर्धायामाङः' इत्यात्मनेपदम्।

इसके बाद राम के द्वारा त्रिशिरा के सिर के काटे जाने पर तथा दूषण नामक राक्षस द्वारा, मरने के बाद भी देह से चूते हुए मेद के प्रवाह से

६. 'तत्र' इति पाठा०। ७. 'च' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आश्रम के अपवित्र किये जाने पर क्रोध से भयङ्कर नेत्रों से दुर्दर्श खरनामक राक्षस ने राम को युद्ध के लिए ललकारा।

तत्र विपश्चिद्भिरप्यनिश्चीयमानजयापजय[1]मनिमेषैरप्यननुसन्धीयमानशरसन्धानमोक्षमभूदभूतपूर्वं द्वन्द्वयुद्धम्॥

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये विपश्चिद्भिः विद्वद्भिरपि अनिश्चीयमानजयापजयम्–अनिश्चीयमानौ अनिर्धार्यमाणौ जयापजयौ जयपराजयौ यत्र तत्तथोक्तम्, अनिमेषैः निमेषविहीनैर्देवैरपि अननुसंधीयमानशरसन्धानमोक्षम्–अननुसन्धीयमानौ अविभाव्यमानौ शराणाम् बाणानां सन्धानमोक्षौ प्रत्यञ्चायोजनत्यागौ यत्र तत्तथोक्तम्। अभूतपूर्वमपूर्वं निरुपममिति यावत्। द्वन्द्वयुद्धम् सहायान्तरानपेक्षी द्वयोः संग्रामः अभूत्। खरासुररामयोस्तादृशमभूतपूर्वं द्वन्द्वयुद्धमभूद्यत्र कस्य जयः कस्य पराजयो वा भविष्यतीति निर्णेतुं सन्दिग्धार्थनिर्धारका विद्वांसोऽप्यक्षमा जाताः किमुतान्ये, द्वावपि वीरौ कदा मौर्व्यां बाणं सन्दधाते कदा च विसृजत इत्यवगन्तुं पक्षमपातरहिता देवा अपि नापारयन् किमुत सनिमेषा इति भावः। अत्र जयापजययोर्निश्चीयमानत्वसम्बन्धेऽपि तथा शरसन्धानमोक्षयोरनुसन्धीयमानत्वसम्बन्धेऽप्यसम्बन्धाभिधानात् सम्बन्धेऽसम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः।

उस समय राम और खर में ऐसा अभूतपूर्व द्वन्द्वयुद्ध हुआ कि विद्वान् लोग भी जय-पराजय का निश्चय नहीं कर सकते थे और निर्निमेष देव लोग भी यह नहीं समझ पाते थे कि वे दोनों वीर कब धनुष पर बाण रखते हैं और कब छोड़ते हैं।

[2]ततः खरो गृहीतकोदण्डः [3]सकृदनुभूयमानमनोज्ञमनायासः समरसमापन[4]चतुरं चतुराननास्त्र[5]सन्धानदशार्हं दाशार्हशरासनं ग्राहयितुकाम इव रामहस्तात्प्राक्तनं चापं शरैरपजहार।

तत इति। ततः द्वन्द्वयुद्धे प्रवृत्ते गृहीतकोदण्डः शरासनपाणिः खरः सकृत्

१. 'अनिमिषैः' इति पाठा०। २. 'तत्र' इति पाठा०।
३. 'त्वसकृत्' इति पाठा०। ४. 'चतुरः' इति पाठा०।
५. 'सन्धानार्हम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकबारम् युगपदित्यर्थः, अनुभूयमाननमनोन्नमनायासः-अनुभूयमानः अनुभवविषयीक्रियमाणः नमनोन्नमनायासः शरसन्धानमोक्षप्रयासो येन स तथोक्तः सन्, क्षिप्रहस्ततया सवेगं शरान् मुञ्चन्नित्यर्थः। समरसमापनचतुरम्-क्षिप्रं शत्रुसंहारेण युद्धसमाप्तिकुशलम् चतुराननास्त्रसन्धानदशार्हम् ब्रह्मास्त्रसन्धानक्रियायोग्यम्, ब्रह्मास्त्रेणैव खरशिरसश्छेत्स्यमानत्वादिति भावः। दाशार्हशरासनम्-दशार्हः विष्णुस्तस्येदं दाशार्हम् वैष्णवम् ('तस्येदम्' इत्यण्) शरासनं धनुः, ग्राहयितुकाम इव रामेणावलम्बयितुमिच्छन्निवेति फलोत्प्रेक्षा। रामहस्तात् प्राक्तनं पूर्वं धृतम् चापम् धनुः, शरैः बाणैः अपजहार अपहृतवान्, मुष्टिधृतं श्रीरामचापं खण्डितवानित्यर्थः।

इसके बाद खर ने धनुष हाथ में लेकर बड़ी फुर्ती से उस पर बाण रखना और छोड़ना शुरू किया, ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों क्रियायें एक साथ चल रही हों। उसने राम के हाथ में पूर्वधृत धनुष को अपने बाणों से रामके हाथ से अपहृत कर लिया [अर्थात् खण्डित कर दिया] मानों वह रामद्वारा युद्धसमाप्त करने में कुशल, ब्रह्मास्त्र के सन्धान योग्य वैष्णव चाप को ग्रहण करवाना चाह रहा हो।

सोऽपि [1]कोपपावकेन पावकितानन: कुम्भसम्भवदत्तं धनुराधत्त।

सोऽपीति। स श्रीरामोऽपि कोपपावकेन शरासनखण्डनजनितक्रोधाग्निना, पावकिताननः पावकवत्कृतमाननं मुखं यस्य स तथोक्तः सन्, रक्तमुख इत्यर्थः। कुम्भसम्भवदत्तम्—कुम्भसम्भवेन अगस्त्यमुनिना दत्तम् अर्पितं वैष्णवं धनुः आधत्त गृहीतवान्।

राम ने भी [चाप-खण्डन-जनित] कोपानल से रक्तमुख होते हुए अगस्त्यमुनि के द्वारा दिये गये वैष्णव धनुष को [हाथ में] लिया।

खरपरुषि शरासने गृहीते खरकिरणान्वयशेखरेण तेन।
खररघुवरयो रणं समाप्तं खरनखरायुधयोरिव क्षणेन॥ २०॥

खर परुषीति। खरकिरणान्वयशेखरेण—सूर्यवंशावतंसेन, तेन श्रीरामेण खरपरुषि खराणि तीक्ष्णानि निविडानीति यावत्, परूंषि पर्वाणि यस्य तस्मिन्

१. 'पावकपावकिताननः इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समधिकदृढ इत्यर्थः, ('ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी' इत्यमरः)। शरासने वैष्णवे धनुषि गृहीते स्वकरे धृते सति खररघुवरयोः खरासुरश्रीरामयोः खरनखरायुधयोः–खरः रासभश्च, नखरायुधः सिंहश्च तयोरिव, रणं युद्धं क्षणेन अल्पकालेन (अपवर्गे तृतीया) समाप्तम् अभूदिति शेषः। यथा रासभसिंहयोर्युद्धं क्षणेन समाप्तिं याति तथैव खर-रामयोः प्रवर्तमानं युद्धं स्वल्पेनैव कालेन समाप्तिमगादित्युपमाऽलङ्कारः। श्रीरामेण वैष्णवे धनुषि सुरेन्द्रदत्तमहास्त्रसन्धानेन क्षणमात्रेणैव खरोऽपि हत इत्यर्थः। तथा च रामेण खरो हत इति प्रस्तुतमेव गम्यं कारणं वैचित्र्यविशेषप्रतिपत्तये युद्धसमाप्तिरूपकार्यद्वारेणाभिहितम्। तस्मात्पर्यायोक्तिरलङ्कारः। सा चोक्तोपमया संसृज्यते। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २० ॥

सूर्यवंशावतंस राम के द्वारा निविड गाँठों से युक्त वैष्णव चाप ग्रहण किये जाने पर गर्दभ और सिंह के युद्ध की तरह खर और राम का युद्ध क्षण भर में समाप्त हो गया [अर्थात् खर मारा गया] ॥ २० ॥

खरवधपरिशुद्धे दण्डकारण्यभागे
मुनिभिरभिहितानामाशिषां तादृशीनाम्।
स्वयमचरमपात्रं स्वैर्गुणैर्मन्थराऽभू-
त्तदनु मनुकुलेन्दुः सानुजः शौर्यराशिः ॥ २१ ॥

खरवधेति। दण्डकारण्यभागे दण्डकावनप्रान्ते जनस्थान इति यावत्। खरवधेन खरासुरसंहारेण परिशुद्धे पवित्रतरे उपद्रवरहिते (जाते) मुनिभिः खरवधेन प्रसन्नतां गतैस्तत्रत्यैर्ऋषिभिः अभिहितानामुक्तानां तादृशीनाम् अमोघानामित्यर्थः, आशिषाम् शुभसंशनानाम्, मन्थरा कैकेयीदासी स्वैः गुणैः रामवनवासहेतुभूतैः स्वकीयकौटिल्यादिरूपैर्गुणैः, स्वयम् अचरमपात्रम् आद्यस्थानमभूत्। रामेण खरे हते प्रसन्नमनसो मुनयो मन्थरायै सर्वप्रथममाशिषो दत्तवन्तो यतस्तयैव प्रेरिता कैकेयी रामं वनं प्रेषितवती, येन खरादीनां विनाशोऽभूत्! तदनु तत्पश्चात् मनुकुलेन्दुः वैवस्वतमनुवंशचन्द्रः सानुजः सलक्ष्मणः शौर्यराशिः अप्रतिमशूरः श्रीरामः मुनिभिरभिहितानामाशिषां पात्रमभूत्, रामस्तु तादृशीनामाशिषां द्वितीयं पात्रमभूदित्याशयः। शौर्येणाभेदेनाध्यवसायस्तस्माद्भेदेऽभेदरूपातिशयोक्तिः। तथा मन्थराया अचरमपात्रत्वा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरिति द्वयोः संसृष्टिः ॥ मालिनी वृत्तम् ॥ २१ ॥

खर के वध से दण्डकारण्य के भाग [जनस्थान] के पवित्र [अर्थात् उपद्रव रहित] होने पर [वहाँ] के मुनियों द्वारा दिये गये अमोघ शतशः आशीर्वाद का प्रथम पात्र मन्थरा अपने गुणों के कारण स्वयम् हुई, उसके बाद में लक्ष्मण सहित शौर्यनिधि श्रीराम जी उन अशीर्वादों के पात्र हुए ॥ २१ ॥

तथाहि—

प्राग्मन्थरेति महिषीति वरद्वयीति
धर्मव्ययव्यथितभूपतिभारतीति ।
काकुत्स्थकाननकथेति च सन्ति संज्ञाः
पौलस्त्यही[1]नभुवनत्रयभाग्यपङ्क्तेः ॥ २२ ॥

तथाहि—

प्राग्मन्थरेति । प्राक् प्रथमं मन्थरेति । ततः महिषी राज्ञी कैकेयीति । ततः वरद्वयी राज्ञा दशरथेन कैकेय्यै दत्तं वरद्वयमिति, ततः धर्मव्ययव्यथितभूपति-भारती–धर्मस्य व्ययः भ्रंशः, प्रतिज्ञापूर्त्यभावस्तेन व्यथितस्य खिन्नस्य भूपतेः राज्ञो दशरथस्य भारती 'चतुर्दशवर्षाणि वनमधिवस' इति वाणी, ततः काकुत्स्थस्य श्रीरामस्य काननकथा वनवासवार्तेति च । पौलस्त्येन रावणेन हीनं रहितं यद् भुवनत्रयं त्रैलोक्यं तस्य भाग्यपङ्क्तेः भाग्यलिपेः संज्ञाः नामधेयानि सन्ति । मन्थरा, कैकेयी, वरद्वयम्, दशरथवाक्, रामवनवासः सर्वेऽप्येते शब्दाः पृथक्-पृथक् रावणकृतोपद्रवराहित्येन निर्वाधस्थितिमापन्नानां त्रैलोक्यवासिनां सौभाग्यस्यैव वाचकाः सन्तीति भावः । ततो मन्थराया अचरमपात्रत्वं युक्तमेवेत्यवगन्तव्यम् ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २२ ॥

सर्वप्रथम मन्थरा, उसके बाद क्रमशः रानी कैकेयी, उसके दोनों वरदान, धर्मच्युति से व्यथित-राजा दशरथ का वचन, राम की वनवासावार्त्ता ये सभी शब्द रावण-रहित त्रैलोक्य की भाग्यलिपि की ही संज्ञा हैं—इन सभी शब्दों से त्रैलोक्य के सौभाग्य का ही बोध होता है ॥ २२ ॥

---

१. 'भीत' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ शूर्पणखा लङ्कामपि जनस्थानमिव विजनस्थानं काकुत्स्थेन कारयितुं दशकण्ठोपकण्ठे कृत्येव निपत्य रामलक्ष्मणयोर्याथातथ्यं वैदेह्या देहसौन्दर्यं खरप्रमुखैः साकमनीकस्य चतुर्दशसहस्र[1]संख्याकस्य पञ्चताकरणकारणभूतामात्मावज्ञां च विज्ञापयामास ।

अथेति । अथ खरादिरक्षसां वधे जाते शूर्पणखा जनस्थानम् खरासुरदेशमिव लङ्कां रावणराजधानीमपि काकुत्स्थेन श्रीरामेण विजनस्थानम् राक्षसानां संहारेण निर्जनं स्थानम् कारयितुम् ' लङ्कामपि विध्वंसयितुमिवेत्यर्थः । उत्प्रेक्षोपमयोः संकरः । दशकण्ठोपकण्ठे रावणसमीपे कृत्येव मरणाधिदेवतेव ('कृत्या क्रियादेवतयो स्त्रिषु भेद्ये धनादिभिः' इत्यमरः) । निपत्य, सवेगमुपगम्येत्यर्थः । रामलक्ष्मणयोः याथातथ्यम् यथार्थस्वरूपम्, वैदेह्याः सीतायाः देहसौन्दर्यं शरीरलावण्यम्, खरप्रमुखैः साकम् खरप्रभृतिभिः सह चतुर्दशसहस्रसंख्याकस्य अनीकस्य राक्षससैन्यस्य ('अनीकं तु रणे सैन्ये' इति विश्वः) । पञ्चताकरणे निधने कारणभूताम् आत्मावज्ञाम् श्रवणनासाच्छेदनरूपं स्वावमान च विज्ञापयामास विज्ञापितवती ।

इसके बाद जनस्थान की तरह लंका को भी राम के द्वारा निर्जनस्थान बनवाने के लिए शूर्पणखा ने कृत्या की तरह झट-पट रावण के पास पहुँच कर राम का यथार्थ परिचय, सीता का शरीरसौन्दर्य, खर आदि के साथ चौदह हजार राक्षस सैन्य की मृत्यु के कारण अपने अपमान को [अर्थात् लक्ष्मण द्वारा नाक-कान का काटा जाना] रावण से बताया ।

स दण्डकायां कृतदण्डकायां स्वसारमेनां प्रथितस्वसारः ।
निशाम्य रामस्य निशम्य वृत्तं चक्रे रुषं राक्षसचक्रवर्ती ॥२३॥

स दण्डकायामिति । प्रथितस्वसारः प्रथितः सकलभुवनविख्यातः स्वसारः स्वभुजबलं यस्य स तथोक्तः । ('सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः) । राक्षसचक्रवर्ती राक्षसाधिपतिः रावणः, दण्डकायाम् दण्डकारण्ये कृतदण्डकायाम्—कृतः दण्डः कर्णनासाच्छेदनरूपा यातना यस्य स कृतदण्डः, कृतदण्डः कायः शरीरं यस्यास्तां तथोक्ताम् एनां छिन्ननासाकर्णतया विकृताननां स्वसारं

१. 'संख्यस्य' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भगिनीं शूर्पणखां निशाम्य दृष्ट्वा, रामस्य वृत्तां चरितं खरादिवधरूपं निशम्य शूर्पणखामुखादाकर्ण्य रुषं कोपं चक्रे कृतवान् । उपजातिर्वृत्तम् ॥ २३ ॥

प्रसिद्ध भुजबल वाला राक्षसाधिप रावण दण्डक वन में [लक्ष्मण कृत नासाकर्णच्छेदन रूप] दण्ड से विकृताङ्ग की गयी अपनी बहिन शूर्पणखा को देख कर तथा [उसी के मुख से] राम का सारा वृत्तान्त सुन कर बहुत क्रुद्ध हो गया ॥ २३ ॥

ततः प्रस्थाप्य जनस्थाने राक्षसानष्टौ [1]नष्टनीतिरयं ताटकेयं हाटकमृगं पुरस्कृत्य [2]सीताह्वां हरिणीं ग्रहीतुं तस्यावसथमाससाद ।

तत इति । ततः क्रोधानन्तरम्, नष्टनीतिः—नष्टा नीतिर्यस्य तथोक्तः अपथगामीत्यर्थः अयम् रावणः जनस्थाने खराध्युषितवनप्रदेशे अष्टौ राक्षसान् प्रस्थाप्य प्रेषयित्वा, तद्रक्षणार्थमितिभावः । ताटकेयम्—ताटकाया अपत्यं पुमान् ताटकेयः मारीचः तम् ('स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढक्) हाटकमृगं स्वर्णमृगं ('हिरण्यं हेम हाटकम्' इत्यमरः) मारीचरूपं सुवर्णमृगमित्यर्थः । पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा सीताह्वाम् सीताभिधानाम् तद्रूपामित्यर्थः हरिणीम् मृगीम्, ग्रहीतुम्, तस्य मारीचस्य आवसथम् आवासस्थानम् ('स्थानावसथ वास्तु च' इत्यमरः) आससाद प्राप । लोकेऽपि व्याधो मृगान्तरं ग्रहीतुं कमपि सुन्दरं मृगं पुरस्कृत्य याति ताटकेयं हाटकमृगमित्यत्र न रूपकं शङ्क्यम्, मारीचस्य सुवर्णमृगशरीरत्वासिद्धयापत्तेः ।

इसके बाद कुपथ-गामी रावण [रक्षार्थ] आठ राक्षसों को जनस्थान में भेज कर सुवर्णमृग रूपधारी मारीच को आगे कर सीता नामक मृगी को फँसाने के विचार से मारीच के स्थान पर पहुँचा ।

मारीचोऽप्याकर्णितरावणमतः[3] प्रयत्नशतैरप्यनिवार्यमाणे [4]तस्मिन्सुबाहुमेव बहुमन्यमानो गत्यन्तराभावात्तदभ्यर्थनासङ्गीकृत्य[5] जातरूपमयमृगरूपं गृहीत्वा सीतां वञ्चयितुं [6]पञ्चवटीमगाहत ।

---

१. 'नष्टमतिः' इति पाठा० । २. 'सीताह्वया' इति पाठा० ।
३. 'मतिः' इति पाठा० । ४. 'तस्मिन्रावणे' इति पाठा० ।
५. 'अभ्युपेत्य' इति पाठा० । ६. 'अगाहत' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मारीच इति। आकर्णितरावणमतः—आकर्णितम् श्रुतं रावणस्य मतम् उद्देश्यं येन स तथोक्तः। मारीचोऽपि, तस्मिन् रावणे प्रयत्नशतैः नानाविधैः प्रयत्नैरवबोधनेऽपि अनिवार्यमाणे स्वनिश्चयान्निवारयितुमशक्ये सति, विनाशकाले मलिनबुद्धित्वादिति भावः। सुबाहुम् तन्नामानं स्वभ्रातरमेव बहुमन्यमानः प्रशंसन्, सुबाहुरेव धन्यो यो विश्वामित्रयज्ञे श्रीरामशरेण हतो मोक्षं लब्धवान् अहं तु मन्ये वञ्चनकर्मणाऽऽत्मानं मलिनीकर्तुमेव तदानीं रामशरविद्धोऽपि न मृतः, अन्यथेदानीमेतादृशनिर्बन्ध एव न स्यादित्यात्मनो मनसि चिन्तयन्नित्यर्थः, गत्यन्तराभावात् उपायान्तरादर्शनात्, तदभ्यर्थनाम् रावणानुरोधम् अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य जातरूपमयमृगरूपं गृहीत्वा कामरूपतया स्वर्णमृगाकारं धृत्वा ('चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने' इत्यमरः) सीतां वञ्चयितुं प्रतारयितुम् पञ्चवटीम् तदभिधानं रामवासस्थानम् अगाहत प्राविशत्।

रावण के उद्देश्य को सुनकर मारीच, सैकड़ों प्रयत्नों से [समझाने पर] भी रावण के न मानने पर, कोई और उपाय न देख पड़ने से, अपने भाई सुबाहु की ही प्रशंसा करता हुआ, रावण का अनुरोध मान कर, सुवर्ण मृग का रूप धारण कर सीता को छलने के लिए पञ्चवटी में प्रविष्ट हुआ।

दशमुखोऽपि जलधरपथस्थापितरथो दाशरथिविघट्टने कृतास्थस्तस्थौ।

दशमुख इति। दशमुखः रावणोऽपि जलधरपथे आकाशदेशे स्थापितो रथो येन स तथोक्तः सन्, दाशरथिविघट्टने रामलक्ष्मणयोर्वियोजने कृतास्थः विहितमतिः, तदासक्तमनाः सन्नित्यर्थः तस्थौ स्थितः। कदा रामलक्ष्मणौ वियोक्ष्येते इत्यवसरं प्रतीक्षमाणः स्थित इत्यर्थः।

रावण अपना रथ आकाश में खड़ा कर राम और लक्ष्मण के परस्पर अलग होने के मौके की ताक में बैठा रहा।

विपिनमवजगाहे राक्षसानां करोटी
रसकृदसकृदाविर्वाष्पमालोक्य शोचन्।
कृतरुचिरिव वर्त्मन्यङ्कुशानां कुशानां
पथिकचरणलाविन्यङ्कुरे न्यङ्कुरेषः॥ २४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विपिनमिति । एषः न्यङ्कुः मृगः मायामृगरूपो मारीच इत्यर्थः । ('कृष्णासाररुरुन्यङ्कुः' इत्यमरः) राक्षसानाम् रामेण हतानां खरादीनां राक्षसानाम्, करोटीः शिरोऽस्थीनि कपालानीति यावत् ('शिरोऽस्थीनि करोटिः स्त्री' इत्यमरः) । असकृत् असकृत् पुनः पुनः आविर्बाष्पम् सास्रं यथा तथा अवलोक्य दृष्ट्वा शोचन् विषादं कुर्वन्, वर्त्मनि वनमार्गे अङ्कुशानाम्, तीक्ष्णतया अङ्कुशतुल्यानां कुशानाम् पथिकचरणलाविनि तीक्ष्णतया पथिकचरणान् पान्थानां पादतलानि लुनाति तच्छीले ('ताच्छील्ये णिनिः) अङ्कुरे, अङ्कुरेष्वित्यर्थः ('जातावेकवचनम्) कृतरुचिः कृताभिलाष इव, पश्यतां मनस्त्वेषोऽकपटमृग इति विश्वासमुत्पादयितुमिति भावः । विपिनम् पञ्चवटीनिकटवनम् अवजगाहे प्रविष्टः । मालिनी वृत्तम् ॥ २४ ॥

वह माया मृगरूप मारीच [रामद्वारा मारे गये खरादि] राक्षसों की खोपड़ियों को, आँखों में आँसू भर कर बार-बार देख कर [अपनी भी वैसी ही दुर्गति की सम्भावना से] दुःखी होता हुआ, वनमार्ग में [अपने को वास्तविक मृग सिद्ध करने के लिए] अङ्कुश की तरह नुकीले कुशों के पथिकों के पैर में गड़ने वाले अङ्कुरों में अपनी रुचि दिखाता हुआ-सा वन में प्रविष्ट हुआ ॥ २४ ॥

तदनु जनकपुत्रीयाच्ञया तं[1] जिघृक्षु-
हरिणमनुजगाहे चापमादाय रामः ।
समय इति च भेजे [2]वक्त्रमाततय मृत्युः
कुशिकसुतमखाजौ भ्रष्टमेनं जिघांसुः ॥ २५ ॥

तदन्विति । तदनु मारीचे वनं प्रविष्टे सति, जनकपुत्रीयाच्ञया आनय महाबाहो मृगमिममिति रूपया सीताप्रार्थनया हेतुना तं मृगं जिघृक्षुः ग्रहीतुमिच्छुः रामः चापम् धनुरादाय हरिणम् मृगम् अनुजगाहे अनुससार । तथा च कुशिकसुतमखाजौ—कुशिकसुतस्य विश्वामित्रस्य मखे यज्ञे या आजिः युद्धम् तस्मिन् ('समित्याजिसमिद्युधः' इत्यमरः) भ्रष्टम् श्रीरामबाणेन तस्य दूरे प्रक्षिप्ततयाऽलब्धम् एनम् मारीचं जिघांसुः हन्तुमिच्छुः, मृत्युः अन्तकश्च,

१. 'तज्जिघृक्षुः' इति पाठा० । २. 'पाशम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समयः अयमेवैतस्य कवलनावसरः इति मत्वा वक्त्रम् मुखम् आतत्य व्यादाय भेजे मारीचं प्राप। अत्र पूर्वार्द्धवाक्यस्योत्तरार्द्धवाक्ये हेतुतया काव्यलिङ्गमलङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ २५ ॥

इसके बाद सीता की प्रार्थना से उस को पकड़ने की इच्छा से राम ने धनुष लेकर उस मृग का पीछा किया। यही अच्छा अवसर है—ऐसा समझ कर मौत भी मुँह बाकर, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के समय उपस्थित युद्ध में भाग खड़े हुए मारीच को मारने की इच्छा से आ पहुँची ॥ २५ ॥

आकृष्य दूरमुटजादथ [1]दर्शिताशः
[2]क्रव्याश एष रघुनाथशरेण विद्धः।
कार्तस्वरैणतनुतां विजहौ हतोऽस्मी-
त्यार्तस्वरेण सह रामवचोनिभेन ॥ २६ ॥

आकृष्येति। अथानन्तरम्। एषः अयम्, क्रव्याशः क्रव्यमामिषमश्नातीति क्रव्याशः राक्षसः, मायामृगरूपोमारीचः। ('पललं क्रव्यमामिषम्' इत्यमरः)। दर्शिताशः–दर्शिता उत्पादिता आशा ग्रहणसम्भावना येन स तथोक्तः सन्, पुनः पुनः सन्निहितो भूत्वा रामस्य निजग्रहणाशां बलवतीं कुर्वन्नित्यर्थः। रामम्, उटजात् पर्णशालातः दूरमाकृष्य नीत्वा रघुनाथस्य श्रीरामस्य शरेण बाणेन विद्धः आहतः सन्, 'हतोऽस्मि' इति रामवचोनिभेन रामवचसा सदृशेन आर्तस्वरेण रामक्रियमाणेनेव करुणस्वरेण सह, यथा लक्ष्मणो रामरक्षार्थमाश्रमं परित्यजेदेकाकिनीं सीतां च रावणोऽपहरेदितिभावः। कार्तस्वरैणतनुताम्–कार्तस्वरम् सुवर्णं तन्मयी एणतनुः मृगशरीरं यस्य स कार्तस्वरैणतनुः, तस्यभावस्तत्ता ताम् विजहौ तत्याज कृत्रिममृगशरीरं परित्यज्य मरणसमये राक्षसरूपं धृतवान् इत्यर्थः। अत्र आर्तस्वरेण सह सुवर्णदेहत्यागकथनात् सहोक्तिरलंकारः॥ ('रुक्मं कार्तस्वरम्' इति सुवर्णपर्यायेष्वमरः) वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २६ ॥

इसके बाद राक्षस मायामृग रूप मारीच [राम के मन में] अपने पकड़े जाने की आशा बँधाता हुआ उन्हें पर्णशाला से दूर ले गया और राम के

१. 'दर्शिताङ्गः' इति पाठा०। २. 'क्रव्यादः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बाण से बिद्ध होकर राम के वचन के सदृश ही 'हतोऽस्मि' इस वचन का आर्तस्वर से उच्चारण करता हुआ उसने स्वर्णमृगदेह का परित्याग किया [अर्थात् प्राण त्यागते समय अपने पूर्वरूप को धारण किया] ॥ २६ ॥

एतदाकर्ण्य विदीर्णहृदया हृदयदयितप्रेम्णा कर्तव्याकर्तव्यमजानाना जानकी जानीहि भ्रातरमिति सौमित्रिमादिदेश ।

एतदिति । एतत् श्रीरामवचनसदृशं मारीचस्यार्त्तस्वरम् आकर्ण्य श्रुत्वा विदीर्णहृदया-विदीर्णम् रामानिष्टशङ्कया विदलितं हृदयं यस्याः सा तथोक्ता, जानकी सीता, हृदयदयितप्रेम्णा हृदयदयिते श्रीरामे प्रेम्णा स्नेहेन कर्त्तव्या-कर्त्तव्यम् अजानाना किं कर्त्तव्यं किमकर्त्तव्यमिति विवेचनेऽक्षमा सती, भ्रातरं जानीहि—अयं स्वरस्तव भ्रातुरेव तच्छीघ्रमुपगम्य जानीहि कथमेवं विलपति । इति सौमित्रिम् लक्ष्मणमादिदेश आज्ञापयामास ।

मारीच के इस रामवचनसदृश आर्तस्वर को सुन कर सीता का हृदय विदीर्ण हो गया । वे प्राणवल्लभ राम के प्रति प्रेम से कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विवेचन में असमर्थ हो गयीं और उन्होंने लक्ष्मण को राम का पता लेने का आदेश दिया ।

ततश्चार्ये[1], न कार्यमिदमादिष्टम् । दिष्टदोषान्मिथ्याप्रतीतिः परिभवति[2] भवतीं परम् ।

तत इति । ततो निदेशानन्तरम्, आर्ये-हे पूज्ये वैदेहि ! इदम् आदिष्टम् अयम् आदेशः, (भावे क्तः) न कार्यम् न पालनीयम्, 'भ्रातरं जानीहि' इति तवादेशो युक्तो न प्रतिभातीत्यर्थः । दिष्टदोषात् दैवप्रातिकूल्यात् ('दैवं दिष्टं भागधेयम्' इत्यमरः) । मिथ्याप्रतीतिः विपर्यस्तं ज्ञानम् अरामस्वरेऽपि राम-स्वरत्वभ्रान्तिः, भवतीं परिभवति पीडयति । भ्रमवशादरामस्वरमपि रामस्वर-मवबुद्ध्य राक्षसेभ्यो रामविपत्तिमाशङ्क्य 'भ्रातरं जानीहि' इति भवत्या यदादिष्टं तदयुक्तम्, भ्रममूलत्वात्तादृशस्यादेशस्य पालनेऽनर्थसम्भवाच्चेतिभावः ।

इसके बाद लक्ष्मण ने कहा—आर्ये, आप का आदेश पालनीय नहीं है, दैव की प्रतिकूलता से आप को मिथ्या प्रतीति परेशान कर रही है ।

---

१. 'आर्येण कार्यं' इति पाठा० । २. 'पराभवति' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिभुवनैकधनुर्धरस्य शौर्यराशेरा[1]र्यस्य कः श्रद्धीत कोण[2]पघुणनिमित्तां विपत्तिमिति प्रणिपत्य प्रत्याचक्षाणं लक्ष्मणं हृदयतोदकारिण्या वाण्या मोहविह्वला सा बह्वतर्जयत्।

त्रिभुवनैकेति। त्रिभुवनैकधनुर्धरस्य त्रैलोक्येऽद्वितीयधानुष्कः, शौर्यराशेः शौर्यसिन्धोः, आर्यस्य श्रीरामस्य कोणपः राक्षसः स एव घुणः क्षुद्रकीटविशेषः, तन्निमित्तां तन्मूलां विपत्तिम् प्राणसङ्टम्, कः श्रद्धीत विश्वसेत् इत्येवं प्रकारेण प्रणिपत्य पादयोर्निपत्य प्रत्याचक्षाणम् तदादेशमस्वीकुर्वन्तं लक्ष्मणम्, हृदयतोदकारिण्या मनःसन्तापकारिण्या मर्मवेधिन्येत्यर्थः वाण्या वाचा मोहेन प्रियविपत्तिशङ्काजनितविवेकवैकल्येन विह्वला व्याकुला सा सीता बहु अत्यन्तम् अतर्जयत् अभर्त्सयत्।

तीनों लोकों में अद्वितीय धनुर्धारी शौर्यनिधान पूज्य राम को घुनसदृश राक्षसों से विपत्ति हो सकती है, इस पर कौन विश्वास करेगा? इस तरह सीता के आदेश का प्रत्याख्यान करते हुए लक्ष्मण की सीता ने दिल को चोट पहुंचाने वाली बातें कह कर बड़ी भर्त्सना की।

भूयोऽपि लक्ष्मणः [3]प्रजावतीं परुषभाषिणीमेवमभाषत।

भूयोऽपीति। भूयः पुनरपि, परुषभाषिणीम् रुशतीं वाचं व्याहरन्तीम् प्रजावतीम् भ्रातृभार्यां सीताम्, लक्ष्मणः, एवं वक्ष्यमाण प्रकारेण अभाषत उक्तवान् ('प्रजावती भ्रातृजाया' इत्यमरः)।

लक्ष्मण के प्रत्याख्यान के बाद भी दिल को चोट पहुँचाने वाली बातें कहती हुई अपनी भौजाई सीता से लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा—

सुमुखि! मम सुमित्रा सत्यमम्बा यदासी[4]
स्तदभजमवितर्कं मातृसम्पर्कसौख्यम्।
अहह विधिविपाकाद् व्याहरन्ती दुरुक्ति
त्वमसि विपिनमध्ये मध्यमाम्बा हि जाता॥ २७॥

---

१. 'रामार्यस्य' इति पाठा०। २. 'कौणप' इति पाठा०।
३. 'लक्ष्मणं' इति पाठा०। ४. 'परुषभाषणीं प्रजावतीं' इति पाठा०।
५. 'ऽऽसीत्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुमुखीति। हे सुमुखि—मधुरभाषितया शोभनं मुखं यस्यास्तत्सम्बुद्धौ हे सुमुखि = मधुरभाषिणि वैदेहि! यत् यस्मात्कारणात् त्वं मम सत्यम् यथार्थम् निर्व्याजमित्यर्थः सुमित्रा नाम अम्बा माता आसीः, सेव सततं मधुरभाषणमुपलालनं च करोषिस्मेत्यर्थः, तत् तस्मात्कारणात् अवितर्कम् निःशङ्कम् मातृसम्पर्कसौख्यम् मातृसम्पर्केण मातृसहवासेन यत् सौख्यमानन्दस्तदभजम् अन्वभवम्। अहहेति खेदव्यञ्जकमव्ययम्। विधिविपाकात् दैवप्रातिकूल्यात् दुरुक्तिमर्मवेधिनीं वाचम् व्याहरन्ती आलपन्ती त्वम् [सम्प्रति] विपिनमध्येऽरण्ये मध्यमाम्बा कैकेयी नाम माता जाता असि। पूर्वं मयि त्वं मधुरभाषणेन जननी सुमित्रेवावर्तथाः, परमिदानीं कटूक्त्या कैकेयीव वर्त्तसे, तदिदमस्माकं खेदकरमितिभावः मालिनी वृत्तम् ॥ २७ ॥

सुमुखि! तुम जो [अब तक] यथार्थरूप में मेरी माता सुमित्रा [के समान] थीं अतः [तुम्हारे साथ] मैं निःशङ्क माता के साथ रहने का आनन्द पाता रहा हूँ किन्तु खेद का विषय है कि दुर्भाग्य वश [इस समय] इस वन में तुम दुर्वचन बोलती हुई कैकेयी माता हो रही हो ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा [1]भ्रातृसमीपगामिनि लक्ष्मणे तत्क्षणमेव रन्ध्रान्वेषी दशकन्धरः स्यन्दनं विहाय विहायःस्थलादवतीर्य निजान्तःकरणेऽप्यमान्तं रागं बहिः प्रकटयन्निव [2]कपटसंन्यासिवेषः [3]पर्णशालाभ्यर्णमासदत्।

इतीति। इत्येवं प्रकारेण उक्त्वा लक्ष्मणे भ्रातृसमीपगामिनि श्रीरामसमीपं गते सति, तत्क्षणमेव, रन्ध्रान्वेषी अपहरणोचितमवसरं प्रतीक्षमाणः दशकन्धरः रावणः स्यन्दनम् रथं विहाय परित्यज्य विहायःस्थलात् आकाशप्रदेशात् अवतीर्य अवरुह्य, भूतलमागत्येत्यर्थः, ('पुंस्याकाशविहायसी' इत्यमरः) निजान्तःकरणे स्वहृदयेऽपि अमान्तम् मातुमपारयन्तं रागम् मात्सर्यं लौहित्यं च ('रागोऽनुरक्तौ मात्सर्ये क्लेशादौ लोहितादिषु' इति विश्वः) बहिः प्रकटयन्निव स्वरक्ताम्बरतया हृदयतो बहिराविष्कुर्वन्निवेत्यर्थः, कपटसंन्यासिवेषः मायापरिव्राजकवेषधारी सन् पर्णशालाभ्यर्णम्—सीताध्युषितोटजान्तिकम् आस-

---

१. 'भ्रातृजायां भ्रातृ' इति पाठा०। २. धृतकाषायपटसंन्यासवेषः' इति पाठा०।
३. 'पर्णशालामाससाद' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दत् प्रापत् । ('उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययमित्यमरः) ।

ऐसा कह कर लक्ष्मण जब श्रीराम जी के पास चले गये, उसी समय अपहरण के मौके की तलाश में रहने वाला रावण रथ को छोड़ आकाश से उतर कर अपने हृदय में अट न पाने वाले राग [अर्थात् मात्सर्य] को [अपने गेरुआ वस्त्र के रूप में] बाहर प्रकट करता हुआ-सा, कपटसंन्यासी का वेष धारण कर [सीता की] पर्णकुटी के पास पहुँचा ।

रामाश्रमाद्विगतलक्ष्मणसन्निधानात्
सीतां जहार चपलः पिशिताशनेन्द्रः ।
मालां [1]नवोत्पलमयीं पललभ्रमेण
देवालयादिव निरस्तजनादलर्कः ॥ २८ ॥

रामाश्रमादिति । चपलः अनियन्त्रितेन्द्रियः, पिशिताशनेन्द्रः राक्षसाधिपतिः रावणः, विगतं लक्ष्मणस्य सन्निधानम् सान्निध्यं यस्य तस्मात् लक्ष्मणरहितादित्यर्थः, रामाश्रमात् श्रीरामोटजात् (अपादाने पञ्चमी) । सीताम्—निरस्तजनात् पूजकादिजनशून्यात् देवालयात् देवमन्दिरात् नवोत्पलमयीम् प्रत्यग्रकमलपुष्पगुम्फिताम् मालां स्रजम् पललभ्रमेण मांसभ्रान्त्या ('पिशितं तरसं मासं पललं क्रव्यमामिषम्' इत्यमरः) एतेनात्रोत्पलमिति रक्तकमलवाचकमित्यवगन्तव्यम् । अलर्कः कुक्कुरः इव जहार अपहृतवान् । पूजकादिजनशून्यात्कुतश्चिद् देवालयात् कोऽपि कुक्कुरः रक्तकमलमालां मांसभ्रान्त्या हरेत् तद्वल्लक्ष्मणशून्याद्रामाश्रमाल्लोलुपो रावणः सीतां साधारणस्त्रीभ्रान्त्या जहारेत्युपमा । कुक्कुरस्य मालापहरणे न कोऽपिलाषः, अपि तु पूजकादिलोककृतदण्डाघातादिना तद्वध एव तथैव रावणस्यापि सीतापहरणेन स्वार्थसिद्धिस्थाने रामकृतशरप्रहारैस्तद् विनाश एव भविष्यतीत्युपमाशयः । (शुनको भषकः श्वा स्यादलर्कस्तु स योगितः' इत्यमरः) । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २८ ॥

अनियन्त्रितेन्द्रिय रावण ने लक्ष्मण के सान्निध्य से रहित रामके आश्रम से सीता को उसी प्रकार हर लिया जैसे पागल कुत्ता निर्जन देवालय से नूतनरक्तकमलों से बनी माला को मांस समझ कर हरता है ॥ २८ ॥

---

१. 'महोत्पल' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हा नाथ ! क्व चिरायसीति बहुशो व्याक्रुश्य बाष्पाविलं
चक्षुर्दिक्षु विमुञ्चतीं दशरथस्याद्यामवेक्ष्य स्नुषाम् ।
रे रे [1]राक्षस मा वधूं [2]प्ररुदतीं मुञ्चेति गृध्राधिपो
रुद्ध्वाध्वानमनल्पकोपमकरोदग्रेवणं रावणम् ॥ २९ ॥

हेति । हेति खेदे । नाथ स्वामिन् , क्व कुत्र, चिरायसि विलम्बं करोषि, इत्येवं प्रकारेण बहुशः बहुबारम् व्याक्रुश्य उच्चैराक्रन्द्य बाष्पाविलम्–बाष्पैः अश्रुभिः आविलम् कलुषम् अश्रुपूर्णमित्यर्थः, चक्षुः नेत्रम्. दिक्षु समन्ततः, विमुञ्चतीम् श्रीरामागमनाशया विक्षिपन्तीम् दशरथस्य आद्याम् ज्येष्ठां स्नुषाम् पुत्रवधूम् सीताम् अवेक्ष्य दृष्ट्वा गृध्राधिपः जटायुः, रे रे राक्षस रे राक्षसापसद, मा–एवं मा कुरु, कथं सीतापहरणसाहसं करोषीति भावः । प्ररुदतीम् प्रकर्षेण विलपन्तीम् वधूं स्नुषाम् । दशरथमित्रत्वेन जटायुषोऽपि सीतास्नुषात्वमुपपद्यते । मुञ्च त्यज इत्युक्त्वा ('समा स्नुषा जनीवध्वः' इत्यमरः)। 'रे रे राक्षस मा' इति क्रियारहितवाक्येन सातिशयसम्भ्रमो द्योतितः । ('हीनसम्बोधने तु रे' इत्यमरः)। अग्रेवणम–वनस्य अग्रे पुरोभागे । षष्ठीसमासे कृते 'वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाकोटराग्रेभ्यः' इति नस्य णत्वम् । 'राजदन्तादिषु परम्' इति वनशब्दस्य परनिपातः । निपातनात् सप्तम्याश्रलुक् । अध्वानम् रावणस्य मार्गम् रुद्ध्वा निरुद्ध्य रावणम् अनल्पकोपम्–अनल्पः समधिकः कोपो यस्य तथाविधम् अतिकुपितम् अकरोत् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

'हाय ! नाथ ! आप कहाँ विलम्ब कर रहे हैं'—इस प्रकार बार-बार क्रन्दन करती हुई [राम के, किसी ओर से आने की आशा से] अश्रुपूर्ण दृष्टि को चारों ओर डालती हुई, दशरथ की बड़ी पुत्रवधू को देख कर गृध्रराज जटायु ने—'रे रे राक्षस, ऐसा मत कर, रोती हुई मेरी पुत्रवधू को छोड़ दे ।'—ऐसा कह कर वन के अग्रभाग में रास्ता रोक कर रावण को अत्यन्त कुपित कर दिया ॥ २९ ॥

समभूत्समये तस्मिन्समरं समरंहसोः ।
मिथोमथनसंक्रुद्धगृध्रराक्षसराजयोः ॥ ३० ॥

---

१. 'रावण' इति पाठा० । २. 'प्रतिरुधामुञ्च' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समभूदिति। तस्मिन् समये सीताहरणकाले समरंहसोः—समं तुल्यं रंहः वेगो ययोस्तयोः, मिथोमथनेन परस्परसङ्घर्षेण संक्रुद्धौ अतिकुपितौ यौ गृध्रराक्षसराजौ जटायूरावणौ तयोः समरम् युद्धम् अभूत्।

उस समय समान वेग वाले तथा परस्पर संघर्ष से अतिकुपित, जटायु और रावण का युद्ध हुआ ॥ ३० ॥

दशमुखरथमाशु ध्वस्तरथ्यं विसूतं
शिथिलतरवरूथं शीर्णचक्रं स चक्रे।
गरुदभिहतशक्तिप्रास[1]बाणासखड्ग-
त्रिशिखविशिखतूणीपाशकुन्तः शकुन्तः ॥ ३१ ॥

दशमुखेति। स शकुन्तः पक्षी जटायुः ('शकुन्तपक्षिशकुनि'-इत्यमरः)। गरुद्भ्याम् पक्षाभ्याम् अभिहताः विनाशिताः शक्तयः आयुधविशेषाः, प्रासाः अस्त्रविशेषाः बाणासाः शरासनानि, खड्गः चन्द्रहास इति नाम्ना प्रसिद्धः कृपाणः, त्रिशिखम् त्रिशूलं, विशिखाः बाणाः, तूण्यौ तूणीरौ ('तूणोपासङ्ग तूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः। तूण्याम्' इत्यमरः)। पाशाः आकर्षणसाधनायुधविशेषाः' कुन्ताः भल्लाः, येन स तथोक्तः सन्, आशु = शीघ्रम्, दशमुखरथम् रावणरथम्, ध्वस्तरथ्यम् विनष्टाश्वम्, विसूतम् सारथिहीनम् शिथिलतरवरूथम्—शिथिलतरः अत्यन्त विश्लिष्टः वरूथः रथगुप्तिर्यस्य तम्। ('वरुथो रथगुप्तिर्या तिरोधत्ते रथस्थितिम्' इत्युक्तेः।) तथा शीर्णचक्रम् विनष्टचक्रं चक्रे कृतवान्। मालिनी वृत्तम् ॥ ३१ ॥

उस पक्षी जटायु ने अपने डैनों के आघात से शक्ति, साँग, धनुष, तलवार, त्रिशूल, बाण, तरकस. पाश, भाला आदि आदि रावण के अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट कर उसके रथ के घोड़ों, सारथी, रथगुप्ति [रथ के चारों ओर लगा लोहे या लकड़ी का ढाँचा जिससे रथ की किसी से टकराने पर रक्षा हो सके] तथा पहियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥ ३१ ॥

राक्षसासिक्षतः क्षिप्रं पपात पततां वरः।
मैथिलीपक्षपातेन पक्षपात[2]मवाप्य सः ॥ ३२ ॥

---

१. 'बाणासि' इति पाठा०　　२. 'अवाप' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राक्षसेति। पततां पक्षिणां वरः श्रेष्ठः सः जटायुः मैथिलीपक्षपातेन सीतासाहाय्येन हेतुना पक्षपातम् पक्षविनाशम् अवाप्य प्राप्य राक्षसस्य रावणस्य असिना खड्गेन क्षतः विदलितः सन् क्षिप्रम् अतिशीघ्रम् पपात भूमौ पतितः ॥ ३२ ॥

सीता का पक्षपात करने के कारण, राक्षस रावण की तलवार से विदलित विहङ्गराज जटायु डैनों के छिन्नभिन्न होने से वेग से [पृथ्वी पर] गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

तत्क्षणमन्यरथाधिरूढेन रावणेन भूयोऽपि नीयमाना जानकी [1]शृङ्गसङ्गतप्लवङ्गपञ्चके [2]पञ्चचूड इव [3]क्ष्माधरे कस्मिंश्चित्सुग्रीवसात्कृतदशग्रीवप्रतापानलसदृशं वालिविनाशपिशुनमहोल्कापातप्रतिमं रामसाहाय्यकप्रोत्साहनाय पुत्रमभिपतत्पतङ्गबिम्बशङ्कावहं कनक[4]पिशङ्गकौशेयमयोत्तरीयान्तरितमाभरण[5] जालमपातयत्।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन्नेव क्षणे जटायुषः पतनान्तरमेवेत्यर्थः। अन्यरथाधिरूढेन जटायुषा प्रथमस्य भग्नतया अन्यरथमधिष्ठितवता रावणेन भूयः पुनरपि नीयमाना अपह्रियमाणा जानकी सीता शृङ्गसङ्गतप्लवङ्गपञ्चके–शृङ्गसङ्गतम् शिखरोपविष्टं प्लवङ्गपञ्चकम् सुग्रीवादिवानरपञ्चकं यस्य तस्मिन्। पञ्चचूडे इव–अतएव पञ्चशिखोपेते इव, (शिखा चूडा केशपाशः' इत्यमरः)। पञ्चशिखरोपेते इवेति यावत्। कस्मिंश्चित् (ऋष्यमूक इत्यर्थः) क्ष्माधरे पर्वते सुग्रीवसात्कृतः सुग्रीवाधीनः कृतः दशग्रीवप्रतापानलः रावणप्रतापवह्निः, तत्सदृशम् तत्तुल्यम्। वालिविनाशस्य पिशुनः सूचकः यो महोल्कापातः तत्प्रतिमं तत्सदृशम्, ('कर्णेजपः सूचकः स्यात् पिशुनः' इत्यमरः)। रामस्य यत् साहाय्यकं सहायकर्म ('योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ्' इति वुञ्) तत्र प्रोत्साहनाय प्रेरणार्थम्, पुत्रम्, सुतं सुग्रीवमित्यर्थः अभिपततः अभ्यागच्छतः पतङ्गस्य सूर्यस्य यद् बिम्बं मण्डलम् तच्छङ्कावहम् भ्रमजनकम्, कनकपिशङ्गम् सुवर्णवद्

१. 'ऋष्यमूकशृङ्ग' इति पाठा०। २. 'पञ्चचूढाधर इव' इति पाठा०।
३. 'क्ष्माधरकुमारे' इति पाठा०। ४, 'कपिशकौशेय' इति पाठा०।
५. 'भारम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत् पिशङ्गम् कपिशवर्णं कौशेयमयोत्तरीयम् क्षौमं संव्यानम् तत्र अन्तरितं गोपितम् आभरणजालम् नूपुरादिभूषणजातम् , अपातयत् । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

उस समय [पहिला रथ जटायु के द्वारा भग्न हो जाने से] दूसरे रथ पर बैठ कर रावण-द्वारा ले जायी जाती हुई सीता ने किसी पर्वत [अर्थात् ऋष्यमूक] पर, जो शिखर पर पाँच वानरों के बैठे रहने से पाँच शिखरों वाला प्रतीत हो रहा था, अपने गहने सोने की तरह पीतवर्ण उत्तरीय में बाँध कर गिरा दिये। गिरते समय वे गहने ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानों रावण का प्रतापानल सुग्रीव के हाथ में सौंपा जा रहा हो, या बालि के विनाश की सूचना देने वाला महोल्कापात हो रहा हो, अथवा राम की सहायता के लिए अपने पुत्र सुग्रीव को प्रोत्साहित करने हेतु स्वयं सूर्य भगवान् उसके पास आ रहे हों।

तत्पतनमपि स्वतेजः पतनमिव [1]नालक्षयंल्लङ्कालङ्कारभूतामशोकवनिकां मैथिलीमनय[2]दनयाभिज्ञो दशग्रीवः ।

तत्पतनमिति । तत्पतनम् सीताभूषणजातपतनमपि स्वतेजः पतनमिव स्वकीयप्रतापभ्रंशमिव, न आलक्षयन् न जानन्, अनयाभिज्ञः अनीतिज्ञः दशग्रीवः रावणः, लङ्कालङ्कारभूताम् लङ्कालङ्कारसदृशीमित्यर्थः। अशोकवनिकाम् अशोकवाटिकाम् अनयत् प्रापितवान्। यथा पापकर्मपरायणतया रावणो भ्रंशमानं स्वतेजो न ज्ञातुमशक्नोत्तथैव कामान्धतया सीताभूषणजातपतनमपि न ज्ञातवानित्यर्थः।

अनीतिज्ञ रावण जैसे [पापकर्म में परायण होने के कारण] अपने तेज के भ्रष्ट होने को नहीं जान सका उसी तरह [कामान्ध होने के कारण] सीता के गहनों के गिरने को नहीं जान सका और उसने सीता को लङ्का की अलङ्कारभूत अशोक वाटिका में पहुँचा दिया।

अशोकवनिका लेभे राक्षसीपरिवेष्टिताम् ।
सीतां मारुतिबालाग्निस्तम्भनार्हामिवौषधिम् ॥ ३३ ॥

अशोकवनिकेति । अशोकवनिका अशोकवाटिकेति नाम्ना प्रसिद्धा राव-

१. 'न पश्यन्' इति पाठा० । २. 'अनयज्ञो' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

णस्य वाटिका राक्षसीपरिवेष्टिताम् सीतां रक्षितुं रावणं प्रत्यनुकूलयितुं च नियुक्ताभिः राक्षसस्त्रीभिः परिवृतां सीताम्, मारुतेः हनूमतः बालाग्निः पुच्छवह्निः तस्य स्तम्भने निरोधने अर्हाम् योग्याम् समर्थामिति यावत् ओषधिमिव भेषजमिव लेभे प्रापेत्युत्प्रेक्षा। लङ्कादहनसमये हनूमता स्वलाङ्गूलवह्निना समग्रा लङ्कादग्धा किन्तु सीताऽध्युषिततया साऽशोकवनिकाऽग्निस्पर्शमपि न प्रापेति मनसि कृत्वेयमुत्प्रेक्षा कृता ॥ ३३ ॥

राक्षसियों से घिरी हुई सीता को अशोक वाटिका ने हनूमान की पूँछ की आग को रोकने की ओषधि के रूप में प्राप्त किया [क्यों कि वहाँ सीता के रहने से ही, हनूमान द्वारा लंकादाह के समय अशोक वाटिका पर आग की आँच भी नहीं आयी] ॥ ३३ ॥

काकुत्स्थोऽप्यथ रक्षसामधिपतेर्वाग्वागुरावेष्टिते
कृत्वा हाटकताटकेयहरिणे शार्दूलविक्रीडितम्।
आगच्छन्ननुजेन तत्र गदितामाकर्ण्य वार्तां ततः
सीतासङ्गमलालसस्तदुटजं रामः प्रतस्थे द्रुतम् ॥ ३४ ॥

काकुत्स्थोऽपीति। अथानन्तरम् काकुत्स्थः रघुपतिः रामः अपि रक्षसामधिपतेः रावणस्य वाग्वागुरावेष्टिते वचनजालपरिवृते रावणवचनेन विवशो भूत्वा प्रतारणापरायणे इत्यर्थः हाटकताटकेयहिरिणे हाटकं सुवर्णं तस्य यो ताटकेयः मारीचः तस्मिन्नेव हरिणे मृगे धृतसुवर्णमृगवेषे मारीचे इत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितम् शार्दूलो व्याघ्रः ('शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे' इत्यमरः) तस्य विक्रीडितम् कौतुकम् तदिव विक्रीडितं कृत्वा, शार्दूल इव तमनायासेन निहत्येत्यर्थः। आगच्छन् आश्रमाभिमुखं परावर्त्तमानः, तत्र मार्ग अनुजेन लक्ष्मणेन गदिताम् उक्ताम् वार्ताम् करुणाक्रन्दश्रवणेन सम्भ्रान्तया सीतया कटूक्तिभिः खेदितोऽहं भवन्तं ज्ञातुमागतोऽस्मीत्येवं रूपं वृत्तान्तमित्यर्थः। ('वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः) आकर्ण्य श्रुत्वा, ततः तस्मात्, सीताविपत्तिसम्भ्रमादित्यर्थः सीतासंगमलालसः सीतां द्रष्टुमुत्कण्ठितः सन् तदुटजम् तस्याः सीताया उटजम् पर्णशालां प्रति, द्रुतम् वेगेन प्रतस्थे चचाल। वाचि वागुराऽऽरोपणेन, मारीचे च हरिणारोपणेन रामे व्याघ्रत्वप्रतीतिरित्येकदेशविवर्तिरूपकम्। शार्दूलविक्रीडितमित्यत्र शार्दूलविक्रीडितसदृशं विक्रीडितमिति सादृश्याक्षेपादसम्भवद्वस्तु-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्धनिदर्शना । तयोः सापेक्षतया सङ्करः । शार्दूलविक्रीडितमिति पदप्रयोगेऽस्यवृत्तस्यापि शार्दूलविक्रीडितत्वात्कवि कौशलं द्रष्टव्यम् ॥ ३४ ॥

इसके बाद काकुत्स्थ राम, राक्षसाधिपति रावण के वाग्जाल से आवेष्टित मारीचरूप स्वर्णमृग पर बाघ का-सा कौतुक कर [अर्थात् उसे लीलापूर्वक मार कर, आश्रम की ओर] आते हुए, मार्ग में [मिले] लक्ष्मण द्वारा कहे गये सारे वृत्तान्त को सुन कर, अतएव सीता को देखने के लिए उत्कण्ठित हो शीघ्र उनकी (सीता की) पर्णशाला की ओर चल पड़े ॥ ३४ ॥

अयं कथं स्यादिति बाष्पगर्भमालोक्यमानो वनदेवताभिः ।
विलोकयन् केवलपर्णशालां [1]विनष्टचेता विललाप रामः ॥ ३५ ॥

अयमिति । अयम् श्रीरामः, केवलपर्णशालाम् सीतारहितमुटजं विलोकयन् पश्यन्, कथं स्यात् कीदृशीं दशामनुभवेदिति वनदेवताभिः वनाधिष्ठात्रीभिः देवीभिः, बाष्पगर्भम् साश्रुनेत्रम् अवलोक्यमानः दृश्यमानः सन्, केवलपर्णशालां विलोकयन् विनष्टचेताः चेतनाशून्यः विललाप विलापमकरोत् । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ३५ ॥

सीतारहित पर्ण-शाला को देख कर राम की क्या दशा होती है,—यह जानने के लिए वन देवताओं द्वारा नेत्रों में आँसू भर कर देखे जाते हुए रामचन्द्र, सीताशून्य पर्णशाला को देखते ही बेचैन होकर विलाप करने लगे ॥ ३५ ॥

हा कष्टमत्र न हि सा किमिदं प्रवृत्त-
मालोकयामि चटुलामिह पादमुद्राम् !
मां वीक्ष्य नूनमगृहीतमृगं मुहूर्त-
मन्तर्हिता तरुषु रोषवतीव सीता ॥ ३६ ॥

हा कष्टमिति । हा कष्टमिति खेदे । अत्र पर्णशालायाम्, सा सीता, न हि नास्ति खलु । इदम् एतत् किं प्रवृत्तम् जातम्, अनर्थमिदं जातमित्याशयः । तथा इह अस्मिन् प्रदेशे चटुलाम् इतस्ततो विशृङ्खलिताम् पादमुद्राम् चरणन्यासम् अक्रमिकानि चरणचिह्नानीत्यर्थः, अवलोकयामि पश्यामि, किमेतदिति

१. 'विलीनचेता' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भावः। नूनम् मन्ये अगृहीतमृगम्—न गृहीतः आनीतः स्वर्णमृगो येन तादृशं मां रामं वीक्ष्य दृष्ट्वा रोषवतीव कृत्रिमकोपयुक्ता सीता मुहुर्तम् क्षणमात्रम् तरुषु वृक्षेषु तत्कुञ्जेषु अन्तर्हिता अन्तर्धानं गता। लोकेऽपि दृश्यते—स्वाभिमतवस्तु विनैव समागच्छन्तं पतिं पश्यन्ती काचित् स्त्री रोषविडम्बनया क्वापि निलीय कंचित्कालं पतिं सम्भ्रान्तयितुं कौतुकं करोति॥ वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३६॥

हा, खेद है, सीता यहाँ नहीं है! यह क्या हो गया? इस आश्रम प्रदेश में अस्त-व्यस्त चरण चिह्न दिखायी पड़ रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि सुवर्णमृग को विना लिये हुए मुझे आते देख कर रुष्ट-सी सीता वृक्षों की झुरमुट में कहीं छिप गयी है॥ ३६॥

त्वदभिलषित[1]पूर्त्या वञ्चितः पञ्चवटया-
मचरमचरमोऽहं मोहभाजां प्रजानाम्।
तदिह सरलबुद्धे! नैष रोषस्य कालः
सुमुखि! मम मुखं किं सोढसीतावियोगम॥ ३७॥

त्वदभिलषितेति। सरलबुद्धे! सुमखि सुन्दरानने! त्वदभिलषितपूर्त्या त्वन्मनोरथपूरणेन सुवर्णमृगाहरणरूपमनोरथपूरणेनेत्यर्थः वञ्चितः रहितः, त्वन्मनोरथं पूरयितुमशक्त इत्यर्थः। मोहभाजाम् व्यामोहवतां प्रजानाम् जनानाम् ('प्रजास्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः) अचरमः प्रथमः अहम् पञ्चवटयाम् तन्नामकवनप्रदेशे अचरम् भ्रान्तवान्। [व्यामुग्ध जनानां प्रथमोऽहं त्वदभिलषितस्वर्णमृगमाहर्तुं पञ्चवटयां बहुभ्रमणं कृतवान् तथापि तथाकर्तुं नाशकम्] तत् तस्मात् इह अशक्तिकृतेऽपराधे रोषस्य कालःसमयो न, नास्ति रोषावकाशः, त्वया कोपो न कार्य इत्यर्थः। मम मुखं सोढः सीतावियोगो येन तादृशं भवति किम्? मम मुखं त्वद्वियोगं कदापि सोढुं नाशक्नोत्, तस्मादेतद्विचिन्तयन्ती त्वं सन्निधेहि। सत्यपि रोषकाले, मम त्वद्वियोगासहिष्णुत्वादानुकूल्येनैव त्वया वर्त्तितव्यमिति भावः॥ मालिनी वृत्तम्॥ ३७॥

मैं व्यामुग्ध जनों में प्रथम (अग्रगण्य) होकर पञ्चवटी में इधर-उधर बहुत घूमता रहा, [फिर भी] तुम्हारे [सुवर्णमृगाहरण-रूप] मनोरथ

---

१. 'पूर्त्यै' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की पूर्ति से वञ्चित रहा—उसे पूरा न कर सका। अत एव इस [अशक्ति कृत अपराध] पर हे सरल बुद्धे ! सुमुखि ! यह रोष का समय नहीं है [अर्थात् कोप करना उचित नहीं है] क्या मेरा मुख तुम्हारे वियोग को कभी सह सका है ? ॥ ३७ ॥

यद्यस्ति कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि !
चान्द्रं हरामि हरिणं मम सन्निधेहि ।
यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं
तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगाङ्कः ॥ ३८ ॥

यद्यस्तीति । मृगाक्षि मृगनयने ! अपूर्वमृगे असाधारणमृगे यदि (तव) कौतुकम् कुतूहलम् लिप्सेति यावत् अस्ति तदा चान्द्रम् चन्द्रसम्बन्धिनम् ('तस्येदम्' इत्यण्) चन्द्रेण ध्रियमाणमित्यर्थः, हरिणम् हरामि त्वदर्थमानयामि, मम सन्निधेहि सन्निहिता भव, मत्समीपं प्रत्याय्याहीत्यर्थः । अतो मया रामेण हृतमानीतम् एनं चान्द्रम् एणम् हरिणं यावत् न मुञ्चसि कौतुकान्न त्यजसि, तावत् मृगः अङ्कः चिह्नं यस्य तादृशश्चन्द्रः तव वक्त्रतुलाम् वक्त्रेण निष्कलङ्केन मुखेन तुलां सादृश्यं दधातु धारयतु (संभावनायां लोट्) । अत्रोपमानादुपमेयस्याधिक्यप्रतिपादनरूपो व्यतिरेको व्यङ्ग्यः, इत्यलङ्कारेणालङ्कारध्वनिः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।। ३८ ॥

मृगाक्षि ! यदि तुम्हारा अभिलाष अपूर्व मृग पाने का ही है तो मैं [तुम्हारे लिए] चन्द्रमा वाला हरिण ले आता हूँ। जब तक तुम, मेरे लाये हुए उस मृग को नहीं छोड़ती हो, तब तक चन्द्रमा [निष्कलङ्क] तुम्हारे मुख की समता प्राप्त कर ले ॥ ३८ ॥

सप्राणा चेज्जनकतनया किं न तिष्ठेत मह्यं
हिंस्रैः सत्त्वैर्न [1]खलु निहता रक्तसिक्ता न [2]पृथ्वी ।
[3]गोदावर्या पुलिनविहृतिं रामशून्या न कुर्या-
द्युक्तं नक्तञ्चरकवलनात् संस्थिता सर्वथा सा ॥ ३९ ॥

सप्राणेति । जनकतनया सीता सप्राणा सजीविता चेत् यदि, तदा मह्यं

---

१. 'किल विहता' इति पाठा० । २. 'भूमि' इति पाठा० ।
३. 'गोदावर्याः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किं न तिष्ठेत मम पुर आत्मानं प्रकाशयन्ती किमिति न वर्तेत। एतेन सा न सप्राणेतिनिश्चयो व्यज्यते। 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' इत्यात्मनेपदम्। [किन्तु] खलु निश्चयेन हिस्रैः घातुकैः सत्त्वैर्जन्तुभिर्व्याघ्रादिभिः, न निहता न व्यापादिता [यतः] रक्तसिक्ता रुधिरार्द्रा पृथ्वी भूर्न [विद्यते] तथा चेद्रक्तसिक्ता पृथिवी भवेदेति भावः। गोदावर्याम् गोदावरीतीरे इति लाक्षणिकोऽर्थः। पुलिनविहृतिम् तटविहारम्, रामशून्या रामेण मया प्रियतमेन शून्या विरहिता न कुर्यात्, तस्माद् गोदावरीतटे विहरन्ती तदीयजलेऽपि निमग्ना न स्यादिति भावः। तत्र निर्धारणमाह–युक्तमिति। सा सीता नक्तञ्चरकवलनात् राक्षस कर्तृकभक्षणाद्धेतोः सर्वथा असंशयं संस्थिता मृता [इति] युक्तम् उपपन्नमित्यर्थः ('संस्था स्थितौ व्यवस्थायां नाशे' इति विश्वः)। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ३९ ॥

यदि जनकनन्दिनी जीवित होती तो मेरे सामने क्यों न प्रकट होती [अर्थात् अवश्य प्रकट होती] उसे [व्याघ्रादि] हिंसक जन्तु खा गये होंगे- यह भी बात नहीं है क्योंकि [यहाँ की] भूमि रक्तरञ्जित नहीं है [यदि ऐसी बात होती तो भूमि अवश्य रक्तरंजित होती]। हमारे विना, अकेली गोदावरी तटपर विहार करने के लिये जा नहीं सकती [इस लिये गोदावरी में उसके डूब जाने की भी कल्पना नहीं की जा सकती है] इसलिए यही ठीक जान पड़ता है कि निस्सन्देह राक्षसों का ग्रास बन कर वह नष्ट हो गयी ॥ ३९ ॥

लोकान्तरप्रणयिनं श्वशुरं प्रणन्तु-
माज्ञप्तकालमतिलङ्घ्य यदि प्रयासि।
विज्ञाप्य मामपि समाह्वय साध्वि ! तस्मै
सौमित्रिरेव भरते निदधातु राज्यम् ॥ ४० ॥

लोकान्तरप्रणयिनमिति। आज्ञप्तः पित्रा निर्दिष्टः, चतुर्दशवर्षात्मको यः कालः वनवासावधिः, तम् अतिलङ्घ्य, तावन्तं कालमयापयित्वा मध्य एवेत्यर्थः, [मां परित्यज्य पतिव्रतायास्तव पुरस्ताद्गमनानौचित्येऽपि] लोकान्तरप्रणयिनम् स्वर्गवासिनं श्वशुरं दशरथं प्रणन्तुं नमस्कर्त्तुं यदि प्रयासि गच्छसि गतासीत्यर्थः, साध्वि ! पतिव्रते ! ('सती साध्वी पतिव्रता' इत्यमरः)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्मै श्वशुराय दशरथाय विज्ञाप्य पतिवियुक्ताऽहं क्षणमप्यत्र स्थातुं नालमिति निवेद्य माम् राममपि समाहूय आकारय ('हूतिराकारणाह्वानम्' इत्यमरः)। तर्हि राज्यस्य का गतिरित्याह सौमित्रिरिति। सौमित्रिः लक्ष्मण एव भरते राज्यं निदधातु निक्षिपतु। मयि रामे लोकान्तरगते मदाज्ञापालको लक्ष्मण एव न्याय्ये साम्राज्ये भरतमभिषेक्ष्यतीत्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४० ॥

यदि [पिता जी के द्वारा] निर्दिष्ट चतुर्दश वर्षात्मक वनवास काल का उल्लङ्घन कर [बीच में ही] स्वर्गवासी श्वशुर [दशरथ] को प्रणाम करने गयी हो तो उनसे निवेदन कर मुझे भी वहीं बुला लो। [मेरे, यहाँ न रह जाने पर] लक्ष्मण ही भरत को [न्याय प्राप्त] राज्य सौंप देंगे ॥ ४० ॥

इत्थं विलप्य दयितां विपिने विचिन्वन्
रामो न तत्र धृतिमान्न च लक्ष्मणोऽपि।
तादृग्विधामपि [1]कथां कथयन् स्ववाचा
वल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः ॥ ४१ ॥

इत्थमिति। इत्थमनेन प्रकारेण, विलप्य विलापं कृत्वा, दयिताम् प्रियाम्, विपिने वने विचिन्वन् अन्विष्यन् तत्र तस्मिन् समये रामः न धृतिमान् न च लक्ष्मणः अपि धृतिमान्, सीतामन्विष्यन्तौ रामलक्ष्मणौ नितरामधीराव-भूतामित्यर्थः। तादृग्विधामपि अवर्णनीयामश्रवणीयामपीत्यर्थः कथाम् वृत्तान्तम् स्ववाचा कथयन् पुनः पुनर्वर्णयन् वल्मीकजन्ममुनिरेव वल्मी-काज्जन्म यस्य स वल्मीकजन्मा चासौ मुनिश्च वल्मीकजन्ममुनिः वाल्मीकिरेव कठोर चेताः कठिनहृदयः सन् धृतिमानभूत्। तादृग्विषादवैक्लव्यविलापा-धैर्यादिव्यञ्जककथावर्णनतत्पराःसामान्यकवयो धैर्यच्युतया तत्कथा वर्णना-द्विरता भवेयुरेतत्तु वल्मीकजन्मनो मुनेरेव कठिनहृदयत्वं येन स्वधैर्यं रक्षन् तादृग्विधां कथां कथयितुमपारयदित्यहो तद्धृदयकाठिन्यमिति भावः। अत्र वल्मीकजन्मेति पदार्थस्य कठोरचेता इति पदार्थे हेतुतया काव्यलिङ्गम-लंकारः वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४१ ॥

इस प्रकार विलाप कर प्रियतमा सीता को वन में ढूँढते हुए न राम

---

१. 'दशाम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और न लक्ष्मण ही धैर्य रख सके, इस प्रकार की कथा को अपनी वाणी से प्रकाशित करने वाले कठोर हृदय वाल्मीकि ही धैर्यवान् हैं [हम जैसे सामान्य कवि उस कथा का प्रकाशन करने में नितान्त असमर्थ हैं] ।। ४१ ।।

[1]ततः प्रारभमाणप्रयाणान् प्राणानवष्टभ्य जटायुस्तत इतः क्रियमाणसीतान्वेषणं सलक्ष्मणं राममालक्षयन्नवोचत ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, प्रारभमाणमुपक्रम्यमाणं प्रयाणं परलोकगमनं यैस्तान् प्राणान् जटायुः अवष्टभ्य निरुध्य इतस्ततः अत्र तत्र क्रियमाणसीतान्वेषणम् सीतामन्विष्यन्तम् सलक्ष्मणम् लक्ष्मणानुगतं रामम् आलक्षयन् पश्यन् अवोचत उक्तवान् ।

इसके बाद जाने लिए उद्यत प्राणों को [किसी तरह] रोक कर जटायु ने लक्ष्मण के साथ इधर-उधर सीता को ढूँढते हुए राम को देख कर [इस प्रकार से] कहा—

आयुष्मन् ! मां खड्गविक्षतपक्षतिं क्षितितले निक्षिप्य [2]क्षिप्रमपजहार मैथिलीं रावण इति ।

आयुष्मन्निति । आयुष्मन् चिरजीविन् ! खड्गेन स्वचन्द्रहासनामखड्गेन विक्षते छिन्ने पक्षती पक्षौ यस्य तथाविधं माम् जटायुषम् क्षितितले भूतले निक्षिप्य पातयित्वा रावणः मैथिलीम् सीताम् क्षिप्रं शीघ्रम् अपजहार अपहृतवान् इत्येवम् अवोचत इति पूर्वेण सम्बन्धः ।

आयुष्मन्, अपने खड्ग से मेरे पंखों को काट कर मुझे भूतल पर गिरा कर रावण सीता को शीघ्रता से हर ले गया ।

स्वयमपि शरभङ्गस्वीकृतां भङ्गहीनां
सपदि गतिमवाप्तः संहृतायुर्जटायुः ।
नयनसलिलमिश्रं रामहस्तेन दत्तं
दशरथदुरवापं प्राप नैवापसम्भः ।। ४२ ।।

स्वयमपीति । संहृतं समाप्तम् आयुः जीवनकालो यस्य स तथोक्तः । जटायुः सपदि सद्यः, स्वयमपि शरभङ्गस्वीकृताम् शरभङ्गमुनिप्राप्ताम् भङ्गहीनाम्

---

१. 'तत्र' इति पाठा० । २. 'क्षिप्रतरम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनपायिनीम् गतिम् वैकुण्ठवासलक्षणां स्थितिम् अवाप्तः प्राप्तः सन्, नयनसलिलमिश्रम् अश्रुजलमिश्रितम्, रामहस्तेन दत्तम्, दशरथदुरवापम् पितृतयाऽपि दशरथदुर्लभम्, नैवापम् पितृतर्पणसम्बन्धि ('पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः) अम्भः जलं प्राप। यथा शरभङ्गो मुनिः परब्रह्मरूपस्य श्रीरामस्य दर्शनेन मुक्तोऽभवत् तथैव जटायुरपि स्वभाग्योदयेन रामदर्शनं प्राप्य सीतावृत्तान्तं तस्मै निवेद्यापुनरागमनाय स्वर्गमगमत्। रामः स्वयं तस्मै रुदन् जलाञ्जलिं प्रदत्तवान्, यां दशरथोऽपि, रामस्य तत्राविद्यमानत्वान्नाप्तुं शशाके-त्यहो जटायुषो भाग्यवत्तेत्याशयः। मालिनी वृत्तम्।

जीवन काल समाप्त हो चुकने से जटायु ने स्वयं भी तत्क्षण शरभङ्ग मुनि को मिली हुई अनपायिनी गति [अर्थात् मुक्ति] प्राप्त कर, रामद्वारा प्रदत्त उनके आँसुओं से मिश्रित वह जलाञ्जलि प्राप्त की जिसे दशरथ जी भी [मौके पर राम के न रहने से] प्राप्त नहीं कर सके थे ॥ ४२ ॥

अथ दक्षिणारण्यानीं [1]प्रति प्रस्थिते काकुत्स्थे राक्षसी काचिदयोमुखीनाम सौमित्रिमभिभूय तदीयेन शस्त्रेण शूर्पणखासिद्धिमभजत।

अथेति। अथानन्तरम्, काकुत्स्थे श्रीरामे दक्षिणारण्यानीम् दक्षिणदिगवस्थितं महद् वनम् (महारण्यमरण्यानी' इत्यमरः) अरण्यशब्दात् 'इन्द्रवरुण–' इत्यादिना ङीप्, आनुगागमश्च। प्रति प्रस्थिते चलिते सति अयोमुखी नाम काचित् राक्षसी सौमित्रिम् लक्ष्मणम् अभिभूय 'एहि रंस्यावहे' इत्युक्त्वा तिरस्कृत्य कोपं गमयित्वेत्यर्थः, तदीयेन लक्ष्मणसम्बन्धिना शस्त्रेण शूर्पणखासिद्धिम् शूर्पणखायाः रावणभगिन्याः या सिद्धिः कर्णनासाच्छेदरूपगतिस्तत्सदृशीं सिद्धिम्, (अतए निदर्शनाऽलङ्कारः) अभजत प्राप।

इसके बाद श्रीराम जी दक्षिण के विकट वन की ओर जब चले तब अयोमुखी नामक राक्षसी ने [रति की प्रार्थना से] लक्ष्मण को क्रुद्ध कर उनके शस्त्र से शूर्पणखा की गति को प्राप्त किया।

[2]ततः क्रौञ्चारण्यसरण्या प्रयातावेतौ महर्षेः स्थूलशिरसः शापात् कोणपतां प्रपन्नः पन्नगपतिभोगभीषणाभ्यां भुजाभ्यां बबन्ध यथार्थनामा कबन्धः।

---

१. 'प्रति' इति क्वचिन्नास्ति। २. 'तदनु' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत इति। ततस्तदनन्तरम्, क्रौञ्चारण्यस्य क्रौञ्चवनस्य सरण्या मार्गेण प्रयातौ चलितौ एतौ रामलक्ष्मणौ महर्षेः स्थूलशिरसः तन्नाम्नो महर्षेः शापात् कोणपताम् राक्षसभावम् प्रपन्नः प्राप्तः यथार्थनामा अन्वर्थाभिधानः, कबन्ध-पदस्य क्रियायुक्तस्य शिरोहीनदेहस्य वाचकत्वेन तस्यापि शिरोराहित्यादिति भावः। कबन्धः तदभिधानो राक्षसः पन्नगपतिभोगभीषणाभ्याम् पन्नगपतेः शेषनागस्य भोगः कायस्तद्वद् भीषणाभ्यां भयङ्कराभ्यां भुजाभ्यां बाहुभ्याम् (अतएवोपमा) बबन्ध रुरोध। ('कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम' इत्यमरः)।

इसके बाद क्रौञ्चारण्य के मार्ग से जाते हुए राम और लक्ष्मण को, स्थूलशिरा नामक महर्षि के शाप से राक्षस भाव को प्राप्त, [शिररहित होने से] यथार्थनामा कबन्ध नामक राक्षस ने शेषनाग के देह की तरह [विशाल] भयङ्कर अपने बाहुओं से बाँध लिया।

तदनन्तरमनश्रुपात्रेषु राक्षसीनेत्रेषु [1]सदोत्पादिततरवारिभ्यां राम-लक्ष्मणयोस्तरवारिभ्यां कबन्धबाहुयुगलं [2]कदलीलावमलूयत।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरम् कबन्धकृतनिरोधात् परतः, अनश्रुपात्रेषु राक्ष-सानां पराक्रमशालितया शोकजनिताश्रुप्रवाहावसरमलभमानेष्वित्यर्थः, राक्षसीनां नेत्रेषु सदा निरन्तरम् उत्पादिततरम् अतिशयेन प्रकटीकृतम् वारि अश्रुजलं याभ्यां तादृशाभ्याम्, राक्षसानां वधेन राक्षसीः सततं रोदयद्भ्यामित्यर्थः, रामलक्ष्मणयोः तरवारिभ्याम् खड्गाभ्यां कबन्धबाहुयुगलम् कबन्धनाम्नो राक्ष-सस्य तादृग्विधं भुजद्वयम्, कदलीलावम् कदलीमिव लूत्वेति कदलीलावम् ('उपमाने कर्मणि च' इति णमुल्) अलूयत अच्छिद्यत। ('तरवारिर्मण्डलाग्रः खड्गकौक्षेयकौ समौ' इत्यमरः) रामः स्वखड्गेन कबन्धस्य दक्षिणं बाहुं लक्ष्म-णश्च स्वखड्गेन तस्य वामं बाहुं चिच्छेदेति भावः।

इसके बाद [राक्षसों के पराक्रमशाली होने से] कभी आँसू के पात्र न बने हुए राक्षसस्त्रियों के नेत्रों में [राक्षसों का वध कर] निरन्तर समधिक

१. 'सदोत्पादितवारिभ्यां तरवारिभ्यां रामलक्ष्मणयोः' इति पाठा०।

२. 'लावमिव' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आँसू उत्पन्न करने वाले राम-लक्ष्मण के खड्गों ने कबन्ध की दोनों भुजाओं को कदली के तने की भाँति काट डाला।

तदनु तनुकबन्धेनादरादर्थितौ तौ
गिरितटभुवि देहं देहतुस्तस्य भीमम्।
अकथयदथ शापापायतुष्टः स रामं
तपनतनयमैत्र्या मैथिलीं प्राप्नुहीति ॥ ४३ ॥

तदन्विति। तदनु भुजखण्डनानान्तरम्, दनुश्चासौ कबन्धो दनुकबन्धः राक्षसकबन्धः [अत्र दनुपदस्य दनुजार्थे प्रयोगः, यद्वा दनुरिति तस्य पूर्वनामेति बोध्यम्] तेन आदरात् बहुमानपूर्वकम् अर्थितौ स्वदेहस्याग्निसात्करणाय प्रार्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ तस्य भीमम् अतिभयङ्करं देहं शरीरम्, गिरितटभुवि पर्वतोपत्यकाभूमौ देहतुः भस्मीचक्रतुः। अथ दाहानन्तरम्, शापापायेन मुनिप्रदत्ताशापापगमेन तुष्टः मुदितः सः कबन्धः, तपनतनयस्य सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्येत्यर्थः, मैत्र्या सख्येन हेतुना मैथिलीं सीतामाप्नुहि लभस्वेति रामम् अकथयत् अबोचत्। मालिनी वृत्तम् ॥ ४३ ॥

इसके बाद आदर पूर्वक कबन्ध से प्रार्थित राम-लक्ष्मण ने उसके भयङ्कर शरीर का पर्वत की उपत्यका भूमि में दाहसंस्कार किया। इस अग्निदाह से मुनिशाप के छूट जाने से प्रसन्न उस कबन्ध ने राम से कहा कि सूर्य के पुत्र सुग्रीव के साथ मैत्री कर आप सीता को पा सकेंगे ॥ ४३ ॥

तस्मिन्नृष्यमूकमार्गमुपदिश्य स्वर्गं गते मतङ्गाश्रमवासिन्या तपस्विन्या[1] शबर्या कृतां सपर्यां[2] परिगृह्य रामस्तदनुज्ञया[3] मनोज्ञविविधविहगकूजितं मृगगणविहरण[4] मनोहरं गहनपदमवगाह्य व्याकोशकुशेशयपरिचयकषायैर्वनदेवतालतादोलानुकूलैः कूलायतलीलापरवशवशावल्लभमदाम्बुचुम्बिभिः शम्बरारातिशरधिसदृश[5]तटरुहसहकारशिखरविसरदासवासारशीकरशेखरैर्विविधलतालासिकालास्योपदेश--

१. 'तपस्विन्या' इति नास्ति क्वचित्। २. 'रामः परिगृह्य' इति पाठा०।
३. 'मनोज्ञकूजितविहङ्गमृग' इति पाठा०। ४. 'विहार' इति पाठा०।
५. 'तटसहकार' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देशिकायमानैः कायमानसमानाभोगलतागृहकेलिलुब्धलुब्धकपुरन्ध्रीशिथिलधम्मिल्लमल्लिकागन्धमांसलैर्मल्लिकाक्षपक्षविक्षोभक्षोदीभूतपाथःपाथेयैस्तटवनपवनैरनुकम्प्यमानः पम्पामभजत् ।

इति श्रीमद्विदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे श्रीमदरण्यकाडः समाप्तः ।

तस्मिन्निति । तस्मिन् कवन्धे ऋष्यमूकमार्गम् सुग्रीवाधिष्ठितपर्वतगामिनं पन्थानम् उपदिश्य निवेद्य स्वर्गं गते सति रामः मतङ्गस्यतन्नाम्नो महर्षेः आश्रमे वसति तच्छीलया ('ताच्छील्ये णिनिः) तपस्विन्या तपोरतया शवर्या शबरजाति कुलजातया तन्नाम्ना प्रसिद्धया कृताम् विहितां सपर्याम् पूजां परिगृह्य स्वीकृत्य तदनुज्ञया तस्याः शबर्याः अनुज्ञया अनुमत्या मनोज्ञानां मनोहराणां विविधानां नानाजातीयानां विहगानां पक्षिणां कूजितानि रुतानि यत्र तत्तथोक्तम्, मृगगणानां हरिणसमुदायानां विहरणेन सञ्चारेण मनोहरम् रमणीयम्, गहनपदम् अरण्यस्थानम् अवगाह्य प्रविश्य, व्याकोशानां विकसितानां कुशेशयानां कमलानां परिचयेन सम्पर्केण कषायैः सुगन्धितैः, ('प्रफुल्लोत्फुल्लव्याकोशविकचस्फुटाः' इत्यमरः)। वनदेवतानां या लतादोला तदनुकूलैः तत्र क्षमैः, वनदेवताधिरुह्यमाणलतादोलां परिचालयद्भिरित्यर्थः । कूले पम्पासरस्तीरे आयता अविच्छिन्नतया प्रवृत्ता या लीला क्रीडा तत्परवशाः तत्परतन्त्राः तदासक्ता इति यावत्, ये वशानां करिणीनां वल्लभाः प्रियतमाः, मत्तगजा इत्यर्थः, तेषां मदाम्बूनि दानजलानि चुम्बन्तीति तथोक्तास्तैः तिर्यग्दन्तप्रहारादिरूपक्रीडाप्रवृत्तमत्तगजेन्द्रमदवारिस्पर्शसुगन्धयुक्तैरित्यर्थः । ('वशा स्त्री करिणी वन्ध्या' इत्यमरः) । शम्बराराातिः कामदेवस्य शरधिः तूणीरम् तत्सदृशानि यानि तटरुहसहकारशिखराणि तटप्ररूढाम्रमञ्जर्यः (मञ्जर्या एव शिखरस्थानीयत्वात्) तेभ्यः विसरन् प्रसरन् यः आसवासारः मकरन्दधारासंपातस्तस्य शीकरकणा एव शेखराः अवतंसा येषां तैस्तथोक्तैः । विविधाः नानाप्रकाराः लताः एव लासिकाः नर्तक्यः ('नर्तकीलासिकेसमे' इत्यमरः) तासां लास्योपदेशे नृत्यकलाशिक्षणे देशिकायमानाः देशिकाः गुरवः, त इवाचरन्तस्तैः, लता नर्तयद्भिरित्यर्थः । कायमानम् शरीरपरिमाणम् तत्समानः तन्मानतुलितपरिमाणः आभोगः विस्तारः येषां तेषु लतागृहेषु केलिलुब्धानां क्रीडाऽभिलाषुकानां लुब्धकपुरन्ध्रीणां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शबरसुन्दरीणां शिथिलाः प्रियकृताकर्षणवशात् विश्लथा ये धम्मिलाः केशपाशास्तेषां मल्लिकागन्धैः मल्लिकानां पुष्पविशेषाणां, केशपाशशैथिल्येन तत्पतितानामिति भावः। गन्धैः सुगन्धैः मांसलैः पूर्णैः, ('कवरी केशवेशोऽथ धम्मिल्लः संयताः कचाः' इत्यमरः)। मल्लिकाक्षाः मलिनचञ्चुचरणहंसविशेषाः (हंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः मलिनैर्मल्लिकाक्षाः' इत्यमरः) तेषां पक्षविक्षोभेण पक्षसंचालनेन क्षोदीभूतं कणाकारेण खण्डशः कृतं यत्पाथः पम्पासरोजलं तदेव पाथेयं पथि भक्ष्यं तेषां तैस्तथोक्तैः। हंसपक्षाहतजलकणान् पाथेयमिव वहद्भिरित्यर्थः। तटवनपवनैः पम्पासरस्तीरवर्तिवनवायुभिः अनुकम्प्यमानः अनुगृह्यमाणः, पम्पाम् अभजत पम्पासरस्तीरं प्राप।

इति कल्याण्याख्यायां चम्पूरामायण-व्याख्यायामारण्यकाण्डः समाप्तः।

ऋष्यमूक का मार्ग बता कर कबन्ध के स्वर्ग जाने पर राम मतङ्गनामक ऋषि के आश्रम में रहने वाली शबरी द्वारा की गयी पूजा को स्वीकृत कर उसकी अनुमति से नाना प्रकार के मनोहर पक्षियों के कलरव से युक्त, मृगगण के संचरण से मनोहर कानन में प्रवेश कर, विकसित कमलों के सम्पर्क से सुगन्धमय, वनदेवतों के लतारूप झूले के लिए अनुकूल, पम्पा के तट पर क्रीडा करते हुए मत्तगजों के मदजल को चूमने वाले [अर्थात् स्पर्श करने वाले], कामदेव के तूणीर सदृश तटवर्ती आम्रवृक्षों की मञ्जरियों से चूते हुए मकरन्द बिन्दुरूप अवतंस वाले, विविध लतारूप नर्तकियों को नृत्य शिक्षा देने में आचार्य सदृश, देह के परिमाणानुसार विस्तृत लताकुञ्जों में काम-क्रीडा की अभिलाषिणी शबर कामिनियों के शिथिल केशपाश से पतित मल्लिकापुष्पों की सुगन्ध से पूर्ण और काले चोंच-चरण वाले हंसों के पंखों की फड़फड़ाहट से कणरूण में चूर्णीकृत पम्पासर के जल को पाथेय रूप में वहन करने वाले तीरवर्ती वन-पवन से [शीतलता एवं सुगन्ध द्वारा] अनुगृहीत होकर पम्पासरोवर के तट पर पहुँचे।

॥ इति आरण्य काण्ड ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ किष्किन्धा काण्ड

स तां सतां बुद्धिमिव प्रसन्नां पम्पां वियोगज्वरजातकम्पः।
विलोकयंल्लोकनिविष्टकीर्तिरार्तिं रघूणां प्रवरः प्रपेदे॥ १॥

स तमिति। सः राक्षसानां संहारेण विख्यातपराक्रमः, अतएव लोकनिविष्टकीर्तिः सकलभुवनप्रसृतयशाः, रघूणां प्रवरः रघुकुलश्रेष्ठः श्रीरामः, तां प्रसिद्धां पम्पां नाम सरः सतां सज्जनानां बुद्धिम् मतिमिव प्रसन्नाम् स्वच्छजलाम्, रागद्वेषादिदूषणरहिताम् विलोकयन् पश्यन्, वियोगज्वरजातकम्पः–वियोगेन सीताविरहेण यः ज्वरः सन्तापः तस्माज्जातः उत्पन्नः कम्पः कम्पनं यस्य तादृशः सन् आर्तिम् पीडाम् प्रपेदे प्राप्तवान्। पम्पां दृष्ट्वा तदुद्दीपकतया रामस्य सीतावियोगसन्तापो वृद्धिं जगामेति भावः। 'आर्तिः पीडा धनुष्कोट्योः' इत्यमरः। 'सतां बुद्धिमिवे' त्यत्रोपमाऽलंकारः। उपजातिवृत्तम्॥ १॥

विभिन्न राक्षसों के संहारक विश्वविख्यातकीर्ति रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम जी, सज्जनों की बुद्धि के समान निर्मल एवं स्वच्छ पम्पा (सर) को देखते ही [उसके कामोद्दीपक होने के कारण] [सीता जी के] विरहसन्ताप से कम्पित होते हुए अत्यन्त व्यथा को प्राप्त हुए॥ १॥

ततस्तस्यास्तटवने नानानोकहनिवहपरिष्कृते निभृतेतर[1]भ्रमणपरभृतव्रातचञ्चूमयविपञ्चीसमुदञ्चितपञ्चमाञ्चिता सन्तताकुञ्चित[2]पञ्चशरशरासनवञ्चितपथिकजनसञ्चारप्रपञ्चा प्रमदचञ्चलचञ्चरीककुलकञ्चुकितमाधवी माधवी भूतिरुदजृम्भत।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्। नानानोकहानाम् विविधतरूणां निवहेन समुदयेन परिष्कृते अलङ्कृते तस्याः पम्पायाः तटवने परिसरवर्त्यरण्ये निभृतेतरं चञ्चलं भ्रमणं सञ्चारो येषां तादृशानां परभृतानां पिकानां व्रातः समूहः ('वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि' इत्यमरः) तस्य चञ्चूमयी चञ्चूरूपा या विपञ्ची वीणा (ताद्रूप्ये मयट्) 'विपञ्ची वल्लकी वीणा' इत्यमर तस्याः सका-

---

१. 'परिभ्रमण' इति पाठा०
२. 'शरासनशरासारवञ्चितसञ्चरपथिकप्रपञ्चा' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शात् समुदञ्चितः प्रकटितः पञ्चमः स्वरविशेषः, पिकः कूजति पञ्चममित्युक्तेः। तेन अञ्चिता शोभायमाना। सन्ततं निरन्तरमाकुञ्चितं शरमोचनार्थमाकर्षेणावनमितं यत् पञ्चशरस्य कामदेवस्य शरासनं धनुस्तेन वञ्चितः निवारितः पथिकजनानां विरहिणां पान्थजनानां संचारस्य यातायातस्य प्रपञ्चः प्रचारो यस्यां सा तथोक्ता। कामोद्दीपकतया यस्मिन् प्रियाः परित्यज्य लोका देशान्तरं गन्तुं नोत्सहन्त इति भावः। प्रमदाः प्रमत्ता अतएव चञ्चला ये चञ्चरीका भ्रमरास्तेषां कुलेन समूहेन कञ्चुकिता आच्छादिता माधवी नाम लता यस्यां तादृशी, माधवी मधुर्वसन्तस्तत्सम्बन्धी, भूतिः पुष्पसुगन्धादिसम्पत् उदजृम्भत प्राकटत्। 'इन्दिन्दिरश्चञ्चरीको रोलम्बो बम्भरश्च सः।' इति भ्रमरपर्यायेष्वमरः।'

इसके बाद विविधतरु समुदाय से अलङ्कृत [उस पम्पा के तटवर्ती] वन में इधर-उधर घूमते हुए पिकों की चोंचरूप वीणा से निकले हुए पञ्चम स्वर से मनोज्ञ वासन्ती शोभा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें निरन्तर [शरसन्धान के लिए ताने जाने से] झुके हुए कामदेवके धनुष के कारण [अपनी-अपनी प्रेयसी को छोड़ कर परदेश के लिए] पथिकों का जाना रुक गया और प्रमत्त चञ्चल भ्रमर समूह से वासन्ती लता आच्छादित हो गयी।

यत्र कान्तैर्वियुक्तानां युक्तानामपि सुभ्रुवाम्।
दोलाकर्म वितन्वन्ति मनांसि च वपूंषि च॥ २॥

यत्रेति। यत्र यस्मिन् वसन्तकाले, कान्तैः प्रियतमैः वियुक्तानाम् विरहितानाम्, कान्तैः युक्तानाम् सङ्गतानामपि सुभ्रुवाम् कामिनीनां मनांसि च वपूंषि शरीराणि च दोलाकर्म वितन्वन्ति कुर्वन्ति। विरहिणीनां मनांसि कामपीडया दोलावत् कम्पन्ते, प्रिययुक्तानां कामिनीनां शरीराणि च प्रियैः साकं दोलाधिरोहणसुखमनुभवन्तीति भावः। अतएव यथाक्रममन्वयाद् यथासंख्यमलङ्कारः। तथा च प्रकृतानां मनसां वपुषां चैकधर्माभिसम्बन्धाभिधानात्तुल्ययोगिता। तयोश्चाङ्गाङ्गिभावेन स्थितेः सङ्करः॥ २॥

जिस वसन्त काल में प्रिय-वियुक्त कामिनियों के मन [काम-पीडा से] झूले की तरह डाँवाडोल हो जाते हैं और प्रियसङ्गत ललनाओं के भी शरीर [प्रिय के साथ] झूले पर झूलते हैं॥ २॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करतल[1]रपचायमथेक्षणैरपचयं च वनेषु जनेषु च ।
सुमनसां मनसामपि यद्दिने विरचयन्ति विलोलविलोचनाः ॥३॥

करतलैरिति । यद्दिने = यस्य वसन्तस्य दिने दिवसेष्वित्यर्थः । विलोललोचनाः चञ्चलाक्ष्यः करतलैः स्वहस्तैः, कराङ्गुलिभिरित्यर्थः, वनेषु सुमनसाम् पुष्पाणाम् ('स्त्रियः सुमनसः पुष्पम्' इत्यमरः) । अपचायम् लवनम् । अथेति वाक्यारम्भे । ईक्षणैः नेत्रैः जनेषु ताद्दग्विलासपूर्वकं तत्पुष्पचयनं पश्यत्सु जनेषु (तेषां) मनसाम् चित्तानामपि, अपचयम् अपहारम् आकर्षणमित्यर्थः, विरचयन्ति कुर्वन्ति । ('अपहारस्त्वपचयः' इत्यमरः) । यस्मिन् वसन्तकाले चञ्चलाक्ष्यः कामिन्यो वनेषु निजकरैः पुष्पाणि चिन्वन्ति स्वकटाक्षपातैश्च ताद्दग्विलासपूर्वकं तत्पुष्पचयनं पश्यतां जनानां मनांसि चापहरन्तीति भावः । अत्रापि पूर्वोक्तालंकारयोरेवसंकरः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

जिस वसन्त काल में चञ्चलनेत्रों वाली सुन्दरियाँ वन में अपने हाथों से पुष्पों को चुनती हैं और [उनके सविलास पुष्प चयन को देखने वाले] लोगों के प्रति कटाक्षपात कर उनके मन का भी अपहरण करती हैं ॥ ३ ॥

तस्मिन्नसमशरसमरसमये पम्पां समया[1]पर्यटन् पर्याकुलहृदयो हृदयदयितां हृदि लक्ष्यंल्लक्ष्मणमिदमभाषत ।

तस्मिन्निति । तस्मिन् असमशरः कामदेवस्तस्य समरसमये रणयात्राकाले, वसन्त समय इत्यर्थस्तस्य कामोद्दीपकत्वादिति भावः । पम्पां समया पम्पायाः समीपे ('अभितः परितः समया निकषाहा प्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया) । पर्यटन् परिभ्रमन्, पर्याकुलहृदयः व्यथितमनाः, [रामः] हृदयदयिताम् प्राणवल्लभां सीतां हृदि लक्षयन् सततं तद्ध्यानमग्नतया हृदयदेशे विराजमानामिव पश्यन्, लक्ष्मणम् इदं वक्ष्यमाणप्रकारेण अभाषत उक्तवान् ।

काम की उस युद्ध यात्रा के समय में [अर्थात् वसन्त ऋतु में] पम्पासर के समीप घूमते हुए व्यथित हृदय राम ने [सतत ध्यानमग्न होने के कारण] प्राणवल्लभा सीता को हृदयदेश में [स्थित] देख कर लक्ष्मण से यह कहा—

---

१. 'रुपचाय' इति पाठा० ।   १. 'समन्तात्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आधौ सिद्धौषधिरिव हिता केलिकाले वयस्या
पत्नी त्रेतायजनसमये क्षत्रियाण्येव युद्धे।
शिष्या देवद्विजपितृसमाराधने बन्धुरार्तौ
सीता सा मे शिशिरितमहाकानने का न जाता ॥ ४ ॥

आधाविति। [या सीता] मे मम आधौ मानस्यां व्यथायाम् ('पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः) सिद्धौषधिः संजीविन्याद्यमोघौषधिरिव हिता पथ्या रोगहन्त्रीत्यर्थः। अतएवोपमाऽलङ्कारः। केलिकाले क्रीडासमये वयस्या सखी सहचरीत्यर्थः। ('आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः)। त्रेतायजनसमये आहवनीयाद्यग्नित्रयस्य हविरादिभिः पूजनकाले ('त्रेता त्वग्नित्रये युगे' इत्यमरः) पत्नी सहधर्मिणी पत्युरनया यज्ञः सम्पद्यत इति विग्रहादिति भावः। ('पत्नी पाणिगृहीती च द्वितीया सहधर्मिणी' इत्यमरः)। युद्धे राक्षसैः साकं समरकाले क्षत्रियाण्येव क्षत्रियकुलोत्पन्नैव क्षात्रधर्मयुक्ता सती मनोत्साहं वर्धयन्ती साहाय्यकारिणीत्यर्थः। देवानां द्विजातीनां ब्राह्मणानां च पितृणां मातृपितृप्रभृतिपूज्यजनानां च समाराधने पूजायां विषये शिष्या अन्तेवासिनी भयेन श्रद्धया भक्त्या च यथोचितोपचार परायणेत्यर्थः। ('छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये' इत्यमरः)। आर्तौ पीडायां बन्धुः प्रियसुहृत् समुचित प्रतीकारेण तदुपशमकुशलेत्यर्थः। सा एतादृशी सीता शिशिरितमहाकानने स्वसाहचर्येण शीतलीकृतेऽस्मिन् घोरेऽरण्ये का न जाता समये समये प्रागुक्तं तत्तत्सम्पादयन्ती तत्तद्रूपा जातेत्यर्थः। ईदृग्गुणगणशालिन्याः सीताया विरहे कथं प्राणान् धारयितुं शक्नोमीति भावः। उपमारूपकयोः संसृष्टिः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ४ ॥

मानसी व्यथा होने पर सिद्धौषधि की तरह [कष्ट दूर करने वाली], क्रीडा के समय सखी, आहवनीयादि त्रिविध अग्नि की पूजा के समय पत्नी, युद्ध के समय क्षत्रियाणी [अर्थात् निर्भीक तथा क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का उपदेश देने वाली], देवों, ब्राह्मणों तथा माता-पिता आदि की सेवा में शिष्या, पीडा के समय बन्धु, [अधिक क्या कहें] वह सीता [अपने साहचर्य से] इस घोर कानन को सुखप्रद बनाती हुई मेरे लिये क्या क्या नहीं बनी थी ? [अर्थात् समय-समय पर सब प्रकार की सहायता कर वह मेरे लिए सब कुछ थी] ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मलयगिरिचरोऽयं मन्मथाधोरणाज्ञा-
मथितपथिकवर्गो मारुत[1]व्यालहस्ती ।
विरचयति मदीये शैत्यसौरभ्य[2]मान्द्यै-
स्त्रिविधमदसमृद्धो मानसे वप्रलीलाम् ॥ ५ ॥

मलयेति । मलयगिरिचरः मलयाचलवासी । मन्मथः कामदेव एव आधोरणः हस्तिपकस्तस्य आज्ञया आदेशेन इङ्गितेनेत्यर्थः, मथितः पीडितः पथिकवर्गः पान्थसमुदयो येन स तथोक्तः । अयम् प्रवर्तमानः मारुतः पवन एव व्यालहस्ती दुष्टगजः ('शठे व्यालः पुंसि श्वापदसर्पयोः' इत्यमरः) शैत्यसौरभ्यमान्द्यैः त्रिविधमदसमृद्धः—शीतलत्व सुगन्धित्वमन्दचारित्वरूप-त्रिप्रकारो यो मदः दानोदकं पक्षे दर्पश्च तेन समृद्धः सम्पन्नः शैत्यादिरूपमदोन्मत्त इत्यर्थः । मदीये मानसे हृदये वप्रलीलाम् दन्तादिभिरुत्खातकेलिं विरचयति करोति । मलयगिरिवासी दक्षिणानिलरूपो दुष्टगजो मन्मथरूप—हस्तिपकस्येङ्गितेन पथिकवर्गरूपमार्गस्थवृक्षनिवहं निपातयन् शैत्यादिगुणत्रितय-रूपमदेन समृद्धः सन् सीतावियोगव्यथोत्पादनेन मन्मनो विदारयतीति भावः । ('उत्खातकेलिः शृङ्गाद्यैर्वप्रक्रीडा निगद्यते' इति शब्दार्णवे) । गजस्याधोरणाज्ञप्ततया दुष्टतया त्रिविधमदसमृद्धतया च तद्वप्रक्रीडाया अत्यन्तदुःसहत्व-मावेदितम् । रूपकालङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥ ५ ॥

मलयगिरि पर रहने वाला, शीतल-मन्द-सुगन्ध त्रिविध मद से युक्त यह दक्षिणानिल रूप दुष्ट गज कामदेव रूप महावत के इङ्गित पर पथिक रूप वृक्षों को गिरा कर हमारे हृदय में वप्रक्रीडा [अर्थात् दाँत आदि से टीले या तटवन्ध की उत्खातक्रिया द्वारा विहार] कर रहा है—वियोग-व्यथा को बढ़ा कर हमारे हृदय को विदीर्ण कर रहा हैं ॥ ५ ॥

[3]ततो दुःसहविरहकृशानुकृशानुभावं भावसंधुक्षणविचक्षणलक्ष्मण-वचनधार्यमाणधैर्यं राघवमग्रतः सुग्रीवो विलोक्य वालि[4]प्रहितापसर्पधिया सुदूरमपससर्प ।

---

१. 'व्याजहस्ती' इति पाठा० ।
२. 'मान्द्यत्रिविध' इति पा० । स एव सुष्ठु प्रतिभाति ।
३. 'एवम्' इति पाठा० ।
४. 'प्रणिहिता' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, दुःसहः सोढुमशक्यः विरहकृशानुः वियोगानलस्तेन कृशः क्षीणः अनुभावः प्रभावो यस्य तं तथोक्तम् , भावसंधुक्षणे पुनः स्वभावप्रापणे विचक्षणः निपुणो यो लक्ष्मणस्तस्य वचनेन धार्यमाणं धैर्यं येन तम् , राघवम् श्रीरामम्, अग्रतः दूरादेव, विलोक्य दृष्ट्वा सुग्रीवः वालिना प्रहितः प्रेषितः रहस्यं ज्ञातुं छद्मवेषेण नियोजितो यः अपसर्पः गुप्तचरः तस्य धिया बुद्ध्या सुदूरम् स्वनिवासस्थानाद् विप्रकृष्टदेशम् अपससर्प अपससार । ('अपसर्पश्चरः स्पशः' इत्यमरः) ।

दुःसह विरहानल से राम का प्रभाव क्षीण हो चला किन्तु स्वभाव पर लौटाने [अर्थात् प्रकृतिस्थ करने] में चतुर लक्ष्मण के वचनों से किसी प्रकार उन्होंने धैर्य धारण किया। इन राम को दूर से ही [आते] देख कर उन्हें वालिद्वारा भेजा गया गुप्तचर समझ कर सुग्रीव दूर भाग गया ।

स तु संमन्त्र्य मन्त्रिभिस्तयोराशयम[1]वजिगमिषुः प्रभञ्जनात्मजं प्राहिणोत् ।

स इति । सः सुग्रीवः तु, मन्त्रिभिः अमात्यैः सह संमन्त्र्य सम्यग् विचार्य तयोः रामलक्ष्मणयोः, आशयम् अभिप्रायम् अवजिगमिषुः अवगन्तुमिच्छुः सन् , प्रभञ्जनात्मजम् वायुपुत्रं हनूमन्तं प्राहिणोत् प्रेषितवान् ।

सुग्रीव ने भी अपने मन्त्रियों से विचार-विमर्श कर उन [राम-लक्ष्मण] के अभिप्राय को जानने की इच्छा से वायुपुत्र हनूमान् को [उनके समीप] भेजा ।

तपनपवनयोर्यः प्राप्तवान् पुत्रभावं
शतमखकृत[2]पालिर्विद्यया जन्मना च ।
स तु दशमुखकीर्तिस्तोमसोमस्य पक्ष-
श्चरम इव तनूमान् प्राप रामं हनूमान् ॥ ६ ॥

तपनेति । यो हनूमान् विद्यया जन्मना च क्रमशः तपनपवनयोः तपनस्य सूर्यस्य, पवनस्य वायोश्च पुत्रभावम् पुत्रत्वं प्राप्तवान् । सूर्याद् विद्यामधीत्य

---

१. 'अवजिगमिषुराञ्जनेयं प्रभञ्जनसंजातम्' इति पाठा० ।

२. 'वाणी' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तच्छिष्यत्वेन सूर्यपुत्रत्वं प्राप्तवान् (जनिता चोपनेता च यश्चविद्यां प्रयच्छति। अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः' इत्युक्तेः] जन्मना वायुपुत्रत्वं च प्राप्तवान् वायोस्तज्जनकत्वादिति भावः। अतएव यथाक्रममन्वयात्क्रमापरनामा यथासंख्यालङ्कारः। तथा शतमखेन इन्द्रेण कृता पालिः हनुभङ्गरूपोऽङ्को यस्य स तथोक्तः। बाल्ये क्षुधा पीडितस्य, फलबुद्ध्या सूर्यं ग्रहीतुमुद्युक्तस्य पवन-पुत्रस्य हनुमिन्द्रो वज्राघातेनाभञ्जयदिति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया। 'पालिः स्त्र्यश्र्यङ्कपङ्क्तिषु' इत्यमरः। एतेन हनूमतोऽद्भुतशक्तिसम्पन्नत्वं सूचितम्। दशमुखस्य रावणस्य कीर्तिस्तोमः यशोराशिः, स एव सोमश्चन्द्र-स्तस्य तनूमान् मूर्तिमान् ('स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इत्यमरः)। चरमः पक्षः कृष्णपक्ष इवेत्युत्प्रेक्षा। स तु सोऽपि हनूमान् रामं प्राप प्राप्तवान्। सूर्यस्य शिष्यतया हनूमतो विद्वत्त्वम्, वायुपुत्रतया कुलीनत्वम्, शतमखकृतपालिरि-त्युक्त्याऽद्भुतशक्तिसमृद्धत्वं च सूचितं येन हनूमतो दूतत्वार्हताऽऽवेदिता। मालिनी वृत्तम्॥ ६॥

जिन्होंने सूर्य से विद्याध्ययन करने के कारण सूर्य का शिष्यत्वरूप पुत्रभाव और जन्मद्वारा वायु का पुत्रभाव प्राप्त किया तथा इन्द्रद्वारा किये गये [हनु-भङ्ग रूप] चिह्न से जो युक्त हैं, वे हनूमान् रावण के यशरूप चन्द्रमा के मूर्तिमान् कृष्णपक्ष-से राम के पास पहुँचे॥ ६॥

स एवं स्वीकृत[1]भिक्षुवेषः सविनयमेतावाबभाषे।

स एवमिति। स्वीकृतभिक्षुवेषः गृहीतसंन्यासिवेषः सः हनूमान् एतौ राम-लक्ष्मणौ प्रति, सविनयम् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आबभाषे उक्तवान्।

संन्यासी का वेष धारण किये हुए हनूमान् ने राम और लक्ष्मण से सविनय ऐसा कहा—

[2]भवन्तौ कान्ताकारौ कान्तारं कथमिदमवातरताम्।

भवन्ताविति। कान्ताकारौ कान्तः मनोहरः आकारः रूपं ययोस्तौ मनोज्ञ-रूपावित्यर्थः। भवन्तौ, इदं कान्तारम् वनम्, कथं केन हेतुना अवातरताम्। अवतीर्णवन्तौ ('गहनं काननं वनम्। कान्तारम्' इत्यमरः) प्राविशता-मित्यर्थः।

१. भिक्षुक' इति पाठा०। २. 'भवन्तौ कतरौ' इजि पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्यन्त रमणीय रूप वाले हो कर (भी) आप दोनों का इस [दुष्प्रवेश] वन में कैसे आना हुआ ?

विचित्रतरजिष्णुकोदण्डमण्डितावपि दिनस्यास्य सुदिनत्वाद्भवन्तौ न जीमूतौ ।

विचित्रतरेति । तथा च विचित्रतराभ्यामत्यन्ताश्चर्यंकराभ्यां पक्षे नानावर्णत्वादतिविचित्रेण, जिष्णुकोदण्डाभ्यां जैत्राभ्यां धनुर्भ्याम् पक्षे जिष्णुकोदण्डेन इन्द्रचापेन मण्डितौ अलङ्कृतावपि ('जिष्णुः शक्रे धनंजये । जैत्रे च' इति विश्वः) अस्य दिनस्य सुदिनत्वात् युष्मद्दर्शनेन मेघच्छन्नत्वाभावेन चेति भावः । भवन्तौ न जीमूतौ मेघौ ('जीमूतौ मेघपर्वतौ' इत्यमरः) भवतोः मेघयोः सत्योः इदं दिनं स्यात्तु न तथा, भवद्दर्शनेन दुर्दिनस्यापि सुदिनत्वे शोभनदिनत्वे परिणतेरिति भावः ।

यद्यपि आप दोनों विचित्रतर जिष्णु कोदण्ड [१-आश्चर्यंकर विजयशील चाप, २-सतरंगी इन्द्रधनुष] से अलङ्कृत हैं तथापि मेघ नहीं हैं क्यों कि [आज का] यह दिन तो सुदिन (१-शुभदिन, २-मेघरहितदिन) है [जो आप का दर्शन हुआ जिससे दुर्दिन भी सुदिन में परिणत हो जाता है । मेघों का दर्शन दुर्दिन में ही होता है । मेघ और सुदिन का घोर विरोध है] ।

जटावल्कलयुतावपि जङ्गमत्वाद्भवन्तौ न कल्पवृक्षौ ।

जटावल्कलयुतौ–ग्रथितकचकलापवल्कलवसनसहितौ, पक्षे शिफात्वग्युतौ ('शाखाशाले शिफाजटे', 'त्वक्स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्' इत्युभयत्रामरः)। तथापि जङ्गमत्वात् विचरणशीलत्वात् भवन्तौ न कल्पवृक्षौ ।

यद्यपि आप दोनों जटा (१-बटे हुए बाल, २-तन्तुमय जड़) और और वल्कल से युक्त हैं फिर भी सञ्चरणशील होने से कल्पवृक्ष नहीं हैं ।

तमोपहालोक[1]कलितावपि यौगपद्य[2]भास्वरतेजःसान्निध्याद्भवन्तौ न पुष्पवन्तौ ।

तमोपहेति । तमसः अज्ञानस्य पक्षे अन्धकारस्य च अपहः विनाशकः आलोकः दर्शनं पक्षे प्रकाशश्च, तेन कलितौ युक्तौ ('राहौ ध्वान्ते गुणे तमः,'

१. 'ललितौ' इति पाठा० । २. 'भास्वरसान्निध्यात्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'आलोको दर्शनोद्द्योतौ' इत्युभयत्राप्यमरः)। तथापि यौगपद्य भास्वर-सांनिध्यात्—यौगपद्येन सहैव भास्वरयोः तेजस्विनोर्युवयोः सांनिध्यात् सहावस्थानात्, न पुष्पवन्तौ सूर्याचन्द्रमसौ न भवतः। सूर्याचन्द्रमसोः सहावस्थानाभावादिति भावः। ('एकयोक्त्या पुष्पवन्तौ दिवाकरनिशाकरौ' इत्यमरः)।

यद्यपि आप दोनों तम (१-अज्ञान, २-अन्धकार) को नष्ट करने वाले आलोक (१-दर्शन, प्रकाश) से युक्त हैं फिर भी एक साथ रहने से सूर्य और चन्द्रमा नहीं हैं (सूर्य और चन्द्रमा का एक साथ रहना नितान्त असम्भव है)।

कुशस्तम्भेऽपि संभूतं सौरभ्यमिव भासते।
तपोवेषेऽपि सौन्दर्यं युवयोर्युवयोगिनोः ॥ ७ ॥

कुशस्तम्भेऽपीति। युवयोगिनोः युवानौ च तौ योगिनौ चेति युवयोगिनौ तयोः, युवयोः भवतोः तपोवेषे जटावल्कलादि धारणरूपतपस्विवेषेऽपि सौन्दर्यम् रामणीयकम्, कुशस्तम्भेऽपि दर्भकाण्डेऽपि संभूतम् समुत्पन्नं सौरभ्यम् सुगन्ध इव भासते प्रकाशते। कुशस्तम्भे सुगन्ध इव तपस्विजनेषु सौन्दर्यं न सम्भवति तथापीदमाश्चर्यकरं यद्भवतोर्धृततपस्विवेषयोरपि लोकोत्तरं सौन्दर्यं प्रकाशत इति भवन्तावपूर्वतपस्विनाविति भावः। अभूतोपमाऽलङ्कारः ॥ ७ ॥

आप दोनों युवा योगियों का सौन्दर्य तपस्विवेष में ऐसा प्रकट हो रहा है जैसे [संयोगवश] कुश के स्तम्भ (जड़) में सुगन्ध पैदा हो जाय [इसे अपवाद ही कहा जा सकता है] ॥ ७ ॥

युष्मद्वार्तासुधास्वादलुब्धयोः श्रोत्रयोः सुखम्।
स्वयमेव ग्रहीतुं मे जिह्वा प्रह्वा प्रवर्तते ॥ ८ ॥

युष्मद्वार्तेति। युवाभ्यां [सह] वार्त्ता मिथः समालापः सैव सुधा अमृतम् तस्य आस्वादे लुब्धयोः समुत्सुकयोः श्रोत्रयोः मदीयकर्णयोः सुखम् भवदीयवाक्याकर्णनजन्यमानन्दम् स्वयमेव आत्मनैव ग्रहीतुं लब्धुं प्रह्वा नम्रा सती मे मम जिह्वा प्रवर्त्तते प्रवृत्ता भवति। भवदीयवाक्यश्रवणजन्यमानन्दं लब्धुं समुत्सुकाभ्यां कर्णाभ्यां प्रागेवाहमहमिकया भवन्तावुद्दिश्य किञ्चिन्निवेद्य तादृशमेव निवेदनजन्यमानन्दं ग्रहीतुं मे नम्रा जिह्वा प्रवर्त्तत इति भावः ॥ ८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आप दोनों के साथ वार्तालाप रूप अमृतरस का आस्वादन करने के लिए समुत्सुक कानों को [आप की बातों के सुनने से] जो आनन्द मिलता उसी आनन्द को [आप से कुछ निवेदन कर, कानों से पहिले, स्पर्धावश] स्वयं ही ले लेने के लिए मेरी विनम्र जिह्वा प्रवृत्त हो रही है [अर्थात् कुछ निवेदन कर आनन्दलाभ से कृतार्थ होना चाहती है क्यों कि जहाँ कानों को आप की बात सुन कर आनन्द मिलेगा वहीं जिह्वा को आप से निवेद करने में वही आनन्द प्राप्त होगा] ॥ ८ ॥

कश्चिदस्ति समस्तवानरपतिः सुग्रीव इति ।

कश्चिदिति । सुग्रीव इति नाम्ना प्रसिद्धः, कश्चित् समस्तवानरपतिः सकलकपीनामधिपः अस्ति वर्तते ।

[यहाँ] सुग्रीव नामक एक समस्त वानरों के राजा रहते हैं ।

तेन भ्रातृभयादृष्यमूकमुपाश्रितेन युवाभ्यां [1]समं सख्यमिच्छता प्रेषितं [2]हनूमदभिधानं भिक्षुरूपच्छन्नं[3] वानरमिमं[4] जनमाञ्जनेयं प्रभञ्जनसंजातं जानीतमिति ।

तेनेति । भ्रातुः बालिनः भयात् ऋष्यमूकम् तदाख्यं पर्वतम् उपाश्रितेन अधिवसता तेन सुग्रीवेण युवाभ्यां समं सह सख्यम् मैत्रीमिच्छता सता प्रेषितम् प्रहितम् हनूमदभिधानम् हनूमन्नामानं भिक्षुरूपच्छन्नम् भिक्षुरूपेण संन्यासिवेषेण छन्नम् प्रच्छादितस्ववानरभावम् , इमं जनम् मल्लक्षणं वानरम् आञ्जनेयम् अञ्जनागर्भसंभूतम् प्रभञ्जनसञ्जातम् प्रभञ्जनात् पवनात् सञ्जातम् समुत्पन्नम् पवनात्मजमित्यर्थः, जानीतम् अवगच्छतम्, इत्येवं प्रकारेण 'आवभाषे' इति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः । ('नभस्वद्वातपवनपवमान प्रभञ्जनाः' इत्यमरः) ।

अपने भाई बालि के भय से ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले उन सुग्रीव ने आप दोनों के साथ मैत्री की इच्छा से मुझे [आप के पास] भेजा है । मैं संन्यासि वेष में छिपा हुआ अञ्जना के गर्भ से उत्पन्न वायुपुत्र हनूमान् नामक वानर हूँ, यह आप जान लें ।

ततस्तदीयं वचनमाकर्ण्य कर्णयुगलसुधावर्षि देवर्षिप्रतिमो दाशर-

---

१. 'सह' इति पाठा० । २. 'हनुमदभिधानं दधानम्' इति पाठा० ।
३. 'प्रतिच्छन्नम्' इति पाठा० । ४. 'जनम्' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थि[1]स्तमुपाश्लिष्य तद्दर्शितेन पथा विरचितभुवनसौख्यं सख्यं तपनतनयेन साकमग्निसाक्षिकमकरोत् ।

तत इति । ततः हनूमत्कथनसमाप्त्यनन्तरम्, तदीयं हनूमतोक्तं कर्णयुगलसुधावर्षि कर्णद्वयप्रियं वचनमाकर्ण्य श्रुत्वा देवर्षिप्रतिमः देवर्षिसदृशः दाशरथिः श्रीरामः तम् हनूमन्तमुपाश्लिष्य आलिङ्ग्य तद्दर्शितेन हनूमतोपदिष्टेन पथेन मार्गेण विरचितभुवनसौख्यं लोककल्याणकरम्, तपनतनयेन सूर्यपुत्रेण सुग्रीवेण साकं सह अग्निसाक्षिकम् अग्निः साक्षी द्रष्टा यत्र तथाभूतं सख्यम् सौहृदम् अकरोत् ।

इसके बाद कानों में सुधा-वृष्टि करने वाले [अर्थात् कर्णप्रिय] हनूमान् के वचन को सुन कर देवर्षि सदृश [महानुभाव] दशरथपुत्र राम ने हनूमान् को गले लगा कर उनके द्वारा बताये गये ढंग से सूर्यपुत्र सुग्रीव के साथ अग्निदेव को साक्षी बना कर संसार को सुख प्रदान करने वाली मैत्री की।

योगं वितन्वति हनूमति राघवस्य
वैवस्वतेन हरिणा समवर्तिना च ।
मेने विधिर्घटयितुं [2]कपिमिन्द्रपुत्रं
वैवस्वतेन हरिणा समवर्तिना च ॥ ९ ॥

योगमिति । हनूमति पवनपुत्रे राघवस्य श्रीरामस्य वैवस्वतेन सूर्यपुत्रेण समवर्तिना सर्वदा समभावेन नात्युग्रतया नातिकोमलतया वर्त्तनशीलेन हरिणा वानरेण सुग्रीवेण योगम् मैत्रीलक्षणां सङ्गतिं वितन्वति कुर्वति सति, विधिः दैवं च इन्द्रपुत्रं कपिम् बालिनम् वैवस्वतेन सूर्यपुत्रेण समवर्तिना प्राणिनां कर्मानुरूपदण्डप्रवृत्तिशीलेन परेतराजेन हरिणा यमेन घटयितुं योजयितुं मेने मतिमकरोत् । श्रीरामसुग्रीवयोः मैत्रीवशाद्बालिनः मृत्युः प्रत्यासन्न इति भावः । ('योगः संनहनोपायध्यानसङ्गति युक्तिषु' 'विधिर्विधाने दैवेऽपि' 'देवो वैवस्वतोऽन्तकः' 'समवर्त्ती परेतराट्' 'यमानिलेन्द्रचन्द्रार्क विष्णुसिंहांशुवाजिषु । शुकाहि कपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु ॥ इति सर्वत्रामरः ।) अत्र विधेस्तादृङ्मननासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्ध कथनादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः ।

---

१. 'तमुपाश्लिष्य' इति पाठा० । २. 'हरिम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीयपादस्य चतुर्थे संयमनात् संदष्ट यमकः शब्दालंकारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९ ॥

हनूमान ने जब समभाव से वर्त्ताव करने वाले सूर्यपुत्र वानर सुग्रीव के साथ राम की मैत्री रूप सङ्गति करा दी उसी समय दैव ने इन्द्रपुत्र वानर बालि को सूर्य पुत्र यमराज से मिलाने का निश्चय किया [अर्थात् राम और सुग्रीव की मैत्री से बालि की मृत्यु निकट आ गयी] ॥ ९ ॥

[1]ततस्तत्क्षणसम्भूतविस्रम्भाय प्रतिश्रुतवालिवधाय कथितनिज[2]-मन्मथदशाय दाशरथये सुग्रीवो दशग्रीवनीयमानसीतापातितानि कानिचिदाभरणान्यदर्शयत्।

तत इति। ततः रामसुग्रीवयोः सख्यानन्तरम्, तत्क्षणसंभूतविस्रम्भाय—तत्क्षणे सख्यकरणसमय एव संभूतः संजातः विस्रम्भः विश्वासो यस्य तस्मै, प्रतिश्रुतः प्रतिज्ञातः बालिवधो येन तस्मै, कथिता प्रकाशिता निजमन्मथदशा सीताविरहजनितस्वीयकामपीडा येन तस्मै, दाशरथये श्रीरामाय सुग्रीवः, दशग्रीवेण रावणेन नीयमानया अपह्रियमाणया सीतया पातितानि निक्षिप्तानि कानिचित् हारनूपुरादीनि आभरणानि आभूषणानि अदर्शयत्।

मैत्री हो जाने के बाद उसी समय राम को [सुग्रीव पर] विश्वास हो गया। उन्होंने बालि-वध की प्रतिज्ञा की और [सुग्रीव से] अपनी कामदशा का वर्णन किया। तब सुग्रीव ने रावण द्वारा हरी जाती सीता जी के द्वारा गिराये गये कतिपय आभरण राम को दिखाये।

प्रत्यर्पितानां कपिपुङ्गवेन रामः स्वकान्ताधृतभूषणानाम्।
संस्कारहान्या[3] परिधूसराणां प्रक्षालनं बाष्पजलैश्चकार ॥ १० ॥

प्रत्यर्पितानामिति। कपिपुङ्गवेन वानरश्रेष्ठेन सुग्रीवेण प्रत्यर्पितानाम् प्रतिदत्तानाम्, संस्कारहान्या प्रक्षालनादि संस्काराभावेन परिधूसराणाम् नितान्तमलिनानाम्, स्वकान्ताधृतभूषणानाम् सीताधृताभरणानाम् प्रक्षालनम् भूयः परिशोधनम्, रामः बाष्पजलैः स्वनेत्रजलैः चकार। सीताधृतभूषणानि भूयो

---

१. 'तत्क्षणं' इति पाठा०। २. 'मन्मथ' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'हान्यात्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूयः पश्यन् रामः सीतायाः स्मरन् भृशं रुरोदेति भावः। अत्र क्षालनासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः। इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ १० ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीव द्वारा दिये सीता द्वारा धृत उन गहनों को, जो चिरकाल से क्षालनादि संस्कार न किये जाने के कारण मलिन हो गये थे, राम ने अपने अश्रुजल से धोकर स्वच्छ कर दिया ॥ १० ॥

ततः सौमित्रिभणितनिर्बन्धसन्धुक्षितधैर्येण रामेणानुयुक्तो बालिवैरकारणं भानुसूनुरित्थमकथयत्।

तत इति। ततो भूषणदर्शनानन्तरम्, सौमित्रेः लक्ष्मणस्य भणितैः वाक्यैः यो निर्बन्धः आग्रहः तेन सन्धुक्षितम् प्रकृतौ पुनः स्थापितं धैर्यं यस्य तेन, लक्ष्मणकृतप्रबोधनात् प्रकृतिमापन्नेनेत्यर्थः, रामेण अनुयुक्तः भानुसूनुः सुग्रीवः, बालिवैरकारणम्, इत्थमनेन प्रकारेण अकथयत् उक्तवान्।

इसके बाद लक्ष्मण के आग्रहपूर्ण कहने से धैर्य धारण कर राम ने सुग्रीव से बाली के साथ वैर होने का कारण पूछा, तब सूर्यपुत्र सुग्रीव ने इस प्रकार से कहा—

पुरा 'खलु' निखिलरिपुकुलतिमिरनिचयमरीचिमालिनं बालिनं मायावी नाम दानवः कश्चन दुन्दुभेर्भ्राता युद्धाय रुद्ध्वा तद्बल[1]चलितधृतिरुरगनगरकुहर[2]मगाहत।

पुरेति। पुरा पूर्वकाले। खल्विति वाक्यालङ्कारे। निखिलं समग्रं यद् रिपुकुलम् शत्रुवर्गः तदेव तिमिरनिचयः अन्धकारपटलं तस्य मरीचिमालिनम् सूर्यम्, तमसां सूर्यमिव शत्रुवर्गस्य संहारकमित्यर्थः। बालिनम् मम सुग्रीवस्य भ्रातरम्, मायावी नाम, दुन्दुभेः तन्नाम्नो राक्षसस्य भ्राता, कश्चन कोऽपि दानवः, युद्धाय युद्धं कर्तुम्, रुद्ध्वा आहूयेत्यर्थः, तस्य बालिनः बलेन पराक्रमेण चलिता नष्टा धृतिः धैर्यं यस्य स तथोक्तः सन्, उरगनगरकुहरम्— उरगाः सर्पास्तेषां नगरं पातालं तदेव कुहरम् गुहाम् अगाहत प्राविशत्।

पूर्व काल में समस्त रिपुकुल रूप अन्धकारपटल के लिए सूर्य रूप बाली को दुन्दुभि के भाई मायावी नामक दानव ने ललकारा किन्तु वह बाली के बल को देख कर धैर्य छोड़ पाताल-गुहा में घुस गया।

---

१. 'चकित' इति पाठा०। २. 'अवगाहत' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदनु [१]गुहां गाहमानेन मानशालिना हेम[२]मालिना वालिना बिलमुखपालनाय निहितस्तस्योत्थानवेलां [३]परिपालयन्नहं चिरकाले [४]व्यतीते फेनस्त्यानं मांस[५]विसृतमसृक्पूरमवेक्ष्य भ्राता मे निहत इति [६]निरचिनवम् ।

तदन्विति । तदनु तत्पश्चात्, गुहाम् पातालकुहरं गाहमानेन प्रविशता मानशालिना अभिमानिना, हेममालिना इन्द्रदत्तस्वर्णमालाधारिणा बालिना विलमुखपालनाय गुहाद्वारसंरक्षणाय, अन्यः कोऽपि दानवोऽनेन बिलेनाभ्यन्तरं मा प्रविशत्विति तद्रक्षणायेत्यर्थः । निहितः नियुक्तः तस्य बालिनः उत्थानवेलाम् तद्बिलान्निर्गमनसमयं परिपालयन् प्रतीक्षमाणः अहम् सुग्रीवः, चिर काले व्यतीते बहुसमये विगते, फेनस्त्यानम् फेनैः सूक्ष्मतरबुद्बुदैः स्त्यानम् घनीभूतम् , मांसविसृतम् मांसव्याप्तम्, असृक्पूरम् रुधिरप्रवाहम् अवेक्ष्य दृष्ट्वा मे मम भ्राता बाली निहतः मायाविना दानवेन मारितः इत्येवं निरचिनवम् निर्धारणं कृतवान्, तादृश रुधिरप्रवाहं दृष्ट्वा बालिवधभ्रान्तिर्मे जातेत्यर्थः ।

इसके बाद [अपने शौर्य पर] अभिमान रखने वाला [इन्द्र की दी गयी] स्वर्ण माला को धारण करने वाला बाली पाताल गुहा में प्रविष्ट हो गया और उसने [अन्य कोई दानव भीतर न घुस सके अतएव] मुझे बिलद्वार की रखवाली करने के लिए नियुक्त कर दिया । मैं उसके निकलने की प्रतीक्षा करता रहा, बहुत दिन बीत जाने पर फेनयुक्त मांसपूर्ण रक्त प्रवाह को देख कर मैंने समझा कि मेरा भाई बाली मारा गया ।

तदनु विपुलोपलपटलपिहितबिल[७]मुखस्तस्मै दत्त्वा स्वयमुदश्रुरुदकं नैवापमवापं शोकान्धः किष्किन्धाम् ।

तदन्विति । तदनु तत्पश्चात्, विपुलेन विशालेन उपलपटलेन शिलासमूहेन पिहितम् आच्छादितं बिलमुख गुहाद्वारं येन तादृशोऽहं तस्मै बालिने स्वयम् उदश्रुः साश्रुमुखः सन् नैवापम् उदकम् तर्पणजलं दत्त्वा, शोकान्धः

१. 'गुहाम्' इति नास्ति क्वचित् । २. 'हेममालिना' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'प्रतिपालयन्' इति पाठा० । ४. 'अप्यतीते' इति पाठा० ।
५. 'निःसृत' इति पाठा० । ६. 'निरचिनवम्' इति पाठा० ।
७. एतदनन्तरम् 'सवलीमुखबलः' इत्यधिकं क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भ्रातृमरणजनितशोकेन विह्वलः सन् किष्किन्धाम् किष्किन्धां नाम नगरीम् अवापम्, प्रविष्टवान् ।

इसके बाद मैंने गुहाद्वार को बड़ी,बड़ी शिलाओं द्वारा ढक कर, आँखों में आँसू भरे हुए वाली के लिए जलाञ्जलि दी और शोकान्ध हो स्वयं किष्किन्धा को लौट आया ।

अथ विदितवृत्तान्तैरमात्यैरभिषेचिते मयि [1]वाली मायाविनं निहत्य खरतरभुजपरिघविघट्टितबिलवदनपिधानस्तरसा रसातलात्पुरं प्रविष्टोऽतीव रुष्टः प्रभ्रष्टा[2]शयं बहुशः प्रणिपतन्तं प्रतिपादित[3] याथातथ्यममुं जनं निरागसमपि नगरान्निरकासयत् ।

अथेति । अथानन्तरम्, विदितः विज्ञापितः वृतान्तः वालिवधलक्षणः समाचारो येषां तैः, अमात्यैः मन्त्रिभिः मयि सुग्रीवे अभिषेचिते राजपदं प्रापिते सति, मायाविनं तदभिधानं दानवं निहत्य मारयित्वा, खरतरौ अतिकठिनौ भुजौ हस्तावेव परिघौ अर्गलौ ताभ्यां विघट्टितम् दूरीकृतम् बिलवदनपिधानम् बिलद्वाराच्छादनं शिलावृन्दं येन स तथोक्तः । तरसा वेगेन रसातलात् पातालात् पुरम् किष्किन्धां प्रविष्टः आगतः अतीवरुष्टः अत्यन्तरोषाक्रान्तः, प्रभ्रष्टाशयम् वालिदर्शनादेवेतिकर्त्तव्यताविमूढम्, बहुशः बहुवारं प्रणिपतन्तं पादयोः पतन्तम्, प्रतिपादितं कथितं याथातथ्यं याथार्थ्यं येन तं तथोक्तम्, अमुं जनम्, मल्लक्षणं जनम्, निरागसम् निरपराधमपि नगरात् किष्किन्धातः निरकासयत् निष्कासितवान् । ('आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमरः) ।

इसके बाद सारा समाचार जानकर मन्त्रियों ने मुझे राज्याभिषिक्त कर दिया । तब वाली मायावी नामक दानव को मार कर अपनी कठोर भुजारूप अर्गल से बिलद्वार को ढकने वाली शिलाओं को हटा कर पाताल से वेगपूर्वक किष्किन्धा आया और मुझपर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा । मैं किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया ! मैंने उसके पैरों पर गिरकर सारी वास्तविकता बतायी तथापि निरपराध होने पर भी मुझे उसने नगर से निकाल दिया ।

---

१. 'वाली' इति नास्ति क्वचित् । २. 'ष्टाशयः' इति पाठा० ।
३. 'याथातथ्यं मां नगरान्निरागसमपि' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदनु तदनुधावनात्कान्दिशीकस्य मम पर्वतेऽस्मिन्नकुतोभयसञ्चारकारणमाकर्ण्यताम् ।

तदन्विति । तदनु तत् पश्चात्, तदनुधावनात् मद्धननाय वालिकर्तृकममानुगमनात् कान्दिशीकस्य भयद्रुतस्य ('कान्दिशीको भयद्रुतः' इत्यमरः) मम सुग्रीवस्य अस्मिन् पर्वते ऋष्यमूके, नास्ति कुतो भयमत्रेत्यकुतोभयः वालिभयरहित इत्यर्थः तादृशस्य सञ्चारस्य भ्रमणस्य कारणम् आकर्ण्यताम् श्रूयताम् ।

इसके बाद वालि ने [मुझे मार डालने के लिए] मेरा पीछा किया जिससे भयभीत हो कर मैं यहाँ आगया और निर्भय घूमता हूँ । इसका कारण सुनिये—

पुरैकदावालिन[1]मतनुभुजबलमखिलकुलाचलचालनचतुरं चतुरर्णवलङ्घनजङ्घालं दुन्दुभिर्नाम वृन्दारकारिर्लुलायकायः परिभूय समरे समतिष्ठत ।

पुरैकदेति । पुरा पूर्वकाले, एकदा एकस्मिन् दिने, अतनुभुजबलम् समधिकबाहुबलम्, अखिलानां सर्वेषामपि कुलाचलानां कुलपर्वतानां चालने विलोलतासम्पादने चतुरः निपुणः समर्थ इति यावत् तम्, चतुरर्णवानां समुद्रचतुष्टस्य लङ्घने तरणे जङ्घालम् जङ्घावेगवन्तम्, अतिजवमित्यर्थः । ('जङ्घालोऽतिजवो तुल्यः' इत्यमरः) वालिनम्, दुन्दुभिर्नाम वृन्दारकारिः सुररिपुः दानव इत्यर्थः, लुलायकायः महिषवेषधारी सन् ('लुलायो महिषो वाहद्विषत्' इत्यमरः) परिभूय तिरस्कृत्य समरे युद्धे समतिष्ठत मृतः । ('संस्थाऽऽचारे स्थितौ मृतौ' इत्यमरः) । 'समवप्रविभ्यां स्थः' इत्यात्मनेपदम् ।

पूर्व काल में एक बार महान् भुजबल रखने वाले, समस्त कुलपर्वतों को चला देने में समर्थ, चारों समुद्रों को लाँघ जाने में अतिशय वेगवान् वाली को दानव दुन्दुभि ने महिष के वेष में आकर युद्ध के लिए चुनौती दी और वाली द्वारा वह युद्ध में मारा गया ।

[2]तदनु निहतस्य तस्य[3] शरीरं वाली बलावलेपेन सकललोकविलय-

१. 'अतुल' इति पाठा० । २. 'तदनु' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'शवं बाहुबलावलेपेन वाली सकल' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]विलोलदनिलचलिततलघुतूललीलया मतङ्गाश्रमक्षितौ क्षिप्रमक्षिपत् ।

तदन्विति । तदनु तत्पश्चात्, वाली बलावलेपेन भुजबलदर्पेण सकललोकविलये महाप्रलयसमये विलोलता समधिकवेगेन वहता अनिलेन वायुना चलितस्य उद्धूतस्य तुच्छकार्पासस्य लीलया सादृश्येन, निहतस्य तस्य दुन्दुभेः शरीरं शवं मतङ्गाश्रमक्षितौ मतङ्गनाम्नो महर्षेः तपोवनसीम्नि क्षिप्रं शीघ्रम् अक्षिपत् निपातितवान् ।

तत्पश्चात् दुन्दुभि के शव को, भुजबल के दर्प के कारण वाली ने अनायास मतङ्ग मुनि के आश्रम में उसी तरह फेंक दिया जैसे महाप्रलय के समय प्रचण्ड वेग से बहता हुआ पवन छोटे से तूल खण्ड को फेंक देता है ।

तत्र वालिकरनुन्ननिष्पतद् दुन्दुभि[1]प्रभवरक्तबिन्दुभिः ।
पाटलं तदभवन्मुनेर्वनं तस्य वक्त्रमपि [2]रोषपाटलम् ॥ ११ ॥

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये वालिनः कराभ्यां नुन्नः क्षिप्तः, निष्पतत् पतन् यो दुन्दुभिः दुन्दुभिदेह इत्यर्थः, तत्प्रभवैः ततो निर्गच्छद्भिः रक्तबिन्दुभिः रुधिरबिन्दुभिः, मुनेः मतङ्गस्य तत् पवित्रतया प्रसिद्धम्, वनम् आश्रमस्थं तपोवनम्, पाटलरक्तवर्णमभवत्, तस्य मतङ्गस्य मुनेः वक्त्रम् मुखमपि रोषेण वालिकृतदुर्व्यापारेण जनितेन कोपेन पाटलं रक्तवर्णमभवत् । अत्र तपोवनमुनिवदनयोरेकधर्माभिसम्बन्धात्तुल्ययोगिता । रथोद्धता वृत्तम् ॥ ११ ॥

वाली द्वारा फेंके गये गिरते हुए दुन्दुभि के शव से वहते रुधिर की बूँदों से मतङ्ग मुनि का वह तपोवन लाल हो गया और [उधर] मतङ्ग मुनि का मुख भी [वाली के इस दुष्कर्म से उत्पन्न] क्रोध से लाल हो गया ॥११॥

ततो मतङ्गशापबलादवालिवश्यमृष्यमूकं विमृश्यास्मिन्विस्मृतपुरनिवाससुखे[3] मयि सुचिरं निवसति सति ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, मतङ्गशापबलात् 'इहानेनाप्रवेष्टव्यं, प्रविष्टस्य वधो भवेत्' इति रामायणोक्तंमतङ्गदत्तशापमहिम्ना अवालिवश्यम् वालिनः

---

१. 'विलोलदनिलबलचलित' इति पाठा० । २. 'प्रसृत' इति पाठा० ।
३. 'रोषदूषितम्', 'रोषरूषितम्' इति च पाठा० ।
४. 'सुचिरं निवसति सति मयि' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सामर्थ्याविषयम् ऋष्यमूकं विमृश्य विचार्य अस्मिन् अत्र ऋष्यमूके विस्मृतं पुरनिवाससुखं येन तादृशे मयि सुग्रीवे सुचिरं बहुकालात् निवसति सति ।

इसके बाद, मतङ्ग मुनि द्वारा दिये गये [यहाँ आने पर वाली का मरण होगा–ऐसे] शाप के कारण, ऋष्यमूक पर आना वाली के वश की बात नहीं है–ऐसा सोच कर नगर वास के सुख को भूल कर मैं बहुत दिनों से यहाँ रह रहा हूँ ।

अयमसुखयदेवं देव ! धीमान् हनूमान्
रिपुरिति भवतोऽपि त्रस्तमस्तौजसं माम् ।
दवहुतवहधूमस्तोम इत्यम्बुवाहा-
च्चकितमिव मयूरं मारुतो वारिशीतः ॥ १२ ॥

अयमिति । हे देव स्वामिन् धीमान् ऊहापोहनिपुणः, अयं पुरो विद्यमानम् हनूमान् रिपुः स्वयमत्र प्रवेष्टुमसमर्थेन वालिना मद्वधाय प्रहितो यः कश्चनायं शत्रुरिति [मत्वा] भवतोऽपि मत्सख्यार्थमागच्छतोऽपि भवतः, त्रस्तं भीतम् अस्तौजसम् नष्टतेजस्कं माम् सुग्रीवम् एवमनेन प्रकारेण युष्मत्प्रवृत्तिपरामर्श-पूर्वकसख्यानुसन्धानरूपेणेत्यर्थः । दवहुतवहधूमस्तोमः दावाग्निधूमपटलमिति [मत्वा] अम्बुवाहात् मेघात् चकितं भयाकुलम्, मयूरम्, वारिशीतः मेघ-सलिलसम्पर्कशीतलः मारुतः वायुरिव असुखयत् अतोषयत् । यथा वर्षाकाल-प्रारम्भे मेघं दावाग्निधूमपटलं मत्वा प्राणसंशयं पश्यन् भयसम्भ्रान्तो मयूरः नूतनमेघवारिसम्पर्कशीतलेन वायुना नायं दावानलधूमस्तोमः किन्तु तवप्रियो मेघ एवेति प्रबोध्य सुखी क्रियते तथैवानेन हनूमता, त्वां दृष्ट्वा रिपुरयमिति मत्वा भयसंभ्रान्तो निस्तेजस्कोऽहं भवत्सख्यमुपपाद्य सुखी कृत इति भावः । उपमालङ्कारः' अम्बुवाहे धूमस्तोमभ्रमाद् भ्रान्तिमान् अलङ्कारः । तयोरङ्गाङ्गि-भावेन सङ्करः । मालिनी वृत्तम् ॥ १२ ॥

स्वामिन् ! यह हमारा शत्रु आ रहा है–ऐसा समझ कर मैं आप से भी डर रहा था और सारा तेज नष्ट हो गया था किन्तु बुद्धिमान् इस हनुमान ने इस प्रकार से [आप के साथ मेरी मित्रता करा के] मुझे उसी प्रकार सुखी किया जैसे मेघ को दावाग्नि का धूम समझकर भयभीत मयूर को नूतन मेघवारि के सम्पर्क से शीतल वायु सुखी बनाता है ॥ १२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रुत्वाऽथ रामः शोकोदग्रां सुग्रीवगिरम्, यद्येवं महाभाग। मा भैषीः। मम शिलीमुख एव वलीमुखस्य तस्यासून्कालक्षेपमपास्य पास्यति' इत्युक्त्वा तत्प्रत्ययार्थं पादाङ्गुष्ठेन प्रेरितदुन्दुभिकलेवर[1]भरस्तत्कर्मणाप्यतृप्तस्य[2] सुग्रीवस्य प्रार्थनया सप्त[3]भुवनस्तम्भसम्भावनया किल सप्तधा धात्रा[4] प्रवर्ध्यमानपरिणाहारोहान् सप्तसालान[5]विधेययातुधानकुल[6]वधविधायकेन सायकेन विव्याध।

श्रुत्वेति। अथानन्तरम्, रामः शोकोदग्राम् शोकेन उदग्राम् परिपूर्णामित्यर्थः सुग्रीवगिरम् सुग्रीवस्य वाचं श्रुत्वा, हे महाभाग, यद्येवं त्वया यथोक्तं वस्तुस्थितिस्तथैव चेत्, तर्हि मा भैषीः भयं मा कुरु। मम रामस्य शिलीमुखः एक एव बाणः (अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः) तस्य वलीमुखस्य कपेः वालिन इत्यर्थः ('कपिप्लवङ्गप्लवगशाखामृगवलीमुखाः' इत्यमरः)। असून् प्राणान् कालक्षेपम् कालविलम्बम् अपास्य विहाय अविलम्बमेवेत्यर्थः पास्यति हरिष्यति इत्येवम् उक्त्वा तत्प्रत्ययार्थम् तथा करणे सुग्रीवस्य विश्वासमुत्पादयितुम् पादङ्गुष्ठेन चरणाङ्गुलिविशेषेण ('प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः) प्रेरितदुन्दुभिकलेवरभरः दूरक्षिप्तदुन्दुभिशरीरः, तत्कर्मणाऽपि पादाङ्गुष्ठेन दुन्दुभिशरीरक्षेपणेनापि अतृप्तस्य असन्तुष्टस्य सुग्रीवस्य प्रार्थनया विश्वासार्थं पराक्रमान्तरं प्रदर्शयितुमिति भावः। सप्तानां भुवनानां स्तम्भसम्भावनया आधारस्तम्भकरणाभिप्रायेण किलेत्यलीके, वस्तुतस्तु स्वभावएवेति भावः। अत एवोत्प्रेक्षा। सप्तधा सप्त प्रकारैः धात्रा ब्रह्मणा प्रवर्ध्यमानौ उपचीयमानौ परिणाहारोहौ विशालतोच्छ्रायौ येषां तान् ('परिणाहो विशालता' 'नगाद्यारोह उच्छ्रायः' इत्युभयत्राप्यमरः) सप्त सप्तसंख्याकान् सालान् सर्जतरून् अविधेयं दुर्विनीतं यद् यातुधानकुलम् राक्षसवृन्दं तस्य वधस्य विधायकेन कर्त्रा सायकेन बाणेन विव्याध बिभेद।

इसके बाद सुग्रीव की शोक पूर्ण बात सुन कर राम ने कहा—'महाभाग !

---

१. 'खर' इति नास्ति क्वचित्। २. 'तस्य सुग्रीवस्य' इति पाठा०।
३. 'भुवनभवन' इति पाठा०। ४. 'धात्र्या वर्धमान' इति पाठा०
५. 'णाहरोहान्सप्तसालानप्यविधेय' इति पाठा०। ६. 'विविधवध' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदि ऐसी बात है तो मेरा [एक ही] बाण उस वानर [वाली] के प्राणों को अविलम्ब हरेगा।' ऐसा कह कर सुग्रीव के विश्वास के लिए राम ने पाँव के अँगूठे से दुन्दुभि के शरीर को बहुत दूर फेंक दिया। वैसा करने पर भी जब सुग्रीव की तृप्ति नहीं हुई तब उसकी प्रार्थना पर रामने दुर्विनीत राक्षसों का संहार करने वाले अपने बाण से उन सातों साल वृक्षों का भेदन कर दिया जिन्हें ब्रह्मा ने मानों सात भुवनों के आधार स्तम्भ बनाने के अभिप्राय से ही उतना विशाल और ऊँचा बनाया था।

सोऽयं सायको निकटगिरिकटमपि पाटयामास।

सोऽयमिति। सोऽयं यः सप्तसालान् विभेद सोऽयमित्यर्थः। सायकः बाणः निकटगिरिकटमपि समीपस्थपर्वतनितम्बमपि पाटयामास बिभेद। सप्तसालान् भिन्दन् स बाणः समधिकवेगतया निकटवर्तिगिरिनितम्बमपि बिभेदेत्यर्थः। ('कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः' इत्यमरः)।

उस बाण ने निकटवर्ती पर्वत की नितम्बभूमि (अधित्यका) का भी भेदन किया।

निर्भिन्नसालकटकोऽस्मि यथा तथा त्वं
पौलस्त्यसालकटकं युधि पाटयेति।
ऊचे शिलादलनजातरवेण नूनं
तस्मै वलीमुखवराय शिलीमुखः सः ॥ १३ ॥

निर्भिन्नेति यथा येन प्रकारेण अहं निर्भिन्नाः विदारिताः सालाः सप्त सालवृक्षाः कटकः पर्वतनितम्बभूमिश्च येन तादृशोऽस्मि, तथा तेनैव प्रकारेण त्वम् सुग्रीवः युधि रणे पौलस्त्यस्य रावणस्य सालकटकम् प्राकारनितम्बप्रदेशम् पाटय विदारय इत्येवं प्रकारेण स शिलीमुखः रामबाणः नूनमित्युत्प्रेक्षायाम्। शिलादलनजातरवेण पाषाणविदारणजनितध्वनिना तस्मै बलीमुखवराय वानरश्रेष्ठाय सुग्रीवाय ऊचे उक्तवान्। ('प्राकारवृक्षयोः सालः सालः सर्जतरुः स्मृतः' 'कटकं वलये सानौ राजधानीनितम्बयोः' इत्युभयत्रापि विश्वः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १३ ॥

शिलाविदारण के समय जो शब्द हुआ, मानों उसके द्वारा उस बाण ने सुग्रीव से कहा कि जिस तरह मैंने इन साल वृक्षों और गिरिनितम्ब प्रदेश का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भेदन किया है उसी तरह [भावी] युद्ध में तुम [भी] रावण के प्राकार के नितम्ब का भेदन करना ॥ १३ ॥

[1]ततस्तत्प्रत्ययादाहूतेन पुरुहूततनयेन[2] सार्धं तस्य [3]तलातलयुद्धे प्रवृद्धे[4]सुजनदुर्जनयोर्भेदं रूपतोऽपि विवेक्तुमक्षमतया[5]सदसि वाचंयमतामुपेत इव वाग्मी तयोरप्येकवेषकर्मणोर्भेदमनवगच्छन्नमुक्तशरोऽभूद्दाशरथिः ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, तत्प्रत्ययात् सालतरूणां भेदको रामो वालिनमपि जेष्यतीति विश्वासादाहूतेन युद्धार्थमाकारितेन पुरुहूततनयेन इन्द्रपुत्रेण वालिना सार्धम् सह, तस्य सुग्रीवस्य तलैश्च तलैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तमिति तलातलं युद्धं तादृशे युद्धे मुष्टियुद्ध इत्यर्थः, प्रवृद्धे प्रकर्षं गते सति, सुजनदुर्जनयोः भेदमन्तरं रूपतोऽपि आकृतिवशादपि विवेक्तुम् विविच्य वक्तुम् अक्षमतया असमर्थतया सदसि सभायां वाचंयमताम् मूकभावमुपेतः प्राप्तः वाग्मी वक्ता पुरुष इव (अत एवोपमाऽलङ्कारः) दाशरथिः श्रीरामः तयोः वालिसुग्रीवयोः अपि एकवेषकर्मणोः समानाकृतिव्यापारयोः भेदम् कः सुग्रीवः कश्च वालीत्यन्तरमनवगच्छन् अजानन् अमुक्तशरः न मुक्तः शरो येन तथाभूतः अभूत् बाणं नामुचदित्यर्थः ।

इसके बाद सुग्रीव को विश्वास हो गया । उसने उसी विश्वास के कारण बाली को ललकारा और उसके साथ सुग्रीव का मुष्टियुद्ध होने लगा । युद्ध पूरी तरह बढ़ाव पर पहुँच गया किन्तु दोनों भाइयों में, आकृति और कर्म की समानता के कारण राम भेद कर नहीं पा रहे थे अतः उन्होंने बाण नहीं चलाया । जिस तरह वक्ता पुरुष जब सुजन और दुर्जन में आकृति से भी भेद नहीं समझ पाता है तब सभा में चुप्पी साध लेता है ।

सुग्रीवस्तु वालिवलासहतया[6] लब्धदैन्यो वदान्य इव [7]राममार्ग-

---

१. 'प्रत्याहूतेन' इति पाठा० । २. 'तनुजेन' इति पाठा० ।
३. 'तलातलियुद्धे प्रवृत्ते सति सज्जन' इति पाठा० ।
४. 'सज्जन' इति पाठा० । ५. 'मनसि विचारयन्सदसि' इति पाठा० ।
६. 'सहनतया' इति पाठा० । ७. 'राम' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

णापातमार्गे[1] चक्षुर्विक्षिपन्नपगतधृतिः [2]सुदूरमपासरत् ।

सुग्रीव इति । सुग्रीवस्तु सुग्रीवोऽपि, वालिबलासहतया-वालिपराक्रमं सोढुमशक्ततया लब्धदैन्यः प्राप्तदीनभावः, व्याकुलः सन्नित्यर्थः, दरिद्रश्च, वदान्ये दातरि इव राममार्गणापातमार्गे श्रीरामबाणगमनमार्गे चक्षुः नेत्रम्, विक्षिपन् आदधानः, [किन्तु रामशरेऽनागते] अपगतधृतिः नष्टधैर्यः सन् सुदूरम् अपासरत् अतिविप्रकृष्टदेशं पलायितः । यथा कश्चिद् दरिद्रः कस्मिश्चिद् दातरि साभिलाषं दृष्टिं विक्षिपति तथैव सुग्रीवो विह्वलः सन् रामशरागमनमार्गे दृष्टिं व्यक्षिपत् किन्तु रामबाणेऽनागते धैर्यं विहाय सुदूरमपासरदिति भावः । उपमाऽलङ्कारः ।

सुग्रीव वाली के पराक्रम को न सह सकने के कारण विह्वल होकर [सहायतार्थ] राम के बाण के आने के मार्ग पर उसी प्रकार दृष्टि डालता रहा जैसे कोई दरिद्र दाता पर अपनी आँख गड़ाये रहता है [किन्तु राम के बाण के न आने पर] धैर्य छोड़ कर दूर भाग खड़ा हुआ ।

तमेनमृष्यमूके मूकवत्त्रपया निषण्णं विषण्णहृदयं [3]दयालुरालोक्य त्रैलोक्यैकधन्वी रामस्तद्भेदमवगन्तुकामः कामप्यभिज्ञानमालां सुग्रीवग्रीवायां बाणनिवारणनिपुणां सिद्धौषधिमिव बद्ध्वा भूयोऽपि वालिनमाहवायाह्वयेति तमादिदेश ।

तमेनमिति । ऋष्यमूके तदभिधाने पर्वते त्रपया पराजयजनितलज्जया मूकवत् स्थितं विषण्णहृदयम् व्यथितमानसम् तमेनम् सुग्रीवमालोक्य दृष्ट्वा दयालुः त्रैलोक्यैकधन्वी संसाराद्वितीयधनुर्धरः, रामः, तयोः वालिसुग्रीवयोर्भेदमन्तरम् को वाली कश्चसुग्रीव इति भेदमित्यर्थः, अवगन्तुकामः जिज्ञासुः सन् कामपि अभिज्ञानमालाम् भेदप्रत्यायकपुष्पमालाम् बाणनिवारणनिपुणाम् रामत्यक्तशरनिवर्तने निपुणां समर्थां सिद्धौषधिमिवेत्युत्प्रेक्षा, सुग्रीवग्रीवायाम् सुग्रीवकण्ठदेशे बद्ध्वा आसज्य भूयोऽपि पुनरपि वालिनम् आहवाय युद्धाय आह्वय आकारय इत्येवं तम् सुग्रीवम् आदिदेश आज्ञप्तवान् ।

---

१. 'सदा चक्षुः इति पाठा० । २. 'अतिदूरम्' इति पाठा० ।
३. 'हृदयालुः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुग्रीव [अपनी पराजय से] लज्जित होकर मूक की तरह ऋष्यमूक पर्वत पर बैठ गया और उसका हृदय बहुत दुःखी हुआ। ऐसी स्थिति में उसे देख कर राम को दया आगयी। तदनन्तर त्रैलोक्य में अद्वितीय धनुर्धर राम ने बाली और सुग्रीव में भेद जान सकने की इच्छा से सुग्रीव के गले में, भेदप्रतीति कराने वाली [राम के] बाण से बचाने में सिद्धौषधि-सी एक पुष्पमाला डाल दी और सुग्रीव को आदेश दिया कि बाली को दुबारा युद्ध के लिए ललकारो।

पुनरप्यवाप्य किष्किन्धां पर्जन्य इव गर्जति तस्मिन्सुत्रामपुत्रस्ताराभिहितां हितोक्तिमतिक्रम्य दुरतिक्रमतया नियतेः समारब्धसमरो [1]दाशरथेर्निशिततरशरशकलितनिजविशालवक्षःस्थलः क्षितितले [2]निपपात।

पुनरपीति। तस्मिन् सुग्रीवे पुनः भूयोऽपि किष्किन्धाम् अवाप्य आगत्य पर्जन्ये मेघे इव गर्जति गर्जनं कुर्वति सति सुत्राम्णः इन्द्रस्य पुत्रः वाली ताराभिहिताम् तारा तदभिधाना वालिभार्या तया अभिहिताम् उक्ताम् हितोक्तिम् 'ससहायोऽयं सुग्रीवो योद्धुमागतस्तन्मा याहीति हितवचनम् अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य नियतेः दैवस्य ('नियतिर्नियमे दैवे च' इति शाश्वतः) दुरतिक्रमतया दुर्विलङ्घ्यतया समारब्धसमरः समारब्धः प्रक्रान्तः समरः युद्धं येन स तथोक्तः सन्, दाशरथेः रामस्य निशिततरेण अतितीक्ष्णेन शरेण बाणेन शकलितं विदलितं निजं स्वकीयं विशालं विस्तृतं वक्षःस्थलं हृदयप्रदेशो यस्य स तथोक्तः सन्, क्षितितले भुवि निपपात न्यपतत्। सुग्रीवे पुनरपि योद्धुमागते 'कस्यचिदन्यस्य सहायस्य बलमासाद्य सुग्रीवो योद्धुमुद्यतस्तन्मा याहीति तारानिवारितोऽपि बाली दुर्भाग्यवशात् सुग्रीवेण सह युध्यमानस्तीक्ष्णतरेण रामशरेण विद्धो भूतले न्यपतदित्याशयः।

फिर किष्किन्धा में आकर मेघ की तरह सुग्रीव के गरजने पर वाली ने तारा के [निषेधक] हितवचन का उल्लङ्घन कर भाग्यरेखा के अमिट होने से

---

१. 'दाशरथिशरशकलीकृतवक्षःस्थल' इति पाठा०।

२. सहसा पपात' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[सुग्रीव के साथ] युद्ध प्रारम्भ कर दिया और वह राम के अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से विदीर्ण हृदय होकर भूमि पर गिर गया।

अथ विदितवृत्तान्ता [1]सन्तताश्रुनिष्यन्दकलुषित[2]तरतारा तारा नगरान्निर्गत्य वारिवारितं वारणयूथपतिमिव [3]निर्भयनिरीक्ष्यमाणसुग्रीवमुद्गतग्रीवमुत्थातुमक्षमतया क्ष्मातलार्पितकूर्परयुगलं [4]गलदसृक्प्रसरशारशरीरं शरासनशिखर[5]न्यस्तहस्तेन सन्निकर्षस्थितेन काकुत्स्थेन कृतसंलापमपेताडम्बरमिवाम्बु[6]निधिमस्तोन्मुखमिव मयूखमालिनं वालिनमालिङ्ग्य स्वाङ्कोत्तंसिततदुत्तमाङ्गा रघुनाथमित्थमकथयत्।

अथेति। अथ वालिपतनानन्तरम् विदितवृत्तान्ता विदितः ज्ञातः वृत्तान्तः वलिवधरूपवार्त्ता यया सा, [अत एव] सन्तताश्रुनिष्यन्देन अनवरताश्रुसंपातेन कलुषिततरे अत्यन्तरूषिते तारे नेत्रकनीनिके यस्याः सा तथोक्ता ('तारकाक्ष्णः कनीनिका' इत्यमरः) तारा तदभिधाना बालिभार्या, नगरात् किष्किन्धापुरात् निर्गत्य वारिवारितम्—वारिः वारी वा गजबन्धनी तस्यां वारितम् निबद्धम् (वारी तु गजबन्धिनी) वारणयूथपतिम् गजेन्द्रमिव, निर्भयं भयरहितं यथा तथा निरीक्ष्यमाण विलोक्यमानः सुग्रीवो येन तं तथोक्तम्। उद्गता उत्थिता ग्रीवा कण्ठदेशो यस्य तादृशम् प्रहर्तारं द्रष्टुकामत्वादिति भावः। उत्थातुम् अक्षमतया अशक्ततया क्ष्मातले भूतले अर्पितम् न्यस्तं कूर्परयुगलम् कफोणिद्वयं येन तं तथोक्तम् तदवष्टम्भेनावस्थितमित्यर्थः। गलता स्यन्दमानेन असृक्प्रसरेण रुधिरप्रवाहेण शारम् कृष्णरक्तसितवर्णयुक्तं शरीरं यस्य तं तथोक्तम्, ('कृष्णरक्तसिते शारः' इति यादवः) शरासनशिखरे धनुष्कोटयां न्यस्तः निक्षप्तः हस्तो यस्य तेन तथोक्तेन सन्निकर्षस्थितेन समीपवर्तिना काकुत्स्थेन श्रीरामेण सह कृतसंलापम् विहितवार्त्तालापम्, अपेताडम्बरम् कल्लोद्यभावेन स्तिमितम् अम्भोनिधिम् समुद्रमिव, अस्तोन्मुखम् अस्ताचलं गच्छन्तं मयूखमालिनम् सूर्यमिव [स्थितम्] वालिनम् आलि-

---

१. 'सन्तत' इति नास्ति क्वचित्। २. 'कलुषिततारा तारान्तरात्' इति पा०।
३. 'सुग्रीवं निर्भयनिरीक्ष्यमाण इति पा०। ४. 'गलगलदसृक्पूर' इति पाठा०।
५. 'विन्यस्त' इति पाठा०। ६. 'अम्बुधिम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ङ्‌ग्य आश्लिष्य स्वाङ्के स्वक्रोडे अवतंसितम् भूषणीकृतं निक्षिप्तमिति यावत्, तस्य वालिनः उत्तमाङ्गम् शिरो यया सा [तारा] रघुनाथम् श्रीरामम् इत्थम् अनेन प्रकारेण अकथयत् उक्तवती।

[बाली के वध का] समाचार पाकर तारा, जिसकी आँखों की पुतलियाँ निरन्तर आँसू गिरने के कारण सूज गयीं, नगर से निकल कर, बन्धन में बँधे गजेन्द्र की तरह, सुग्रीव की ओर निर्भय देखते हुए, सिर उठाये हुये, उठ न सकने के कारण पृथिवी पर दोनों कुहनियों को टेके हुए रक्त के बहते रहने के कारण चितकबरे शरीरवाले, धनुष की नोक पर हाथ रक्खे हुए समीपस्थ राम से बातें करते हुए निस्तरङ्ग समुद्र की तरह शान्त, अस्तोन्मुख सूर्य की तरह निस्तेज वाली को गले लगाकर उसके सिर को अपनी गोद में रखकर श्रीराम से इस प्रकार बोली—

कारुण्यं निरवधि यत्तव प्रसिद्धं
शीतांशोः सहजमिवार्तिहारि शैत्यम्।
तत्सर्वं मनुकुलनाथ ! रम्यकीर्ते !
मत्पापात्कथय कथं त्वया निरस्तम्॥ १४॥

कारुण्यमिति। हे मनुकुलनाथ, मनुवंशश्रेष्ठ ! (एतेन श्रीरामस्य महाकुलीनता सूचिता) रम्यकीर्ते रमणीययशःसम्पन्न ! श्रीराम ! शीतांशो चन्द्रमसः सहजम् स्वाभाविकम्, आर्तिहारि परोपतापशामकं शैत्यम् शीतलत्वमिव, यत् तव श्रीरामस्य निरवधि असीमम् कारुण्यम् दयालुत्वम् (करुणाशब्दात् स्वार्थे ष्यञ्) प्रसिद्धम् सहजत्वेन आर्तिहारित्वेन च लोके विख्यातम्, सर्वम् समग्रं तत् कारुण्यम्, मत्पापात् मत्कृतदुष्कृताद्धेतोः त्वया श्रीरामेण कथं कुतः। निरस्तम् त्यक्तम् (इति) कथय ब्रूहि। प्रहर्षिणी वृत्तम्॥ १४॥

हे मनुकुलनाथ ! हे रम्यकीर्ते चन्द्रमा की स्वभावसिद्ध परतापनिवारक शीतलता की तरह आपकी जो असीम करुणा स्वभावसिद्ध और परपीडा निवारक रूप में लोक-विख्यात है, तो आप ने मेरे पाप के कारण अपनी उस पूरी की पूरी करुणा को कैसे छोड़ दिया, कृपा करके इसे तो बताइये॥ १४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवंविधे प्रियतमेऽप्यनपेतजीवां
मां राक्षसीति रघुपुङ्गव ! साधु बुद्ध्वा ।
बाणं विमुञ्च मयि सम्प्रति ताटकारे !
श्रेयो भवेद्दयितसङ्गमकारिणस्ते ॥ १५ ॥

एवं विध इति । हे ताटकारे = ताटकाप्राणसंहारक ! रघुपुङ्गव = रघुकुलश्रेष्ठ ! प्रियतमे प्राणेश्वरे स्वामिनि एवंविधे एतादृशीमवस्थां प्राप्ते मृतेऽपीत्यर्थः । अनपेतजीवाम् अनिर्गतप्राणां जीवन्तीं माम् ताराम्, 'राक्षसी' इत्येवं प्रकाराम् साधु सम्यक् बुद्ध्वा ज्ञात्वा, राक्षस्या एव प्रियतमविपत्तिसहत्वादिति भावः । सम्प्रति इदानीम् मयि राक्षस्यां बाणं विमुञ्च प्रहर, राक्षसीं ताटकामिव मां राक्षसीमपि बाणप्रहारेण मारय [एवं प्रियसकाशं मां गमयित्वा] दयितसङ्गमकारिणः प्रियसंयोगकारिणः प्रियतमेन मां संयोजयस्ते तव श्रेयः पुण्यं भवेत् नात्रस्त्रीवधजनितपापावकाश इति भावः । ('स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः' इत्यमरः) । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १५ ॥

प्रियतम की ऐसी दशा [अर्थात् मृत्यु] होने पर भी जिसके प्राण नहीं निकले, वह मैं राक्षसी [ही] हूँ–इसे आप अच्छी तरह से जानकर मुझपर इस समय अपना बाण छोड़ें [अर्थात् शर का प्रहार कर मुझे मार दें] । हे रघुकुल श्रेष्ठ ! हे ताटकासंहारक ! [ऐसा कर] आप मुझे प्रियतम से मिला देंगे और आपको बड़ा पुण्य मिलेगा ॥ १५ ॥

साधारणी [1]क्षितिभुजां मृगयेति पूर्व-
[2]मुक्ता त्वयैव जनसंसदि सत्यवादिन् ! ।
शाखामृगीं तदिह मारय मां शरेण
को नाम राम ! मृगयुर्दयते मृगीणाम् ॥ १६ ॥

साधारणीति । हे सत्यवादिन् ! [सत्यवादितया त्वया सत्यं परिपालनीयमेवेत्याशयेनेदं सम्बोधनपदं प्रयुक्तम्] क्षितिभुजाम् राज्ञां मृगया आखेटः ('आच्छोदनं मृगव्यं स्यादाखेटो मृगया स्त्रियाम्' इत्यमरः) । साधारणी सर्वसम्मता, 'मृगयाघाय न भूभृतां घ्नताम्' इत्युक्तेरिति भावः । इत्येवं पूर्वम्

---

१. 'क्षितिभृताम्' इति पाठा० ! २. 'उक्तम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इतः पूर्वस्मिन् काले जनसंसदि लोकसभायाम् जनानां पुरत एवेत्यर्थः। त्वयैव, नान्येनेति भावः। उक्ता कथिता। तत् तस्मात् कारणात्, इह सम्प्रति शाखामृगीम् वानरीम्, माम् तारां शरेण बाणेन मारय जहि। को नाम मृगयुः आखेटकः मृगीणाम् मृगाङ्गनानां दयते दयां कुरुते ('अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति षष्ठी)। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १६ ॥

'राजाओं के लिए शिकार एक साधारण सी बात है'—ऐसा आप ने ही [किसी दूसरे ने नहीं] जनसभा में (अर्थात् लोगों के सामने) अभी कुछ समय पहिले ही कहा था, तो हे सत्यवादिन्! अभी ही मुझ शाखामृगी वानरी को बाण से मार डालिये। कौन सा शिकारी मृगी पर दया करता है? [फिर आप ही क्यों मुझ शाखामृगी—वानरी पर दया दिखा रहे हैं—क्यों नहीं मारते?] ॥१६॥

संत्रस्य पूर्वममुतस्तव बन्धुरेष
भेजे यथाद्रिमकुतोभयमृष्यमूकम्।
भर्ता ममायमपि रामशरैरभेद्यं
प्राप्तो मदीयहृदय[1]च्छलमद्रिदुर्गम् ॥ १७ ॥

संत्रस्येति। यथा येन प्रकारेण तव रामस्य बन्धुः प्रियसुहृत् एषः सुग्रीवः अमुतः अमुष्मात् वालिनः संत्रस्य संत्रासं प्राप्य पूर्वं पुरा अकुतोभयम् निरापदम् ऋष्यमूकं नाम अद्रिम् पर्वतं भेजे सिषेवे शरणत्वेनाशिश्रिये (तथैव) अयम् पुरोवर्ती मम ताराया: भर्ता पतिः वाली अपि रामशरैः त्वद्बाणैः अभेद्यम् भेत्तुमशक्यम्, मदीयहृदयच्छलम्—मदीयहृदयरूपमित्यर्थः, अद्रिदुर्गम् पर्वतरूपं गुप्तिस्थानं प्राप्तः। तत्र तस्य किमप्यनिष्टं कर्तुं त्वं न क्षमं इति भावः। अत्र छलशब्देन हृदयपह्नुत्याद्रिदुर्गत्वेनासत्यत्वप्रतिपादनादपह्नुतिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १७ ॥

जैसे आप के प्रियमित्र ये सुग्रीव, पहले इसी (वाली) से डरकर निरापद ऋष्यमूक पर्वत पर रहा करते थे [उसी प्रकार] मेरे ये पति [वाली] भी मेरे हृदयरूप गिरिदुर्ग में पहुँच गये हैं जो राम (आप) के

१. 'स्थलम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बाणों से वेधा नहीं जा सकता [अतः आप उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं] ॥ १७ ॥

नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली
वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः ।
तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या
धन्वी कथं भवसि राघव ! मामविद्ध्वा ॥ १८ ॥

नाहमिति । अहम् तारा सुकेतुतनया ताटका न (अस्मि), सप्तसाली-सप्तानां सालानां समाहारः सप्तसाली सप्तसंख्यकसालतरुसमुदायः च न (अस्मि) त्रिभुवनप्रथितप्रभावः सकललोकविख्यातप्रतापः वाली च न (अस्मि) किन्तु वज्रहृदया वज्रवत् कठोरहृदया अत एव विशिखैः बाणैः अभेद्या भेत्तुमशक्या तारा अस्मि, हे राघव ! राम ! माम् ताराम् अविद्ध्वा अभित्वा त्वं कथं धन्वी धनुर्धरः भवसि ! अवेध्यां मां विद्ध्वाऽऽत्मनो धनुर्धरत्वं सत्यापयत्विति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १८ ॥

न मैं ताटका हूँ, न मैं सात साल वृक्ष हूँ, न मैं त्रिभुवन विख्यात प्रतापी वाली हूँ [जिन्हें आपने आसानी से मार दिया] मैं वज्र हृदया तारा हूँ, मुझपर आपके बाणों का बल नहीं चलेगा । मेरा भेदन किये बिना, आप कैसे धनुर्धर (सिद्ध) होते हैं ? आपका धनुर्धर होना निष्फल है ?॥१८॥

क्षितिपतितनयानां हन्त गर्भेश्वराणां
किमु निरवधि मौग्ध्यं शौर्यवज्जन्मसिद्धम् ।
मम हृदि निरपाये वर्तमाने कपीन्द्रे
रघुवर ! यदमुष्मै तिष्ठसे चापपाणिः ॥ १९ ॥

क्षितिपतीति । गर्भेश्वराणाम् गर्भादारभ्येश्वराणाम् जन्मनः प्रभृति सदैश्वर्यशालिनाम् क्षितिपतितनयानाम् राजकुमाराणां निरवधि अनन्तं मौग्ध्यम् मूढत्वं कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकशून्यत्वमित्यर्थः, किमु किम्, शौर्यवत् वीरत्वमिव जन्मसिद्धम् स्वभावसिद्धम् ? यथा गर्भेश्वरा राजकुमारा जन्मत एव शूरा भवन्ति तथैव जन्मत एव कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकशून्या अपि भवन्ति किमित्यभिप्रायः । हन्तेति विषादे । तेषां तथा भावो विषादस्य विषय इति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भावः। यत् यस्मात्कारणात्, हे रघुवर ! निरपाये निरापदि मम हृदि हृदयदुर्गे वर्तमाने कपीन्द्रे वालिनि सत्यपि, त्वम् अमुष्मै वालिने चापपाणिः, चापं पाणौ यस्य तादृशः सन् पुनः पुनः प्रहर्तुमिति भावः। तिष्ठसे वालिनं हन्तुमुद्यतमात्मानं प्रकाशयसीत्यर्थः। तस्मादसाध्यसाधने प्रवृत्तस्य तवापि जन्मजातं मौग्ध्यं सिध्यतीति भावः। 'तिष्ठसे' इत्यत्र 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' इत्यात्मनेपदम् ॥ मालिनीवृत्तम् ॥ १९ ॥

जन्म से ही ऐश्वर्यशाली राजकुमार लोग जिस तरह स्वभावतः शूर हुआ करते हैं उसी तरह कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विवेक से शून्य भी हुआ करते हैं क्या ? रघुवर ! जो आप, सर्वथा निरापद मेरे हृदय दुर्ग में वर्तमान वाली के प्रति हाथ में धनुष लिए (पुनः पुनः प्रहार करने को उद्यत) खड़े हैं, (यह तो राजकुमारों की जन्मजात मूढता का ही परिचायक है) ॥१९॥

एवं विलपन्त्या हारायिताश्रुधारायास्तारायाः परिदेवनरवैर्बाष्पाम्बुकणाभ्युक्षणैः[1]रक्षीणैर्निश्वासानिलैश्च कृताश्वास इव लब्धसंज्ञो वाली निजनन्दनं[2]रघुनन्दने समर्प्याङ्गदमङ्गसङ्गिनीं काञ्चन काञ्चन[3]स्रजं शोकावनतग्रीवाय सुग्रीवाय दत्त्वा निजभुजबलप्रशान्तासुरोऽयं[4] प्रशान्तासुरभूत्।

एवमिति। एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण विलपन्त्याः विलापपरायाः, हारायिता हारभावं गता अश्रुधारा यस्या स्तथोक्तायाः तारायाः परिदेवनरवैः विलापाक्रन्दैः, बाष्पाम्बुकणाभ्युक्षणैः अश्रुजलबिन्दुकृतसेकैः, अक्षीणैः अविच्छिन्नैः निःश्वासानिलैः निःश्वासवायुभिश्च कृताश्वासः पुनरुज्जीवित इवेत्युत्प्रेक्षा। लब्धसंज्ञः प्रत्यासन्न चैतन्यः। लोकेऽपि मूर्च्छितं जनम् उच्चरवेण, जलसेकेन, व्यजनवायुना च संज्ञां प्रापयितुं लोका उपचरन्ति, तथैव तारायाः परिदेवनरवैरश्रुजलबिन्दुकृतसेकैर्निःश्वासानिलैश्चोपचर्यमाणो वाली प्रत्युज्जीवित इव लब्धसंज्ञो जाता इत्याशयः। वाली निजनन्दनं स्वपुत्रम् अङ्गदं रघुनन्दने रामे ('आधिकरण्यविवक्षायां सप्तमी) समर्प्य रक्षणाद्यर्थं रामाधीनं कृत्वेत्यर्थः।

---

१. 'अक्षीणश्वासानिलैः' इति पाठा०। २. 'इक्ष्वाकुनन्दने' इति पाठा०।
३. 'मालाम्' इति पाठा०। ४. 'अयम्' इति क्वचिन्नास्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अङ्गसङ्गिनीम् देहलग्नाम् कण्ठे धृतामित्यर्थः काञ्चन कामपि काञ्चनस्रजम् सुवर्णमालाम् इन्द्रदत्तामिति भावः। शोकावनतग्रीवाय स्वभ्रातृदशादर्शनजनितशोकावनतकन्धराय सुग्रीवाय दत्त्वा निजभुजबलेन स्वबाहुपराक्रमेण प्रशान्ताः निहताः असुराः राक्षसा येन स तादृशः अयम् वाली प्रशान्तासुः अपगतप्राणः अभूत्, मृत इत्यर्थः।

इस प्रकार विलाप करती हुई, अश्रुधारा जिसका हार बन रही थी, ऐसी तारा के रोदन शब्द, अश्रुजलबिन्दुओं द्वारा सेचन तथा अविच्छिन्न निःश्वास वायु से पुनरुज्जीवित सा अतएव चेतना को प्राप्त बाली ने अपने पुत्र अंगद को श्रीराम के हवाले किया तथा कण्ठ में धारण की हुई [इन्द्र प्रदत्त] सुवर्णमाला को, शोक से सिर झुकाये हुए सुग्रीव को दे दी। इस प्रकार अपने बाहुबल से राक्षसों का संहार करने वाला वह वीर वाली निष्प्राण हो गया।

तत्र हा सकलभुवनबहुमतबाहु[1]बल गोलभगन्धर्वसिन्धुरपञ्चताकरणपञ्चाननदशमुखभुजभुजङ्गभोग[2]निरोधाहितुण्डिकायितबालवलय वालिन्, [3]कथं गतोऽसीति बाष्पाविलमुखा बलीमुखास्तस्य रामाज्ञया यथाभिप्रेतं प्रेतकृत्यं सर्वं निर्वर्तयामासुः।

तत्रेति। तत्र तदा वालिमरणसमये। हेति शोके। सकलभुवने समस्त लोके बहुमत अत्यादृतं बाहुबलम् भुजपराक्रमो यस्य तत्सम्बद्धौ तथोक्त, गोलभो नाम यो गन्धर्वः देवयोनिभेदः, स एव सिन्धुरः गजः, तस्य पञ्चताकरणे निधने पञ्चानन सिंह! दशमुखभुजाः रावणबाहव एव भुजङ्गभोगाः सर्पकायाः ('भोगः सुखे स्त्र्यादिभृता वहेश्च फण काययोः' इत्यमरः) तेषां निरोधे दमने अहितुण्डिकः व्यालग्राही तद्वदाचरितम् अहितुण्डिकायितं बालवलयम् लाङ्गूलमण्डलं यस्य तत्सम्बुद्धौ तथोक्त। कथं गतोऽसि कुतः मृतोऽसि, इत्येवं विलपन् बाष्पाविलमुखाः अश्रपूर्णमुखाः बलीमुखाः वानराः, रामाज्ञया रामस्या-

---

१. वेलानलशलमायितवललितगन्धर्व' इति पाठा०।
२. 'निरोधायाहि' इति पाठा०।
३. 'विलय कथं' इति पाठा०। ४. 'सर्वं इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देशेन तस्य वालिनः यथाभिप्रेतम् यथोचितं प्रेतकृत्यम् दाहादि-संस्कारम् सर्वं निर्वर्त्तयामासुः चक्रुः ।

वाली के मरने पर हाय ! समस्त लोक में श्लाघनीय बाहुबल वाले ! गोलभ नामक गन्धर्व रूप गज को मारने में सिंह रूप ! रावण के बाहुरूप सर्पकाय को निरुद्ध करने में व्यालग्राही रूप लाङ्गूल वाले ! वालि ! क्यों तुम चले गये ? इस प्रकार (विलाप करते हुए) वानरों का मुख (चेहरा) आँसुओं से भर गया और उन सबों ने राम की आज्ञा से वाली का यथोचित ढंग से दाहादि प्रेत संस्कार किया ।

ततो[1] जाम्बवत्प्रमुखा वलीमुखगणा दाशरथिनिदेशात्सुग्रीवं काञ्चनकलशोदकैरभ्यषिञ्चन् ।

तत इति । ततः वालिप्रेतकृत्यकरणानन्तरम्, जाम्बवत्प्रमुखाः— जाम्बवत्प्रभृतयो वलीमुखगणाः वानराः दाशरथिनिदेशात् श्रीरामादेशात् सुग्रीवम् काञ्चनकलशोदकैः सुवर्णघटानीततीर्थजलैः अभ्यषिञ्चन् अभिषिक्तवन्तः, सुग्रीवं वानरसम्राजं विदधुरित्यर्थः ।

वाली का प्रेतकृत्य करने के बाद जाम्बवान् आदि वानरगण ने राम की आज्ञा से सुवर्णकलशों में (तीर्थ का) जल लाकर उससे सुग्रीव का राज्याभिषेक किया ।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे रामश्यामपयोमुचा ।
अभिषेक्तुं स्थिता मेघास्तन्महीं महिषीमिव ॥ २० ॥

अभिषिक्त इति । सुग्रीवे तु सुग्रीव एवेत्यर्थः ('तु स्याद् भेदेऽवधारणे' इत्यर्थः) । राम एव श्याम पयोमुक् नीलजलदस्तेन अभिषिक्ते स्नपिते वानर साम्राज्यपदे प्रतिष्ठापिते सतीत्यर्थः । मेघाः जलदाः, तन्महीम् तद्वशवर्तिनीं पृथ्वीं महिषीमिव राज्ञीमिव अभिषेक्तुं स्थिताः प्रवृत्ताः । वर्षाकालः समुज्जृम्भितोऽभूदिति भावः । रूपकोत्प्रेक्षयोः सङ्करः ॥ २० ॥

राम रूप नील मेघ के द्वारा जब सुग्रीव का अभिषेक कर दिया गया तब मेघों ने सुग्रीव की पृथ्वी को अभिषिक्त करना प्रारम्भ कर दिया, मानों वे

---

१. 'तत' इत्यारभ्य 'अभ्यषिञ्चन्' पर्यन्तं क्वचिन्नास्ति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुग्रीव के साथ राज्यारूढ होनेवाली उसकी रानी को अभिषिक्त कर रहे हों ॥२०॥

आर्यार्यान्वेषणा कार्या शरदीत्युक्तसंविदा।
कपीन्द्रेणार्थितो रामः किष्किन्धावर्तनं प्रति ॥ २१ ॥

आर्यार्येति। हे आर्य स्वामिन् श्रीराम! शरदि शरत्समये आर्यायाः सीतायाः अन्वेषणा कार्या कर्त्तव्या, इत्येवं प्रकारेण उक्तसंविदा उक्ता निवेदिता संविद् प्रतिज्ञा येन तथोक्तेन कपीन्द्रेण सुग्रीवेण, रामः किष्किन्धावर्तनं प्रति किष्किन्धाप्रवेशमुद्दिश्य प्रार्थितः। आर्य, अहं शरदि कार्यसौकर्यात्तदानीमेव सीतामन्वेष्यामि, किष्किन्धापुरीं प्रविश्य तावदत्रभवान् वर्षाकालं यापयत्विति रामं सुग्रीवः प्रार्थितवानित्याशयः। ('संविदागूः प्रतिज्ञानम्' इत्यमरः) ॥२१॥

हे आर्य, आर्या (सीता) की खोज शरत्काल में की जायगी—इस तरह सुग्रीव ने अपनी प्रतिज्ञा घोषित कर (बरसात बिताने के लिए) राम से किष्किन्धापुरी में चलने की प्रार्थना की ॥ २१ ॥

न योग्या नगरप्राप्तिरित्युक्तवति राघवे।
सुग्रीवप्रार्थनाप्यासीद्भरतप्रार्थनासमा ॥ २२ ॥

न योग्येति। नगरप्राप्तिः पुरप्रवेशः न योग्या नोचिता पित्रा मम वनवासस्यैवाज्ञप्तत्वादिति भावः। इत्येवं राघवे श्रीरामे उक्तवति सति सुग्रीवप्रार्थना सुग्रीवकृतनगरवासविषया प्रार्थनापि भरतप्रार्थनासमा आसीत् अभवत्। यथा भरत कृता अयोध्यावासप्रार्थना पूर्वं रामेण प्रत्याख्याता तथैव सम्प्रति सुग्रीवकृता किष्किन्धावासप्रार्थनापि प्रत्याख्यातेति तात्पर्यम् ॥ २२ ॥

(पिता ने वन में ही रहने का आदेश दिया है, अतएव) हमारा नगर में प्रवेश करना उचित नहीं है, इस प्रकार श्रीराम के कहने पर सुग्रीव की प्रार्थना भी भरत की प्रार्थना के समान (ही व्यर्थ सिद्ध) हुई ॥२२॥

दत्तार्जुनविकासेन धार्तराष्ट्रान्निरस्यता।
तेन जीमूतकालेन देवकीनन्दनायितम् ॥ २३ ॥

दत्तार्जुनेति! दत्तार्जुन विकासः–दत्तः कृतः अर्जुनस्य अर्जुनाख्यवृक्षस्य विकासः पुष्पितत्वम्, पक्षे विजयादिना पार्थस्य हृदयोल्लासो येन तथाभूतः, धार्तराष्ट्रान्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मलिनचञ्चुचरणहंसविशेषान्, पक्षे धृतराष्ट्रपुत्रान् दुर्योधनादीन्, निरस्यता मानसं प्रस्थापयता, पक्षे विनाशयता, तेन जीमूतकालेन वर्षा समयेन देवकीनन्दनायितम् देवकीनन्दनः श्रीकृष्णः, तेनेवाचरितम् । 'अर्जुनः ककुभे पार्थे'; 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैः लोहिताः सिताः । मलिनैर्मल्लिकाक्षास्ते धार्तराष्ट्राः सितेतरैः ।'' इत्युभयत्राप्यमरः । श्लिष्टविशेषणोपमा ॥ २३ ॥

वह वर्षाकाल अर्जुन वृक्ष को पुष्पयुक्त करता, हंसों को (मानसरोवर की ओर) खदेड़ता हुआ, (विजयादि से) पाण्डुपुत्र अर्जुन को प्रसन्न करने वाले, धृतराष्ट्र के पुत्रों का विनाश करने वाले श्रीकृष्ण की समता कर रहा था ॥२३॥

[1]अस्माकं रूपलक्ष्मीमसकृदुपहसत्यात्मकान्त्या-तदास्तां
भर्तारं नः सुरेन्द्रं किमपि न गणयन्वालिनं द्राग्जघान ।
इत्थं मत्वैव वैरं झटिति घनघटा राघवस्याहवोत्था-
माशामाशाश्च रुद्ध्वास्तनितमिषमहासिंह[2]नादान्वितेनुः ॥२४॥

अस्माकमिति । अस्माकम् मेघानां रूपलक्ष्मीम् आकारशोभाम् श्यामलां कान्तिमिति यावत् । आत्मकान्त्या स्वदेह-कान्त्या असकृत् बहुशः अपहसति तिरस्करोति, तत् अपहसनं तु आस्ताम् दूरे तिष्ठतु—अयमवमानस्तु कथञ्चित् सोढुं शक्यः, समो माना-पमानयोरित्युक्तेरिति भावः । नः अस्माकं भर्तारं स्वामिनं सुरेन्द्रम्, न ह्यस्माकमेव देवानामपि यः स्वामी, तमिन्द्रम् किमपि न गणयन् तृणाय मन्यमानः, [तत्पुत्रम्] वालिनं द्राक् द्रुतम्, सहसेत्यर्थः ('द्राङ् मङ्क्षु सपदि द्रुते' इत्यर्थः)। जघान हतवान्, एवं मत्स्वामिनः सुरेन्द्रस्याप्यवमानं कृतवानिति भावः। इत्थमनेन प्रकारेण वैरम् विरोधं मत्वैव झटिति शीघ्रं घनघटाः मेघवृन्दाति राघवस्य श्री रामस्य आहवोत्थाम् रावणेन सह युद्धाय समुद्भूताम् आशाम् अभिलाषम् उत्साहमिति यावत् । आशाः दिशश्च रुद्ध्वा आवृत्य स्तनित-मिषेण गर्जितच्छलेन महासिंहनादान् वितेनुः चक्रुः । लोकेऽपि कोऽपि जनः स्वशत्रोर्मार्गं निरुध्य सिंहनादं कुर्वन् तं युद्धायाह्वयतीति दृश्यते । ('आशा दिगतितृष्णयोः' इत्यमरः) । सापह्नवोत्प्रेक्षा स्रग्धरावृत्तम् ॥ २४ ॥

---

१. 'तत्र, अस्माकीम्' इति पाठा० । २. नादं ततान' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह राम अपने शरीर की नील कान्ति से हमारी रूपलक्ष्मी का बहुशः उपहास करता रहता है,—यहबात तो दूर रहे, हमारे स्वामी देवेन्द्र को भी कुछ न समझता हुआ इसने (उनके पुत्र) वाली को झट से मार दिया (स्वामी का यह अपमान तो कथमपि सह्य नहीं है) इस तरह मेघों ने राम के साथ वैर ठानकर ही, झट-पट (रावण के साथ) युद्ध की उनकी आशा—अभिलाषा को तथा आशाओं–दिशाओं को अवरुद्ध कर गर्जन के बहाने महासिंहनाद करना प्रारम्भ कर दिया ।।२४।।

उपचितजीवनधारा सत्पथभाजो निरस्तसन्तापाः ।
भूपा इव नवमेघाः पौरस्त्यमहाबलाकुलिताः ॥ २५ ॥

उपचितेति । उपचित जीवनधाराः—उपचिता प्रवृद्धा जीवनधारा जलसंपातो यैस्तथाभूताः, पक्षे उपचिता जीवनधारा दानजलधारा यैस्तथोक्ताः, सर्वेषु दानेषु सङ्कल्पविधौ जलस्य प्रयोगादिति भावः । सत्पथभाजः–सत्पथम् आकाशमार्गं सन्मार्गं च भजन्ते इति तथोक्ताः आकाशसञ्चारिणः पक्षे सन्मार्गगामिनः । निरस्तसन्तापाः निदाघजन्यदाहनिरासकाः, पक्षे प्रजाजनसन्तापनिवारकाः । पौरस्त्यः पूर्वदिग्भवो यो महाबलः वायुस्तेन आकुलिताः व्यग्राः इतस्ततो विकीर्णाः इति यावत्, पक्षे रलयोरभेदात् पौलस्यस्य रावणमहाबलेन समधिकबाहुपराक्रमेण सैन्येन वा आकुलिता विह्वलीकृताः, नवमेघाः नूतनजलधराः, भूपाः तदानीन्तना राजान इव जाता इति शेषः । श्लेषसङ्कीर्णेयमुपमा । आर्या जातिः ।

जिस तरह (उस समय के) दान क्रिया के सम्पादन में जलधार बहाने वाले सत्पथ पर चलने वाले तथा लोगों के सन्ताप को हरने वाले राजा लोग पौलस्त्य रावण की भारी सेना से व्याकुल हो रहे थे उसी तरह से उस वर्षा काल में जलधारा को बढ़ाने वाले, आकाश (सत्पथ) में संचरण करनेवाले, लोगों के सन्ताप को हरने वाले मेघ, पौरस्त्य—पूर्वी वायु के झकोरों से इधर-उधर तितर बितर हो रहे थे ॥ २५ ॥

तेन किल रघुपतिरतिमात्रप्रवृद्धमन्युः शतमन्युशरासनशारतरतारापथां [1]घनरवमुखरितहरिन्मुखाभोगां कदम्बवनपवना[2]कम्पनिराडम्बर-

१. 'घनतरघनरव' इति पाठा० । २. 'कम्पन' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कादम्बकुटुम्बामम्बुदकदम्बकवलिताम्बरां शिलीन्ध्रसंबन्धबन्धुरवसुन्धरां विकचकुटजनिचयकवचितमहारण्यां प्रावृषेण्यां प्रक्रियां प्रेक्षमाणो लक्ष्मणमिदमभाषत ।

तेनेति । तेन वर्षाकालेन, किलेति संभावनायाम् । रघुपतिः श्रीरामचन्द्रः, अतिमात्रप्रवृद्धमन्युः-अतिमात्रम् अत्यर्थं प्रवृद्धः मन्युः क्रोधो यस्य स तथाभूत सन् वर्षाकालस्योद्दीपकत्वाज्जैत्रयात्रा प्रतिबन्धकत्वाच्चेति भावः । ('मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः) । शतमन्युः इन्द्रः, तस्य शरासनेन धनुषा शारतरः समधिकशबलः तारापथः आकाशो यस्यां तां तथोक्ताम्, घनरवैः मेघानां गर्जितैः मुखरितः प्रतिध्वनितः हरिन्मुखाभोगः दिङ्मण्डलविस्तारो यस्यां तां तथोक्ताम्, कदम्बवनपवनस्य नीपवनवायोः आकम्पेन सञ्चारेण निराडम्बरम् स्तब्धम् कादम्बकुटुम्बम् कलहंसमिथुनं यस्यां तां तथोक्ताम् ('नीप प्रियककदम्बाश्च हरिप्रिये', 'कादम्बः कलहंसः स्यात्' इत्युभयत्राप्यमरः) । अम्बुदकदम्बेन जलदवृन्देन कवलितम् निगीर्णं व्याप्तमिति यावत् अम्बरम् नभोमण्डलं यस्यां तां तथोक्ताम् । शिलीन्ध्रसम्बन्धेन कन्दलीकुसुमसंसर्गेण बन्धुरा मनोज्ञा वसुन्धरा पृथिवी यस्यां तां तथोक्ताम् । विकचैः विकसितैः कुटजनिचयैः गिरिमल्लिकापुष्पसमुदयैः कवचितानि आवृतानि महारण्यानि विशालवनानि यस्यां तां तथोक्ताम् । प्रावृषि भवां प्रावृषेण्याम् वर्षाकालिकीं प्रक्रियाम् रीतिं प्रेक्षमाणः पश्यन्, लक्ष्मणम् इदम् वक्ष्यमाणवचनम् अभाषत अवोचत । ('कन्दल्यां च शिलीन्ध्रः स्यात्' इति शब्दार्णवः) । ('कुटजो गिरिमल्लिका' इति हलायुधः) ।

वर्षा काल के आने से [उसके उद्दीपक और यात्रा प्रतिबन्धक होने के कारण] श्री रामजी का क्रोध अत्यन्त बढ़-सा गया । उन्हों ने देखा—इन्द्र धनुष से आकाश रंग-विरंगा हो गया, मेघों की गर्जनध्वनि से दिशाएँ मुखरित हो उठीं, कदम्ब वन की वायु के चलने से कलहंसों के जोड़े विहार का आवेश त्याग कर स्तब्ध हो गये, मेघसमूहों से आकाश विल्कुल भर गया, कुकुरमुत्ता उग आने से पृथिवी मनोज्ञ हो गयी, खिले हुए कुटज (कौरैया) के फूलों से विशाल वन ढँक गये । वर्षा की इस स्थिति को देख कर राम ने लक्ष्मण से ऐसा कहा—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अयं कालः कालप्रमथनगलाभैरभिनवै-
रहंयूनां यूनामपहरति धैर्यं जलधरैः ।
स्मराधारा धारा[1]परिचितजडा वान्ति सहसा
नभस्वन्तः स्वन्तः कथमिव वियोगः परिणमेत् ॥ २६ ॥

अयमिति । अयं वर्तमानः कालः वर्षासमयः, कालप्रमथनः मृत्युञ्जयः हर इत्यर्थः, तस्य गलाभेव कण्ठाभेवाभा येषां तैः, हरकण्ठवन्नीलवर्णैरित्यर्थः । निर्विकारचित्ततया धीरम्मन्यानामित्यर्थः । ('अहंशुभयोयु स्' इति युस् प्रत्ययः) । यूनां युवकानां धैर्यं निर्विकारचित्तत्वम् अपहरति दूरी करोति, तेषामपि मनस्सु कामविकारं जनयतीत्यथः । स्मराधाराः स्मरस्य आधारा आश्रयाः, कामोद्दीपका इति यावत् , धारापरिचितजडाः वारिधारासम्पर्कशीतलाः, नभस्वन्तः वायवः, सहसा अकस्मात् सवेगमित्यर्थः, वान्ति चलन्ति । [एतस्यां स्थितौ] वियोगः प्रियाविरहः कथं केन प्रकारेण, इवेति वाक्यालङ्कारे । शोभनः अन्तः समाप्तिर्यस्य स तथोक्तः, सुखेन समाप्त इत्यर्थः, परिणमेत् जायेत । एतस्यां स्थितौ प्रियावियोगकालः सुखेन गमयितुमशक्य इत्यर्थः । छेकानुप्रासोऽलङ्कारः ॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ २६ ॥

यह वर्षाकाल, मृत्युञ्जय शंकर जी के कण्ठ की तरह नीलवर्ण नूतन मेघों से [अपनी धीरता का] अहंकार रखने वाले युवकों के [भी] धैर्य को विनष्ट कर देता है। काम का आधारभूत [अर्थात् कामोद्दीपक] जलधारा के सम्पर्क से शीतल वायु वेग से चल रहा है [ऐसी स्थिति में] विरह का परिणाम सुखद कैसे हो सकेगा ? ॥ २६ ॥

महासमरसूचकः प्रतिदिशं मनोजन्मनो
मयूरगलकाहलीकलकलः समुज्जृम्भते ।
पयोदमलिने दिने परुषविप्रयोगव्यथां
नरेषु वनितासु वा दधति हन्त के का इति ॥ २७ ॥

महासमरेति । प्रतिदिशम् दिशि दिशि, मनोजन्मनः कामदेवस्य महासमरसूचकः भीषणरणस्य ज्ञापकः, मयूराणां गलाः कण्ठा एव काहल्यः वाद्यविशेषाः तेषां

१. 'परिचय' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कलकलः कोलाहलः समुज्जृम्भते प्रसरति मयूरकण्ठनिःसृतकेकाध्वनिः प्रतिदिशं प्रसरन्ती कामदेवस्य जगदेकवीरस्य प्रवर्त्तमानं भीषणं रणं सूचयतीत्यर्थः। किमिति समुज्जृम्भते तदेवाह—पयोदमलिने मेघश्यामले दिने एषु वर्षादिवसेष्वित्यर्थः। नरेषु पुरुषेषु के, वनितासु स्त्रीषु वा काः, परुषविप्रयोगव्यथाम् दुःसहविरहवेदनां दधति धारयन्ति अनुभवन्तीत्यर्थः। 'केका वाणी मयूरस्य' तत्केका पदं 'के' 'का' इति द्विधाविभज्य प्रश्नवाचकत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। नरेषु के, वनितासु का, इति च यथाक्रममन्वयाद्यथासंख्यालङ्कारः। तयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः। 'वाद्यभाण्डविशेषे तु काहलिः कामलः कलः' इति विश्वः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ २७ ॥

प्रत्येक दिशा में कामदेव के महायुद्ध का सूचक, मयूर के कण्ठरूप काहली नामक वाद्य का शब्द [केका ध्वनि] सुनायी पड़ रहा है। मानों [मयूर द्वारा] पूछा जा रहा है कि पुरुषों में कौन [के] हैं जो दुःसह विरह वेदना झेल रहे हैं और स्त्रियों में कौन [का] है जो कठोर विरह की यातना भोग रही है। खेद का विषय है [हन्त] कि उनका मरण काल आ चुका है ॥२७॥

अम्भोधरोदरविनिर्गतवारिधारा-
सम्मर्दमांसलसमीरसमीर्यमाणैः।
आमोदवीचिनिचयैः कुटजप्रसूनै-
राकाशमेतदवकाशविहीनमासीत् ॥ २८ ॥

अम्भोधरेति। अम्भोधरोदरेभ्यः मेघान्तरालेभ्यः विनिर्गताः निःसृता वारिधाराः तासां संमर्देन संघर्षेण तत्पतनजन्याघातेनेत्यर्थः मांसलः प्रबलः सवेगं वहनशील इत्यर्थः यः समीरः वायुः तेन समीर्यमाणैः कम्प्यमानैः आमोदवीचिनिचयैः सुगन्धपूर्णैः, कुटजप्रसूनैः गिरिमल्लिकापुष्पैः, एतत् परिदृश्यमानम् आकाशम् अवकाशविहीनम् निरन्तरव्याप्तम् आसीत् अभवत्। मेघान्तरालेभ्यः पतन्तीभिर्जलधाराभिराहतेनात एव समधिकवेगेन वहता वायुना कम्प्यमानैः सुगन्धपूर्णैः कुटजपुष्पैराकाशं निरन्तरं व्याप्तमभवदित्यर्थः॥ अतिशयोक्तिः ॥ २८ ॥

मेघों के गर्भ से निकली—तेजी से भूमि की ओर आती जलधारा के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धक्के से अपेक्षाकृत अधिक प्रबल हो गये वायु से झकझोरे जाते हुए सुगन्धपूर्ण कुटज पुष्पों से आकाश एकदम भर गया ॥ २८ ॥

घनश्यामलपत्रस्य व्योमन्यग्रोधशाखिनः ।
प्ररोहा इव लक्ष्यन्ते वारिधारा धरां गताः ॥ २९ ॥

घनश्यामलेति । घनाः मेघा एव श्यामलानि कृष्णवर्णानि पत्राणि यस्य तथोक्तस्य, पक्षे घनवत् मेघवत् श्यामलानि पत्राणि यस्य तस्य, व्योम आकाश एव न्यग्रोधशाखी वटवृक्षः, तस्य ('न्यग्रोधो बहुपाद् वटः' इत्यमरः) धरां गताः भूमिं प्राप्ताः वारिधाराः आकाशान्तरालात्प्रभृति भूमिपर्यन्तं दण्डाकृत्या लम्बमाना जलधाराः प्ररोहाः जटा इव लक्ष्यन्ते प्रतीयन्ते । 'इवे'त्युत्प्रेक्षायाम् ॥ २९ ॥

आकाश के अन्तराल से लेकर पृथिवी तक पहुँची हुई [सीधी] जल धाराएं ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानों मेघरूप श्यामल पत्तों से युक्त आकाशरूप वटवृक्ष की बरोहें लटकी हुई पृथ्वी को छू रही हों ॥ २९ ॥

[1]अम्भःपूरसुसंपूर्णास्तटस्थतरुपुष्पिणीः ।
नदीः पश्येह सौमित्रे प्रवृद्धाश्च दिने दिने ॥ ३० ॥

अम्भः पूरेति । हे सौमित्रे लक्ष्मण ! इह वर्षाकाले, अम्भःपूरेण जलप्रवाहेण सुसंपूर्णाः सम्यक्संभृताः, तटे तिष्ठन्तीति तटस्थाः तीरवर्त्तिनो ये तरवो वृक्षाः, तेषां पुष्पाणि सन्त्यासु इति तथोक्ताः, वायुपातितकुसुमान्विताः, दिने दिने प्रतिदिनमुत्तरोत्तरं प्रवृद्धाः नदीः पश्य ॥ ३० ॥

हे लक्ष्मण, जल से खूब भरी हुई, तटवर्ती वृक्षों के गिरे हुए पुष्पों से व्याप्त और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई इन नदियों को देखो ॥ ३० ॥

अम्भोधिपाने सलिलेन साकमापीतमौर्वाग्निशिखाकलापम् ।
तप्तोदरा वारिधरा वमन्ति विद्युल्लतोन्मेषमिषेण नूनम् ॥ ३१ ॥

अम्भोधिपान इति । अम्भोधिपाने समुद्रजलपानवेलायाम्, [सहसा] सलिले साकं जलेन सह आपीतम् कुक्षौ कृतम् और्वाग्निशिखाकलापम् वडवानलज्वालाजालम्, तप्तोदराः सन्तप्तकुक्षिकुहराः वारिधराः मेघाः, नूनमित्युत्प्रे-

---

१. अयं श्लोकः क्वचिन्न विद्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्षायाम्, विद्युल्लतोन्मेषमिषेण तडिद्विद्योतव्याजेन वमन्ति उद्गिरन्ति निरस्यन्तीत्यर्थः। लक्षणयाऽत्र वमनस्य निरसनार्थकतया चमत्काराधायकत्वान्न जुगुप्सा व्यञ्जिकाश्लीलता 'निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादिगौणवृत्तिव्यपाश्रयम्। अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते॥' इत्युक्तेः। समुद्रजलं पिबन्त इमे मेघाः पीयमानेन जलेन सह सहसा वडवानलज्वालाजालमपि न्यगिरन्, तेनोदरे दाहे जाते सति विद्युल्लतोन्मेषव्याजेन तदेव वडवानलज्वालाज्वालं वमन्तीत्याशयः। अत्रोत्प्रेक्षापह्नुत्योः संकरः॥ ३१॥

समुद्र के जल को पीते समय मेघों ने बडवानल की ज्वालाओं को भी [शीघ्रता में] जल के साथ निगल लिया, अब उससे उनके उदर में जब दाह उत्पन्न होने लगा तो वे [अपने को स्वस्थ करने के लिए] मानों विद्युत् की चमक के बहाने उन्हीं ज्वालाओं को उगल रहे हैं॥ ३१॥

इत्थं प्रवृत्तेषु घनदिनेषु दाशरथिना कथमपि नीतेषु तदाकार[1]कान्ति गमितमिव शनैःशनैर्मेघमण्डलं पाण्डुरमभूत्।

इत्थमिति। इत्थमुक्तप्रकारेण प्रवृत्तेषु प्रक्रान्तेषु घनदिनेषु वर्षादिवसेषु दाशरथिना रामेण कथमपि केनापिप्रकारेण महता कृच्छ्रेणेत्यर्थः, नीतेषु गमितेषु सत्सु अत एव तदाकारकान्तिम् श्रीरामशरीरशोभाम्, विरहजनितपाण्डुरत्वमित्यर्थः। गमितम् प्रापितमिव मेघमण्डलम्, शनैः शनैः दिनक्रमेण पाण्डुरम् पाण्डुवर्णम् अभूत्। शरदागमे मेघमण्डलं पाण्डुरमजायत, मन्ये विरहपाण्डुरस्य रामस्यानुकरोतीत्याशयः। उत्प्रेक्षा।

इस तरह प्रकट हुए वर्षा के दिनों को राम ने किसी तरह बड़े कष्ट से व्यतीत किया। अब धीरे-धीरे उत्तरोत्तर मेघमण्डल पाण्डुर [श्वेत-पीत वर्ण का] होने लगा, मानों [वर्षा ने अपने वियोग से] उसे भी [विरही] राम के शरीर की (पाण्डुर) प्रभा को प्राप्त करा दिया हो।

तस्य [2]चापव्यापारवेलायां न संनिधातव्यमित्यन्त[3]रिक्षादन्तर्हितं किल पाकशासनशरासनम्।

१. 'कान्तिविजितमिव' इति पाठा०। २. 'चापस्य' इति पाठा०।
३. 'अन्तरिक्षान्तरात्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्येति । [तदा] तस्य श्रीरामस्य चापव्यापारवेलायाम् शरासनाकर्षणसमये न संनिधातव्यम् न सन्निहितेन भाव्यम् इति हेतोः पाकशासनशरासनम् इन्द्रधनुः अन्तरिक्षात् आकाशात् अन्तर्हितम् अदृश्यमभूत् किलेति संभावनायाम् । अत एवोत्प्रेक्षा । महतो रामशरासनस्य व्यापारकाले तुच्छस्येन्द्रधनुषोऽवस्थानस्यायुक्ततया तदानीमिन्द्रधनुरदृश्यतां गतमिति भावः ।

जब राम के धनुष के चलने का समय आ गया है तब हमारी उपस्थिति उचित नहीं है—मानों ऐसा सोच कर इन्द्र धनुष आकाश से गायब हो गया ।

रघुपतिचापघोषसमयो भवितेति [1]किल
व्युपरतमुद्भटं घनघटाजनितं स्तनितम् ।
श्वसितमरुद्भिरस्य[2] विजितः किल शान्तिमगात्
परिचितकेतकीकुटजनीपवनः पवनः ॥ ३२ ॥

रघुपतीति । रघुपतिचापघोषसमयः रामधनुष्टङ्कारकालः भविता भविष्यति इति हेतोः, किलेति संभावनायामित्युत्प्रेक्षा । उद्भटम् उत्कृष्टमत्यन्तगम्भीरमित्यर्थः घनघटाजनितम् मेघवृन्दकृतं स्तनितं गर्जितं व्युपरतम् शान्तम्, तथा अस्य प्रियावियुक्तस्य रामस्य श्वासमरुद्भिः दीर्घनिःश्वासमारुतैः विजितः पराभूतः किलेति संभावनायाम्, परिचितानि केतकीकुटजनीपवनानि येन स तथोक्तः केतकीगिरिमल्लिकाकदम्बवनेषु भ्रमणशीलः इत्यर्थः, पवनः वायुः शान्तिमगात् व्युपरतोऽभूत् । तत्कुटकं वृत्तम् । 'हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु तत्कुटकम्' इति लक्षणात् ॥ ३२ ॥

राम जी के धनुष्टङ्कार का समय आ रहा है—मानों इसी कारण से मेघों का गम्भीर गर्जन रुक गया और मानों उनके दीर्घनिःश्वास वायु से पराभूत होकर केतकी-कुटज-कदम्ब के वनों से होकर बहने वाला वायु शान्त हो गया ।

तापोपशान्तिनटनात् कृतलोकहर्षा
वर्षानटी गगनरङ्गतलात् प्रयाता ।
अम्भोदवाद्यमचिरेण शशाम सर्वं
निर्वापिताश्च सहसैव तडित्प्रदीपाः ॥ ३३ ॥

---

१. 'मिवा व्युपरत' इति पाठा० । २. 'अत्र' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तापेति । वर्षानटी वर्षारूपनर्तकी तापोपशान्तिनटनात् सन्तापोपशमरूप-नृत्यात् कृतः जनितः लोकानां हर्षो यया सा तादृशी सती, गगनरङ्गतलात् आकाशरूपनृत्यभूमितः प्रयाता अपगता अभूत् । [तथा च तस्यामपगतायां] सर्वम् समस्तम् अम्भोदवाद्यम् मेघरूपमृदङ्गादिवाद्ययन्त्रम् अचिरेण सहसा एक पदे एव शशाम मौनं जगाम, तडित्प्रदीपाः विद्युद्रूपप्रदीपाश्च निर्वापिताः । रूपकालङ्कारः । वसन्ततिलकं-वृत्तम् ॥ ३३ ॥

वर्षारूपा नर्तकी तापोपशमन रूप अपने नृत्य से लोगों को प्रसन्न कर आकाश रूप नृत्यशाला से चली गयी । (उसके चले जाने पर कोई आवश्य-कता न रहने से) मेघरूप वाद्य बन्द हो गया और विद्युद्रूप दीप तुरन्त बुझा दिये गये ॥ ३३ ॥

क्रमेण वाहिनीजातं सकलं भाविनीं वानरवाहिनीपूर्तिमसहमान-मिव तनिमानमभजत ।

क्रमेणेति । क्रमेण दिनक्रमेण उत्तरोत्तरमित्यर्थः, सकलं समग्रं वाहिनी-जातम् नदीसमूहः, भाविनीम् भविष्यन्तीम् वानरवाहिनी कपिसेना तस्याः पूर्तिम् समग्रताम् असहमानमिव तनिमानम् कृशताम् अभजत उपगतम् । वाहि-नीत्वसाजात्यात् वाहिनीजातस्य (नदीसमूहस्य) वानरवाहिनीपूर्त्यसहनेन कृशताप्राप्तिर्युक्तैवेति भावः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

वाहिनी जात—नदियाँ, वानरवाहिनी—वानर सेना की भाविनी समृद्धि को मानों (वाहिनीत्वरूप जाति की समानता के कारण, ईर्ष्यावश) न सहती हुई, (ईर्ष्या के सन्ताप से जलती हुई) धीरे-धीरे दुर्बल होने लगीं—सूखने लगीं ।

[1]तथा दुर्दिनापाये लङ्कायामपि राजहंसनिःशङ्कसंचारो [2]भविष्य-तीति मत्वा किल भूम्यामपि समजनि राजहंसनिःशङ्कसंचारः ।

तथेति । तथा च दुर्दिनापाये वर्षाकालापगमे, भाग्योदये च । लङ्कायामपि राजहंसयोः रघुकुलोद्भवत्वात् राजसु श्रेष्ठयो रामलक्ष्मणयोः निःशङ्कसञ्चारः

---

१. 'तथा' इति नास्ति क्वचित्, 'तदा' इति पाठा० ।

२. 'संभविष्यति' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्भयभ्रमणं भविष्यति इति मत्वा, किलेत्युत्प्रेक्षायाम्, भूम्यामपि राजहंसानां पक्षिविशेषाणां निःशङ्कसञ्चारः समजनि अभूत् । उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिन) बीत जाने पर रघुकुल भूषण राजश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण लंका में निर्भय सञ्चरण करेंगे, मानों यह समझ कर ही कलहंस लोग पृथ्वी पर निर्भय भ्रमण करने लगे ।

एवं प्रोषितायामपि प्रोषितजनशेमुषो मुषि प्रावृषि ।

एवमिति । एवम् अनेन प्रकारेण प्रोषितजनशेमुषीमुषि प्रोषितजनानाम् प्रवासिनां जनानां विरहिणामित्यर्थः, शेमुषीम् बुद्धिम् धैर्यमिति यावत् मुष्णाति हरतीति तथोक्तायां प्रावृषि वर्षाकाले प्रोषितायाम् अपगतायां सत्यामपि । ('बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः' इत्यमरः) ।

इस प्रकार प्रवासी—विरही जनों के धैर्य को हरने वाली वर्षाऋतु के बीत जाने पर भी—

कामक्षिप्तपृषत्कभिन्नहृदयच्छिद्रप्रणालीगल-
न्मैत्रीसारलघौ [1]प्रतिश्रवभरं निर्वोढुमप्यक्षमे
सुग्रीवे चिर[2]संस्थितां शमयितुं रागान्धतां तादृशीं
किष्किन्धां द्रुतमाप कोपकलुषो रामाज्ञया लक्ष्मणः ।।३४।।

कामेति । कामेन मन्मथेन क्षिप्तैः प्रहृतैः पृषत्कैः बाणैः भिन्नं विदीर्णं हृदयम् मानसं तत्र यत् छिद्रं बाणकृतं रन्ध्रम् एव प्रणाली जलनिर्गममार्गः ततः गलन् निर्गच्छन् मैत्रीसारः सख्यस्थिरांशो यस्य स च अत एव लघुः निःसारः तुच्छश्च, तस्मिन् । ('पृषत्कबाणविशिखा' इत्यमरः) कामकेलिपरायणतया विस्मृतसख्य इत्यर्थः । प्रतिश्रवभरम् प्रतिश्रवः सीतान्वेषणलक्षणा प्रतिज्ञा तस्य भरम् भारम् निर्वोढुम् पूरयितुमपि अक्षमे असमर्थे सुग्रीवे सति, चिरसंस्थिताम् चिरकालादारभ्याद्यावधि प्रवर्तमानां तादृशीम् अवर्णनीयाम् रागान्धताम् रागेण कामासक्त्या अन्धताम् अविवेकिताम् , शमयितुं दूरीकर्तुं रामाज्ञा रामस्यादेशेन कोपकलुषः सुग्रीवकृतोपेक्षया कोपाक्रान्तमानसः लक्ष्मणः द्रुतम् शीघ्रं किष्किन्धाम् आप आससाद । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। ३४ ।।

---

१. 'प्रतिश्रुतगिरम्' इति पाठा० । २. 'संश्रितम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काम के प्रहृत बाणों से विदीर्ण हृदय के छिद्रों की राह से मैत्री रूप सार तत्त्व निकल जाने से सुग्रीव निःसार और क्षुद्र हो गया था, वह पूर्व की की गयी प्रतिज्ञा के निर्वाह में असमर्थ हो रहा था, तब श्रीराम की आज्ञा से चिरस्थित रागान्धता को दूर करने के लिए लक्ष्मण क्रोधाविष्ट होकर किष्किन्धा पहुँचे ॥ ३४ ॥

[1]ततः सौमित्रि[2]रतिरुष्टः प्रविष्ट इत्यङ्गदेन विज्ञापितोऽप्यनङ्गसंगर-संगतपरिश्रमादजातजागरः सुग्रीवस्तद्दर्शन[3]त्रासंचलितसकलप्लवंग-बल[4]किलकिलायितेन प्रबुद्धः सचिवयोः प्लक्षप्रभावनाम्नोः प्रभावेण प्रकृतिं प्रपेदे ।

तत इति । ततः लक्ष्मणस्य किष्किन्धागमनानन्तरम्, सौमित्रिः लक्ष्मणः, अतिरुष्टः समधिकरोषाविष्टः सन् प्रविष्टः किष्किन्धां प्रत्यागतः इत्येवं प्रकारेण अङ्गदेन वालिपुत्रेण विज्ञापितः सूचितोऽति अनङ्गसङ्गरः कामकेलियुद्धम् तस्मिन् सङ्गतः प्राप्तः यः परिश्रमः खेदस्तस्माद्धेतोः अजातजागरः अनुत्पन्न-प्रबोधः अप्रबुद्ध इत्यर्थः सुग्रीवः, तस्य लक्ष्मणस्य दर्शनात् अवलोकनात् यः त्रासः भयं तेन सञ्चलिताः सम्भ्रान्ताः सकलाः समस्ता ये प्लवङ्गाः वानरास्तेषां बलानां किलकिलायितेन किलकिलात्मकशब्देन प्रबुद्धः जागरितः प्लक्षप्रभाव-नाम्नोः सचिवयोः स्वमन्त्रिणोः प्रभावेण उद्वेगनिवर्तकवचनसामर्थ्येन प्रकृतिं स्वास्थ्यं प्रपेदे प्राप । अङ्गदेन लक्ष्मणस्य किष्किन्धाप्रवेशं विज्ञापितोऽपि सुग्रीवः कामकेलिजनितालस्यवशान्न प्रबोधं प्राप्तः, परतो लक्ष्मणं कुपितं दृष्ट्वा भयेन किलकिलाशब्दं कुर्वतां वानराणां तादृशैः शब्दैः प्रबुद्धो भीतोऽजायत, किन्तु तस्य प्लक्षप्रभावनामानौ मन्त्रिणौ सान्त्वनवचनैस्तं समाश्वस्तमकुरुतामि त्याशयः ।

इसके बाद अङ्गद ने सुग्रीव से जाकर बताया कि लक्ष्मण जी अत्यन्त क्रुद्ध होकर किष्किन्धा में पहुँच चुके हैं किन्तु कामकेलि की थकावट के कारण उसकी नींद नहीं टूटी । बाद में लक्ष्मण को देख कर भय के कारण जब वानर किलकिला शब्द करने लगे तब कहीं सुग्रीव जगा [और घबरा उठा] किन्तु

---

१. तत्र' इति पाठा० । २. 'अतीव रुष्टः' इति पाठा० ।
३. 'आतत्रासंकुलित' इति पाठा० । ४. 'कुल' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसके प्लक्ष और प्रभाव नामक मन्त्रियों ने [सान्त्वनावचनों से] उसे प्रकृतिस्थ किया।

[१]तस्मिन्सुग्रीवे राघवरोषस्य कारणं निरूपयति सति [२]सद्य एव मुखरित[३]हरिन्मुखोऽभू[४]ल्लक्ष्मणस्य ज्याघोषः।

तस्मिन्निति। तस्मिन् प्रकृतिमापन्ने सुग्रीवे राघवरोषस्य कारणम् निरूपयति सति, कथं राघवः कुपितो भवेदिति विभावयत्येव, सद्यः तत्क्षणमेव लक्ष्मणस्य ज्याघोषः धनुष्टङ्कारः मुखरितहरिन्मुखः मुखरितानि प्रतिध्वनितानि हरिन्मुखानि दिगन्तरालानि येन तादृशः अभूत् अजायत।

सुग्रीव, राम के कोप का क्या कारण हो सकता है—इस पर विचार ही कर रहा था, तबतक दिशाओं को मुखरित करता हुआ, सहसा लक्ष्मण का धनुष्टङ्कार हो गया।

तत्रासनं द्रुतमपास्य पतिः कपीनां
तत्रास नम्रवदनो घनचापघोषात्।
संतोष[५]मोक्षमिव भूरि भजन्भुजंगः
संतापनाशपिशुनात्तरुणाभ्रघोषात्॥ ३५॥

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये सन्तापस्य ग्रीष्मकृततापस्य नाशः अवसानम् तस्य पिशुनः सूचकः, तस्मात्, तरुणाभ्रघोषात् नवजलधरगर्जनात् भूरि अत्यन्तम् सन्तोषमोक्षम् आनन्दविघातम् भजन् प्राप्नुवन् भुजङ्गः सर्प इव, घनचापघोषात् महाधनुष्टङ्कारात् भूरि भूयिष्ठं यथा तथा सन्तोषमोक्षम् आनन्दावसानं भजन् आसादयन् द्रुतम् सवेगं कपीनां पतिः सुग्रीवः आसनम् अपास्य त्यक्त्वा, आसानादुत्थायेत्यर्थः, नम्रवदनः किं कर्त्तव्यताविमूढत्वेनावनतमुखः सन् तत्रास भयमाससाद। यथा नवमेघगर्जितं श्रुत्वा कश्चित् सर्पो मयूरसुखदकालः समागतस्तथाऽहमचिरेणैव मयूरभक्ष्यो भवेयमिति विचिन्त्य स्वानन्दं परित्यज्य भयमाप्नोति तथैव सुग्रीवो लक्ष्मणधनुष्टङ्कारं श्रुत्वा साकल्येन स्वानन्दावसान-

---

१. 'ततस्तस्मिन्' इति पाठा०।
२. 'सद्य एव' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'दिङ्मुखः' इति पाठा०।
४. 'लक्ष्मणज्याघोषः' इति पाठा०।
५. 'पोषम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माप्नुवन् आसनं परित्यज्य भयेनाकम्पतेत्याशयः । उपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३५ ॥

[ग्रीष्म कृत] सन्ताप के अन्त की सूचना देने वाले नूतन मेघ के शब्द से [साँपों को खाने वाले मयूरों के नर्तन काल की सम्भावना कर] साँप जैसे पूर्णरूप से आनन्दविघात को प्राप्त कर भयभीत हो उठता है, वैसे ही सुग्रीव लक्ष्मण के गम्भीर धनुष्टङ्कार से पूर्णरूप से अपने आनन्द के विघात का अनुभव करता हुआ, आसन से उठकर, अवनत मुख हो, त्रस्त हो उठा ॥ ३५ ॥

[1]तत्र प्रतिश्रुत[2]कार्यप्रोत्साहनाय [3]कुपितेन भ्राता [4]प्रेषित इति मारुतिना धार्यमाणधैर्यः सुग्रीवः सौमित्रिं सान्त्वयितुं तारां प्रेषितवान् ।

तत्रेति । तत्र तस्मिन् काले प्रतिश्रुतस्य प्रतिज्ञातस्य सीतान्वेषणरूप कार्यस्य प्रोत्साहनाय प्रवर्तनाय कुपितेन त्वत्कृतविलम्बाद्रुष्टेन रामेण भ्राता लक्ष्मणः प्रेषितः प्रहितः । इत्येवं प्रकारेण मारुतिना हनूमता धार्यमाणधैर्यः प्रकृतिं प्रापितः सुग्रीवः सौमित्रम् लक्ष्मणं सान्त्वयितुम् सामवचनैः प्रकृतिस्थं कर्तुम्' ताराम् पूर्वं वालिनः सम्प्रति स्वस्य वधूं प्रेषितवान् , महात्मनां स्त्रीषु कोपोद्बोधाभावादिति भावः ।

उस समय हनूमान् ने सुग्रीव से कहा—'आप के द्वारा [सीता जी के अन्वेषण रूप] कार्य की जो प्रतिज्ञा की गयी थी उसी को प्रोत्साहन देने के लिए [आप द्वारा विलम्ब किये जाने से] रुष्ट होकर राम ने अपने भाई लक्ष्मण को तुम्हारे पास भेजा है ।' हनूमान के इस कथन से सुग्रीव को कुछ धीरता बँधी और उसने लक्ष्मण को शान्त करने के लिए तारा को भेजा ।

द्राग्वारुणीभजननिह्नुतराजतेजो
निष्क्रान्ततारमुपशान्ततमोविकारम् ।
पूर्वाशया विशति सत्पथभाजि मित्रे
सत्यं निशान्तसममस्य निशान्तमासीत् ॥ ३६ ॥

---

१. 'ततः' इति पाठा० । २. 'कार्यस्य' इति पाठा० ।
३. 'प्रणयकुपितेन' इति पाठा० । ४. 'प्रेषित एव इति' पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्रागिति। द्राक् झटिति, वारुणी सुरा तस्या भजनेन सेवनेन निह्नुतं तिरोहितं राज्ञः प्रभोः सुग्रीवस्य तेजः प्रतापो यत्र तत्तथोक्तम्,—पक्षे वारुणी प्रतीची दिक् तस्या भजनेन आश्रयेण प्रतीच्यां दिशि गमनेनेत्यर्थः निह्नुतमन्तर्हितं राज्ञः चन्द्रमसः, तेजः कान्तिः प्रकाश इति यावत्, यत्र तत्तथाभूतम्। ('सुरा प्रत्यक् च वारुणी' इत्यमरः। 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे' इति विश्वः)। निष्क्रान्ततारम्—निष्क्रान्ता निर्गता तारा सुग्रीवभार्या यस्मात्तत्तथोक्तम्, पक्षे निष्क्रान्ताः अस्तंगताः ताराः नक्षत्राणि यत्र तत्तथोक्तम्। उपशान्ततमोविकारम्—उपशान्तः निवृत्तः तमोविकारः तमोविकाररूपमोहो यत्र तत्तथोक्तम्, पक्षे उपशान्तः विनष्टः तमोविकारः अन्धकारः प्रसरो यत्र तत्तथोक्तम्। सत्पथभाजि—सन्मार्गचारिणि, पक्षे आकाशमार्गचारिणि, मित्रे कृतसख्ये लक्ष्मणे, पक्षे सूर्ये ('मित्रं सुहृदि मित्रोऽर्कः' इति विश्वः) पूर्वाशया पूर्वप्रतिज्ञातार्थपूर्तिकाङ्क्षया, पक्षे पूर्वदिशा विशति सति। सत्यं यथार्थम्। अस्य सुग्रीवस्य निशान्तम् गृहम् ('निशान्तं गृहशान्तयोः' इति विश्वः) निशान्तसमम् निशायाः रजन्याः अन्तः अवसानम् प्रभातमित्यर्थः। तत्समम् आसीत्। यथाऽऽकाशमार्गेण पूर्वदिशाक्रमेण सूर्ये समागच्छति निशावसानसमयः पश्चिमदिग्भजनेनान्तर्हितचन्द्रप्रकाशः अपगतनक्षत्रः शान्तान्धकारश्च जायते तथैव सन्मार्गवर्तिनि कृतसख्यबन्धे सुहृदिलक्ष्मणे पूर्वप्रतिज्ञातार्थपूर्तिकामनया सुग्रीवगृहं प्रविशति सति तद्गृहं मद्यपसुग्रीव प्रतापविरहितं तारारूपवनिताशून्यम्, उपशान्तमोहविकारम्, अजायतेत्याशयः श्लिष्टविशेषणेयमुपमा। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३६॥

सन्मार्ग चारी लक्ष्मण रूप मित्र के, पूर्वप्रतिज्ञात सीतान्वेषण रूप कार्य की आशा से आने पर सुग्रीव का निशान्त—भवन सचमुच, सत्पथ—आकाश मार्ग से संचरण करने वाले, पूर्वदिशा से आये हुए सूर्य से सुशोभित प्रभात तुल्य हो गया। जैसे प्रभात के समय वारुणी-पश्चिम दिशा में चले जाने से राजा-चन्द्रमा का तेज-प्रकाश अन्तर्हित हो जाता है, वैसे ही उस घर में वारुणी-मदिरा के सेवन से राजा-सुग्रीव का तेज जाता रहा। जैसे प्रभात के समय तारागण अस्तंगत हो जाते हैं, वैसे ही सुग्रीव की पत्नी तारा के निकल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाने से वह घर तारा-विहीन हो गया और जैसे प्रभात के समय अन्धकार मिट जाता है वैसे ही उस घर से तमोगुण का विकार मोह लुप्त हो गया ॥३६॥

सा तु रामा रामानुजमासाद्य [1]चैवमवोचत ।

सेति । सा तु रामा सुन्दरी तारा रामानुजम् लक्ष्मणम् आसाद्य प्राप्य च एवम् वक्ष्यमाण-प्रकारेण अवोचत अभाषत । ('सुन्दरी रमणी रामा' इत्यमरः) ।

वह सुन्दरी तारा लक्ष्मण के पास पहुँच कर इस प्रकार बोली—

प्राचीनं व्यसनं सुरेन्द्रतनयाज्जातं वने भ्राम्यतः
सुग्रीवस्य निराकृतं खररिपोर्बाणेन सालच्छिदा ।
अद्यास्य व्यसनं तु पञ्चविशिखादासीदुपेन्द्रात्मजात्
सौमित्रे ! तदपि प्रशान्तमभवज्ज्याघोषमात्रेण ते ॥ ३७ ॥

प्राचीनमिति । सुरेन्द्रतनयात् इन्द्रपुत्राद् वालिनः जातम् उत्पन्नम् अत एव वने कानने भ्राम्यतः संचरतः सुग्रीवस्य प्राचीनं पुरातनं व्यसनं विपत् ('व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे' इत्यमरः) । खररिपोः खरासुर-विनाशकस्य श्रीरामस्य सालच्छिदा सप्तसालविदारकेण बाणेन निराकृतम् अपसारितम् , वालिनो वधादिति भावः । अद्य सम्प्रति तु उपेन्द्रात्मजात्—उपेन्द्रः विष्णुः कृष्णरूपः, तस्य आत्मजः पुत्रः प्रद्युम्नरूपेणावतीर्णः तस्मात् पञ्चविशिखात् पञ्चशरात् कामदेवात् (जातं) व्यसनम् अस्य सुग्रीवस्य आसीत् , तद् कामजव्यसनमपि हे सौमित्रे ! लक्ष्मण ! ते तव ज्याघोषमात्रेण धनुष्टङ्कारमात्रेणैव प्रशान्तमपगतमभवत् । इत्थमयं सुग्रीवः सर्वथा निर्व्य-सनो जातः, सम्प्रति सम्यक् स्वस्थतयाऽविलम्बमेव भवत्कार्यमेव साधयितुं प्रवर्त्तते, तदलं तत्र कोपेनेति तारोक्तेराशयः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥३७॥

पहिले वन में घूमने वाले सुग्रीव को इन्द्रपुत्र वाली से व्यसन (विपत्ति) था, तब उसे खरारि राम के, सात साल वृक्षों को भेदने वाले बाण ने [वाली को मार कर] दूर किया था और इस समय इसे उपेन्द्र [अर्थात् इन्द्र के

१. 'चैवमवोचत्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुज विष्णु] के [प्रद्युम्न रूप में अवतीर्ण होने के कारण] पुत्र रूप पञ्चशर कामदेव से व्यसन हो गया था, हे सुमित्रानन्दन ! उस व्यसन को भी [राम के अनुज] आप के धनुष्टङ्कार मात्र ने दूर कर दिया ॥ ३७ ॥

तदनन्तरं तारा[1]सान्त्ववचनप्रशान्तकोपेन सौमित्रिणा साकं तपनतनयः सविनयमाश्रित्य दाशरथिं प्राञ्जलिर्व्यजिज्ञपत् ।

तदनन्तरमिति । तदनन्तरम् , तारायाः सान्त्वचनैः सामवाक्यैः प्रशान्तः अपगतः कोपः क्रोधो यस्य तेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन साकम् सह तपनतनयः सूर्यनन्दनः सुग्रीवः सविनयं दाशरथिम् रामम् आश्रित्य पुरतः उपस्थाय प्राञ्जलिः बद्धाञ्जलिः सन् व्यजिज्ञपत् निवेदितवान् ।

इसके बाद तारा के सामवचनों से लक्ष्मण का क्रोध जाता रहा और उनके साथ स्वयं राम की सेवा में सविनय उपस्थित होकर सुग्रीव ने हाथ जोड़ कर राम से इस प्रकार निवेदन किया—

देव ! कपिबल[2]मखिलकुलाचलनिलयमनिलतनयेनाहूतं, पुरुहूत इव पुलोमजाप[3]हारिणमनुह्लादं रावणं रणे नि[4]हनिष्यसीति ।

देवेति । हे देव स्वामिन् ! अखिलकुलाचलनिलयम् महेन्द्रादि-सकल-कुल-पर्वतेषु वसत् कपिबलम् वानरसैन्यम् अनिलतनयेन पवनपुत्रेण हनूमता आहूतम् । अत एव पुलोमजापहारिणम् – पुलोमजाम् शचीमपहरतीति पुलोमजापहारी तम् ('पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमरः) अनुह्लादम् तदभिधानमसुरविशेषम् , पुरुहूतः इन्द्रः इवेत्युपमा । [सीतापहारिणम्] रावणं रणे संग्रामे निहनिष्यसि व्यापादयिष्यसीत्येवं व्यजिज्ञपदिति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः । इन्द्रेणेप्सितां पौलोमीं तत्पितुः पुलोम्नोऽनुमत्याऽनुह्लादो जहार । इन्द्रस्त्वनुमन्तारं पुलोमानमनुह्लादमपहर्तारं च निहत्य तां प्रत्यानीतवानिति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया ।

---

१. 'सान्त्वनप्रशान्त' इति पाठा० ।
२. 'अखिलमखिल इति । पाठा० ।
३. 'हरिणं बालाभिधानम्' इति पाठा० ।
४. 'हनिष्यतीति' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देव, महेन्द्रादि सकल कुलपर्वतों पर रहने वाली कपि सेना को पवनपुत्र हनूमान् ने बुला भेजा है, आप [शीघ्र ही] रावण को, इन्द्राणी के अपहर्ता अनुह्लाद को इन्द्र की तरह, युद्ध में मारेंगे।

ततः—

ककुभि कुलिशपाणेर्मैथिलीं तां विचेतुं
विनतमथ दिशायां मारुतिं प्रेतभर्तुः।
वरुणदिशि सुषेणं यक्षराजाञ्चितायां
हरिति शतबलिं च प्राहिणोद्वानरेन्द्रः ॥ ३८ ॥

ततः, ककुभीति। ततः तदनन्तरम्, वानरेन्द्रः कपीशः सुग्रीवः, ताम् अपहृतां चरित्रेण विश्वविख्यातां मैथिलीम् वैदेहीं विचेतुम् अन्वेष्टुम् कुलिशपाणेः इन्द्रस्य ककुभि दिशि प्राच्यामित्यर्थः, विनतम् विनतनामानं कपिसेनाधिपतिम्, अथ प्रेतभर्तुः यमराजस्य दिशायाम् दक्षिणदिशि मारुतिम् हनूमन्तम्, वरुणदिशि पश्चिमदिशायाम् सुषेणम् सुषेणनामानं वानरविशेषं ताराया: पितरं स्वश्वशुरम्, यक्षराजाञ्चितायाम् कुबेराधिष्ठितायां हरिति उत्तरदिशि शतबलिम् तदाख्यं वानरं च प्राहिणोत् प्रेषितवान्। मालिनी वृत्तम् ॥ ३८ ॥

तदनन्तर वानरेन्द्र सुग्रीव ने सीता को खोज करने के लिए इन्द्र की दिशा-पूर्वदिशा में विनत को, यमराज की दिशा-दक्षिण में हनूमान् को, वरुण की दिशा-पश्चिम में सुषेण को और कुबेर की दिशा-उत्तर में शतबलि नामक वानर को भेजा ॥ ३८ ॥

तदनु दिनेषु केषुचिद्गतेषु मासातिपातनासहो नियतमुदग्रदण्डः सुग्रीव इति सत्वरमित[1]रदिगन्तरप्रेषितेषु[2]प्रतिनिवृत्तेषु प्लवङ्गबलेषु पितृपतिहरिति प्रेषिता मारुतिजाम्बवदङ्गदनलनीलप्रभृतयोऽप्यलब्धसीतोपलब्धयस्तनयनाशकुपित[3]कण्डुशापनिःशेषितचराचरम[4]परिचित-

१. 'इतरेषु' इति पाठा०।
२. निवृत्तेषु' इति पाठा०।
३. 'कण्व' इति पाठा०।
४. 'अपरचितचारप्रान्तारम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चारप्रान्तरं कान्तारं [1]क्रान्त्वा कान्तारे कस्मिंश्चिदसुरमेकं निरीक्ष्य रक्षःपतिरिति [2]बुद्ध्वा युद्धसंनद्धा बभूवुः ।

तदन्विति । तदनु सीतान्वेणाय तत्तद्दिक्षु सुग्रीवेण वानराणां प्रेषणानन्तरम्, केषुचित् कतिपयेषु दिनेषु दिवसेषु गतेषु व्यतीतेषु मासातिपातनासहः—ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम' इति प्रेषणसमये मासमात्रस्यावधेः कृतत्वान्मासातिक्रमणासहिष्णुः, नियतम् निश्चितम् उदग्रदण्डः तीव्रशासनः ('दण्डोऽस्त्री शासने राज्ञः' इति वैजयन्ती) सुग्रीवः इति (मत्वा) इतरदिगन्तरप्रेषितेषु दक्षिणदिगतिरिक्तेषु दिक्षु प्रहितेषु प्लवङ्गबलेषु कपिसैन्येषु सत्वरम् शीघ्रम् प्रतिनिवृत्तेषु सीतावृत्तान्तमनधिगम्यैव प्रत्यागतेषु सत्सु पितृपतिहरिति यमराजदिशि दक्षिणस्यां दिशीत्यर्थः, प्रेषिताः प्रहिताः मारुतिः हनूमान्, जाम्बवान्, अङ्गदः, नलः नीलः, ते प्रभृतयो येषां ते तथोक्ताः अपि अलब्धसीतोपलब्धयः अनधिगतसीतावृत्तान्ताः, तनयनाशेन पुत्रमरणेन कुपितस्य कण्डोः कण्डुनाम्नो महर्षेः शापेन निःशेषिताः समापिताः चराचराः जङ्गमस्थावराः यत्र तादृशम्, अपरिचितः अनभ्यस्तः चारः लोकसञ्चारः यत्र तादृशं प्रान्तरं जनशून्यमार्गः यत्र तत्तथोक्तम् अतिदुर्गममित्यर्थः, कान्तारम् वनं क्रान्त्वा अतिक्रम्य कस्मिंश्चित् कान्तारे वने एकम् कञ्चित् असुरं निरीक्ष्य रक्षःपतिः रावणः इति बुद्ध्वा ज्ञात्वा युद्धसंनद्धाः तेनापरिचितेन सह युद्धतत्पराः बभूवुः ।

इसके बाद, कुछ दिन बीतने पर एकमास के अतिक्रमण को न सहने वाले सुग्रीव हम लोगों को (एक मास बिता कर जाने पर) कठोर दण्ड देंगे,-ऐसा सोच कर अन्यान्य दिशाओं में भेजे गये वानर सैन्य लौट आये किन्तु यम की दिशा-दक्षिण में भेजे गये हनूमान्, जाम्बवान्, अङ्गद, नल, नील आदि सीता की सुधि न पाकर, पुत्रमरण से कुपित कण्डुमुनि के शाप से जहाँ के चराचर प्राणी समाप्त हो गये थे ऐसे जनसञ्चारशून्यमार्गयुक्त अतिदुर्गम निर्जन वन को पार करके आगे के एक वन में किसी असुर को देख कर उसे रावण समझ बैठे और उसके साथ लड़ने में तत्पर हो गये ।

---

१. 'तीर्त्वा' इति पाठा० ।

२. 'बुद्धया युद्धाय संनद्धाः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निशिचरपतिरित्य[1]वेत्य रोषादशनिनिपातनिभेन ताडनेन।
असुरहितममुं प्रहृत्य दैत्यं सुरहितमेव चकार बालि[2]सूनुः ॥ ३९ ॥

निशिचरपतिरिति। वालिसूनुः—वालितनयः अङ्गदः, निशिचरपतिः राक्षसेन्द्रः रावण इति अवेत्य ज्ञात्वा रोषात् सीतापहरणजनित-क्रोधात् अशनि-निपातनिभेन वज्रप्रहारसदृशेन ताडनेन मुष्टिप्रहारेण असुरहितम् राक्षसप्रियम् अमुं दैत्यं प्रहृत्य हत्वा सुरहितमेव चकारेति विरोधः। असुभिः प्राणैः रहितम् असुरहितं गतप्राणं चकार तच्च सुराणां हितं सुखं चकारेति परिहारः। श्लेषानुप्राणितविरोधाभासः। पुष्पिताग्रा-वृत्तम् ॥ ३९ ॥

वालिपुत्र अङ्गद ने उसे रावण समझ कर, क्रोध से वज्रप्रहार तुल्य मुष्टि प्रहार से असुरहित (१–प्राणरहित, २–असुरप्रिय) बनाकर सुरहित (देवों का प्रिय कार्य) ही किया ॥ ३९ ॥

ततस्तारेयवचनात्तत इतो विचित्य निकटगिरिसानुशयाः सानुशयाः सलिलाशया जलचरपतङ्गपतनोत्पतनानुमीयमानपल्वलो[3]पशयं किमपि [4]कुहरमवगाह्य कञ्चन काञ्चनमयं मयमायानिर्मितं विहित[5]तपोभङ्गाय सुराङ्गनायै हेमायै द्रुहिणेन वितीर्णं मेरुसावर्णिदुहित्रा स्वयंप्रभया कृतावनं वनोद्देशमविशन्।

तत इति। ततः तदनन्तरम्, तारेयः ताराया अपत्यं पुमान् तारेयः ('स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढक्) अङ्गदः, तस्य वचनात् तत इतः अत्र तत्र विचित्य सीतामन्विष्य निकटगिरि-सानुषु समीपस्थ-पर्वत-शिखरेषु शेरत इति तथोक्ताः, परिश्रान्ततया पर्वतश्रृङ्गेषु विश्रामं कुर्वाणा इत्यर्थः, सानुशयाः सीतानुपलब्ध्या सखेदाः सलिलाशया जलाभिलाषेण पिपासयेत्यर्थः जलचरपतङ्गानां हंसादि-

---

१. 'अवेक्ष्य:' इति पाठा०।
२. 'पुत्रः' इति पाठा०।
३. 'उपशल्यम्' इति पाठा०।
४. 'बिलकुहरम्' इति पाठा०।
५. 'पिहिताशानभोभागं विहित' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जलपक्षिणां पतनोत्पतनैः आगमनगमनैः अनुमीयमानम् पल्वलस्य सरसः उपशयम् आश्रयभूतम् किमपि कुहरम् गह्वरम् अवगाह्य प्रविश्य कञ्चन कमपि काञ्चनमयम् सुवर्णरचितम् मयमायानिर्मितम् मयस्य मयनाम्नः शिल्पिप्रवरस्य मायाया विचित्ररचनाशक्त्या निर्मितम् रचितम् विहिततपोभङ्गायै विहितः कृतः तपोभङ्गः तत्र तपस्यतो मयस्य तपस्याविघातः यया तस्यै सुराङ्गनायै अप्सरसे हेमायै हेमाभिधानायै द्रुहिणेन ब्रह्मणा वितीर्णम् प्रदत्तम् तत्कृतकर्मणा परितुष्टत्वादिति भावः। स्वयंप्रभया तदाख्यया मेरुसावर्णेः दुहित्रया कन्यया कृतावनम् विहितरक्षणम् वनोद्देशम् वनप्रदेशम् अविशन् प्रविष्टाः।

इसके बाद तारपुत्र अङ्गद के कहने से वे सब वानर सीता जी को इधर-उधर ढूँढते हुए [थक कर] निकटस्थ पर्वत के शिखरों पर लेट गये। वे सब [सीता की सुधि न पा सकने के कारण] पछता रहे थे। उन वानरों ने एक भूविवर से जलचर पक्षियों का जाना आना देख कर अनुमान किया कि इसके भीतर कोई जलाशय अवश्य है और वे उस भूविवर में घुस गये। वहाँ उन लोगों ने सुवर्णमय, मय की माया से निर्मित, (मय के) तप को भङ्ग करने वाली हेमा नामक अप्सरा को ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त, मेरुसावर्णि की कन्या स्वयं प्रभा द्वारा सुरक्षित वन में प्रवेश किया।

ततः कृतातिथ्यायाः स्वयंप्रभायाः प्रभावेण बिलादुत्तीर्णानां समयाति[1]पातादापतिष्यति सुग्रीवदण्ड इति विकृतिमुपेत्य सङ्गतमनोगदेनाङ्गदेन पवनतनयवचन[2] प्रत्ययप्रत्यानीतप्रकृतिना सह प्रायोपवेशमुपेयुषां प्लवङ्गपुङ्गवानां परिदेवनकथा[3]प्रसङ्गे जटायुषो निधनं निशम्य विन्ध्यरन्ध्राद्विहितसंपातः संपातिर्नाम[4] गृध्रस्तानेवमवादीत्।

तत इति। ततः तदनन्तरम्, कृतम् आतिथ्यम् वानराणामतिथिसत्कारो यया तादृश्याः स्वयंप्रभायाः तदभिधानाया मेरुसावर्णिकन्यकायाः प्रभावेण

---

१. 'पातेन पतिष्यति' इति पाठा०।

२. 'प्रत्ययानीत' इति पाठा०।

३. 'प्रसङ्गेन' इति पाठा०।

४. 'गृध्रराजः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महिम्ना बिलात् तस्माद् भूविवरात् उत्तीर्णानाम् निर्गतानाम्, समयातिपातात् अवधिकालातिक्रमणाद्धेतोः, सुग्रीवदण्डः सुग्रीवकर्तृकवधादिशासनम् आपतिष्यति, समयातिपातेन क्रुद्धः सुग्रीवो दण्डयिष्यतीत्यर्थः। इति (विचिन्त्य) विकृतिमुपेत्य उद्वेगं प्राप्य संगतमनोगदेन संजातमनोव्याधिना ('रोगव्याधिगदामयाः' इत्यमरः) अङ्गदेन वालिपुत्रेण, पवनतनयस्य हनूमतो वचने यः प्रत्ययः विश्वासः तेन प्रत्यानीता पुनः प्रापिता प्रकृतिः स्वस्थता येन तादृशेन सह प्रायोपवेशम्—दक्षिणाग्रेषु कुशेषु भूमौ मरणार्थं संकल्प्योपवेशनम्—आमरणमनशनमित्यर्थः, उपेयुषाम् प्राप्तानाम् प्लवङ्गपुङ्गवानाम् कपिश्रेष्ठानाम् परिदेवनकथाप्रसङ्गे विलापवार्ताप्रस्तावे जटायुषो निधनम् मरणं निशम्य श्रुत्वा विन्ध्यरन्ध्रात् विन्ध्यपर्वतकन्दरात् विहितसंपातः कृतनिर्गमः तत्परामर्शाय निष्क्रान्त इत्यर्थः, संपातिर्नाम गृध्रः जटायुषो भ्राता तान् वानरान् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्।

इसके बाद स्वयंप्रभा ने उन वानरों का अतिथि सत्कार किया और उसने अपने प्रभाव से उन वानरों को बिल से बाहर कर दिया। बाहर आने पर अङ्गद इस चिन्ता से कि समय के भीतर यदि हम सीता को ढूँढ नहीं लेंगे तो अवधि बीत जाने पर सुग्रीव हमें कठोर दण्ड देंगे विकार को प्राप्त होकर मन में बहुत दुःखी हुये किन्तु हनूमान् के वचन पर विश्वास होने के कारण प्रकृतिस्थ हुए। अङ्गद के साथ सभी वानर आमरण अनशन पर उतारू हो गये। उनके विलापप्रसङ्ग में जटायु का मरण सुन कर विन्ध्य गिरि की खोह से [जटायु का भाई] सम्पाति नामक गिद्ध निकला और उसने उन वानरों से इस प्रकार कहा—

> केयूय[1]मक्षतबलेऽप्यभिधाय पापं
> वत्से जटायुषि मम श्रवसी दहन्तः।
> तस्मात्पुराकिरणदाहितपक्षयुग्मं
> तिग्मांशुमुष्णवचसा शिशिरीकुरुध्वे ॥ ४० ॥

केयूयमिति। अक्षतबले अप्रतिहतपराक्रमेऽपि वत्से अनुजे जटायुषि

१. 'अक्षयबले' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पापम् मरणरूपमशुभम् अभिधाय उक्त्वा मम संपातेः श्रवसी कर्णौ (कर्णशब्दग्रहौश्रोत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः' इत्यमरः)। दहन्तः भस्मीकुर्वन्तः सन्तापयन्त इत्यर्थः, यूयं के ? तस्मात् अशुभनिवेदनजनित-कर्णसन्तापात्, पुरा पूर्वं सूर्यमण्डलं प्रत्युत्पतनकाले किरणैः स्वकरैः दाहितम् दग्धीकृतम् पक्षयुग्मम् अस्माकं पक्षद्वयं येन तम् तिग्मांशुम् सूर्यम्, उष्णवचसा जटायुर्मरणनिवेदनात्मकेन सूर्यादप्युष्णतरकठोरवचनेन, शिशिरीकुरुध्वे शीतलीकुरुथ। अस्मत्पक्षयुग्मं दहद्भ्यः सूर्यस्य किरणेभ्योऽप्यधिकतरं भवतां जटायुर्मरण निवेदनात्मकं कर्णदाहकं वचो मां सन्तापयतीति भावः। तिग्मांशोः शिशिरीकरणा सम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४० ॥

जटायु-जैसे अप्रतिहतपराक्रम वाले के भी विषयमें उसके मरण की बात कह कर हमारे कानों को दग्ध करने वाले आप लोग कौन हैं ? आप लोग तो इस श्रवणसन्तापप्रद बात से, बहुत पहिले अपनी किरणों से मेरे दोनों पंखों को जलाने वाले सूर्य को (भी) शीतल बना रहे हैं [मुझे उस समय सूर्य का सन्ताप उतना नहीं खला था जितनी आप की यह बात खल रही है] ॥ ४० ॥

ततस्तै [1]प्रस्तावितप्रवृत्तिः संपातिः प्रोषितायुषे जटायुषे निवापाञ्जलिं निर्वर्त्य पुरा कदाचिदामिषान्वेषणाय [2]प्रेषितेन सुपार्श्वनाम्ना समाम्नातं महेन्द्रमहीध्ररन्ध्रनिर्गतदशवदननीयमानजानकीपरिदेवनं जानानः सूक्ष्मचक्षुः पुनरेवमवोचत्।

तत इति। ततस्तदनन्तरम् तैः वानरैः प्रस्तावित-प्रवृत्तिः – आदितः प्रभृति कथितवृत्तान्तः सम्पातिः प्रोषितायुषे मृताय जटायुषे स्वानुजाय निवापाञ्जलिम् तर्पणाञ्जलिम् सम्पाद्य दत्त्वेत्यर्थः, पुरा पूर्वकाले कदाचित् आमिषान्वेषणाय मांसाद्याहाराहरणाय प्रेषितेन प्रहितेन सुपार्श्वनाम्ना स्वसुतेन समाम्नातम् सत्यभावेन कथितम्, महेन्द्रमहीध्रस्य महेन्द्रनामकस्य कुलपर्वतस्य

---

१. 'प्रस्थापितवृत्तान्तः' 'प्रस्तावितवृत्तान्तः' इति च पाठा०।
२. 'प्रेषितेन निजसुतेन' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रन्ध्रात् बिलात् विनिर्गतम् दशवदनेन रावणेन नीयमाना अपह्रियमाणा या जानकी सीता तस्याः परिदेवनम् विलापं जानानः अवगच्छन् सूक्ष्म-चक्षुः सूक्ष्मदृष्टिः पूर्वोत्तरानुसन्धान-कुशलः इत्यर्थः सम्पातिः, पुनः भूयः एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अवोचत् उक्तवान्।

इसके बाद वानरों ने आदि से सारा समाचार सम्पाति को सुनाया। मृत [अपने अनुज] जटायु को तिलाञ्जलि देकर सूक्ष्मदर्शी सम्पाति ने उन वानरों से कहा-मैंने पहिले एक समय सुपार्श्व नामक अपने पुत्र को आमिष की खोज में भेजा था। उसने लौटने पर कहा कि महेन्द्र पर्वत के बिल से निकलते हुए रावण द्वारा हरी जाती सीता के विलाप को मैंने सुना है इस बात को मैं जानता हूँ। ऐसा कह कर पुनः कहा—

अलं कातर्येण। लङ्काभिधानां यातुधानराजधानीमधिवसति सीता दशवदननीता तत्र गच्छन्तु भवन्तः।

अलमिति। कातर्येण भयेन अधीरतया च अलम्, भवन्तो माऽधीरा भवन्त्वित्यर्थः। दशवदननीता रावणापहृता सीता लङ्काभिधानाम् यातुधान-राजधानीम् राक्षसराजधानीमधिवसति, तत्र वर्त्तत इत्यर्थः, तत्र लङ्कायां भवन्तो गच्छन्तु।

आप लोग कातर न हों, रावण द्वारा हरी गयी सीता लङ्का नामक राक्षस राजधानी में रहती हैं, आप लोग वहाँ जाइए।

किञ्च—

दिवाकरप्लोषभवां [1]मदार्तिं निशाकरो नाम मुनिर्निरस्यन्।
जगाद वः कार्यमहार्यधैर्याः! क्षणेन तां द्रक्ष्यथ [2]रामपत्नीम्॥४१॥

किञ्च, दिवाकरेति। दिवाकरस्य सूर्यस्य यः प्लोषः मम पक्षदाहस्तद्-भवाम् तज्जाताम् मम आर्तिम् पीडाम् निशाकरो नाम मुनिः निशाकर इति नाम्ना विख्यातो मुनिः चन्द्रश्च गम्यते, निरस्यन् यदा रामपत्नी मन्विष्यन्तो

---

१. 'ममार्तिं' इति पाठा०।
२. 'राजपत्नीम' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वानरास्तवान्तिकमागमिष्यन्ति तदा तव पक्षद्वयं पुनः प्ररूढं भविष्यतीति सान्त्ववचनेनापनुदन्, वः युष्माकं कार्यं जगाद उवाच, तथा कुर्वता मुनिना युष्माकं कार्यसिद्धिरपि व्यञ्जितेति भावः। अहार्यधैर्याः अपरिहार्यधीरभाव-युक्ताः यूयं क्षणेन शीघ्रमेव ताम् रावणापहृतां रामपत्नीम् सीतां द्रक्ष्यथ। पुरा सूर्यकिरणैर्दग्धपक्षं मामुपेत्य निशाकरो नाम मुनिः सान्त्वयन्नुवाच यदा सीतामन्विष्यन्तो वानरास्तवान्तिकमुपागमिष्यन्ति तदा तव पक्षद्वयं पुनः प्ररोक्ष्यति तदनन्तरं वानराश्च सीतां द्रक्ष्यन्ति। तस्मादलं कातरतया। मुनेरतीता-नागतदर्शनसमर्थतयाऽदूरवर्तिनी युष्माकं कार्य-सिद्धिरित्यवगच्छतेति भावः। दिवाकरकृतसन्तापं निशाकरोऽहरदित्येव युक्ततयाऽत्र चमत्कारः। उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ४१ ॥

सूर्य के ताप से मेरे पंखों के भस्म हो जाने की पीड़ा को दूर करते हुए निशाकर नाम के मुनि ने मुझसे आप लोगों के इस कार्य के विषय (जब रामपत्नी जानकी को खोजते हुए बानर गण आएँगे तो उनका दर्शन करने से तुम्हें फिर पंख आ जायँगे) में कहा था अतः हे महान् धैर्यशाली वीरों ! आप लोग शीघ्र ही रामपत्नी का दर्शन प्राप्त कर लेंगे (इस लिए अनशन व्रत का त्याग कर दें) ॥ ४१ ॥

इति ब्रुवाणं कृतसौहृदं तं संपातिमापृच्छ्य [3]परापरज्ञम्।
प्रवृद्धहर्षाः प्रथितप्रभावाः प्रतस्थिरे वानरयूथनाथाः ॥ ४२ ॥

इति ब्रुवाणमिति। इत्येवं प्रकारेण ब्रुवाणम् कथयन्तं कृतसौहृदम् विरचितसख्यम्, परापरज्ञम् पूर्वोत्तरानुसन्धानकुशलम्, तं संपातिमापृच्छ्य अस्मान् गन्तुमनुमन्यस्वेत्युक्त्वा प्रथितप्रभावाः प्रसिद्धपराक्रमाः वानरयूथनाथाः अङ्गदादिवानर-व्यूहपतयः, प्रवृद्धहर्षाः सीतोपलब्धिदृढविश्वासेन समधिकहर्ष-निर्भराः सन्तः प्रतस्थिरे प्रययुः दक्षिणस्यां दिशीति शेषः। उपजाति-वृत्तम् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार कहते हुए, पूर्वोत्तर के पर्यालोचन में कुशल कृतसख्य उस संपाति से अनुमति लेकर अत्यन्त प्रसन्न, प्रसिद्ध पराक्रम, अङ्गदादि वानर सेनापति [दक्षिण की ओर] चल पड़े ॥ ४२ ॥

३. 'परावरगम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]पर्याप्तप्रमदमुपेयुषां कपीनां [2]पन्थानं दशमुखमार्गमार्गणाय।
पाथेयीकृतकपिराजशासनानां पाथोधिर्नयनपथातिथिर्बभूव ॥४३॥

पर्याप्तेति। पर्याप्तः परिपूर्णः प्रमदः हर्षः यस्मात्तम्, अत्यन्तानन्दकरमित्यर्थः पन्थानम् सम्पातिना निर्दिष्टं मार्गम्, उपेयुषाम् प्राप्तानां, दशमुखमार्गमार्गणाय—केनमार्गेण सीतामादाय गतो रावणः इति तदीयमार्गान्वेषणाय, पाथेयीकृतं सम्बलीकृतं कपिराजस्य सुग्रीवस्य शासनम् आदेशो यैस्तेषाम्, संबलान्तरं भोजनादिकमुपेक्ष्य सुग्रीवादेशरूपं पाथेयमादायाग्रे सरतामित्यर्थः, कपीनाम् वानराणां पाथोधिः समुद्रः, नयनपथातिथिः दृष्टिगोचरः, बभूव। ('पाथेयं संबलं मतम्' इति यादवः। 'मुत्पीतिः प्रमदो हर्षः' इत्यमरः)। प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ४३ ॥

[सीता को लेकर] रावण के [जाने के] मार्ग का पता लगाने के लिए, [सम्पाति के बताये] आनन्दपूर्ण मार्ग पर, कपिराज सुग्रीव के आदेश को ही सम्बल बना कर वे वानर आगे बढ़ते गये। [बाद में] सामने उनकी दृष्टि में समुद्र आया ॥ ४३ ॥

सुत्रामपुत्रारिशिलीमुखानां स्मृत्वा गणस्तत्र बलीमुखानाम्।
अपामपारस्य निधेश्च [3]पश्चादवाङ्मुखो वक्तुमवाङ्मुखोऽभूत ॥४४॥

सुत्रामेति। बलीमुखानाम् वानराणां गणः यूथः, तत्र तस्मिन् काले, सुत्रामपुत्रः बाली तस्य अरिः श्रीरामः, तस्य शिलीमुखानाम् बाणानां स्मृत्वा, अपारस्य अपांनिधेः समुद्रस्य च स्मृत्वा ('अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति षष्ठी)। पश्चात् स्मरणानन्तरम्, वक्तुम् किमत्र कर्त्तव्यमिति कथयितुम् अवाङ्मुखः न वाक् वाणी मुखे यस्य स तथोक्तः, मूकः सन्नित्यर्थः, अवाङ्मुखः अवनतमुखः अभूत्।

उस समय वानरों का वह दल श्री राम के [अमोघ] बाणों और इधर अपार दुस्तर सागर दोनों का स्मरण कर निश्चय नहीं कर पा रहा

---

१. 'पर्याप्तम्' इति पाठा०।

२. 'पान्थानाम्' इति पाठा०।

३. 'पश्यन्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

या कि क्या किया जाय। इस लिए वह मूक हो कर सिर झुकाये सोचता ही रहा ॥ ४४ ॥

तदनु वानरसेनासेनामवार्यमाणकातर्यामित्थम[1]वददङ्गदः।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात्, अवार्यमाणं कातर्यं भयविह्वलत्वं यस्यास्ताम्, एनां वानरसेनां प्रति, अङ्गदः वालितनयः, इत्थमनेन प्रकारेण अवदत् उक्तवान्।

तदनन्तर, जिसकी कायरता किसी भी तरह दूर नहीं की जा सकती थी उस वानर सेना के प्रति अङ्गद ने इस प्रकार कहा—

किमिति भजथ मौनं वानरा! मानहीनाः
सगररचित[2]कुल्योल्लङ्घने कुण्ठिताशाः।
अकलशभवलेह्यं दुःशमं [3]वाडवाद्यै-
रनवधिमयशोऽब्धिं किं समर्थास्तरीतुम् ॥ ४५ ॥

किमितीति! हे मानहीनाः स्वाभिमानशून्या वानराः! सगर-रचित-कुल्योल्लङ्घने सगरेण तन्नाम्ना नृपविशेषेण रचिता निखाता कुल्या जलप्रणाली तस्या उल्लङ्घने तरणे कुण्ठिताशाः भग्नोत्साहाः, यूयं किमिति कुतः मौनं मूकभावं भजथ प्राप्नुथ, महदयुक्तमेतदिति भावः। सगरनिखातसमुद्र-विस्तारस्याल्पताद्योतनाय कुल्याभावेन रूपणम्।

कलशभवः अगस्त्यस्तेन लेह्यः आस्वाद्यो न भवतीत्यक-लशभवलेह्यस्तम्, वाडवाद्यैः वडवानलप्रभृतिभिः दुःशमम् शमयितुमशक्यम् 'अनवधिम् निमर्यादम् शतसहस्रयोजनपरिमाणादप्यधिकविस्तृतमित्यर्थः अयशोऽब्धिम् अपकीर्तिसागरम् तरीतुम् लङ्घयितुम् किं यूयं समर्थाः, न समर्था एवेति भावः। (तरीतुमित्यत्र 'वृतोवा' इतीटोदीर्घः।) अगस्त्येन पीतं वडवानलादिभिः शमितं कुल्यातुल्यं सीमाबद्धमप्येनं समुद्रं पश्यन्त एव दुस्तरमवगम्य भग्नोत्साहाः मूकीभूय स्थिता-

१. 'अकथयत्' इति पाठा०।
२. 'कूपोल्लङ्घने' इति पाठा०।
३. 'वडवाग्नेः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तदा अस्मात्प्रस्तुतसागरादतिरिच्यमानमगस्त्येनापि पातुमशक्यं वाडवाद्यैर्दुःशममपास्तमर्यादमपकीर्तिसागरं कथं यूयं तरिष्यथेति नावगच्छामि। अनतिक्रान्तेऽस्मिन् सुतरे सागरे दुस्तरोऽपकीर्तिसागरः प्रसज्येतेति वालितनयोक्तेराशयः। अत्र प्रसिद्धसागरादुपमानात् उपमेयस्यायशः-सागरस्याधिक्यप्रतिपादनाद् व्यतिरेकाऽलङ्कारः। मालिनी-वृत्तम् ॥ ४५ ॥

अरे स्वाभिमान शून्य वानरो! इस सागर को, जो सगर द्वारा खोदी गयी नाली है, पार करने में उत्साह खोकर क्यों मौन साध लिये हो? जिसे अगस्त्य पी नहीं सकते, वडवानल आदि जिसे नियमित नहीं कर सकते, जिसकी कोई सीमा नहीं, उस अपकीर्ति सागर को क्या तुम लोग पार कर सकोगे? ॥ ४५ ॥

ततः [1]पारावारस्य पारीणतायामात्मशक्तेरियत्तां प्रत्येकं कथयत्सु [2]वानरयूथपेषु निर्दिश्याञ्जनेयं प्रभञ्जन[3] संजातं जाम्बवान [4]भिहितवान्।

तत इति। ततः तदनन्तरम्, पारावारस्य समुद्रस्य पारीणतायाम् पारं गतत्वे लङ्घन इत्यर्थः, आत्मशक्तेः स्वसामर्थ्यस्य इयत्ताम् मर्यादां प्रत्येकम् एकैकशः कथयत्सु वानरयूथपेषु वानरदलनायकेषु प्रभञ्जनसञ्जातम् वायोरुत्पन्नम् आञ्जनेयम् अञ्जनागर्भसंभूतं हनूमन्तं निर्दिश्य जाम्बवान् अभिहितवान् उक्तवान्।

इसके बाद जब सभी वानर सेना नायक एक-एक करके समुद्र पार करने में अपने-अपने सामर्थ्य की सीमा कह रहे थे (कौन कितनी दूर जा सकता है—इसका वर्णन कर रहे थे) तब जाम्बवान् ने वायु से उत्पन्न हुए अञ्जना के पुत्र हनूमान् को निर्दिष्ट कर कहा—

---

१. 'पारावारपारीणतायाम् इति पाठा०।
२. 'वानर' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'संभवम्' इति पाठा०।
४. 'इत्यमभिहितवान्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हे वीरा यूथनाथाः! परिणतिपरुषः [1]कार्यं आसीद्विषादः
कस्मादस्माकमेतज्जलनिधितरणे शक्तिरेतावतीति।
स्मृत्वा राज्ञः प्रतिज्ञामयमनिलसुतो लङ्घनायोन्मुखश्चे-
द्भेदः प्रादुर्भवेत्किं कथयत पयसामास्पदे गोष्पदे वा ॥४६॥

हे वीरा इति। हे वीराः यूथनाथाः यूथपतयः! एतज्जलनिधितरणे अस्य सागरस्य लङ्घने कार्ये कर्तव्ये अस्माकं सर्वेषाम् एतावती इयत्परिमिता शक्तिः सामर्थ्यम् इति परिणतिपरुषः फलकालविरसः समुद्रतरणस्यासाध्यत्वचिन्ताजनितोत्साहभञ्जक इत्यर्थः, विषादः खेदः कस्मात् कुतः आसीत् अजायत। अस्माकमियत्येव शक्तिस्तया जलनिधिः कथं तरीतुं शक्य इत्युत्साहभञ्जको विषादः कस्माद्धेतो-रजायतेत्याशयः। अयम् अनिलसुतः हनूमान् राज्ञः सुग्रीवस्य प्रतिज्ञाम् सीतान्वेषणरूपां स्मृत्वा ध्यात्वा लङ्घनाय उन्मुखः उद्युक्तः स्यात् चेत् यदि, तर्हि पयसामास्पदे सागरे, गोष्पदे गोपदचिह्नपरिमिते खाते वा भेदः अन्तरं प्रादुर्भवेत् प्रकटेत् किम्? इति कथयता। सागरतरणोद्यतो हनूमान् गोष्पदमिवेमं सागरं लङ्घयितु मलमिति युष्माभिरकारणजन्यो विषादः परित्याज्य इति भावः। सागरगोष्पदयोर्भेदसम्बन्धेऽप्यभेदसम्बन्धाभिधानात्तद्रूपातिशयोक्तिरलङ्कारः। स्रग्धरा-वृत्तम् ॥ ४६ ॥

अरे वीर यूथपतियो! इस समुद्र को पार करने में हमारी इतनी ही शक्ति है [इतनी शक्ति से हम सागर कैसे पार कर सकते हैं] इस तरह की परिणामचिन्ता से कठोर विषाद कैसे पैदा हो गया? जब कि यह पवन पुत्र हनूमान् यदि राजा सुग्रीव की प्रतिज्ञा का स्मरण करके समुद्र लाँघने को तैयार हो जाय तो कहिये, क्या इस समुद्र और गोपद में कोई भेद नजर आयेगा? ॥ ४६ ॥

उदपतदुपभोक्तुं मण्डलं चण्डभानोः
परिणतफलबुद्ध्या बालभावेऽपि सोऽयम्।
तदनु कुलिशपातक्षुण्णगण्डाय तस्मै
बलमदिशदमेयं वायुतृप्त्यै विधाता ॥ ४७ ॥

---

१. 'कोऽयम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उदपतदिति। सः प्रसिद्धपराक्रमः अयम् हनूमान् बालभावे बाल्ये वयस्यपि परिणतफलबुद्ध्या परिपक्वफलभ्रान्त्या सूर्यस्य मण्डलमुपभोक्तुम् खादितुम् उदपतत् उत्पतितः, उत्पत्य सूर्यमण्डलपर्यन्तं गतः इत्यर्थः। तदनु तत्पश्चात् कुलिशपातक्षुण्णगण्डाय कुलिशपातेन इन्द्रकृतवज्राभिघातेन क्षुण्ण गण्डाय भग्नहनुप्रदेशाय तस्मै हनूमते विधाता ब्रह्मा वायोस्तत्पितुः तृप्त्यै परितोषाय; पुत्रप्रहरणकुपितेन वायुना स्वसञ्चारसंकोचेन लोकोद्वेजनस्य कृतत्वादिति भावः। अमेयम् अपरिमितं बलम् पराक्रमम् अदिशत् दत्तवान्। बाल्य एव सूर्यमण्डपर्यन्तोत्पतनदक्षस्यास्य वीरस्येदानीं यौवने एतच्छतयोजनमात्र-विस्तीर्ण सागरतरणं कियदिति भावः। तथा च रामायणम्—'प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ। अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रमम् ॥' इति। बाल्ये नभोल्लङ्घन दक्षस्यास्येदानीं समुद्रतरणं कियदिति दण्डापूपिकयार्थान्तर-स्यापादनादर्थापत्तिरलंकारः। मालिनी-वृत्तम् ॥ ४७ ॥

ये हनूमान् बाल्या-वस्था में ही सूर्य मण्डल को पकाफल समझ कर उसे खाने के लिये [वहाँ तक] उड़ गये थे। उसके बाद [इन्द्रकृत] वज्र प्रहार से जब इनकी दाढी टेढ़ी हो गयी तब [इस बात से कुपित] वायु को परितुष्ट करने के लिए ब्रह्मा ने इन हनूमान् को असीम बल प्रदान किया ॥ ४७ ॥

इत्थं जाम्बवता [1]परापरविदा संधुक्षितप्राभवः
कृत्वा वृद्धिमुपेयुषा स्ववपुषा त्रैविक्रमं प्रक्रमम्।
आरुह्याद्रितटं यथोचितमसौ संमान्य [2]सैन्याधिपा-
नासन्नानथ संननाह तरितुं वारांनिधिं मारुतिः ॥४८॥

इति श्री विदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे किष्किन्धाकाण्डः समाप्तः।

इत्थमिति। इत्थम् उक्तप्रकारेण परापरविदा पूर्वोत्तरानुसन्धानकुशलेन जाम्बवता सन्धुक्षितम् उद्बोधितं प्राभवम् सामर्थ्यं यस्य सः, मारुतिः हनूमान् त्रैविक्रमम् त्रिविक्रमः वामनरूपोविष्णुस्तस्येमं त्रैविक्रमं प्रक्रमम् पूर्वं लघुत्वेऽपि कार्यावसरेऽतिविस्तृतिरूपां पद्धतिम् उपेयुषा आश्रितवता स्ववपुषा स्वशरीरेण

१. 'परावर' इति पाठा०।
२. 'सेनाधिपान्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वृद्धिं कृत्वा स्वशरीरं वर्धयित्वा, अद्रितटम् महेन्द्रशैलसानुम् आरुह्य आसन्नान् समीपस्थान् सैन्याधिपान् वानरयूथनाथान् यथोचितम् यथायोग्यं संमान्य प्रणामाशीर्वादादिना आदृत्य अथ असौ मारुतिः हनूमान् वारांनिधिम् समुद्रं तरितुम् लङ्घयितुम् संननाह सन्नद्धो बभूव। शार्दूलविक्रीडितं-वृत्तम् ॥ ४८ ॥

इति कल्याण्याख्यायां चम्पूरामायणव्याख्यायां
किष्किन्धाकाण्डः समाप्तः।

पूर्वापर-वेत्ता जाम्बवान् ने जब इस प्रकार हनूमान् को उनके सामर्थ्य का ज्ञान कराया तब हनूमान् ने भगवान् वामन की पद्धति अपनाने वाले शरीर को बढ़ाया और पर्वतशिखर पर चढ़ कर समीपस्थ वानर सेना पतियों को यथोचित [प्रणामाशीर्वाद से] सत्कृत कर उसके बाद समुद्र लाँघने के लिए सन्नद्ध हो गये ॥ ४८ ॥

इति किष्किन्धा-काण्ड

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ सुन्दरकाण्डम्

ततो हनूमान्दशकण्ठनीतां सीतां विचेतुं पथि चारणानाम् ।
महेन्द्रशैलस्य खगेन्द्रवेगः प्रस्थादुदस्थात्प्रथमानवेगः[1] ॥ १ ॥

तत इति । ततस्तदनन्तरम् । खगेन्द्रवेगः खगेन्द्रो गरुडस्तस्य वेग इव वेगो यस्य स तथोक्तः, (उपमालङ्कारः) प्रथमानवेगः प्रसिद्धवेगः हनूमान् दशकण्ठनीताम् रावणापहृतां सीतां विचेतुम् अन्वेष्टुम् महेन्द्रशैलस्य समुद्र-तटवर्तिगिरिविशेषस्य प्रस्थात् शिखरात् चारणानाम् गन्धर्वाणाम् पथि मार्गे आकाशे उदस्थान् उत्थितवान् । 'ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः । इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥' इति वाल्मीकिरामायणसुन्दरकाण्डा-द्यपद्यमर्थतो बहुष्वंशेषु पदतश्चानुसरता कविना चमत्कृतमित्यनुसन्धेयम् ॥ वृत्तमुपजातिः ॥१॥

इसके बाद गरुड़ के समान वेगवाले [अतएव] प्रसिद्ध वेगशाली हनूमान् रावणापहृत सीता को खोजने के लिए महेन्द्र गिरि के शिखर से चारणों के मार्ग-आकाश में ऊपर की ओर उड़े ॥ १ ॥

तदानीमुदन्वदुल्लङ्घनदृढतरनिहितचरणनिष्पीडनं सोढुमक्षमः क्ष्माभृदेष निःशेषनिःसरन्निर्झरौघतया निरन्तरनिष्पतद्बाष्प[2]वर्ष इव इतस्ततो विततजीमूत[3]वृन्दतया पारिप्लवशिथिलधम्मिल्ल इव, [4]संत्रस्यमानकुञ्जरयूथतया संजातश्वयथुरिव, [5]साध्वसधावमान[6] हरिणगणचरणखर[7]तरखुरकोटिपाटनोद्धूतधातुधूलीपालीपाटलितवि-कटकटकतया क्षरितशोणित इव,तत्क्षणप्रबुद्ध[9]कण्ठीरवमुखरितकन्दरतया

---

१. 'मानः' इति पाठा० ।
२. 'पूर' इति पाठा०
३. वृन्दस्यन्दतया' इति पाठा० ।
४. 'संत्रास्यमान' इति पाठा० ।
५. 'ससाध्वसतया' इति पाठा० ।
६. 'हरिणी' इति पाठा० ।
७. 'खरतरखुर' इति नास्ति क्वचित् ।
८. 'धूलिपटलित' इति पाठा० ।
९. 'कण्ठोरवकण्ठरव'इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृताक्रन्द इव, परिसरगह्वरनिबिरीस[1]निःसृतसरीसृपतया निर्गलितान्त्रमाल इव, घूर्णमानतरुविटपकोटि[2]ताडितजलदवृन्दस्यन्दितसीकरनिकरकोरकिताकारतयासमुपजातस्वेद इव, स्फटिकतटोपलपतनदलितकीचकसुषिरसंमूर्च्छत्पवनफूत्कारपरिपूरितगगनतया प्रवर्धमानोर्ध्वश्वास इव वचसामविषयं दौःस्थ्यमभजत।

तदानीमिति। तदानीम् पवनपुत्रोत्थानसमये, उदन्वान् उदधिः ('उदन्वानुदधिः सिन्धुः' इत्यमरः) तस्य उल्लंघने अतिक्रमणे दृढतरं अति गाढं यथा तथा यत् निहिताभ्यामवस्थापिताभ्यां चरणाभ्यां पादतलाभ्यां निष्पीडनम् तत् सोढुम् मर्षयितुम् अक्षमः असमर्थः एषः क्ष्माभृत् महेन्द्रपर्वतः निःशेषं समग्रभावेन निःसरन् निर्गच्छन् निर्झरौघः निर्झरसमुदयोः यस्मात्तस्य भावस्तत्ता तया, निरन्तरमविच्छन्नं निपतत् वाष्पवर्षमश्रुवृष्टिर्यस्य स तथोक्त इव। महेन्द्रगिरिशिखरादुत्थानसमये हनूमता पादतलयुग्मं तच्छिखरे दृढतरं निहितम्। तन्निष्पीडनवशात् सर्वेऽपि निर्झरौघा अशेषरूपेण निर्गन्तुं प्रवृत्ताः, मन्ये तद्भारं सोढुमक्षम इव महेन्द्रगिरिरश्रूणि मुञ्चतीति भावः। तथा च तन्निष्पीडनासहत्वादेव इतस्ततः अत्र तत्र विततजीमूतवृन्दतया प्रसृतमेघवृन्दत्वेन पारिप्लवः चञ्चलः अत एव शिथिलः श्लथबन्धः धम्मिल्लः केशपाशो यस्य तादृश इव ('परिप्लवं तु तरलम्,' 'धम्मिल्लः संयताः कचाः' इत्युभयत्राप्यमरः)। संत्रस्यमानकुञ्जरयूथतया भीतगजनिवहतया संजातः समुत्पन्नः श्वयथुः शोथो यस्य तादृश इव ('शोफस्तु श्वयथुः शोथः' इत्यमरः) भयेन गजा बहिर्निस्सृताः, मन्ये तत्पर्वतस्याङ्गान्यूच्छूनतां गतानीवेतिभावः। साध्वसेन भयेन धावमानानां पलायमानां हरिणगणानां मृगनिवहानां चरणाः पादास्तेषां खरतरखुरकोटिभिः निशिततरखुराग्रैः यत् पाटनम् पर्वतभूमिविदारणं तेन उद्धूता उत्थिताः या धातुधूलीपाल्यः सिन्दूरादिधातुरजोराशयः, ताभिः पाटलितानि रञ्जितानि विकटकटकानि निम्नोन्नतनितम्बस्थलानि यस्य तस्य भावस्तत्ता तया, ('कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः' इत्यमरः)। क्षरितशोणितः निःसृतरक्तप्रवाह इव। भयेन

१. 'निःसरत्' इति पाठा०। २. 'पाटित' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पलायमानानां मृगाणां तीक्ष्णाग्रैः खुरैः उत्थिताभिः सिन्दूरादिधातुधूलिभिररुणितरयं पर्वतो रक्तरञ्जित इव बभूवेत्यर्थः । तत्क्षणे तस्मिन् हनूमदुत्थानसमये प्रबुद्धैः संमर्देन जागरितैः कण्ठीरवैः सिंहैः ('कण्ठीरवो मृगरिपुः' इति सिंहपर्यायेष्वमरः) । मुखरिताः शब्दायमानाः कन्दराः गुहा यस्य तस्य भावस्तत्ता तया कृताक्रन्दः विहितचीत्कार इव । तदानीं प्रबुद्धसिंहानां गर्जितैस्तस्य कन्दराः मुखरिता अभवन्, मन्ये स गिरिश्चीत्कारं करोति स्मेति भावः । परिसरगह्वरेभ्यः पर्यन्तकन्दरेभ्यः निबिरीसं निबिडं ('निबिडं निबिरीसं च दृढं गाढं प्रचक्षते' इति वैजयन्ती) निःसृताः बहिरायाता ये सरीसृपाः व्याला यस्य तस्य भावस्तत्ता तया ('चक्री व्यालः सरीसृपः') इत्यमरः) निर्गलितान्त्रमालः निःसृतोदरस्थसमस्तनाडीसन्ततिरिव, कुहरनिःसृतव्यालरूपा एव तदुदरस्थान्त्रमाला मन्ये बहिरायाता इवेतिभावः। घूर्णमानानां व्यस्तभावेन चक्राकारतया चलतां तरुविटपानां वृक्षशाखानां कोटिभिः अग्रभागैः ताडितेभ्यः आहतेभ्यः जलदवृन्देभ्यः मेघनिवहेभ्यः स्यन्दितैः प्रश्रुतैः शीकरनिकरैः जलबिन्दुसन्दोहैः कोरकितः कलिकायुतः आवृत इति यावत्, आकारः शरीरं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया, ('विटपः स्तम्बशाखयोः' इति विश्वः) समुजातस्वेदः समुत्पन्नघर्मोदक इव, सवेगं चलद्भिर्वृक्षशाखाग्रैस्ताडितेभ्यो मेघेभ्यः प्रस्रुतैर्जलबिन्दुभिरावृतदेहो महेन्द्रगिरिः स्वेदयुक्त इवालक्ष्यतेति भावः। स्फटिकतटोपलाः स्फटिकमयशिखरसम्बन्धिप्रस्तराः तेषां पतनेन दलितानां विदीर्णानां कीचकानां वेणुविशेषाणां सुषिरेषु छिद्रेषु संमूर्च्छन्तः प्रसरन्तो ये पवना वायवस्तेषां फूत्कारैः तच्छिद्रेभ्यो निर्गमनकाले तत्पवनकृतफूत्कारैरित्यर्थः परिपूरितं व्याप्तं गगनं व्योम येन तस्य भावस्तत्ता तया प्रवर्धमानोर्ध्वश्वासः इव, वचसामविषयम् वक्तुमशक्यं दौःस्थ्यम् दुरवस्थाम् अभजत प्राप्तवान् ।

महेन्द्र पर्वत के शिखर से समुद्र लाँघने के लिए हनूमान् जी ने उसके शिखर पर अपने दोनों पैरों को मजबूती से [ऊपर उछलने के लिए] कस कर दबाया उस समय [पैरों के दबाव] से सारे के सारे निर्झर एक बारगी बाहर निकल आये, ऐसा प्रतीत होता था कि मानों हनूमान् जी के द्वारा दृढता से जमाये गये उनके पैरों के दबाव को सहने में असमर्थ महेन्द्र गिरि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के आँसू बह रहे हों। मेघ इधर-उधर बिखर गये, मानों उस पर्वत के केशपाश बिखर कर लहरा रहे हों। गजसमूह भयभीत हो इधर-उधर घूमने लगे, मानों उस पर्वत के अङ्ग [आघात से] सूज आये हों। भय से भागते हुए हरिणों के तीक्ष्णाग्र खुरों से खौंद जाने के कारण उठी हुई, गैरिक आदि धातुओं की धूल से पर्वत के नितम्ब प्रदेश लाल हो गये, जिससे ऐसा लगता था कि मानों उस पर्वत का रुधिर बह रहा हो। उसकी कन्दरा से निरन्तर सर्प निकल रहे थे, मानों उस पर्वत की आतें [उसके पेट से] बाहर निकल रही हों। झकोरे खाते हुए वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग से आहत मेघों से बहे हुए जल की बूँदों से आवृत होने के कारण मानों वह पर्वत पसीने से तर हो गया हो। स्फटिक शिखरों से गिरे हुए पत्थरों से बाँस धराशायी हो गये और उनके छिद्रों में हवा घुस कर 'फू-फू' करती बाहर निकल रही थी जिसके फूत्कार से आकाश व्याप्त हो रहा था, मानों उस पर्वत का ऊर्ध्वश्वास निकल रही हो। इस प्रकार उस पर्वत की वह दुर्दशा हुई, जिस का वर्णन नहीं किया जा सकता।

कृत्वा मारुतिलङ्घनोत्थितरयात्तत्रानुयात्रां ततः
पर्याया[1]त्पतिता महेन्द्रगहनक्षोणीरुहाणां ततिः।
मध्येवारिनिधि प्रकाशितशिखा सेतोः कृते भाविनः
सूत्रन्यासनिखातशङ्कुनिवहभ्रान्तिं पयोधौ दधौ ॥ २ ॥

कृत्वेति। तत्र तस्मिन् समये, मारुतेः हनूमतः लङ्घनेन समुद्रप्लवनेन उत्थितः उत्पन्नो यो रयः वेगः तस्माद्धेतोः, अनुयात्राम् अनुगमनं कृत्वा, ततः अनुगमनानन्तरम्, पर्यायात् क्रमात् एकैकशः, पतिता समुद्रे भ्रष्टा मध्येवारिनिधि सागरमध्ये प्रकाशितशिखा दृष्टाग्रभागा महेन्द्रगहनक्षोणीरुहाणाम् महेन्द्रपर्वतवर्त्तिवनवृक्षाणां ततिः पङ्क्तिः, भाविनः रामेण करिष्यमाणस्य सेतोः कृते सूत्रन्यासेन प्रथमसूक्ष्मास्थायिकृतिरूपेणेत्यर्थः, निखातस्य कीलितस्य शंकुनिवहस्य कीलवृन्दस्य भ्रान्तिं भ्रमं दधौ धृतवती। उत्प्रेक्षालङ्कारः। हनूमत्प्लवनजनितवेगवशान्महेन्द्रवनवृक्षा अपि हनूमता सहैव

1. 'पतताम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किञ्चिद् दूरं तमनुगत्य सागरे पतिताः सन्तः, भाविनः सेतोः कृते पूर्वं निखातशंकव इव शुशुभिरे इतिभावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

हनूमान् के प्लवन से उत्पन्न वेग के कारण महेन्द्र पर्वत के वृक्ष [हनूमान के साथ ही] उनके पीछे-पीछे कुछ दूर उड़ते चले गये और बाद में वे समुद्र के बीच गिर गये जिससे उनका अग्रभाग ही दिखायी पड़ता था। उस समय पङ्क्तिबद्ध वे ऐसे लग रहे थे, मानो भावी सेतु के लिए प्रथम कच्चा बाँध बनाने के निमित्त खम्भे गाड़े गये हों ॥ २ ॥

पक्षाभिघातरयरेचितवीचि[1]मालात्-
पाथोनिधेः पवननन्दनविश्रमाय।
उत्तुङ्गशृङ्गकुलकीलितनाकलोको
मैनाकभूभृदुदजृम्भत संभ्रमेण ॥ ३ ॥

पक्षाभिघातेति। पक्षाभिघातरयेण पक्षयोराघातात्मकवेगेन रेचिता दूरमपसारिता वीचिमाला तरङ्गसंहतिर्यस्य तस्मात् पाथोनिधेः समुद्रात् पवननन्दनविश्रमाय पवननन्दनस्य हनूमतो विश्रामाय विश्रामार्थम्, उत्तुङ्गैः शृङ्गकुलैः अत्युच्छ्रितैः शिखरनिवहैः कीलितः व्याप्तः नाकलोकः स्वर्गं लोको येन तादृशः मैनाकभूभृत् मैनाकाभिधानः पर्वतः संभ्रमेण वेगेन उदजृम्भत समुद्राभ्यन्तरादुदतिष्ठत्। स्वर्गपर्यन्तोच्छ्रितशिखरो मैनाकगिरिः सपक्षतया स्वपक्षाभिघातात्मकवेगेन पयोधिवीचिजालमपास्य हनूमते विश्रामप्रदानाय तत्पुरः समुद्राभ्यन्तरादुत्थाय प्राकटदित्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३ ॥

अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे शिखरों से स्वर्ग लोक को व्याप्त करने वाला मैनाक पर्वत [सपक्ष होने के कारण] अपने पंखों के थपेड़ों के वेग से तरङ्गों को दूर हटा कर समुद्र के भीतर से, हनूमान् को विश्राम देने के उद्देश्य से वेग के साथ ऊपर उठा ॥ ३ ॥

तत्र यात्राप्रत्यूहः प्रत्युद्भूत इति वक्षसा तमधः पातयित्वा प्रयान्तमेनं सान्त्वयन् हिरण्यनाभो बभाषे।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये, मैनाके पुरःस्थिते, यात्राप्रत्यूहः समुद्र-

---

१. 'मालः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लङ्घनप्रयाणे विघ्नः समुद्भूतः समुत्पन्नः इति मत्वा तं मैनाकं वक्षसा वक्षःस्थलेन अधः पातयित्वा, प्रयान्तम् अग्रे गच्छन्तम् एनम् विघ्नभयेन संभ्रान्तं हनूमन्तं सान्त्वयन् समाश्वासयन् हिरण्यनाभः-मैनाकः, अभाषे उक्तवान्।

उस समय हनूमान्, यह समझकर कि यह यात्रा में विघ्न उत्पन्न हो रहा है, उसे छाती से [धक्का देकर] नीचे गिरा कर आगे बढ़े, तब मैनाक ने उन्हें सान्त्वना देते हुए [इस प्रकार] कहा—

सागरेण कृतज्ञेन तवाध्व[1]श्रान्तिशान्तये।
मारुते! प्रेरितोऽ[2]स्म्यद्य सौम्य! विश्रम्य गम्यताम् ॥ ४ ॥

सागरेणेति। हे मारुते पवनतनय! कृतज्ञेन-कृतं जानातीति कृतज्ञस्तेन, "अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्धितः। इक्ष्वाकुसचिवश्चायं नावसीदितुमर्हति।" इति विचिन्तयतेत्यर्थः सागरेण तव रामकार्यार्थं प्रतिष्ठमानस्य अध्वश्रान्तिशान्तये मार्गजनितश्रमनिवारणाय अद्य सम्प्रति प्रेरितः प्रेषितोऽस्मि, हे सौम्य साधो! विश्रम्य मम शिखरे श्रममपनीय गम्यताम् अग्रे प्रस्थीयताम् ॥ ४ ॥

[इक्ष्वाकुनाथ सगर के] कृतज्ञ सागर ने मुझे [इक्ष्वाकु कुल भूषण राम के कार्यार्थ जाने वाले] आप के मार्ग-जनित श्रम को दूर करने का अवसर प्रदान करने के लिए इस समय भेजा है। हे सौम्य, आप [मेरे शिखर पर] विश्राम करके तब जाइए ॥ ४ ॥

[3]त्वत्पित्राहं परित्रातः पूर्वं पर्वतभेदिनः।
तस्मान्नास्मि[4] विपक्षोऽद्य[5]सपक्ष इति मां भज ॥ ५ ॥

त्वत्पित्रेति। त्वत्पित्रा-तव हनूमतः पित्रा जनकेन वायुदेवेनाहम् मैनाकः पूर्वम् पुरा पर्वतभेदिनः गिरिपक्षच्छेदिनः इन्द्रात् परित्रातः परिरक्षितः ('भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यपादानत्वात् पञ्चमी)। तस्माद्धेतोः विपक्षः शत्रुः पक्षरहितश्च नास्मि, अद्य इदानीम्, सपक्षः मित्रं पक्षसहितश्चेति विभायन् मां भज, मयि विश्रामार्थं क्षणं तिष्ठेत्यर्थः ॥ ५ ॥

---

१. 'श्रम' इति पाठा०। २. अत्र' इति पाठा०।
३. 'तव पित्रा' इति पाठा०। ४. 'नास्ति' इति पाठा०।
५. 'अत्र' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हे मारुते ! पूर्वकाल में आप के पिता वायुदेव ने पर्वतों के पंख काटने वाले इन्द्र से मुझे बचाया था इसीलिए मैं आज दिन पक्ष युक्त एवम् आप का मित्र हूँ, मैं विपक्ष—पक्ष हीन और आप का शत्रु नहीं हूँ आप मेरा आश्रयण करें (अर्थात् मुझपर विश्राम करें) ॥ ५ ॥

एवं प्रार्थयमानमेनं सम्मान्य कार्यगत्या गते सति हनूमति ।

एवमिति । एवमुक्तप्रकारेण प्रार्थयमानम् प्रार्थनां कुर्वन्तम् मैनाकं सम्मान्य स्वकालातिपाताक्षमत्वं निवेद्य साधुवादं च दत्त्वा कार्यगत्या स्वामिकार्य पारवश्येन हनूमति गते प्रस्थिते सति ।

इस तरह प्रार्थना करते हुए मैनाक को [अपनी विवशता बताते हुए साधुवादासिसे] सत्कृत कर जब हनूमान् आगे चले तब—

अवलोक्य हिरण्यनाभमब्धौ वलमानं बलमानमाथिवज्रः ।
शतमन्युरपेतमन्युरासीत्पवमानात्मजसेवनादमुष्मिन् ॥ ६ ॥

अवलोक्येति । बलमानमाथिवज्रः बलाख्यदानवगर्वसंहारकवज्रधरः शतमन्युः इन्द्रः, अब्धौ सागरे वलमानं चलन्तं हिरण्यनाभम् मैनाकम् अवलोक्य दृष्ट्वा [अपि] अमुष्मिन् मैनाके पवनात्मजसेवनात् रामकार्ये प्रवर्तमानस्य हनूमतः सेवायां प्रवृत्तत्वात् अपेतमन्युः अपगतक्रोधः आसीत्–मैनाकस्य प्राक्तनमपराधं विस्मरन्निन्द्रस्तस्य पक्षौ नाच्छिनदिति भावः। औपच्छन्दसिक वृत्तम् । 'पर्यन्ते यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम्' [विषमे ॥ऽ ॥ऽ ।ऽ । ऽऽ तथा समे ॥ऽ ऽ॥ ऽ।ऽ ।ऽऽ] इति तल्लक्षणात् ॥ ६ ॥

बलासुर के गर्व को दूर करने वाले वज्र से युक्त इन्द्र ने समुद्र में चलते हुए मैनाक को देखकर (भी) रामकार्य में लगे हनूमान की सेवा में उसके प्रवृत्त होने के कारण, तद्विषयक क्रोध त्याग दिया [वज्रप्रहार नहीं किया] ॥ ६ ॥

तदनु यथापुरं लङ्कापुरं प्रति प्रधावतो हनूमतः सरणिमरुणदरुणसारथेः पदवीं विन्ध्य इव वदनं व्यादाय द्विरसनजननी रंहसा सुरसा ।

तदन्विति । तदनु तदनन्तरम् यथापुरम् पूर्ववत् लङ्कापुरं प्रति प्रधावतः वेगेन गच्छतः हनूमतः सरणिम्, अरुणसारथेः सूर्यस्य पदवीम् मार्ग विन्ध्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इव द्विरसनजननी सर्पमाता सुरसा सुरसाख्या रंहसा वेगेन वदनम् मुखं व्यादाय विवृत्य शतयोजनपरिमितं व्यास्तं कृत्वेत्यर्थः, अरुणत् अवरुद्धवती।

इसके बाद पूर्ववत् लङ्का की ओर वेग से दौड़ते हुए हनुमान् के मार्ग को, सूर्य के मार्ग को विन्ध्य गिरि की तरह, सर्पमाता सुरसा मुँह फैलाकर रोक कर खड़ी हो गयी।

> उज्जृम्भितस्य तरसा सुरसां विजेतुं
> पादौ पयोधिकलितौ पवमानसूनोः।
> तस्योत्तमाङ्गमभवद्गगनस्रवन्ती-
> वीचीचयस्खलितसीकरमालभारि ॥ ७ ॥

उज्जृम्भितस्येति। तरसा वेगेन सुरसाम् सर्पमातरं विजेतुम् उज्जृम्भितस्य प्रवृद्धदेहस्य पवमानसूनोः वायुपुत्रस्य हनूमतः पादौ चरणौ पयोधिकीलितौ समुद्रसंस्थितौ [अभूताम्] तथा च तस्य हनूमतः उत्तमाङ्गम् शिरः ('उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इत्यमरः) गगनस्रवन्ती आकाशापगा गङ्गा ('स्रवन्ती निम्नगाऽऽपगा' इत्यमरः) तस्या वीचीचयेभ्यः तरङ्गपरम्पराभ्यः स्खलितानां पतितानां सीकराणाम् जलकणानां मालां बिभर्तीति तथोक्तम्, तज्जलबिन्दुरूपमौक्तिकमालयाऽलङ्कृतमित्यर्थः, अभवत्। 'मालभारि' इत्यत्र 'इष्ट केषीका मालानां चिततूल भारिषु' इति मालाशब्दस्य ह्रस्वत्वम्। हनूमत उत्तमाङ्गस्य गगनस्रवन्ती सीकरमालाधारणा सम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७ ॥

बड़े वेग से सुरसा को जीतने के लिए हनूमान् ने अपने शरीर को बढ़ाया। उस समय उनके दोनों पैर समुद्र पर अड़े रहे और सिर आकाश गंगा की तरङ्ग माला से गिरते हुए जल बिन्दुओं की [मौक्तिक] माला से सुशोभित हो उठा ॥ ७ ॥

> तनुं तनूकृत्य तदा हनूमान्कृत्वा [1]प्रवेशं जठरे तदीये।
> ततो विनिष्क्रम्य स चक्रपाणेस्[2]त्रिविक्रमस्य क्रममेव चक्रे ॥ ८ ॥

तनुमिति। तनुम् स्वशरीरं तनूकृत्य सूक्ष्मं कृत्वा तदीये सुरसासम्ब-

१. 'अवगाहं' इति पाठा०। २. 'त्रिविक्रमप्रक्रमम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्धिनि जठरे उदरे प्रवेशं कृत्वा प्रविश्य ततः तदुदरात् विनिष्क्रम्य बहिरागत्य च सः हनूमान्, त्रयः विक्रमाः पादन्यासाः यस्य तादृश्य वामनस्य चक्रपाणेः विष्णोः, क्रमम् प्रकारम् तत्सदृशप्रकारमेव [अत एव निदर्शना] चक्रे वामनानुकरणमेव चकारेत्यर्थः। यथा बलिबन्धनावसरे वामनो विष्णुः प्रवृद्धो भूत्वा पुनः प्रकृतिमापन्नस्तथा हनूमानपि तदानीं महाकायतां धृत्वाऽपि तदनु प्राग्रूपतां दधाविति भावः ॥ उपजातिर्वृत्तम् ॥ ८ ॥

उस समय हनूमान ने अपने शरीर को छोटा करके सुरसा के उदर में प्रवेश किया और [उसके मुँह के बन्द होने के पहिले ही] उसमें से वे निकल आये। उन्होंने उस समय [इस प्रकार से] वामन विष्णु का ही क्रम अपनाया ॥ ८ ॥

भूयोऽपि सोऽयं रघुनाथदूतश्चिच्छेद गच्छन्नखरैः खराग्रैः।
नृसिंहरंहाः पथि सिंहिकाङ्गं छायानिरोधादुपपन्नमन्युः ॥ ९ ॥

भूयोऽपीति। सोऽयं सुरसाविजेता रघुनाथदूतः हनूमान् भूयः पुनरपि गच्छन् पथि मार्गे छायानिरोधात् सिंहिकया स्वच्छायाग्रहणात्मकव्यापारात् उपपन्नमन्युः सञ्जातक्रोधः अत एव नृसिंहस्य रंहः वेग इव रंहो यस्य स तथोक्तः सन् सिंहिकाङ्गम् सिंहिका नाम छायाग्राहिणी राक्षसी तस्या अङ्गम् शरीरं खराग्रैः तीक्ष्णाग्रभागैः नखरैः निजनखैः ('नखः स्यान्नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः) चिच्छेद विदारयामास। यथा नृसिंहो हिरण्यकशिपुशरीरं तथैव हनूमानपि सिंहिकाङ्गं चिच्छेदेत्युपमा। वृत्तं तु पूर्ववत् ॥ ९ ॥

इस प्रकार सुरसा को जीत कर प्रसिद्ध पराक्रम रघुनाथ दूत हनूमान् पुनः आगे बढ़े। मार्ग में [सिंहिका नामक राक्षसी के द्वारा] अपनी छाया को ग्रहण किये जाने से उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने, हिरण्यकशिपु के शरीर को नृसिंह भगवान् की तरह, अपने तीखे नखों से सिंहिका के अङ्गों को चीर डाला ॥ ९ ॥

तदनु पारावारस्य पारे [1]लम्बशिखरिणि लम्बमानः प्रतनुतरवपु-

---

१. 'लम्बमानशिखरिणि लम्बमानतनुर्लङ्कापुरद्वारमासाद्य नितान्तचिन्तातन्तुसंतानितान्तःकरण' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लङ्कापुरोत्तरगोपुरद्वारमासाद्य नितान्तचिन्तातन्तुसन्तानितान्तः करणोऽभूत।

तदन्विति। तदनु सिंहिकाङ्गविदारणानन्तरम्, पारावारस्य समुद्रस्य पारे अपरतीरे लम्बशिखरिणि लम्बनामके पर्वते, 'स लम्बशिखरे लम्बे लम्बमानपयोधरे' इति रामायणोक्तेः। लम्बमानः अवरोहन् [हनूमान्] प्रतनुतरवपुः अत्यन्तसूक्ष्मशरीरः सन् लङ्कापुरस्य उत्तरगोपुरद्वारम् उत्तरदिगवस्थितं पुरद्वारम् ('पुरद्वारं तु गोपुरम्' इत्यमरः) आसाद्य प्राप्य नितान्तचिन्तातन्तुसन्तानितान्तःकरणः—नितान्तम् अत्यन्तं चिन्ताः वक्ष्यमाणचिन्ता एव तन्तुसन्तानि सूत्रसन्ततयः तैः युक्तम् नितान्तचिन्तातन्तुसन्तानितम् अन्तः करणं यस्य स तथोक्तः नानाविधया चिन्तया नितान्तव्यथितमानसः इत्यर्थः। अभूत् जातः।

इसके बाद समुद्र के उस पार लम्बनामक पर्वत पर उतर कर हनुमान् जी ने बहुत छोटा रूप धारण कर लिया और लङ्कापुरी के उत्तर वाले द्वार पर पहुँच कर वे अधिक चिन्ता युक्त हृदय हो गये।

वानरसेना कथं तरेदिममन्तरायं वितन्वन्तमुदन्वन्तम्, तरतु नाम, कथमुपयातु यातुधानराजधानीमिमाम्. सर्वथा वितथमनोरथो दाशरथिः, मोघीकृतार्णवलङ्घनः केवलमहमभवम्, [1]जीविता वा न वेति न जानामि [2]जानकीति [3]तत्रभगवतीं सीवामवजिगमिषुराञ्जनेयः प्रच्छन्नसञ्चारहेतोरस्तमयं गभस्तिमालिनः केवलमभिललाष।

वानरसेनेति। वानरसेना इमम् अन्तरायं पूर्वोक्तं विघ्नं वितन्वन्तम् कुर्वन्तं उदन्वन्तम् समुद्रं कथम् केन प्रकारेण तरेत् लङ्घयेत्, न कथमपि वानरसेनयाऽयं समुद्रस्तरीतुं शक्य इति भावः। तरतु नाम यथाकथंचिद्वानरसेना पारं गच्छतु नाम, इमाम् सर्वथा सुरक्ष्यमाणां यातुधानराजधानीम् राक्षसराजधानीं लङ्कापुरीं कथम् केन प्रकारेण उपयातु प्रविशतु ? सर्वथा सर्वप्रकारेण दाशरथिः रामः वितथमनोरथः सीताप्राप्तेरशक्यतया व्यर्थाभिलाष एव। अहम् केवलम्

१. 'जीवति' इति पाठा०। २. 'जानकीम्' इति पाठा०।
३. 'ततस्तत्रभवतीम्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्यन्तम् मोघीकृतं विफलीकृतम् अर्णवलङ्घनं समुद्रसन्तरणं येन तादृशः अभवम्, मया सर्वथा व्यर्थमेव समुद्रलङ्घनं कृतमिति भावः। जानकी वैदेही जीविता सप्राणा न वा गतप्राणा वा इति न जानामि इत्येवं चिन्तयन्—तत्र पुरे भगवतीं पूज्यां सीताम् अवजिगमिषुः अन्वेष्टुमिच्छुः आञ्जनेयः हनूमान्, प्रच्छन्नसञ्चारहेतोः भ्रमन्तं मां कश्चिन्न पश्येदिति हेतवे इत्यर्थः, केवलम् गभस्तिमालिनः सूर्यस्य अस्तमयम् पश्चिमाचलगमनम् अभिललाष इयेष।

अनेक प्रकार के विघ्नों को उपस्थित करने वाले इस समुद्र को वानर सेना कैसे पार करेगी। किसी तरह पार भी कर ले, तो इस राक्षस राजधानी में प्रवेश कैसे करेगी ? राम जी का मनोरथ सब प्रकार से व्यर्थ होना चाहता है, मैंने व्यर्थ ही समुद्र लाँघा। सीता जीवित हैं, या नहीं–यह भी नहीं जानता हूँ। इस तरह चिन्ताग्रस्त हनुमान् उस पुर में सीता का पता लगाने की इच्छा से गुप्तरूप में अपने सञ्चरण के लिए केवल सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे।

तदनु [४]शातमखस्यागस्त्यसंनिधौ निक्षिप्तस्य चापस्य प्रत्यासीदति प्रयोजनवेलेति प्रचेतसे कथयितुमिव प्रतीचीं दिश प्रविशति भगवति भास्वति।

तदन्विति। तदनु हनूमतस्तथाचिन्तानन्तरम्, शातमखस्य इन्द्रसम्बन्धिनः अगस्त्यसंनिधौ अगस्त्यमुनिपार्श्वे निक्षिप्तस्य न्यासीकृतस्य चापस्य वैष्णवस्य धनुषः प्रयोजनवेला कार्यावसरः प्रत्यासीदति समीपमायाति, कतिपयदिवसेषु गतेष्वेव रामो राक्षसानां वधाय वैष्णवं धनुः प्रयोक्ष्यत इत्यर्थः, इति वृत्तं प्रचेतसे वरुणाय कथयितुम् निवेदयितुमिव भगवति भास्वति सूर्ये प्रतीचीं वारुणीं पश्चिमां दिशं प्रविशति प्राप्तवति सति।

इसके बाद, इन्द्र के द्वारा अगस्त्यमुनि के पास रक्खे गये वैष्णव धनुष के कार्य का समय समीप आ रहा है—इस बात को मानों वरुण से बताने के लिए, सूर्य उसकी पश्चिम दिशा को चले गये तब—

गगनतलमिदमपरमहीधरकटककान्तारसमुद्भवदावपावकशिखाश्रे-

---

४. 'शातमखस्य निक्षेपचापस्य प्रत्यासीदति इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

णिभिः किं[1]शोणितम् अथवा समीपसमापतत्पतङ्गरश्मिदृढतरवेष्टन निष्ठ्यूतानलतटतपनोपलजालसमुल्लसज्ज्वालापटलैः किमा[2]पाटलितम् आहोस्विदागताय मित्राय महार्घमर्घ्यं प्रदातुं प्रमुदितचेतसा प्रचेतसा तूर्ण[3]मर्णवोदरोद्गीर्यमाणमाणिक्यकिरणैः किमरुणितम्, आहोस्वित्तारापथतरङ्गिणीसलिलमपि [4]ग्रसयितुमुज्जृम्भितस्य चरम सागरौर्वाग्नेरर्चिः पुञ्जेन[5]किमिति रञ्जितमिति सकलजनस्य संदेह-संदोहं संदधाने संध्यारागे समुदञ्चिते, सरसीरुहश्रेणिषु पत्रपुटक-पाटपिधानासु प्रतिकुसदभवनं मकरन्दभिक्षामटत्सु मधुव्रतद्विजेषु, विकचकुवलयकलिका[6]कर्षणकषायेषु[7]सायंतनवायुषु, तत इतः संचरत्सु तिमिरेषु, कालागुरुधूमस्तोमश्यामलितेषु दिक्पालपुरगोपुरव्यूहेषु, प्रतिकमलाकरं प्रेङ्खिते विश्लेषवेदनापूर्वरङ्गे रथाङ्ग[8]विहंगदीनक्रेंकारे, नक्षत्रमालालंकृते गगनमतङ्गजे।

गगनतलमिदमिति। इदम् एतद्दृश्यमानं गगनतलम् व्योममण्डलम् अपर-महीधरकटकेषु अस्ताचलनितम्बप्रदेशेषु यानि कान्ताराणि वनानि तत्समुद्-भवस्य तदुत्पन्नस्य दावपावकस्य वनवह्नेः शिखाश्रेणिभिः ज्वालासन्ततिभिः शोणितम् अरुणीकृतं किम्? अथवा समीपसमापततः निकटं समागच्छतः पतङ्गस्य सूर्यस्य ('पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च' इत्यमरः) रश्मीनां किरणानां रज्जूनां च दृढतरवेष्टनेन अतिगाढसंवलनेन निष्ठ्यूतः निर्गतः अनलः वह्निर्येषां तादृशानि यानि तटतपनोपलजालानि तटवर्त्तिसूर्यकान्तमणिसमुदयस्तेभ्यः समुल्ल-सद्भिः प्रकटद्भिः ज्वालापटलैः ज्वालाजालैः आपाटलितम् आसमन्ताद् रक्त-वर्णीकृतं किम्? आहोस्वित् अथवा आगताय स्वनिवासं प्राप्ताय मित्राय सूर्याय सुहृदे च महार्घम् अर्घ्यं पूजार्थं द्रव्यं प्रदातुं प्रमुदितचेतसा प्रसन्नहृदयेन प्रचेतसा वरुणेन तूर्णम् शीघ्रम् अर्णवोदरात् समुद्राभ्यन्तरात् उद्गीर्यमाणानि

---

१. 'किमिह' इति पाठा०। २. 'आपटलम्' इति पाठा०।
३. 'अर्णवोद्गीर्यमाण' इति पाठा०। ४. 'ग्रसितुम्' इति पाठा०।
५. 'किमनु' इति पाठा०। ६. 'कषण' इति पाठा०।
७. 'सायंवायुषु' इति पाठा०। ८. 'विहंगामाम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उद्ध्रियमाणानि यानि माणिक्यानि रत्नविशेषाणि तेषां किरणैः प्रभाभिः अरुणितं किम् ? आहोस्वित् अथवा तारापथतरङ्गिणी आकाशगङ्गा ('तारापथोऽन्तरीक्षं च' इत्यमरः) तस्याः सलिलम् जलमपि रसयितुम् पातुम् उज्जृम्भितस्य ऊर्ध्वमुत्थितस्य चरमसागरौर्वाग्नेः पश्चिमसमुद्रवर्ति वडवानलस्य ('और्वस्तु वाडवो वडवानलः' इत्यमरः) अर्चिःपुञ्जेन ज्वालाजालेन रञ्जितं किमिति इत्येवं प्रकारेण सकलजनस्य सर्वेषां जनानां सन्देह सन्दोहं सन्देहाधिक्यं सन्दधाने समुत्पादयति सन्ध्यारागे समुदञ्चिते समुज्जृम्भिते सति (उत्प्रेक्षानुप्राणितः सन्देहालङ्कारः) सरसीरुहश्रेणिषु कमलपङ्क्तिषु पत्रपुटकपाटपिधानासु पत्रपुटान्येव कपाटानि पिधानानि यासां तासु मुकुलितासु सतीष्वित्यर्थः। प्रतिकुमुदभवनम् कुमुदकुसुमानां प्रति भवनम् मकरन्दभिक्षाम् पुष्परसयाच्ञाम् अटत्सु कुर्वत्सु मधुव्रतद्विजेषु मधुव्रतद्विजेषु भृङ्गपक्षिषु ब्राह्मणेषु चेति गम्यते। विकचकुवलयकलिकाकर्षणकषायेषु विकसितकुमुदकोरकसङ्घर्षसुरभिषु ('कलिका कोरकः पुमान्' इत्यमरः, 'रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे रसः' इति यादवः) सायन्तनवायुषु सायंकालिकवायुषु सत्सु; तिमिरेषु अन्धकारेषु इतस्ततः सञ्चरत्सु प्रसरत्सु सत्सु, दिक्पालपुरगोपुरव्यूहेषु—दिक्पालानां यानि पुराणि नगराणि दिश इत्यर्थः, तेषां गोपुरव्यूहेषु बहिर्द्वारसमूहेषु, सकलदिक्ष्वित्यर्थः कालागुरुधूमस्तोमवत् [तमसा] श्यामलितेषु श्यामतां नीतेषु सत्सु, अन्धकाराच्छन्नास्वित्यर्थः। प्रतिकलाकरम् सर्वेषु कमलवनेषु विश्लेषवेदनापूर्वरङ्गे वियोगव्यथाप्रस्तावनास्वरूपे रथाङ्गविहङ्गदीनक्रेंकारे चक्रवाकपक्षिकरुणक्रन्दने प्रेङ्खिते समुत्पन्ने सति, गगनमतङ्गजे गगनरूपगजे नक्षत्रमालालङ्कृते तारकाश्रेण्या सप्तविंशति मौक्तिकहारावल्या च अलंकृते भषिते सति, नभसि तारकिते सतीत्यर्थः। ('सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैः' इत्यमरः)।

क्या यह गगनतल पश्चिमाचलवर्ती वन में उत्पन्न दावानल की ज्वाला से रक्त वर्ण हो गया अथवा समीप आये सूर्य की किरण रूप रस्सी से कस कर वेष्टित सूर्य कान्तमणियों से निकलती ज्वालाओं से पाटलवर्ण हो गया है ? अथवा [अपने यहाँ] आये हुए सुहृद सूर्य को बहुमूल्य उपहार देने के लिए प्रसन्नचित वरुण के द्वारा समुद्र के भीतर से अभी-अभी निकाले गये माणि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्यों की किरणों से अरुणवर्ण हो गया है ? अथवा क्या आकाशगङ्गा के जल को भी पीने के लिए बढ़ने वाले पश्चिमसागरवर्ती वडवानल की लपटों से रञ्जित हो गया है ?—लोगों के मन में इस प्रकार के सन्देहों को उत्पन्न करते हुये सन्ध्या राग (सन्ध्या की लाली) के प्रकट होने पर, कमल कुलों के पत्रपुटरूप कपाट—के बन्द हो जाने पर, भ्रमरपक्षी रूप ब्राह्मण जब कुमुद गृहों में मकरन्द की भिक्षा के लिए घूमने लगे, सायङ्कालिकवायु जब विकसित कुमुदकलियों के स्पर्श से सुगन्धित हो उठी, इधर-उधर अन्धकार फैलने पर जब दिक्पालों के नगरों के पुर द्वार [अर्थात् सभी दिशाएँ] काले अगर धूम पटल के समान अन्धकार से काले हो गये, कमल वनों में वियोग वेदना के प्रस्तावना स्वरूप चक्रवाकों का करूण क्रन्द न जब होने लगा, गगनगज जब नक्षत्र-माला रूप मुक्ताहार से अलंकृत हो गया, उस समय—

आविर्बभूव पूर्वाद्रेः शृङ्गे शृङ्गारजीवितम् ।
तमस्तमालकान्तारकुठारः शशलाञ्छनः ॥ १० ॥

आविर्वभूवेति । तमस्तमालकान्तारकुठारः तमोऽन्धकार एव तमाल-कान्तारम् तमालवनं तस्य कुठारः, अन्धकारविनाशक इत्यर्थः, शृङ्गारजीवितम्—शृङ्गारनाम्नो रसस्य जीवितम् जीवनं कामोद्दीपक इत्यर्थः, शशलाञ्छनः चन्द्रः, पूर्वाद्रेः उदयाचलस्य ('उदयः पूर्वपर्वतः इत्यमरः) शृङ्गे शिखरे, आविर्बभूव उदितो बभूव । रूपकालङ्कारः ॥ १० ॥

तमरूपतमालतरुवन को विनष्ट करने के लिए कुठारस्वरूप, शृङ्गार का जीवनभूत चन्द्रमा उदयाचल के शिखर पर उदित हुआ ॥ १० ॥

तत्करास्तमसा रुद्धा रेजिरे गगनाजिरे ।
शवालचयसंच्छन्नाः सरसीव बिसाङ्कुराः ॥ ११ ॥

तत्करा इति । गगनाजिरे आकाशप्राङ्गणे ('अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः) तमसा अन्धकारेण रुद्धाः आच्छादिताः तत्कराः तस्य चन्द्रमसः कराः किरणाः, सरसि सरोवरे शैवालचयसंच्छन्नाः शैवालजालावृताः बिसाङ्कुराः श्वेता मृणालकिसलया इव रेजिरे शुशुभिरे ('मृणालं बिसम्' इत्यमरः) । उपमालंकारः ॥ ११ ॥

गगन प्राङ्गण में अन्धकार से आच्छादित चन्द्रमा के कर (किरण)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसी प्रकार शोभित हो रहे थे, जैसे सरोवर में शैवाल से आवृत मृणालदण्ड शोभित होते हैं ॥ ११ ॥

तस्मिन् प्रदोषसमये सहसा हनूमान्
कीर्तिच्छटाजव[1]निकामपनीय शत्रोः ।
आविर्बभूव सुमनः परितोषणाय
लङ्काप्रवेशनवनाटकसूत्रधारः ॥ १२ ॥

तस्मिन्निति । तस्मिन् प्रदोषसमये तस्मिन् निशारम्भकाले ('प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः) लङ्काप्रवेश एव नवम् अकृतपूर्वं नाटकम् तत्र सूत्रधारः प्रवर्तको नटमुख्यः, हनूमान् सहसा शीघ्रमेव, शत्रोः रावणस्य कीर्त्तिच्छटाम् यशःप्रसररूपां जवनिकाम् प्रतिसीरां ('प्रतिसीरा जवनिका' इत्यमरः) अपनीय अपसार्य सुमनः परितोषणाय सुमनसां देवानां सामाजिकविबुधानां च परितोषणाय मनोरञ्जनाय आविर्बभूव आत्मानं प्रकटी कृतवान्, लङ्कापुरं प्रवेष्टुं प्रवृत्त इत्यर्थः। सूत्रधारो जवनिकामपनीय स्वनाटक प्रस्तावनया सामाजिकान् प्रसादयति तथैव हनूमान् रावणस्य कीर्त्तिमपनयन् तल्लङ्कापुरी-प्रवेशेन देवानतोषयत् । इतः पूर्वं केनाप्यन्येन लङ्काप्रवेशस्याकृतत्वात्तस्य नवनाटकत्वं हनूमतश्च तत्प्रवर्तकतया सूत्रधारत्वमिति भावः। समस्तवस्तुवर्ति सावयवरूपकालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१२॥

उस सन्ध्याकाल के समय सहसा हनमान् शत्रु–रावण की कीर्ति-जवनिका को हटा देव-सामाजिक विबुधों को प्रसन्न करने के लिए लङ्का प्रवेश रूप अनभिनीत पूर्व नाटक के सूत्रधारके रूप में प्रकट हुए ॥ १२ ॥

तत्काले लङ्काधिदेवतामात्मना सह विग्रहं विधातुं गृहीतयुवति-विग्रहां [2]मार्गप्रसारस्यार्गलीभूय भूयसा तर्जयन्तीं निर्जित्य [3]तया वानररचितावज्ञोपज्ञं [4]निजनिलयविलयं सरसिजासनशासनदावेदयन्त्या विहितानुमतिर्मारुतिर्लङ्कायामविकलमेव मैथिलीं विचिन्वन् नैऋर्त[5]चक्रवर्तिनः प्रासादमाससाद ।

---

१. 'यवनिकाम्' इति पाठा० । २. 'मार्गस्य' इति पाठा० ।
३. 'ततस्तया' इति पाठा० । ४. 'निजविलयम्' इति पाठा० ।
५. 'नैर्ऋति' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्काल इति । तत्काले लङ्काप्रवेशसमये मारुतिः पवनतनयो हनूमान् आत्मना स्वेन सह विग्रहम् युद्ध विधातुम् कर्त्तुं गृहीतयुवतिविग्रहाम् स्त्री रूपधारिणीम् अत एव मार्गप्रसारस्य मार्गसञ्चारस्य अर्गलीभूय विष्कम्भतां प्राप्य मार्गमवरुध्येत्यर्थः । ('तद्विष्कम्भोऽर्गलं न ना' इत्यमरः) भूयसा बाहुल्येन तर्जयन्तीम् भर्त्सयन्तीं लङ्काधिदेवताम् लङ्काधिष्ठात्रीं देवतां निर्जित्य मुष्टिघातेन विजित्य, सरसिजासनशासनात् सरसिजासनो ब्रह्मा तस्य शासनात्, वानरेण रचिता कृता या अवज्ञा पराजयः, सा उपज्ञा प्रथमज्ञानं यस्य तं तथोक्तम्, निजनिलयविलयम् स्वावासलङ्कापुरविनाशम् आवेदयन्त्या कथयन्त्या तया स्त्रीरूपधारिण्या लङ्काधिदेवतया विहितानुमतिः विहिता कृता प्रदत्तेत्यर्थः, अनुमतिः लङ्काप्रवेशरूपा यस्मै स तथोक्तः सन्, लङ्कायाम् अविकलम् निर्विघ्नमित्यर्थः, मैथिलीम् सीतां विचिन्वन् अन्विष्यन् नैर्ऋत चक्रवर्तिनः राक्षसेश्वरस्य रावणस्य प्रासादम् भवनमाससाद प्राप । हनूमतो लङ्काप्रवेशसमये लङ्काधिदेवता स्त्रीवेषं धृत्वा हनूमता सह योद्धुं मार्गमवरुध्य तं भृशमतर्जयत् । हनूमता मुष्टिघातेन विजिता सा 'यदा त्वां वानरः कश्चिद्विक्रमाद्वशमानयेत् । तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ॥' इति लक्षणां विधातुरुक्तिं हनूमते श्रावयित्वा लङ्काप्रवेशायानुमतिं ददौ । तयानुमतः स निर्विघ्नं सीतामन्वेष्टुं राक्षसराजभवनमाससादेत्याशयः ।

उस समय हनूमान् ने अपने साथ लड़ने के लिए स्त्री वेष में मार्ग रोक कर तरह-तरह से डराती-धमकाती लङ्का की अधिष्ठात्री देवी को [मुष्ठि प्रहार से] पराजित किया । उसने हनूमान् जी को ब्रह्मा का वह आदेश कह सुनाया कि जब तुम्हें कोई वानर पराजित करे तब समझ लेना कि लङ्का का विनाशकाल आ गया है । ऐसा कह कर उसने हनूमान् को [लङ्का प्रवेश की] अनुमति देदी और हनूमान् बे-रोक-टोक सीता जी का पता लगाने के लिए रावण के प्रासाद में पहुँचे ।

तत्र—

एषा राक्षससार्वभौमनगरी रक्षश्चमूरक्षिता
तस्येदं सदनं [1]सुवर्णशिखरं बिभ्राणमभ्रावलिम् ।

१. 'विमानशिखरैः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतत्पुष्पकमाहृतं धनपतेरित्यादरान्मारुते-
स्तत्रादर्शयदिन्दुदीपकिरणप्रद्योतिताशा निशा ॥ १३ ॥

तत्र, एषेति। तत्र तस्मिन् समये इन्दुदीपकिरणप्रद्योतिताशा इन्दुः चन्द्र एव दीपस्तस्य किरणैः प्रद्योतिताः प्रकाशिता आशाःदिशो यया तादृशी निशा रात्रिः, आदरात् रामकार्यप्रवृत्ततया हनूमति बहुमानात्, एषा पुरो दृश्यमाना, रक्षश्चमूरक्षिता राक्षसैरक्षिता राक्षससार्वभौमस्य राक्षसचक्रवर्तिनो रावणस्य नगरी लङ्का [अस्ति], इदमेतत् अभ्रावलिम् मेघमालां बिभ्राणम दधानमत्युन्नतमित्यर्थः, सुवर्णमयशृङ्गं तस्य रावणस्य सदनम् भवनम् [अस्ति] एतदिदं धनपतेः कुवेरात् कुवेरं पराजित्येत्यर्थः आहृतम् बलाद् पुष्पकम् पुष्पकं नाम विमानम् [अस्ति], इत्येवं प्रकारेण यत्तद्वस्तूनि मारुतेः हनूमतोऽदर्शयत्। चन्द्रकिरणः प्रकाशितासु दिक्षु सतीषु हनूमान् तत्र सर्वमपि स्फुटं ददर्शेति भावः। अत्र निशायाः प्रदर्शकत्वासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः। 'इन्दुदीप' इत्यत्र रूपकम्। तयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। शार्दूल विक्रीडितं वृत्तम् ॥ १३ ॥

उस समय चन्द्ररूप दीप की किरणों से दिशाओं को प्रकाशित करती हुई रात्रि ने [राम के कार्य में प्रवृत्त] हनूमान् को बड़े आदर से 'यह राक्षसेना से सुरक्षित राक्षसराज रावण की राजधानी है, यह मेघों को छूने वाला स्वर्णमयशिखरों से अलङ्कृत रावण का प्रासाद है, यह कुवेर से छीन कर लाया गया पुष्पक विमान है—इत्यादि वस्तुएँ दिखायीं ॥ १३ ॥

अपि च—

आदित्यः कृतकृत्य एष भविता सीतापतेरीदृशं
साहाय्यं विरचय्य कीर्तिमतुलामादित्सुना सूनुना।
इत्यालोच्य तदा किल स्वयमपि ख्यातिं ग्रहीतुं परां
लङ्कायां रघुनाथदूतसरणौ चन्द्रेण दीपायितम् ॥ १४ ॥

अपि च, आदित्य इति। अपि च किंच एष आदित्यः सूर्यः, सीतापतेः श्रीरामस्य ईदृशम् सीतान्वेषणलक्षणं साहाय्यं विरचय्य कृत्वा अतुलाम् निरुपमां कीर्तिम् आदित्सुना ग्रहीतुमिच्छता सूनुना पुत्रेण सुग्रीवेण कृतकृत्यः

१. 'अमिताम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृतार्थः भविता भविष्यति। सूर्यपुत्रः सुग्रीवोऽतुलां कीर्तिमवाप्तुकामः सन् सीतान्वेषणरूपं रामस्य साहाय्यमकरोत्। ईदृशेन स्वपुत्रेण सूर्यः कृतकृत्यो भविष्यत्येवेत्यर्थः। इत्येवम् आलोच्य विचार्य किलेति संभावनायां, तदा तस्मिन् समये चन्द्रेणापि स्वयमात्मना [रामसाहाय्यविरचनेन] परामुत्कृष्टां ख्यातिम् कीर्तिं ग्रहीतुम् लब्धुं लङ्कायां रघुनाथदूतसरणौ रामकार्यार्थमुद्यतस्य हनूमतो मार्गे दीपायितम् दीपवदाचरितम् स्वकिरणैः दीपकार्यं कृतम्। चन्द्रेण चिन्तितं तदा यदहं सूर्यश्च रात्रिन्दिवप्रकाशकतया तुल्यौ। सूर्यस्तु सुग्रीव द्वारकं रामसाहाय्यं कृत्वाऽत्मानं कृतार्थयिष्यति तदहं स्वयमेवेदानीं राम-साहाय्यं कृत्वा परां ख्यातिं किमिति न लभेयेति विभाव्य तेन हनूमतो मार्गं स्वकिरणैः प्रकाशितं कुर्वता रामसाहाय्यं कृतमिति भावः। तथोत्प्रेक्षितत्वा दुत्प्रेक्षाऽङ्कारः। पूर्ववत् वृत्तम्॥ १४॥

सीता पति राम की इस प्रकार की सहायता कर अनुपम कीर्ति पाने के इच्छुक अपने पुत्र सुग्रीव के द्वारा यह सूर्य कृतार्थ हो जायगा [तो मैं ही क्यों अपने को वञ्चित रखूँ] ऐसा विचार कर उस समय चन्द्रमा स्वयं परम यश प्राप्त करने के लिए लंका में रामदूत हनुमान् के मार्ग में [किरणों से प्रकाश देता हुआ] दीपक बन गया॥ १४॥

एवमेव पर्यटन्नस्वप्नसुन्दरीसौन्दर्यमुद्रां निद्रयाप्यतिशय्य शय्या-गृहे कृतसंवेशं वेश[1]युवतिपरिवृतमवरोधवधूजनमप्यनिरोधेन निरीक्ष्य तत्र वितथमनोरथो मारुतिर्विरचितबहुविधचिन्ताप्रकारः [2]प्राकाराद-वप्लुतः सन्नशोकवनिकायामपि मैथिलीमन्वेष्टु[3]मिष्टदेवताप्रणतिमतनुत।

एवमेवेति। एवम् उक्तप्रकारेणैव पर्यटन् इतस्ततः सञ्चरन् मारुतिः हनूमान्, न विद्यते स्वप्नो निद्रा एषां ते अस्वप्नाः देवाः (आदित्या ऋभवोऽस्वप्नाः' इत्यमरः) तेषां सुन्दर्यः अङ्गनाः, तासां सौन्दर्यमुद्राम् रामणीयकसम्पदम्' निद्रया निद्रावस्थयापि, अतिशय्य तिरस्कृत्य, जाग्रद्द-शया तु किंवक्तव्यमिति भावः। शय्यागृहे शयनमन्दिरे कृतसंवेशम् शयानम् ('स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि' इत्यमरः) वेशयुवतिपरि-

---

१, 'युवतीवनपरिवृतम्' इति पाठा०। २. 'प्रासादात्' इति पाठा०।
३. 'अभीष्टदेवताप्रणामम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वृतम्—वेश्याजनपरिवेष्टितम् अवरोधवधूजनम् मन्दोदर्याद्यन्तःपुरस्त्रीसमुदयमपि ('शुद्धान्तावरोधश्च' इत्यमरः) अनिरोधेन अप्रतिबन्धेन निरीक्ष्य दृष्ट्वा तत्र अन्तःपुरे वितथमनोरथः असफलाभिलाषः सीतामपश्यन्नित्यर्थः। विरचितबहुविधचिन्ताप्रकारः किं सीता विवशीभूय रावणभार्यात्वं स्वीकृतवती वाऽऽत्महत्यां कृतवतीत्यादि नानाविधचिन्तां कुर्वन् प्राकारादवप्लुतः लङ्घितप्राकारः सन् अशोकवनिकायाम् अशोकवृक्षप्रचुरतया तन्नाम्ना प्रसिद्धायामशोकवाटिकायामपि मैथिलीम् सीताम् अन्वेष्टुम् इष्टदेवताप्रणतिम् स्वेष्टदेवता नमस्कारम् अतनुत अकरोत्—स्वेष्टदेवान् नमस्कृत्य सीतामन्वेष्टुमशोकवनिकां प्रति प्रतस्थे इत्यर्थः।

इस प्रकार घूमते हुए हनूमान् जी ने, निद्रावस्था में भी देवङ्गनाओं के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाली, शयनगृह में सोती हुई, वेश्याओं से परिवृत मन्दोदरी आदि रावण की रानियों को विना किसी बाधा के देखा। किन्तु वहाँ [सीता का दर्शन न पाकर] विफल मनोरथ उन्होंने चहारदीवारी लाँघ कर अशोक वाटिका में सीता की खोज के निमित्त अपने इष्ट देवों को प्रणाम किया।

> असौ जनकनन्दिनीं तत इतो विचिन्वन्क्षणा-
> दशोकवनिकामगादपगतान्यमार्गभ्रमः।
> परामभिलषन्गतिं शमधनो यथा निर्मम-
> स्त्रयीमखिलकिल्बिषप्रशमनैकदिव्यौषधिम्॥ १५॥

असाविति। असौ हनूमान् जनकनन्दिनीम् सीताम् इतस्ततः विचिन्वन् अन्विष्यन् अपगतान्यमार्गभ्रमः अपगतः अपास्तः अन्यमार्गभ्रमः मार्गान्तरसञ्चारः, शमधनपक्षे संसारमार्गविभ्रान्तिः यस्य स तथोक्तः सन् क्षणात् शीघ्रम् अशोकवनिकाम् अशोकवाटिकाम् अगात् अगच्छत् यथा निर्ममः ममत्वरहितः शमधनः शम एव धनं यस्य स तथोक्तः वैराग्यजनितनिर्विकारचित्तत्वसम्पन्नो मुनिरित्यर्थः। परां गतिम् मोक्षम् अभिलषन् इच्छन् अखिलानाम् समस्तानां किल्बिषानाम् पापानां प्रशमने विनाशे एकदिव्यौषधिम् अद्वितीयमहौषधिं त्रयीम् वेदत्रयीं ब्रह्मविद्यां [गच्छति]। यथा कश्चिन्मुनिर्मोक्षं वाञ्छन् सांसारिकं प्रपञ्चं विहाय सकलपापक्षयकारिणीं ब्रह्मविद्या-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुपगच्छति तथैव सीतान्वेषणपरायणो हनूमान् अन्येषु मार्गेषु सञ्चारं परित्यज्याशोकवाटिकामुपागमदिति भावः। उपमाऽलंकार पृथ्वी वृत्तम्।

जनक नन्दिनी को ढूँढते हुए हनूमान् अन्यमार्गों में घूमना छोड़ कर अशोक वाटिका में पहुँचे, जैसे कोई शान्ति प्रिय निर्मम मुनि मोक्ष की अभिलाषा से सांसारिक प्रपञ्चों को छोड़ कर सकल पापनाश में दिव्य ओषधि-रूप ब्रह्मविद्या का आश्रय लेता है ॥ १५ ॥

ततस्तस्यां नाग[1]पुंनागतालहिन्तालतमालकृतमालसरलबकुल[2]वञ्जुलतिलकामलककुटजलिकुचकतककक्कोला[3]ङ्कोललवङ्गविकङ्कत[4]केतकी[5]कदम्बोदुम्बरकपित्थाश्वत्थकुरबकमरुबक[6]माकन्दकुन्दतिन्दुकचन्दनस्यन्दनचम्पकचाम्पेयपनसवेतसपलाशपाटला[7]रसाल[8]प्रियालुप्रायैरनेकैरनोकहनिवहैः[9]परिवृतायां परिभ्रमन्नभ्रंकष[10]विकटविटपनिविडितगगनप्रपञ्चां काञ्चन काञ्चनमयीं शिंशपामारुरोह।

तत्र इति। ततः अशोकवाटिका प्राप्त्यनन्तरम्, नागः नागकेसरः पुंनागः देववल्लभः, तालः तृणराजः, हिन्तालः श्रीतालः, तमालः तापिच्छः कृतमालः आरग्वधः, सरलः देवदारुः, बकुलः मौलिश्रीवृक्षः, वञ्जुलः अशोकः तिलकः क्षुरकः, आमलकः तिष्यफलः, कुटजः गिरिमल्लिकातरुः, लिकुचः लकुचः, कतकः जलशोधकफलत्वेन प्रसिद्धो वृक्षविशेषः, कक्कोलः, कोशफलः, अङ्कोलः निकोचकः, लवङ्गः तन्नाम्ना प्रसिद्धो वृक्षविशेषः, विकङ्कतः स्रुवावृक्षः, केतकी तृणद्रुमविशेषः, कदम्बः नीपः, उदुम्बरः जन्तुफलः, कपित्थः दधिफलः, अश्वत्थः पिप्पलः, कुरबकः रक्तकुरण्टकः, मरुबकः पिण्डीतकः, माकन्दः रसालवृक्षः, कुन्दः माध्यपुष्पतरुः, तिन्दुकः स्फूर्जकवृक्षः, चन्दनः मलयजतरुः, स्यन्दनः तिनिशः, चम्पकः हेमपुष्पकः, चाम्पेयः केसरः, पनसः कण्टकिफलः,

---

१. 'पुन्नाग' इति नास्ति क्वचित्। २. 'वञ्जुल' इति नास्ति क्वचिद्।
३. 'अङ्कोल' इति नास्ति क्वचित्। ४. 'केतकी' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'कदम्बक' इति पाठा०। ६. 'माकन्द' इति नास्ति क्वचित्।
७. 'रसाल' इति नास्ति क्वचित्। ८. 'प्रियाल' इति पाठा०।
९. 'परिवृताम्' इति पाठा०। १०. 'विकट' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेतसः वेत्रलता, पलाशः किंशुकः, पाटलः मुष्ककः, रसालः आम्रवृक्षविशेषः, प्रियालुः राजादनः एतत्प्रायैः एतन्मुख्यैः अनेकैः नानाविधैः अनोकहनिवहैः वृक्षसमूहैः परिवृतायाम् परिपूर्णायां तस्याम् अशोकवनिकायां परिभ्रमन् सीतां द्रष्टुमितस्ततः सञ्चरन्, अभ्रंकषैः गगनस्पर्शिभिरत्युन्नतैरित्यर्थः, विकट-विटपैः विशालशाखाभिः निविडतः व्याप्तः गगनप्रपञ्चः आकाशविस्तारो यया सा ताम्, काञ्चन कामपि काञ्चनमयीम् सौवर्णीम् शिंशपाम् शिंशपावृक्षम्, आरुरोह आरूढवान्, तदधः प्रदेशस्यैव सीतानिवासस्थानत्वादिति भावः।

इसके बाद नागकेसर, पुंनाग, ताल, हिन्ताल, तमाल, अमलतास, देवदारु, मौलसिरी, अशोक, तिलक, आँवला, कोरैया, बड़हर, निर्मली, कङ्कोल, अङ्कोल, लवङ्ग, विकङ्कत [अर्थात् वह वृक्ष जिसकी लकड़ी से स्रुवा बनाते हैं अतएव स्रुवावृक्ष कहा जाता है], केवड़ा, कदम्ब, गूलर, कैथ, पीपल, कुरबक, मरुवक, माकन्द [अर्थात् आम का एकभेद], कुन्द, तिन्दुक [तेन्दू] चन्दन, तिनिश, चम्पक, केसर, कटहल, बेंत, ढाक, पांडर, रसाल [आम का एक भेद] प्रियालु आदि अनेक प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण उस अशोक वाटिका में घूमते हुए हनूमान् जी, गगनचुम्बी विशाल शाखाओं से गगनमण्डल को व्याप्त करने वाले एक शिंशपा वृक्ष पर चढ़ गये [जिसके नीचे सीता जी का निवास था]।

तत्र तत्पत्रसंछन्नगात्रः पुत्रो नभस्वतः।
न्यग्रोधदलसंलीनजनार्दनदशां दधौ॥ १६॥

तत्रेति। तत्र तस्मिन् शिंशपावृक्षे, नभस्वतः वायोः, पुत्रः सुतः हनूमान्, तत्पत्रसंछन्नगात्रः—शिंशपापत्राच्छादितशरीरः सन्, न्यग्रोधदलसंलीनस्य वटवृक्षपत्रसंछन्नस्य वटपत्रे शयानस्येत्यर्थः, जनार्दनस्य विष्णोः दशामवस्थां दधौ प्रापेत्यर्थः। हनूमान् स्वगोपनार्थं तत्र निलीयातिष्ठदित्यर्थः। अन्यदशाया अन्यस्यासंभवात् तत्सदृशीं दशामिति सादृश्याक्षेपान्निदर्शनालंकारः॥ १६॥

उस शिंशपा वृक्ष के पत्तों में छिपे शरीर वाले हनूमान् उस समय वटपत्र शायी विष्णु की सी स्थिति को प्राप्त कर रहे थे॥ १६॥

मल्लीं चूतवनादिव स्नुहिवने म्लेच्छेन संस्थापितां
मालां देवकुलादिवामिषधिया क्षिप्तां श्मशाने शुना।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवीमाश्रमतस्तथा [1]स्वभवनं नक्तंचरेण च्छला-
दानीतामपनीतवेषरचनामालोकयन्मारुतिः ॥ १७ ॥

मल्लीमिति। म्लेच्छेन अनार्येण चूतवनात् आम्रोद्यानात् [उद्धृत्य] स्नुहिवने सीहुण्डकानने संस्थापिताम् आरोपितां मल्लीम् विचकिलालतामिव शुना कुक्कुरेण देवकुलात् देवालयात् आमिषधिया मांसभ्रान्त्या श्मशाने पितृवने क्षिप्ताम् मालामिव, तथा तेन प्रकारेण नक्तञ्चरेण निशाचरेण रावणेन छलात् वञ्चनात् आश्रमतः तपोवनात् [अपहृत्य] स्वभवनम् लङ्कापुरम् आनीताम् [अत एव] अपनीतवेषरचनाम् अपगतप्रसाधनाम् मलिनामिति यावत्, देवीम् सीताम्, मारुतिः हनूमान् आलोकयत् अपश्यत्। उपमाऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १७ ॥

म्लेच्छ द्वारा आम के बगीचे से [उखाड़ कर] सेहुड़ के वन में-आरोपित मल्ली के समान, तथा कुत्ते के द्वारा मांस के भ्रम से देवालय से लाकर श्मशान में रक्खी गयी माला के समान, राक्षस रावण द्वारा धोखा देकर आश्रम से [अपहृत कर] अपने भवन लङ्कापुरी में ले आयी गयी [अतएव प्रसाधन रहित-मलिन] देवी सीता को हनूमान् ने देखा ॥ १७ ॥

पुनरयमे[2]नामालोक्यैवं चिन्तां ततान।

पुनरिपि। एनाम् सीताम् आलोक्य दृष्ट्वा पुनः भूयोऽपि अयम् हनूमान् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण चिन्ताम् विचारं ततान चकार।

सीता जी को देख कर हनूमान् ने फिर इस प्रकार चिन्ता की।

ज्योत्स्नां विनापि निवसेन्निशि शीतभानु-
श्छायां विनापि [3]विलसेद्दिवसेश्वरोऽपि।
एनां विना रघुपतिः परिगृह्य धैर्यं
सप्राण एव वसतीति विचित्रमेतत् ॥ १८ ॥

ज्योत्स्नामिति। निशि रात्रौ शीतभानुः चन्द्रमाः ज्योत्स्नाम् चन्द्रिकां विनापि निवसेत् तिष्ठेत्, दिवसेश्वरः सूर्योऽपि छायां विनापि छायानाम्नीं स्वभार्यां विहायापि विलसेत् प्रकाशेत, नैतदाश्चर्यं भविष्यतीति भावः। एनाम्

१. 'स्वभवने' इति पाठा०। २. 'एनामालोक्य' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'निवसेत्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीतां विना रघुपतिः श्रीरामः धैर्यं परिगृह्य अवलम्ब्य सप्राणः सजीवः एव वसति इत्येतत् विचित्रम् आश्चर्यम्। चन्द्रिकां विनापि चन्द्रस्य, छायां विनापि सूर्यस्य च विलसनं नाश्चर्यकरं किन्तु सीतां विना श्रीरामस्य जीवनं नितान्तमाश्चर्यकरमिति भावः। अत्र चन्द्रसूर्ययोश्चद्रिकाछायाविनाभावेन विलसना सम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानात् असम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलंकारः॥ वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ १८॥

चन्द्रमा रात में कदाचित् चन्द्रिका के विना भी रह सकता है, सूर्य भी छाया के विना भी प्रकाशित रह सकता है [इसमें आश्चर्य नहीं] किन्तु इन [सीता] के विना श्रीरामचन्द्र धैर्य धारण किये जी रहे हैं, यही आश्चर्य की बात है॥ १८॥

एवं चिन्तयता हनूमता [1]कथमपि निशीथसमये गते निशीथिनीनाथेऽपि चरमगिरिशिखरोपकण्ठ[2]सेवार्थमुत्कण्ठमाने दशकण्ठस्तु निद्राशेषेण स्मर[3]शरप्रहारेण च कलुषीकृताक्षः सरसहरिचन्दनचर्चया जानकीदर्शनेच्छया च प्रकटितरागः [4]परिवर्तित[5]वैकक्षकमालया[6]मुकुटरत्नप्रभया च तिरस्कृतनक्षत्रमालः शनैः शनैरविशदशोकवनिकाम्।

एवमिति। एवम् उक्त प्रकारेण चिन्तयता हनूमता कथमपि केनापि प्रकारेण अति कृच्छ्रेणेत्यर्थः। निशीथसमये अर्धरात्रे गते व्यतियापिते सति, निशीथनाथे चन्द्रमसि अपि चरमगिरेः पश्चिमाचलस्य शिखरोपकण्ठस्य शृङ्गोर्ध्वभागप्रदेशस्य सेवार्थम् आश्रयणाय उत्कण्ठमाने अभिलाषं कुर्वति अस्ताचलशिखरमारोहति सतीत्यर्थः। दशकण्ठस्तु रावणोऽपि निद्राशेषेण निद्राया अपूर्णतयेत्यर्थः, स्मरप्रहारेण मन्मथबाणाघातेन च कलुषीकृताक्षः कलुषीकृतानि रक्तवर्णतां गमितानि अक्षीणि नेत्राणि यस्य स तथोक्तः सन्, सरसहरिचन्दनचर्चया आर्द्ररक्तचन्दन लेपेन जानकीदर्शनेच्छया सीतावलोकनाभिलाषेण च प्रकटितः दर्शितः रागः लौहित्यमनुरागश्च यस्य स तथोक्तः

---

१. 'नीते निशीथसमये निशीथिनीनाथे चरम' इति पाठा०।

२. 'सेवासमुत्कण्ठमाने' इति पाठा० ३. 'शर' इति नास्ति क्वचित्।

४. 'परिवर्तित' इति नास्ति क्वचित। ५. 'वैकक्षमालया' इति पाठा०।

६. 'मुकुटतट' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सन् (रागोऽरक्तौ मात्सर्ये क्लेशादौ लोहितादिषु' इत्यमरः) परिवर्तिता उपरि संनिवेशेन वक्षःस्थले लुठन्ती वैकक्षक माला तिर्यक्प्रसारितपुष्पमाला तथा ('वैकक्षकं तु तत्, यत्तिर्यक् क्षिप्तमुरसि' इत्यमरः) मुकुटरत्नप्रभया मुकुटस्थ-मणिदीप्त्या च तिरस्कृता पराजिता नक्षत्रमाला सप्तविंशतिमौक्तिकमाला तारकमाला च येन तथाभूतः सन्, शनैः शनैः मदेन कामपीडया च मन्दमन्दम्, अशोक वनिकामविशत् प्रविष्टः। ('सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशति मौक्तिकैः' इत्यमरः)।

इस तरह सोचते हुए हनुमान् ने किसी तरह [बड़े दुःख से] आधी रात बितायी। चन्द्रमा भी अस्ताचल के शिखर की ओर जाने के लिए उत्कण्ठित हो उठा। उस समय नींद पूरी न होने और कामदेव के बाणों के प्रहार से लाल हुए नेत्रों वाला, गीले रक्तचन्दन के लेप तथा जानकी के दर्शन की अभिलाषा से राग (१–लालिमा, २–सीता विषयक अनुराग) प्रकट करता हुआ, [वक्षः स्थल पर] लोटती हुई माला तथा मुकुट के रत्न की प्रभा से सत्ताइस दानो वाली मुक्तमाला और तारामण्डल को तिरस्कृत करता हुआ रावण धीरे-धीरे अशोकवाटिका में प्रविष्ट हुआ।

रजनिचरमभागे वारसीमन्तिनीनां
करतलकलिताभिर्दीपिकामार्जनीभिः।
दिशि दिशि परिमृष्टं यत्तमस्तत्समस्तं
हृदयमवजगाहे केवलं रावणस्य ॥ १९ ॥

रजनिचरमेति। रजनिचरमभागे रात्रेरुत्तरार्द्धे काल इत्यर्थः, वारसीमन्ति-नीनां वाराङ्गनानां ('नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः) करतलकलिताभिः करधृताभिः दीपिकाभिरेव मार्जनीभिः शोधनीभिः दिशि दिशि यत् तमः अन्ध-कारः मोहश्च परिमृष्टम् शोधितम् दूरे प्रक्षिप्तमित्यर्थः, तत् समस्तं तमः केवलं रावणस्य हृदयम् अवजगाहे प्रविवेश। धृतदीपकराभि र्वाराङ्गनाभिः परिवेष्टितो रावणो मोहान्धकाराच्छादितहृदयः सन्नशोकवनिकां प्रविवेश, मन्ये दिशि दिशि व्याप्तोऽन्धकारः वाराङ्गनाकरस्थदीपै र्निरस्यमानः सन् साकल्येन मोहभावमापद्य रावणहृदयं प्रविवेशेत्याशयः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ १९ ॥

रात के उत्तरार्द्ध में—रात के ढलने पर [रावण के साथ चलती हुई]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाराङ्गनाओं के हाथ में वर्तमान दीपरूप झाड़ूओं से बहाड़ कर जो प्रत्येक दिशा में व्याप्त अन्धकार दूर किया गया वह सारा का सारा [मोह रूप में] रावण के ही हृदय में जमा हो गया ॥ १९ ॥

सोऽयं मन्दान्धहृदयो रघुवीरपत्नीं
सीमन्तिनीति हतनीतिरवाप पापः ।
आमूलपल्लवितकोमलसल्लकीति
वैतानपावकशिखामिव वारणेन्द्रः ॥ २० ॥

सोऽयमिति । मदान्ध हृदयः—मदेन दर्पेण पक्षे मदजलेन अन्धम् विवेक शून्यं हृदयं चेतो यस्य स तथोक्तः, अत एव हतनीतिः नष्टनयः दुर्विनीत इत्यर्थः, पापः दुराचारपरायणः सोऽयं रावणः सीमन्तिनी साधारणनारी इति बुद्ध्या रघुवीरपत्नीम् सीताम्, वारणेन्द्रः मत्तगजः आमूलपल्लवितकोमलसल्लकी आदितः प्रभृति संजातपल्लवा कोमला च गजप्रियलता इत्येवं बुद्ध्या ('सल्लकीस्याद् गजप्रिया' इति हलायुधः) । वैतानपावकशिखाम्—वितानः यज्ञस्तस्यायं वैतानो यज्ञसम्बन्धी यः पावकोऽग्निस्तस्यशिखाम् ज्वालामिव अवाप प्राप्तवान् । यथा कश्चिन्मदोन्मत्तो दुर्विनीत उपद्रवकारी गजेन्द्रो मूलादारभ्य सपल्लवा कोमला चेयं सल्लकीति मत्वा यज्ञाग्निज्वालामुपगच्छेत् तथैव मदनमदान्धहृदयो दुर्विनीतो दुराचारपरायणो रावणो रघुवीरपत्नीं सीतां साधारणनारीयमिति मत्वोपजगामेत्याशयः । उपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २० ॥

मदान्ध हृदय दुर्विनीत पापी रावण रघुवर पत्नी सीता को साधारण स्त्री समझ कर उनके पास पहुँचा जैसे मदोन्मत्त दुर्विनीत उपद्रवी गज यज्ञ की आग की ज्वाला को मूल से पल्लवित कोमल सल्लकी लता [जो हाथियों को बहुत रुचिकर लगती है] समझ कर उसके पास जाये ॥ २० ॥

'[1]एतद्दर्शनेन' वेपमानतनुलता मैथिली कापुरुष[2]विषयपरुषवचन-पारम्पर्येण विदीर्यमाणहृदया हृदय[3]दयिताशयप्रत्ययादमुमेव [4]तृण-मन्तरतः कृत्वा स्थिता पर्यभाषत ।

---

१. 'दर्शनवेपमान' इति पाठा० ।
२. 'विषयवचन' इति पाठा० ।
३. 'दयितशौर्य' इति पाठा० ।
४. 'तृणाय मत्वा तृणम्' इति पाठा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतद्दर्शनेनेति। एतस्य रावणस्य दर्शनेन अवलोकनेन वेपमाना भयात् कम्पमाना तनुलता यस्याः सा तथोक्ता सती मैथिली सीता कापुरुषविषयाणि अभद्रजनोचितानि तामनुकूलयितुं रावणोक्तानि यानि परुषवचनानि अधर्मसंगततयाऽऽश्रवणीयकठोरभाषितानि तेषां पारम्पर्येण परम्परया विदीर्यमाणहृदया भिन्नान्तःकरणा सती हृदयदयितस्य प्राणेश्वरस्य रामस्य आशये राक्षससंहाररूपे प्रयोजने प्रत्ययात् विश्वासाद्धेतोः तृणम् अन्तरतः मध्ये कृत्वा पापिष्ठेन रावणेन सह साक्षात् सम्भाषणमनुचितमिति बुद्ध्याऽऽत्मनो रावणस्य चान्तराले तृणं स्थापयित्वेत्यर्थः, स्थिता वर्तमाना सती अमुम् रावणं प्रत्येव पर्यभाषत अवोचत। 'यथा श्रीरामस्तृणेनैव काकासुरं (काकरूपधरं शक्रसुतं) निरसितवान् तथा तेनैव तृणेन त्वामपि निरसिष्यतीति ज्ञापनार्थम्, पशुसमानस्य तवेदं तृणमेव भोज्यमिति बुद्ध्या वा, तृणदंशनेन श्रीरामपादयोः पतेति बुद्ध्या वा, आत्मप्रशंसापरस्य तवैश्वर्यमेतत् तृणसदृशमिति बुद्ध्या वा, जगदेकवीरस्य श्रीरामस्यापराधाचरणेन भवान्सानुबन्धो विनशिष्यतीति तृणं छित्त्वा निवेदनार्थं वा, तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युत्तरं दत्तवती। इति साहित्यमञ्जूषा व्याख्याकारा रामचन्द्रबुधेन्द्रा आहुः।

रावण को देखते ही सीता जी का शरीर काँप उठा। [उन्हें अनुकूल करने के लिये] दुर्जनोचित रावण की कर्णकटु बातों से उनका हृदय बिंध गया और हृदयेश्वर राम के [राक्षस संहार रूप] इरादे पर दृढविश्वास होने के कारण सीता ने [अपने और रावण के] बीच में तृण ओट करके रावण से इस प्रकार कहा—

[1]अयि, सकलसमाचारप्रतिष्ठानिष्ठः परमेष्ठी ननु कुलगुरुर्भवतः पर[2]कलत्ररतिरपत्रपां जनयति हि गोत्रजातानाम्।

अयीति। अयि रावण! सकलाः समस्ता ये समाचाराः तत्तद्वर्णाश्रमोचितसम्यगाचारास्तेषां प्रतिष्ठायां स्थापने निष्ठा तात्पर्यं यस्य स तथोक्तः। परमेष्ठी ब्रह्मा भवतः तव रावणस्य कुलगुरुः ननु मूलपुरुषः खलु। भवतः परकलत्रेषु परकीयासु स्त्रीषु रतिः अनुरागः, गोत्रजातानाम् त्वद्वंशजानाम्, अपत्रपाम्

१. 'अयि भोः' इति पा०।

२. 'कलत्रगात्रनेत्रप्रसक्तिरप्यनिरपत्रपा' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लज्जां जनयति उत्पादयति। सकलवर्णाश्रमधर्मरक्षापरायणस्य ब्रह्मणो वंशे जातोऽसि तस्मात्त्वयापि धर्माचरणमेव कर्त्तव्यम्। कस्यापि परस्त्रीरत्या तद्वंशजाः लज्जां प्राप्नुवन्ति, तस्मात्त्वमपीमां परकलत्ररतिं परित्यज, येन त्वद्वंशजा लज्जिता न भवन्त्विति सीतोक्तेराशयः।

अयि रावण, सकल सदाचारों के पालन में निष्ठा रखने वाले ब्रह्मा तुम्हारे कुलके मूल पुरुष (प्रवर्तक) हैं। कुलीन जनों का परकलत्र विषयक अनुराग उनके वंशजों के लिए लज्जा जनक होता है।

भूयोऽपि पञ्चवटीपरिसरममुं [1]जनमनुकूलप्रभञ्जन इवानुकूलः-[2]कूलोपकण्ठं परिभ्रष्टां नावमिव यदि नयेथाः, तर्हि तवापि दयते नियतं मदीयो जीवितेशः साक्षाज्जीवितेशोऽपि त्वयि दयालुर्भवेत्।

भूयोऽपीति। यदि भूयः पुनरपि अमुं जनम् मामित्यर्थः, पञ्चवटीपरिसरम् पञ्चवटीपर्यन्तभुवम् ('पर्यन्तभूः परिसरः इत्यमरः) अनुकूलप्रभञ्जनः अनुकूल-पवनः परिभ्रष्टाम् प्रतिकूलवायुना प्रवाहमध्यनीतां नावं तरणिं कूलोपकण्ठम् तटप्रान्तमिव अनुकूलः मम हितैषी सन् नयेथाः मां प्रापयेः, तर्हि त्वया तथा कृते सति नियतं निश्चयेन मदीयो जीवितेशः मम प्राणेश्वरः श्रीरामः, तवापि मदपहरणरूपापराधकर्तुरपि तव दयते दयां करिष्यति, हस्तगतमपि त्वां न हनिष्यतीत्यर्थः (वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा)। (इत्थम्) साक्षात् जीवितेशः प्रत्यक्षो यमराजोऽपि ('जीवितेशो यमे कान्ते' इति विश्वः) त्वयि तव विषये दयालुर्भवेत् न मारयेत् मत्प्राणेश्वरे कुपिते यमराजोऽपि त्वां त्रातुं न शक्नोति किन्तु तच्छरणापन्नं त्वां यमराजोऽपि त्वां मारयितुं न समर्थ इति भावः।

जैसे [प्रतिकूल वायु से] परिभ्रष्ट [अर्थात् प्रवाह में फँसी] नौका को अनुकूल वायु किनारे पर लगा देता है, वैसे ही यदि मुझे तुम अनुकूल होकर फिर [उस] पञ्चवटी के निकट पहुँचा दोगे तो निश्चय ही हमारे जीवितेश प्राणप्रिय राम तुम अपराधी पर भी दया करेंगे [इस प्रकार समझ लो कि] साक्षात् यमराज भी तुझपर दयालु हो जायगा [अर्थात् तुम मरण से बच जाओगे, अन्यथा तुम्हारा मरण निश्चित है]।

---

१. 'अनुकूल' इति पाठा०। २. 'कूलोपकण्ठपरिभ्रष्टाम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दाशरथे[1]रजय्याया मैत्र्याः पात्रमपि भवितासि ।

दाशरथेरिति । दाशरथेः श्रीरामस्य अजय्यायाः अनपायिन्याः मैत्र्याः मित्रतायाः पात्रमपि भवितासि भविष्यसि । त्वयि दयालुरेव न भविष्यति रामः, प्रत्युत त्वया सह शाश्वतिकीं मैत्रीमपि विधास्यतीत्यर्थः ।

भगवान् राम की स्थायी मैत्री के पात्र भी हो जाओगे ।

किंतु खरप्रमुखनिशाचरबलमथनसमय[2]रुचिरलग्नसान्द्र[3]वसापङ्किलमुखमार्यपुत्रस्य शिलीमुखं भवन्तमन्तरेण कः श्रद्दधीत निजहृदयगलितरुधिरधारया प्रक्षालयितुम् ।

किन्त्विति । किन्तु मदुक्तार्थाकरण इत्यर्थः । खरप्रमुखनिशाचरबलस्य खरासुरप्रभृतिराक्षससैन्यस्य मथनसमये विध्वंसकाले रुचिरम् साधु यथा तथा लग्नया संसक्तया सान्द्रवसया स्निग्धमेदसा पङ्किलम् मलिनं मुखम् अग्रभागः वदनं च यस्य तम्, आर्यपुत्रस्य श्रीरामस्य शिलीमुखम् बाणं, भवन्तमन्तरेण त्वां विना ('अन्तरान्तरेण युक्ते' इति द्वितीया') कः निजहृदयगलितरुधिरधारया स्वकीयवक्षःस्थलनिःसृतरक्तप्रवाहेण प्रक्षालयितुं शोधयितुं श्रद्दधीत श्रद्धां कुर्यात्, न कोऽपीत्यर्थः । मदुक्तादन्यथाकरणे खरासुरादिराक्षससंहारको रामबाणस्तवापि वक्षो विदारयिष्यतीति भावः ।

किन्तु खरासुर आदि राक्षसों के संहार के समय भलीभाँति संसक्त उनकी मज्जा से लिप्त मुख वाले राम बाण को, अपने हृदय से बहती रुधिर धारा से, तुम्हारे अतिरिक्त कौन प्रक्षालित करने की श्रद्धा रखता है ?

अथवा जनस्थानसमरादारभ्य समराभावावग्रहतृषितानां सौमित्रिपत्त्रिचातकानां [4]शोणिताम्बुपारणां [5]तवापनयश्चेत्कः समर्थो निवारयितुम् ।

अथवेति । अथवेति पक्षान्तरे । तव रावणस्य अपनयः रामाय मम प्रत्यर्पणाभावरूपो दुर्विनयो (भवति) चेत् यदि (तदा) जनस्थाने तन्नाम्नि-दण्डकावनभागविशेषे यत्समरं खरादिभिः सह जातं युद्धं तस्मादारभ्य ततः

१. 'अजेयस्य' इति पाठा० । २. 'सुचिर' इति पाठा० ।
३. 'वसापङ्कपङ्किलित' इति पाठा० । ४. 'त्वदङ्गगलितशोणित' इति पाठा० ।
५. 'तवापनयवनतश्चेत्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रभृति समरस्य युद्धस्य योऽभावः विरामः स एव अवग्रहः वृष्टिप्रतिबन्धः (इति रूपकम्) तेन तृषितानाम् रक्ताम्बुपिपासितानां सौमित्रिः लक्ष्मणस्तस्य पत्रिणः बाणा एव चातकाः पक्षिविशेषास्तेषाम् शोणिताम्बुपारणाम् त्वद्रुधिर-वारिपानम् निवारयितुं निरोद्धुं कः समर्थः, न कोऽपीत्यर्थः। झटिति स्व-दुर्विनयं परित्यज्य मां रामाय न प्रत्यर्पयसि चेत्तर्हि बहुकालादारभ्य युद्धा-भावात् पिपासिता लक्ष्मणबाणास्तव रुधिरं नियतं पास्यन्तीत्याशयः। परम्प-रितरूपकालङ्कारः।

अथवा यदि तुम्हारा यह दुर्विनय बना ही रहा [मुझे राम के हवाले तुमने नहीं किया] तो जनस्थान में [खरदूषण के साथ हुए] युद्ध के बाद से [आज तक] युद्ध विरति रूप सूखा पड़ने के कारण प्यासे लक्ष्मण-बाण रूप चातकों की, तुम्हारे रुधिर से होने वाली पारणा को कौन रोक पायेगा ?

अथ निशिचरनाथं [1]पञ्चबाणीविभिन्नं
न हि जनकसुतायाः प्रापदेकापि वाणी।
जनमुपनतमृत्युं पञ्चवक्त्राहिदष्टं
विशति हृतविषाधेरोषधेः किं नु शक्तिः॥ २१॥

अथेति। अथ जानकीकथनानन्तरम्, जनकसुतायाः जानक्याः एकापि वाणी वाक्, पञ्चानां बाणानां समाहारः पञ्चबाणीतया विभिन्नम् आहतम् स्मरशरविदारितहृदयमित्यर्थः। निशिचरनाथम् रावणम् न हि प्रापत्, कामान्धतया रावणः सीताया एकामपि वाणीं नाशृणोत्, सीतोक्तिः सर्वथा निष्फलैव जातेत्यर्थः। अत्र दृष्टान्तमाह—जनमिति। उपनतमृत्युम् आसन्न-मरणम् अत एव पञ्चवक्त्रेण पञ्चमुखेन अहिना सर्पेण दष्टं जनं हृतविषाधेः विषवेगहरणसमर्थाया ओषधेः शक्तिः सामर्थ्यं विशति किं नु ? प्रविश्य तद्वि-षदोषपरिहर्तुं प्रभवति किम् ? कदापि न प्रभवतीत्यर्थः। सीतोपदेशा आसन्न-मरणतया कामशराहतस्य रावणस्यापनयदूरीकरणे सर्वथा निष्फला अभवन् यथा आसन्नमरणतया पञ्चमुखसर्पदष्टस्य जनस्य विषदोषं हर्तुं विषघ्नतया प्रख्याताप्योषधिर्न समर्था भवतीति भावः। दृष्टान्तालंकारः—'यत्र वाक्यद्वये

१. 'पञ्चबाणावभिन्नम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बिम्बप्रतिबिम्बतयोच्यते। सामान्यधर्मो वाक्यद्वैः स दृष्टान्तो निगद्यते' इति लक्षणात्। मालिनी वृत्तम् ॥ २१ ॥

कामदेव के बाणों से विदीर्ण रावण की समझ में सीता की एक भी बात नहीं आयी, क्या मृत्यु निकट आ जाने पर पञ्च मुख सर्प से दष्ट व्यक्ति पर विष हरने में प्रसिद्ध ओषधि की शक्ति कारगर होती है ? ॥२१॥

एवं जनकदुहितुरवधीरणाफणितिमाकर्ण्य कोपपराङ्मुखो दशमुखस्तामभितो निवसन्ती[1]रारक्षिकराक्षसी[2]रुद्दिश्य 'भवत्यः, चतुर्भिरप्युपायैरेनामवश्यं वश्यां कुरुध्वम्। इयमननुकूला चेदिमां हताशां [3]प्रातरशनाय महानसं नयत' इत्यादिश्य निशान्ते प्रत्यासन्ने निशान्तमेव [4]प्रविवेश।

एवमिति। एवम् पूर्वोक्तप्रकाराम जनकदुहितुः जनकसुतायाः अवधीरणा फणितिम् तिरस्कारपूर्णवचनम् आकर्ण्य श्रुत्वा कोपपराङ्मुखः कोपेन क्रोधेन पराङ्मुखः सीतायाः प्रतिकूलः दशमुखः रावणः तामभितः सीतायाः समन्तात् ('अभितः परितः'—इत्यादिना द्वितीया) निवसन्तीः तिष्ठन्तीः, आरक्षिकराक्षसीः उद्दिश्य रक्षाधिकृता राक्षसीः प्रति, भवत्यः हे राक्षस्यः! चतुर्भिः सामदानदण्डभेदरूपैः उपायैः युक्तिभिः एनाम् सीताम् अवश्यम् नियतं वश्याम् अस्माकं वशगां (यूयं) कुरुध्वम् विधत्त, यूयं तथा प्रयतध्वं यथा सीता ममाभिलाषपूरणोद्यता भवेदित्यर्थः। इयं सीता अननुकूला चतुर्ष्वप्युपायेषु प्रयुक्तेष्वपि तथा कर्तुमसमीहमाना चेत् यदि (तर्हि) इमां हताशाम् सीतां हतभाग्यां प्रातरशनाय प्रातःकालिकभोजनाय, एतन्मांसेन प्रातः कालिकभोजनं सम्पादयितुमित्यर्थः, महानसम् पाकशालां नयत प्रापयत। इति एवम् आदिश्य आदेशं दत्त्वा निशान्ते निशायाः रात्रेः अन्ते अवसाने प्रत्यासन्ने समीपवर्तिनि सति निशान्तम् स्वभवनमेव प्रविवेश प्रविष्टः। ('समानौ रसवत्यां तु पाकस्थानमहानसे' इत्यमरः। 'निशान्तं गृहशान्तयोः' इति विश्वः)।

---

१. 'आरक्षक' इति पाठा०।
२. 'आहूय' इति पाठा०।
३. 'एनां ममावश्यम्' इति पाठा०।
४. 'प्रावराशाय' इति पाठा०।
५. 'विवेश' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार की सीता की तिरस्कार पूर्ण बातों को सुनकर रावण सीता के प्रतिकूल हो उठा। रखवाली के लिए नियुक्त, सीता के चारों ओर स्थित राक्षसियों को—'तुम लोग [साम, दान, दण्ड, भेद] चारों उपायों से इसे हमारे वश में करो, यदि [इतने पर भी] यह अनुकूल नहीं हो सके तो इस अभागिन को [इसके मांस से] प्रातः कालिक आहार [तैयार करने के] लिए पाकशाला में पहुँचा देना'—ऐसी आज्ञा देकर रात का अन्त निकट होने पर वह अपने घर में प्रविष्ट हो गया।

तदनु [1]क्षणदाचरीणां भीषणवीक्षणवाग्दोषोन्मेषेण मुकुलितहृदय-पुण्डरीका पुण्डरीकयूथपरिवृतसारङ्गाङ्गनाभङ्गीमङ्गीकुर्वाणा गीर्वाणतरुणीव शापबला[2]द्वसुधां प्रपन्ना जनकनन्दिनी चिन्तामेवमकरोत्।

तदन्विति। तदनु रावणगृहप्रवेशानन्तरम्, क्षणदाचरीणाम् राक्षसीनाम् भीषणं भयंकरं वीक्षणं विलोकनं यस्मिन् तादृशो यो वाग्दोषोन्मेषः 'तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि' इत्यादि दुष्टवचनप्रकाशनम् तेन, तथा वागेव दोषा रात्रिस्तस्या उन्मेषेण आविर्भावेन मुकुलितं सङ्कुचितं हृदयमेव पुण्डरीकं सिताम्भोजं यस्याः सा तथोक्ता ('पुण्डरीकं सिताम्भोजम्' इत्यमरः)। किं च पुण्डरीकयूथेन व्याघ्रवृन्देन परिवृता परिवेष्टिता या सारङ्गाङ्गना हरिणी तस्या भङ्गीम् समताम् अङ्गीकुर्वाणा प्राप्नुवती तथा शापबलाद् वसुधां प्रपन्ना भूलोकं प्राप्ता गीर्वाणतरुणी देवसुन्दरीव जनकनन्दिनी सीता एवं वक्ष्यमाणप्रकारां चिन्तामकरोत्। ('व्याघ्रोऽपि पुण्डरीको ना' इत्यमरः) रावणगृहप्रवेशानन्तरं तदादेशपालनपरायणा राक्षस्यो भीषणदृष्टिभिः सीतामपश्यन् 'तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि' इत्यादीनि दुर्वचांसि चाब्रुवन् येन सीताहृदयं तथैव खिन्नतामगमद्यथा भीषणदर्शनाया रात्रेरागमनेन पुण्डरीकं सङ्कोचं प्राप्नोति। तादृशी सीता तदानीं व्याघ्रगणैः परिवृता हरिणीव शापवशाद् भूलोकमागता सुररमणीव स्थिता चैवमचिन्तयदित्याशयः।

रावण के जाने के बाद राक्षसियों के भीषण अवलोकन तथा दुर्वचनों के

---

१. 'भीषणवीक्षणक्षणदाचरीणां वाक्यदोषोन्मेषान्मुकुलित' इति पाठा०।

२. 'वसुंधराम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण सीता का हृदय उसी प्रकार सङ्कुचित हो उठा जैसे डरावनी रात के आ जाने से कमल सङ्कुचित हो जाता है। उस समय व्याघ्रगण से घिरी हरिणी की दशा को प्राप्त तथा शाप वश भूमि पर आयी सुर रमणी के समान सीता इस प्रकार सोच-विचार करने लगीं—

नूनं विदितवृत्तान्ते जटायुषि गतायुषि।
[1]मामिहस्थामार्यपुत्रः किं नाधिगतवान्प्रभुः ॥ २२ ॥

नूनमिति। विदितः ज्ञातः वृत्तान्तः रावणकर्तृकमदपहरणवार्ता येन तस्मिन् जटायुषि गतायुषि रावणेन हते सति प्रभुः आर्यपुत्रः स्वामी रामः किं नूनं निश्चयेन इहस्थात् अत्र लङ्कायां स्थितां न अधिगतवान् ज्ञातवान्? अन्यथा कथमत्र नागच्छेदित्यर्थः ॥ २२ ॥

मेरे अपहरण वृत्तान्त को जानने वाले जटायु के मर जाने के कारण मेरे प्रभु आर्य पुत्र को यह अवश्य नहीं मालूम हो सका कि मैं यहाँ लङ्का में रह रही हूँ [अन्यथा यहाँ आकर वे मेरा उद्धार अवश्य करते] ॥२२॥

आहोस्वित्क्रव्यादमायया विपर्यस्तप्रकृतेः काकुत्स्थस्य किम्वनास्था संजायते।

आहोस्विदिति। आहोस्वित् अथवा कथञ्चिन्ममात्रावस्थाने प्रभुणा ज्ञातेऽपीत्यर्थः। क्रव्यादमायया क्रव्यादो राक्षसो रावणस्तस्य मायया वञ्चना-शक्त्या विपर्यस्तप्रकृतेः विपर्यस्ता परिवर्त्तिता प्रकृतिः स्वभावो यस्य तथोक्तस्य काकुत्स्थस्य श्रीरामस्य अनास्था (मयि) अनादरः सञ्जायते भवति किम्? अथवा राक्षसमायया श्रीरामस्य स्वभावः परिवर्त्तितो येन ज्ञातवृत्तोऽप्यार्यपुत्रो मयि शिथिलादरोऽभूत्किमिति भावः।

अथवा, क्या राक्षस रावण की माया ने भगवान् राम के स्वभाव को (भी) बदल दिया जिससे उन्हें [मेरे विषय में] अनादर उत्पन्न हो गया ?

न केवलं मामहरद्दुरात्मा,कृपां च रामस्य निसर्गसिद्धाम्।
इदं न चेत्संश्रितवत्सलः किं भवेत्स तूष्णी जगदेकवीरः ॥ २३ ॥

---

१. 'मामिहावस्थितादार्यपुत्रः किं नावबुध्यते' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथवा, न केवलमिति। अथवा राक्षसमायया रामप्रकृतावपरिवर्त्तितायामपि, दुरात्मा दुष्टमानसो रावणः केवलं मां सीतामेव न अहरत् (किन्तु) रामस्य निसर्गसिद्धाम् स्वभावसिद्धां कृपाम् दयां च अहरत्, दुष्टो रावणो मामेव नहि, अपि तु कामपि मायामुत्पाद्य रामस्य स्वाभाविकीं दयालुतामप्यपहृतवान्। इदम् एतद्रावणकर्तृकरामकृपापहरणं न चेत् यदि, तर्हि संश्रितवत्सलः संश्रितेषु आश्रितजनेषु वत्सलः स्निग्धः, आश्रितजनकष्टहरणपरायण इत्यर्थः, ('श्रीमान् स्निग्धस्तु वत्सलः' इत्यमरः) जगदेकवीरः सः सर्वथा प्रसिद्धपराक्रमो रामः तूष्णीम् भवेत् मौनालम्बनं कुर्यात् किम् ? नियतं रावणेन रामस्य दयालुताप्यपहृताऽन्यथा परदुःखहरणे सदोद्यतस्य निग्रहानुग्रहसमर्थस्य प्रसिद्धपराक्रमस्य रामस्योपेक्षा पारतन्त्र्यं न सम्भवेदित्याशयः। अत्र कृपाहरणाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलंकारः। उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥२३॥

अथवा दुरात्मा रावण ने केवल मुझे नहीं, अपितु राम की स्वाभाविक दयालुता को भी हर लिया, अन्यथा आश्रितों पर कृपा रखने वाले, संसार में अद्वितीय वीरप्रसिद्ध राम क्या इस तरह चुप बैठे रहते ? ॥ २३ ॥

इत्थं विलप्य रघुपुंगवमेव[1] सन्ततं चिन्तयन्ती कृच्छ्रान्मूर्च्छामगमत्।

इत्थमिति। इत्थम् उक्तप्रकारेण विलप्य विलापं कृत्वा रघुपुंगवम् रघुकुलश्रेष्ठं श्रीराममेव सततम् निरन्तरं चिन्तयन्ती मनसि ध्यायन्ती (सीता) कृच्छ्रात् कष्टाधिक्यात् मूर्च्छामगमत् मूर्च्छिताऽभूत्।

इस प्रकार विलाप कर रघुश्रेष्ठ राम का ही सतत ध्यान करती हुई सीता, कष्ट बढ़ जाने से मूर्च्छित हो गयी।

निशाचरीस्तां निरवद्यशीलां निर्भर्त्सयन्तीर्निभृतं निवार्य।
अस्वप्नलोकोत्सवमात्मदृष्टं दुःस्वप्नमेकं त्रिजटा जगाद ॥२४॥

निशाचरीरिति। निरवद्यशीलाम् प्रशस्तचारित्रां ताम् सीतां निर्भर्त्सयन्तीः परितर्जयन्तीः निशाचरीः राक्षसीः निभृतम् शान्तभावेन निवार्य सीतानिर्भर्त्सनान्निरुध्य त्रिजटा तदभिधाना वृद्धराक्षसी अस्वप्नलोकोत्सवम् अस्वप्नलोकस्य

---

१. 'एव संततम्' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवलोकस्य उत्सवम् हर्षकरम्, ('उत्सूते हर्षमित्येष उत्सवः परिकीर्तितः' इति रत्नाकरे) आत्मदृष्टम् आत्मना साक्षात्कृतम् एकं दुःस्वप्नम् रावण-विनाशसूचकतया अशुभं स्वप्नं जगाद् उक्तवती। उक्तश्चायमेवार्थो रामायणे—'स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः। राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या जयाय च ॥' इति। वृत्तमुपजातिः ॥ २४ ॥

प्रशस्त चारित्रा सीता को डराने-धमकाने वाली राक्षसियों को शान्तभाव से रोक कर त्रिजटा ने देवलोक को प्रसन्न करने वाला [रावण के विनाश का सूचक होने से] अशुभ स्वप्न जिसे उसने स्वयं देखा था, कह सुनाया ॥२४॥

किञ्च—

उपघ्नवृक्षस्य परोक्षभावा-
दुपेत्य पृथ्वीं सुचिरं लुठन्त्याः।
नक्तंचरस्त्रीमुखकर्शितायाः,
सीतालतायास्त्रिजटा जटाभूत् ॥ २५ ॥

किञ्च, उपघ्नवृक्षस्येति। किञ्च त्रिजटा केवलं स्वप्नमेव न कथितवती अपितु सीताया धैर्यमपि प्रदत्तवतीति भावः। तदेव विवृण्वन्नाह—उपघ्नेति। उपघ्नवृक्षस्य समीपस्थाश्रयवृक्षस्य ('स्यादुपघ्नोऽन्तिकाश्रये' इत्यमरः) परोक्ष भावात् असान्निध्यात् पृथ्वीम् = भुवम् उपेत्य भुवि पतित्वेत्यर्थः। सुचिरम् = चिरकालं यावत् लुठन्त्याः विवर्त्तमानायाः नक्तंचरस्त्रीणाम् = राक्षसीनां मुखैः परुषवचनकुत्सितमुद्रादिशालिभिः वदनैः कर्शितायाः निपीडितायाः, सीता-लतायाः त्रिजटा जटा शिफा पुनरुत्थानमूलमित्यर्थः, अभूत् जाता। ('स्कन्ध-शाखाशाले शिफाजटे' इत्यमरः)। त्रिजटा रामाभ्युदयसूचकं स्वप्नं श्रावयित्वा सीतामाश्वासयामासेति भावः। उपजातिर्वृत्तम्। रूपकालङ्कारः॥ २५ ॥

राम से वियोग होने के कारण भूमि पर गिर कर चिरकाल तक लोटती हुई तथा राक्षसियों के [परुष वचन एवं कुत्सितमुद्रा आदि से युक्त] मुखों से पीडित सीता के लिए [अपना स्वप्न सुना कर] त्रिजटा अवलम्ब बन गयी, जैसे आश्रयवृक्ष के न रहने के कारण पृथ्वी पर गिर कर चिर काल तक लोटती हुई तथा रात्रिञ्चर कीट विशेष के मुख से खण्डित होने वाली लता को जटा [उत्पन्न हुई जड़] फिर से उठने योग्य बना देती है ॥ २५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदनन्तरमात्मत्यागाय स्पृहयन्त्यां मैथिल्यां मारुतिरियमनुपेक्षणीया तपस्विनी नीतिममुञ्चतीति चिन्तां परिगृह्य नेदीयानस्या बभूव ।

तदनन्तरमिति । तदनन्तरम् त्रिजटास्वप्ननिवेदनानन्तरम्, मैथिल्याम् सीतायाम् आत्मत्यागाय शरीरविसर्जनाय ('आत्मा जीवे धृतौ देहे' इत्यभिधानात्) स्पृहयन्त्याम् स्पृहां कुर्वन्त्याम्, नीतिम् पातिव्रत्यरूपमुचितमार्गम् अमुञ्चती अपरित्यजन्ती इयं तपस्विनी वराका सीता अनुपेक्षणीया उपेक्षितुमनर्हा इति चिन्तां परिगृह्य एवं विचिन्त्य मारुतिः हनूमान् सीतायाः नेदीयान् समीपवर्ती बभूव । अन्तिकशब्दादीयसुनि प्रत्यये 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इति नेदादेशः ।

इसके बाद सीता जी आत्मत्याग के लिये जब स्पृहा करने लगीं तब हनूमान् यह सोच कर कि नीतिमार्ग से विचलित न होने वाली यह वेचारी सीता अब उपेक्षणीय नहीं है—उनके पास चले गये ।

ततः—

देव्या दशाननवचोमयवज्रदीर्ण-
कर्णान्तरव्रणविरोपणभेषजानि ।
विस्रम्भणार्थमयमन्वयसंगतानि
रामाभिकीर्त्तनमधूनि शनैर्न्यषिञ्चत् ॥२६॥

ततः, देव्या इति । ततः हनूमति सीतामुपगते, अयम् हनूमान्, दशाननस्य रावणस्य वचोमयम् वचनरूपं यद् वज्रं तेन दीर्णम् विदारितं यत् कर्णान्तरम् श्रवणाभ्यान्तरभागः तत्र यद् व्रणं तस्य विरोपणे पूरणे भेषजानि औषधानि ('भेषजौषधभैषज्यानि' इत्यमरः) । अन्वयसंगतानि श्रीरामवंशवर्णनपूर्वकाणि रामाभिकीर्तनमधूनि श्रीरामप्रशंसापरकवचनरूपमधूनि, विस्रम्भणार्थम् सीताया विश्वासोत्पादनार्थम्, शनैः मन्दमन्दं न्यषिञ्चत् अपातयत् । हनूमान् सीताया विश्वासार्थं श्रीरामवंशवर्णनपूर्वकं श्रीरामप्रशंसापरकमधुरवचनानि सीतामश्रावयत् , तानि वचनानि श्रुत्वा, वज्रवद्रावणोक्तवचनजनितपीडां सीता विस्मृतवती । यथा कर्णाभ्यन्तरे जातस्य व्रणस्य विरोपणाय तत्र मधु निषिच्यते, तद्वन्हनूमान् सीताकर्णयोराभ्यन्तरभागे रावणस्यात्यर्थोद्वेजकवचनरूपकुलिशेन विदीर्णेसति तत्र जातस्य दुःखरूपव्रणस्य विरोपणाय औषध-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूपाणि रामप्रशंसामधून्यपातयदिति भावः। रूपकमलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २६ ॥

इसके बाद हनूमान् ने सीता के हृदय में विश्वास उत्पन्न करने के लिए रावण के वचन रूप वज्र से विदीर्ण सीता के कान में उत्पन्न दुःखव्रण को भरने में औषध स्वरूप, श्रीराम के वंश वर्णन से युक्त तथा उनकी प्रशंसा से पूर्ण वचन रूप मधु सीता के कान में डाल दिया ॥ २६ ॥

तदनन्तरं समन्तात्प्रसारितनयना जनकतनया तस्यां शाखायां शाखामृगमुद्वीक्ष्य दुःस्वप्नबुद्ध्या चकितहृदया सलक्ष्मणाय [1]रामाय भर्त्रे भद्रमाशंसमाना जनमिमं दुरापस्वापं स्वप्नः कथमाप्नुयादिति विचिन्त्य[2] मायया समायातनैरृत[3]पतिबुद्ध्या तस्मान्मारुतपुत्रात्त्रास।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरं श्रीरामसंकीर्तनात्परतः समन्तात् सर्वतः प्रसारितनयना केनेद श्रीरामसंकीर्तनं कृतमिति जिज्ञासावशात् क्षिप्तदृष्टिः जनकतनया सीता, तस्यां शाखायाम् शिंशपावृक्षस्थ निकटवर्तिनि विटपे शाखामृगम् वानरम् उद्वीक्ष्य दृष्ट्वा दुःस्वप्नबुद्ध्या स्वप्ने वानरदर्शनस्याशुभसूचकतया दुःस्वप्नोऽयं यथा दृष्ट इति भ्रान्त्या चकितहृदया सम्भ्रान्तमानसा सलक्ष्मणाय लक्ष्मणसहिताय रामाय भर्त्रे स्वामिने भद्रम् कुशलम् आशंसमाना कामयमाना दुरापस्वापम् दुर्लभनिद्रम् इमम् मल्लक्षणं जनम् सीतामित्यर्थः स्वप्नः कथम् आप्नुयात् संगच्छेत्, शोकचिन्ताभिभूताया मे निद्रैव नास्ति तत्कुतः स्वप्न इत्यर्थः। इति एवम् विचिन्त्य आलोच्य मायया वानरवेषेण समायातनैर्ऋतपतिबुद्ध्या समायातः समागतः नैर्ऋतपतिः राक्षसनाथो रावण इति भ्रान्त्या तस्मात् नेदीयसो मारुतपुत्रात् पवनतनयात् तत्रास भीताऽभवत्। 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यापादानत्वात्पञ्चमी।

इसके बाद चारों ओर दृष्टि डालने पर [शिंशपा वृक्षा की] उस निकटवर्ती शाखा पर वानर को देख कर उसे दुःस्वप्न समझ कर सीता का हृदय

१. 'रामाय' इति नास्ति क्वचित्। २. 'विचिन्तयमाना मायासमायाता' इति पा०
३. 'नैर्ऋत इति बुद्ध्या' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घबड़ा गया और वे राम और लक्ष्मण का कल्याण मनाने लगीं, उन्होंने [तत्काल ही फिर] सोचा कि मुझे तो कभी नींद ही नहीं आती है तब मैं स्वप्न कैसे देखूँगी ! ऐसा विचार कर सीता ने यह निश्चित मान लिया कि अपनी माया से वानर का रूप धर कर यह रावण ही आया है,–इस भ्रम के कारण उस हनूमान् से वे डर गयीं ।

सोऽपि समवतीर्य वचनवैचित्र्याज्जनकपुत्रीं [1]प्रत्याययितुमाञ्जनेयः कृताञ्जलिर्व्यजिज्ञपत् ।

सोऽपीति । सः आञ्जनेयः अपि समवतीर्य शिंशपावृक्षशाखातः अवरुह्य वचनवैचित्र्यात् वचनरचनाकौशलविशेषात् जनकपुत्रीम् सीतां प्रत्याययितुम् विश्वासयितुं कृताञ्जलिः बद्धकरयुगलः सन् व्यजिज्ञपत् वक्ष्यमाणप्रकारेण उक्तवान् ।

उस हनूमान् ने भी [शिंशपा की शाखा से] उतर कर वचनकौशल से सीता को विश्वास दिलाने के लिए हाथ जोड़ कर ऐसा निवेदन किया—

कल्याणि ! त्वद्वियोगेन तीव्रवेगेन ताम्यतः ।
राघवेन्द्रस्य दूतं मामन्यथा मा स्म मन्यथाः ॥२७॥

कल्याणीति । हे कल्याणि सौभाग्यशालिनि ! अनेन सम्बोधनपदेन रामस्य कुशलं सूचितम् । तीव्रवेगेन तीक्ष्णप्रभावेण त्वद्वियोगेन तव सीताया विरहेण ताम्यतः क्लिश्यतः राघवेन्द्रस्य श्रीरामस्य दूतं माम् वानररूपेण त्वत्पुरतः समुपस्थितम् अन्यथा वानरवेषधररावणरूपेण मा स्म मन्यथाः न विजानीयाः ('स्मोत्तरेलङ् च' इति लङ्लकारः, 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेधः) ॥२७॥

हे कल्याणि ! अति तीव्र वेग वाले तुम्हारे विरह से क्लेश भोगने वाले राघवेन्द्र श्रीराम का मैं दूत हूँ, आप मुझे और कोई न समझें ॥ २७ ॥

त्वया सह प्रस्थितचित्तवृत्ति-
विभावरीकोकसमानधर्मा ।
वचोऽब्रवीन्मैथिलि ! मन्मुखेन
त्वां कौशलं कोशलराजपुत्रः ॥ २८ ॥

---

१. 'प्रत्यापयन्, प्रत्याययन्' इति च पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्वयेति । हे मैथिलि जानकि ! त्वया सह प्रस्थितचित्तवृत्तिः प्रयातमनोभावः त्वदेकाधीनहृदय इत्यर्थः । अत एव विभावर्याम् रात्रौ यः कोकः चक्रवाकस्तस्य समानो धर्मो यस्य स तथोक्तः ('धर्मादनिच्केवलात्' इत्यनिच्) रात्रौ प्रियया वियुक्तश्चक्रवाक इव समधिकविरहपीडित इत्यर्थः । कोसलराजपुत्रः कोसलराजः दशरथस्य पुत्रः श्रीरामः मन्मुखेन मद्द्वारा त्वाम् सीताम् कौशलम् कुशलसम्बन्धि वचः वचनम् अब्रवीत् ॥ २८ ॥

हे मैथिलि ! कोसलराज दशरथ के पुत्र राम ने, जिनका हृदय तुम्हारे ही साथ है, और रात के समय जिनकी दशा चक्रवाक की-सी रहती है,—तुमको मेरे द्वारा अपना कुशल-समाचार कहला भेजा है ॥ २८ ॥

अपि च—

शिरसा तव सौमित्रिरकरोदभिवादनम् ।
अपृच्छत्सोऽपि भद्रं त्वामधिपश्च वनौकसाम् ॥ २९ ॥

अपि च, शिरसेति । सौमित्रिः सुमित्रानन्दनो लक्ष्मणः शिरसा मूर्ध्ना तवाभिवादनम् त्वां प्रति नमस्कारम् अकरोत् । सः प्रसिद्धः वनौकसाम् वनमेव ओकः निवासस्थानं येषां ते वनौकसः वानरास्तेषां ('मर्कटो वानरः कीशो वनौकाः' इत्यमरः) अधिपः स्वामी सुग्रीवोऽपि त्वां भद्रम् कुशलम् अपृच्छत् च ॥ २९ ॥

और सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने आप को शिरसा प्रणाम किया है, तथा वानरराज सुग्रीव ने भी आप से कुशल-समाचार पूछा है ॥ २९ ॥

एवमभिहितया तया संभूतविश्रम्भतया भयादपेतया तावदनुयुक्तः पवनतनयो वालिमरणकारणं सुग्रीवस्य सख्यमाख्याय प्राचेतसचेत इव संततसंनिहित[1] रामनाममङ्गलमङ्गुलीयकमस्यै प्रायच्छत् ।

एवमिति । एवम् उक्तप्रकारेण अभिहितया उक्तया (अत एव) संभूतविस्रम्भतया संजातविश्वासतया भयात् रावणोऽयं वानरवेष इति भ्रान्ति जनितात् भयादित्यर्थः, अपेतया मुक्तया तया सीतया तावत् प्रथमम् अनुयुक्तः पृष्टः पवनतनयः हनूमान् वालिमरणकारणम्—वालिनो मरणे कारणम् हेतुभूतम्

१. 'रामनामकमङ्गुलीयकम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुग्रीवस्य सख्यम् मैत्रीम् आख्याय अभिधाय प्राचेतसचेत इव वाल्मीकिमुनिहृदयमिव संततम् निरन्तरं सन्निहितेन ध्यानविषयतया तत्र वर्तमानेन पक्षे उत्कीर्णतया तत्र वर्तमानेन, रामनाम्ना मङ्गलम् कल्याणं यस्य तादृशम् अङ्गुलीयकम् श्रीरामप्रेषिताभिज्ञानमुद्रिकाम् अस्यै सीतायै प्रायच्छत् प्रादादत्। हनूमतोक्तप्रकारेण निवेदने कृते सीताया विश्वासः सञ्जातो भयं चापगतम्। ततो जानक्या पृष्टो हनूमान्, सुग्रीवस्य रामेण सह मैत्री रामकृतबाण-प्रहारेण वालिवध इति सर्वं वृत्तान्तं सम्यक् कथितवान्, तदनु स्वनामाङ्कितां रामेण दत्तामभिज्ञानमुद्रिकां सीतायै प्रदत्तवान्।

इस तरह कहने से सीता को विश्वास हो गया और भय जाता रहा, उनके पूछने पर पवनसुत हनूमान् ने वाली का मरण और उसमें हेतुभूत सुग्रीव की राम के साथ मैत्री आदि को बता कर वाल्मीकि के हृदय समान ही जिस पर [उत्कीर्ण होने से] राम नाम रूप मङ्गल सदा वर्तमान रहता है, ऐसी [रामद्वारा दी गयी] अंगूठी सीता को दी।

सौख्यावहस्य पवनात्मज[1]नीयमान-
रामाङ्गुलीयकविलोकनवासरस्य।
सत्यं [2]कलां शततमीं भुवि नैव भेजे
पाणिग्रहोत्सवदिनं जनकात्मजायाः॥ ३०॥

सौख्येति। जनकात्मजायाः जानक्याः पाणिग्रहोत्सवदिनम् विवाहमहोत्सववासरः सौख्यावहस्य आनन्दकरस्य, पवनात्मजेन हनूमता नीयमानम् आनीय दीयमानं यद् रामाङ्गुलीयकम् श्रीरामाभिज्ञानमुद्रिका तस्य विलोकनम् संदर्शनं तद्वासरस्य तद्दिनस्य, सत्यम् यथार्थं शततमीमपि कलाम् अंशं ('कला स्यादंशमात्रके' इति विश्वः) भुवि नैव भेजे। सीता, विवाहदिवसे रामप्राप्तिजनितसुखापेक्षया रामाङ्गुलीयकदर्शनेन तदानीं शतगुणितं सुखमन्वभूदिति भावः। अत्र कलाभजनसम्बन्धेऽप्यसम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलंकारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३०॥

जानकी के विवाहोत्सव का दिन, आनन्दप्रद हनूमान् द्वारा लाये गये

१. 'दीयमान' इति पाठा० २. 'कलाशततमीमपि' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामाङ्गुलीयक के दर्शनदिवस की सौवीं कला को (भी) वस्तुतः इस भू पर नहीं पा सका ॥ ३० ॥

ततस्तं जानकी निःसीमहर्षा बभाषे ।

तत इति ! ततः रामाङ्गुलिविलोकनानन्तरं जानकी निःसीमहर्षा निरतिशयानन्दा सती तम् हनूमन्तं बभाषे वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवती ।

इसके बाद निःसीम हर्ष का अनुभव करती हुई सीता ने हनूमान् से कहा--

महाभाग ! सर्वथास्य दुरात्मनः प्रत्यासीदति [1]मृत्युरेवमनलाभिधानया विभीषणदुहित्रा [2]स्वमात्रा प्रेषितया भाषितं च । अयमप्यनार्यशीलस्तुरीयमुपायमन्तरेण [3]न मामार्यपुत्रस्य समर्पयिष्यति । नियतमहमपि मासादूर्ध्वं न शक्नुयां [4]प्राणान्कृपणान्धारयितुमिति ।

महाभागेति । हे महाभाग परोपकारपरायणतया महाभाग्यसम्पन्न ! सर्वथा सर्वप्रकारेण अस्य दुरात्मनः दुष्टहृदयस्य रावणस्य मृत्युः मरणकालः प्रत्यासीदति समीपमायाति, अचिरेणैवायं दुरात्मा यमसदनं गमिष्यतीत्यर्थः, एवम् अनेन प्रकारेण स्वमात्रा निजजनन्या प्रेषितया मदन्तिकं प्रहितया विभीषणदुहित्रा विभीषणसुतया अनलाभिधानया अनलानामिकया भाषितम् कथितं च । अनार्यशीलः दुराचारपरायणः अयम् रावणः अपि तुरीयमुपायमन्तरेण चतुर्थमुपायं दण्डं विना माम् सीताम् आर्यपुत्रस्य स्वामिनो रामस्य न समर्पयिष्यति न दास्यति नियतम् निश्चितम् अहम् सीता अपि मासादूर्ध्वम् एकमासानन्तरमेव कृपणान् क्लिश्यतः प्राणान् धारयितुं न शक्नुयाम्, मासादूर्ध्वं जीवितुं न क्षमा भवेयमित्यर्थः । इत्येवं बभाषे इति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः ।

महाभाग, सब तरह से रावण की मृत्यु निकट आती जा रही है--ऐसा विभीषण की कन्या अनला ने [मुझसे] कहा है, उसे उसकी माता ने [यही कहने के लिए मेरे पास] भेजा था । यह दुराचारी रावण भी बिना दण्ड पाये मुझे राम को नहीं सौंपेगा । निश्चय ही मैं एक मास के उपरान्त अपने दीन प्राणों को नहीं धारण कर सकूँगी ।

---

१. 'मृत्युस्तथैव' इति पाठा० २. 'मह्यं च स्वमात्रा' इति पाठा० ।
३. 'ममार्यपुत्रस्य न' इति पाठा० । ४. 'कृपणान्' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतदाकर्ण्य मारुतिर्महानुभावे ! मा भैषीः। भवतीं वहन्नेव तूर्णमुल्लंघितसागरो [1]रघुवरचरणसरसिज[2]समीपमुपयास्यामि। [3]मामसमर्थं न समर्थयेथा इत्यभिहितवान्।

एतदिति। एतत् सीतावचनम् आकर्ण्य श्रुत्वा मारुतिः हनूमान्, हे महानुभावे समधिकसामर्थ्यसम्पन्ने ! मा भैषीः भयं मा कुरु, भवतीम् पूज्यां वहन् स्कन्धदेशे समुपवेश्य नयन्नेव तूर्णम् शीघ्रम् उल्लङ्घितसागरः उत्तीर्णसमुद्रः सन् रघुवरचरणसरसिजसमीपम् श्रीरामचरणकमलान्तिकम् उपयास्यामि गमिष्यामि। माम् हनूमन्तम् [तथा करणे] असमर्थम् अक्षमं न समर्थयेथाः मा मन्यस्व इति एवम् अभिहितवान् उक्तवान्।

सीता का कथन सुन कर हनूमान् ने कहा—महानुभावे ! आप डरें मत, आप को [अपने कन्धे पर] धारण किये हुए ही शीघ्र समुद्र को लाँघ कर मैं श्रीराम के चरण कमल के समीप पहुँचा सकता हूँ, मुझे [ऐसा करने में] असमर्थ न समझें।

किञ्च—

महामहीध्रसध्रीचीं सोऽयं वृद्धिमुपेयिवान्।
यया नूनमपां राशिः कुल्यातुल्यां [4]दशां दधौ॥ ३१॥

किञ्च, महामहीध्रेति। किञ्च तदतिरिक्तम्, सोऽयम् हनूमान् (स्वसामर्थ्यप्रदर्शनाय) महता महीध्रेण गिरिणा सध्रीचीम् समानाम् वृद्धिम् विशालताम् उपेयिवान् प्राप्तवान्, यया शरीरवृद्ध्या नूनम् अपां राशिः समुद्रः कुल्यातुल्याम् कृत्रिमसरित्समां दशाम् स्थितिं दधौ दधार। हनूमतः प्रवृद्धदेहापेक्षया समुद्रोऽल्पतरः प्रतीयते स्मेति भावः। ('महीध्रे शिखरिक्ष्माभृत्' 'कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्' इत्युभयत्राप्यमरः)॥ ३१॥

और हनूमान् ने महान् पर्वत के समान अपना शरीर बढ़ाया जिसके सामने सागर एक छोटी-सी नहर के समान प्रतीत होने लगा॥ ३१॥

---

१. 'राघव' इति पाठा०। २. 'समीपम्' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'इत्येवं मां समर्थं समर्थयेथा इत्यभिधाय' इति पाठा०।
४. 'विशेदृशाम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ तमुवाच सा जनकराजसुता मुदिता
किमु तव दुष्करं चरणलङ्घितवारिनिधेः ।
अपि तु मया सह प्लवगपुंगव ! यास्यसि चे-
[1]न्नियतमपायिनी परिणमेद्भवतः पदवी ॥ ३२ ॥

अथेति । अथानन्तरम्, सा दृष्टहनूमद्देहवृद्धिः (अत एव) मुदिता हृष्टा जनकराजसुता जानकी तम् हनूमन्तम् उवाच उक्तवती—हे प्लवगपुंगव वानरश्रेष्ठ ! चरणाभ्यामेव लङ्घितः अतिक्रान्तः वारिनिधिः समुद्रो येन तादृशस्य तव किमु किं दुष्करम् कर्तुमशक्यम्, न किमपि दुष्करमित्यर्थः । अपितु किन्तु मया सह मामादायेत्यर्थः, यास्यसि गमिष्यसि चेद्यदि, (तर्हि) नियतम् निश्चयेन भवतस्तव पदवी मार्गः अपायिनी सङ्कटबहुला परिणमेत् जायेत । मामादाय गच्छन्तं त्वामनु धावन्तो राक्षसा इमे बाधामुत्पादयिष्यन्तीति मां सह नेतुं न युज्यत इति भावः । तत्कुटकं वृत्तम्—'हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु तत्कुटकम्' इति तल्लक्षणात् ॥ ३२ ॥

इसके वाद प्रसन्न सीता ने हनूमान् से कहा—जब चरणों से ही तुमने समुद्र लाँघ लिया तब तुम्हें कौन-सा कार्य दुष्कर है ? किन्तु हे कपिश्रेष्ठ ! यदि मुझे साथ लेकर चलोगे तो निश्चय ही [राक्षसों के पीछा करने से] तुम्हारा मार्ग विघ्नबाधा से सङ्कटमय हो जायगा ॥ ३२ ॥

अन्यच्च—

पातिव्रत्यहुताशनेन यदि तं कुर्यामहं भस्मसात्
सत्यं दाशरथेः शरस्य न भवेदात्मोचिता पारणा ।
किं चैतस्य यशोनिशापतिरपि प्रम्लानकान्तिर्भवेद्-
[2]भ्रातः ! शासितरावणे रघुपतौ यात्रा मम [3]श्रेयसी ॥ ३३ ॥

अन्यच्च, पातिव्रत्येति । अन्यच्च अपि च अहम् सीता यदि तम् रावणं पातिव्रत्यहुताशनेन निजपातिव्रत्यरूपतेजसा भस्मसात् कुर्याम् दहेयं (तर्हि) सत्यम् यथार्थम् दाशरथेः श्रीरामस्य शरस्य बाणस्य आत्मोचिता स्वानुरूपा

---

१. 'इयमनपायिनी' इति पाठा० ।

२. 'तस्माच्छासित' इति पाठा० ३. 'श्रेयसे' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पारणा तृप्तिः न भवेत्। यद्यहमेव स्वपातिव्रत्यानलेन दहेयं तदा कुपितो रामशरो रावणभेदनावसरमलभमानस्तृप्तो न जायेतेत्यर्थः। किञ्च एतावदेव न हि भवति, एतस्य रामस्य यशोनिशापतिः यशश्चन्द्रोऽपि प्रम्लानकान्तिः प्रक्षीणप्रकाशः भवेत्, रावणनिग्रहावसरलाभाभावदिति भावः। हे भ्रातः! रघुपतौ श्रीरामचन्द्रे शाशितरावणे विध्वंसितरावणे सति, श्रीरामेण रावणे हते सत्येवेत्यर्थः, मम सीतायाः यात्रा इतः प्रयाणम् श्रेयसी अतिशयेन प्रशस्या, एवं मया गन्तुं न युज्यत इति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ३३॥

और यदि मैं अपने पातिव्रत्य तेज से उस रावण को भस्म कर देती हूँ तो वस्तुतः राम के बाण की तदनुरूप तृप्ति न हो पायेगी। दूसरे, राम के यश रूपी चन्द्रमा की कान्ति भी फीकी पड़ जायगी, इसलिए हे भाई, राम द्वारा रावण के मारे जाने के बाद ही मेरा [यहाँ से] जाना उत्तम होगा॥ ३३॥

एवं व्याहृतः पवनसुतो [1]विनीतां सीतां[2] पुनराबभाषे।

एवमिति। एवमनेन प्रकारेण [सीतया] व्याहृतः उक्तः, पवनसुतो हनूमान् विनीताम् विनयान्वितां सीतां पुनः भूयः आबभाषे उक्तवान्।

इस प्रकार [सीता के द्वारा] कहे गये हनूमान् ने पुनः विनीत सीता से कहा—

मायामृगेण तव मैथिलि! वञ्चितायाः
शाखामृगेण पुनरागतिरित्ययुक्तम्।
एषा कथापि भुवने [3]वितता यदि स्यात्
का नाम रामधनुषः प्रथिता प्रशस्तिः॥ ३४॥

मायामृगेणेति। हे मैथिलि! जानकि! मायामृगेण मायया कनकमृगभावं गतेन मारीचेन वञ्चितायाः प्रतारितायाः प्रतार्य रावणेनापहृताया इत्यर्थः, तव सीतायाः शाखामृगेण वानरेण पुनरागतिः स्वाध्युषितदेशं प्रत्यागमनम् इति अयुक्तम्, मर्यादाशीलायास्तव मायामृगेण वञ्चनं शाखामृगेणानयनं चेति

---

१. 'विनीताम्' इति नास्ति क्वचित्। २. 'अभाषत' इति पाठा०।
३. 'विदिता' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वयमपि न युक्तमित्यर्थः। एषा कथापि मायामृगेण वञ्चिता रामपत्नी शाखामृगेण रामं प्रापितेति वार्ता भुवने जगति वितता प्रसृता स्यात् भवेद्यदि [तदा] रामधनुषः रामचापस्य प्रथिता सर्वत्र विख्याता प्रशस्तिः प्रशंसा का नाम ? शाखामृगेण रामभार्योद्धृतेति वार्ता संभावितस्य रामस्य, विश्वविश्रुतस्य तद्धनुषश्च कृतेऽपकीर्तिकरी भविष्यति, तत्त्वं कष्टं सहमाना नेत्रे निमील्य कानिचिदहानि गमय, स्वल्पेनैव कालेन लङ्कामागत्य रामेण रावणो हन्तव्यः, त्वं च प्रत्यानेतव्येत्येव श्रेयस्करमिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

हे मैथिलि ! मायामृग के द्वारा आप छली गयी हैं। [उसके बाद] फिर आप को शाखामृग-वानर [यहाँ से] ले जाय, यह उचित न होगा। यदि यह बात कि राम की स्त्री का उद्धार एक शखामृग ने किया,–संसार में फैल जाय तो राम के धनुष की कौन सी प्रसिद्ध प्रशंसा रह जायगी ? ॥३४॥

किं बहुना, इत्येतदेव[1] चिन्तितम्। यदर्हं राघवगृहिण्यास्तदेव निश्चितम्। यत्सदृशमीदृशस्य समाचारस्य तदेव प्रकाशितम्। यदनुगुणं रावणापराधप्रतिक्रियायास्तदेवानुमोदितम्। यदनुकूलं कुलवधूशीलस्य तदेव कथितम्। यदुचितं क्षत्रियाणीवाणी[2]प्रक्रमस्य तदेवोपक्रान्तमिति बहुशः प्रशस्य सर्वथा रामलक्ष्मणौ लङ्कामिमां प्राप्ताविति [3]जानकि ! जानीहि अनुजानीहीमं जनं प्रस्थातुम्।

किमिति। किं बहुना किमधिकेन, इत्येतत् एव एतावदेव चिन्तितम् विचारितम् (भवत्या)। राघवगृहिण्याः राघवस्य रघुकुलोत्पन्नस्य रामस्य गृहिण्याः धर्मपत्न्याः यत् अर्हम् योग्यं तदेव निश्चितम् निर्णीतम्। ईदृशस्य एतादृशस्य लोकोत्तरस्येत्यर्थः, समाचारस्य पातिव्रत्यधर्मस्य यत् सदृशं तुल्यं तदेव प्रकाशितम् अभिव्यञ्जितम्। रावणापराधप्रतिक्रियायाः रावणकृतापराधप्रतिविधानस्य यत् अनुगुणम् अनुकूलं तदेव अनुमोदितम् अनुमतम्। कुलवधूशीलस्य कुलाङ्गनाचरित्रस्य यत् अनुकूलम् उचितं तदेव कथितम् उक्तम्। क्षत्रियाण्याः क्षत्राङ्गनायाः वाणीप्रक्रमस्य वचनप्रकारस्य यत् उचितं तदेव उप-

---

१. 'एवम्' इति पाठा०। २. 'क्रमस्येति' इति पाठा०।
३. 'जानकि, जानीहि जनमिममनुजानीहि प्रस्थातुम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रान्तम् व्यवसितम्। इत्येवं बहुशः बहुवारं प्रशस्य सीतावचनप्रशंसां कृत्वा सर्वथा नियतं रामलक्ष्मणौ इमां लङ्कां प्राप्तौ आगतौ इति हे जानकि! जानीहि अवगच्छ। इमं जनम् मामित्यर्थः। प्रस्थातुम् प्रयातुम् अनुजानीहि अनुमन्यस्व।

अधिक कहने से क्या, [आप ने] यही तो सोचा है। रघुकुलोत्पन्न राम की धर्मपत्नी के लिए जो उचित है, आपने वही निश्चय किया है: लोकोत्तर पातिव्रत्य के जो अनुरूप है वही अभिव्यक्त किया है, रावण कृत अपराध की प्रतिक्रिया के जो अनुकूल है उसी की सम्मति दी है। कुलाङ्गना के चरित्र के जो अनुकूल है, वही कहा है, क्षत्राणी की जैसी वाणी होनी चाहिए उसी का उपक्रम किया है—इस प्रकार नाना प्रकार से सीता की प्रशंसा कर कहा कि निश्चय ही रामलक्ष्मण को इस लंका में पहुँचा हुआ ही समझें, अब मुझे जाने की अनुमति दें।

किञ्च—

काकुत्स्थेन विदितपूर्वम[1]भिज्ञानं किमपि दीयतामिति।

किं च, काकुत्स्थेनेति। किं च अनुमत्या सहैव काकुत्स्थेन श्रीरामेण विदितपूर्वम् पूर्वं विज्ञातम् किमपि अभिज्ञानम् परिचयार्थं वस्तु दीयताम्, यस्मिन् मया दीयमाने सति रामो विश्वसेद्यदहं (हनूमान्) भवतीं दृष्टवान् कुशलसंवादेन प्रसन्नां च कृतवानित्यर्थः। इत्येवमाबभाष इति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः।

और श्री राम जी जिसे जानते हों ऐसी कोई ज्ञापक वस्तु [अभिज्ञान] आपके द्वारा मुझे दी जाय।

सा तु दीर्घं निःश्वस्य निश्चित्य पुरा खलु चित्रकूट[2]तटवने तरुणतरतरुरमणीयतया [3]मन्दीभवन्नन्दनवैभवे रघुनन्दनेनोपधानीकृताङ्कायाः मम पयोधरपरिसरे खरतरनखराग्र[4]विरचितविदारणं धाराधरनामानं काकं रघुपति[5]र्व्यलोकयत्।

१. 'किमप्यभिज्ञानं दीयताम्' इति पाठा०। २. 'मटवने' इति पाठा०।
३. 'मन्दीकृत' इति पाठा०।
४. 'रघुनन्दनोपधानीकृतोत्सङ्गायाः' इति पा०। ५. 'अवालोकयत्' इति पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेति । सा तु सीतापि दीर्घं निःश्वस्य कस्यापि कथात्मकस्याभिज्ञानस्य श्रीरामस्मारकतया सविषादमित्यर्थः निश्चित्य इयमेव कथाऽभिज्ञानोपयोगिनीति निर्णीय पुरा पूर्वं खलु इति वक्यालङ्कारे तरुणतरैः अत्यन्तनूतनैः तरुभिः वृक्षैः रमणीयम् सुन्दरं तस्य भावस्तत्ता तया, मन्दीभवन्नन्दनवैभवे विजितेन्द्रवन-सौन्दर्ये चित्रकूटतटवने चित्रकूटाचलसमीपवर्तिनि कानने रघुनन्दनेन श्रीरामेण उपधानीकृतः उपबर्हीकृतः अङ्कः उत्सङ्गः यस्यास्तादृश्याः, मदुत्सङ्गे शिरोनि-धाय रघुपतौ शयाने सतीत्यर्थः ('उपधानं तूपबर्हः' इत्यमरः) मम सीतायाः पयोधरपरिसरे स्तनतटे खरतरनखराग्रैः अतितीक्ष्णनखाग्रभागैः विरचितं विहितं विदारणं क्षतं येन तं तथोक्तम् धाराधरनामानं काकं रघुपतिः रामो व्यलोकयत् दृष्टवान् ।

सीता ने लम्बी साँस लेकर और [अभिज्ञानोचित वृत्तान्त का] निश्चय कर कहा—पूर्वकाल में चित्रकूट पर्वत के समीपवर्ती वन में, जिसके आगे नये-नये वृक्षों से रमणीय होने के कारण नन्दनवन फीका पड़ रहा था। जिस समय श्री रामजी मेरे अङ्क को तकिया बनाये हुए [शयन कर रहे] थे, उसी समय मेरे स्तन प्रान्त को धाराधर नामक एक काक ने अपने तीखे नुकीले नख से विदीर्ण कर दिया। उसे रामजी ने देखा।

कुशरूपकुशेशयासनास्त्रं
विजहौ वासविवायसे स वीरः ।
अथ तत्कृपया हृताक्षिमात्र-
श्चिरजीवी स दधौ यथार्थसंज्ञाम् ॥ ३५ ॥

कुशरूपेति । सः श्रीरामः, वासवस्यापत्यं पुमान् वासविः ('अत इञ्' इत्यञ्) स चासौ वायसश्चेति वासविवायसः तस्मिन्, काकरूपधरे जयन्ताभि-धान इन्द्रपुत्रे कुशरूपम् कुशमेव कुशेशयासनः ब्रह्मा तदस्त्रम् ब्रह्मास्त्रम् विजहौ मुमोच । अथ बाणत्यागानन्तरम्, तस्य रामस्य कृपया दयया हृताक्षिमात्रः नष्टैकनयनः चिरजीवी लब्धपुनर्जीवन इत्यर्थः स काकः चिरजीवितया चिर-जीवीति यथार्थसंज्ञाम् अन्वर्थाभिधानं दधौ । सोऽयं ब्रह्मास्त्रानुद्रुतः सन् राममेव शरणं ययौ । सोपि दयालुस्तस्यैकं नेत्रमेव हृत्वा तमभयमकरोदेवं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिरजीवी सन् स 'चिरजीवी'ति काकसंज्ञामन्वर्थामकरोदित्यर्थः। 'चिरजीवी चैकदृष्टिर्मौकुलिः पिकवर्धनः' इत्यमरः) ॥ ३५ ॥

तब उन रामने [अपराधी] काक वेषधारी उस इन्द्रपुत्र जयन्त पर कुशरूप ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया [कहीं शरण न मिलने पर वह राम की ही शरण में आया] तब भगवान् राम ने दया कर उसकी एक आँख मात्र को नष्ट कर उसे चिरजीवी कर दिया–इस प्रकार उसने 'चिरजीवी' काकसंज्ञा को सार्थक कर दिया [काक का एक नाम 'चिरजीवी' भी है] चिरजीवी होने से उस काक ने उसे अन्वर्थ कर दिया ॥ ३५ ॥

सैषा परिचितकथास्मरणा[१]द्विगुणितदुर्दशा केशपिनद्धमपरमिदमभिज्ञानमुन्मुच्य।

सैषेति। सैषा सीता परिचितकथास्मरणात् पूर्वानुभूतवृत्तान्तस्मरणात् द्विगुणितदुर्दशा द्विगुणितकष्टा केशपिनद्धम् केशतिरोहितम् अपरम् अन्यत् इदम् अभिज्ञानम् वस्तुरूपमभिज्ञानं चूडामणिम् उन्मुच्य केशादवकृष्य ['कपिवरस्य ददौ' इति वक्ष्यमाणेनान्वयः]।

उस पुरानी बात की याद आ जाने से सीता का दुःख दूना हो गया। उन्होंने केश से तिरोहित चूड़ामणि रूप इस दूसरे अभिज्ञान को उतार कर–

चूडामणिं कपिवरस्य ददौ दशास्य
[२]संत्रासपुञ्जितरुषाग्निदशं कृशाङ्गी।
आदाय[३]तम्प्रणतिपूर्वमसौ प्रतस्थे
माणिक्यगर्भवदनोरगतुल्यबाहुः ॥ ३६ ॥

चूडामणिमिति। कृशाङ्गी विरहवेदनया दुर्बलशरीरा सीता दशास्यः रावणस्तस्माद् यः सन्त्रासः भीतिस्तेन पुञ्जिता अर्जिता या रुषा कोपः सैव अग्निः सन्तापकत्वाद् वह्निस्तस्य दशेव दशा यस्य तं तथोक्तम्। चूडामणिम् शिरोरत्नम् कपिरस्य हनूमतो ददौ दत्तवती। असौ कपिवरः प्रणतिपूर्वं

---

१. 'द्विगुण' इति पाठा०। २. संत्रासपूजितमहाग्निशिखं' इति पाठा०।
३. 'तत्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नमस्कारपूर्वकम्, तम् मणिम् आदाय हस्तेन गृहीत्वा, माणिक्यं मणिः गर्भे अभ्यन्तरे यस्य तादृशं वदनं मुखं यस्य तेन उरगेण सर्पेण तुल्यः बाहुर्यस्य स तथोक्तः सन् प्रतस्थे सीतासकाशाच्चलितः। 'दशास्यसंत्रास पुञ्जितरुषाग्निदशम्' इत्यत्रोत्प्रेक्षानुप्राणितनिदर्शना। 'माणिक्यगर्भवदनोरगतुल्यबाहुः' इत्यत्रोपमा। तयोर्नैरपेक्ष्येण संसृष्टिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३६ ॥

कृशाङ्गी सीता ने, रावणकृत उत्पीडन से सञ्चित कोपाग्नि सदृश चूड़ामणि को कपिवर हनूमान् को दिया और उसे हाथ में लेकर वे सीता को प्रणाम कर वहाँ से चल पड़े, उस समय [मणियुक्त करतल के कारण] हनुमान् की भुजा उस सर्प की शोभा को प्राप्त कर रही थी जिसके मुख के भीतर मणि हो ॥ ३६ ॥

ततः कृतकृत्य [1]एव निर्गत्य निजागमनं निशाचरपतेः प्रकाशयितुमशोकवनिकां [2]प्रबभञ्ज प्रभञ्जनात्मजः।

तत इति। ततः सीताधिष्ठितप्रदेशात् कृतकृत्यः साधितस्वागमनप्रयोजन एव निर्गत्य निष्क्रम्य प्रभञ्जनात्मजः वायुसूनुः हनूमान्, निजागमनम् लङ्कायां स्वस्य आगमनम् निशाचरपतेः रावणस्य प्रकाशयितुं सूचयितुम् अशोकवनिकाम् प्रबभञ्ज उत्पाटयामास।

सीता के पास से कृतार्थ हो कर ही निकल कर वायु-पुत्र ने अपने आगमन की सूचना रावण को (भी) दे देने के लिए अशोक वाटिका को उजाड़ डाला।

स्वकृत्यैः शाखानामवनतिमतीव प्रकटय-
न्नसार्गेण भ्राम्यन्परिकलितभङ्गः सुमनसाम्।
द्विजानां सन्त्रासं श्रुतिमधुरवाचां विरचय-
न्नयं [3]लङ्कोद्याने दशवदनलीलामतनुत ॥ ३७ ॥

स्वकृत्यैरिति। स्वकृत्यैः वृक्षाद् वृक्षान्तरे पतनादिरूपोद्धतव्यापारैः शाखानाम् विटपानामतीव अत्यन्तम् अवनतिम् भुग्नत्वं प्रकटयन् आविर्भावयन्, पक्षे स्वकृत्यैः वेदविरुद्धैः स्वोद्धतक्रियाभिः शाखानाम् वेदप्रभेदानामतीव

१. 'एष निशाचरपतेः प्रकटयितुम्' इति पा०। २. 'वभञ्ज' इति पाठा०
३. 'लोकोद्याने' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवनतिम् अविवेचनरूपह्रासम् प्रकटयन् प्रदर्शयन्। अमार्गेण अपथेन भ्राम्यन् सञ्चरमाणः, पक्षे लोकविरुद्धमार्गेण वर्तमानः। सुमनसाम् पुष्पाणाम्, पक्षे देवानां परिकलितभङ्गः ध्वंसं कुर्वन्नित्यर्थः। ('सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्री देवबुधयोः पुमान्' इति वैजयन्ती)। श्रुतिमधुरवाचाम् कर्णमधुरशब्दकारिणां द्विजानाम् पिकादि-पक्षिणाम्, पक्षे आम्नाय मधुरवचनानां ब्राह्मणानाम् ('श्रुतिः श्रोत्रे तथाम्नाये', 'दन्त-विप्राण्डजा द्विजाः' इत्युभयत्रापि विश्वप्रकाशामरौ)। संत्रासम् भयं विरचयन् कुर्वन्, अयम् हनूमान् लङ्कोद्याने अशोकवाटिकायाम् दशवदनलीलाम् रावणक्रीडाम् तत्क्रीडासदृशक्रीडामित्यर्थः, अतनुत अकरोत्। यथा रावणो वेदविरुद्धाचारैः शाखानाम् (कठकौथुमादिवेदभागानामवनतिमकरोत्, लोकविरुद्धमार्गेणावर्त्तत, सुमनसां देवानां भङ्गमवमानमकरोत्, श्रुतिमधुरवाचाम् वेदमधुरवचनानां द्विजानाम् विप्राणां सन्त्रासं व्यधत्त तथैव लङ्कोद्याने हनूमानपि स्वचङ्क्रमणैः वृक्षशाखानां भुग्नत्वमकरोत्, अपथेन संचरमाणः सुमनसां पुष्पाणां ध्वंसमकरोत्, श्रुतिमधुरवाचाम् कर्णमधुरशब्दकारिणां द्विजानाम् पक्षिणां सन्त्रासमकरोत्, इत्थं रावणलीलामेवासौ हनूमानन्वकरोदित्यर्थः। अन्यलीलाया अन्यत्रासम्भवात्तत्सदृशीं लीलामिति सादृश्याक्षेपादसम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शना। सा च श्लेषानुप्राणितेति तयोः संकरः। शिखरिणी वृत्तम्।

अपनी उछल-कूद रूप क्रियाओं से वृक्ष की शाखाओं को अत्यन्त अवनत कर दिया, वे रास्ते चले, फूलों को तोड़-ताड़ कर मसल डाला, कर्ण मधुर शब्द करने वाले पक्षियों को संत्रस्त कर दिया, इस प्रकार हनूमान् ने लङ्का के उद्यान (अशोक-वाटिका) में रावण की लीला का प्रदर्शन किया, रावण ने भी अपने वेद-विरुद्ध कार्यों से वेद की [कठ-कौथुम आदि] शाखाओं को अवनत कर दिया था, वे रास्ते चलता था, देवों का [सुमनसाम्] मानमर्दन करता था, वेदमधुरभाषी ब्राह्मणों को [श्रुतिमधुरवाचां द्विजानाम्] त्रास दिया करता था ॥ ३७ ॥

तदनु सरभस[1]मारक्षिकरक्षोगणनिवेदित[2]प्रसदवनकदन[3]कुपित-

१. 'आरक्षक' इति पाठा०। २. 'प्रमदावन' इति पाठा०
३. 'प्रकुपित' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशवदनप्रेषितान्पितृपतिकिङ्करभयङ्करा[1]न्किङ्करान्प्रहस्तपुत्रेण जम्बुमालिना सह निहत्य चैत्यतोरण[2]मुपगतवति हनूमति ।

तदन्विति । तदनु अशोकवाटिकाभञ्जनात् परतः सरभसम् सवेगं ('रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः) आरक्षिकरक्षोगणेन अशोकवाटिकापरिपालकराक्षससमुदयेन निवेदितम् रावणसमीपं गत्वा विज्ञापितं यत् प्रमदवनकदनम् हनूमत्कृताशोकवनिकाभञ्जनं तेन हेतुना कुपितेन दशवदनेन रावणेन प्रेषितान् प्रहितान् पितृपतिकिङ्करभयङ्करान् यमदूतवद्भयङ्करान् किङ्करान् अशीतिसहस्रसंख्याकान् रावणभृत्यान् 'तेषामशीतिसाहस्रं किङ्कराणां तरस्विनाम्' इति रामायणोक्तेः । प्रहस्तपुत्रेण प्रहस्ताख्यमन्त्रिसुतेन जम्बुमालिना सह निपात्य हत्वा चैत्यतोरणम् प्रासादद्वारोपरितनभागम् हनूमति उपगतवति आरूढे सति । हनूमान् यदाऽशोकवनिकामामर्दितवान् तदा तद्रक्षका राक्षसास्तद्वृत्तं रावणाय न्यवेदयन्, तेन प्रेषितान् यमकिंकरभीषणान् राक्षसान् भृत्यान् तन्नायकं जम्बुमालिनं नाम प्रहस्तपुत्रं च हनूमान् व्यापादितवान्, तथा कृत्वा प्रासादद्वारोपरितनभागमधिष्ठितवति हनूमतीत्यर्थः ।

इसके बाद वेगपूर्वक [जाकर] राक्षसों द्वारा अशोक वाटिका की बरबादी का समाचार दिये जाने पर कुपित रावण द्वारा भेजे गये यमराज के दूतों की तरह भयङ्कर भृत्यों को तथा प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को मार कर जब हनूमान् जी प्रासादद्वार के ऊपरी भाग पर पहुंचे तब—

पुनरपि निशमितामितनिशिचरगणमारणो रावणः सचिवान्पञ्चपञ्चाननपराक्रमान्प्र[3]हसनप्रमुखान्बलीमुखं जीवग्राहं गृह्णीध्वमिति प्राहिणोत् ।

पुनरपीति । पुनः भूयोऽपि निशमितं श्रुतम् अमितनिशिचरगणस्य अशीतिसहस्रसंख्याकराक्षसनिवहस्य मारणम् वधो येन स तथोक्तः रावणः पञ्चाननपराक्रमान् सिंहसदृशशौर्यान् प्रहसनप्रमुखान् प्रहसनादीन् पञ्च सचिवान् बलीमुखम् वानरम् जीवग्राहं गृह्णीध्वम् जीवन्तं गृह्णीतेत्यर्थः । जीवतीति जीवः 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इति कर्तरि कः, न तु भावे घञ् । 'समूलाकृतजीवेषु

१. 'किंकरान्' इति नास्ति क्वचित् । २. मुपागवतति' इति पाठा० ।
३. 'प्रहस्त' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हन्कृञ्ग्रहः' इति णमुल् । इत्येवम् [आदिश्य] प्राहिणोत् प्रेषितवान् ।

पुनः असंख्य राक्षसों का वध सुन कर रावण ने सिंह के समान पराक्रमशाली प्रहसन-आदि अपने पाँच मन्त्रियों को, [उस] वानर को जीता पकड़ लो–ऐसा आदेश देकर भेजा।

तत्र तानपि [1]तोरणपरिघेण पञ्च पञ्चतां नीत्वा मुहुर्मुहुर्दाशरथि-[2]दूतोऽहमित्यात्मानमुद्घोषयन्तं हनूमन्तं नियन्तुं [3]नियन्ता निखिलरक्षसा[4]मध्यक्षमक्षकुमारमध्यक्षिपत् ।

तत्रेति । तत्र चैत्यतोरणे तोरणपरिघेण तोरणस्थितार्गलेन तानपि पञ्च रावणप्रेषितान् पञ्चसचिवानपि पञ्चतां नीत्वा हत्वेत्यर्थः, मुहुर्मुहुः वारं वारं दाशरथिदूतः रामदूतोऽहमिति अनेन प्रकारेणात्मानं प्रकाशयन्तम् हनूमन्तं नियन्तु निग्रहीतुं निखिलरक्षसाम् सकलनिशिचराणां नियन्ता अधिपतिः रावणः अध्यक्षम् अक्ष्णोः पुरोऽवस्थितं सेनाध्यक्षं वा अक्षकुमारम् तदाख्यं स्वपुत्रम् अध्यक्षिपत् त्वादृशस्य शूरस्य पश्यतोऽयं वानरोऽसंख्यराक्षसानवधीदिति धिक् त्वामित्थं निन्दितवान्, हनूमन्तं निग्रहीतुं स्वपुत्रमक्षकुमारं प्रहितवानिति यावत् ।

वहाँ उन पाँच मन्त्रियों को भी तोरण की अर्गला से मार कर मैं रामचन्द्र का दूत हूँ, इस प्रकार बार-बार घोषणा करते हुए हनूमान् को निग्रहीत करने के लिए राक्षसराज रावण ने सामने विद्यमान [अपने पुत्र] अक्षकुमार को कटु एवं निन्दापूर्ण वाक्यों से उत्तेजित किया ।

वक्षःसंघट्टचूर्णीकृतकनकमहाभित्तिकैत्योत्थधूल्या
नक्षत्राणामकाले सरणिमरुणयन्वीरलक्ष्म्या समेतः ।
रक्षःशूराख्यशारां क्षितितलफलके क्षेपणीयां हनूमा-
नक्षक्रीडां विधातुं दशमुखनगरीचत्वरे तत्वरेऽसौ ॥ ३८ ॥

वक्षःसंघट्टेति । वक्षःसंघट्टेन वक्षःस्थलसंघर्षणेन चूर्णीकृताः चूर्णतां प्रापिताः कनकमहाभित्तयः स्वर्णमयोन्नतकुड्यानि यस्य तादृशं यच्चैत्यं प्रासाद-

---

१. 'पञ्चतां नीत्वा तोरणपरिघेण' इति पाठा० ।
२. 'दासः' इति पाठा० । ३. 'नियन्ता' इति नास्ति क्वचित् ।
४. 'अभ्यक्षमक्षकुमारमाक्षिपत्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तस्मादुत्था उत्पन्ना या धूलिः कुड्यानां स्वर्णमयत्वेन स्वर्णाभं रजः तया, अकाले असमये नक्षत्राणां सरणिम् आकाशम् अरुणयन् रक्ताभं कुर्वन् (अरुणशब्दात् 'तत्करोति तदा चष्टे' इति णिच् तदन्ताल्लटः शत्रादेशः। वीरलक्ष्म्या समेतः असौ हनूमान्, रक्षःशूराः राक्षसयोधा इत्याख्या यासां ताः रक्षःशूराख्याः शाराः अक्षगुटिकाः यस्यां तादृशीं क्षितितलमेव फलकम् अक्षपट्टम् तस्मिन् क्षेपणीयाम् निपातनीयाम् अक्षक्रीडाम् अक्षकुमारसंहृति लक्षणां पाशद्यूतकेलिं त्रिधातुम् कर्तुं दशमुखनगरीचत्वरे लङ्कापुरप्राङ्गणे तत्वरे त्वरां कृतवान् त्वरयाऽऽययावित्यर्थः। श्लेषरूपकयोः सङ्करः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥३८॥

छाती के टक्करों से हनूमान् ने प्रासाद की दीवारों को चूर-चूर कर दिया और इस प्रकार प्रासाद के गिरने से उड़ी हुई [सुनहली] धूल से आकाश को असमय में रक्ताभ बनाते हुए वीरलक्ष्मी से युक्त वे राक्षसशूर रूप गुटिकाओं को भूतलरूप बिसात पर फेंक कर खेली जाने वाली अक्षकुमारवधरूप अक्षक्रीडा करने के लिए लङ्कापुर के मैदान में तेजी से आ गये ॥ ३८ ॥

तत्क्षणं क्षणदाचराणां[1] मिषतामेव निष्पादि[2]तरङ्गनिष्पेपकृत्यश्चैत्य[3]प्रासादमुत्पाटितस्तम्भजातजातवेदसा दग्ध्वा भूयोऽप्युपाश्रिततोरणः समीरणसुतो बभूव। एनमपि वृत्तान्तं श्रुत्वा कुपितस्य [4]निशाचरपतेर्युगपदेव निपेतुः पुत्रे सुत्रामजिति [5]समितिहेतोर्विंशतिदृष्टयः।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तत्कालमेव राक्षसानां मिषताम् पश्यताम् पश्यतो राक्षसाननादृत्येत्यर्थः ('षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी) निष्पादितम् सम्पादितं रङ्गे रणभूमौ निष्पेषकृत्यम् अक्षसंहारकार्यं येन स तथोक्तः, उत्पाटितस्तम्भजातेन समुत्पाटितस्तम्भप्रकटितेन जातवेदसा वह्निना चैत्यप्रासादम् चैत्यगोपुरं दग्ध्वा भस्मीकृत्य समीरणसुतः पवनपुत्रो हनूमान् भूयोऽपि पुनरपि समुपाश्रिततोरणः पूर्वतोरणस्य दग्धतया तोरणान्तरमारूढो बभूव। एनम् अक्षकुमारवधतोरणदाहात्मकम् वृत्तान्तमपि श्रुत्वा कुपितस्य निशाचरपतेः रावणस्य विंशति-

---

१. 'अनिमिषतम्' इति पाठा०। २. 'तदङ्ग' इति पाठा०।
३. 'प्रसाद' इति पाठा०। ४. 'पिशिताशनपतेः' इति पाठा०।
५. 'समति' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृष्टयः विंशतिसंख्याकान्यपि नेत्राणि समितिहेतोः सङ्ग्रामाय सुत्रामजिति इन्द्रजिति मेघनादे पुत्रे स्वपुत्रे युगपदेव एकवारमेव निपेतुः अपतन् । (जातवेदास्तनूनपात्' इत्यग्निपर्यायेष्वमरः, 'सुत्रामा गोत्रभिद् वज्री', समित्याजि समिद्युधः' 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इति सर्वत्रामरः) ।

तत्काल निशाचरों के देखते-देखते ही युद्धभूमि में [अक्षकुमारादियोद्धाओं का] संहारकार्य निष्पन्न कर, खम्भों को उखाड़ फेकने से प्रकट हुए अनल से प्रासाद को जला कर हनूमान् पुनः दूसरे तोरण पर चढ़ गये । इस वृत्तान्त को भी सुनकर कुपित रावण के बीसों नेत्र एकबारगी, इन्द्र को जीतने वाले अपने पुत्र मेघनाद पर पड़े ।

अनिमिषभुवने वा व्योम्नि वा भूतले वा
समरमुपगतं त्वां वीक्षितुं कः समर्थः ।
इति नुतिवचनेन श्लाघयन्मेघनादं
प्लवगमिह नयेति प्राहिणोद्राक्षसेन्द्रः ॥ ३९ ॥

अनिमिषेति । न निमिषन्तीत्यनिमिषाः देवाः (इगुपधलक्षणः कप्रत्ययः) तेषां भुवने लोके स्वर्गे, वा अथवा व्योम्नि आकाशे, भूतले पृथिव्यां वा, समरम् युद्धभूमिम् उपगतम् प्राप्तं त्वां वीक्षितुम् द्रष्टुमपि कः समर्थः शक्तः, भूर्भुवः स्वरात्मके त्रैलोक्ये सर्वे शूरास्त्वया निर्जिताः, नेदानीं तव प्रतियोधः कोऽपीति तात्पर्यम् । इति एवं नुतिवचनेन प्रशंसापरकवाक्येन मेघनादमिन्द्रजितं श्लाघयन् प्रशंसन् राक्षसेन्द्रः रावणः, प्लवगम् वानरमिह अत्र मत्समीपं नय प्रापय इत्येवम् [आदिश्य तम्] प्राहिणोत् प्रेषितवान् । मालिनी वृत्तम् ॥ ३९ ॥

देवलोक में, या आकाश में अथवा भूलोक में कोई वीर, युद्ध में तुम्हारी ओर आँखें उठा कर देख भी नहीं सकता (लड़ना तो दूर रहा) इस प्रकार प्रशंसात्मक वाक्य से मेघनाद की प्रशंसा करता हुआ रावण, 'वानर को [पकड़ कर] यहाँ ले आओ'—ऐसा कह कर भेजा ॥ ३९ ॥

नेतुं शोकरसं निशाचरपतेर्हन्तुं [1]चमूं रक्षसां
तस्यान्तःपुरयोषितां रचयितुं मानं विना रोदनम् ।

---

१. 'चमू' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्याचन्द्रमसोः प्रवेशविकलां लङ्कापुरीमग्निना
[1]शुद्धां कर्तुममुष्य वासवजिता जातो रणस्तोरणे ॥ ४० ॥

नेतुमिति—निशाचरपतेः रावणस्य शोकरसम् विषादं नेतुम् प्रापयितुं रक्षसाम् राक्षसानां चमूम् सेनां हन्तुम् विनाशयितुं, तस्य रावणस्य अन्तःपुरयोषिताम् अन्तःपुरस्थवधूनां विना मानम् निःसीमं रोदनम् अश्रुविमोचनं रचयितुम् कर्तुं, सूर्याचन्द्रमसोः दिवाकरनिशाकरयोः प्रवेशविकलाम् प्रवेशरहितां रावणभयादिति भावः। लङ्कापुरीम् अग्निना स्वलाङ्गूलवह्निना शुद्धाम् पवित्रां कर्तुम् अमुष्य हनूमतः वासवजिता इन्द्रजिता मेघनादेन सह तोरणे बहिर्द्वारे रणः युद्धं जातः अभूत्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४० ॥

प्रासाद द्वार के ऊपर मेघनाद के साथ हनूमान् का युद्ध, रावण को विषाद पहुँचाने वाला, राक्षससेना का संहार करने वाला, रावण की अन्तःपुरवर्तिनी स्त्रियों को निःसीमभाव से रुलाने वाला तथा सूर्य-चन्द्र के प्रवेश न कर सकने से अपवित्र लङ्का को पुच्छाग्नि से पवित्र करने वाला हुआ ॥ ४० ॥

संग्रामदुर्दिने तस्मिञ्जहर्ष शरवर्षिणि।
बर्हीव मेघनादेन मेघनादेन मारुतिः ॥ ४१ ॥

संग्रामेति। शरान् बाणान् शराणि नीराणि च वर्षतीति तथोक्ते, ('शरो वध्याद्यग्रसारे बाणे काण्डतृणान्तरे। शरं नीरे च' इति नानार्थरत्नमाला) तस्मिन् संग्रामदुर्दिने युद्धरूपमेघाच्छन्नदिवसे ('मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः)। मेघनादेन घनगर्जितेन बर्ही मयूर इव ('मयूरो बर्हिणो बर्ही' इत्यमरः)। मेघनादेन इन्द्रजिता मारुतिः हनूमान् जहर्ष प्रसन्नतां ययौ। श्लेषोपमयो सङ्करः ॥ ४१ ॥

शरवर्षी [१—बाण बरसाने वाला, २—जल बरसाने वाला] उस युद्ध रूप दुर्दिन में मेघगर्जन से मयूर के समान, मेघनाद से हनूमान् प्रसन्न हुये ॥४१॥

तदनु यातुधान[2] बलप्रधाननिधनक्रुद्धो विविधायुधवैतथ्यं विमृश्य विजयश्री[3] संगतगन्धं [4]गन्धवहनन्दनं सदानन्दास्त्रेण बबन्ध दशकन्धरात्मजः।

---

१. 'शुद्धिम्' इति पाठा०।
२. 'प्रबल' इति पाठा०।
३. 'सगन्धम्' इति पाठा०।
४. 'गन्धवाह' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदन्विति। तदनु तदनन्तरं यातुधानबलप्रधानानाम्। राक्षससेनानायकानां निधनेन संहारेण क्रुद्धः कोपं गतः, दशकन्धरात्मजः रावणपुत्रो मेघनादः विविधायुधवैतथ्यम् हनूमति नानाविधानामस्त्राणां वैयर्थ्यं विमृश्य ज्ञात्वा विजयश्रिया विजयलक्ष्म्या सङ्गतः मिलितः गन्धः सम्बन्धो यस्य तं तथोक्तम्, विजयश्रीप्राप्तसम्बन्धमित्यर्थः, विजयश्रीयुक्तमिति यावत्। ('गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः' इति विश्वः)। गन्धवहो वायुस्तस्य नन्दनम् पुत्रं हनूमन्तं सदानन्दास्त्रेण ब्रह्मास्त्रेण बबन्ध निगृहीतवान्।

इसके बाद राक्षससेना नायकों के मारे जाने से क्रोधाविष्ट मेघनाद ने नाना प्रकार के अस्त्रों की निष्फलता समझकर विजयश्री से सम्बन्ध रखने वाले हनूमान् को ब्रह्मास्त्र से बाँध लिया।

तेन दिव्यास्त्रेण विवशशरीरमेनं पिशिताशनाः शणवल्कलैर्बबन्धुः।[1]

तेनेति। तेन दिव्यास्त्रेण ब्रह्मास्त्रेण विवशशरीरम् परवशगात्रम् एनम् हनूमन्तं पिशिताशनः मांसभुजो राक्षसा इत्यर्थः, शणवल्कलैः शणैः वल्कलैश्च बबन्धुः। ब्रह्मास्त्रेण बद्धतया निर्विचेष्टस्य हनूमतो बन्धदार्ढ्याय राक्षसाः शणानां वल्कलानाञ्चोपयोगं कृतवन्त इत्याशयः।

उस दिव्यास्त्र से हनूमान् का शरीर विवश हो गया तब राक्षसों ने [बन्धन की मजबूती के लिए] उन्हें सन और पेड़ की छाल से [जकड़कर] बाँध दिया।

स मारुतेर्नैर्ऋतपाशजन्मा बन्धोऽभवद्[2] बन्धविमोक्षहेतुः।
पुरा पुलस्त्यान्वय[3] पांसनेन बन्दीकृतानां सुरसुन्दरीणाम्॥ ४२॥

स मारुतेरिति। नैर्ऋतपाशजन्मा राक्षसरज्जुकृतः मारुतेः हनूमतः सः बन्धः, पुरा पूर्वं पुलस्त्यान्वयपांसनेन पुलस्त्यकुलकलङ्कभूतेन रावणेन बन्दीकृतानाम् कारागारनिबद्धानां सुरसुन्दरीणाम् देवाङ्गनानां बन्धविमोक्षहेतुः बन्धनान्मुक्तेः कारणमभवत्, हनूमता लङ्कादाहादिना तथाकरणादिति भावः। मारुतिबन्धस्य सुरसुन्दरीबन्धमोक्षहेतुत्वोक्त्याऽसङ्गतिरलङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम्।

---

१. 'शोण' इति पाठा०।

२. 'द्बन्धनमोक्ष' इति पाठा०।

३. 'पांसुलेन' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राक्षसों की रस्सियों से किया गया वह हनूमान् जी का बन्धन, पुलस्त्य कुल कलङ्क रावण-द्वारा बन्दी बनायी गयीं देवाङ्गनाओं की बन्धन से मुक्ति का कारण बन गया ॥ ४२ ॥

तदनन्तरमितरहननासहतया [1]निह्नुतस्य दिव्यास्त्रस्य प्रभावं विभावयन्विभावरीचरपति[2]तनूजः पवनतनयं निजपितृसमीपमुपनिनाय ।

तदनन्तरमिति । तदनन्तरम् हनूमद्बन्धनानन्तरम् इतरहननासहतया- इतरेण ब्रह्मास्त्रादन्येनास्त्रेण यत् हननं निग्रहणं तन्न सहते न विगणयतीति इतरहननासहः, तस्य भावस्तत्तातया, अन्येनास्त्रेण हनूमतो ग्रहीतुमशक्यतयेत्यर्थः, निह्नुतस्य तिरोहितसामर्थ्यस्य दिव्यास्त्रस्य ब्रह्मास्त्रस्य प्रभावम् सामर्थ्यं विभावयन् पर्यालोचयन्, अन्येनास्त्रेण निग्रहीतुमशक्यमप्येनं हनूमन्तं बद्ध्वा ब्रह्मास्त्रमिदं स्वतिरोहितं प्रभावमदर्शयदित्यहो ब्रह्मास्त्रप्रभाव इति मनसि विचारं कुर्वन्नित्यर्थः । विभावरीचरपतिः निशाचराधिपतिः रावणस्तस्य तनूजः पुत्रः मेघनादः, पवनतनयम् हनूमन्तम् निजपितृसमीपम् रावणान्तिकम् उपनिनाय आनीतवान् ।

इसके बाद, हनूमान् ब्रह्मास्त्र के अतिरिक्त अन्य अस्त्रों को कुछ नहीं गिनते थे, इसलिए ब्रह्मास्त्र के प्रभाव को, जिसने अभी तक अपने समार्थ्य को छिपा रक्खा था, मन में सोचता-विचारता हुआ [अर्थात् सर्वोत्कृष्ट मानता हुआ] मेघनाद हनूमान् को रावण के पास ले आया ।

सोऽयं ददर्श दशकन्धरमन्धकारि
लीलाद्रितोलनपरीक्षितबाहु[3]वीर्यम् ।
बन्दीकृतेन्द्रपुरवारवधूकराग्र-
व्याधूतचामरमरुच्चलितोत्तरीयम् ॥ ४३ ॥

सोऽयमिति । सोऽयम् हनूमान् अन्धकः तन्नामा असुरस्तस्य अरिः शत्रुः शिवः, तस्य लीलाद्रिः क्रीडापर्वतः कैलासस्तस्य तोलनेन उत्थापनेन परीक्षितं बाहुवीर्यं भुजपराक्रमो यस्य तं तथोक्तम्, बन्दीकृताः कारागारनिबद्धाः या

१. 'निजाद्भुतस्य' इति पाठा० । २. 'तनयः' इति पाठा० ।
३. 'शौर्यम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इन्द्रपुरवारवध्वः स्वर्वेश्याः, तासां कराग्रैः हस्ताग्रभागैः व्याधूतानाम् चालितानां चामराणां मरुद्भिः पवनैः चलितम् लोलम् उत्तरीयम् उर्ध्ववस्त्रं यस्य तं तादृशम् दशकन्धरम् रावणं ददर्श दृष्टवान् । लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनादुदात्तं नामालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४३ ॥

शिवजी के क्रीडा पर्वत कैलाश को उठाने से जिसके बाहुबल की परख हो चुकी है और वन्दी बनायी गयीं स्वर्ग की वेश्याओं के हाथों द्वारा डुलाये जाते चामर की हवा से जिसका उत्तरीय वस्त्र हिल रहा था, ऐसे रावण को हनूमान् ने देखा ॥ ४३ ॥

आपाटलाधरपुटान्तविराजमान-
दंष्ट्रामहः प्रसरशारशरीरकान्तिम् ।
संध्याम्बुदान्तरितमध्यसुधामयूख-
रेखाभिराममिव वासवनीलशैलम् ॥ ४४ ॥

आपाटलेति । आपाटलस्य समन्ताद्रक्तवर्णस्य अधरपुटस्य ओष्ठदलस्य अन्ते समीपे विराजमानानाम् देदीप्यमानानां दंष्ट्रामहसाम् दन्तकिरणानां प्रसरेण परितो व्याप्त्या शारा रक्तसितकृष्णवर्णा शरीरकान्तिः देहच्छविर्यस्य तं तथोक्तम्, अधरकान्ते रक्ततया, दन्तकान्तेः सिततया शरीरकान्तेः कृष्णतया च रक्तसितकृष्णवर्णदेहं रावणमित्यर्थः । ('कृष्णरक्तसितः शारः' इत्यमरः') । अत एव सन्ध्याम्बुदेन सन्ध्याकालिकरक्तवर्णमेघेन अन्तरितम् आच्छादितं मध्यं यस्य तादृशस्य सुधामयूखस्य चन्द्रस्य रेखया कलया अभिरामम् सुन्दरं वासवनीलशैलम् इन्द्रनीलमणिपर्वतमिव स्थितं रावणं ददर्शेति पूर्वोक्तक्रिययाऽन्वयः । उपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

रावण का [श्याम] शरीर, रक्त अधरपुट के समीप चमकती दाँतों की कान्ति फैलने से रक्तश्वेत कृष्ण वर्ण का प्रतीत हो रहा था अतः वह उस समय, सन्ध्याकालिक लालबादल से जिसका मध्यभाग छिप गया है उस चन्द्रमा की कला से रमणीय इन्द्रनीलमणि पर्वत की तरह दिखायी पड़ रहा था ॥ ४४ ॥

संग्रामकेलिपरिघट्टनभग्नमग्न-
[1]दिग्दन्तिदन्तकृतमुद्रभुजान्तरालम् ।

---

१. 'दिग्दन्त' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

छायात्मना प्रतितरङ्गविराजमान-
शीतांशुमण्डलसनाथमिवाम्बुराशिम् ॥ ४५ ॥

संग्रामेति । संग्रामकेलिषु युद्धक्रीडासु परिघट्टनेन सङ्घर्षेण तत्कृतप्रहारेणेत्यर्थः, भग्नाः त्रुटिता अत एव मग्नाः संलीना ये दिग्दन्तिनाम् देवपक्षे युध्यमानानां दिग्गजानां दन्ताः, तैः कृताः विहिताः मुद्राः चिह्नानि यस्मिन् तादृशं भुजान्तरालम् वक्षःस्थलं यस्य तं तथोक्तम्, अत एव छायात्मना प्रतिबिम्बरूपेण प्रतितरङ्गम् सर्वेषु तरङ्गेषु विराजमानेन प्रकाशमानेन शीतांशुमण्डलेन चन्द्रमण्डलेन सनाथम् युक्तम् अम्बुराशिम् समुद्रमिव स्थितमित्युपमा । अत्रापि 'ददर्श' इति क्रिययाऽन्वय इति बोध्यम् । यथा तरङ्गे प्रतिबिम्ब रूपेण प्रकाशमानेन चन्द्रेण श्यामः समुद्रः शोभते तथैव दिग्गजदन्त प्रहारकृतचिह्नैः रावणः शोभामावहति, हनूमान् तादृशं रावणं ददर्शेत्यभिप्रायः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४५ ॥

युद्ध क्रीडा के समय सङ्घर्षकृत प्रहार से टूट कर चुभे हुए दिग्गजों के दाँतों से रावण की भुजाओं का अन्तराल [वक्षःस्थल] चिह्नित था अतएव वह, प्रत्येक तरङ्ग में प्रतिबिम्बरूप से चमकते हुए चन्द्रमण्डल से युक्त समुद्र के समान सुशोभित हो रहा था ॥ ४५ ॥

[1]निःश्रेयसप्रणयिनीं पदवीं निरोद्धुं
त्रैलोक्यपापपरिपाकमिवात्तरूपम् ।
सूर्येन्दुपावकमहांसि तपोबलेन
जित्वा [2]यथेच्छमभिषिक्तमिवान्धकारम् ॥ ४६ ॥

निःश्रेयसेति । निःश्रेयसम् मुक्तिः ('मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम्' इत्यमरः) । तस्य प्रणयिनीम् प्रापिकाम्, मुक्तिप्रदायिनीमित्यर्थः । पदवीम् मार्गं निरोद्धुम् आवरीतुम् आत्तरूपम् गृहीतमूर्तिम् त्रैलोक्ये यानि पापानि तेषां परिपाकम् परिणाममिव (स्थितम्) सूर्येन्दुपावकमहांसि सूर्यचन्द्राग्नितेजांसि तपोबलेन तपस्यासामर्थ्येन जित्वा पराभूय यथेष्टम् स्वेच्छया अभिषिक्तम् कृताभिषेकम् अन्धकारमिव (स्थितम्) रावणं ददर्शेति पूर्वोक्तक्रिययाऽन्वयः । रावणं पश्यन्तो जनास्तं मुक्तिमार्गं विघ्नभूतं

१. 'निश्श्रेयसः' इति पाठा० ।
२. 'यथेष्टम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रैलोक्यस्य पापानां मूर्तिमन्तं परिपाकमथवा स्वाचरिततपोमहिम्ना सूर्यं चन्द्रमग्निं च पराभूय स्वेच्छयाऽभिषिक्तमन्धकारं सम्भावयन्तीत्याशयः। उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ४६ ॥

वह रावण ऐसा देखने में प्रतीत होता था कि मानों मुक्तिमार्ग को अवरुद्ध करने के लिए मूर्तिमान् त्रैलोक्य के पाप का परिणाम ही बैठा हो, तथा ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के तेज को अपने तपोबल से जीत कर अन्धकार स्वेच्छानुसार राज्यभिषिक्त होकर बैठा हो।

सोऽपि प्लवङ्ग[1] अभिवीक्ष्य समीरपुत्रं
चित्रीयमाणहृदयः पिशिताशनेन्द्रः।
कैलासशैलचलनागसि शापदायी
नन्दीश्वरः स्वयमुपागत इत्यमंस्त ॥ ४७ ॥

सोऽपीति। सः पिशिताशनेन्द्रः राक्षसाधिपः रावणोऽपि प्लवङ्गम् वानरं समीरपुत्रम् पवनतनयं हनूमन्तम् अभिवीक्ष्य विलोक्य चित्रीयमाणहृदयः चित्रीयमाणं विस्मयमानं हृदयं यस्य स तथोक्तः सन्। 'नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्' इति क्यच्, तदन्ताल्लटः शानच्। कैलासशैलचलनागसि कैलासपर्वतोत्थापनरूपापराधे रावणेन कृते सति शापदायी शापदाता नन्दीश्वरः स्वयम् साक्षात् उपागत इति एवम् अमंस्त मन्यते स्म। हनूमन्तं दृष्ट्वा रावणो मन्यते स्म यदयं साक्षान्नन्दीश्वरो मया कैलाश उत्थापिते 'वानरेणैव त्वं विपत्तिं गमिष्यसि' इति मह्यं प्रदत्तं स्वशापं चरितार्थयितुं स्वयं वानररूपेण समायात इत्यर्थः। पुरा किल रावणेन कैलास उत्थापिते कुपितं नन्दीश्वरं 'वानरमुख किं त्वं कुप्यसीति रावणः अभर्त्सयत्, तस्मान्नन्दीश्वरस्तस्मै रावणाय शापमदित यत् त्वं वानरमुखतया मां तिरस्करोषि तेन वानरेणैव त्वं विपत्तिं गमिष्यसीति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४७ ॥

राक्षसेन्द्र रावण ने भी वानररूप हनुमान् को देख कर आश्चर्यचकित होकर यह समझा कि कैलासपर्वत के उठाने से हुए अपराध पर शापदेने वाले नन्दीश्वर स्वयम् [वानर रूप] में उपस्थित हुए हैं ॥ ४७ ॥

---

१. 'प्लवंगममवेक्ष्य' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततः प्रहस्तेन विहितविविधानुयोगः प्रत्यभाषत रावणं मारुतिः ।

तत इति । ततस्तदनन्तरं प्रहस्तेन तदाख्येन रावणसचिवेन विहितविविधानुयोगः कस्त्वं, कुत आयातः, केन वा प्रेषितः इत्यादीन् नानाविधान् प्रश्नान् पृष्टः सन् ('प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः) मारुतिः हनूमान् रावणं प्रत्यभाषत प्रत्यवदत् । एतेन प्रष्टुः प्रहस्तस्यावज्ञाऽवगम्यते ।

इसके बाद प्रहस्त ने हनूमान् से अनेक प्रकार के प्रश्न किये तब उन्होंने रावण से कहा—

[1]अयमहमहर्पतिकुलतिलकस्य सत्यसन्धस्य पितृनियोगसमुपगतवनवासनिरतस्य शूर्पकारातिबाधितशूर्पणखाप्राप्त[2]वैरूप्यकुप्यत्खरप्रमुखनिशिचरबलपलालजाल[3] कल्पान्तानलकल्पशिलीमुखस्य कपटहरिणहननसमय[4]परिमुषितदारान्वेषणसञ्जातसुग्रीव[5]सख्यस्य समुत्खातवालिकण्टकस्य दुर्वृत्तक्षत्रवंशवनपवनसारथेस्तपोनिधेर्जामदग्न्यस्य भुजबलावलेपलोपहेतोः श्रीमतो दाशरथेर्दूतोऽहं सीतामार्गमार्गणाय दिशि-दिशि तपनतनयप्रेषितानां वानराणामेकतमः समुद्रलङ्घनजङ्घालस्तव नगर[6]प्रमदवनसीमनि रघुवरधर्मदारान्प्रणम्य प्रतिष्ठासुर्मदीयमागमनं प्रकाशयितुं प्रमथिताशोकवनिकानोकहनिवहस्त्वद्दर्शनकुतूहलेन केवलमनुभूतनैर्ऋतलूतातन्तुसंनहनस्तव परिसरमुपासरम् ।

अयमिति । अयम् अहम् हनूमान्, अहर्पतिः सूर्यस्तत्कुलतिलकस्य सूर्यकुलभूषणस्य सत्यसन्धस्य सत्यप्रतिज्ञस्य पितुर्दशरथस्य नियोगेन आज्ञया समुपगतः अङ्गीकृतः वनवासः तत्र निरतस्य तत्परस्य, पित्राज्ञापालकस्येत्यर्थः, शूर्पकः तन्नामा कश्चिदसुरस्तस्य अरातिः शत्रुः कामदेवस्तेन बाधिता पीडिता या शूर्पणखा तव भगिनी तया प्राप्तं यद् वैरूप्यम् लक्ष्मणकृतकर्णनासाच्छेदनजन्यं विकृतरूपत्वं तेन कुप्यत् कोपं प्राप्नुवत् यत् खरप्रमुखनिशिचरबलम् खरप्रभृतिराक्षससैन्यं तदेव पलालजालम् शुष्कतृणराशिः तेषां कल्पान्तानलकल्पः प्रलयकालाग्निसदृशः शिलीमुखः बाणो यस्य तस्य तथोक्तस्य लीलयैव

१. 'अयमह्नामधिपति' इति पाठा० । २. 'वैरूप्यस्य' इति पाठा० ।
३. 'कल्पानल' इति पाठा० । ४. 'समुषित' इति पाठा० ।
५. 'सख्यसमुत्खात' इति पाठा० । ६. 'प्रमदावनसीम्नि' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खरादिराक्षससैन्यसंहारकस्येत्यर्थः। कपटहरिणस्य मायामृगस्य मारीचस्य हननसमये संहारकाले परिमुषितानाम् चौर्येण त्वया अपहृतानां दाराणाम् भार्यायाः सीतायाः अन्वेषणे परिमार्गणसमये सञ्जातम् समुत्पन्नं सुग्रीवेण सख्यम् मैत्री यस्य तथोक्तस्य, समुत्खातः समुन्मूलितः वाली सुग्रीवभ्राता त्वन्नियन्ता च, स एव कण्टको येन तथोक्तस्य, दुर्वृत्तानाम् दुराचाराणां क्षत्राणाम् क्षत्रियाणां वंशः कुलमेव वंशवनम् वेणुकाननं तस्य पवनसारथिः दावानलस्तस्य, उद्धतक्षत्रियकुलसंहारकस्येत्यर्थः तपोनिधेः तपःशीलस्य जामदग्न्यस्य जमदग्निपुत्रस्य परशुरामस्य यो भुजबलावलेपः बाहुपराक्रमदर्पः ('दर्पोऽवलेपः' इत्यमरः) तस्य लोपे विनाशे हेतुः कारणम् तस्य, परशुरामभुजबलदर्पापनेतुरित्यर्थः, श्रीमतः सकलगुणसम्पन्नस्य दाशरथेः दशरथपुत्रस्य श्रीरामस्य दूतः सन्देशहरः अहम् हनूमान् ('स्यात् सन्देशहरो दूतः' इत्यमरः) सीतामार्गस्य अपहृता सीता केन मार्गेण गता इति तन्मार्गस्य मार्गणाय अनुसन्धानाय दिशि दिशि प्रतिदिशम् सकलदिक्ष्वित्यर्थः, तपनतनयेन सूर्यपुत्रेण सुग्रीवेण प्रेषितानाम् प्रहितानां वानराणाम् एकतमः अन्यतमः समुद्रलङ्घने आकाशमार्गेण समुद्रोत्तरणे जङ्घालः अतिशयवेगवान् ('जङ्घालोऽतिजवस्तुल्यौ' इत्यमरः) तव रावणस्य नगरप्रमदवनसीमनि नगरे लङ्कापुरे यत् प्रमदवनम् स्त्रीजनोचितपुष्पोद्यानम् अशोकवनमित्यर्थः तत्सीमनि तत्परिसरे तत्प्रदेश इत्यर्थः रघुवरस्य श्रीरामस्य धर्मदारान् धर्मभार्यां सीताम् प्रणम्य नमस्कृत्य प्रतिष्ठासुः प्रयातुमिच्छुः सन्, मदीयागमनम् स्वकीयं लङ्कापुरप्रवेशं प्रकाशयितुम् युष्मान् सर्वानपि प्रकटयितुं प्रमथितः विध्वंसितः अशोकवनिकानोकहनिवहः प्रमदवनवर्तिवृक्षषण्डो येन स तथोक्तः, केवलं त्वद्दर्शनकुतूहलेन त्वद्विलोकनोत्कण्ठयैव, न त्वसमर्थतयेति भावः। अनुभूतं नैर्ऋताः राक्षसा एव लूताः ऊर्णनाभाः कीटविशेषा तासां तन्तवः रज्जुरूपसूक्ष्मसूत्राणि तैः यत् संनहनम् बन्धनं येन स तथोक्तः सन् तव परिसरम् अन्तिकम् उपासरम् समुपागतोऽस्मि। 'लूता स्त्री तन्तुवायोर्णनाभमर्कटकाः समाः, 'पर्यन्तभूःपरिसरः' (इत्युभयत्राप्यमरः)।

यह मैं उन सूर्यकुलभूषण, सत्यप्रतिज्ञ पिता की आज्ञामात्र से अङ्गीकृत वनवास में तत्पर दशरथ पुत्र श्रीमान् रामजी का दूत हूँ, जिनके बाण, काम-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पीडिता शूर्पणखा के नाक-कान काटने से कुपित खरादिराक्षससैन्यरूप पुआल के लिए प्रलयाग्नि तुल्य (हो चुके) हैं, कपटमृग को मारते समय चुराई गयी भार्या को ढूँढने के सिलसिले में सुग्रीव के साथ जिनकी मैत्री हो चुकी है, जिन्होंने [परोत्पीडक होने के कारण] कण्टकस्वरूप वाली को निकाल फेंका है, दुराचारी क्षत्रियवर्गरूप वंशवन के लिए दावानल स्वरूप परशुराम के भुजबलदर्प के लोप में जो हेतु बन चुके हैं। और मैं सीता के मार्ग का अनुसंधान करने के लिए सूर्यपुत्र सुग्रीव के द्वारा प्रत्येक दिशा में भेजे गये वानरों में एक [वानर] हूँ। मैंने [नभोमार्ग से] वेगपूर्वक समुद्र को पार किया है, आप के नगर के प्रमदवन (अशोकवनिका) में श्रीराम जी की धर्मपत्नी को प्रणाम कर जाना ही चाहता था तैसे ही इच्छा हुई कि अपना आगमन आप सब को बता दूँ, इसी लिए मैंने अशोकवनिका के वृक्षों को विध्वस्त कर दिया और केवल आप के दर्शन के कुतूहल वश ही इन राक्षसों से मकड़ी के जाल तुल्य पाश में अपने को मैंने बँधाया और इस तरह से आप तक पहुंच पाया हूँ।

आनाकलोकपरिकीर्तितसच्चरित्र-
मत्रोपरुद्ध्य रघुवंशपतेः कलत्रम्।
वैतानवेदिजनितं पवमानबन्धुं
वस्त्रेण [1]बन्द्धुमविनीत ! कथं यतेथाः ॥ ४८ ॥

आनाकलोकेति। आनाकलोकम् स्वर्गलोकपर्यन्तं परिकीर्तितम् प्रशंसितं सच्चरित्रम् पवित्रमाचरणं यस्य तत्तथोक्तम्, रघुवंशपतेः रघुकुलनाथस्य श्रीरामस्य कलत्रम् भार्याम् सीताम् अत्र लङ्कायाम् उपरुध्य निबद्धां कृत्वा हे अविनीत दुर्विनीत ! वैतानवेदिजनितम् यज्ञभूमौ प्रकटितम् पवमानबन्धुम् अग्निम् वस्त्रेण बन्द्धुम् बद्ध्वा स्थापयितुमित्यर्थः, कथं यतेथाः। अत्र लङ्कायां निरुद्ध्य तव सीतास्थापनप्रयत्नो वस्त्रेण बद्ध्वाऽग्निस्थापनप्रयत्न इव परिलक्ष्यते यस्मात्तां परमपतिव्रतां सीतां राघवाय समर्प्य चिरजीवी भव, अन्यथाऽनर्थ एव भविष्यतीति भावः। निदर्शनाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

---

१. 'बद्धम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वर्गलोक तक जिसके सच्चरित्र की ख्याति पहुँच चुकी है, ऐसी [परम-पतिव्रता] रघुकुलनाथ की धर्मभार्या को इस लङ्का में रोक कर, हे अविनीत, यज्ञभूमि में प्रकटित अग्नि को कपड़े में बाँधने का प्रयत्न क्यों कर रहा है ? ।

[1]किञ्च—

प्रेङ्खन्ती पिशिताशया रणमुखे सौमित्रिपत्त्रिक्षतं
त्वद्गात्रं परितः पतत्रिपरिषच्छत्रच्छविं मा गमत् ।
द्राक्पौलस्त्य ! पुलस्त्यवंशविलये संभाविते त्वत्कृते
कान्तानां नयनान्तवान्तसलिलं मा भून्निवापोदकम् ॥ ४९ ॥

किञ्च, प्रेङ्खन्तीति—किञ्च अपि च, हे पौलस्त्य रावण, रणमुखे युद्धभूमौ सौमित्रिः लक्ष्मणस्तस्य पत्त्रिणः बाणास्तैः क्षतम् विदारितं त्वद्गात्रम् तव रावणस्य गात्रम् शरीरं परितः समन्ततः ('अभितः परितः'—इत्यादिना द्वितीया) पिशिताशया मांसतृष्णया प्रेङ्खन्ती परिभ्रमन्ती पतत्रिपरिषद् गृध्रादिपक्षिनिवहः, छत्रच्छविम् आतपत्रशोभां मा गमत् न प्राप्नोतु, तथा त्वत्कृते त्वया रावणेन कृते उपस्थापिते द्राक् शीघ्रम् पुलस्त्यवंशविलये पुलस्त्यकुलविनाशे संभाविते सम्प्राप्ते सति, कान्तानाम् स्त्रीणाम् नयनान्तवान्तसलिलम् नेत्रस्रुतं जलम् अश्रुजलमिति यावत् । निवापोदकम् पितृतर्पणजलरूपम् मा भूत् न जायेत । श्रीरामाय सीतां न प्रत्यर्पयसि चेत्तदा लक्ष्मणो बाणैस्त्वच्छरीरं विदारयिष्यति; मांसाशया तवोपरि परिभ्रमन्तो गृध्रादिपक्षिणश्छत्रशोभां प्राप्स्यन्ति । तथा च क्रमेण समग्रपुलस्त्यकुलस्य संहारे जाते जलदातुरप्यनवशिष्टतया रुदतीनां स्त्रीणामश्रुजलमेव मृतानां कृते निवापोदकरूपं भविष्यति, मा भूदेवं, तत्पूर्वमेव सीतां प्रत्यर्प्य आत्मनः पौलस्त्यकुलस्य च सर्वथा कल्याणं विधेहीत्याशयः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४९ ॥

और, युद्धक्षेत्र में लक्ष्मण के बाणों से क्षत-विक्षत तुम्हारे शरीर पर मांस की लिप्सा से मँडराता हुआ पक्षियों का दल छाता की शोभा को न प्राप्त करे तथा हे रावण, तुम्हारी ही वजह से पूरे पुलस्त्य वंश का नाश हो जाने पर [जलदाता के भी न रह जाने से] स्त्रियों की आँखों से बहनेवाला अश्रुजल [ही] निवापोदक [पितृतर्पण का जल] न हो जाय ॥ ४९ ॥

१. 'किञ्च' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बद्धादरोऽपि परदारपरिग्रहे त्व-
मिक्ष्वाकुनायककलत्रमनार्य ! मा गाः ।
वाताशनोऽहमिति किं विनतासुतस्य
श्वासानिलाय भुजगः स्पृहयालुतालुः ॥ ५० ॥

बद्धेति । अनार्य विवेकशून्य ! परदारपरिग्रहे परस्त्रीसङ्गमे बद्धादरः विहितासक्तिः अपि त्वम् रावणः इक्ष्वाकुनायकस्य श्रीरामस्य कलत्रम् धर्मभार्यां सीतां मा गाः मा प्राप्नुहि, त्वं परदारोपभोगीति हेतोरेव स्त्रीसाधारण्येन सीतायै मा स्पृहय तस्य इक्ष्वाकुनायकस्य कलत्रतया त्वद्विनाशहेतुत्वादित्यर्थः । तत्र दृष्टान्तमाह—वातेति । अहम् सर्पः वाताशनः वायुभुक् इति किं भुजगः सर्पः विनतासुतस्य गरुडस्य श्वासानिलाय श्वासमारुताय तदशनार्थमित्यर्थः ('स्पृहेरीप्सितः' इति चतुर्थी) स्पृहयालुतालुः स्पृहयालु स्पृहावत् तालु यस्य स तथोक्तः भवति ? सर्पः पवनाशनतयाऽपि गरुडश्वासानिलं पातुं न व्यवस्यति तथाकरणे नाशस्यावश्यं भावित्वात्तथा त्वमपि परस्त्रीगामितया श्रीरामधर्मभार्यां मा गा अन्यथा तव मरणं सुनिश्चितमेवेति भावः । दृष्टान्तालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृतम् ॥ ५० ॥

हे अनार्य, परस्त्रीसंसर्ग में आसक्ति रखने पर भी तुम इक्ष्वाकुनायक राम की धर्मपत्नी की स्पृहा मत करो, क्या सर्प वाताशन [वायुपान करने वाला] होता है, इसी कारण से वह गरुड़ के श्वासवायु को पीने के लिए अपने तालु को स्पृहायुक्त करता है ? ॥ ५० ॥

बाहुचन्दननिषङ्गकोटरा[१]दुद्धृतो रघुपतेः शरोरगः ।
प्राणवायुमविनीत ! तावकं कालयापनमपास्य पास्यति ॥ ५१ ॥

बाहुचन्दनेति । अविनीत हे दुर्विनय ! बाहुरेव चन्दनः चन्दनवृक्षस्तस्य निषङ्गः तूणः एव कोटरम् तस्मात्, उद्धृतः आकृष्टः, रघुपतेः श्रीरामस्य शरः बाण एव उरगः सर्पः तावकम् त्वदीयं प्राणवायुं कालयापनमपास्य कालविलम्बं त्यक्त्वा तत्कालमेवेत्यर्थः । पास्यति अपहरिष्यतीत्यर्थः । समस्तवस्तुसावयवरूपकालङ्कारः । रथोद्धता वृत्तम् । 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात् ।

हे अविनीत, राम के बाहुरूप चन्दनवृक्ष के तरकसरूप कोटर से निकला

१. 'निर्गतः' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुआ बाण रूपी सर्प तुम्हारे प्राणवायु को समय बिताये विना ही तत्काल पी लेगा (तुम्हारे प्राणों को हर लेगा) ॥ ५१ ॥

किं बहुना—

मायामृगे समरनाटकसूत्रधारे
शाखामृगे च भवतः प्रतिकूलवाले।
दृष्टोद्यमस्य रघुनायकसायकस्य
मुक्त्वा प्रणामकवचं कवचं किमन्यत् ॥ ५२ ॥

किं बहुना, मायामृग इति। किं बहुना अधिकेन कथनेन किम्, समरम् युद्धमेव नाटकं तस्य सूत्रधारे प्रवर्त्तके मायामृगे कपटहरिणे मारीचे तथा भवतः रावणस्य, प्रतिकूलः शास्तृतया शत्रुभूतः वालः पुच्छो यस्य तादृशे शाखामृगे वानरे वालिनि च दृष्टोद्यमस्य परीक्षितव्यवसायस्य रघुनायकसायकस्य श्रीरामशरस्य प्रणामकवचम् नमस्काररूपं वर्म मुक्त्वा तद्विनेत्यर्थः, अन्यत् कवचं किम्? मारीचं वालिनं च हत्वा प्रकटितपराक्रमं रामबाणमेव तव शरणम्, तस्मादन्यो न कोऽपि त्वां त्रातुं समर्थस्तत्प्रणामपुरस्सरं श्रीरामाय सीतां प्रत्यर्प्य स्वप्राणान् त्रायस्वेति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५२ ॥

अधिक कहने से क्या ? [राम और तुझ रावण के] समर रूप नाटक के सूत्रधार मारीच पर तथा लाङ्गूल से तुझे नियमित करने वाले वाली नामक वानर पर जिसके पराक्रम को देखा जा चुका है उस रामबाण के प्रणाम रूप कवच को छोड़कर तेरा दूसरा कोई कवच (रक्षक) है क्या ? [अर्थात् नहीं है]।

[1]एवं निशम्य कुपितः पिशिताशनेन्द्रः।
प्राणानमुष्य हरतेति भटानवादीत्।
आजन्मशुद्धमतिरत्र विभीषणस्तं
दूतो न वध्य इति शास्त्रगिरा रुरोध ॥ ५३ ॥

एवमिति। एवम् पूर्वोक्तप्रकारकं हनूमद्वचो निशम्य श्रुत्वा कुपितः स्वावमानमनुभूय सञ्जातकोपः, पिशिताशनेन्द्रः राक्षसाधिपतिः रावणः अमुष्य अस्य वानरस्य प्राणान् हरत 'एनं मारयत' इत्येवं भटान् स्वयोधान् अवादीत्

1. 'एतत्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तवान्। अत्र अस्मिन् समये आजन्मशुद्धमतिः स्वभावतो निर्मलबुद्धिः विभीषणः विभीषणो नाम रावणानुजः तम् रावणं दूतः सन्देशहरो न वध्यः न हन्तव्य इत्येवं शास्त्रगिरा शास्त्रवचनेन रुरोध हनूमद्वधान्निवारयामासेत्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५३ ॥

ऐसा सुनकर क्रुद्ध होकर राक्षसराज रावण ने अपने योद्धाओं को कहा कि इस वानर के प्राणों को हर लो। उस समय स्वभावतः निर्मल बुद्धि वाले विभीषण ने 'दूत अवध्य होता है' इस शास्त्र वचन से उस रावण को रोका।

रावणोऽपि विभीषणभाषणमङ्गीकृत्य 'प्लवङ्गानामङ्गेषु लाङ्गूलमेव वरम्। तदेव कार्पासवाससा संवीतं [1]वह्निसात्कृत्य चत्वरे [2]दोषानुद्घोष्य सप्रहारं नगरं परितः संचारयत' इति राक्षसानादिदेश।

रावणोऽपीति। रावणोऽपि विभीषणभाषणम् विभीषणस्य दूतावध्यत्वलक्षणं वचनम् अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य, प्लवङ्गानाम् वानराणामङ्गेषु अवयवेषु लाङ्गूलम् पुच्छमेव वरम् श्रेष्ठम्, प्रियमित्यर्थः, तदेव पुच्छमेव कार्पासवाससा कर्पासतन्तुनिर्मितवस्त्रैः संवीतम् वेष्टितं कृत्वा, वह्निसात्कृत्य अनलाधीनं कृत्वा अनलेन ज्वलयित्वेत्यर्थः चत्वरे चत्वरे प्रतिचत्वरम् दोषान् वानरकृतान् अपराधान् उद्घोष्य सप्रहारम् सताडनं नगरं परितः सञ्चारयत भ्रमयत इत्येवं राक्षसान् आदिदेश आदिष्टवान्।

रावणने भी विभीषण की बात मान कर वानरों के अङ्गों में पूँछ श्रेष्ठ होती है, इसलिए उसी को रूई के कपड़ों से वेष्टित कर उसमें आग लगा कर चौराहों पर इसके अपराधों को उद्घोषित करके, इसको मारते-पीटते, नगर में सब ओर घुमाओ, राक्षसों को यह आज्ञा दी।

तेषु तथा कुर्वाणेषु।

तेष्विति। तेषु रावणेनादिष्टेषु राक्षसेषु तथा रावणोक्तप्रकारेण कुर्वाणेषु हनूमल्लाङ्गूलं कार्पासवासोभिरावेष्ट्य तत्राग्निं प्रज्वाल्य सप्रहारं हनूमन्तं भ्रमयत्सु।

उन राक्षसों के वैसा करते रहने पर—

---

१. 'वीतिहोत्रसात्कृत्य' इति पाठा०। २. 'घोषान्' इति पाठा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्णयाविषयमस्य वालतः कर्णिकारनिकुरुम्बकर्बुरः ।
निर्निमेषगणभाग्यसंचयादुन्मिमेष भगवानुषर्बुधः ॥ ५४ ॥

निर्णयाविषयमिति । कर्णिकारस्य कनकपुष्पस्य (लोके 'कनैल' इति नाम्ना प्रसिद्धस्य) निकुरम्बः गुच्छस्तद्वत् कर्बुरः शबलवर्णः ('कर्णिकारः काञ्चनारः कोकः कनकपुष्पकः' इति प्रतापमार्त्तण्डः) । भगवान् उषर्बुधः वह्निदेवः, निर्निमेषगणानाम् देववृन्दानां भाग्यसञ्चयात् भाग्यसमृद्धेर्हेतोः, निर्णयाविषयम् निर्मर्यादं यथा स्यात्तथा अस्य हनूमतः वालतः पुच्छात् उन्मिमेष प्रादुर्बभूव । अनुप्रासो नाम शब्दालङ्कारः । रथोद्धता वृत्तम् ॥ ५४ ॥

कनैल पुष्प के गुच्छे की तरह चितकबरा भगवान् अग्निदेव इन हनुमान् की पूँछ से देवगण के भाग्योदयवश असीमभाव से प्रकट हुए ॥ ५४ ॥

एतद्वृत्तान्तमारक्षिकराक्षसी[1]गणैर्गर्वोदीर्णं वर्णितमाकर्ण्य दूयमानमानसा जानकी हुताशनमुपस्थाय 'शीतो[2] भव हनूमतः' इति प्राञ्जलिः[3] प्रार्थयत ।

एतदिति । आरक्षिकराक्षसीगणैः सीतारक्षाधिकृतराक्षसीनिवहैः गर्वोदीर्णम् गर्वोद्रिक्तं सगर्वमित्यर्थः वर्णितम् कथितम् एतद्वृत्तान्तम् वस्त्रवेष्टितपुच्छमग्निना ज्वलयित्वा हनूमान् सप्रहारं नगरं परितो भ्रम्यते इति वार्ताम् आकर्ण्य श्रुत्वा दूयमानमानसा संतप्यमानान्तःकरणा जानकी हुताशनम् अग्निम् उपस्थाय पूजयित्वा प्राञ्जलिः बद्धकरयुगला हनूमतः शीतो भव 'हनूमतोऽङ्गानि मा दह' इत्येवं प्रार्थयत अभ्यर्थितवती । तथा च रामायणम्— 'उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् । यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः । यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ।' इति ।

रखवाली करने वाली राक्षसियों के द्वारा बड़े गर्व के साथ वर्णित [हनुमद्विषयक] इस वृत्तान्त को सुन कर दुःखित हृदय जानकी ने अग्निदेव का का पूजन कर, हाथ जोड़ कर उनसे प्रार्थना की कि वे हनुमान् के लिए शीतल बन जाँय ।

१. 'गणेन गर्वोदीर्णं इति पाठा० । २. 'हनूमतः शीतो भव' इति पाठा०
३. 'प्रार्थत्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घोरस्य राघवकलत्रतपोमयाग्ने-
र्मा भूवमिन्धनमहं क्षणमित्यवेत्य ।
शैत्यं वितत्य दहनः पवमानसूनो-
र्वालाग्रसीम्नि मणिदीप इवावतस्थे ॥ ५५ ॥

घोरस्येति । घोरस्य तीव्रस्य राघवकलत्रतपोमयाग्नेः सीतापातिव्रत्यरूपस्य वह्नेः क्षणम् क्षणमात्रेण अहम् इन्धनम् दाह्यकाष्ठं मा भूवम् न भवेयम् इत्येवम् अवेत्य अवगम्य दहनः सीताऽभ्यर्थितोऽग्निः, शैत्यं वितत्य विस्तार्य अभ्युपेत्येत्यर्थः, पवमानसूनोः पवनतनयस्य हनूमतो वालाग्रसीम्नि लाङ्गूलाग्रभागे मणिदीप इव अवतस्थे स्थितः । ('समवप्रविभ्यां स्थः' इत्यात्मनेपदम्) । हनूमतो लाङ्गूलाग्रभागे प्रज्वलितोऽप्यग्निः सीतापातिव्रत्यदहनाद्भीतः सन् मणिमयदीप इव स्वाश्रयं हनूमन्तं न सन्तापितवान्, तत्कृते शीतलो जात इति भावः । उपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

श्रीराम की धर्मभार्या [सीता] के पातिव्रत्यरूप अग्नि का मैं क्षणमात्र में इन्धन न बन जाऊँ यह समझ कर अग्नि हनूमान के लाङ्गूल के अग्रभाग में मणिमय दीप की तरह हो गया ॥ ५५ ॥

तदनु पवनतयोऽपि 'पुरमिदं न खलु सुव्यक्तं नक्तमालोकयम् तस्मादनलसाक्षिकमेव पुरमखिलमालोकयामि' इति यामिनीचरगणं परिचिततोरणपरिघेण जघान ।

तदन्विति । तदनु कार्पासवाससा संवीतस्य पुच्छस्याग्निसाक्षात्करणानन्तरं पवनतनयो हनूमानपि नक्तम् रात्रौ इदम् लङ्काख्यं पुरम् नगरं सुव्यक्तम् स्फुटभावेन न अलोकयम् खलु न दृष्टवान्, तस्मात् अनलसाक्षिकम् अनलः अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा अग्निं प्रज्वाल्येत्यर्थः, अखिलम् समग्रं पुरम् नगरम् अवलोकयामि पश्यामि इति अस्माद्धेतोः यामिनीचरगणम् राक्षसनिवहं परिचिततोरणपरिघेण पूर्वं येन राक्षसान् हतवान् तेनैव तोरणपरिघेण तोरणार्गलेन जघान हतवान्, येन गृहाद्गृहान्तरं प्रति धावनं सुकरं स्यादिति भावः ।

इसके बाद हनूमान् ने भी 'रात में [अंधेरा होने के कारण] इस नगर को भलीभाँति नहीं देख पाया, इसलिए अब अग्नि को साक्षी कर [अर्थात् अग्नि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के प्रकाश में] ही भलीभाँति देख लूँ'—ऐसा सोच कर [राक्षसों के मारने में] पूर्वप्रयुक्त तोरण की अर्गला से [साथ लगे] राक्षसों को मार गिराया ।

सीताभिधानकमलां प्रभवे प्रदातुं
लङ्कार्णवं क्षुभितसैन्यतरंगभीमम् ।
वेधा ममन्थ किल रज्जुभुजंगराज-
भोगावृतेन पवनात्मजमन्दरेण ॥ ५६ ॥

सीताभिधानेति । वेधाः ब्रह्मा सीताभिधानकमलाम् सीताभिधानां तद्रूपां-कमलाम् लक्ष्मीं प्रभवे श्रीरामरूपाय विष्णवे प्रदातुम् भार्यात्वेन समर्पयितुं क्षुभितैः सञ्चलितैः सैन्यैः राक्षससेनाभिरेव तरङ्गैः लहरीभिर्भीमम् भयङ्करं लङ्कार्णवम् लङ्कापुररूपं समुद्रं रज्जुः बन्धनपाश एव भुजंगराजभोगः वासुकिशरीरं तेन आवृतेन वेष्टितेन पवनात्मजमन्दरेण हनूमद्रूपमन्दराचलेन ममन्थ आलोडयामास किलेति सम्भावनायाम् । यथा पुरा सुरगणः प्रचलित-तरङ्गभीषणं सागरं वासुकिनागं रज्जुं कृत्वा मन्थानभूतेन मन्दराचलेन ममन्थ, तस्मान्निर्गतां लक्ष्मीं च विष्णवे समर्पयामास, तथैव सम्प्रति ब्रह्मा सीतारूपां लक्ष्मीं रामरूपाय विष्णवे प्रदातुं प्रचलितराक्षससैन्यभयङ्करं लङ्कापुररूपं समुद्रं बन्धनपाशरूपेण वासुकिनागेन वेष्टितेन हनूमद्रूपेण मन्दराचलेन मथितवान् । उत्प्रेक्षारूपकयोः सङ्करः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५६ ॥

ब्रह्मा ने सीता नामक लक्ष्मी को श्रीरामरूप विष्णु के हाथों में समर्पित करने के लिए चञ्चल राक्षस सैन्यतरङ्गों से भयङ्कर लङ्का रूप समुद्र को पाशरूप वासुकिनाग से वेष्टित हनमान् रूप मन्दराचल मन्थन से मथ डाला ॥ ५६ ॥

अथ [1]दह्यमानायां लङ्कायाम् ।

अथेति । अथानन्तरम् , लङ्कायां दह्यमानायाम् भस्मीभवन्त्यां सत्याम् । (हनूमान् दिवि धूम्यां समकिरदिति वक्ष्यमाणेनान्वयः) ।

इसके बाद जब लङ्का जलने लगी—

रक्षःस्त्रीवदनारविन्दरजनीं विश्वंभराबर्हिणी-
वर्षारम्भदशां दशाननयशःकादम्बकादम्बिनीम् ।

---

१. 'लङ्कायां दह्यमानायाम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वैधव्योचितवेषनिश्चितमनोलङ्कावधूटीजटां
वैदेह्यास्त्रिजटासमां समकिरद् धूम्यां हनूमान्दिवि ॥ ५७ ॥

रक्षःस्त्रीति । रक्षः स्त्रीणाम् राक्षसीनां वदनानि मुखान्येव अरविन्दानि कमलानि तेषां रजनीम् रात्रिस्वरूपाम्, तत्कान्तिहरीमित्यर्थः, विश्वम्भरा पृथिवी सैव बर्हिणी मयूरी तस्या वर्षारम्भदशाम् वर्षारम्भस्थितिस्वरूपाम्, तद्धर्षकारिणीमित्यर्थः, दशाननस्य रावणस्य यशः कादम्बानाम् कीर्तिकलहंसानां कादम्बिनीम् मेघमालास्वरूपाम् ('कादम्बः कलहंसः स्यात्,' 'कादम्बिनी मेघमाला' इति चामरः) तद्यशोऽपसारिणीमित्यर्थः, वैधव्यस्य विधवाभावस्य उचितो योग्यो यो वेषः नेपथ्यं तत्र निश्चितं मनो यस्यास्तथोक्तायाः कृतचित्ताया इत्यर्थः, लङ्कावधूट्याः लङ्कारूपवनितायाः जटाम् जटास्वरूपाम्, क्षिप्रमेव लङ्केशस्य जनिष्यमाणसंहाराल्लङ्कावैधव्यसूचिकामित्यर्थः, वैदेह्याः सीतायाः, त्रिजटासमाम् त्रिजटानामकराक्षसीवदाश्वासनकारिणीमित्यर्थः, धूम्याम् धूमसंहतिम् ('पाशादिभ्यो यः' इति य प्रत्ययः) हनूमान् दिवि आकाशे समकिरत् प्रसारितवान् । हनूमताऽऽकाशे प्रसारिता धूमसंहिता कमलानां रजनीव राक्षसीमुखानां म्लानकरी, मयूर्या वर्षाकाल इव वसुधाया हर्षकारिणी, कलहंसानां मेघमालेव रावणयशसामपसारिणी, लङ्केशस्य भाविसंहारनिश्चयाद्वैधव्योचितवेषधारणे कृतनिश्चयाया लङ्कायुवतेर्वैधव्यसूचिका जटेव सीताया आश्वासनकारिणी त्रिजटेव चाजायतेति भावः । परम्परितरूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५७ ॥

[उस समय] हनूमानने राक्षसस्त्रियों के मुखकमलों के लिए रजनी के समान, वसुधारूप मयूरी के लिए वर्षा काल के सदृश, रावण के यशरूप हंसों के लिए मेघमाला तुल्य, वैधव्योचित वेष धारण करने का मन में निश्चय रखने वाली लङ्का रूप युवती के लिए जटारूप तथा सीता के लिए त्रिजटासदृश, धूममाला आकाश में प्रसारित कर दी ॥ ५७ ॥

[1]अपि च—

एतद्विक्रमवीक्षणेन जनितामानन्दबाष्पोद्गतिं
रक्षोनाथभयात्पिधातुमनसां विद्याधराणां[2] तदा ।

१. 'अपि च' इति नास्ति क्वचित् । २. 'मुदा' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याजव्याहृतये यथा परिणमेद् धूम्या तथो[1]ज्जृम्भते
स्वर्लोकेऽपि कलिन्दशैलतनयाकल्लोलशङ्कावहा ॥ ५८ ॥

अपि च, एतद्विक्रमेति । अपि च किञ्चेत्यर्थः । एतस्य हनूमतो विक्रमवीक्षणेन पराक्रमदर्शनेन जनिताम् उत्पन्नाम् आनन्दबाष्पोद्गतिम् आनन्दाश्रुप्रसारम् रक्षोनाथभयात् रावणभयात् अस्माकमश्रूणि हर्षजनितानीति परिज्ञाय रावणोऽस्मान् दण्डयिष्यतीति भयादित्यर्थः । पिधातुमनसाम् पिधातुम् आच्छादयितुं मनो येषां तेषाम् ('तुं काममनसोरपि' इति तुमुनो मकारलोपः) विद्याधराणाम् देवयोनिविशेषाणां तदा तस्मिन् समये व्याजव्याहृतये छलोक्तये यथा परिणमेत् अस्माकं नेत्रेषु धूम्यावशादश्रूदयो न त्वानन्देनेति कपटेन वक्तुं यथोपयोगं प्राप्नुयात्तथा, कलिन्दशैलतनया कल्लोलशङ्कावहा कलिन्दशैलस्य कलिन्दाख्यपर्वतस्य तनया जाता यमुना तस्याः कल्लोलस्य महातरङ्गस्य शङ्काम् भ्रमम् आवहति जनयतीति तथोक्ता यमुनोत्तुङ्गतरङ्गभ्रान्तिजननीत्यर्थः । धूम्याधूमसंहतिः स्वर्लोकेऽपि स्वर्गलोकेऽपि उज्जृम्भते प्रसरति, स्वर्लोकपर्यन्तं प्रसरन्तीयं धूमसंहतिर्हनूमत्पराक्रमदर्शनजनितानन्दाश्रुप्रवाहं रावणभयात् पिधातुकामानां विद्याधराणां 'धूम्याप्रभवोऽयमश्रुप्रवाहो न त्वानन्दप्रभवः' इति कपटोक्तयेऽवसरं प्रादादिति भावः । 'कल्लोलशङ्कावहा' इत्यत्र भ्रान्तिमदलङ्कारः । स्वतःसिद्धस्य धूम्याविजृम्भणस्य विद्याधरकर्तृक व्याजव्याहृतिपरिणामपरत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । तयोर्नैरपेक्ष्येण स्थितेः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५८ ॥

उस समय [आकाश में फैली हुई] यमुना-तरङ्ग की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली वह धूमपरम्परा स्वर्गलोक तक मानों इस लिए फैल गयी कि जिससे, हनूमान् के पराक्रम को देख कर प्रकट हुई आन्दाश्रुधारा को रावण के भय से छिपाने के लिए इच्छुक विद्याधरों को कपटपूर्वक कहने का उचित अवसर मिल जाय [कि यह अश्रुधारा आनन्द से नहीं, अपितु इस धूम के कारण पैदा हुई है] ॥ ५८ ॥

आदौ नीलांशुकश्रीस्तदनु मरकताबद्धनीवीविभूतिः
कस्तूरीपङ्कभङ्गी क्षणमपि विकचेन्दीवरस्रक्सपत्नी ।

१. 'जम्भते' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्चात्स्निग्धाञ्जनाभा जघनकुचकटीकण्ठनेत्रेषु जाता
दिक्कान्तानां तदानीं दशमुखनगरीदाहसंभूतधूम्या ॥ ५९ ॥

आदाविति। दशमुखनगरीदाहसंभूतधूम्या — दशमुखः रावणस्तस्य नगरी लङ्कापुरी तस्य दाहः दहनं तस्मात् संभूता समुत्पन्ना धूम्या धूमसंहतिः, तदानीम् तस्मिन् समये दिक्कान्तानाम् दिश एव कान्ताः अङ्गनास्तासां जघनकुचकटीकण्ठनेत्रेषु तत्तदवयवप्रदेशेषु, आदौ प्रथमं जघनस्थाने क्षणमपि क्षणमात्रं नीलांशुकश्रीः नीलांशुकस्य नीलवस्त्रस्य श्रीरिव श्रीर्यस्याः सा तथोक्ता (जाता), तदनु तत्पश्चात् जघनप्रदेशादुपरितने कटिभागे क्षणं मरकताबद्धनीवीविभूतिः मरकतमणिखचितरशनाशोभाधारिणी (जाता) [तदनन्तरं तस्मादप्युपरितने कुचप्रान्ते] क्षणमात्रं कस्तूरीपङ्कभङ्गी कस्तूरीपङ्कस्य मृगमदलेपस्येव भङ्गी परिपाटी यस्याः सा तथोक्ता (जाता) [तत उपरितने कण्ठदेशे] क्षणमपि क्षणमात्रं विकचेन्दीवरस्रक्सपत्नी विकसितनीलकमलमाला सदृशी (जाता) सपत्नीपदमत्र सादृश्यवाचकं 'ज्ञातिसोदरबन्ध्वादिशब्दाः सादृश्यवाचकाः' इत्युक्तेः। पश्चात् ततः परतो नयनयोः स्निग्धाञ्जनाभा स्निग्धाञ्जनस्य मसृणकज्जलस्याभेवाभा यस्याः सा तथोक्ता जाता। उपमारूपकयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ५९ ॥

रावण की नगरी लङ्का के दहन से उत्पन्न धूमराशि ने दिगङ्गनाओं के जघन-कुच-कटि-कण्ठ-नेत्रों में पहिले (जघन में) क्षण भर के लिए नीलवस्त्र की शोभा को, उनके बाद (कटि प्रदेश में) क्षणभर के लिए मरकतमणि खचित रशना की समता को, उसके बाद क्षणभर के लिए कुच प्रान्त में कस्तूरी के लेप सादृश्य को तत्पश्चात् कण्ठ प्रदेश में क्षण भर के लिए प्रफुल्लनीलकमल की माला की समता को और उसके पश्चात् नेत्र में क्षण भर के लिए स्निग्ध कज्जल की आभा को प्राप्त किया ॥ ५९ ॥

हा तात हा जननि हा सुत हा सहाय
हा पौत्र [1]हा प्रियसखि ! क्व नु हा हतोऽस्मि ।
इत्यादि पौरपरिदेवनभारवाग्भि-
रापूरि रावणपुरी शिखिना परीता ॥ ६० ॥

१. 'पुत्रि' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हा तातेति । हेति विषादे । हा तात पितः, हा जननि मातः, हा सुत पुत्र, हा सहाय सखे, हा पौत्र, हा प्रियसखि प्रियभार्ये ! क्वनु कुत्र (गतासि) हा हतोऽस्मि नष्टोऽस्मि, इत्यादिपौरपरिदेवनभारवाग्भिः इत्यादिभिः पुरजनकृत-विलापातिशयशब्दैः शिखिना हनूमत्पुच्छोत्थेन वह्निना परीता व्याप्ता रावणपुरी लङ्का आपूरि आपूरिता (अजायत) । ('हा विषाद शुगर्तिषु' इत्यमरः) वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६० ॥

[हनूमान् की पूँछ से उठी] आग से व्याप्त रावण पुरी लङ्का हाय बाप, हाय माँ, हाय पुत्र, हाय मित्र, हाय पौत्र, हाय प्रिये, कहाँ हो, हाय मैं मारा गया इत्यादि विलापातिशयपूर्ण पुर वासियों के शब्दों से भर गयी ॥ ६० ॥

यैर्वृन्दारकसुन्दरीजनमुखे नीराजनं निर्मितं
निर्मेघे गगनेऽपि यैर्विरचिता सौदामिनीसंहतिः ।
ते द्वित्राण्यपि वासराणि न गता निर्वाणमौर्वानल-
ज्वालाडम्बरमम्बुधौ विदधिरे वालानलोद्यत्कणाः ॥ ६१ ॥

यैरिति । यैः वालानलोद्यत्कणैः वृन्दारकसुन्दरीजनस्य सुरललनावृन्दस्य मुखे मुखाग्रभागे नीराजनमारात्रिकं निर्मितम् कृतम् , कल्याणकालसूचकत्वेन नीराजनस्य रूपं धृतमित्यर्थः । तथा यैर्निर्मेघे मेघरहितेऽपि गगने नभोमण्डले सौदामिनीसंहतिः विद्युल्लतापरम्परा विरचिता कृता विद्युल्लतारूपं धृत-मित्यर्थः । ते वालानलोद्यत्कणाः हनूमत्पुच्छाग्निसमुत्थितस्फुलिङ्गाः अम्बुधौ सागरे द्वित्राण्यपि वासराणि दिनानि यावत् (अत्यन्त संयोगे द्वितीया) निर्वाणं शान्तिं न गताः न प्राप्ताः सन्तः और्वानलस्य वाडवाग्नेः ज्वालाड-म्बरम् प्रभासादृश्यं विदधिरे चक्रिरे । ये पुच्छानलोत्थितकणाः सुराङ्गनानां मुखाग्रे कल्याणकालसूचकतया नीराजनस्य रूपं धृतवन्तः, निर्मेघेऽपि वियति विद्युत्प्रभां कृतवन्त त एव पुच्छानलोत्थितकणाः सागरेऽपि द्वित्राणि दिनानि शमं न गताः सन्तो वडवानलशोभां दधिरे इति भावः । अत्राग्निकणानां नीराजननिर्माणाद्यसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलंकारः । शार्दू-लविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६१ ॥

हनूमान् की पूँछ से उत्पन्न जिन अग्नि कणों ने देवङ्गनाओं के मुख की आरती उतारी [अर्थात् आरती का रूप धारण किया] तथा मेघ रहित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आकाश में भी विद्युत्परम्परा का प्रकाशन किया [अर्थात् विद्युत् का प्रकाश फैलाया] वे ही अग्नि कण समुद्र में दो-तीन दिन तक न बुझने से वडवानल की शोभा को धारण करते रहे ॥ ६१ ॥

आदीप्यमानपवनात्मजवालसङ्गा-
दङ्गारशेषविभवामवलोक्य लङ्काम् ।
व्योम्नि स्थिता निशिचराः स्वगृहाणि नूनं
निर्वापयन्त इव नेत्रभवैः पयोभिः ॥ ६२ ॥

आदीप्यमानेति । आदीप्यमानः जाज्वल्यमानो यः पवनात्मजवालः हनूमत्पुच्छस्तस्य सङ्गात् सम्पर्काद्धेतोः, अङ्गार एव शेषो यस्य तादृश एव विभवः सम्पत्तिर्यस्यास्तां तथोक्ताम् साकल्येन दग्धामित्यर्थः, लङ्कामवलोक्य दृष्ट्वा व्योम्नि अन्तरिक्षे स्थिताः वह्निसन्तापभयादिति भावः । निशिचराः राक्षसाः स्वगृहाणि दह्यमानानि स्वस्वमन्दिराणि नेत्रभवैः पयोभिः अश्रुजलैः नूनं निश्चितं निर्वापयन्त प्रशमयन्त इव (अलक्ष्यन्त) । यथा कश्चित् स्वगृहलग्नमग्निं क्वचन उच्चदेशे स्थित्वा ततो जलमुत्क्षिप्य शमयति तथा वह्निसन्तापभयादाकाशे स्थिता राक्षसाः स्वाश्रुजलैः स्वगृहाणि प्रशमयन्त इवालक्ष्यन्तेत्युत्प्रेक्षा । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६२ ॥

हनूमान की जाज्वल्यमान पूँछ के सम्पर्क से लङ्कानगरी की सकल सम्पत्ति जलकर अङ्गारावशेष रह गयी । लङ्का की यह स्थिति देख कर [अग्नि सन्ताप के भय से] राक्षसगण आकाश में स्थित होकर [रोते हुए] मानों अपनी अश्रु धारा से अपने-अपने घरों को बुझाते हुए दिखायी दे रहे हों ॥६२॥

चक्रे शक्रजिदाज्ञया रणमुखे यत्कर्म रक्षोगण-
स्तत्कर्तु [१]क्षणदाचरक्षितिभुजा युक्तो[२]ऽप्यशक्तोऽभवेत् ।
सप्ताचिश्च हनूमता परिचितो लङ्कामधाक्षीद्यथा
तत्पित्रा[३]मरुता युतोऽपि न तया दाहक्रियायां पटुः ॥ ६३ ॥

चक्र इति । रक्षोगणः राक्षससमूहः रणमुखे सङ्ग्रामे शक्रजिदाज्ञया शक्रजित् इन्द्रजिन्नामा रावणपुत्रस्तस्य आज्ञया आदेशेन यत् यादृशं भीषण-

---

१. 'रजनीचरक्षितिभृता' इति पाठा० । २. 'अयुक्तोऽभवत्' इति पाठा० ।
३. 'मरुतः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मित्यर्थः कर्म युद्धरूपं कार्यं चक्रे कृतवान्, क्षणदाचरक्षितिभुजा राक्षसराजेन रावणेन युक्तः साक्षात् सहितोऽपि तत् तादृशं भीषणं कार्यं कर्तुम् अशक्तः असमर्थो भवेत् जायेत। राक्षसा मेघनादस्यादेशमात्रेण संग्रामे तादृशं भीषणं कार्यमकुर्वन् यादृशं कार्यं रावणसाहचर्येणापि ते कर्त्तुं न शक्नुयुरित्यर्थः। पितुरपेक्षया पुत्रस्य सामर्थ्याधिक्यं युक्तमेवेति भावः। हनूमता वायुपुत्रेण परिचितः प्रवर्तितः सतार्चिः अग्निश्च लङ्कां यथा येन प्रकारेण अधाक्षीत् दग्धवान् तथा तेन प्रकारेण मरुता वायुना हनूमत्पित्रा युतः सहितोऽपि दाहक्रियायाम् दहनकर्मणि पटुः समर्थो न भवेत्। सम्बन्धेऽसम्बन्धरूपातिशयोक्तिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६३ ॥

इन्द्रजित् [रावणपुत्र] की आज्ञामात्र से राक्षसगण ने संग्राम में जैसा भीषण कार्य किया वैसा वह रावण का साथ पाने पर भी नहीं कर सकता हनूमान् [पवन पुत्र] से प्रवर्तित अग्नि ने जिस तरह लंका को जलाया उस तरह वह पवन का साथ पाने पर भी लङ्का को नहीं जला सकता था ॥ ६३ ॥

तस्मिन् हनूमदरणिप्रभवे हुताशे
शुद्धिं विधाय पतिमेव समेतुमैच्छत्।
लङ्केश्वरेण रणकेलिकुतूहलेन
बाहोर्बलादपहृता सुरराजलक्ष्मीः ॥ ६४ ॥

तस्मिन्निति। रणकेलिकुतूहलेन रणकेलिः युद्धक्रीडा तत्र कुतूहलम् समुत्सुकता यस्य तथोक्तेन युद्धप्रियेणेत्यर्थः, लङ्केश्वरेण रावणेन बाहोः भुजस्य एकस्यैवेति भावः। बलात् पराक्रमात् अपहृता सुरराजलक्ष्मीः इन्द्रसमृद्धिः, हनूमानेव अरणिः अग्निमन्थनकाष्ठविशेषः, स प्रभवः उत्पत्तिस्थानं यस्य तादृशे हनूमता प्रवर्तित इत्यर्थः, तस्मिन् हुताशे वह्नौ शुद्धिम् स्वसंस्कारं विधाय कृत्वा रावणसम्पर्कजनितपापं विशोध्येत्यर्थः पतिम् स्वस्वामिनमिन्द्रं समेतुम् संगन्तुमैच्छत् इच्छति स्म। रावणेनापहृत्य लङ्कायां स्थापिता सुरेन्द्रस्य प्रिया साम्राज्यलक्ष्मीस्तन्नगरे दग्धे जातेऽवसरं लब्ध्वा हनूमता प्रवर्तिते तस्मिन्नग्नौ रावणसम्पर्कजनितपापं विशोध्य संस्कारशुद्धा सती स्वपतिमिन्द्रं संगन्तुमैच्छदिति भावः। सुरराजलक्ष्म्या ईदृशेच्छाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः। एतेन रावणस्य विनाश आसन्न इति सूच्यते। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ६४॥

युद्धप्रिय रावण के द्वारा अपने भुजबल से हर कर [लङ्का में] लायी गयी इन्द्र की लक्ष्मी हनूमान रूप अरणि [मन्थन काष्ठ] से उत्पन्न उस अग्नि में अपनी शुद्धि कर अपने स्वामी इन्द्र के पास जाने के लिए इच्छुक हुई॥ ६४॥

वाचामिदानीं किमु विस्तरेण लङ्कापुरी रावणबाहुगुप्ताम्।
काकुत्स्थदूतोऽयमुपेत्य चक्रे कृतान्तदूतस्य सुखप्रवेशाम्॥ ६५॥

वाचामिति। इदानीम् अस्मिन्नवसरे वाचां विस्तरेण किमु, वाक्प्रपञ्चेन नास्ति किमपि फलमित्यर्थः, अयं काकुत्स्थदूतः रामदूतो हनूमान् रावणबाहुगुप्ताम् रावणभुजसुरक्षिताम्, लङ्कापुरीम् उपेत्य आगत्य कृतान्तदूतस्य यमकिङ्करगणस्य सुखप्रवेशाम् सुखेन प्रवेष्टुं शक्यां चक्रे कृतवान्। यस्यां लङ्कायां यातुधानगणभिया यमदूताः कदापि पदार्पणमपि कर्तुं नोत्सहन्ते स्म, तामेव लङ्कां तत्कृतेऽसंख्यराक्षसान् हत्वा हनूमान् सुखप्रवेशामकरोदिति भावः। उपजातिर्वृत्तम्॥ ६५॥

इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ? रावण की भुजाओं से सुरक्षित उस लङ्कापुरी में रामदूत हनूमान् ने प्रवेश कर [असंख्य राक्षसों के संहार से] यमदूतों के लिए उसमें प्रवेश करना आसान बना दिया॥ ६५॥

पौलस्त्यपातकिसमागमजायमान-
मेनः पुनान इव वानरयायजूकः।
निर्वर्तिताक्षविजयो निजबालवह्नौ
हुत्वा पलाशसमिधः सुगतिर्बभूव॥ ६६॥

पौलस्त्येति। वानरः हनूमानेव यायजूकः यज्ञकर्ता ('इज्याशीलो यायजूकः' इत्यमरः) पौलस्त्यः रावण एव पातकी पापकर्मपरायणस्तस्य समागमेन संसर्गेण दर्शनसम्भाषणादिनेत्यर्थः, जायमानम् सम्पद्यमानम् एनः दुरितम् पुनानः क्षालयन्निवेत्युत्प्रेक्षा, निर्वर्तिताक्षविजयः कृताक्षकुमारसंहारः विहितेन्द्रियविजयश्च सन् ('अक्षो रथस्यावयवे पाशके चाक्षमिन्द्रियम्' इति विश्वः) निजवालवह्नौ स्वलाङ्गूलोत्थिताग्नौ, पलाशा राक्षसा एव पलाशसमिधः पलाशाख्यतरुसमिधः हुत्वा हव्यद्रव्यरूपेण क्षिप्त्वा दग्ध्वा च सुगतिः निर्विघ्न-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गमनः शोभनलोकश्च बभूव । यज्ञपरायणो जनो यथा पातकिसंसर्गसम्भूतं पापं विशोधयितुं जितेन्द्रियः सन् वह्नौ पलाशसमिधं हुत्वा पापमुक्तो भूत्वा स्वर्गाद्युत्तमां गतिं प्राप्नोति तथा हनूमान् रावणस्य पातकिनः संसर्गात् संभूतं पापं प्रक्षालयितुमिवाक्षकुमारं जित्वा राक्षसरूपपलाशसमिधः स्वपुच्छवह्नौ हुत्वा निर्विघ्नं सञ्चरितुं प्रावर्ततेत्याशयः । श्लेषोत्प्रेक्षानुप्राणितः साङ्गरूपकालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६६ ॥

हनूमान् रूपी यज्ञकर्ता ने रावण रूपी पातकी के संसर्ग से उत्पन्न पाप का प्रक्षालन करने के लिए अक्षविजय (१–अक्षकुमार का संहार २–इन्द्रियनिग्रह) करके अपनी पूँछ से उत्पन्न अग्नि में राक्षस रूप पलाशवृक्ष की समिधा का हवन करके उत्तम गति (१–अप्रतिहत गमन, २–स्वर्गादि उत्तम लोक) प्राप्त कर ली ।

लङ्कादाहेऽप्यनार्तां रघुपतिदयितां चारणोक्त्या विदित्वा
सानन्दस्तां प्रणम्य प्रतिगमनविधौ प्राप्य तस्या नियोगम् ।
आरुह्यारिष्टशैलं निधिमपि पयसां स्वैरमुत्तीर्य वेगा-
च्चक्रे गत्वा महेन्द्रं प्लवग[1]कुलपतीन्पूर्णकामान्हनूमान् ॥६७॥

लङ्कादाह इति । लङ्कादाहेऽपि समग्रलङ्कायां भस्मीभूतायामपीत्यर्थः, रघुपतिदयिताम् रघुनाथप्रियां सीतां चारणोक्त्या गन्धर्वादीनां वचनेन अनार्ताम् अपीडिताम् दहनात् सुरक्षितामित्यर्थः, विदित्वा ज्ञात्वा सानन्दः हृष्टः सन्, तां सीतां प्रणम्य नमस्कृत्य प्रतिगमनविधौ परावर्तनविधाने तस्याः सीताया नियोगम् आज्ञां प्राप्य अरिष्टशैलम् समुद्रदक्षिणपारस्थमरिष्टाख्यं पर्वतमारुह्य पयसां निधिम् समुद्रमपि स्वैरम् स्वच्छन्दभावेन वेगात् जवात् उत्तीर्य उल्लङ्घ्य महेन्द्रम् समुद्रोत्तरतटवर्तिनमङ्गादाद्यधिष्ठितं महेन्द्राख्यं पर्वतं गत्वा हनूमान् प्लवगकुलपतीन् अङ्गदादिवानरमुख्यान् पूर्णकामान् पूर्णमनोरथान् चक्रे कृतवान् । अत्रातिविस्तरेण कथनीयस्यार्थस्य संक्षेपेणोक्तेः संक्षेपो नाम गुणः, 'संक्षेपार्थाभिधानं यत् संक्षेपः परिकीर्तितः' इति विद्यानाथोक्तेः । स्रग्धरा वृत्तम् ।

लङ्का पुरी के जल जाने पर भी सीता के पास तक आँच पहुँची भी नहीं–ऐसा गन्धर्वों के द्वारा जान कर प्रसन्न हनूमान् ने आकर सीता को प्रणाम कर उनसे लौटने की अनुमति प्राप्त कर, अरिष्ट नामक पर्वत पर चढ़

१. 'बल' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर वेग से निर्विघ्न समुद्र पार कर, महेन्द्र पर्वत पर पहुँच कर [सीता की उपलब्धि बता कर] अङ्गदादि वानर मुख्यों को सफल मनोरथ किया ॥६७॥

अथ यथार्हं सैन्याधिपान्संमान्य मारुतिस्तै[1]रनुयुक्तः [2]स्ववृत्तान्तमखिलमाख्यातवान् ।

अथेति । अथ महेन्द्रपर्वतप्राप्त्यनन्तरं यथार्हम् यथोचितं सैन्याधिपान् जाम्बवदङ्गदादिसेनापतीन् संमान्य प्रणामादिना सम्पूज्य मारुतिः हनूमान्, तैः सैन्याधिपैर्जाम्बवदादिभिः अनुयुक्तः पृष्टः सन् अखिलम् समग्रं स्ववृत्तान्तम् समुद्रतरणात् लङ्कादाहपर्यन्तं जातं वृत्तम् आख्यातवान् कथितवान् ।

इसके बाद वानर सेनापतियों का [प्रणामादि से] यथोचित सम्मान करके, उनके पूछने पर हनूमान् ने अपना सारा वृतान्त कह सुनाया ।

तदनु पवनतनय[3]वचनमुदिता वानरवरूथिनी यूथनाथानुयाता तद्दर्शनजनितमानन्दमानन्दशरधौ दाशरथौ सुग्रीवे च संविभज्येव विवक्षितुमहमहमिकया धावन्ती मध्येसरणि दधिमुखकृतावनं मधुवनं हनूमदनुमत्याभिभूय मधुपानसुखमनुबभूव ।

तदन्विति । तदनु तदनन्तरं पवननतनयवचनमुदिता पवनतनयस्य हनूमतो वचनेन लङ्कासम्बन्धिन्या वार्तया मुदिता प्रसन्नतां गता वानरवरूथिनी वानरसेना यूथनाथानुयाता जाम्ववदादिसेनानायकानुगता तद्दर्शनजनितम् हनूमत्कृतसीतादर्शनसमुत्पन्नम् आनन्दम् हर्षातिरेकम्, आनन्दशरधौ आनन्दसागरे दाशरथौ रामे, सुग्रीवे च संविभज्येव विवक्षितुम् वक्तुम् अहमहमिकया अहं पूर्वमहं पूर्वमिति प्रतिस्पर्धया धावन्ती अतिवेगेन गच्छन्ती मध्येसरणि मार्गस्य मध्ये दधिमुखकृतावनम् दधिमुखेन दधिमुखनामकेन सुग्रीवमातुलेन कृतम् अवनम् रक्षणं यस्य तत्तथोक्तम्, दधिमुखेन रक्ष्यमाणमित्यर्थः, मधुवनं हनूमतोऽनुमत्या आज्ञया अभिभूय आक्रम्य मधुपानसुखम् क्षौद्रपानजनितसुखम् अनुबभूव, यथेच्छं मधुपानमकरोदिति भावः । ('मधु मद्ये पुष्परसे क्षौद्रेऽपि च' इत्यमरः) ।

---

१. 'एतैः' इति पाठा० । २. 'स्वकीयवृत्तान्तम्' इति पाठा० ।
३. 'वचन' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके बाद हनूमान् के वचन से प्रसन्न, सेनापतियों के सहित वानर सेना ने हनूमान् के द्वारा किये गये सीता के दर्शन का आनन्द, आनन्दसिन्धु भगवान् रामचन्द्र तथा सुग्रीव को मानों बाँट कर [एक साथ] कहने की इच्छा से प्रतिस्पर्धा पूर्वक दौड़ती हुई, बीच मार्ग में दधिमुख [सुग्रीव के मामा] के द्वारा रक्षित मधुवन पर हनूमान् की अनुमति से आक्रमण कर [यथेच्छ] मधुपान सुख का अनुभव किया।

अथाब्रवीद्गिरिवरतुङ्गमङ्गदं
कृताञ्जलिर्दधिमुख एष रोषवान्।
वलीमुखान्मधुभजने शिलीमुखान्
भवानिमान्झटिति निवारयेदिति ॥ ६८ ॥

अथेति। अथ वानरवरूथिन्या मधुवन आक्रान्ते सति एषः रोषवान् मधुवनाक्रमणजनितकोपयुतो दधिमुखः तन्नामा वनरक्षकः सुग्रीवमातुलः, कृताञ्जलिः बद्धकरयुगलः सन्, गिरिवरतुङ्गम् पर्वतोन्नतशरीरम् अङ्गदम् युवराजं सेनानायकञ्च, भवान् मधुभजने मधुसेवनकर्मणि शिलीमुखान् भ्रमरभावं गतान् समधिकासक्तान् ('अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः)। इमान् बलीमुखान् वानरान् झटिति शीघ्रं निवारयेत् निषेधेत् इत्येवम् अब्रवीत् उक्तवान्। वानरवरूथिनीकृताक्रमणेन दधिमुखो रोषं गतः। स कृताञ्जलिर्महोन्नतशरीरमङ्गदं प्रार्थयत—'भवान् युवराजः सेनानायकश्च, तस्मादिमान् मधुपाने भ्रमरभावं गतान् वानरान् मधुपानान्निवारयतु' इति भावः। रुचिरा वृत्तम्—'चतुर्ग्रहैर्यतिरुचिरा जभस्जगाः' इति लक्षणात् ॥ ६८ ॥

मधुवन के आक्रान्त होने से कुपित इस दधिमुख ने हाथ जोड़ कर, पर्वत के समान विशालकाय अङ्गद से कहा कि मधुपान में भ्रमर बने हुए इन वानरों को आप [युवराज और सेनानायक की हैसियत से] शीघ्र मना करें।

अयमप्येनमवोचत्।

अयमिति। अयम् अङ्गदोऽपि एनम् मधुवनरक्षकं दधिमुखम् अवोचत् वक्ष्यमाणप्रकारेण उक्तवान्।

अङ्गद ने भी दधिमुख से कहा—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशमुखपुरमध्ये वीक्षिता मैथिलीति
श्रवणमधु वितीर्णं येन वीरेण मह्यम् ।
दधिमुख ! यदि सोऽयं भाषते को निरुन्ध्या-
न्मधु पिबतु[1]यथेच्छं वाहिनो वानराणाम् ॥६९॥

दशमुखेति । दशमुखपुरमध्ये रावणनगरमध्ये [मया] मैथिली सीता वीक्षिता दृष्टा इत्येवं श्रवणमधुकर्णामृतं येन वीरेण हनूमता मह्यम् अङ्गदाय वितीर्णम्, दत्तम् श्रवणानन्दकरं वचनं येन मह्यमुक्तमिति भावः। यदि सोऽयं वीरो हनूमान् भाषते वानरसेनां मधुपातुमादिशति तदा कः को वा निरुन्ध्यात् निवारयेत् ? [यो वीरो 'मया लङ्कायां सीता दृष्टा' इति कर्णानन्दकरं वचनमश्रावयदस्मान् समस्तवानराँश्चाजीवयत्तस्य वचनं कथं मयोल्लङ्घयितुं शक्यते, तच्छ्रवणमधुवचनापेक्षया निकृष्टतरमिदं मधु पिबति यदि] वानरणां वाहिनी सेना यथेच्छं यथारुचि मधु पिबतु, न युक्तं तन्निरोधनमिति भावः । मालिनी वृत्तम्

रावण की नगरी लङ्का के अन्दर मैंने सीता का दर्शन किया है, ऐसा कानों के लिए मधुस्वरूप वाक्य जिस वीर हनुनान् ने मुझसे कहा है, वही जब मधु पीने को कह रहा है तब उसे कौन रोके ? [रोको मत] वानरसेना इच्छा भर मधुपान करे ॥ ६९ ॥

तदनु भय[2]वशसमुपगतदधिमुखवचनविदितमधुवनकदन[3]परिगणितजनकदुहितृदर्शनजनितप्रमदभरभरितस्तपनतनयस्तत्र[4]तनुविकृतिमतनुत[5]दधिमुखागमननिमित्तसंपत्तिम् ।

तदन्विति । तदनु अङ्गदवचनानन्तरम्, भयवशेन 'मधुवनविमर्दनेन कुपितः सुग्रीवो मामेव दण्डयिष्यति' इति भयपारतन्त्र्येण समुपगतस्य तद्वृत्तान्तनिवेदनाय सुग्रीवसमीपमागतस्य दीधमुखस्य वचनेन विदितम् ज्ञातं यन्मधुवनकदनम् वानरकृतमधुवनविमर्दनं तेन परिगणितम् अवगतं जनकदुहितुः सीताया दर्शनम् साक्षात्कारस्तज्जनितः यः प्रमदभरः आनन्दातिरेकः तेन भरितः परिपूर्णः तपनतनयः सूर्यपुत्रः सुग्रीवस्तत्र तस्मिन् समये दधिमुखा-

---

१. 'यथेष्टम्' इति पाठा० । २. 'विवशसमुपनत' इति पाठा० ।
३. 'परिमणित' इति पाठा० । ४. 'तत्र' इति नास्ति क्वचित् ।
५. 'तदभिमुखा' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गमनमेव निमित्तसम्पत्तिः कारणसामग्री यस्यास्तां तथोक्ताम् तनुविकृतिम् प्रसन्नताव्यञ्जिकां मुखविकासादि चेष्टाम् अतनुत अकरोत् । दधिमुखमुखान्मधुवनकदनश्रवणेन वानरैरवश्यं सीतादर्शनं कृतमन्यथा तथा न क्रियेतेति निर्णीय सुग्रीवः परमानन्दमग्नोऽभूदिति भावः ।

इसके वाद भयवश समीप आये हुए दधिमुख के कहने से मधुवन के विनाश की बात जान कर सुग्रीव ने समझ लिया कि वानरों ने सीता का दर्शन कर लिया है, इससे वे आनन्द से भर गये और दधिमुख के आगमन रूप कारण से उनके अङ्गों से प्रसन्नता व्यञ्जक चेष्टायें होने लगीं ।

आरुह्याद्रिमथावरुह्य विपिना[1]न्यासाद्य नानाफला-
[2]न्यास्वाद्य प्लुतमारचय्य वदनैरापाद्य वाद्यक्रमान् ।
आलिङ्ग्य द्रुममक्रमं मदवशादाधूय पुच्छच्छटा-
मारादाविरभूदहंप्रथमिकापीना कपीनां चमूः ॥ ७० ॥

आरुह्येति । अद्रिम् मार्गस्थं पर्वतम् आरुह्य अथानन्तरम् अवरुह्य, पर्वतारोहणावरोहणक्रीडां कृत्वा, विपिनानि मध्येमार्गं वनानि आसाद्य प्राप्य नानाफलानि विविधप्रकारकाणि फलानि आस्वाद्य भुक्त्वा, प्लुतम् उत्प्लवनम् आरचय्य कृत्वा, वदनैः मुखैः वाद्यक्रमान् डिण्डिमादिवाद्यध्वनिप्रकारान् आपाद्य मुखैर्विविधवाद्यध्वनिं कृत्वेत्यर्थः, द्रुमम् वृक्षानित्यर्थः, अक्रमम् प्रथमं मूलं ततो मध्यं ततः शिखामारोहतीति क्रमं विहायेत्यर्थः, आलिङ्ग्य आश्लिष्य मदवशात् मधुपानजनितमदपारतन्त्र्यात् पुच्छच्छटाम् लाङ्गूलावलिम् ('वृन्दं जालं चक्रवालं जालकं पेटकाच्छटा' इति वैजयन्ती) आधूय चालयित्वा अहंप्रथमिकापीना—अहं प्रथमोऽहं प्रथम इति यस्यां क्रियायां सा अहंप्रथमिका तया पीना पूर्णा कपीनाम् वानराणां चमूः सेना आरात् सुग्रीवादिसमीपे ('आराद्दूरसमीपयो'रित्यमरः) आविरभूत् अलक्ष्यतेत्यर्थः । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ ७० ॥

पर्वत पर चढ़ कर तथा उतर कर, वनों को प्राप्त कर नाना प्रकार के फलों को खाकर, मुँह से नाना प्रकार के बाजों की ध्वनि करके, पेड़ों पर क्रमर-

१. 'आस्वाद्य' इति पाठा० । २. 'आस्फोट्य' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हित ढंग से चढ़कर और मस्ती में पूँछ डुला कर मैं पहिले मैं पहिले इस प्रतिस्पर्धा से भरी हुई वानर सेना [किष्किन्धा के] समीप पहुँची दिखायी पड़ी।

निद्राक्षयादरुणितेन समीरपुत्रः
सौमित्रिनेत्रयुगलेन निपीयमानः।
चूडामणिं करतले कलयन्ववन्दे
पादारविन्दयुगलं भरताग्रजस्य ॥ ७१ ॥

निद्राक्षयादिति। निद्राक्षयात् वनवासे निद्रात्यागात् अरुणितेन रक्तीकृतेन सौमित्रिनेत्रयुगलेन लक्ष्मणनयनद्वयेन निपीयमानः सादरस्नेहमवलोक्यमानः समीरपुत्रः हनूमान् चूडामणिम् सीताया अभिज्ञानभूतं शिरोभूषणविशेषं करतले हस्ते कलयन् धारयन् भरताग्रजस्य श्रीरामस्य पादारविन्दयुगलम् चरणपङ्कजद्वयं ववन्दे नमश्चकार। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७१ ॥

[वनवास में निद्रा परित्याग के कारण लाल वर्ण वाले, लक्ष्मण के नेत्रों से आदर एवं स्नेह से देखे जाते हुए हनूमान् ने [सीता द्वारा दिये गये अभिज्ञान भूत] चूड़ामणि को हाथ में लेकर श्रीराम जी के चरण कमलों को प्रणाम किया ॥ ७१ ॥

अक्लेशसंभूतगतागताभ्यां [1]वितीर्णविस्तीर्णमहार्णवोऽपि।
आनन्दसिन्धौ पृतनासमक्षमक्षस्य हन्ता नितरां ममज्ज ॥ ७२ ॥

अक्लेशेति। अक्षस्य रावणपुत्रस्य अक्षकुमारस्य हन्ता संहारको हनूमान् अक्लेशेन अनायासेन संभूते जाते ये गतागते गमनागमने ताभ्यां वितीर्णः लङ्घितः विस्तीर्णः शतयोजनविस्तृतः दुस्तर इति यावत् महार्णवः महासागरो येन स तथोक्तोऽपि पृतनासमक्षम् वानरसेनायाः पुरतः, आनन्दसिन्धौ हर्षसागरे नितराम् अत्यन्तं ममज्ज निमग्नो जातः। ईदृशानां महावीराणां कपीनां मध्येऽहमेवानायासेन समुद्रमुल्लङ्घ्य लङ्कां गत्वा सीतामद्राक्षम्, अक्षकुमारप्रभृतीन् राक्षसान् हत्वा लङ्कां दग्ध्वा सीताया अभिज्ञानभूतं चूडामणिं चानीय श्रीरामाय समर्पितवानिति परमानन्दमन्वभूदिति भावः। महोदधिमुल्लङ्घितवतोऽपि पवनतनयस्यानन्दसिन्धुनिमज्जनोक्तेर्निवरोधाभासोऽलङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम्

१. 'निस्तीर्ण' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनायास यातायात से विस्तीर्ण महासागर को पार करने वाले अक्षसंहारक हनूमान् भी वानर सेना के सामने आनन्द सिन्धु में निमग्न हो गये।

आनीतचूडामणिसंनिधानादाविःप्रमोदेन रघूद्वहेन।
तत्रानुयुक्तः [1]पवनात्मजन्मा विज्ञापयामास कृतप्रणामः ॥ ७३ ॥

आनीतेति। आनीतस्य सीतासकाशाद्धनूमताऽऽहृतस्य चूडामणेः सीताशिरोरत्नस्य संनिधानात् दृष्टिगोचरत्वात् आविःप्रमोदेन जातहर्षेण रघूद्वहेन श्रीरामेण तत्र तस्मिन् समये अनुयुक्तः पृष्टः पवनात्मजन्मा वायुपुत्रो हनूमान् कृतप्रणामः विहितनमस्कारः सन् विज्ञापयामास सीतावलोकनादिवृत्तान्तजातं वक्ष्यमाणप्रकारेण राघवाय निवेदयामास। इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ७३ ॥

[हनूमान् के द्वारा सीता के पास से] लायी गयी चूड़ामणि के दृष्टिगोचर होने से परम प्रसन्न श्रीराम जी के पूछने पर हनूमान् ने प्रणाम कर उनसे इस प्रकार से निवेदन किया ॥ ७३ ॥

लङ्कापुरोपवन[2]सीम्न्यथ राजपुत्री-
मालोकयं निशिचरीगणबाध्यमानाम्।
केनापि पातकवशेन सुपर्णलोके
बन्दीकृतामिव भुजंगमराजकन्याम् ॥ ७४ ॥

लङ्केति। अथ वानराधीशाज्ञया जनकजान्वेषणायेतः प्रस्थानान्तरम् लङ्कापुरस्य रावणराजधान्या उपवनसीम्नि उद्यानप्रदेशे अशोकवनिकामध्य इत्यर्थः, निशिचरीगणबाध्यमानाम् राक्षसीवृन्दपीड्यमानाम्, केनापि अज्ञातेन पातकवशेन पूर्वकृतपापमहिम्ना सुपर्णलोके गरुडलोके बन्दीकृताम् कारागारे निक्षिप्तामतएव विषीदन्तीमित्यर्थः भुजंगमराजकन्याम् नागकन्यामिव राजपुत्रीम् जनकजां सीताम् आलोकयम् दृष्टवान्। उपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

मैं [हनूमान्] ने लङ्कापुरी के उपवन [अशोक वाटिका] में राक्षस स्त्रियों से तङ्ग की जाती हुई राजपुत्री सीता को, गरुड की दुनिया में बन्दी बनायी गयी नाग कन्या की भाँति [विषाद-मय स्थिति में पड़ी] देखा ॥७४॥

---

१. 'पवमानजन्मा' इति पाठा०।

२. 'सीमनि' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देव्यास्त्वदीयान्वयकीर्तनेन त्वन्मुद्रया च व्यपनीय शोकम् ।
वार्तामभिज्ञानमयी[1]मयाचं प्रस्थातुकामःपरिपूर्णकामः ॥ ७५ ॥

देव्या इति । त्वदीयान्वयकीर्तनेन भवदीयवंशप्रशस्त्या, त्वन्मुद्रया अभिज्ञानतया भवता दत्तयाऽङ्गुलिमुद्रिकया च देव्याः सीतयाः शोकम् मनोव्यथां व्यपनीय दूरीकृत्य परिपूर्णकामः सफलमनोरथः प्रस्थातुकामः ततो गन्तुमनाः सन् अभिज्ञानमयीम् परिचयचिह्नभूतां वार्ताम् वृतान्तम् (सीताम्) अयाचम् याचितवान् । सीतां दृष्ट्वा ततः प्रस्थानसमयेऽहं (हनूमान्) देवि, इतरजनाज्ञातं कामपि रहस्यवार्ता भवती कथयतु येन मत्कृतत्वद्दर्शने राघवो विश्वसेदिति प्रार्थितवानित्यर्थः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ७५ ॥

आप के वंश की प्रशंसा कर तथा आप की अंगूठी देकर मैंने सीता के शोक को दूर किया और अपना कर्त्तव्य पूरा कर [वहाँ से] चलने के लिए इच्छुक हो, सीता से अभिज्ञान के तौर पर कोई [रहस्यमयी] वार्त्ता देने की प्रार्थना की ॥ ७५ ॥

ब्रह्मास्त्रवित्रस्तजयन्तकृत्यां [2]कथामभिज्ञाप्य वने प्रवृत्ताम् ।
चिरं रुदन्त्या जनकेन्द्रपुत्र्या चूडामणिः प्रेषित[3]एष तुभ्यम् ॥७६॥

ब्रह्मास्त्रेति । ब्रह्मास्त्रात् रामेण प्रयुक्तात् दर्भमयाद् ब्रह्मास्त्रात् वित्रस्तस्य समधिकभीतस्य जयन्तस्य काकरूपधरस्य जयन्ताभिधानस्येन्द्रपुत्रस्य कृत्यम् सीतास्तनविदारणरूपक्रिया यस्यां ताम् वने चित्रकूटतटविपिने प्रवृत्ताम् जातां कथाम् आख्यानम् अभिज्ञाप्य अभिज्ञानत्वेनोक्त्वा चिरम् बहुकालपर्यन्तं रुदन्त्या पूर्वानुभूतवृत्तान्तस्मृत्याऽश्रूणि मुञ्चन्त्या जनकेन्द्रपुत्र्या जनकराजपुत्र्या सीतया एषः अयं चूडामणिः तुभ्यम् रामाय प्रेषितः अभिज्ञानत्वेन प्रहितः, जयन्तकाककथा चूडामणिश्चेत्यभिज्ञानद्वयं दत्तमित्यर्थः । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ७६ ॥

[आप के द्वारा प्रयुक्त दर्भमय] ब्रह्मास्त्र से भयभीत जयन्त काक के कृत्य वाली, वन में हुई घटना को कह कर रोती हुई वैदेही ने यह चूड़ामणि आप के लिए भेजी है ॥ ७६ ॥

---

१. 'ययाचे' इति पाठा० ।
२. 'कथामपि ज्ञाप्य' 'कथां च विज्ञाप्य' इति पाठा० ।
३. 'एष' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किं बहुना—

देव ! तस्याः प्रतिष्ठासून[1]सूनाशैकपालितान् ।
मुद्रयित्वा प्रपन्नोऽहं[2]तवाभिज्ञानमुद्रया ॥ ७७ ॥

इति श्री विदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे सुन्दरकाण्डः समाप्तः ।

किं बहुना, देवेति । किं बहुना किमधिकेनोक्तेन, हे देव स्वामिन्, प्रतिष्ठासून् प्रस्थातुमिच्छून् निर्गन्तुमिच्छतोऽपीत्यर्थः, आशैकपालितान् आशया भवदागमनप्रतीक्षया एकया पालितान् कृतरक्षान्, तस्याः सीतायाः असून् प्राणान अहम् हनूमान् तव श्रीरामस्य, अभिज्ञानमुद्रया—अभिज्ञानमुद्रा अभिज्ञानरूपाङ्गुलीयकम्, सैव अभिज्ञानमुद्रा मुद्राङ्कनोपकरणं तया, मुद्रयित्वा निरुध्य अवस्थाप्येत्यर्थः, प्रपन्नः भवत्सकाशमागतोऽस्मि । सततविपद्ग्रस्तां भवदाशामात्रेण जीवन्तीं सीतां भवदीयाङ्गुलीयकं प्रदायाश्वासनं च दत्त्वाऽहं भवदन्तिकमायात इति भावः । 'अभिज्ञानमुद्रया' इत्यत्र श्लिष्टरूपकम् ॥७७॥

इति कल्याण्याख्यायां संस्कृतव्याख्यायां सुन्दरकाण्डः समाप्तः ।

अधिक क्या कहें,

स्वामिन्, शरीर से निकलने के लिए इच्छुक सीता के प्राण, केवल आप के आगमन की प्रतीक्षा से ही रोक रखे गये हैं, मैं आप के द्वारा दी गयी अंगूठी रूप मुहर से मुद्रित कर–सुरक्षित करके आप के पास आया हूँ ॥७७॥

इति सुन्दरकाण्डः समाप्तः ।

---

१. 'अशोक' इति पाठा० ।
२. 'त्वदभिज्ञान' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ युद्धकाण्डम्

दृष्टे यत्र यदृच्छयापि वचसां देवी पुरोवर्तते
सारस्यं महदभ्युदेति सदसि प्रागल्भ्यमुज्जृम्भते ।
जायन्ते सकलाः कला अपि नृणां जागर्ति कीर्तिर्नवा
चेतः स्निह्यति तत्र देशिकपदाम्भोजे च भोजे मम ॥ १ ॥

दृष्टे यत्रेति । यत्र यष्मिन् देशिकपदाम्भोजे भोजे च यदृच्छया संयोगवशेनापि, न त्वत्यादरेणेति भावः । दृष्टे सकृदप्यवलोकिते सति नृणाम् सर्वेषां मनुष्याणां, वचसां देवी सरस्वती पुरो वर्तते प्रत्यक्षा भवति । महत् समधिकं सारस्यम् माधुर्यम् अभ्युदेति समुत्पद्यते । सदसि सभायां प्रागल्भ्यम् सकलविद्याविचारप्रौढत्वम् उज्जृम्भते वर्धते । सकलाः समस्ता अपि कलाः चतुष्षष्टिसंख्यकाः इतिहासागमादिविद्याः जायन्ते अध्ययनाद्यभावेऽपि स्वतः प्रकाशन्ते । नवा नूतना अपूर्वेत्यर्थः कीर्तिः जागर्ति विलसति । तत्र तस्मिन् देशिकपदाम्भोजे गुरुपादपद्मे भोजे भोजराजे च मम लक्ष्मणसूरेः चेतः मनः स्निह्यति बहुविधकल्याणकरत्वात्तत्र मे मनः स्नेहयुक्तं जायते इत्यर्थः । ग्रन्थकर्तुस्तत्र स्नेहशीलमनस्कतया प्रणतिः परिलक्ष्यत इति बोध्यम् । अनुप्रासोऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १ ॥

जिन [गुरु चरण कमलों तथा भोजदेव] के निरुद्देश्य दर्शन से भी सरस्वती देवी प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं, महती सरसता उत्पन्न होती है, सभा में प्रौढता प्रकट होती है, सभी कलायें [अनायास] अवगत हो जाती हैं—तथा अपूर्व कीर्ति फैलने लगती है, उन्हीं गुरुचरणकमलों तथा भोजदेव के प्रति मेरे हृदय में स्नेह होता है ॥ १ ॥

भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्य-
न्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदराम् ।
न व्रीडितोऽहमधुना नवरत्नहार-
सङ्गेन किन्न हृदि धार्यत एव तन्तुः ॥ २ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोजेनेति। तेन असाधारणकवित्वशक्तिप्रसिद्धेन भोजेनापि रचिताम् अत्युदाराम् सकलगुणविशेषणविशिष्टतयाऽतिरमणीयां कृतिम् इमं ग्रन्थम् अल्पीयसापि अत्यल्पेन गौरवविहीनतया तुच्छेनेत्यर्थः, वचसा स्वकवित्वरूपवचनेन पूरयिष्यन् पूरितां करिष्यन् अहम् लक्ष्मणसूरिः, अधुना अस्मिन्नेतत्प्रारम्भकाले न व्रीडितः व्रीडां नानुभवामि, (यतः) नवरत्नहारसङ्गेन नूतनमाणिक्यमालासंसर्गवशेन तन्तुः सूत्रं हृदि हृदयदेश एव किन्न धार्यते स्थाप्यते। भोजरचितमुत्कृष्टतममिदं चम्पूकाव्यं तुच्छतरेण स्वकवित्ववचनेन पूरयितुमुद्युक्तोऽहं (लक्ष्मणसूरिः) लज्जां नानुभवामि, यतो मणिमालया सहैव तद्ग्रन्थनोपकरणभूतं सूत्रमपि यथा लोको वक्षसि धारयति तथैवोत्कृष्टभोजकवित्वसम्पर्केण मम तुच्छतराण्यपि कवित्वरूपवचनानि सहृदयाः स्वहृदये निधायादरिष्यन्त इति मे द्रढीयान् विश्वास इत्याशयः॥ अर्थान्तरन्यासः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

उन भोजराज के द्वारा रचित इस उत्कृष्टतम कृति (चम्पूरामायण) को पूर्ण करने के लिए उद्यत मैं (लक्ष्मणसूरि) लज्जित नहीं हो रहा हूँ, क्योंकि नवरत्नमाला के साथ सूत भी हृदयपर ही धारण किया जाता है ॥२॥

मुद्रामुद्रितजीवितां जनकजां मोहाकुलं राघवं
चूडारत्नविलोकनेन सुचिरं निध्याय निध्याय च।
प्रारेभे हृदि लक्ष्मणः कलयितुं पौलस्त्यविध्वंसनं
धीरः पूरयितुं कथां च विमलामेकेन काण्डेन सः॥३॥

मुद्रामुद्रितेति। जनकजाम् सीतां मुद्रया रामप्रेषिताभिज्ञानाङ्गुलीयकेन मुद्रितं स्थापितं जीवितम् जीवनं यस्यास्तादृशीं निध्याय नितरां ध्यात्वा, तथा चूडारत्नविलोकनेन सीताप्रेषितचूडामणिदर्शनेन मोहाकुलम् सीतास्मरणजनितसन्तापविह्वलं सुचिरम् बहुकालपर्यन्तं निध्याय विलोक्य च, धीरः धैर्यशाली सः प्रसिद्धो लक्ष्मणः सौमित्रिः एकेन काण्डेन बाणेन ('काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्वगवांसर वारिषु' इत्यमरः) पौलस्त्यविध्वंसनम् रावणसंहारं कलयितुम् कर्तुं हृदि प्रारेभे मनस्यकरोन्निश्चमित्यर्थः। तथा धीरो विद्वान् स लक्ष्मणस्तन्नामा कविः मुद्रामुद्रितजीवितां जनकजां चूडारत्नविलोकनेन मोहाकुलं राघवं च हृदि सुचिरं निध्याय निध्याय (आदरे द्विर्वचनम्) एकेन काण्डेन वर्गेण परिच्छेदेनेति यावत् युद्धकाण्डेनेति भावः। विमलाम् श्रीरामचरितसम्पर्केण निर्दोषां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथाम् रावणसंहारगर्भां भोजप्रारब्धां रामस्य कथां पूरयितुं प्रारेभे उपक्रान्तवान् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्र की अंगूठी अभिज्ञान के रूप में पाकर जिनका जीवन अवस्थित है उन सीता जी का ध्यान कर तथा सीता जी की चूड़ामणि को देख कर सन्तापविह्वल राघव को देख कर धीर लक्ष्मण ने अपने हृदय में एक बाण से रावण के संहार करने का मनोरथ प्रारम्भ कर दिया और उन्हीं सीता और राम का हृदय में बार-बार ध्यान कर लक्ष्मण नामक कवि ने एक काण्ड (लंका काण्ड) द्वारा (भोज द्वारा प्रारब्ध) विमल कथा को पूर्ण करना आरम्भ कर दिया।

आनन्दसन्थरमनन्तरमाञ्जनेया-
दाकर्ण्य वृत्तिमनघां जनकात्मजायाः ।
दृष्टिर्दशाननरुषा परुषायमाणा
बाणासनोपरि दधे प्रभुणा रघूणाम् ॥ ४ ॥

आनन्देति । अनन्तरम् चूडामणिदर्शनान्तरम् आनन्दमन्थरम् हर्षनिर्भरं यथा स्यात्तथा आञ्जनेयात् हनूमतः जनकात्मजायाः जानक्या अनघाम् सुरक्षितां वृत्तिम् जीवनम् ('वृत्तिर्वर्तनजीवने' इत्यमरः) आकर्ण्य श्रुत्वा रघूणां प्रभुणा रघुपतिना श्रीरामेण दशाननरुषा दशानने रावणे रुषा कोपेन परुषायमाणा उग्रायमाणा दृष्टिः बाणासनोपरि कोदण्डोपरि दधे निचिक्षिपे । चूडामणिं दृष्ट्वा हनूमन्मुखात् सीतायाः कुशलवृत्तान्तं श्रुत्वा च रावणे कुपितो रामोऽपराधिनं रावणं हन्तुकामः स्वशरासने परुषां दृष्टिं निक्षिप्तवान्, तदवलोकनेनैव सुग्रीवादिभ्यो विजययात्रासन्नाहमादिदेशेवेत्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम्।

इसके बाद बड़े हर्ष के साथ हनुमान् जी से सीता का कुशलसमाचार सुनकर श्रीराम ने रावण पर उत्पन्न क्रोध के कारण उग्ररूप धारण करने वाली अपनी दृष्टि धनुष पर डाली ॥ ४ ॥

अथ सुग्रीवोऽपि दशग्रीवकुपितराघवावलोकन[1]द्विगुणितरणोत्साहः [2]साहाय्यसमनुपालयन्नन्धुमिव सिन्धुमवधार्य धार्यमाण[3]धैर्यादगाध-

१. 'द्विगुणीकृत' इति पाठा । २. 'साहायकमनुपालयन् इति पाठा० ।
३. 'धैर्यावगाढमतिः' इति पाठा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मतिरधिरूढत्रिकूट[1]शृङ्गां लङ्कामधिगन्तुमङ्गदकुमुदनलनीलप्रमुखमप्य[2]-खिलानीकं[3]समनीनहत् ।

अथेति । अथानन्तरं दशग्रीवे रावणे कुपितस्य कृतक्रोधस्य राघवस्य श्रीरामस्य अवलोकनेन दर्शनेन द्विगुणितः द्विरावृतः रणोत्साहः युद्धविषयकोत्साहो यस्य तथाभूतः सुग्रीवोऽपि साहाय्यसमयम् सीताप्रवृत्त्युपलब्धिं कृत्वा तदपहारिणं हत्वा च सीतामुद्धरिष्यामीति कृतां स्वप्रतिज्ञामित्यर्थः, अनुपालयन् अनुवर्तमानः, सिन्धुम् सागरम् अन्धुम् कूपमिव अवधार्य तथा सुतरं निश्चित्य धार्यमाणधैर्यात् आश्रीयमाणधैर्यात् अगाधमतिः गम्भीरबुद्धिः अधिरूढत्रिकूटशृङ्गाम् अधिरूढं त्रिकूटशृङ्गं यया ताम् त्रिकूटाचलशिखरे स्थितामित्यर्थः, लङ्काम् अधिगन्तुं प्राप्तुम् अङ्गदकुमुदनलनीलप्रमुखम् अङ्गादादिप्रधानम् अखिलानीकम् समग्रसैन्यमपि समनीनहत् सन्नद्धं कृतवान् । 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः,' 'पुंस्येवान्धुः प्रहिः कूपः', 'अनीकं तु रणे सैन्ये' इति सर्वत्रामरः ।

इसके बाद रावण पर कुपित राम को देखकर सुग्रीव का युद्धोत्साह दूना हो गया । उसने अपनी (सीतोद्धारविषयक) पूर्व प्रतिज्ञा का पालन करते हुए धैर्यधारण करके तथा गम्भीर बुद्धि होकर समुद्र को कूप की तरह (सुतर) मान कर त्रिकूट गिरि के शिखर पर बसी हुई लङ्का को जाने के लिए अङ्गद कुमुद नल नीलादि पूरी वानर सेना को तैयार किया ।

वारिदादपि च रामनामतः पूरिता पुनरपाङ्गधारया ।
तत्क्षणं प्रति चचाल दक्षिणं वाहिनीशमखिलापि वाहिनी ॥ ५ ॥

वारिदादपीति । रामनामतः रामनामकात्, तद्रूपादित्यर्थः, वारिदात् मेघात् अपाङ्गधारया कटाक्षनिक्षेपरूपप्रवाहेण पुनः भूयोऽपि पूरिता संभृता अखिला समस्ता वाहिनी वानरसेना सैव वाहिनी नदी (श्लिष्टरूपकम्) तत्क्षणम् तत्कालं दक्षिणं वाहिनीशम् नदीपतिं समुद्रं प्रति चचाल प्रतस्थे । मेघान्निर्गतया जलधारया संभृता नदी समुद्रं प्रति वेगेन गच्छति, अत्रापि राम-रूप मेघात् कटाक्षरूपधारया संभृता वानरवाहिनीरूपा वाहिनी (नदी) दक्षिणं

---

१. 'शिखराम्' इति पाठा० । २. 'वलीमुखानीकम्' इति पाठा० ।
३. 'समनीनयत्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सागरं प्रति प्रतस्थे । रामकटाक्षसंकेतेनैव समस्तवानरसेना दक्षिणं समुद्रं लक्ष्यीकृत्य चचालेति भावः । 'सेनानद्योश्च वाहिनी' इति वैजयन्ती । श्लेषसाङ्गरूपकयोः सङ्करः ॥ ५ ॥

रामरूप मेघ से कटाक्ष निक्षेपरूप धारा के द्वारा भरी गयी वानर वाहिनी रूप वाहिनी–नदी तत्काल दक्षिण सागर की ओर चल पड़ी (राम के कटाक्ष का इशारा पाकर वानर सेना ने दक्षिण सागर की ओर कूच किया ॥ ५ ॥

[1]तत्क्षणे [2]समचलितऋक्ष[3]समुदये कुमुदामोदकारिणि शरभाधिकप्रसादशीले नीलेन्दीवरानन्दिनि दशाननदिशाक्रमणव्यग्रतेजसि समारूढतारानन्दनलक्ष्मणानुगते [4]सरयमुदयध्वानुमन्तमिव हनूमन्तमधिरोहति निशाचरतिमि[5]रवारणनिस्तन्द्रे रामचन्द्रे समन्ततः कन्दलितबहुलहरिजालकोलाहलभरितहरिदन्तरो निरन्तरास्कन्दितनिकटकान्तारावलिवलीमुखबलमहाम्बुधिः ससंभ्रममुदजृम्भत ।

तत्क्षण इति । तत्क्षणे वानरसेनाप्रयाणकाले, समचलितः युगपत् प्रस्थितः ऋक्षसमुदयः भल्लूकनिवहो यस्य तस्मिन्, चन्द्रपक्षे तु समचलितः युगपदुदितः ऋक्षसमुदयः नक्षत्रमण्डलं यस्य तस्मिन् । कुमुदामोदकारिणि कुमुदस्यतन्नाम्नो वानरसेनानायकस्य आमोदकारिणि हर्षप्रदे, अन्यत्र कुमुदस्य कैरवस्य आमोदकारिणि विकासप्रदे । शरभे तन्नाम्नि सेनापतौ अधिकप्रसादशीले समधिकानुग्रह परायणे अन्यत्र शरस्य शरनामक तृणविशेषकुसुमस्यभा कान्तिस्तस्या अपि अधिकप्रसादशीले अधिक नैर्मल्ययुक्ते । नीलेन्दीवरानन्दिनि नीलश्च इन्दीवरश्चेति नामानौ द्वौ सेनानायकौ तयोरानन्दिनि मोदकारिणि, अन्यत्र नीलेन्दीवरस्य नीलोत्पलस्य विकासकारिणी । दशाननदिशाक्रमणे दक्षिणदिगवस्कन्दने व्यग्रं तेजो यस्य तस्मिन्, अन्यत्र दश आननानि मुखानि यासां तादृशीनां दिशामाक्रमणे व्याप्तौ व्यग्रं तेजः प्रकाशो यस्य तस्मिन् । समारूढः समधिष्ठितः तारानन्दनः तारापुत्रोऽङ्गदो येन तादृशेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन अनुगते, अन्यत्र समारूढम् कृतं ताराणाम् स्वप्रियाणामश्विन्यादीनामानन्दनम् प्रसादनं

---

१. 'ततः क्षणेन' इवि पाठा० । २. 'समक्षचलित' इति पाठा० ।
३. 'समुदाये' इति पाठा० । ४. 'सरमसम्' इति पाठा० ।
५. 'हरण' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

येन स तादृशश्चासौ लक्ष्मणा लाञ्छनेनानुगतः युक्तस्तादृशे । ('लक्ष्मणा इति तृतीयान्तस्य अनुगतशब्देनालुक्समास इति बोध्यम्) । सरयम् सवेगम् उदयसानुमन्तम् उदयाचलमिव हनूमन्तमधिरोहति अधितिष्ठति, निशाचरा एव तिमिराणि तेषां वारणे निरोधे निस्तन्द्रे जागरूके । रामः चन्द्र इवेत्युपमित समासः, तस्मिन् रामचन्द्रे, समन्ततः सर्वतः कन्दलितः उत्पन्नो बहुलः भूयिष्ठश्च यो हरिजालकोलाहलः वानरसमूहकिलकिलाशब्दस्तेन भरितम् पूरितं हरिदन्तरम् दिगन्तरालं येन स तथोक्तः, अम्बुधिपक्षे कन्दलितेन समुत्पन्नेन हरिजालकोलाहलेन शब्दविशेषेण, (घुमघुमशब्देनेति बुधेन्द्रः) भरितहरिदन्तरः पूरितदिगन्तरालः । निरन्तरम् प्रतिक्षणम् आस्कन्दिता आक्रान्ता आक्रमणवशाद् भज्यमानेत्यर्थः, निकटकान्तारावलिः समीपस्थवनश्रेणिर्येन स तथोक्तः, अन्यत्र निरन्तरं सततम् आस्कन्दिता जलराशिना आक्रान्ता निकटकान्तारावलिः समीपस्थवनावलिर्येन स तथोक्तः । बलीमुखबलमहाम्बुधिः बलीमुखबलम् वानरसैन्यं महाम्बुधिः महासागर इवेत्युपमितसमासः । ससंभ्रमम् सवेगम् उदजृम्भत प्रचलितः । अत्र रामश्चन्द्र इव, हनूमान् उदयाचल इव, सैन्यं सागर इवेति बोध्यम् । यथोदयाचलमधिरोहति चन्द्रे समुद्रो वेगेन वर्धते तथैव हनूमन्तमधिरोहति श्रीरामे कपिबलमग्रे वेगेन प्रचलित इति भावः । श्लेषसङ्कीर्णोयमुपमा ।

'ऋक्षाच्छभल्लभल्लूकाः', 'नक्षत्रमृक्षं भं तारा' इति चामरः । 'कुमुदं कैरवे रक्तपङ्कजे कुमुदः कपौ' इति विश्वः । 'नीलः कपीशेऽद्रिभेदे कृष्ण ना तद्वति त्रिषु' इति नानार्थरत्नमाला । 'तेजोऽनले प्रभावे च ज्योतिष्यर्चिषि रेतसि' इति वैजयन्ती ।

उस समय सकल ऋक्ष जिसके साथ चल रहे हैं, (जिसके साथ ही सकल ऋक्ष-नक्षत्र उग रहे हैं), कुमुद वानर को आनन्दित करने वाले (कुमुद पुष्प को विकसित करने वाले), शरभ नामक सेनापति पर अधिक अनुग्रह परायण, (शर नामक तृण विशेष के पुष्प की भा-कान्ति से भी अधिक निर्मलता युक्त), नील और इन्दीवर नामक सेनानायकों को आनन्द देने वाले, (नील कमल को विकसित करने वाले), दशानन–रावण की दिशा दक्षिण को अक्रान्त करने के लिए व्यग्र तेज वाले (दश मुखों वाले-दसों दिशाओं को व्याप्त करने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के लिए व्यग्र प्रकाश वाले) तारानन्द अङ्गद के कन्धों पर बैठे हुए लक्ष्मण से अनुगत (तारागणों को आनन्द देने वाले तथा लक्ष्मणा–कलङ्क से युक्त) निशाचररूप अन्धकार को रोकने वाले (निशाचर सदृश अन्धकार को निरुद्ध करने वाले) चन्द्रमा की तरह जब श्रीराम जी, उदयाचल–सदृश हनूमान् पर आरूढ होने लगे (अर्थात् हनूमान् के कन्धे पर बैठकर चले) तब चारों ओर पैदा हुए वानरों के कोलाहल से जिसके द्वारा दिशाएँ भर दी गयीं (चारों ओर उत्पन्न हुए 'घूँ-घूँ' शब्द विशेष से दिशाओं को भर देने वाला) निरन्तर समीपस्थ वन श्रेणी को तोड़ताड़ कर फेंक देने वाला (निरन्तर जलराशि के समीपस्थ वनश्रेणी को आक्रान्त करने वाला) वानर सैन्य समुद्र के समान वेग से चल पड़ा। (जैसे चन्द्रोदय होने पर समुद्र उमड़ पड़ता है' वैसे ही राम के विजयप्रयाणार्थ प्रस्तुत होते ही वानरसेना उमड़ चली)।

उत्त्रासकासरमुदञ्चितपञ्चवक्त्रं
वित्रस्तहस्ति विशरारुचमूरुयूथम्।
आलोललोचनतरङ्गकुरङ्गशाव-
मासीदसीम विपिनं कपिनर्मघोषैः ॥ ६ ॥

उत्त्रासेति। असीम निर्मर्यादम्, अतिविस्तृतमित्यर्थः। ('सीमसीमे स्त्रिया-मुभे इत्यमरः)। विपिनम् काननं कर्तृ। कपीनाम् वानराणां नर्मघोषैः विजय-यात्राजनितहर्षवशेन कृतक्रीडाशब्दैः किलकिलाशब्दैरिति यावत्। ('क्रीडा लीला च नर्म च' इत्यमरः) उद्गतः समुत्पन्नस्त्रासः भयं येषां त उत्त्रासाः भयसम्भ्रान्ताः कासराः महिषा यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। ('लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः)। उदञ्चिताः उद्भ्रान्ताः पंचवक्त्रा सिंहा यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। ('सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः' इत्यमरः) वित्रस्ताः विशेषेण भीता हस्तिनः गजा यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। विशरारु भयद्रुतं चमूरुयूथम् चमूरूणाम् मृगविशेषाणां यूथम् निवहो यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। ('विशरारुर्भयद्रुतः' इति अभिधानरत्नमाला)। अलोलाः चञ्चलाः भयेन संत्रस्ता लोचनतरङ्गाः दृष्टिपरम्परा येषां तादृशाः कुरङ्गशावाः बालहरिणा यस्मिंस्तथाभूतम् आसीत् अजायत। वानराणां विजययात्रोत्सवसूचककिलकिलाशब्दैस्तद्वनस्थाः सर्वे प्राणिनस्त्रेसुरिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत्यन्त विस्तृत वन वानरों के क्रीडा-शब्दों (किलकारियों) से ऐसा (भयावह) हो गया कि वनमहिष भय से घबरा गये, सिंह उद्भ्रान्त हो उठे, गज अत्यन्त त्रस्त हो गये, मृगगण भय से भागने लगे और हरिणशावकों के नेत्र भय से चञ्चल एवं कातर हो गये ॥ ६ ॥

सैन्यैस्ततो रघुपतिः सरितां निवेशं
वेशन्तयन्विरलयन्विपिनान्तराणि ।
आरुह्य [1]शैलमपि सह्यमसह्यवातं
मन्दानिलैकनिलयं मलयं जगाम ॥ ७ ॥

सैन्यैरिति । ततस्तदनन्तरम्, सैन्यैः वानरसेनाभिः सरिताम् नदीनाम् निवेशम् विन्यासस्थानं विस्तारमित्यर्थः ('निवेशः शिबिरोद्वाहविन्यासेषु प्रकीर्तितः' इति विश्वः) वेशन्तयन् वेशन्तमल्पसरः कुर्वन् (वेशन्त शब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्, तदन्ताल्लटः शत्रादेशः) । ('वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः') सेनासंमर्देन नदीनां विस्तारमल्पसरोभावं नयन्नित्यर्थः । विपिनान्तराणि वनमध्यभागान् विरलयन् विरलानि कुर्वन्, असह्यवातम् असह्यः उद्दीपकतया शैत्याधिक्येन वा सोढुमशक्यः वातः वायुर्यस्मिंस्तं तथोक्तं सह्यं शैलम् कुलाचलेष्वन्यतमं सह्याद्रिमपि आरुह्य आक्रम्येत्यर्थः, रघुपतिः श्रीरामचन्द्रः मन्दानिलैकनिलयम् मन्दवायुप्रभवस्थानं मलयम् मलयगिरिं जगाम प्राप्तवान् । राममनुगच्छन्ती वानरसेना नदीरल्पसरोभावमनयत्, वनान्यभनक्, सह्याद्रिमुल्लङ्घ्य मन्दानिलप्रभवत्वेन प्रसिद्धं मलयगिरिमासादितवतीति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७ ॥

इसके बाद श्रीरामजी वानरसेना के द्वारा नदियों के प्रवाहों को अल्प जलाशय का रूप देते हुए, वन के मध्यभाग को विरल करते हुए, असह्य वायु वाले सह्य पर्वत को लाँघ कर मन्दानिल के प्रभव स्थान के रूप में प्रसिद्ध मलयगिरि पर पहुँचे ॥ ७ ॥

गत्वा [2]रामस्तमद्रिं सौमित्रिमिदमवादीत् ।

---

१. 'सममपि शैलम्' इति पाठान्तरम् ।
२. 'च तमद्रिं' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गत्वेति । राम, तमद्रिम् मलयगिरिं गत्वा प्राप्य सौमित्रिम् लक्ष्मणं प्रति इदम् वक्ष्यमाणं वचनमवादीत् उक्तवान् ।

श्रीराम जी ने मलयगिरि पर पहुँचकर लक्ष्मण से यह कहा—

अमी तटसमीपनिर्झरतरङ्गरिङ्गित्पयो-
जडीकृतपटीरभूरुहकुटीरसंसारिणः ।
मनो विधुरयन्ति मे मलयमेखलामेदुरा
दुरासदवनप्रियप्रियतमारुता मारुताः ॥ ८ ॥

अमी इति । तटसमीपेषु उपत्यकाभूमिषु निर्झराणां जलप्रपातानां तरङ्गेभ्यः रिङ्गद्भिः प्रोच्छलद्भिः पयोभिः जलैः जलबिन्दुभिरित्यर्थः, जडीकृतानि शिशिरीकृतानि पटीरभूरुहाः चन्दनतरव एव कुटीराणि गृहाणि तेषु संसारिणः निवसनशीलाः । मलयमेखलामेदुराः मलयमेखलासु मलयाचलनितम्बप्रदेशेषु मेदुराः सान्द्राः । दुरासदानि उद्दीपकतया दुःसहानि वनप्रियाः पुंस्कोकिलास्तेषां याः प्रियतमाः स्त्रीकोकिलास्तासां रुतानि कूजितानि येषु ते तथोक्ताः, अमी अनुभूयमाना मारुताः वायवः मे मम रामस्य मनः हृदयं विधुरयन्ति विकलीकुर्वन्ति । 'सुषीमः शिशिरो जडः' 'वनप्रियः परभृतः कोकिलः' इत्युभयत्रामरः । 'मेखला खड्गबन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयो' इति विश्वः । यमकानुप्रासयोः संसृष्टिः । पृथ्वी वृत्तम् ॥ ८ ॥

पर्वत की उपत्यका में झरनों की तरङ्गों से उड़ने वाले जलबिन्दुओं से शीतल किये गये चन्दनतरुरूप कुटीर में बसने वाली, मलयाचल की तलहटी में घनीभूत तथा दुःसह कोकिल ध्वनि से मिलित यह हवा मेरे मन को विकल कर दे रही है ॥ ८ ॥

इत्यालपन्करुणमेष निरुद्धवेलं
शैलं महेन्द्रम[1]धिगत्य महीमहेन्द्रः ।
आवर्तमुद्रितमिवान्वयभूपतीना-
मक्षय्यकीर्तिनिधिमम्बुनिधिं ददर्श ॥ ९ ॥

इत्यालपन्निति । इति उक्तप्रकारेण करुणं दीनम् आलपन् ब्रुवन् एषः महीमहेन्द्रः भूमण्डलदेवेन्द्रः श्रीरामो निरुद्धवेलम्—निरुद्धा आवृता वेला समुद्र-

१. 'अभिगम्य' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तट भूमिर्येन तम् समुद्रतटमावृत्य स्थितमित्यर्थः महेन्द्रं शैलम् महेन्द्रनामकं कुलपर्वतमधिगत्य प्राप्य आवर्तैः पयसां भ्रमैर्मुद्रितम् चिह्नितमिव अन्वयभूपतीनाम् सगरपुत्रभगीरथादिस्वकुलराज्ञां अक्षय्यकीर्तिनिधिम् अनश्वरयशसः स्थानभूतम् अम्बुनिधिम् समुद्रं ददर्श दृष्टवान्। महेन्द्रगिरिं गत्वा श्रीरामः सागरं सगरादीनां स्वपूर्वजानामनश्वरयशोनिधानमावर्त्तरूपमुद्राभिरङ्कितमिवाद्राक्षीदित्यर्थः। उत्प्रेक्षारूपकयोः संसृष्टिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा च तमद्भुताकृष्टमना रामस्तदिदमाचष्ट।

दृष्टवेति। रामः तम् सागरं दृष्ट्वा अवलोक्य अद्भुताकृष्टमनाः विस्मयान्वितमानसः सन् तदिदं वक्ष्यमाणं वचः, आचष्ट उक्तवान्।

इस प्रकार करुण वार्तालाप करते हुए भूमण्डल के इन्द्र भगवान् राम ने समुद्र तट को घेर कर स्थित महेन्द्राचल पर पहुँच कर, आवर्तों से मुद्रित अपने पूर्वज सगरपुत्र भगीरथ आदि की अक्षय्य कीर्ति के निधान-जैसे सागर को देखा।

द्रष्टुं नालमगाधतां फणिपतिः सीमान्तरेखा दिशो
द्वीपाः सैकतमण्डलानि तदयं दूरे गिरां वारिधिः।
येषामेष सुखादखानि नखरैर्येनाथवा पूरित-
स्तेषां नः कुलभूभुजामविहतस्थेम्ने महिम्ने नमः॥ १० ॥

द्रष्टुमिति! फणिपतिः पातालकुहरवासी शेषः (अपि) (यस्य) अगाधताम् अतलस्पर्शित्वं गाम्भीर्यमित्यर्थः ('अगाधमतलस्पर्शे' इत्यमरः) द्रष्टुं नालम् न समर्थः। दिशः प्राच्यादयः सकला दिशोऽपि (यस्य) सीमान्तरेखाः मर्यादावसानचिह्नानि (द्रष्टुं नालम्)। द्वीपाः सिंहलादयो द्वीपविशेषाः यस्य सैकतमण्डलानि सिकतानां समूहाः सैकतानि तेषां मण्डलानि बालुकाश्रेणयः, यस्य सागरस्य वालुका एव सिंहलादिद्वीपरूपेण प्रख्यायन्त इत्यर्थः, तत् तस्मात् अयं वारिधिः सागरः गिरां दूरे अनिर्वाच्यः (वर्तते)। एषः आश्चर्यकरः सागरः येषाम् सगरपुत्राणामस्माकं पूर्वजानां नखरैः नखाग्रैः सुखात् अनायासेन अखानि खातः अथवा येन भगीरथनाम्नाऽस्मत्पूर्वजेन पूरितः गङ्गामानीय तत्पयोभिः संभरितः तेषां नः अस्माकं कुलभुभुजाम् अन्वयभूपतीनाम् अविहतस्थेम्ने अविहतः अक्षतः स्थेमा स्थिरभावो यस्य तस्मै कल्पान्तस्थायिने इत्यर्थः, महिम्ने माहात्म्याय नमः नमस्कारः (अस्तु)। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समुद्र को देख कर श्रीराम का हृदय आश्चर्यचकित हो गया और उन्होंने यह कहा—

जिसकी गहराई का पता [पातालवासी] शेषनाग [भी] नहीं पा सके, जिसकी सीमारेखाओं को दिशायें भी नहीं जान सकीं, सिंहलादि द्वीप जिसके बालुकामण्डल रूप हैं, ऐसा यह सागर वस्तुतः अनिर्वचनीय है, यह अनिर्वाच्य सागर जिनके नखों से अनायास ही खोदा गया अथवा जिससे [गंगा की धारा लाकर] भर दिया गया, उन अपने पूर्वजों [सगर पुत्रों तथा भगीरथ] की अनपायिनी महिमा को मेरा नमस्कार है ॥ १० ॥

अथ हरीन्द्रोऽपि महेन्द्रोपान्तकान्तारशोभिनि [1]लोभनीयमलयजातानिले [2]वेलोपवनदेशे रघुपतेर्निदेशेन निवेशयामास बलमखिलम् ।

अथेति । अथानन्तरम्, हरीन्द्रः हरयः वानरास्तेषामिन्द्रः अधिपतिः सुग्रीवोऽपि रघुपतेः श्रीरामस्य निदेशेन आज्ञया महेन्द्रोपान्तकान्तारशोभिनि महेन्द्राचलतटवर्तिना वनेन रमणीये लोभनीयमलयजातानिले—लोभनीयाः स्पृहणीयाः मलयजातानिलाः मलयजवाता यस्मिंस्तथोक्ते, स्पृहणीयमलयजवातयुक्ते इत्यर्थः, वेलोपवनदेशे समुद्रतटवर्तिन्युद्यानदेशे अखिलम् समग्रं बलम् सैन्यं निवेशयामास प्रतिष्ठापयामास ।

इसके बाद सुग्रीव ने भी भगवान् राम की आज्ञा से महेन्द्राचल के समीपवर्ती वन से शोभित, स्पृहणीय मलयजवायु से युक्त समुद्रतटवर्ती उद्यान में समस्त वानरसेना का पड़ाव डलवा दिया ।

सरसपटीरकुञ्जवनसंवनाभिपत-
न्मृगमदगन्धगन्धवहमेदुरितेऽ[3]म्बुनिधेः ।
तटनिकटे [4]लुठत्पनसतालरसालफलै-
रुदितमदा विचेरुरुदरंभरयो हरयः ॥ ११ ॥

सरसेति । सरसानाम् समुद्रतरङ्गशीतलानां पटीरकुञ्जानां चन्दनतरुनिकुञ्जानां वने निवहे संजवनेन वेगेन अभिततता वहता, मृगमदस्य कस्तूर्याः गन्धो यस्मिंस्तथोक्तेन मृगमदागन्धशालिना गन्धवहेन वायुना मेदुरिते पूरिते,

---

१. 'बालानिले' इति पाठा० । २. 'वेलावनप्रदेशे दाशरथेर्निदेशेन' इति पाठा० । ३. 'जलधेः' इति पाठा० । ४. 'दरस्फुरित' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अम्बुनिधेः समुद्रस्य तटनिकटे कूलसमीपे लुठद्भिः पक्वतया वृन्ताद्भुवि पतद्भिः पनसानां तालानां रसालानां च फलैः उदरंभरयः स्वोदरपूर्तिपरायणाः उदितमदाः सञ्जात हर्षाः हरयः वानराः विचेरुः विजह्रुः। 'सञ्जवन' शब्दे संपूर्वकाद् 'जु' धातोर्भावे ल्युट्, न तु 'जुचङ्क्रम्ये'त्यादिना तच्छीलादिषु युच्। 'उदरम्भरयः' इत्यस्य 'फलेग्रहिरात्मंभरिश्च' इत्यत्र चकारसामर्थ्यान्निपातनात्साधुत्वम्। 'मृगमदः कस्तूरी' इत्यमरः। नर्दटकं वृत्तम्–'यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्दटकम्' इति तल्लक्षणात् ॥ ११ ॥

सरस चन्दन-कुञ्जों में वेग से बहने वाले तथा कस्तूरी की सुगन्ध से युक्त वायु से पूर्ण समुद्रतट के समीप [पृथिवी पर] गिरते हुए कटहल, ताड़, आम आदि फलों से अपने पेट को भरने वाले हर्षविभोर वानर इधर–उधर विचरण करने लगे ॥ ११ ॥

अनन्तर[1]मपरमहाम्भोधिमिव चलितसम्भोधिरोधस्य[2]म्भोधिविलङ्घनविशृङ्खललाघवं राघवानीकमनीकोन्मुखं चारमुखादवधार्य धार्यमाणहृदयातङ्कः पङ्कलीनचरण इवैरावणो विधेय[3]मपरमजानञ्जानकीमप्यविमोक्तुकामः काम[4]परतन्त्रो मन्त्रिभिः समं समाजमाजगाम।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् सेनानिवेशात् परतः, अम्भोधिरोधसि समुद्रतटे चलितम् अपरमहाम्भोधिम् अन्यं महासागरमिव (इत्युत्प्रेक्षा) अम्भोधिविलङ्घने समुद्रसन्तरणे विशृङ्खलम् त्यक्तप्रतिबन्धं लाघवं दाक्ष्यं यस्य तत्तथोक्तम्, समुद्रसन्तरणसमुत्सुकमित्यर्थः। अनीकोन्मुखम् समरोद्यतम् ('अनीकं तु रणे सैन्ये' इति हलायुधः) राघवानीकम् श्रीरामसैन्यं चारमुखात् गुप्तचरवचनात् अवधार्य निश्चितं ज्ञात्वा धार्यमाणहृदयातङ्कः धार्यमाणः हृदये आतङ्कः भयं येन स तथोक्तः, समुत्पद्यमानमनोभय इत्यर्थः पङ्कलीनचरणः कर्दमनिमग्नपादः ऐरावणः तन्नामा सुरपतिगज इव (इत्युपमा) अपरम् जानकीप्रत्यर्पणादतिरिक्तमन्यत् विधेयम् अनुष्ठेयम् अजानन् अनवगच्छन् (किन्तु) कामपरतन्त्रः मदनपरवशः जानकीम् सीतामपि अविमोक्तुकामः

१. 'अपरमिव चलितं महाम्भोधिम्' इति पाठा०।

२. 'कृतसंवेशं रोदसीलङ्घनं' इति पाठा०।

३. 'परम्' इति पाठा०। ४. 'परतन्त्रितः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्यक्तुमनीहमानः रावणः मन्त्रिभिः स्वामात्यैः समम् सह समाजम् सभाम् आजगाम । रावणो गुप्तचरमुखाद्रामसैन्यमपरं महासागरमिव तथा समुद्रसन्तरणदक्षं युद्धोद्यतं च ज्ञात्वा भयाकुलहृदयः पङ्कनिमग्न ऐरावत इव सीताप्रत्यर्पणादतिरिक्तमन्यं कमपि विपत्तिसन्तरणोपायमपश्यन् कामपारवश्येन सीतामपि त्यक्तुमनीहमानः स्वामात्यैः सह मन्त्रयितुं सभामाससादेत्याशयः ।

इसके बाद गुप्तचरों के मुख से यह वृत्तान्त जान कर कि समुद्र तट पर दूसरे समुद्र के समान राम की सेना समुद्र लाँघने को अपनी कुशलता को अब नियन्त्रित नहीं कर पा रही है [अर्थात् समुद्र लाँघने वाली ही है] तथा वह [सब प्रकार से] युद्ध के लिए तैयार है, रावण के हृदय में आतङ्क छा गया और उसकी दशा दलदल में धँसे ऐरावत गज की सी हो गयी। उसे [सीता को लौटा देने के अतिरिक्त] कोई दूसरा उपाय सूझ नहीं रहा था किन्तु कामासक्त होने से वह सीता को भी छोड़ना नहीं चाहता था, इस लिए मन्त्रियों के साथ [विचार विमर्श करने के लिए] वह सभा में आया।

रहस्तदानीं रजनीचरेन्द्रः प्रहस्त[1]मुख्यानिदमाबभाषे ।
इदं तु मे वाञ्छितमीक्षितं वो वदन्तु यद्वैरिजनोचितं नः ॥ १२ ॥

रहस्तदानीमिति । तदानीम् तस्मिन् समये रजनीचरेन्द्रः राक्षसाधिपो रावणः रहः एकान्ते, प्रहस्त मुख्यान् प्रहस्तादीन् मन्त्रिणः इदम् वक्ष्यमाणं वचनम् आबभाषे उक्तवान् । इदम् सीताऽपरित्यागरूपम् , तुशब्दोऽवधारणे, मे मम रावणस्य वाञ्छितम् अभीष्टम् वः युष्माकम् ईक्षितम् प्रत्यक्षतो दृष्टम् ('मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' इत्यत्र चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् वर्तमाने क्तप्रत्ययः, 'क्तस्य च वर्तमाने' इति कर्तरि षष्ठी) । अतः नः अस्माकं (प्रत्यासन्ने) वैरिजने उचितम् योग्यं यत् कृत्यं (तत्) वदन्तु कथयन्तु (भवन्तः) । उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ १२ ॥

उस समय रावण ने एकान्त में प्रहस्त आदि अपने मन्त्रियों से कहा कि हमारा अभीष्ट तो आप लोग अच्छी तरह जानते ही हैं, इसलिए अब इन (सन्निहित) शत्रुओं के विषय में मुझे जो करना उचित हो वह आप लोग कहें।

अमी च पुनराशयज्ञा[2]ऽभ्यज्ञापयन् ।

१. 'पूर्वान्' इति पाठः । २. 'विज्ञापयामासुः' इति पाठः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अमी चेति । आशयम् जानक्या अपरित्यागरूपं रावणाभिप्रायं जानन्तीति आशयज्ञाः, एतेन प्रहस्तादीनां नीतिबोधनपराङ्मुखत्वमावेद्यते । अमी प्रहस्तादयश्च पुनः व्यज्ञापयन् रावणाय न्यवेदयन् ।

[रावण के] आशय को समझने वाले प्रहस्तादिमन्त्रियों ने कहा—

देव ! जीवत्सु भवदाज्ञापरेष्वनुचरेषु[1] परमस्मासु कस्मादयमपवादो[2] दुरवापोरुभुजपञ्जरानीतां सीतां जातु न जहातु न नाथ इत्याभिदधानेषु[3]।

देवेति । हे देव स्वामिन्, परम् किन्तु अस्मासु अस्मादृशेषु महावीरेषु भवदाज्ञापरेषु भवदादेशपालनपरायणेषु अनुचरेषु भृत्येषु जीवत्सु प्राणान् धारयत्सु कस्मात् कुतो हेतोः अयम् सीताहरणात्मकः अपवादः आक्षेप (भवेत्) अतो नाथः दुरवापोरुभुजपञ्जरानीताम् दुष्प्रापमहाभुजमण्डलेनानीय स्वगृहे स्थापितां सीतां जातु कदापि न जहातु न प्रत्यर्पयतु । इत्येवम् अभिदधानेषु तेषु प्रहस्तादिषु वदत्सु सत्सु ।

स्वामिन् ! किन्तु हम जैसे महावीर अनुचर जब तक आप की आज्ञा के पालन में तत्पर रहते हुए जीवित हैं तब तक आप पर [सीता हरण का] दोषारोपण करने की किसकी शक्ति है ? अतः आप दूसरों को नसीब न होने वाले अपने महान् भुजमण्डल से लायी गयी सीता को कभी भी न छोड़ें, प्रहस्तादि के ऐसा कहने पर—

[4]ततो रम्भोपहितं [5]हराङ्कसंभवं शापमम्भोजभवशापं चैतदुपालम्भान्तरायमावेदयन्तमग्रजन्मानमसमानविनयविज्ञानभूषणो विभीषणः सरोषमिदमवादीत् ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम्, रम्भोपहितम् रम्भानिबन्धनम् रम्भायाः शीलभङ्गकरणोद्यताय रावणाय कुपितेन रम्भापतिना नलकूवरेण दत्तमित्यर्थः । हराङ्कसम्भवम् कैलासचालनसमये कुपितेन नन्दीश्वरेण दत्तम्, अम्भोजभवशापम्

---

१. 'परं चास्मासु' इति पाठा० ।   २. 'अवापो' इति पाठा० ।
३. एतदनन्तम् 'प्रधानेषु' इति क्वचित् ।   ४. 'ततः' इति नास्ति क्वचित् ।
५. हठात्कारसंभवमम्भोजसंभवशापमन्तरायमावेदयन्तं दुर्जयं तमग्रजन्मानं समानयन्विनय' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुञ्जिकास्थलाख्याप्सरो निबन्धनम् अम्भोजभवस्य कमलयोनेर्ब्रह्मणः शापम् च एतदुपालम्भान्तरायम् एतस्याः सीताया उपालम्भे आलिङ्गने अन्तरायम् विघ्नम् आवेदयन्तम् प्रहस्तादीन् प्रति कथयन्तम्, अग्रजन्मानम् ज्येष्ठं भ्रातरं रावणम् असमानविनयविज्ञानभूषणः असाधारणविनयशास्त्रीयज्ञानसम्पन्नो विभीषणः सरोषम् सकोपम् इदम् वक्ष्यमाणप्रकारकं वचनमवादीत् उक्तवान् । बलादन्य नारीग्रहणे तव रावणस्य मूर्धा शतधा भविष्यतीति रम्भाबलात्कारकाले नलकूबरेण शापो दत्तः, हराङ्कस्य कैलासस्योत्तोलनसमये 'वानरैस्तव रावणस्य वंशविनाशो भविष्यतीति नन्दीश्वरेण शापो दत्तः इति विज्ञेयम् । ब्रह्मणा दत्तः शापस्तु रामायणे वर्णितो यथा—'अथ संकुपितो देवो मामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥ अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि । तदा ते शतधा मूर्धा भविष्यति न संशयः ॥' इति ।

रम्भा के साथ बलात्कार से कुपित नलकूबर का शाप, कैलास उठाने के समय नन्दीश्वर का शाप तथा [पुञ्जिकास्थला नामक अप्सरा के साथ बलात्कार से कुपित] ब्रह्मा का शाप, मेरे द्वारा सीता का आलिङ्गन किये जाने में बाधक बन रहे हैं, इस तरह [प्रहस्त आदि से] कहते हुए अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण को, असाधारण विनय और शास्त्रीय ज्ञान रखने वाले विभीषण ने कुपित होकर कहा—

अहह विधिनियोगादद्य नक्तंचरेन्द्र
त्वमसि परकलत्रे दुर्निवारानुरागः ।
अरुणदवशिखायामामिषग्रासमोहा-
दविरलकृतजिह्वाचापलः केसरीव ॥ १३ ॥

अहहेति । अहहेति खेदद्योतकमव्ययपदम् । ('अहहेत्यद्भुते खेदे' इत्यमरः) । हे नक्तँचरेन्द्र राक्षसराज, अद्य सम्प्रति त्वं विधिनियोगात् भाग्यवशात् परकलत्रे परकीयस्त्रियाम्, दुर्निवारानुरागः—दुर्निवारः निवारयितुमशक्यः अनुरागः आसक्तिर्यस्य स तथोक्तः असि जायसे । तत्रोपमामाह—अरुणेति । अरुणायाम् रक्तवर्णायां दवशिखायाम् वनाग्निज्वालायाम् ('वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते' इति शाश्वतः) । आमिषग्रासमोहात् मांसपिण्डभ्रान्तिवशात् अविरलम् बहुलं वारं वारं कृतं जिह्वाचापलं येन स तथोक्तः केसरी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिंह इव। यथा कश्चित् सिंहोऽरुणां दवाग्निं मांसपिण्डमवबुध्य मुहुर्मुहुः स्वदेत तथा त्वं दैववशात् परस्त्रियां दुर्निवानुरागोऽसि। तथा कुर्वतः सिंहस्य या दशा भवति सैव तवापि भविष्यतीति भावः। उपमाभ्रान्तिमतोः सङ्करः। मालिनी वृत्तम् ॥ १३ ॥

खेद का विषय है, हे राक्षसेन्द्र सम्प्रति आप परायी नारी में दुर्निवार आसक्ति रख रहे हैं जैसे मांसपिण्ड के भ्रम से दावाग्नि की अरुण ज्वाला पर सिंह अपनी जीभ बार बार चलाता है ॥ १३ ॥

आकर्ण्य किंनरमुखादनघे स्ववंशे
काकुत्स्थदारहरणो[1]पगतं कलङ्कम्।
हाहेति मीलितदृशः करयोर्युगं त-
दष्टौ श्रुतीरपि [2]कथं पिदधातु धातुः ॥ १४ ॥

आकर्ण्येति। अनघे निष्कलङ्के सर्वथा शुद्ध इति यावत् स्ववंशे निजकुले काकुत्स्थदारहरणोपगतम् श्रीरामपत्नीहरणसंप्राप्तं कलङ्कम् अपवादं किंनरमुखात् किंनराणां मुखात् ('आख्यातोपयोगे' इत्यापादानत्वात् पञ्चमी) आकर्ण्य श्रुत्वा, हाहेति खेदातिशयद्योतने द्विर्वचनम्, इत्युक्त्वा मीलितदृशः निमीलितनेत्रस्य तादृक्कलङ्कवार्ताश्रवणातिखिन्नतयेतिभावः। धातुः ब्रह्मणस्तत् प्रसिद्धं करयोर्युगं हस्तद्वयं अष्टावपि श्रुतीः चतुर्मुखत्वेनाष्टसंख्याकानि श्रोत्राणि कथं केन प्रकारेण पिदधातु आच्छादयतु। ब्रह्माऽऽत्मनः सर्वथा विशुद्धे वंशे त्वत्कृतं सूर्यकुलावतंसश्रीरामभार्यापहरणरूपं कलङ्कं किंनरगणमुखादाकर्ण्य खेदातिरेकान्निमीलिताक्षोऽप्रियवार्ताश्रवणसमकालमेव स्वकर्णान् पिधातुमिच्छन्नपि करद्वयेनाष्टौ कर्णान् कथं पिदधात्वित्यर्थः। त्वादृशेन वंशजेन कुलप्रवर्तको ब्रह्मापि सन्तापितः। अतो धिक् त्वामिति तात्पर्यम्। अत्र ब्रह्मणस्तादृशव्यवहारासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्तेरतिशयोक्तिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १४ ॥

अपने सर्वथा निष्कलङ्क कुल में काकुत्स राम की पत्नी के हरण से उपपन्न कलङ्क को किन्नरों के मुख से सुन कर ब्रह्मा ने हाय-हाय करके [खेदाधिक्य से]

---

१. 'उपनतं' इति पाठा०। २. 'दधातु कथं विधातुः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आँखें तो मूँद लीं किन्तु [ऐसी अप्रिय बात न सुनने को तैयार] उनके [आठ] कानों को दो ही हाथ [अपर्याप्त होने से] कैसे बन्द करें ? ॥ १४ ॥

पश्येदानीमुदधिपरिखापालिता कुत्र लङ्का
वाचातीतः क्व नु वनचरादागतो दुर्विपाकः ।
कर्तुं नक्तंचरपरिभवं कापि[1]मायेति शङ्के
जाता सीता धरणितनया जानकी मैथिलीति ॥ १५ ॥

पश्येदानीमिति । इदानीं पश्य अवलोकय विचिन्तयेत्यर्थः किं तदित्यत आह—उदधिः सागर एव परिखा खेयं तया पालिता सुरक्षिता दुष्प्रवेशेत्यर्थः ('खेयं तु परिखा' इत्यमरः) । लङ्का कुत्र ? वनचरात् वानरात् आगतः संप्राप्तः वाचातीतः वर्णयितुमशक्यः दुर्विपाकः दुष्परिणामः वनभङ्गाक्षकुमारादिराक्षससंहारनगरदाहरूपः क्व नु कुत्र ? आश्चर्यकरमेतदित्यर्थः । नक्तंचरपरिभवम् राक्षसविध्वंसनंकर्तुं कापि अनिर्वाच्या माया देवानां कपटयुक्तिः सीता धरणितनया जानकी मैथिली इति नामभिः प्रसिद्धा जाता इति शङ्के तर्कयामि । नेयं सीता साधारणस्त्री किंतु राक्षसानां विनाशाय देवैः प्रकटिता कापि माया, अन्यथेदृशीविपत्तिः कथमपि नापतेत्तत्क्षिप्रमेव तत्परित्याग एव वरमित्याशयः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ १५ ॥

इस समय यह तो देखिये कि समुद्ररूप खाई से घिरी अतएव सुरक्षित लङ्का कहाँ ? और एक वानर मात्र से आयी [अशोकवाटिकाभञ्जन, अक्षकुमारसहितराक्षसों का संहार, नगरदाह आदि रूप] वर्णनातीत विपत्ति कहाँ ? [अर्थात् असम्भव होते हुए भी यह सब कैसे सम्भव हुआ ?] मैं समझता हूँ कि राक्षसों का विनाश करने के लिए [देवताओं की] कोई विचित्र माया ही सीता, धरणितनया, जानकी, मैथिली आदि नामों से आविर्भूत हुई है ॥ १५ ॥

किं बहुना—

न गणयसि यदि त्वं वानरं वा नरं वा
ननु परिचितवीर्यौ जिष्णुभूकार्तवीर्यौ ।
न कलयसि यदि त्वं नन्दिशापं च धातु-
र्वरमपि नरवर्जं दुर्जयो दैवयोगः ॥ १६ ॥

१. मायैव' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किं बहुना, न गणयसीति। किं बहुना अधिकेनोक्तेन नास्ति किमपि फलमित्यर्थ। यदि त्वं वानरं वा नरम् मनुष्यं वा न गणयसि तृणप्रायमेव मन्यसे। जिष्णुभूः इन्द्रपुत्रो वानरो वाली च कार्तवीर्यः मानवो सहस्रबाहुश्चेति तौ परिचितवीर्यौ त्वदनुभूतपराक्रमौ वानर एव वाली त्वां स्वपुच्छेन बद्धवान्, मनुष्य एव सहस्रबाहुस्त्वां यावत्प्रसादं बन्दीकृतवानित्येवं वानरमनुष्ययोः शक्तिं जानतोऽपि तव तयोरनास्था कथं युज्यत इति विभीषणोक्तेराशयः। यदि त्वं नन्दिशापम् (कैलाशोत्थापन काले) नन्दीश्वरेण दत्तं (वानर एव त्वत्कुलविनाशहेतुर्भविष्यतीत्येवं रूपं) शापं नरवर्जं धातुर्वरम् नराद्भिनान्यस्मान्न ते विनाश इति ब्रह्मवरमपि न कलयसि नावगच्छसि (तदा) दैवयोगः भाग्यगतिः, दुर्जयः न केनापि जेतुं शक्यः। त्वदीदृक्बुद्धिविपर्ययादिदमेवावगम्यते यन्नन्दिशापस्य ब्रह्मवरस्य चावन्ध्यतया तत्परिणतिवेला प्रत्यासन्ना, तव मृत्युश्चाप्यत्यासन्न इत्याशयः ('जिष्णुः शक्रे धनञ्जये' इति निघण्टुः)। मालिनी वृत्तम्॥ १६॥

अधिक क्या कहें, यदि आप वानर और मनुष्य को कुछ भी नहीं गिनते हैं तो भी आप तो इन्द्रपुत्र वानर बाली तथा मनुष्य कार्त्तवीर्य का पराक्रम जान ही चुके हैं [अर्थात् एक ने अपनी पूँछ से आप को बाँध रखा था और दूसरे ने बन्दी बना लिया था] तथा यदि आप नन्दीश्वर के शाप तथा ब्रह्मा के वरदान का भी ख्याल नहीं करते हैं तो [यही मान कर सन्तोष करना पड़ेगा कि] दैव की गति पर किसी का क़ाबू नहीं है॥ १६॥

इत्यादि[1]नीत्या सहितं हितम[2]पिवदन्तं निजमनुजमवज्ञाय ज्ञातिरयमरातिपक्षः शिक्षणीय इति शंसन्तं नृशंस[3] तमरुंतुदाचरणरोषभीषणोविभीषणो विहाय विहायसि समुत्पतन्तमनूत्पतद्भिश्चतुर्भिरमात्यैः समसमतीत्य वारिधिं दूरत एव सवितर्कमुद्ग्रीवान्सुग्रीवादीनन्तरिक्षगत एवसा[4]वचक्षे।

इत्यादीति। इत्यादिनीत्या एवं प्रकारकेण सहितं युक्तं हितम् पथ्यमपि वदन्तम् ब्रुवन्तं निजम् स्वकीयम् अनुजम् कनिष्ठभ्रातरं विभीषणम् अवज्ञाय

१. 'नीतिसहितम्' इति पाठा०। २. 'अभिहितवन्तम्' इति पाठा०।
३. 'अरुंतुदरोपणभाषणो' इति पाठा०। ४. 'आचष्टे' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कटुभाषणैरवमत्य (रीढावमाननावज्ञा' इत्यमरः) अयं ज्ञातिः दायादो विभीषणः अरातिपक्षः शत्रुपक्षपाती (इति हेतोः) शिक्षणीयः दण्डनीयः इत्येवं शंसन्तम् कथयन्तं नृशंसम् क्रूरं तम् रावणम्, अरुन्तुदाचरणेन रावणसम्बन्धिना मर्मभेदकव्यवहारेण यो रोषः रावणोपरि कोपस्तेन भीषणः भयङ्करो विभीषणो विहाय त्यक्त्वा विहायसि व्योम्नि समुत्पतन् उद्गच्छन्, तम् विभीषणम् अनूत्पतद्भिः अनुसृत्योद्गच्छद्भिः चतुर्भिः अमात्यैः अनलादिभिः स्वमन्त्रिभिः समम् सह, वारिधिम् सागरम् अतीत्य अतिक्रम्य दूरत एव, विप्रकृष्टदेशादेव सवितर्कम् 'कोऽयम् ? किमस्यागमनप्रयोजनं च ? इति ससन्देहम् उत्ग्रीवान् उन्नमितकन्धरान् आकाशे दत्तदृष्टीनिति यावत् । सुग्रीवादीन् अन्तरिक्षगतः आकाशस्थितः सन्नेव एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण आचचक्षे उक्तवान् ।

इस प्रकार की नीति से पूर्ण बात कहते हुए अपने अनुज विभीषण को [कटुवचनों से] तिरस्कार कर रावण ने कहा कि यह ज्ञाति [अर्थात् मेरे राज्य का उत्तराधिकारी] शत्रुओं से मिल गया है, इसे [इसकी करनी के अनुरूप] सीख दी जानी चाहिए। इस प्रकार कहते हुए नृशंस रावण को, उसके मर्मभेदी व्यवहारों से रुष्ट विभीषण ने छोड़ कर अपने चार मन्त्रियों के साथ आकाश में उड़ते हुए, समुद्र लाँघ कर, दूर से ही [यह कौन है और क्यों आ रहा है-ऐसे] तर्क-वितर्क में आकाश की ओर गर्दन ऊँची कर देखते हुए सुग्रीवादि से इस प्रकार कहा—

पौलस्त्यमग्रजनुषं परुषं[1]वदन्तं
संत्यज्य बान्धवजनं च विभीषणोऽहम् ।
रामं विराममिह विद्विषतामवाप-
मापन्नदैन्यहरणं शरणं ममेति ॥ १७ ॥

पौलस्त्यमिति । परुषं वदन्यम् अरुन्तुदभाषिणम् अग्रजनुषम् अग्रजन्मानं ज्येष्ठभ्रातरमित्यर्थः, पौलस्त्यम् पुलस्त्यकुलोद्भवं रावणमित्यर्थः, बान्धवजनम् तदनुवर्तिनोऽन्यान् बन्धूंश्च सन्त्यज्य विहाय अहं विभीषणः, इह सम्प्रति द्विषताम् शत्रूणां विरामम् संहारकं आपन्नदैन्यहरणम् शरणागतदुःखहर्त्तारं, रामम् मम शरणमिति मत्वा अवापम् प्राप्तोऽस्मि इत्येवमाचचक्षे

१. 'चरन्तम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इति पूर्वोक्तक्रियया सम्बन्धः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १७ ॥

मैं विभीषण, अपने बड़े भाई, पुलस्त्यकुल में उत्पन्न किन्तु कठोरभाषी रावण को तथा [उसी का अनुवर्तन करने वाले] अन्य बान्धवों को छोड़ कर शत्रुओं के संहारक तथा शरणागत के दुःखों के हरने वाले राम की शरण में आ रहा हूँ ॥ १७ ॥

अनन्तरमतिकरुणं समीरयन्तं समीरभुवा च[1] सप्रत्यभिज्ञं विज्ञापितं निशाचरपतेरनुजं[2]निशाम्य तदागमनाय किं कारणमिति शङ्कापरवशे निवेदयति हरीशे दाशरथि[3]रतिदयमानमानसः स्मयमानो मधुरमिद[4]मवादीत्।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् तत्पश्चात् अतिकरुणम् अतिदैन्ययुक्तं यथा स्यात्तथा समीरयन्तम् आत्मानं निवेदयन्तं समीरभुवा वायुजातेन हनूमता च सप्रत्यभिज्ञम् लङ्काप्रवेशसमयेऽयं मया दृष्टो धर्मपरायणो ममोपकारमेव कृतवानित्यादिप्रत्यभिज्ञासहितं विज्ञापितम् निवेदितम्, निशाचरपतेः राक्षसराजस्य रावणस्य अनुजम् कनिष्ठभ्रातरं विभीषणं निशाम्य दृष्ट्वा तदागमनाय किं कारणम् तस्य विभीषणस्यात्रागमने कोहेतुरिति शङ्कापरवशे वितर्कयुक्ते ('शङ्का वितर्कभययोः' इति विश्वः) हरीशे वानराधिपे सुग्रीवे निवेदयति रामं पृच्छति सति अति दयमानमानसः समधिककृपालुचित्तः दाशरथिः रामः स्मयमानः किञ्चिद्धसन् मधुरम् सर्वश्रवणानन्दकरम् इदम् वक्ष्यमाणप्रकारकं वचनम् अवादीत् उक्तवान्। अतिदीनभावेन स्वं परिचयं ददानो हनूमताऽपि परिचयपूर्वकं विज्ञापितोऽयं विभीषणः किमर्थमत्रायातीति सवितर्कं सुग्रीवेण पृष्टो रामः समधिककृपालुचित्ततया किञ्चिद्धसन् मधुरमेवमुक्तवानिति तात्पर्यम्।

इसके बाद अति दैन्य पूर्वक अपना परिचय देने वाले तथा वायुनन्दन हनूमान् के द्वारा पहचाने गये, रावण के अनुज विभीषण को देखकर, इसके आने कारण क्या है-ऐसी शङ्का से युक्त सुग्रीव ने जब राम से पूछा, तब परमदयालुहृदय राम ने मुस्कराते हुए इस प्रकार मधुर वचन कहा—

१. 'सप्रत्यभिज्ञापितम्' इति पाठा०।

२. 'निशाम्य तदा तदागमनाय' इति पाठा०।

३. 'अतिदयमानस्मयमानो' इति पाठा०। ४. 'अभाषत' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभयागतो[1]ऽमदपयाति चेन्मुधा
रघवो भवन्ति लघवो न किं सखे ।
अनुजोऽयमस्तु तनुजोऽथवा रिपोः
करुणापदं हि शरणागतो जनः ॥ १८ ॥

अभयागत इति । हे सखे सुग्रीव, अभयागतः अभयाय अभयमधिगन्तुम् आगतः आयातश्चेद्यदि मुधा अपूर्णमनोरथः सन् मत् मत्सकाशात् ('मत्' इति अस्मच्छब्दस्य पञ्चम्येकवचनान्तं रूपम्) अपयाति परावर्तते तदा किं रघवः रघुवंशोद्भवाः लघवः तुच्छाः नष्टगौरवा न भवन्ति भवन्त्येवेत्यर्थः । अभयार्थमागतो जनो मत्सकाशाद्विमुखो याति चेत्तदा न ह्यहमेव, अपि तु सकलजनशरण्यत्वेन विख्याता अस्मत्पूर्वजा अपि नष्टगौरवा भवेयुस्तदलमयं निजः परोवेति शङ्कयेति तात्पर्यम् । अयम् शरणमागच्छन्, रिपोः शत्रो रावणस्य अनुजः कनिष्ठभ्राता अथवा तनुजः पुत्रः अस्तु भवतु, शरणागतो जनः करुणपदं हि दयापात्रमेव भवति खलु । शरणागतस्य दयापात्रत्वं तस्य शत्रुभ्रातृत्वेन शत्रुपुत्रत्वेन वा नापचीयते, अपितु तादृशस्यैव शरणागतस्य रक्षणेन शरण्यस्य गौरवं वर्धत इति तमवश्यमेव सादरमानयतेति तात्पर्यम् । मञ्जुभाषिणी वृत्तम्,—'सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी' इति तल्लक्षणात् ।

अभय के लिए आया हुआ जन, यदि विफल मनोरथ होकर मेरे पास से लौट जाता है, तो क्या इससे रघुवंशी राजाओं की लघुता—अपकीर्ति नहीं होगी ? अतः यह चाहे शत्रु (रावण) का भाई हो अथवा पुत्र हो, शरण में आ गया तो दया का पात्र ही है ॥ १८ ॥

तदनु हृदयविदा हनूमता सरयमानीतो विनीतोऽयमाशरपतिरवन्दत दाशरथिम् ।

तदन्विति । तदनु तस्मात् परतो हृदयविदा रामाशयवेदिना हनूमता सरयम् सत्वरम् आनीतः प्रापितः अयम् आशरपतिः राक्षसाधिपतिर्विभीषणः ('राक्षसः कौणपः क्रव्यात् क्रव्यादोऽस्रप आशरः' इत्यमरः) विनीतः विनयोपेतः सन् दाशरथिम् श्रीरामम् अवन्दत प्राणमत् ।

इसके बाद, [राम का] आशय समझने वाले हनूमान् के द्वारा सत्वर

---

१. 'अयमपयाति' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राम के पास ले आये गये राक्षसाधिप विभीषण ने राम को सविनय नमस्कार किया।

रामस्तमाह विनतं रजनीचरेन्द्रं
दत्तं [1]मयाद्य भवते दशकण्ठराज्यम्।
अस्मिन्नुदाहरणमग्रजराज्यभोक्ता
सानुप्लवः प्लवगमण्डलसार्वभौमः॥ १९॥

रामस्तमिति। रामो विनतम् प्रणतं तं रजनीचरेन्द्रम् राक्षसाधिपं विभीषणम् आह कथयति, भवते विभीषणाय मया रामेण अद्य इदानीं दशकण्ठराज्यम् रावणसाम्राज्यं दत्तम् समर्पितम्। नन्वग्रज घातयित्वा कथं तद्राज्यं भोक्तुमुचितमिति चेदत्रदृष्टान्तमाह—अस्मिन्नर्थे सानुप्लवः—अनुसृत्य प्लवन्तीत्यनुप्लवा भृत्यादयः तैः सह सानुप्लवः सभृत्यवर्गः अग्रजराज्यभोक्ता प्लवगमण्डलसार्वभौमः कपिगणचक्रवर्ती सुग्रीवः उदाहरणम् दृष्टान्तः। अग्रजं वालिनं घातयित्वाऽयं सुग्रीवस्तद्राज्यं भुनक्त्येव तदत्रानौचित्यशङ्का न कार्या तथा च यथाऽहं शरणागताय सुग्रीवाय पूर्वमेव तद्भ्रातृराज्यं दत्त्वैव तत्पश्चाद्वालिनं हतवान् तथैव तुभ्यमपीदानीं रावणराज्यं समर्पये, परतश्च रावणमपि हनिष्यामीति रावणवधेऽपि शङ्कां मा कार्षीरित्याशयः। उदाहरणशब्देन तुल्यत्वप्रतिपादनादुपमा, नात्रदृष्टान्तोऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ १९॥

प्रणत उस विभीषण से राम ने कहा—मैंने तुम्हें इसी समय रावण का राज्य समर्पित किया। इस विषय में बड़े भाई का राज्य भोगने वाले सानुचर वानरराज्य सुग्रीव ही उदाहरण हैं॥ १९॥

[2]तथा हि—

श्रेयः पदात्पद[3]मुपैति विधेः प्रसादा-
त्प्रायस्तदद्य फलितं हि विभीषणे [4]तु।
रेखातपत्रसहितं पदमस्य गृह्ण-
न्नेकातपत्रसहितं पदमेष भेजे॥ २०॥

---

१. 'तदद्य' इति पाठा०। २. 'तथा हि' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'उदेति' इति पाठा०। ४. 'यत्' इति पाठाद्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथाहि, श्रेय इति। तथाहि स एव प्रकार इत्यर्थः। विधेः भाग्यस्य प्रसादात् अनुग्रहात् प्रायः श्रेयः राज्यादिलाभलक्षणं कल्याणं पदात्पदम् अनुपदं शीघ्रमेव उपैति जनः प्राप्नोति पदप्राप्तौ पदस्यैव कारणतेति च गम्यते। तत् अद्य विभीषणे तु फलितं हि चरितार्थं जातं खलु, भाग्योदये जाते जनोऽचिरेणैव कल्याणं प्राप्नोति श्रेयः पदात् पदं प्राप्नोति चेति लोकोक्तिरद्य विभीषणे चरितार्थ्यमभजतेत्यर्थः। तदेव समर्थयति—एषः विभीषणो अस्य रामस्य रेखातपत्रसहितम् महापुरुषत्वाच्छत्ररेखासहितं पदं गृह्णन् एकातपत्रसहितम् एकच्छत्रोपेतं पदम् साम्राज्यं भेजे प्राप, अतः श्रेयसः पदात् पदान्तर प्राप्तिरिति युक्तियुक्तमेवेति भावः। अयं तु विधेः प्रसाद एव यद्विभीषणोरामस्य श्रेयः पदमवाप्य निःसपत्नराज्यरूपं पदान्तरमचिरेणैव लब्धवान् इत्थं 'श्रेयः पदात्पदमुपैति विधेः प्रसादात्प्रायः' इति विभीषण एव चरितार्थं जातमित्याशयः अर्थान्तरन्यासः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ २०॥

भाग्य के अनुकूल होने से पग-पग पर कल्याण प्राप्त होता है [श्रेयस्कर चरण से राज्यादि पद की प्राप्ति होती है—यह गम्यार्थ है] यह बात आज विभीषण के विषय में चरितार्थ हो रही है, जिसको अभी-अभी राम के छत्ररेखायुक्त चरणों को ग्रहण करने से एकच्छत्रराज्यरूप पद की प्राप्ति हो गयी॥ २०॥

असौ पुनरग्रत एव भरताग्रजापाङ्गसुधातरङ्गाभिषिक्तोऽपि पुनरुक्तराज्याभिषेकः सकलविस्रम्भभाजनतया सुग्रीव इवापरो दशग्रीवबलमखिलमावेद्य सद्य एव लङ्कापुरसमास्कन्दनाय सेनासमुत्तरणहेतुं सेतुं विधातुमा[१]राधय वारांनिधिमिति सविनयमेनं विज्ञापितवान्।

असाविति। असौ विभीषणः, पुनरिति वाक्यालङ्कारे, अग्रत एव राज्याभिषेकात्पूर्वमेव भरताग्रजस्य रामस्य अपाङ्गसुधातरङ्गैः कटाक्षदृष्टिरूपामृतलहरीभिः स्नेहपूर्णदृष्टिभिरित्यर्थः अभिषिक्तः स्नपितः शीतलतां प्रापितः सन्नपीत्यर्थः, पुनरुक्तराज्याभिषेकः सस्नेहावलोकनपूर्वकं लङ्काराज्येऽभिषिक्त इत्यर्थः सकलविस्रम्भभाजनतया समग्रविश्वासपात्रतया ('समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः) अपरः सुग्रीव इव स्थितः सन्, अखिलम् समग्रं दशग्रीवबलं रावण-

१. 'आराधयतु' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सैन्यं कियती रावणसेनेति रहस्यमित्यर्थः, आवेद्य विज्ञाप्य सद्यः अविलम्बेनैव लङ्कापुरसमास्कन्दनाय लङ्कापुरोपरि समाक्रमणं कर्तुम् सेनासमुत्तरणहेतुम् वानरसेनाकर्तृकसमुद्रोल्लङ्घनसाधनं सेतुं विधातुम् कर्तुं वारांनिधिम् सागरम् आराधय प्रार्थय इत्येवं प्रकारेण एनम् रामं सविनयं सप्रश्रयं यथा स्यात्तथा विज्ञापितवान् ।

विभीषण पहिले ही राम के कटाक्षरूप अमृततरङ्गों से अभिषिक्त होकर भी पुनः राज्याभिषिक्त होकर सभी प्रकार के विश्वासों का पात्र होने से दूसरा सुग्रीव-सा हो गया। उसने रावण की सेना के विषय में सभी ज्ञातव्य बातें बता कर अविलम्ब ही लङ्कापुर पर आक्रमण करने के लिए सेना समुद्र पार कर सके इसके लिए सेतु बनाने के लिए आप समुद्र की आराधना करें— राम से ऐसा निवेदन किया।

अथ वारांनिधिं ध्यायन्नम्भोधिहृदयेशयः ।
व्यानशे दर्भशयनं वेदीमिव हुताशनः ॥ २१ ॥

अथेति। अथ विभीषणविज्ञापनानन्तरम्, वारांनिधिम् सागरं ध्यायन् प्रसादयितुं चिन्तयन् अम्भोधिहृदयेशयः अम्भोधिहृदये सागराभ्यन्तरे क्षीरसागर इत्यर्थः शेते इति अम्भोधिहृदयेशयः क्षीरसागरशायी विष्णुस्तन्मूर्तिः राम इत्यर्थः हुताशनः वह्निः वेदीम् परिष्कृतां भूमिमिव, दर्भशयनम् कुशास्तरणम् व्यानशे अधिशिश्ये इत्यर्थः। 'अम्भोधिहृदयेशयः' इत्यत्र 'अधिकरणे शेतेः' इति 'अच्'। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति सप्तम्या अलुक्। उपमाऽलङ्कारः ॥२१॥

तदनन्तर [विष्णु रूप से] जो क्षीरसागर में शयन करते हैं, वे ही राम [प्रसन्न करने के लिए] समुद्र का ध्यान करते हुए कुश के बिछौने पर, वेदी पर अग्नि देव की तरह, लेट गये ॥ २१ ॥

तत्र च[1] कुशास्तरणमध्यमध्यासीने देवे[2] रामभद्रे नियन्त्रित इव नि-[3]यमवशान्निशात्रयमपि [4]निध्यानवति प्रसादं नाससाद यादसांपतिः।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समुद्रतटे च कुशास्तरणमध्यम् दर्भमयशयनीयमध्यप्रदेशम् ('अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम्) अध्यासीने अधिष्ठाय शयाने

१. 'च' इति नास्ति क्वचित्। २. 'निध्यानवति देवे रामचन्द्रे' इति पाठा०। ३. नियतिवशान्' इति पाठा०। ४. 'निध्यानवति' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियमवशात् व्रतपारतन्त्र्यात् नियन्त्रिते नियमित इव सति रामे देवे रामाख्ये सकलभुवनभर्तरि, निशात्रयम् तिस्रः रजनीः (अत्यन्तसंयोगे द्वितीया) निध्यानवति नितरां ध्यानतत्परे सति, यादसाम् जलचरजन्तूनां पतिः सागरः ('रत्नाकरो जलनिधिर्यादःपतिरपांपतिः, इत्यमरः) प्रसादं नाससाद आनुकूल्यं न प्राप ।

समुद्र तट पर राम जी नियमाधीन कुशशय्या पर तीन दिन-रात ध्यानावस्थित पड़े रहे किन्तु समुद्र [अभीष्ट अर्थ पूरा करने के लिए] अनुकूल नहीं हुआ ।

व्यापारयन्नथ विलोचनकोणमब्धौ
कोपारुणं कुटिलितभ्रुकुटीविटङ्कः ।
आदातुमैहत धनुः प्रथमो रघूणां
पैतामहप्रथमसर्गसमापनाय ॥ २२ ॥

व्यापरयन्निति । अथ निशात्रयापगमानन्तरम् रघूणां प्रथमः श्रेष्ठः श्रीरामः कुटिलितभ्रुकुटीविटङ्कः वक्रीकृतभ्रूभङ्गविटङ्कः कोपारुणम् कोपेन समुद्रकृतावमानजनितक्रोधेन अरुणम् रक्तवर्णं विलोचनकोणम् नयनाञ्चलम् अब्धौ सागरे व्यापारयन् निक्षिपन् कोपारुणेन नेत्रेण सागरं पश्यन्निति भावः, पितामहः ब्रह्मा तस्यायं पैतामहो यः प्रथमः सर्गः सृष्टिः 'अप एव ससर्जादौ' इति ब्रह्माण्डपुराणवचनात् ब्रह्मणः प्रथमा अप्सृष्टिः सा चात्र सागरस्तस्य समापनाय शोषणाय धनुः आदातुम् करेण ग्रहीतुम् ऐहत ऐच्छत् । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

इसके बाद रघुनायक राम ने भौंहें तान कर क्रोध से लाल नेत्रों को समुद्र पर डालते हुए विधाता की आदि सृष्टि-सागर को विध्वस्त कर देने के लिए धनुष उठाना चाहा ॥ २२ ॥

आदाय च दुरापं चापमारोपयत विशिखमनलशिखम् ।

आदायेति । दुरापम् परेषां दुष्प्रापम्, नमयितुमशक्यमित्यर्थः, चापम् धनुः आदाय गृहीत्वा च, अनलशिखम् आग्नेयम् विशिखम् बाणम् आरोपयत अनुसंहितवान् ।

दूसरों से न झुकने वाले धनुष को लेकर श्रीराम ने उस पर आग्नेय बाण चढ़ाया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाथो विमोक्तुमुदयुङ्क्त न यावदेष[1]
पाथोनिधेरुपरि पावकरूपमस्त्रम् ।
संतापिनी नयनवारिमिषेण ताव[2]-
न्मन्दाकिनी किमुत वारुणमाललम्बे ॥ २३ ॥

नाथ इति । एषः नाथः स्वामी श्रीरामः पाथोनिधेः समुद्रस्य उपरि यावत् पावकरूपमस्त्रम् आग्नेयं शरं विमोक्तुम् प्रयोक्तुमित्यर्थः, न उदयुङ्क्त न उद्युक्तवान् तावत् सन्तापिनी पत्यौ सागरे तदस्त्रप्रयोगेण भाविनीं विपत्तिं विचिन्त्य सन्तापं गता मन्दाकिनी वियद्गङ्गा नयनवारिमिषेण नेत्राम्बुव्याजेन वारुणम् वरुणदेवताकमस्त्रम् आललम्बे किमुत आश्रितवती किम् ? रामे समुद्रोपरि पावकास्त्रं प्रयोक्तुमिच्छत्येव पत्युः सागरस्य भाविनं सन्तापं विभाव्य सन्तप्ता सती नयनवारि व्याजेन वारुणमस्त्रमाललम्ब इवेत्युत्प्रेक्षा । तथा चाग्नेयास्त्रप्रयोगः समुद्रे, किन्तु तस्मात् सन्तापो मन्दाकिन्या इति कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गतिः । तयोश्चाङ्गाङ्गिभावेन संवलनात् सङ्करः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २३ ॥

स्वामी राम जब तक समुद्र के ऊपर आग्नेय अस्त्र छोड़ने के लिए उद्युक्त नहीं हुए, तब तक [पति समुद्र की भावी महाविपत्ति से] सन्तप्त होकर मन्दाकिनी ने नयनवारि के व्याज से वारुणास्त्र ग्रहण कर लिया क्या ? ।२३।

रुषा विशिखमुच्छिखं जहति राघवे लाघवा-
दजायत रुजायत श्वसितनक्रचक्राकुलम् ।
रसातलवलत्तिमिस्तिमितकुम्भिकुम्भीनस-
प्रविष्टगिरिकन्दरं तरलमन्तरं वारिधेः ॥ २४ ॥

रुषेति । राघवे श्रीरामे उच्छिखम् उद्गतज्वालं विशिखम् बाणम् आग्नेयास्त्रम्, रुषा समुद्रोपरि जातेन कोपेन हेतुना, लाघवात् हस्तलाघवात् जहति मुञ्चति सति वारिधेः समुद्रस्य अन्तरम् मध्यदेशः रुजा उपतापः ('षिद्भिदादिभ्योऽङ्' ('स्त्रीरुग्रुजा चोपतापः' इत्यमरः) तया आयतान्यतिदीर्घानि श्वसितानि निःश्वासा यस्य तथोक्तेन नक्रचक्रेण जलग्राहनिवहेन आकुलम् संकुलम्, रसातले पाताले वलन्तः वेगेन भ्रमन्तस्तिमयः दीर्घकायमत्स्यविशेषा यस्मिंस्तत्ता-

१, 'एव' इति पाठा० । २. 'ताम्यन्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थोक्तम्, स्तिमिताः निश्चेष्टाः कुम्भिनः जलहस्तिनो यस्मिंस्तत्तथोक्तम्, कुम्भीनसैः लोहितवर्णैः सर्पविशेषैः प्रविष्टानि गिरिकन्दराणि समुद्रस्थमैनाकादिपर्वतबिलानि यस्मिंस्तत्तथोक्तम्, तथा तरलम् सर्वतः क्षुभित अजायत जातम्। समुद्रोपरिकुपितो रामो यदा समुद्रे पावकास्त्रममुञ्चत्, तदा तज्ज्वालया सन्तप्यमानं नक्रकुलं दीर्घं निःश्वसितुमारब्धवान्, रसातले तिमयश्चला अजायन्त, जलहस्तिनो निश्चेष्टा अभवन्, कुम्भीनसाः समुद्रवर्ति मैनाकादिगिरिकन्दरासु न्यलीयन्त, समुद्रतश्च परितः क्षुभितोऽजायत इत्यर्थः। पृथ्वीवृत्तम्।

[समुद्र पर] क्रोध कर राम ने जब हाथ की कुशलता दिखाते हुए उठी हुई लपटों वाला अग्निबाण छोड़ा, तब सागर के भीतरी भाग में सन्ताप के कारण नक्रगण लम्बी-लम्बी साँस छोड़ने लगे, तिमि नामक [दीर्घकाय] मछलियाँ रसातल में छटपटाने लगीं, जलहस्ती निश्चेष्ट हो गये, कुम्भीनस नामक लालवर्ण के जलसर्प [समुद्रगत मैनाकादि] पर्वतों की कन्दराओं में प्रविष्ट हो गये, इस प्रकार से सागर का मध्य भाग क्षुब्ध हो गया ॥ २४ ॥

तत्क्षणं[1] च जलनिधिः क्षन्ता च युगान्तानलस्य सहनोऽपि गरल[2]दहनोष्मणां सोढापि वाडवगाढा[3]वलेह्यस्य तितिक्षुरपि भार्गवतीक्ष्णपरशोः परिशोषयन्तमन्तरङ्गमङ्गारमयं[4] शरवरं निमिषमपि न विषेहे।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन् समये युगान्तानलस्य प्रलयाग्नेः ('कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी) क्षन्ता च सहनशीलोऽपि, गरलदहनोष्मणाम् विषाग्निसन्तापानां सहनः सोढाऽपि, वाडवगाढावलेह्यस्य वडवानलकर्तृकनिरन्तरदृढतरास्वादनस्य सोढाऽपि (सहतेस्तृच्), भार्गवतीक्ष्णपरशोः—(क्षत्रियान् संहृत्य निखिलां महीं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा स्वनिवासार्थं समुद्रं भूमिं याचमानस्य) भार्गवस्य परशुरामस्य तीक्ष्णपरशोः निशितकुठारस्य तितिक्षुः क्षान्तिशीलोऽपि जलनिधिः सागरः, अन्तरङ्गम् हृदयदेशं मध्यभागमित्यर्थः परिशोषयन्तम् दहन्यम् अङ्गारमयम् देदीप्यमानाङ्गारस्वरूपं शरवरम् अस्त्रोत्तमं रामस्याग्नेयास्त्रं निमिषम् निमेषमात्रमपि न विषेहे न चक्षमे। तत्तत्तापसहस्यापि समुद्रस्य, स्वतो दुःसहं तत्रापि कोपाविष्टेन रामेण प्रयुक्तं यदाग्नेयास्त्रं क्षणमपि सह्यं नाभूदित्यर्थः।

---

१. 'च' इति नास्ति क्वचित्। २. 'दाहनोष्मणाम्' इति पाठा०।
३. 'वलेपस्य' इति पाठा०। ४. 'शरमयम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उस समय, प्रलयकाल की अग्नि को भी सह लेने वाला, विषाग्नि के भी सन्ताप को सहने वाला, वडवानल के निरन्तर दृढतर आस्वादन को भी सहने वाला, परशुराम के तीक्ष्ण कुठार को भी सह लेने वाला समुद्र, हृदय देश के मध्यभाग को जलाने वाले, अङ्गारमय, अस्त्रोत्तम राम के आग्नेय अस्त्र को क्षण भर भी न सह सका।

शरणमथ शरव्यथानिदानं जलनिधिरेष जगाम राममेव।
परुषकुलिशपातमेव किं वा जलधरमर्थयते न जीवलोकः॥ २५॥

शरणमिति। अथ आग्नेयास्त्रस्यासह्यत्वमनुभूय एषः जलनिधिः समुद्रः शरव्यथानिदानम् शरकृतात्यन्तसन्तापस्यादिकारणभूतम् ('निदानं त्वादिकारण मित्यमरः) राममेव शरणम् रक्षकम् ('शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः) जगाम प्राप। तत्र दृष्टान्तमाह–परुषेति। जीवलोकः प्राणिसमूहो वा, असह्यः कुलिश-पातो यस्मात्तं तथोक्तम् कठोरवज्रप्रहारकर्तारं जलधरम् मेघं (जलं) न अर्थयते किम् न याचते किम् याचत एवेत्यर्थः। यथा लोको वज्रपातेन पीडा-करमपि मेघं जलं याचते तथाऽयं सागरोऽपि पावकास्त्रेण सन्तापयन्तं राममेव शरणं विवशो भूत्वा जगामेत्यर्थः। वैधर्म्येण दृष्टान्तालंकारः, पुष्पिताग्रा वृत्तम्।

इसके बाद उस बाणकृत सन्ताप के आदि कारण भगवान् राम की ही शरण में समुद्र उपस्थित हुआ। क्या संसार के सभी प्राणी कठोर वज्रपात करने वाले मेघ से ही [जल के लिए] प्रार्थना नहीं करते हैं ? [अतः समुद्र का राम की शरण में जाना युक्त ही है]॥ २५॥

आगत्य चानुपदमुपदीकृत[1]चित्ररत्नराशि[2]र्जलराशिर्विनीत[3]वेषोप-जातनुतिभिर्नतिभिरभ्यनन्दयद्रघुनन्दनम्।

आगत्य चेति। आगत्य रामसमीपमवाप्य च अनुपदम् तत्क्षणम् उपदीकृत-चित्ररत्नराशिः उपदीकृतः उपायनीकृतः चित्ररत्नराशिः विविधविचित्ररत्नपुञ्जो येन स तथोक्तः, जलराशिः सागरः विनीतवेषेण विनम्रस्वरूपेण उपजाताः विरचिता या नुतयः स्तोत्राणि प्रणामाश्च ताभिः रघुनन्दनम् रामम् अभय-नन्दयत् प्रासादयत्, उपायनेन स्तुत्या प्रणामेन च राममपगतकोपं कृतवान्

१. 'नूतनरत्न' इति पाठा०। २. 'वारिराशिः' इति पाठा०।
३. 'वेशविषोपजाततिमिनुंर्तिभिः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'प्रणिपात प्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्' इति नीतिवचनादिति भावः। ('उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः)।

समुद्र ने राम के पास आकर उन्हें विविध विचित्र रत्न भेंट किये, विनम्र भाव से उनकी स्तुति तथा पदवन्दन किया, ऐसा कर उनके कोप को शान्त किया।

तदनु संहितममोघं [1]वैधात्रमस्त्रं[2]कुत्रचन वनचरधामनि मरुसीमनि विनिपात्यताम्, सह्यते मया सलिलावष्टम्भः, संप्रत्येव नलो विदधातु सेतुमित्यभिदधानो मन्दमन्दमन्तरधात्।

तदन्विति। तदनु श्रीरामाभिनन्दनात्परतः संहितम् शरासने आरोपितम् अमोघम् व्यर्थं यन्नजायते तत्, वैधात्रम् विधातुरिदं वैधात्रम् ब्राह्मम् ('तस्येदमि'त्यण्) अस्त्रं कुत्रचन क्वचित् वनचरधामनि वनचराणां किरातादीनां पापिनां धामनि निवासस्थाने मरुसीमनि मरुदेशे विनिपात्यताम् विसृज्यताम्, अमोघतयाऽपरिहार्यपातनमिदं ब्राह्ममस्त्रं वनचरादिपापिजनाध्युषिते कुत्रचिन्मरुदेशे विनिपातनीयं येन साधूनां विपत्तिर्माऽभूदित्यर्थः। मया समुद्रेण सलिलावष्टम्भः जलप्रतिबन्धः (भवदादेशेन) सह्यते मृष्यते। सम्प्रत्येव समयातियापनमकृत्वैव नलः तदभिधानो वानरः सेतुं विदधातु विरचयतु इत्येवमभिदधानो ब्रुवाणः सागरः मन्दमन्दम् शनैः शनैः अन्तरधात् अन्तर्हितोऽभूत्।

इसके बाद समुद्र ने राम से कहा कि धनुष पर चढ़ाया गया यह अमोघ ब्रह्मास्त्र कहीं वनचरनिवास मरु भूमि में छोड़ दिया जाय, मैं जल के बन्धन को सहने के लिए प्रस्तुत हूँ, इसी समय नल सेतु का निर्माण प्रारम्भ कर दें। ऐसा कह कर समुद्र धीरे-धीरे अन्तर्हित हो गया।

आदिष्टा रघु[3]नन्दनेन हरयोऽप्यष्टासु दिक्षु क्षणा-
त्त्रैलोक्याश्रितमूलमध्यशिखरान्धात्रीधरानाहरन्।

---

१. 'अस्त्रं वैधात्रम्' ति पाठा०।
२. 'कुत्र चन वनसीमनि विनिपात्य साध्यो मया सलिलविष्टम्भः' इति पाठा०।
३. 'पुंगवेन' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यैः क्षिप्तैः सलिले नलेन जलधिर्यातोऽपि जम्बालतां
निर्गच्छन्नचिराय निर्झरपयःपूरैः पुपूरे पुनः ॥ २६ ॥

आदिष्टा इति। रघुनन्देन श्रीरामेण आदिष्टा सेतुनिर्माणार्थं पर्वताहरणायाज्ञप्ताः हरयः वानराः, अष्टास्वपि दिक्षु [स्थितान्] त्रैलोक्ये अञ्चितानि गतानि मूलमध्यशिखराणि येषां तथोक्तान्, मूलं पाताले, मध्यभागं मर्त्यलोके, शिखरं स्वर्गलोके च विनिवेश्य स्थितान् धात्रीधरान् पर्वतान् क्षणात् अत्यल्पेनैव कालेन आहरन् आनयन्। यैः पर्वतैः नलेन सलिले जले क्षिप्तैः सद्भिः जम्बालतां यातः पङ्किलतां गतोऽपि जलधिः सागरः ('निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमरः) निर्झरपयःपूरैः तत्क्षिप्तपर्वतपतन्निर्झरजलप्रवाहैः निर्गच्छन् जम्बालत्वान्मुक्तिं व्रजन् उपचयं प्राप्नुवन्नित्यर्थः अचिराय शीघ्रमेव पुनः पुपूरे पूरितः। (पूरेः कर्मणि लिट्)। 'त्रैलोक्याञ्चितमूलमध्यशिखरान्' इत्यत्र पर्वतमूलमध्यशिखराणां त्रैलोक्याञ्चनासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः। तथा चाम्बुधेः पङ्किलत्वनिर्झरपयःपूरितत्वासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः। द्वयोर्नैरपेक्ष्येण स्थितेः संसृष्टिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २६ ॥

राम की आज्ञा पाकर वानर गण आठों दिशाओं में स्थित पर्वतों को, जिनका मूल भाग पाताल तक, मध्य भाग भूलोक में, शिखर भाग स्वर्ग लोक तक फैला था, शीघ्र ले आये। नल ने उन पर्वतों को समुद्र में डाला जिससे समुद्र पङ्कभाव को प्राप्त हो गया तथापि उन पर्वतों से झरने वाले झरनों के प्रवाह से, पङ्कभाव से मुक्त होता हुआ पुनः शीघ्र पूर्ण हो गया ॥ २६ ॥

अथ जलधौ निपेतुरतिदूरनिपातदल-
ज्जलचर[1]जीवजीवनदगन्धमहौषधयः।
स्फुटितधराविराजदहिपुंगवफूत्करण-
क्षुभितगुहा[2]गृहोत्थितमहाहरयो गिरयः ॥ २७ ॥

अथेति। अथानन्तरम्, जलधौ सागरे, अतिदूरात् निपातेन निपतनेन दलतां विशीर्यमाणानां जलचराणाम् नक्रादिजलवासिनां जीवानां प्राणिनां जीवनदः पुनरुज्जीवनप्रदः गन्धः आमोदः यासां तादृश्यो महौषधयः संजीव-

---

१. 'दत्तजीवनवगन्ध' इति पाठा०। २. 'गृहासिक' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यादिमहत्त्वपूर्णौषधयो यत्र ते तथोक्ताः, अत्यन्तविप्रकृष्टात् पर्वतपातेन म्रियमाणाः समुद्रजलचरप्राणिनो येषां पर्वतानां शिखरेषु विद्यमानानामोषधीनां गन्धेन पुनरुज्जीवनं लभन्ते तादृशा इत्यर्थः, स्फुटिता गिरि-निपातसङ्घट्टेन विदारिता या धरा समुद्रतलभूमिः तत्र विराजतां वर्तमानानामहिपुंगवानाम् महोरगाणां फूत्करणैः निःश्वासवायुभिः क्षुभिताः क्षोभं प्रापिता अत एव गुहागृहेभ्यः कन्दरान्तरालेभ्यः उत्थिताः निर्गता महाहरयः महासिंहा येषां ते तथोक्ताः गिरयः पर्वताः निपेतुः अपतन् । अतिशयोक्तिरलङ्कारः । नर्दटकं वृत्तम् ।

दूर से पर्वतों के गिरने के कारण म्रियमाण जलचरप्राणियों को अपनी गन्धमात्र से पुनर्जीवन प्रदान करने वाली महौषधियों से युक्त तथा [पर्वतों के वेगपूर्वक गिरने के धक्के से] विदीर्ण समुद्रतल भूमि में विराजमान महासर्पों की फुँफकार से क्षुभित महासिंहों वाली कन्दराओं से सम्पन्न [वानरों द्वारा लाये जाते हुए] पर्वत समुद्र में गिरने लगे ॥ २७ ॥

अलक्षितमहीधरग्रहणमस्फुटक्षेपणं
विचित्रघटणं ततो विरचितो नलेनामुना ।
अबोधि हरियूथपैरधिपयोधि सेतुर्महान्
भुवोभुज इवा[1] भयंनिजतनूभुवो लम्भयन् ॥ २८ ॥

अलक्षितेति । ततः तदनन्तरम्, अलक्षितम् अज्ञातं महीधरग्रहणम् महीधराणां पर्वतानां ग्रहणं यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा । अस्फुटम् अप्रकटीकृतं क्षेपणं जले पर्वतस्थापनं यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा । विचित्रा असाधारणतया विलक्षणा घटना रचना यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा । इत्येतत्त्रयं क्रियाविशेषणम् । अमुना नलेन तदाख्येन वानरेण विरचितो महान् सेतुः अधिपयोधि पयोधाविति विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः, सागरमध्ये निजतनूभुवः स्वपुत्र्याः सीताया इत्यर्थः । अभयम् भयाभावं लम्भयन् प्रापयन् भुवः पृथिव्याः भुजः बाहुरिव हरियूथपैः वानरव्यूहाधिपैः अबोधि ज्ञातः । यस्य सेतोर्निर्माणकर्मणि कदा पर्वता गृहीताः कदा च जले क्षिप्ता इति स्फुटं न परिलक्ष्यते, विचित्रश्च रचनाक्रमः, सोऽयं सेतुर्वानरव्यूहाधिपैः समुद्रे पृथिव्या स्वतनयायै सीतायै सम्प्रत्यभयं प्रदातुं स्वबाहुराततीकृत इवालक्ष्यतेत्यर्थः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । पृथ्वी वृत्तम् ।

पर्वत कब लिये गये कब पानी में रखे गये यह मालूम नहीं पड़ता था,

---

१. 'अभवद्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रचना भी विलक्षण थी, इस प्रकार नल के द्वारा वनाकर तैयार किया गया वह महान् सेतु, वानरसेनापतियों को ऐसा मालूम पड़ा कि पृथिवी ने अपनी कन्या सीता को अभयप्रदान करने के लिए, समुद्र के मध्य अपनी भुजा वढ़ा रखी है ॥ २८ ॥

अनन्तरमन्तर्मुखा इव वलीमुखाः प्रबोधेनेव सेतुपथेन संसारमिव दुस्तरं तरंगिणीपतिमतीत्य सद्य एव प्रकाशं गिरीशं सुवेलमवलोकयन्तो मुहु[1]रविन्दन्परमानन्दम् ।

अनन्तरमिति । अनन्तरम् समुद्रे सेतुनिर्माणानन्तरम्, बलीमुखाः वानराः सेतुपथेन सेतु-रूप-मार्गेण दुस्तरम् तरितुमशक्यं तरङ्गिणीपतिम् समुद्रम् अतीत्य उल्लङ्घ्य सद्यः तदानीमेव प्रकाशम् चक्षुर्गोचरं सुवेलम् सुवेलनामधेयं गिरीशम् पर्वतश्रेष्ठम् अवलोकयन्तः पश्यन्तः मुहुः पुनः पुनः परमानन्दम् अनिर्वचनीयहर्षम् अविन्दन् अलभन्त, यथा अन्तर्मुखाः आत्मनिष्ठा योगिनः प्रबोधेन तत्त्वज्ञानेन दुस्तरं संसारम् जन्ममरणपरम्पराम् अतीत्य समाप्य सद्य एव प्रकाशम् सर्वावभासकतया प्रकाशरूपं 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति श्रुत्युक्तेः । सुवेलम् शोभनमर्यादं गिरीशम् परमात्मानम् अवलोकयन्तः साक्षात्कुर्वन्तः परमानन्दम् ब्रह्मानन्दं विन्दन्ति लभन्ते । उपमा श्लेषसंकीर्णा ।

जैसे आत्मनिष्ठ योगी जन तत्त्वज्ञानरूप मार्ग से इस दुस्तर संसार को पार कर तत्काल ही प्रकाश रूप गिरीश–परमात्मा का साक्षात्कार कर परमानन्द को प्राप्त करते हैं, वैसे ही समस्त वानरों ने सेतुरूप मार्ग से दुस्तर सागर को पार कर पर्वतश्रेष्ठ सुवेल को देखकर परमानन्द प्राप्त किया ।

वलयिततटदेशैर्वाहिनीनां निवेशै-
रविरलवनरेखामध्यमध्यास्त रामः ।
कपिकलकलशीर्यत्कन्दरामन्दिरान्त-
श्चलितकुपितसिंहत्रस्तवेलं सुवेलम् ॥ २९ ॥

वलयितेति । वलयिततदेशैः परिवेष्टितसानुप्रदेशैः वाहिनीनाम् कपिसेनानां ('सेनानद्योश्च वाहिनी' इति वैजयन्ती) निवेशैः शिविरैः अविरलानि सान्द्राणि व्याप्तानीति यावत्, वनरेखामध्यानि वनश्रेण्यन्तरालानि यस्य तं

1. 'अविन्दत महान्तमानन्दम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथोक्तम् । तथा च कपीनाम् कलकलैः, कोलाहलैः शीर्यताम् विदीर्यमाणानां कन्दरामन्दिराणाम् दरीगृहाणामन्तः मध्यप्रदेशः, ततश्चलिताः कोलाहलैः प्रबुध्य निर्गताः, कुपिताः निद्राभङ्गेन सञ्जातकोपाश्च ये सिंहाः तेभ्यः त्रस्ता भीता वेला तटभूमिः लक्षणया तटवर्तिजन्तवो यस्य तादृशं सुवेलम् सुवेलनामधेयं गिरिं रामः अध्यास्त अधिष्ठितवान् ('अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम्) । सानुभागान् परिवृत्यावस्थितैर्वानरसेनाशिविरैर्यस्य सुवेलस्य वनभागाः व्याप्ताः, कपिकोलाहलैः प्रबुद्धा अत एव कुपिताः सिंहाश्च क्षुभितेभ्यो गुहागृहेभ्यो निर्गत्याचलन्, तान् दृष्ट्वा तटवर्तिनो जन्तवो यत्र भयसम्भ्रान्ता जायन्ते तादृशे सुवेलनाम्नि पर्वते रामः स्ववासस्थानमकल्पयदित्याशयः ! मालिनी वृत्तम् ॥ २९ ॥

रामने उस सुवेल पर्वत पर अपना वासस्थान बनाया। जिसके शिखरों को घेर कर डाले गये कपि सेना के शिविरों से वन का मध्यभाग अत्यन्त व्याप्त था। वानरों के कोलाहल से कन्दरायें फटी-सी जा रही थीं और उनके अन्दर से कुपित सिंह बाहर निकलते थे जिनसे तटवर्ती सकल जन्तु त्रस्त हो रहे थे ॥ २९ ॥

तदनुदशमुखोऽपि[1]शुकमुखादतिलङ्घितजलधिगतसुवेलारामं रामं निशम्य सम्यगवगमनाय रघुनायकबलमनु[2] प्रयातयोर्विदितवि[3]भीषणप्रेरणाकुपितकपिलोकनियन्त्रणनितान्तखिन्नयोर्विषण्णाधारदाशरथिविमोचितप्राणयोः शुकसारणयोर्वचसा[4]प्रासादमुदग्रमासाद्य प्रत्येकशस्तदावेद्यमानान्प्र[5]वर्धमानान्समरसंनाहमतीन्प्ल[6]वगसेनाधिपतीनतिधीरतया सावधीरणमवेक्षमाणः प्रतिपक्षबलप्रशंसिना[7]वुभावप्युपेक्षमाणः शार्दूलप्रभृतिभिः[8]प्रणिधिभिरप्यवगताशेष[9]वृत्तान्ततान्तः सुचिरमनुचिन्तयन्न-

१. 'अपि' इति नास्ति क्वचित् ।
२. 'प्रहितयोः' इति पाठा० ।
३. 'वेषविभीषणावेदितकुपित' इति पाठा० ।
४. 'प्रासादाग्रम्' इति पाठा० ।
५. 'प्रवर्धमान' इति पाठा० ।
६. 'प्लवंगम' इति पाठा० ।
७. 'तावुभौ' इति पाठा० ।
८. 'प्रणयिभिः' इति पाठा० ।
९. वृत्तान्तः 'सान्तस्तापः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्तिकासीनमतिविनयप्रह्वं विद्युज्जिह्वमुपह्वरे किमप्यभिधाय सौधादवततार ।

तदन्विति । तदनु तस्मात् परतः, दशमुखः रावणोऽपि शुकमुखात् शुकनामकगुप्तचरमुखात् अतिलङ्घितजलधिम् सेतुमार्गेणातिक्रान्तसागरम् अधिगतसुवेलारामम् अधिष्ठितसुवेलवनम् रामम् दाशरथिं निशम्य श्रुत्वा, सम्यगवगमनाय यथार्थतः परिज्ञातुम् रघुनायकबलम् अनुप्रयातयोः रामसैन्यम् आगतयोः विदितः विदितं ज्ञानमस्यास्तीति विदितः ('अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्) शुकसारणरावणदूतागमनज्ञानवान् यो विभीषणस्तस्य प्रेरणया निर्देशेन रावणप्रेषिताविमौ गूढपुरुषौ भवद्बलं ज्ञातुमायातौ इति चोदनयेत्यर्थः, कुपितस्य सञ्जातकोपस्य कपिलोकस्य वानरनिवहस्य नियन्त्रणेन तत्कृतबन्धनेनेत्यर्थः, नितान्तखिन्नयोः अत्यन्तखेदमापन्नयोः विपन्नाधारेण दुर्गतजनरक्षकेण दाशरथिना रामेण विमोचितप्राणयोः त्याजितजीवनयोः शुकसारणयोः तदाख्ययो दूतयोः वचसा वचनेन उदग्रम् महोन्नतं प्रासादम् भवनम् आसाद्य आरुह्य प्रत्येकशः एकैकशः तदावेद्यमानान् ताभ्याम् शुकसारणाभ्यां ज्ञाप्यमानान् प्रवर्धमानान् उन्नतकायान् समरसंनाहमतीन् युद्धोद्यतान् प्लवगसेनाधिपतीन् वानरसेनानायकान् अतिधीरतया अत्यन्तधीरभावेन सावधीरणम् अवज्ञापूर्वकम् अवेक्षमाणः विलोकयन् प्रतिपक्षबलप्रशंसिनौ शत्रुसैन्यप्रशंसापरायणौ उभौ शुकसारणावपि उपेक्षमाणः किमिति शत्रून् स्तुथ इति तिरस्कुर्वन्, शार्दूलप्रभृतिभिः प्रणिधिभिः गूढचरैरपि अवगताशेषवृत्तान्तः शुकसारणावुपेक्ष्य पुनः प्रहितेन शार्दूलादिदूतगणेन ज्ञाताखिलसैन्यसमाचारः अत एव तान्तः खिन्नः सुचिरम् बहुकालपर्यन्तम् अनुचिन्तयन् केनोपायेन शत्रूञ्जयेमेति भूयो भूयो विचारयन् (रावणः) अन्तिकासीनम् समीपोपविष्टम् अतिविनयप्रह्वम् अत्यन्तविनयेन नम्रं विद्युज्जिह्वम् तदाख्यं कंचिद्राक्षसं प्रति उपह्वरे रहसि किमप्यभिधाय मायाकल्पितं रामशिरः सधनुः प्रदर्श्य सीतां प्रलोभयेत्युक्त्वेत्यर्थः। सौधात् प्रासादात् अवततार अवरुरोह ।

इसके बाद रावण ने शुक नामक दूत के मुँह से सुना कि समुद्र लाँघ कर राम ने सुवेल पर्वत के वन में अपना डेरा डाल दिया है। इसी को ठीक ठीक जानने के लिए शुक और सारण दो गुप्तचर राम की सेना में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहुँचे। विभीषण ने उन्हें पहचान लिया। विभीषण का संकेत पाकर वानरों द्वारा बाँध लिये जाने से वे दोनों बहुत पीड़ित हुए किन्तु दुःखियों के रक्षक राम ने उनके प्राणों को छुड़वा दिया। [वापस गये] उन दोनों दूतों के कहने से अत्यन्त ऊँचे प्रासाद पर चढ़ कर शुक और सारण के द्वारा एक-एक करके बताये गये, उन्नतकाय, युद्ध की तैयारी में लगे हुए वानर सेनापतियों को अत्यन्त धीर भाव से अवज्ञापूर्वक देखता हुआ, शत्रु की प्रशंसा करने वाले शुक और सारण की उपेक्षा करता हुआ, शार्दूल आदि गुप्तचरों के द्वारा सारा वृत्तान्त जान कर अत्यन्त खिन्न रावण ने बड़ी देर तक सोच-विचार कर एकान्त में विनयावनत विद्युज्जिह्व नामक राक्षस से कुछ कहा और वह प्रासाद से उतर आया।

तत्क्षणं [1]क्षणदाचरो निदेशान्निशाचरपतेर्दाशरथिशिरः सशरं धनुरपि निर्माय मायानुभावादाहवानीतमित्यभिधाय निधाय च पुरो निदाघातिशयसंतापिनीं वासन्तीमिव वैद्युतानल[2]श्चिरकालविरहविह्वलीकृतामाकुलीचकार मैथिलीम्।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन्काले, क्षणदाचरः राक्षसः असौ विद्युज्जिह्वः निशाचरपतेः रावणस्य निदेशात् आज्ञावशात् मायानुभावात् मायाबलात् दाशरथेः रामस्य शिरः सशरम् बाणसहितं धनुः शरासनमपि निर्माय प्रकल्प्य आहवात् युद्धात् आनीतम् युद्धे रामं निहत्य तच्छिरः सशरं धनुश्चाहृतमिति अभिधाय उक्त्वा पुरः सीताया अग्रे निधाय स्थापयित्वा निदाघातिशयसन्तापिनीम् निदाघातिशयेन ग्रीष्मे घर्माधिक्येन सन्तापिनीम् सन्तप्तां वासन्तीम् माधवीलताम् ('वासन्ती माधवीलता' इत्यमरः) वैद्युतानलः विद्युद्वह्निरिव (इत्युपमा) चिरकालविरहविह्वलीकृताम् चिरकालविरहेण दीर्घकालवियोगवशेन विह्वलीकृताम् विकलां मैथिलीम् सीताम् आकुलीचकार आकुली कृतवान्।

उस समय रावण के आदेश से विद्युज्जिह्व राक्षस ने अपनी माया के प्रभाव से राम का सिर तथा बाण सहित धनुष रच कर सीता के सामने रख दिया और कहा कि युद्ध से लिये आ रहा हूँ। ऐसा करके उसने चिरवियोग से विह्वल की गयी सीता को उसी तरह आकुल कर दिया जिस

---

१. 'क्षणदाचरोऽपि' इति पाठा०। २. 'चिरकालविह्वलाम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तरह ग्रीष्म की धूप से सन्तप्त माधवी लता की विद्युत् की अग्नि झुलसा देती है।

ततः प्रबुद्धा च [1]सा मुग्धा पुनस्तथ्यमिति विचार्य तदनार्यं पर्यदेवयत पतिदेवता।

तत इति। ततः तदनन्तरम् पतिदेवता पतिव्रता सा सीता मुग्धा मूर्च्छिता पुनः प्रबुद्धा लब्धसंज्ञा सती अनार्यम् मायाकल्पितं तत् शिरः सशरं धनुश्च तथ्यम् यथार्थमिति विचार्य मत्वा पर्यदेवयत वक्ष्यमाणप्रकारेण विलापं कृतवती।

इसके बाद पतिव्रता सीता [उन वस्तुओं को देखकर ही] मूर्च्छित हो गयीं, होश में आने पर उन माया कल्पित वस्तुओं को सत्य समझ कर [इस प्रकार] विलाप करने लगीं—

रक्षोवरोधवसतिं रजनीचरीणां
रक्षोपरोधमपि रावणभर्त्सनं च।
सर्वंसहे यदुपलम्भधिया स एवं
सर्वंसहे भवति! जीवति हन्त सीता ॥ ३० ॥

रक्षोवरोधेति। रक्षसः रावणस्य अवरोधः अन्तःपुरं तत्र वसतिम् वासम्। ('शुद्धान्तश्चावरोधश्च' इत्यमरः)। रजनीचरीणाम् रक्षाधिकृतानां राक्षसीनां रक्षया उपरोधम् निर्बन्धम्। रावणस्य भर्त्सनम् अवमानजनकं शब्दं चेति सर्वं यस्य श्रीरामस्य उपलम्भधिया प्राप्त्याशया सहे मर्षयामि, सः रामः एवम् छिन्नशिरा जात इत्यर्थः। हे सर्वंसहे भवति हे वसुमति! पूज्ये! ('सर्वंसहा वसुमती' इत्यमरः) सीता [स्वयम्] जीवति प्राणान् धारयति। हन्त! यं पुनरवाप्तुं वाञ्छन्ती तानि तानि कष्टानि सहे स्म स राम ईदृशीं दुरवस्थामापन्नस्तथापि स्वप्राणान् धारयामि, तद्धिङ्मां वज्रहृदयामिति भावः। अनुप्रास यमकयोः संसृष्टिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३० ॥

राक्षस के अन्तःपुर में वास करना, राक्षसियों द्वारा रक्षा के बहाने घिरी रहना, रावण के अपमानजनक शब्द सुनना, इन सारे कष्टों को जिन राम के पाने की आशा में सहती रही हूँ, हे जननि पृथ्वि! खेद का विषय है कि वे राम इस दशा [मृत्यु] को प्राप्त हो गये फिर भी सीता जी रही है ॥ ३० ॥

---

१. 'सा' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]इत्येवमत्याहितमत्या [2]समेतामेतां सद्य आसाद्य 'सखि वैदेहि ! देहि[3]मे वचः। मम[4]वचो विधेहि। कथमि[5]यं दशा। दशाननकृता माया हि सेयम्[6]। मा याहि मनसि वैधुर्यम्। [7]अखिलजगतीधुर्य-भुजबलाभिरामे 'रामे किमिदमनार्यमविचार्यम्' इति भाषमाणा[8] नवीनासारनिष्यन्दिनो कादम्बिनीव घर्मोद्वेगिनीं केकिनीं सरमा चिरमाश्वासयामास।

इत्येवमिति। इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण अत्याहिता अत्यन्तभीता मतिः बुद्धिस्तया समेताम् युक्तामेताम् सीताम् सद्यः तत्कालम् आसाद्य प्राप्य सरमा नाम विभीषणभार्या, हे सखि वैदेहि ! देहि मे वचः मया सम्भाषणं कुरु, मम वचः विधेहि कुरु, अहं यद्ब्रवीमि तस्मिन् विश्वस्य समाहितमनस्का भवेत्यर्थः इयं दशा कथम्–राममरणभ्रान्त्या तवेदृशं वैक्लव्यमसाम्प्रतं जगदेकवीरस्य श्रीरामस्य त्रैलोक्ये केनापि जेतुमशक्यत्वादित्यर्थः। सेयम् रामसम्बन्धिछिन्न शिरसस्तद्बाण-सहितस्य शरासनस्य च तवपुरतः स्थापनमित्येषा दशा हि निश्चयेन दशानन-कृता रावणनिर्मिता माया वञ्चनाव्यापारः, नैतद्रामस्य शिरो नापि सशरं धनुश्च, एतत्सर्वं तु मायिकमेवेत्यर्थः[अत एव] मनसि स्वहृदये वैधुर्यं वैक्लव्यं मा याहि मा प्राप्नुहि। अखिलजगतीधुर्यम् सकलसंसारभारवहनक्षमं यद् भुज-बलम् बाहुपराक्रमस्तेनाभिरामे शोभिते युक्त इत्यर्थः, रामे रामचन्द्रे अनार्यम् तुच्छम् इदम् एतच्छिरश्छेदादिकं किम् अविचार्यम् अविचारणीयम् (अस्ति)। विचारणीयमेवास्तीत्यर्थः, भवती स्वयमेव विचारयतु यदखिलजगतीधुर्यभुज-बलाभिरामे रामेऽनार्यमिदं संभवितुं शक्यं किम् ? इति सरमोक्तेराशयः। इत्यनेन प्रकारेण भाषमाणा कथयन्ती नवीनासारनिष्यन्दिनो नवजलधारा-वर्षिणी कादम्बिनी मेघमाला ('कादम्बिनी मेघमाला' इत्यमरः) घर्मोद्वे-

---

१. 'इति' नास्ति क्वचित्। २. 'समेतामेतामासाथ' इति पाठा०।
३. वैदेहि वचः' पाठा०। ४. 'मम वचो विधेहि' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'तव दीना दशा' इति पाठा०। ६. 'सेयम्' इति नास्ति क्वचित्।
७. 'निखिल' इति पाठा०। ८. 'रामेऽपि' इति पाठा०।
९. 'अभिदधाना' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गिनीम् ग्रीष्मातपपरिक्लिश्यमानां केकिनीम् मयूरीमिव सीतां चिरम् आश्वासयामास प्रकृतिस्थां कर्तुं प्रायततेत्यर्थः । उपमाऽलङ्कारः ।

इस प्रकार महाभीतबुद्धियुक्त सीता के पास आकर सरमा (विभीषण की पत्नी) ने का—सखि, वैदेहि, मेरी बातों का उत्तर दो मेरा कहा मानो, यह दशा क्यों बना रक्खी हो ? यह तो [राम का सिर नहीं] रावण की माया है [अतः] मन में विकल न हो । अखिल संसार के भार को वहन करने में समर्थ बाहुबल वाले राम के विषय में यह तुच्छ [शिरश्छेद आदि की] घटना क्या अविचारणीय है ? [अर्थात् विचार करने का विषय है कि राम के विषय में ऐसा कभी सम्भव हो सकता है ?] । इस तरह कहती हुई सरमा बड़ी देर तक सीता को आश्वासन देती रही जैसे नवीन जल धारा की वृष्टि करती हुई मेघमाला ग्रीष्म के सन्ताप से पीडित मयूरी को आश्वस्त करती है ।

अथ निगदितनीर्ति मुञ्च मुञ्चेति सीता-
मविरतरणकण्डूभीषणो रावणोऽयम् ।
मनसि न बहु मेने मन्त्रिणं माल्यवन्तं
दिवि परममरीणां मण्डलं माल्यवन्तम् ॥ ३१ ॥

अथेति । अथ मायाप्रयोगानन्तरम्, अविरतरणकण्ड्वा सततयुद्धाभिनिवेशेन भीषणः भयङ्करः अयम् मूमुर्षुः रावणः, सीताम् रामपत्नीं मुञ्च मुञ्च त्यज त्यज (सम्भ्रमे द्विरुक्तिः) झटिति त्यजेत्यर्थः । इति निगदितनीतिम् कथितनीतिवचनं माल्यवन्तम् स्वमन्त्रिणं न बहु मेने न आशंसदित्यर्थः; परम् किन्तु दिवि स्वर्गे माल्यवन्तम् मालैव माल्यम् (चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ्) तद्वन्तम् रणे हतान् वीरान् वरीतुं गृहीतस्रजम् अमरीणाम् सुरसुन्दरीणां मण्डलम् निवहं बहु मेने आदृतवान् । सीतां झटिति त्यज, अन्यथा महाननर्थो भविष्यतीत्युक्तवन्तं माल्यवन्तं स्वमन्त्रिणमनादृत्य रणबद्धाभिलाषोरावणः सीतापरित्यागं कर्तुं नैच्छत्, किन्तु श्रीरामेण रणे निहतः सन् स्वर्गं गन्तुमेवैच्छदित्याशयः । यमकानुप्रासयोः संसृष्टिः । मालिनी वृत्तम् ॥ ३१ ॥

युद्धाभिलाषी रावण ने, सीता को छोड़ दीजिये—ऐसी नीतिपूर्ण सलाह देने वाले मन्त्री माल्यवान् का आदर नहीं किया किन्तु [युद्ध में वीरगति प्राप्त कर स्वर्ग में आने वाले वीरों का वरण करने के लिए] हाथ में माला

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिये खड़ी देवाङ्गनाओं का ही आदर किया ॥ ३१ ॥

अथ रामोऽपि कामोचितवेषविभीषणामात्यविदितरक्षोनगररक्षोदन्तो हृदन्तोपजातसमरसंरम्भधीरम्बुधिमेखलालङ्कारमणेर्लङ्कायाः प्राग्द्वारस्थाय प्रहस्ताय पर्यस्ताहितप्राणानिलं नीलं दक्षिणद्वाररक्षणोर्महोदरमहापार्श्वयोर्विश्वत्रयविजयधौरेयं तारेयं प्रत्यग्द्वारपालनाधिकृते पाकशासनजिते पराक्रममिव तनूमन्तं हनूमन्तमन्तर्व्यूहविहितरक्षाय विरूपाक्षाय रक्षः प्लवगर्क्षाधिपतीन्प्रतिनिधी[2]न्विधाय विधाय च सज्यं धनुरनुजेन समं समीकाभिमुखेन दशमुखेन गुप्तमुत्तरं गोपुरमुत्तरङ्गो बलैरुरुरोध ।

अथ रामोऽपीति । अथानन्तरं रामोऽपि, कामोचितवेषः इच्छानुकूलरूपधारणकुशलो यो विभीषणामात्यः विभीषणस्य अनलो नाम सचिवस्तेन विदितः ज्ञातः रक्षसां नगरस्य लङ्कापुरस्य रक्षोदन्तः रक्षावृत्तान्तो येन स तथोक्तः सन् हृदन्ते हृदयप्रदेशे उपजाता उत्पन्ना समरे युद्धे संरम्भधीः कोपबुद्धिर्यस्य स तथोक्तः ('संरम्भः संभ्रमे कोपे' इत्यमरः)। अम्बुधिः सागर एव मेखला परिवेष्टकत्वेन रसना यस्याः सा अम्बुधिमेखला पृथ्वी ('भूतधात्र्यब्धिमेखला' इति पृथ्वीपर्यायेष्वमरः) तस्या अलङ्कारमणेः भूषणभूतायाः लङ्कायाः प्राग्द्वारस्थाय पूर्वद्वारवर्तिने प्रहस्ताय तन्नाम्ने राक्षससेनापतये पर्यस्ताहितप्राणानिलम् हृतशत्रुप्राणवायुम् शत्रुक्षयकारिणमित्यर्थः, नीलम् नीलाख्यं वानरसेनापतिं दक्षिणद्वाररक्षिणोः दक्षिणद्वाररक्षकयोः महोदरमहापार्श्वयोः तन्नाम्नोः विश्वत्रयविजयधौरेयम् त्रैलोक्यविजेतारम् तारेयम् तारासूनुमङ्गदं प्रत्यग्द्वारपालनाधिकृते पश्चिमद्वाररक्षणे नियुक्ताय पाकशासनजिते इन्द्रजिते तनूमन्तम् मूर्तिमन्तं पराक्रममिव हनूमन्तम्, अन्तर्व्यूहम् व्यूहमध्ये विहितरक्षाय रक्षां कुर्वते विरूपाक्षाय तन्नाम्नेराक्षससेनापतये रक्षः प्लवगऋक्षाधिपतीन् रक्षोधिपतिं विभीषणम् प्लवगाधिपतिं सुग्रीवम् ऋक्षाधिपतिम् जाम्बवन्तं च (प्लवगऋक्षेत्यत्र 'ऋत्यकः' इति प्रकृतिभावः) प्रतिनिधीन् प्रतिभटान् विधाय कृत्वा धनुः स्वीयं चापं च सज्यम् समौर्वीकं विधाय कृत्वा च समीकाभिमुखेन युद्धोद्यतेन अनुजेन कनीयसा भ्रात्रा लक्ष्मणेन समं सह दशमुखेन रावणेन

१. प्लवंगम' इति पाठा० । २. 'विनिधाय' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुप्तम् सुरक्षितम् उत्तरं गोपुरम् द्वारं बलैः वानरसैन्यैः उत्तरङ्गः प्रवृद्धोत्साहः सन् उपरुरोध रुणद्धिस्म। पूर्वादिद्वारेषु रक्षाधिकृतैस्तैस्तै राक्षसवीरैः सह योद्धुं तान्तान् त्वेवीरानादिश्य सलक्ष्मणो रामः स्वयं रावणरक्षितमुत्तरद्वारमरौत्सी-दिति भावः।

इसके बाद इच्छानुकूल वेषधारी विभीषण के मन्त्री [अनल] से लङ्का की रक्षाविषयक सारी बातें मालूम् कर कोपयुक्त राम ने, पृथिवी के भूषण-स्वरूप लङ्कापुर के पूर्वी द्वार पर स्थित प्रहस्त के लिए शत्रुप्राणान्तक नील को, दक्षिण द्वार की रक्षा करने वाले महोदर और महापार्श्व के लिए त्रैलो-क्यविजेता अङ्गद को, पश्चिम द्वार की रक्षा में नियुक्त इन्द्रजीत के लिए मूर्तिमान् पराक्रमरूप हनूमान् को, भीतरी व्यूह की रक्षा करने वाले विरूपाक्ष के लिए विभीषण, सुग्रीव और जाम्बवान् को प्रतियोद्धा के रूप में नियुक्त कर, स्वयं धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर युद्धोद्यत लक्ष्मण के साथ, रावण द्वारा रक्षित उत्तर द्वार को वानरसेना लेकर घेर लिया।

अत्याकुलां हरिबलैरवलोक्य लङ्कां
दत्तार्गलेषु दशकन्धरकिंकरेषु।
आरक्षकैस्त्वरितमन्तकराजधान्या-
मुद्घाटिताभिरुदभावि कवाटिकाभिः॥ ३२॥

अत्याकुलामिति। कपिबलैः वानरसैन्यैः अत्याकुलाम् अत्यन्तसङ्कुलां लङ्काम् अवलोक्य दृष्ट्वा दशकन्धरकिंकरेषु रावणभृत्येषु दत्तार्गलेषु पिहितकपाटेषु सत्सु कपाटपिहितद्वारेष्वित्यर्थः। अन्तकराजधान्यां यमपुर्यां त्वरितम् तत्क्षणमेव कवाटिकाभिः कपाटैः आरक्षकैः द्वारपालैः उद्घाटिताभिः विमुक्तार्गलाभिः उद्भावि उद्भूतम्। लङ्कां प्रविश्य परितो वलन्तीं कपिसेनां दृष्ट्वा रावणभृत्या यदा स्वत्राणार्थं द्वाराणि पिहित-कपाटान्यकार्षुस्तदैव यमपुर्यां द्वारपाला राक्ष-सानां भाविमरणमालोक्य तेषां सुखेन प्रवेशाय सर्वाणि द्वाराणान्युद्घाटित-कपाटानि व्यधुरित्यर्थः। एतेन राक्षसानां भाविमरणं तेषां पापिष्ठानां यमपुर-प्रवेशनैयत्यं च व्यञ्जितम्। अत्र यमपुरीकवाटानामुद्घाटना सम्बन्धेऽपि तत्स-सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥३२॥

लङ्कापुरी को वानरसेना से सङ्कुल देख कर रावण के भृत्यों ने ज्यों ही द्वार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के कपाट बन्द कर कुण्डी लगा ली, त्यों ही यमपुरी में [उनके प्रवेश के लिए] द्वारपालों ने द्वारों के कपाट खोल दिये ॥ ३२ ॥

[1]तत्क्षणं लक्ष्मणाग्रजः सुग्रीवेण सह सुवेलाचलकूटमधिरूढस्त्रिकूटावनीधरचूडामणिं सिंहलद्वीपकमलकर्णिकां निर्माण[2]कौशलं विश्वकर्मणो निवेशदरीं निशाचरहरीणा[3]मनवरतबन्दीकृतामरपुरन्ध्रीबाष्पनदीमातृकोप[4]वनसीमान्तरां निरन्तरसेवासमागत[5]दिक्पालकुलमातङ्गमदाम्बुपङ्किलबाह्याङ्गणोत्सङ्गां लङ्कामवलोकमानस्तत्र[6]चैकत्र समुन्नतं सौधमधिवसन्तं संतमसमिव सदेहबन्धमन्तिकचरोदस्तविमलमुक्तातपत्रनि[7]भात्ततारकेण विभावरीपतिनेव सव्यमानं वैमानिकवधूविधूयमान[8] धवलचामरद्वंद्वशोभितमभितश्चलितमन्दाकिनीपरीवाहमिवाञ्जनाचलमखिलजगद्विजयवर्णावलीमतिनिर्णायकैरनेकावधमसीकाभिघातमग्नभग्नैरावणविषाणकुलिशाग्रै[9]रुत्कीर्णविशालवक्षःस्थलफलकमानीलतया लसच्छायमाच्छादिताभिनव[10]लोहितवस्त्पाटलपटं संध्यारागबन्धुरं कंधरमिव ददर्श दशकन्धरम् ।

तत्क्षणमिति । तत्क्षणम् तस्मिन् समये वानरबलैर्लङ्कापुरे सङ्कुले जाते लक्ष्मणाग्रजः श्रीरामः सुग्रीवेण सह सुवेलाचलकूटम् सुवेलगिरिशिखरम् अधिरूढः सन् त्रिकूटावनीधरचूडामणिम् त्रिकूटो नाम योऽवनीधरः पर्वतस्तस्य चूडामणिम् शिरोभूषणस्वरूपां त्रिकूटाचलोपरिसंस्थितामित्यर्थः, (रूपकालङ्कारः) सिंहलो नाम द्वीपविशेष एव कमलं तस्य कर्णिकाम् बीजकोशरूपाम् सिंहलद्वीपमध्ये तत्सारभूतत्वेन विद्यमानामित्यर्थः । विश्वकर्मणः विश्वकर्मेति नाम्ना प्रसिद्धस्य शिल्पिश्रेष्ठस्य निर्माणकौशलम् रचनाचातुरीम्, यस्या निर्माणे विश्वकर्मणा स्वसमग्रकौशलं प्रयुक्तं तस्मात्तद्विरचितेषु सर्वेषु पुरेषु रमणीयतमामित्यर्थः । निशाचराः राक्षसा एव हरयः सिंहास्तेषां निवेशदरीम् नियतनिवास-

---

१. 'तत्क्षणं च' इति पाठा० । २. 'कौशलीम्' इति पाठा० ।
३. 'अनारत' इति पाठा० । ४. 'उपवनसीमान्तां सीमान्तरात्' इति पा० ।
५. 'दिक्पालमातंग' इति पाठा० । ६. 'च' इति नास्ति क्वचित् ।
७. 'मिषात' इति पाठा० । ८. 'धवल' इति नास्ति क्वचित् ।
९. 'उद्गीर्ण' इति पाठा० । १० 'लोहितपटमापाटलसंध्या' इति पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुहाम् (इति रूपकम्) भयङ्करैर्बलशालिभी राक्षसैरध्युषितामित्यर्थः । अनवरतम् सततं बन्दीकृतानाम् कारागारे निक्षिप्तानाम् अमरपुरन्ध्रीणाम् सुरवनितानां बाष्पैः अश्रुभिर्नदीमातृकानि नद्यम्बुपालितानि उपवनसीमान्तराणि उद्यानप्रदेशान्तरालानि यस्यास्ताम्, बन्दीकृतसुरसुन्दरीबाष्पाम्बुप्रवाहसिच्यमानोद्यानमध्यप्रदेशामित्यर्थः । ('देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः । स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्' ॥ इत्यमरः) ॥ निरन्तरम् सततं सेवायै सेवां कर्तुं समागतस्य संप्राप्तस्य दिक्पालकुलस्य इन्द्रादिदिगीश्वरवृन्दस्य ये मातङ्गाः गजास्तेषां मदाम्बुभिः दानजलैः पङ्किलः कर्दमवान् बाह्याङ्गणोत्सङ्गः बाह्यचत्वरप्रदेशो यस्यास्तां तथोक्ताम् । लङ्कां नाम रावणपुरीम् अवलोकमानः अवेक्षमाणः, तत्र तस्यां लङ्कायां च एकत्र एकस्मिन् प्रदेशे समुन्नतम् अत्युच्छ्रितम् सौधम् प्रासादम् अधिवसन्तम् अधितिष्ठन्तं ('उपान्वध्याङ्वसः' इति कर्मत्वम्) सदेहबन्धम् धृतशरीरं सन्तमसम् गाढान्धकारमिवेत्युत्प्रेक्षा । अन्तिकचरैः भृत्यैः उदस्तम् उत्क्षिप्तं यद्विमलमुक्तातपत्रम् स्वच्छतरमौक्तिकच्छत्रं तन्निभात् तद्व्याजात् ('व्याजे निभे ना सदृशे त्रिष्वथो वाच्यलिङ्गकौ' इति नानार्थरत्नमाला) । सतारकेण अश्विन्यादिनक्षत्रयुक्तेन विभावरीपतिना रजनीशेन चन्द्रेण सेव्यमानम् (इति सापह्नवोत्प्रेक्षा) । विमानेन चरन्तीति वैमानिकाः देवाः ('चरति' इति ठक्) तेषां वधूभ्याम् ललनाभ्या विधूयमानम् पार्श्वद्वयेऽपि संवीज्यमानं यद् धवलचामरद्वन्द्वम् शुभ्रचामरयुगलं तेन शोभितम् । अभितः उभयतः, उभयपार्श्वयोरित्यर्थः, चलितौ प्रसृतौ मन्दाकिनीपरीवाहौ आकाशगङ्गाप्रवाहौ यस्य तं तथोक्तम् अञ्जनाचलम् अञ्जनानाम् कज्जलानाम् अचलम् गिरिमिव (इत्युत्प्रेक्षा) । अखिलजगताम् समस्तलोकनां या विजयवर्णावल्यः विजयज्ञापकाक्षरविन्यासाः तन्मतिनिर्णायकैः तद्भ्रान्तिजनकैरित्यर्थः, अनेकविधसमीकेषु असंख्यातयुद्धेषु अभिघातैः गाढप्रहारैः मग्नानि सुदूरं प्रविष्टानि अत एव भग्नानि त्रुटितानि यानि ऐरावणस्य इन्द्रगजस्य विषाणकुलिशाग्राणि दन्तरूपवज्राग्रभागाः तैः उत्कीर्णम् व्याप्तं विशालं वक्षःस्थलं फलकमिव यस्य तं तथोक्तम् । असकृदिन्द्रेण सह युध्यमानस्य रावणस्य वक्षःस्थले सुरेन्द्रगज ऐरावणः स्ववज्रोपमदन्ताग्रैर्गाढं प्रहृतवान् येन तानि दन्ताग्राणि तदुरसि सुदूरं प्रविष्टान्यत एव तत्रैव त्रुटितानि सम्प्रति तदसंख्यात-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

युद्धविजयप्रशस्ति वर्णावलिभ्रमं जनयन्ति, तादृशैस्तद्दन्ताग्रैर्दशाननस्य फलकमिव विशालं वक्षःस्थलमधुनाऽपि व्याप्तं दृश्यत इति भावार्थः। आनीलतया अतिश्यामतया लसच्छायम् समन्तात् प्रसरच्छत्रामप्रभम्। आच्छादितः धृतोऽभिनवलोहितवत्, प्रत्यग्रशोणितमिव पाटलः रक्तवर्णः पटः वस्त्रं येन तं तथोक्तं सन्ध्यारागेण सायंकालिकरक्तिम्ना बन्धुरम् सुन्दरं ('बन्धुरं सुन्दरे नम्रे' इत्यमरः)। कन्धरम्—कं जलं धरतीति कन्धरः मेघः तमिव दशकन्धरम् रावणं ददर्श दृष्टवान् (इत्युपमा)। 'विश्वकर्मणो निर्माणकौशलम्' इत्यत्र कौशलतत्कार्ययोर्भेदेऽप्यभेदोक्तेरतिशयोक्तिः। 'बन्दीकृतामरपुरन्ध्रीबाष्पनदीमातृकोपवनसीमान्तराम्' इत्यत्र 'निरन्तसेवासमागत०' इत्यत्र चासम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरित्येवमस्मिन् सन्दर्भे तत्तद्विविधालङ्काराणां संसृष्टिरिति बोध्यम्।

उस समय सुग्रीव के साथ सुवेल गिरि के शिखर पर चढ़कर राम ने त्रिकूटाचल की चूडामणि रूप, सिंहल द्वीप रूप कमल की कर्णिका (बीज कोष) के समान प्रतीत होने वाली, राक्षस रूप सिंहों की निवास गुहा रूप, विश्वकर्मा को साकार कारीगरी सी लगने वाली, बन्दी की गयीं सुरललनाओं के अनवरत अश्रुप्रवाह से नदीमातृक [अर्थात् सिञ्चित] हुए उद्यान प्रदेश वाली तथा निरन्तर [रावण की] सेवा करने के लिए आते रहते दिक्पालों के गजों के मद जल से पंकिल बाहरी आँगनों वाली लङ्का को देखते हुए, उस लङ्का के एक भाग में अत्यन्त ऊँचे प्रासाद पर स्थित रावण को देखा जो मूर्तिमान् अन्धकार-सा प्रतीत हो रहा था। उसके सिर पर भृत्यजन द्वारा ताना गया मुक्तालड़ियों से युक्त श्वेतच्छत्र ऐसा लगता था कि उसके ब्याज से मानों ताराओं समेत चन्द्रमा स्वयम् उसकी सेवा कर रहा हो। दोनों पार्श्व में सुरललनाओं द्वारा डुलाए जाते दोनों चमरों से शोभित वह, उस कज्जलगिरि-सा लग रहा था जिसके दोनों पार्श्व में मन्दाकिनी का प्रवाह बह रहा हो। उसका विशाल वक्षःस्थल ऐरावत के उन वज्रोपम दन्ताग्र भागों से खचित था जो [इन्द्र के साथ रावण द्वारा किये गये] अनेक युद्धों में [ऐरावत द्वारा रावण के वक्षःस्थल पर] गाढ प्रहार करने से उसमें काफी गहराई तक घुस गये और टूट कर उसी में रह गये थे अतएव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रावण की समस्त जगद्विजय की प्रशस्तिलिपि का भ्रम पैदा करते थे। श्याम वर्ण होने से उसके शरीर की श्यामलकान्ति चारों ओर छिट कर ही थी तथा ताजे रुधिर के समान लाल वस्त्र धारण किये हुए वह (रावण) सायंकालिक अरुणिमा से शोभायमान मेघ के समान शोभित हो रहा था।

कोपादुत्पतितस्तदा हरिपतिः कोटीरमुत्पाटितं
चक्रे नैर्ऋतनायकस्य सुदृढीचक्रे च वैभीषणम्।
युद्ध्वा [1]तत्प्रथमावमानकुपितेनैतेन बुद्ध्वा ततो
मायामस्य जगाम कोमलगुणग्रामं स रामं पुनः ॥ ३३ ॥

कोपादिति। तदा रावणदर्शनकाले, कोपात् तद्दर्शनजनितरोषात् उत्पतितः रावणाधिष्ठितसौधमुद्दिश्य सत्वरमुत्प्लुतो हरिपतिः वानरराजः सुग्रीवः, नैर्ऋतनायकस्य रक्षःपते रावणस्य ('नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इत्यमरः) कोटीरम् मुकुटम् उत्पाटितं चक्रे रावणशिरःप्रदेशादाकृष्य भुवि न्यपातयदित्यर्थः। वैभीषणम् विभीषणसम्बन्धिनम् ('तस्येदम्' इत्यण्) कोटीरं सुदृढीचक्रे स्थिरीकृतवान्। रावणमुकुटापहाररूपामङ्गलानुष्ठानेन रणे तस्मिन्नवश्यमेव हनिष्यमाणे विभीषणस्य भाविमुकुटस्थैर्यं निश्चितं चकारेत्यर्थः। तत्प्रथमावमानकुपितेन सुग्रीवकृततत्प्रथमावमानेन कुपितः सञ्जातकोपस्तेन एतेन रावणेन सह युद्ध्वा कियन्तं कालं नानाविधं युद्धं कृत्वा, ततस्तदनन्तरम् अस्य रावणस्य मायाम् मायासमाश्रयणमित्यर्थः। बुद्ध्वा परिज्ञाय स सुग्रीवः पुनः भूयः कोमलगुणग्रामम् सकलसद्गुणगणागारं रामं जगाम प्राप रामसमीपं पुनरायात इत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३३ ॥

रावण को देखते ही सुग्रीव [उसके प्रसाद की ओर] उछले और उन्होंने रावण का मुकुट [उसके सिर से] खींच कर भूमि पर गिरा दिया इससे [ऐसा रावण का मृत्युसूचक अमङ्गल कर] विभीषण के मुकुट को स्थिरता प्रदान की। [सुग्रीव के द्वारा ही] ऐसा पहिले-पहिल अपमान होने से रावण कुपित हो गया तब सुग्रीव ने [कुछ समय तक] युद्ध कर उसके बाद जब उन्होंने समझा कि अब यह युद्ध में माया का आश्रय लेना चाहता है, तब वे सकल सद्गुणनिधान राम के पास पुनः वापस आ गये ॥ ३३ ॥

---

१. 'च' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ततो [1]विरचिततत्साहसो[2]पालम्भविधिना दाशरथिना[3]संमन्त्र्य मन्त्रिभिः [4]समादिष्टः साधिष्ठभुजशौर्यशाली वालिनन्दनः सलीलं साल-[5]मुल्लङ्घ्य लङ्कां प्रविश्य निःशङ्को[6] नृशंसमिति शशंस निशिचरपतिम्।

तत इति। ततस्तदनन्तरम् विरचितः कृतस्तस्य सुग्रीवस्य साहसस्य रावणोपर्युत्पतनरूपाविचारकृत्यस्य उपालम्भविधिर्निन्दावचनरचना येन स तथोक्तस्तेन, 'त्वयाऽविमृश्येदं परमापदःपदं साहसं कृतम्। नैतादृशं कुर्वन्ति विवेकिनो राजानः' इत्यादिप्रकारेण सुग्रीवं निन्दितवता दाशरथिना रामेण मन्त्रिभिः सुग्रीवविभीषणादि सचिवैः सह संमन्त्र्य विचार्य समादिष्टः रावणाय मत्सन्देशं कथयितुं याहीत्याज्ञप्तः साधिष्ठभुजशौर्यशाली सर्वाधिकबाहुबलोपपन्नः ('अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इति बाढस्य साधादेशः) बालिनन्दनः अङ्गदः सलीलम् अनायासं सालम् प्राकारम् उल्लङ्घ्य अतिक्रम्य ('प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः) लङ्कां प्रविश्य निःशङ्कः निर्भयः सन् नृशंसम् पापिनं निशिचरपतिम् रावणम् इत्येवं वक्ष्यमाणप्रकारेण शशंस उक्तवान्।

इसके बाद सुग्रीव के इस साहस की निन्दा करके मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा कर राम ने अङ्गद को [रावण के पास सन्देश लेकर जाने का] आदेश दिया। आदेश पाते ही अमित बाहुबलशाली अङ्गद ने लीलापूर्वक [लङ्का की] चहार दीवारी लाँघ कर लङ्का में प्रवेश किया और निःशङ्क होकर पापी रावण से इस प्रकार कहा—

सोऽहं प्लवङ्गमपतेस्तनयस्त्वदीय-
निःश्वास[7]गन्धिनिजवालधिमण्डलस्य।
कालस्य दूषणखरत्रिशिरोमुखानां
पौलस्त्य! मां रघुपतेरवधेहि दूतम्॥ ३४॥

सोऽहमिति। पौलस्त्य हे रावण, सः प्रसिद्धोऽहम् अङ्गदः, त्वदीयानां त्वत्सम्बन्धिनां निःश्वासानाम् दुःखव्यञ्जकोच्छ्वासानां गन्धः आमोदः सम्बन्धो

१. 'विरचित' इति नास्ति क्वचित्। २. 'सोपलम्भ' इति पाठा०।
३. 'समामन्त्र्य' इति पाठा०। ४. 'समभादिष्ट' इति पाठा०।
५. 'उल्लङ्घयन्' इति पाठा०। ६. 'निःशङ्क' इति नास्ति क्वचित्।
७. 'रोधि' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाऽस्त्यस्येति त्वदीयनिःश्वासगन्धि, तादृशं च निजवालधिमण्डलस्वकीय-पुच्छवलयं यस्य तादृशस्य प्लवङ्गमपतेः वानराधीशस्य वालिनस्तनयः पुत्रोऽस्मि अहमङ्गदस्तस्य वानरपतेः पुत्रोऽस्मि येन त्वं स्वकीयलाङ्गूलवलयेन बद्धः सन् सततं दुःखश्वासान् विसृजसि स्म येन तल्लाङ्गूलमण्डलं त्वच्छ्वासगन्धैः सुवासितमजायतेत्यर्थः। तथा माम् अङ्गदं दूषणखरत्रिशिरसो मुखानि प्रधाना येषां तथोक्तानां राक्षसानां कालस्य संहारकस्य रघुपतेः रघुनाथस्य रामस्य दूतम् अवधेहि जानीहि। अहं तस्य रघुनायकस्य श्रीरामस्य दूतोऽस्मि यो दूषणखरप्रभृतीन् तव महावीरान् राक्षसान् हतवान्। एवं स्वपरिचयव्याजेनाङ्गदो रावणमर्माण्यकृन्तदिति भावः॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥३४॥

मैं उस वानरेन्द्र [वाली] का पुत्र हूँ, जिसने तुम्हें अपनी पूँछ से बाँध कर तुम्हारे निःश्वासों की गन्ध से अपनी पूँछ को वासित किया था तथा दूषण, खर, त्रिशिरा आदि राक्षसों के कालरूप रघुपति का दूत हूँ, यह जान लो॥

रक्षःपते ! रघुपतेर्नयनं तृतीय-
मास्कन्दनीयमिति हा मनुषे कलत्रम्।
अम्भोजमित्यलिकसंभवमक्षि शंभो-
र्मन्दाकिनीमधुकरस्तु यथा मदान्धः॥ ३५॥

रक्षःपत इति। रक्षःपते हे राक्षसेन्द्र ! रघुपतेः श्रीरामस्य तृतीयं नयनम् तृतीयनेत्ररूपं तत्तुल्यमित्यर्थः, (एतेन सीतायाः परमप्रेमास्पदत्वं परैस्तदनभिभवनीयत्वं च द्योत्यते) कलत्रम् पत्नी सीता आस्कन्दनीयम् आक्रमणीयमिति मनुषे अवगच्छसि, हा खेदस्यायं विषयो यद्रामप्रिया काचित् साधारणस्त्रीति त्वं जानासीत्यर्थः। यथा मदान्धः विवेकशून्यः मन्दाकिनीमधुकरः आकाशगङ्गासञ्चरणशीलो मधुपः, तु शब्दो व्यवच्छेदे, शम्भोः शिवस्य अलिकसंभवम् ललाटजम् ('ललाटमलिकं गोधिः' इत्यमरः) अक्षि अग्न्यात्मकं तृतीयं नेत्रम् अम्भोजम् कमलमिति (जानीत)। यथा कश्चिदाकाशगङ्गासञ्चरणशीलो भृङ्गस्तत्रत्यकनककमलमकरन्दपानाभ्यासवशान्मदान्धतया वर्णसाम्येन शिवस्य ललाटजं तृतीयं नेत्रं कमलं मत्वा तत्राक्रम्य शलभभावं यायात् तथैव रामप्रियां सीतां साधारणस्त्रीभावेन स्पृशन् त्वं नियतं विनष्टो भविष्यसीत्यर्थः। उपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥३५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हे राक्षसराज ! खेद का विषय है कि जैसे मदमत्त आकाशगङ्गा का भ्रमर कामारि शिव के ललाट के नेत्र को कमल समझ कर उस पर आक्रमण करे (और वैसा कर वह बिना जले नहीं बचता है) वैसे ही राम की तीसरी आँख की तरह प्यारी भार्या सीता को (सामान्य स्त्री की तरह) तुम आक्रमणीय समझ बैठे हो (अतः तुम्हारा विनाश अवश्यम्भावी है) ॥ ३५ ॥

किञ्च—

एकं हैहयसंभवात्परिभ[1]वान्म्लानं द्वितीयं पुन-
र्दैत्येन्द्राविनयात्तृतीयमपि मे ताताहिताद्वैकृतात् ।
इत्थं त्वच्चरितैः पितामह[2]मुखान्येकं विनैवाभवं-
स्तच्चैकं न विधेहि दाशरथये देया त्वया मैथिली ॥ ३६॥

किं च, एकमिति । हे दैत्येन्द्र रावण, हैहयसंभवात् कार्तवीर्यकृतात् परिभवात् कारागारनिक्षेपरूपावमानाद्धेतोः एकम् पितामहमुखं म्लानम् खिन्नं मत्कुलभूषणस्यैतस्य रावणस्य हैहयात् परिभवः संप्राप्त इति विचिन्त्य पितामहस्यैकं मुखं म्लानं जातमित्यर्थः । तथा तव अविनयात् लोकविद्वेषाचरणरूपदुर्विनयात् पुनः द्वितीयं मुखं म्लानम्, तृतीयमपि ब्रह्मणोमुखं च, मे ममाङ्गदस्य ताताहितात् तातेन पित्रा वालिना आहितात् कृतात् वैकृतात् पुच्छमण्डलेन निबध्य कक्षनिक्षेपणरूपाद्विकाराद्धेतोः, म्लानम् । इत्थमनेन प्रकारेण त्वच्चरितैः तव रावणस्यापकीर्तिकरैर्दुर्व्यापारैः, एकं मुखं विना हित्वैव त्रीणि मुखानि म्लानान्यजायन्त । तच्चैकम् अवशिष्टं मुखं सीताहरणेन म्लानं न विधेहि न कुरु, अतस्त्वया रावणेन मैथिली सीता दाशरथये रामाय देया प्रत्यर्पणीया ब्रह्मणो मुखचतुष्टये त्रीणि मुखानि तु म्लानान्येवाभूवन् , तेष्वेकमवशिष्टं मुखमपि रामप्रियां सीतामपहृत्य म्लानं मा कार्षीः, तत्तत्कालमेव रामाय सीतां समर्प्य ब्रह्मण एकमपि मुखं यथा म्लानिं न यायात्तथा कुर्या इति तात्पर्यम् । अत्र पितामहमुखानां म्लान्यसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्तेरसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥३६॥

[तुम्हारे कुल के मूलपुरुष ब्रह्मा के चार मुखों में] एक मुख तो उस समय म्लान हो गया जब सहस्रबाहु ने तुम्हें [जेल में रख कर] अपमा-

१. 'वाद्म्लानन्' इति पाठा० ।   २. 'मुखानि' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नित किया, दूसरा मुख तुम्हारे अविनीत आचरणों से म्लान हुआ, तीसरा मुख मेरे पिता के द्वारा तुम्हारे बाँधे जाने पर हुआ। इस तरह एक मुख को छोड़ शेष तीन तो म्लान हो ही चुके हैं, अब उस एक बचे हुए मुख को भी तुम [सीता को लङ्का में रख कर] म्लान न करो अतः [शीघ्र ही] हे दैत्येन्द्र ! सीता को राम के हाथों में दे दो ॥ ३६ ॥

कौबेरस्य तु पुष्पकस्य हरणं कैलासविक्षेपणं
दिक्पालाक्रमणं च जल्पसि मुहुः किंवा यशस्तावता
वेषं[1]संयमिनां विधाय विजने देवीं वने जानकीं
वेगादाहरता त्वयाद्य[2]रचितं वीरत[3]व्रस्योचितम् ॥ ३७ ॥

कौबेरस्येति। कौबेरस्य कुबेरसम्बन्धिनः ('तस्येदम्' इत्यण्) पुष्पकस्य पुष्पकाभिधानस्य विमानस्य हरणम् स्वायत्तीकरणम्, कैलासविक्षेपणम् हरनिवासशैलोत्तोलनम्, दिक्पालानामिन्द्रादीनामाक्रमणम् बलादभिभवं च मुहुः वारं वारं जल्पसि कथयसि, तावता तेन किं वा यशः कीर्तिः न किमपि यशः कीर्तिः न किमपि यश इत्यर्थः। ज्येष्ठभ्रातरं कुबेरं जित्वा तदीयपुष्पकहरणे तवायश एव तत्पूज्याभिभवस्यानौचित्यात्, कैलासचालनेऽपि स्वामिद्रोह जनितमयश एव, लोकं परिपालयतामिन्द्रादीनां दिक्पालानां पीडनेऽपि त्वदाततायित्वजनितमयश एव, तदित्थं त्वत्कृतैस्तैस्तैः कर्मभिर्निन्दैव द्योत्यत इत्यर्थः। संयमिनां संन्यासिनां वेषम् काषायवस्त्रदण्डधारणरूपं वेषं विधाय कृत्वा विजने निर्जने वने अरण्ये देवीं जानकीम् सीतां वेगात् रामभयेन जवात् आहरता अपनयता त्वया अद्य सम्प्रति वीरव्रतस्य उचितम् वीरपुरुषयोग्यं कार्यं रचितम् कृतम्। विजने वने श्रीरामासमक्षं संन्यासिवेषं कृत्वा सीतामपहरता त्वया वीरोचितं कार्यं न कृतमित्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३७ ॥

कुबेर के पुष्पक विमान का हरण, कैलास का उठाना तथा दिक्पालों पर किया गया आक्रमण आदि की बात बार-बार करते हो उतने से तुम्हें क्या यश मिलेगा ? हाँ, संन्यासियों का वेष बना कर निर्जन वन में देवी जानकी

---

१. 'संयमिनः' इति पाठा०। २. 'रचिताम्' इति पाठ०।
३. 'औचितम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का वेगपूर्वक अपहरण कर तुमने अपने-जैसे वीरों के लिए उचित कार्य किया (जिससे तुम्हारा यश संसार में अवश्य फैल गया) ॥ ३७ ॥

किं बहुना—

पूजोपहाररचनाय पुरा पुरारे-
शिछन्नेषु मूर्धसु नवस्ववशेषितं यत्।
देवस्तदद्य कुतुकी दशमं शिरस्ते
रामो बलिं रचयितुं रणदेवतायै ॥ ३८ ॥

किं बहुना, पूजोपहारेति। किं बहुना, अधिकेनोक्तेन नास्ति किमपि फलमित्यर्थः। पुरा पूर्वं पुरारेः शिवस्य पूजायामुपहाररचनाय बलिरूपेण समर्पणाय नवसु मूर्धसु मस्तकेषु छिन्नेषु कृत्तेषु यत् ते दशमं शिरःमस्तकम् अवशेषितम् अवशिष्टं कृतम्, तत् ते दशमं शिरः अद्य सम्प्रति देवो रामो रणदेवतायै युद्धाधिष्ठात्र्यै बलिम् उपहारं रचयितुम् कर्तुं कुतुकी उत्कण्ठितः (अस्ति)। पुरा शिव पूजने त्वया छित्त्वोपहृतेषु नवसु शिरस्सु यदवशिष्टं दशमं शिरस्तदद्य देवो रामो रणदेवतायै पूजोपहारंकर्तुं धृतकौतुकोऽस्तीत्यर्थः। जानकीं रामाय न प्रत्यर्पयसि चेत्तदा क्षिप्रमेव श्रीरामस्त्वां हनिष्यसीति फलितार्थः। 'बलिः पूजोपहारे च करे दैत्यान्तरेऽपि च' इति नानार्थरत्नमाला। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३८ ॥

अधिक क्या क',

पहिले, त्रिपुरारि की पूजा में उपहार के रूप में काट कर नव सिर चढ़ा चुके हो, उसके बाद जो एक सिर (चढ़ाने से) बच गया है, उस तुम्हारे दसवें सिर को अब स्वामी राम रणदेवता के लिए बलि बनाने को उत्सुक हैं (अतः सीता को शीघ्र लौटा दो और अपने को मरने से बचा लो।) ॥३८॥

[1]अनन्तरमरुन्तुदभाषणरोषणेन रावणेन [2]'गृह्यतां गृह्यतामयम्' इति सरयमादिष्टानवलम्बितभुजप्रकोष्ठानशरांश्चतुरोऽयं भुजंगानिव विहंगाधिपो गृहीत्वा [3]दिवि समुत्पत्य चैतान्निपात्य[4] पादेन [5]त[6]त्प्रसाद

१. 'एवमरुंतुभाषण' इति पा०। २. 'गृह्यतामयं निगृह्यतामिति' इति पा०।
३. 'भुवि निपात्य' इति पाठा०। ४. 'पादाहतेन' इति पाठा०।
५. 'तत्' इति नास्ति क्वचित्। ६. 'प्रासादशृङ्गमपि भिन्दन्' इति पाठा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शृङ्गं रिपोः शिरोभङ्गमिव विभिन्दन्नविन्द[1]न्कमप्यात्मनः प्रतिरथं[2]
पङ्क्तिकण्ठोपकण्ठभुवः पङ्क्तिरथभुवो विवेश निवेशम् ।

अनन्तरमिति । अनन्तरम् अङ्गदभाषणात् परतः, अरुन्तुदभाषणरोषणेन अङ्गदकृतमर्मविदारककथनसंजातकोपेन रावणेन गृह्यतां गृह्यतामयं वानरः (कोपे सम्भ्रमे च द्विरुक्तिः) इत्येवं प्रकारेण सरयम् सवेगम् आदिष्टान् आज्ञप्तान् अत एव अवलम्बितौ धृतौ भुजप्रकोष्ठौ अङ्गदकूर्पराधः प्रदेशौ यैस्तान् ('प्रकोष्ठः कूर्परादधः' इति शाश्वतः)। चतुरः चतुः संख्याकान् आशरान् राक्षसान्, चतुरो बुद्धिमानयमङ्गदः विहंगाधिपः गरुडो भुजङ्गान् सर्पानिव गृहीत्वा आदाय दिवि आकाशे समुत्पत्य उत्पुल्त्य च एतान् राक्षसान् निपात्य भुवि पातयित्वा पादेन पादप्रहारेणेत्यर्थः, तस्य रावणस्य प्रासादशृङ्गम् सौध शिखरं रिपोः शत्रो रावणस्य शिरोभङ्गम् मस्तकविदारणमिवेत्युत्प्रेक्षा. विभिन्दन् विदारयन् कमपि आत्मनः प्रतिरथम् प्रतिभटम् अविन्दन् अलभमानः पङ्क्तिकण्ठः दशग्रीवो रावणस्तस्योपकण्ठभुवः समीपप्रदेशात् पङ्क्तिरथः दशरथ स्तद्भुवः तत्तनूजस्य रामस्य निवेशम् शिविरं विवेश प्रविष्टः ।

इसके बाद [अंगद के] मर्मवेधक बचनों से कुपित रावण ने 'उसे पकड़ो पकड़ो' ऐसी आज्ञा वेग से देदी । उसकी आज्ञा पाकर चार राक्षसों ने अङ्गद के हाथ पकड़ लिये । चतुर अङ्गद उन राक्षसों को लिये हुये आकाश में उड़ गये जैसे गरुड़ सर्पों को लेकर आकाश में उड़ता है। उसके बाद अङ्गद ने उन राक्षसों को वहाँ से भूतल पर पटक दिया और पादप्रहार से रावण के प्रासादशिखर को शत्रु के सिर के समान विदीर्ण करते हुए किसी प्रतिभट को मुकाबिले के लिए न पाकर रावण के पास से वे राम के शिविर में चले आये ।

रघुतनयस्ततो विदितरावणदुर्विनयः
कुपितमना मनागिव दधे कुटिलां भ्रुकुटिम् ।
अथ परिवव्रुराशरपुरं हरयः सरयं
युगविगमे यथा युगपदम्बुधिसौर्वशिखाः ॥ ३९ ॥

रघुतनय इति । ततः अङ्गदप्रत्यागमनानन्तरम्, विदितः अङ्गदमुखाद्वि-

१. 'कमपि' इति नास्ति क्वचित् । २. 'पङ्क्तिकण्ठोपकण्ठभुवः' इति नास्ति क्वचित्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ज्ञातः रावणस्य दुर्विनयः सीताप्रत्यर्पणाभावरूपदुर्नीतिर्येन स तथोक्तः। अत एव कुपितमनाः कोपाविष्टहृदयः सन् रघुतनयः रघुनन्दनो रामः मनाक् किञ्चित् धीरोदात्तत्वादिति भावः। कुटिलाम् वक्रामिव भ्रूकुटिम् भ्रूभङ्गं दधे धृतवान्। अथानन्तरम् हरयः वानराः सरयम् सवेगं युगविगमे प्रलयकाले युगपत् एकवारमेव, अम्बुधिम् समुद्रम् और्वशिखाः यथा वाडवानलज्वाला इव आशरपुरम् राक्षसनगरं लङ्कां परिवव्रुः परिवेष्टितवन्तः। उपमाऽलङ्कारः। नर्दटकं वृत्तम् ॥ ३९ ॥

इसके बाद [अङ्गद के मुख से] रावण की [सीता को न लौटाने वाली] दुर्नीति को जान कर राम ने कुपितचित्त होते हुए अपनी भृकुटि थोड़ी-सी टेढ़ी की कि वानरों ने एक बारगी राक्षसपुरी लङ्का को घेर लिया, जैसे प्रलयकाल में वडवानल की ज्वालायें समुद्र को घेर लेती हैं ॥३९॥

ततो मद[1]परिप्लवप्लवगवीर[2]सांराविण-
क्षणक्षुभितकोणपप्रकरपाणिकोणाहतः।
रवैरधिकभैरवैरुपरुरोध रोदोन्तरं
तरङ्गितघनाघनस्तनितबन्धुभिर्दुन्दुभिः ॥ ४० ॥

तत इति। ततः लङ्कोपरोधात् परतः, मदपरिप्लवाः मदेन दर्पेण परिप्लवाः चञ्चला ये प्लवगवीराः कपिशूरास्तेषां सांराविणक्षणे कोलाहलसमये क्षुभितानाम् क्षोभं प्राप्तानां सम्भ्रान्तानामित्यर्थः, कोणपानां राक्षसानां यः प्रकरो निवहस्तस्य पाणिकोणेन हस्तैकदेशेन आहृतः ताडितः दुन्दुभिः रणभेरी ('राक्षसः कोणपः क्रव्याद्', भेरी स्त्री दुन्दुभिः पुमान्' इत्युभयत्राप्यमरः) अधिकभैरवैः अत्यन्त-भीषणैः, तरङ्गितानाम् अविच्छिन्नानां घनाघनानाम् वर्षुकमेघानां यत् स्तनितम् गर्जितं तद्बन्धुभिः तत्सदृशैः (अत एवोपमा) ('शक्रघातुकमत्तेभवर्षुकाब्दा घनाघनाः' इत्यमरः) रवैः शब्दैः रोदोन्तरम् द्यावापृथिव्योरन्तरालम् ('द्यावाभूमी च रोदसी' इत्यमरः) उपरुरोध आवृणोत्। वानरवीराणां कोलाहलं श्रुत्वा राक्षसाः संक्षोभवशात् स्वपाणिभिर्दुन्दुभिमताडयन्, तद्ध्वनिश्च सजलजलदगर्जितसादृश्यं भयङ्करत्वं च गच्छन् दिवं भूमिं च प्रसृततया व्याप्नोदिति भावः। अत्र दुन्दुभिशब्दस्य

---

१. 'परिप्लवत्' इति पाठा०। २. 'संरम्भण' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रोदोऽन्तरव्याप्त्य सम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलङ्कारः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ ४० ॥

इसके बाद दर्पोद्रेक से चञ्चल वानर वीरों के कोलाहल के समय घबड़ा कर राक्षससमुदाय के हाथों के एक भाग से ताडित दुन्दुभि ने अपने अत्यन्त भयङ्कर, तरङ्गित वर्षाकालिक मेघ के शब्द के समान शब्दों से आकाश तथा भूमि के अन्तराल को व्याप्त कर दिया ॥४०॥

तेन[1] समन्ततः कन्दलयता दलयतेव जगन्ति दुन्दुभिनिर्घोषेण रोषेण च प्रेर्यमाणा [2]बुद्धाः केसरिण इव गिरिकन्दरान्मन्दिरान्निर्गत्य गत्यन्तराक्षसंधायकान्यपत्यानीवानिमित्तान्य[3]विलोकमाना विमानाधिगतविबुधसीमन्तिनीभिः सह विजिहीर्षयेव प्रस्थानसमयपरिम्लानमुखीः सुमुखीरप्यगणयन्तो निरन्तरज्वलितकोपानलनयनकोणारुणालातशतनिपातवित्रासचलितनिजवारण[4]निवारणावेशपरवशा दिशामुख[5]मुखरशिवारवाम्रेडितक्ष्वेलिता[6]कुलकुलमहीध्रा गृध्रायतपक्ष[7]विक्षेपाकुलपताकानीकसमुत्तुङ्गशताङ्गसंघातपरिगता नितान्त[8]निशितकृतान्तदंष्ट्रापटलखरतरनखर[9]पट्टसप्रासपरशुगदा[10]मुसलपरिघद्रुघणधारिणो दारुणाजगरसंतानसंवीता इव विन्ध्यकूटा, व्यूढातिकरालकालायसकङ्कटा विकल्पा इव कल्पाम्बुदानां व्यक्तय इव कालरात्रेर्विवर्ता इव [11]कलि कालस्यापि भयंकराः संगराङ्गणमवतरन्तः, समीरयन्तो वीरवादाना[12]

---

१. 'तेन च' इति पाठा० । २. 'बुद्धाः' नास्ति क्वचित् ।
३. अनवलोकमाना' इति पाठा० ।
४. 'णानिवारणावेशपरवेशनिवाशयाः' इति पाठा० ।
५. मुखरित' इति पाठा० । ६. 'व्याकुलीकृत' इति पाठा० ।
७. 'विशेषकृतपताकानिकायपुनरुक्तसमुत्तुङ्ग' इति पाठा० ।
८. 'निशिताकृतान्तदंष्ट्राखरतर' इति पाठा० ।
९. 'पट्टीस' इति पाठा० । १०. 'मुसलशक्तितोमरमुद्गरपरिघद्रुघाण' इति पा० ।
११. 'कलिकालस्य च भयंकरः समराङ्गणमवतारयन्तः' इति पाठा० ।
१२. 'आदाय च' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दाय शरासनमासारैरिव गिरिमम्भोधरा दूरापातिभिः शिलीमुखर्वली-
मुखबलमखिलमक्षोभयन्त रक्षोभटाः।

तेनेति। समन्ततः सर्वतः कन्दलयता व्याप्नुवता जगन्ति त्रीनपि लोकान् दलयता विदारयता इव (इत्युत्प्रेक्षा) तेन दुन्दुभिनिर्घोषेण रोषेण वानरकोलाहलजनितकोपेन च प्रेर्यमाणाः प्रेरणां लभमानाः अत एव गिरिकन्दरात् पर्वतदरीभ्यः ('दरी तु कन्दरो वा स्त्री' इत्यमरः) बुद्धाः सुप्तोत्थिताः केसरिणः सिंहा इव (इत्युपमा) मन्दिरात् गृहेभ्यो निर्गत्य निष्क्रम्य गत्यन्तरायसन्धायकानि गमनविघ्नकराणि अनिमित्तानि दुःशकुनानि, अपत्यानीव गमनकाले निषेधवचनपादग्रहणादिना गमनविघ्नकारिणः शिशूनिव अविलोकमानाः अवश्यगन्तव्ये सति अवीक्षमाणा अगणयन्त इत्यर्थः विमानाधिगताः युद्धभूमौ हनिष्यमाणान् वीरान् वरीतुं विमानमारुह्यान्तरिक्षे प्रतीक्षमाणा या विबुधसीमन्तिन्यः सुरललनास्ताभिः सह विजिहीर्षया विहारेच्छयेव (इति हेतूत्प्रेक्षा) प्रस्थानसमये प्रयाणकाले परिम्लानमुखीः स्ववैधव्यशङ्कया विषण्णवदनाः, सुमुखीः निजसुन्दरीः प्रिया अपि अगणयन्तः अनाद्रियमाणाः, निरन्तरं ज्वलितः कोप एव अनलः वह्निर्येषां तादृशा नयनकोणाः नेत्रप्रान्ता एव अरुणालातशतानि रक्तवर्णोल्मुकशतानि ('अलातमुल्कं ज्ञेयं नपुंसकमिदं द्वयम्' इति प्रतापमार्तण्डः) तेषां निपातात् प्रसारात् वित्रासः भयम् तेन चलिताः अमार्गगता ये निजवारणाः स्वकीयगजास्तेषां निवारणावेशे निवारणे यथा मार्गप्रवर्तने यः आवेशः आग्रहातिशयस्तस्मिन् परवशाः प्रसक्ताः दिशामुखेषु दिगन्तरालेषु मुखराः शब्दायमानाः शिवाः क्रोष्ट्र्यः तासां रवाम्रेडितानि शब्दावृत्तयः ('शिवा हरीतकी क्रोष्ट्री, इति वैजयन्ती)। क्ष्वेलिताः सिंहनादाः ('क्ष्वेला तु सिंहनादः स्यात् इत्यमरः) तैः आकुलाः व्याप्ताः कुलमहीध्राः कुलपर्वता येषां ते तथोक्ताः, गृध्राणां ये आयताः विस्तृताः पक्षास्तेषां विक्षेपैः चालनैः आकुलानि युक्तानि पताकानीकानि पताकायुक्तसैन्यानि येषां ते तथोक्ताः तथा च समुत्तुङ्गाः अत्युन्नताः ये शताङ्गसंघाताः स्यन्दननिवहाः तत्परिगताः तदारूढाः, तथा नितान्तम् अत्यन्तं निशितानि तीक्ष्णानि कृतान्तदंष्ट्रापटलवत् यमदन्तफलकवत् खरतराणि अत्यन्ततीक्ष्णानि दुर्निवाराणि च यानि— नखराः नखाः, पट्टिसाः तीक्ष्णधाराः खड्गाः, प्रासाः कुन्तापरपर्यायाः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्षेपणीया आयुधविशेषाः, परशवः कुठाराः, गदाः, मुसलानि अयोग्राः काष्ठदण्डाः, परिघाः अयोमयदण्डाः, द्रुघणाः मुद्गरापरपर्याया अयोमया गदाः ('द्रुघणे मुद्गरघनौ' इत्यमरः) एतान्यायुधानि धारयन्तीति ते तथोक्ताः, दारुणाजगरसन्तानसंवीताः–दारुणाः भयङ्कराः ये अजगरसन्तानाः महाकायसर्पविशेषनिवहास्तैः सवीताः संवेष्टिताः विन्ध्यकूटाः विन्ध्यगिरिशिखराणीव (इत्युपमा)। व्यूढाः धृताः अतिकरालाः अतिभीषणाः कालायसकङ्कटाः श्यामलौहनिर्मितोरश्छदा यैस्ते तथोक्ताः ('उरश्छदः कङ्कटकः' इति वैजयन्ती) कल्पाम्बुदानाम् प्रलयमेघानां विकल्पाः प्रभेदा इव, कालरात्रेः प्रलयकालरात्रेः व्यक्तयः मूर्तय इव, कलिकालस्य कलियुगस्य विवर्त्ताः परिणामा इव, कालस्य यमस्यापि भयंकराः भयोत्पादकाः (इत्यतिशयोक्तिः) समराङ्गणम् युद्धभूमिम् अवतरन्तः प्रविशन्तः, वीरवादान् 'छिन्धि भिन्धि' इत्यादि वीरोचितशब्दाम् समीरयन्तः उच्चारयन्तः, रक्षोभटाः राक्षसशूराः शरासनम् धनुरादाय गृहीत्वा अम्भोधराः जलदाः आसारैः धारासम्पातैः ('धारासम्पात आसारः' इत्यमरः) गिरिम् पर्वतमिव (इत्युपमा) दूरापातिभिः अत्यन्तदूरगामिभिः शिलीमुखैः बाणैः अखिलम् समग्रं वलीमुखबलम् वानरसैन्यम् अक्षोभयन्त व्यचालयन्त ।

वह दुन्दुभिघोष चारों ओर फैलता हुआ ऐसा मालूम होता था कि तीनों लोकों को वह विदीर्ण कर रहा हो। उस दुन्दुभिघोष से तथा रोष से प्रेरित हो, पर्वत-कन्दरा से जगे हुए सिंह की तरह अपने-अपने घर से निकल कर राक्षसवीरों ने गमनबाधा उत्पन्न करने वाले बच्चों की तरह दुःशकुनों को अनदेखा कर दिया, प्रस्थान के समय उदासमुख वाली अपनी-अपनी प्रियतमा की, विमान पर चढ़कर आयी हुई देवाङ्गनाओं के साथ मानों विहार करने की इच्छा से उपेक्षा कर दी, निरन्तर जलते हुए कोपानल से लाल नयनकोण रूप सैकड़ों उल्मुक (लुकाठा) देखकर डर से (रास्ते से अलग) चले गये हाथियों को ठीक रास्ते पर लाने के लिए आग्रह में तत्पर, सभी दिशाओं में शब्द करने वाली सियारिनों के शब्दों से तथा सिंहनादों से कुल पर्वतों को आकुल करते हुए, गिद्धों के विस्तृत पंखों के चलते रहने से हिलते हुए पताका से युक्त सेना वाले, तथा रथों पर सवार, यमराज के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दाँतों के समान अतितीक्ष्ण दुर्निवार नख, पट्टस, भाले, फरसा, गदा, मुसल, परिघ, घन आदि शस्त्र धारण किये हुए, अजगरों से परिवृत विन्ध्यगिरि के शिखरों के समान, काले लोहे के कवच धारण करने से प्रलयकाल के मेघों के समान प्रतीत होने वाले, मूर्तिमान् कालरात्रि के समान दिखायी देनेवाले, यमराज को भी भयभीत कर देनेवाले इन राक्षसवीरों ने समरक्षेत्र में आकर, मारो काटो की आवाज करते हुए, धनुष लेकर दूर गिरने वाले बाणों से समस्त बानरसैन्य को उसी तरह संक्षुब्ध कर दिया जिस तरह मेघ अपनी जलधारा से पर्वत को क्षुब्ध कर देते हैं।

ततो धुतनखायुधस्तरुपरित्रुटत्तोमरः
शिलानिहतमुद्गरः शिखरिभिन्नमत्तद्विपः।
स्वपक्षविजयैषिभिर्दिवि सुरासुरै[1]रातुरै
रलक्षि हरिरक्षसामतिभयंकरः संगरः॥ ४१॥

तत इति। ततस्तदनन्तरम्, धुतनखायुधः—धुताः चालिताः नखायुधाः नखरूपास्त्राणि यस्मिंस्तथोक्तः, तरुभिः प्रहृतैः वृक्षैः परित्रुटन्तः विशीर्यमाणाः तोमराः दण्डविशेषा यस्मिंस्तथोक्तः, शिलाभिर्निहताः विनाशिताः मुद्गरा यस्मिन् स तथोक्तः शिखरिभिः प्रहतैः पर्वतैः भिन्नाः विदारिताः मत्ताः द्विपा गजा यस्मिन् स यथोक्तः, अत एव अतिभयङ्करः हरिरक्षसाम् वानराणां राक्षसानां च संगरः युद्धम्,—स्वपक्षविजयैषिभिः स्वस्वपक्षविजयाभिलाषिभिः आतुरैः व्यग्रैः दिवि व्योम्नि (स्थितैः) सुरासुरैः देवदानवैः अलक्षि दृष्टः। पृथ्वीवृत्तम्॥ ४१॥

इसके बाद बानरों और राक्षसों ने उस युद्ध में नखों को अस्त्ररूप में प्रयुक्त किया, वृक्षों के प्रहार में तोमरों को तोड़-ताड़ दिया, शिलाओं के प्रहार से मुद्गरों को विनष्ट कर दिया, पर्वतों से मत्तगजों को चूर-चूर कर दिया ऐसे भीषण युद्ध को अपने-अपने पक्ष की विजय चाहने वाले देवों और दानवों ने आकाश में अवस्थित होकर व्यग्रतापूर्वक देखा॥४१॥

क्रमेण च कुपितकपिवीर[2]दूरीकृतनैऋतवीर[3]भुजप्रतापानल इवास्तं

१. 'आकुलैः' इति पाठा०। २. 'विदूषित' इति पाठा०।
३. 'वीर' इति नास्ति क्वचित्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भजति [1]भानुमति, मथितायुधिकगलनाल[2]प्रणालीपरीवाहलोहितनदीपूर इव [3]दूरमन्तरितहरिदाभोगे संध्यारागे [4]समुदञ्चिते, विक्रान्तहरिनखाक्रान्तदन्तावलविपुलकुम्भस्थलमुक्तमुक्ताकलाप इव[5]विज्जृम्भमाणे वियति [6]तारागणे, रणरभसचलित[7]रथतुरगपदातिगजपदाहतविश्वंभरान्तरालजनुषि रजसीव भुवनमास्कन्दति तमसि, तामसीचरेष्विव [8]यामिनीविरहविहगेषु, आशरकरेष्विव सकोशेषु तामरसेषु दाशरथिबल इव प्रमदाकरे कुमुदाकरे ।

क्रमेण चेति । क्रमेण कालक्रमेण च कुपितैः सञ्जातक्रोधैः कपिवीरैः वानरशूरैः दूरीकृतः अपसारितः नैरृतवीराणाम् राक्षसशूराणां भुजप्रतापानलः बाहुपराक्रमवह्निः, तस्मिन्निव भानुमति सूर्ये अस्तं भजति अस्ताचलं गच्छति सति, एकतो वानरवीरैः पराजितानां राक्षसानां बाहुबलमस्तं गतम्, अपरतश्च सूर्योऽस्ताचलं गत इति भावः । मथितानि छिन्नानि आयुधिकानाम् शस्त्रोपजीविनां वीराणां यानि गलनालानि तान्येव प्रणाल्यः जलनिर्गममार्गाः तत्परिवाहाः तैः प्रवाहशाली यो लोहितनदीपूरः शोणितसरित्प्रवाहः तस्मिन्निव दूरम् सर्वत्र अन्तरितहरिदाभोगे अन्तरितः आच्छादितः हरिताम् दिशाम् आभोगः विस्तारो येन तस्मिन्, सन्ध्यारागे सायङ्कालिकेऽरुणमनि समुदञ्चिते प्रकटिते सति, छिन्नेभ्यो वीराणां कण्ठेभ्यः प्रणालीभ्य इव यथा निर्गत्य रक्तप्रवाहः सर्वत्र प्रसृतस्तथा सन्ध्यारागोऽपि दिङ्मण्डलं परितः प्रसृत इत्यर्थः । विक्रान्ताः विक्रमशालिनो ये हरयः वानरास्तेषां नखैः आक्रान्ताः विदलिता ये दन्तावलाः करिणस्तेषां विपुलकुम्भस्थलेभ्यः मुक्तो निर्गतो यो मुक्ताकलापः मौक्तिकनिकरस्तस्मिन्निव वियति व्योम्नि तारागणे नक्षत्रसमुदये विजृम्भमाणे उदयं गच्छति

१. 'भगवति भानुमति' मथितायुधयातुधानगल' इति पाठा० ।
२. 'प्रणालपरिवाहि' इति पाठा० । ३. 'विदूरम्' इति पाठा० ।
४. 'समुदञ्चिते' इति नास्ति क्वचित् ।
५. 'वियति विजृम्भमाणे' इति पाठा० । ६. 'ताराङ्गणे' इति पाठा० ।
७. 'गजतुरगपदातिपादाहतविश्वविश्वंभरा' इति पाठा० ।
८. 'यामिनीविरहबिहगेषु आशरवरेष्णिव सकोशेषु' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सति, रणरभसेन समरोत्साहेन चलितं यद्रथतुरगपदातिगजम् (सेनाङ्गतया द्वन्द्वैकवद्भावः) तस्य पदैः चरणैः आहतायाः मर्दितायाः विश्वम्भरायाः धरित्र्या अन्तरालात् तलात् जनुः उत्पत्तिर्यस्य तस्मिन् रजसि धूलाविव तमसि अन्धकारे भुवनम् जगत् आस्कन्दति आक्रान्तं कुर्वति सति, तत्र चतुरङ्गिण्याः पादैराहताद्भूतलादुत्थितेन रजसा यथा भुवनं व्याप्तं तथैवान्धकारेण भुवनं व्याप्तं जातमित्यर्थः। तामसीचरेषु राक्षसेष्विव यामिनिविरहविहगेषु चक्रवाकपक्षिषु सत्सु, तथा महाविनिपातप्रत्यासत्त्या निशाचराः शोकान्विता अभूवन् तथा विरहवेलाप्रत्यासन्नतया चक्रवाकाः शोकनिमग्नाः सञ्जाता इत्यर्थः। ('तमिस्रा तामसी रात्रिः' इत्यमरः) आशरकरेषु राक्षसहस्तेष्विव तामरसेषु कमलेषु सकोशेषु सकुड्मलेषु सत्सु - मुद्रितत्वात्, अन्यत्र खड्गभङ्गात् केवलतत्पिधानसहितेषु सत्सु, यथा राक्षसकराः खड्गभङ्गात् धृतपिधानतया सकोशा जातास्तथैव कमलानि मुद्रिततया सकोशानि जातानीत्यर्थः। ('कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इत्यमरः। दाशरथिबले श्रीरामसैन्य इव कुमुदाकरे कुमुदवने प्रमदकरे उल्लासभाजि सति, यथा रामसैन्यं लब्धहर्षमभूत् तथैव कुमुदवने विकसति सतीत्यर्थः। श्लेषसंकीर्णा पूर्णोपमा ।

क्रम से कुपित वानर वीरों के द्वारा दूर भगाये गये राक्षसों के भुजप्रतापनल के समान सूर्य भगवान् के अस्त हो जाने पर, वीरों के कटे हुए कण्ठरूप नाली से बहने वाले रक्तप्रवाह की तरह दिङ्मण्डल को व्याप्त करने वाले सन्ध्याराग के फैल जाने पर, वीर वानर सिंहों के नखों से विदारित मत्तगजों के विशाल कुम्भस्थल से निकले हुए मौक्तिकों के समान आकाश में तारागण के छिटक जाने पर, रणोत्साह से वेगपूर्वक चलने वाले रथ, घोड़े, पैदल सैन्य, हाथी (चतुरङ्गिणी सेना) के पैरों से मर्दित भूतल से उत्पन्न धूलि की तरह भुवन में अन्धकार के फैल जाने पर, [महाविपत्ति के समीपस्थ होने से] राक्षसों की तरह चक्रवाकपक्षियों के [विरहबेला आ जाने से] शोकाकुल होने पर, [खड्गभङ्ग के कारण केवल म्यान रहने से] सकोश राक्षसों के हाथों की तरह [मुद्रित हो जाने से] कमलों के सकोश (सकुड्मल) हो जाने पर, और राम सैन्य की तरह कुमुदवन के सोल्लास होने पर।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आसारधारां [1]विकिरञ्शराणामाश्वासयन्मानसमाशराणाम् ।
वीरो हरीन्संयति मेघनादो विव्याध हंसानिव मेघनादः ॥ ४२ ॥

आसारेति । शराणाम् बाणानाम्, अन्यत्रोदकानाम्, आसारधाराम् धारासम्पातपरम्पराम् ('धारासम्पात आसारः' इत्यमरः) विकिरन् विक्षिपन्, अन्यत्र प्रवर्षन् । आशराणाम् राक्षसानाम्, अन्यत्र तृष्णया शीर्यमाणानाम् चातकादिपक्षिविशेषाणाम्, मानसम् हृदयम् आश्वासयन् युद्धे भाविनं विजयं प्रति, अन्यत्र भाविवृष्टिं प्रति विश्वासयन्नित्यर्थः । वीरो मेघनादः मेघनादो नाम रावणपुत्रः, अन्यत्र मेघशब्दः संयति युद्धे हंसानिव हरीन् वानरान् विव्याध निजघान अन्यत्र खेदयामास । श्लेषसङ्कीर्णेयमुपमा । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

जैसे जल की धारा बहाता हुआ मेघशब्द तृष्णापीड़ित चातकादि पक्षियों के हृदय को आश्वस्त करता है और हंसों को व्यथित करता है, वैसे ही बाणों की वर्षा करते हुए मेघनाद ने राक्षसों को आश्वस्त कर वानर सैन्य को आहत किया ॥४२॥

रणे तदनु दारुणे रभससङ्गदो रावणे-
द्रुमेण महता[2]हताखिलधुरीणयानव्रजः ।
शितेन शतकोटिना शिखरिकूटमिन्द्रो यथा
[3]ममन्थ च रथं मनोरथमपि क्षणाद्रक्षसाम् ॥ ४३ ॥

रण इति । तदनु तदनन्तरम्, दारुणे भीषणे रणे संग्रामे, अङ्गदो महता विशालेन द्रुमेण वृक्षेण रभसम् वेगेन ('रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः) रावणेः रावणपुत्रस्य मेघनादस्य ('अत इञ्' इतीञ्) हताखिलधुरीणयानव्रजः आहतसमस्तरथवाहिघोटकसमुदयः सन् यथा इन्द्रः शितेन तीक्ष्णेन शतकोटिना वज्रेण शिखरिकूटम् पर्वतशृङ्गम्, रथम् मेघनादस्यन्दनं रक्षसाम् राक्षसानां मनोरथमपि विजयाभिलाषमपि क्षणात् क्षणमात्रेण ममन्थ बभञ्ज । ततो भीषणे युद्धे प्रवृत्तेऽङ्गदो महता वृक्षेण रथवाहिनोऽश्वान् संहत्य मेघनादस्य रथमपि बभञ्ज येन राक्षसा अपि भग्नमनोरथा जाताः, यथेन्द्रो वज्रेण

---

१. 'प्रकिरन्' इति पाठा० ।   २. 'हतरलथधुरीणयानव्रजम्' इति पाठा० ।
३. 'ममाथ' एति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर्वतशृङ्गं भिनत्ति । उपमाऽलङ्कारः । रथस्य रक्षसां मनोरथस्य च ममन्थेति तुल्यक्रियायामन्वयात्केवलप्रकृतगोचरा तुल्ययोगिता । इत्थं द्वयोः सङ्करः । पृथ्वीवृत्तम् ।। ४३ ।।

इसके बाद भीषण युद्ध छिड़ जाने पर अङ्गद ने विशाल वृक्ष का प्रहार कर मेघनाद के रथ के घोड़ों का संहार कर जैसे इन्द्र अपने तीक्ष्ण वज्र से पर्वत शिखर को भग्न करते हैं वैसे ही उसके रथ को और साथ ही राक्षसों के विजय-मनोरथ को भी भग्न कर दिया ॥४३॥

वियत्तले तदनु [1]निलीय मायया
स लक्षयन् रघुतनयं सलक्ष्मणम् ।
अजिह्मगानधिगतजिह्मगाकृती-
नमर्षतः समिति ववर्ष रावणिः ।। ४४ ।।

वियत्तल इति । तदनु रथभङ्गानन्तरम् रावणिः रावणपुत्रो मेघनादः मायया वियत्तले आकाशे निलीय निगूढतया स्थित्वा सलक्ष्मणम् लक्ष्मणसहितं रघुतनयं श्रीरामं लक्षयन् लक्ष्यीकुर्वन् अधिगतजिह्मगाकृतीन् प्राप्तसर्पाकारान् ('उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाशनः' इति सर्पपर्यायेष्वमरः) । अजिह्मम् अकुटिलं गच्छन्तीत्यजिह्मगाः शराः तान् अमर्षतः कोपात् समिति युद्धे ववर्ष । रामलक्ष्मणौ लक्ष्यीकृत्य नभस्तो मेघनादो नागपाशास्त्राणि प्रयुक्तवानित्यर्थः । रुचिरा वृत्तम्—'चतुर्ग्रहैर्यतिरुचिरा जभौ स्जगा' इति लक्षणात् ।।

इसके बाद मेघनाद माया द्वारा आकाश में जा छिपा और वहाँ से उसने राम और लक्ष्मण को लक्ष्य कर युद्ध में सर्परूपधारी बाणों (अर्थात् नागपाश शास्त्रों) की वर्षा करना प्रारम्भ किया ।। ४४ ।।

लक्ष्मणानुगतं रामचन्द्रं राहुभयंकराः ।
बबन्धुर्दारुणतमा बन्धच्छिदममी शराः ।। ४५ ।।

लक्ष्मणेति । लक्ष्मणानुगतम् लक्ष्मणेन सौमित्रिणा अनुगतम्, अन्यत्र लक्ष्मणा चिह्नेन कलङ्केन अनुगतम्, बन्धच्छिदम् जन्ममरणरूपबन्धनस्य छेत्तारं रामचन्द्रम् रामरूपं चन्द्रं राहुवद्भीषणाः दारुणतमाः अतिकठोराः अमी मेघनादप्रयुक्ताः शराः नागपाशबाणाः बबन्धुः पर्यवेष्टन्त । रामश्चन्द्र इवेत्युपमित-

१. 'विलीय' इपि पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समासः, राहुभयंकरा इति समस्तोपमालिङ्गात् । श्लेषसङ्कीर्णोपमा । 'बन्धच्छिदं बबन्धुः' इति विरोधाभासोऽपि गम्यते ॥ ४५ ॥

राहु के समान भयंकर और अत्यन्त दारुण उन बाणों (नागपाश बाणों) ने लक्ष्मणयुक्त (कलङ्कयुक्त) चन्द्र के समान राम को जो दूसरों के बन्धन (भवपाश) को छुड़ाते हैं, बांध लिया ॥ ४५ ॥

यावद्याति पुरं पुरंदरजयी यावद्दशास्याज्ञया
सीतापुष्पकवासिनी रघुसुतौ दृष्ट्वा पुरः शोचति ।
तावत्ते[1]दलिताः सुपर्णगरुतां वातेन वाताशना
दीप्तौ चन्द्रदिवाकराविव तमोमुक्तौ ततो राघवौ ॥ ४६ ॥

यावदिति । यावत् पुरन्दरजयी इन्द्रजित् (रामलक्ष्मणौ नागपाशेन बद्ध्वाऽऽत्मानं कृतकृत्यं मत्वा) पुरम् लङ्कापुरं याति गच्छति, यावच्च दशास्याज्ञया दशास्यः रावणस्तस्य आज्ञया 'यत्प्राप्त्यशयेयं वर्तते तावेवं निबद्धौ प्रदर्शयत' इत्यादेशेन (राक्षसैः आनीता) पुष्पकवासिनी पुष्पकविमानारूढा सीता पुरः अग्रे रघुसुतौ रामलक्ष्मणौ दृष्ट्वा शोचति विषीदति भग्नो ममोद्धारा-भिलाष इति विभावयति तावत् ते नागपाशतया प्रयुक्ताः वाताशनाः सर्पाः सुपर्णगरुताम् गरुडपक्षाणां वातेन वायुना दलिताः हताः (इति वेगातिशयोक्तिः) ततस्तदनन्तरम् राघवौ रामलक्ष्मणौ तमोमुक्तौ राहुमुक्तौ ('राहौ ध्वान्ते गुणे तमः' इत्यमरः) चन्द्रदिवाकरौ चद्रसूर्याविव दीप्तौ प्रकाशितौ (जातौ) उप-माऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४६ ॥

जब तक इन्द्रजित अपने नगर को गया और जब तक रावण की आज्ञा से पुष्पक विमान पर आरूढ़ सीता सामने राम और लक्ष्मण को बँधे देख कर शोक करती हैं तब तक गरुड के पंखों की हवा से नागपाश के रूप में प्रयुक्त वे सर्प मार दिये गये और राम-लक्ष्मण राहु से मुक्त चन्द्र-सूर्य की तरह प्रकाशित हो गये ॥ ४६ ॥

द्वारे तदनु द्वयोश्च बलयोरुज्जृम्भमाणे रणे
धूम्राक्षं भुजतः प्रकम्पनमथ द्वेधा व्यधान्मारुतिः ।
तारेयोऽपि च वज्रदंष्ट्रमचलान्नीलः प्रहस्तं बला-
त्तत्सर्वं दशकंधराय चकितैरुक्तं च नक्तंचरैः ॥ ४७ ॥

1. 'गलिताः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दुर्वार इति। तदनु नागपाशमोक्षात् परतः, द्वयोश्च बलयोः वानरराक्षस-सैन्ययोः दुर्वारे निवारयितुमशक्ये रणे युद्धे उज्जृम्भमाणे प्रवर्धमाने सति मारुतिः मारुतपुत्रो हनूमान् ('अत इञ्' इतीञ्) धूम्राक्षम् तन्नामानं राक्षस-सेनापतिम् अथ प्रकम्पनं नाम प्रधानयोधम् भुजतः बाहुना भुजक्षितपर्वतादि प्रहारेणेत्यर्थः द्वेधा व्यधात् विदारितवान्। तारेयः तारापुत्रोऽङ्गदोऽपि ('स्त्रीभ्यो ढक्' इति ढक्) अचलात् पर्वतप्रहारात् वज्रदंष्ट्रं नाम राक्षसयोधम्, नीलो नाम वानरसेनानायकः बलात् स्वबाहुपराक्रमात् प्रहस्तम् तदाख्यं रावण-सचिवं च द्वेधा व्यधात्, तत्सर्वम् धूम्राक्षादिनिधनवृत्तं चकितैः आश्चर्यान्वितैः नक्तंचरैः राक्षसैः दशकन्धराय रावणाय उक्तम् निवेदितं च ॥ ४७ ॥

इसके बाद वानरों और राक्षसों की सेनाओं में घनघोर युद्ध छिड़ गया तब हनूमान् ने अपने बाहुबल से धूम्राक्ष और प्रकम्पन को मार गिराया तथा अङ्गद ने वज्रदंष्ट्र को पर्वत के प्रहार से एवं नील ने प्रहस्त को अपने भुज-पराक्रम से मौत के घाट उतारा। यह सारा समाचार आश्चर्य चकित राक्षसों ने जाकर रावण को बता भी दिया ॥ ४७ ॥

अथ तदानीमनीकिनीनाथवध[1]जनितकोपोदयादायोधनोत्कण्ठो दश-कण्ठः सकलजगदण्डभरित[2]भयानकजयानकनिनदबधिरिताशेषशेषाहि-लोचनो रोचिष्णुजिष्णुकोदण्डधरः सलिलधर इव सुमेरुश्रृङ्गसमुत्तुङ्गं रथमलंकुर्वन्सर्वतश्चलितसकलचतुरङ्ग[3]संघातया लङ्कयेव स्वयमनु-गम्यमानः क्रमादतिक्रम्य पुरतोरणं पुरतो रण[4]प्रचलितमालोकयन्नि-खिलमपि [5]कपिकुलम्।

अथेति। अथ धूम्राक्षादिवधानन्तरम्, तदानीम् तस्मिन् समयेअनीकिनी-नाथानाम् धूम्राक्षादिसेनापतीनां वधेन विनाशेन जनितकोपोदयात् उत्पन्न-क्रोधाधिक्यात् आयोधनोत्कण्ठः रणोत्सुकः दशकण्ठः रावणः सकलजग-दण्डेषु समस्त-ब्रह्माण्डेषु भरितः व्याप्तो भयानकः भीषणो यो जयानकनिनदः जयदुन्दुभिनिर्घोषस्तेन बधिरितानि बधिरीकृतानि अशेषाणि सकलानि शेषाहेः

१. 'जनित इति नास्ति क्वचित्। २. 'जयानकभयानक' इति पाठा०।
३. संगतया' इति पाठा०। ४. 'चलित' इति पाठा०।
५. 'वलीमुखबलम्' इति पाठा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शेषनागस्य लोचनानि चक्षूंषि येन स तथोक्तः (शेषनागस्य चक्षुःश्रवस्तया नेत्रबधिरीभाव उपपद्यते) अत्रोक्तार्थाभिसम्बन्धाभावेऽपि सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः । रोचिष्णुजिष्णुकोदण्डधरः दीप्यमानजैत्रधनुर्धरः अत एव दीप्यमानेन्द्रचापशोभाशाली जलधरः श्याममेघ इव सुमेरुशृङ्गम् सुमेरुगिरिशिखरमिव समुत्तुङ्गम् अत्युन्नतम् रथमलंकुर्वन् रथमारुढः तथा सर्वतः समन्तात् चलितः युद्धाय प्रस्थितः सकलः समग्रश्चतुरङ्गसङ्घातः हस्त्यश्वरथपदातिरूपचतुरङ्गबलं यस्याः तया लङ्कयेव स्वयमनुगम्यमान इव (इत्युत्प्रेक्षा) क्रमात् कालक्रमेण पुरतोरणम् नगरबहिर्द्वारम् ('तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः) अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य पुरतः अग्रे रणप्रचलितम् युद्धार्थं प्रधावत् अखिलम् समस्तम् कपिकुलम् वानरसैन्यम् आलोकयत् दृष्टवान् ।

इसके बाद, उस समय सेनापति के वध से रावण को बहुत अधिक क्रोध पैदा हुआ और वह युद्ध करने के लिए उत्सुक हो उठा। उसने सकल ब्रह्माण्ड में व्याप्त भयानक जयभेरी के शब्द से शेषनाग के समस्त नेत्रों को (जो उसके कानों का काम करते हैं) बधिर बना दिया। उसने देदीप्यमान जिष्णु का दण्ड (जय शील धनुष) धारण किया और वह सुमेरु शिखर के समान ऊँचे रथ पर आरूढ हो गया अतएव उस समय जिष्णुकोदण्ड (इन्द्र धनुष) से युक्त सुमेरु शिखर पर स्थित श्याममेघ की तरह सुशोभित हो उठा। उसके चारों ओर हाथी, घोड़े, रथ और पदाति रूप चतुरंगिणी सेना चल रही थी, मानों उस सेना के रूप में साक्षात् लङ्का स्वयम् उनका अनुगमन कर रही हो। इस प्रकार उस रावण ने नगर का बाहरी द्वार पार करके युद्ध के लिए आती हुई समस्त वानर सेना को देखा।

जेतारमाहवमुखे दशदिक्पतीनां
दृष्ट्वा पुरो दशमुखं रघुनन्दनस्य ।
श्लाघावशेन न चचाल शिरः[1]परं त-
त्सव्येतरं भुजशिरोऽपि समीक्ष्य लक्ष्यम् ॥ ४८ ॥

जेतारमिति । आहवमुखे समराग्रे युद्धक्षेत्र इत्यर्थः, दशदिक्पतीनाम् इन्द्रादिदशदिक्पालानां जेतारम् विजयिनम् दशमुखम् रावणं पुरः अग्रे

---

१. 'परन्तु' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृष्ट्वा विलोक्य श्लाघावशेन आदरेण रघुनन्दनस्य श्रीरामस्य शिरः मस्तकम् (एव) न चचाल न धुतम्, परम् किन्तु तत् प्रसिद्धपराक्रमं सव्येतरम् दक्षिणं भुजशिरः भुजाग्रमपि लक्ष्यं वेध्यं समीक्ष्य दृष्ट्वा चचाल शरचापव्यापारतत्परोऽभूत्। युद्धक्षेत्रे इन्द्रादिदशदिक्पालविजेतारं रावणमग्रे विलोक्य तत्प्रशंसायां श्रीरामस्य केवलं शिर एव न चलितम्, अपितु लक्ष्यं विलोक्य झटिति तद्दक्षिणबाहुरपि शरप्रयोगतत्परोऽजायतेत्याशयः। एतेन रामस्य गुणज्ञत्वं महावीरत्वं च सूचितम्। अत्र शिरसो भुजशिरसश्च चलनरूपैकधर्मावच्छिन्नतया केवलप्रकृतगोचरा तुल्ययोगिता। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४८ ॥

युद्ध क्षेत्र में दस दिक्पालों के विजेता रावण को सामने देखकर आदरवश राम का सिर ही नहीं चला (हिला), अपितु लक्ष्य को सामने देखकर उनका दाहिना हाथ भी [बाण चलाने के लिए] चल पड़ा [उद्यत हो गया] ॥ ४८ ॥

अथ मदगर्जितैरधिकतर्जितदिक्करिभि-
र्दशवदनस्तदा दशदिगन्तरमन्तरयन्।
समरमुखे सखेलपदचङ्क्रमतो विदधे
हरिकुलमाकुलं जलधिमादिवराह इव ॥ ४९ ॥

अथेति। अथानन्तरम्, तदा तस्मिन् काले, दशवदनः रावणः, अधिकमत्यन्तं तर्जिताः भीषिता दिक्करिणः दिग्गजा यैस्तादृशैः मदगर्जितैः गर्वप्रयुक्तसिंहनादैः दशदिगन्तरम् दशदिगवकाशान् अन्तरयन् आच्छादयन् आपूरयन्नित्यर्थः, समरमुखे रणक्षेत्रे सखेलपदचङ्क्रमतः सलील-विचित्रपादविन्यासात् जलधिम् सागरमादिवराहः वराहावतारो भगवानिव, हरिकुलम् वानरनिबहम् आकुलम् क्षुब्धं विदधे कृतवान्। यथाऽऽदिवराहो भगवान् हरिः स्वभीषणघुर्घुरध्वनिभिः सलीलसञ्चरणैश्च समुद्रं क्षोभयामास तथा रावणोऽपि दिग्गजान् भीषयद्भिः स्वसिंहनादैः सविलासपदचङ्क्रमैश्च वानरसैन्यं क्षुब्धं कृतवानित्युपमा। 'अन्तरयन्' इत्यत्र अन्तर्धानार्थात् अन्तरशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इतिणिच्। तदन्ताल्लटः शत्रादेशः। अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धि भेदतादर्थ्ये' इत्यमरः। नर्दटकं वृत्तम् ॥ ४९ ॥

इसके बाद दिग्गजों को अत्यन्त त्रस्त कर देने वाले अपने गर्वपूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिंहनादों से दसों दिशाओं को भरते हुए रावण ने अपने सविलास विचित्र पादन्यास (पैंतरे) से वानरों को उसी तरह आकुल कर दिया जिस तरह आदि वराह ने अपने सवेग सञ्चरण से समुद्र को क्षुब्ध कर दिया था ॥ ४९ ॥

अनन्तरमनीकास्कन्दकन्दलितामर्षं वर्षन्तं गिरीन्हरीणामधिपतिमतिनिष्ठुरेण मुष्टिना गाढम[1]भिघ्नन्तं हनूमन्त[2]ममन्दतरलाघवाक्रान्तध्वजकिरीटाञ्चलं नीलमपि [3]वानरसेनापतिं,निखिलमपि वानरबलं, निखिलजगज्जिता महता बलेन वातूल इव [4]तूलराशिमपसारयन्नविरतशरासारवर्षिण[5]मभ्यमित्रीणं सौमित्रिमपि शक्त्या [6]महत्या गाढमुरसि विव्याध क्रव्यादाधिपतिः ।

अनन्तरमिति । अनन्तरम् तस्मात् परतः, अनीकास्कन्दनेन वानरसेनाकुलीकरणेन कन्दलितः उत्पन्नः अमर्षः क्रोधो यस्य तं तथोक्तम्, अत एव च गिरीन् पर्वतान् वर्षन्तम् रावणोपरि पातयन्तं हरीणाम् वानराणाम् अधिपतिम् स्वामिनं सुग्रीवम्, अतिनिष्ठुरेण समधिककठोरेण मुष्टिना गाढम् अतिदृढम् अभिघ्नन्तम् प्रहरन्तम् हनूमन्तम्, अमन्दतर-लाघवेन समधिक-चङ्क्रमणपाटवेन आक्रान्तम् निजाक्रमणविषयीकृतं ध्वजकिरीटाञ्चलम् ध्वजाग्रमुकुटप्रान्तो येन तम् वानरसेनापतिं नीलमपि, निखिलम् समस्तं वानरबलम् वानरसैन्यमपि निखिलजगज्जिता विश्वजिता महता बलेन पराक्रमेण, तूलराशिम् वातूलः वात्येव अपसारयन् दूरीकुर्वन् क्रव्यादाधिपतिः राक्षसेन्द्रो रावणः अविरतशरासारवर्षिणम् निरन्तर-बाणधारां जलधारामिव वर्षन्तम् अभ्यमित्रीणम् शत्रुभूतं सौमित्रिम् लक्ष्मणमपि महत्या शक्त्या ब्रह्मदत्तयाऽसाधारणया शक्त्या शक्त्याख्यास्त्रविशेषेण उरसि वक्षःस्थले गाढम् अतिदृढं विव्याध जघान । ('सोऽभ्यमित्र्योऽभ्यमित्रीयोऽप्यभ्यमित्रीण इत्यपि' इत्यमरः) ।

---

१. 'अभिनिघ्नन्तम्' इति पाठा० ।

२. 'अमन्दलाघव' इति पाठा० ।

३. 'वानरसेनापतिं निखिलमपि वानरबलम्' इति नास्ति क्वचित् ।

४. 'तूलजालं कपिकुलमपसारयन्' इति पाठा० ।

५. 'अभ्यमित्रीणसौमित्रिम्' इति पाठा० ।

६. 'महत्या' इति नास्ति क्वचित् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके बाद वानर सेना पर आक्रमण होने से कुपित होकर पर्वतों की वर्षा करने वाले सुग्रीव को, अत्यन्त कठोर मुष्टि से प्रहार करने वाले हनुमान् को, अत्यन्त तेजी से उछाल लगाने की पटुता से ध्वजाग्र और मुकुट पर आक्रमण करने वाले वानर सेनापति नील को तथा सारी वानर सेना को अपने जगद्विजेता पराक्रम से, जैसे रूई के ढेर को आँधी दूर भगाती है, उसी तरह दूर भगाते हुए रावण ने निरन्तर जलधारा की तरह वाण वर्षा करने वाले, वीरतापूर्वक शत्रु का मुकाबिला करने वाले (अभ्यमित्रीण) लक्ष्मण के छाती में असामान्य शक्ति (अस्त्रविशेष) से प्रहार किया।

अवकीर्य दाशरथिरश्रुझरैरनुजं पुलस्त्यतनुजं च शरैः।
युगपद्व्यधात्करुणवीररसौ युधि शोकहर्षशबलं च बलम् ॥ ५० ॥

अवकीर्येति। दाशरथिः श्रीरामः अश्रुझरैः अश्रुप्रवाहैः अनुजं लघुभ्रातरं लक्ष्मणम्, तथा शरैः बाणैः पुलस्त्यतनुजम् पुलस्त्यकुलोद्भवं रावणं च अवकीर्य आच्छाद्य, शक्तिविद्धं लक्ष्मणं प्रति रुदित्वा रावणं च शरैर्विद्ध्वेत्यर्थः। युधि रणे युगपत् समकालमेव करुणवीररसौ शोकस्थायिनं करुणरसं तथा चोत्साहस्थायिनं वीररसं च व्यधात् अकरोत्, बलम् कपिसैन्यं राक्षससैन्यं च शोकहर्षशबलम् शोकहर्षयुक्तं च व्यधात् अकरोत्। रामस्य रोदनेन कपिसैन्ये शोकः, राक्षससैन्ये हर्षश्च तथा रावण-प्रहरणेन कपिसैन्ये हर्षः, राक्षससैन्ये शोकश्च प्रसृतस्तदित्थं सेनाद्वयमपि शोकहर्षशबलं जातमिति भावः। प्रमिताक्षरा वृत्तम्। 'प्रमिताक्षरा सजससैः कथिता' इति लक्षणात् ॥ ५० ॥

राम ने आँसू की झड़ियों से [शक्तिविद्ध] अनुज लक्ष्मण को तथा बाणों से पुलस्त्यनन्दन रावण को आच्छादित कर एक साथ ही युद्ध में करुण और वीर रस का संचार कर दिया और ऐसा करके [दोनों] सैन्य को शोक और हर्ष से संवलित कर दिया [अर्थात् राम की शोचनीय दशा देखकर जहाँ वानर दल में शोक छा गया वहीं राक्षस दल में हर्ष का प्रसार हो गया किन्तु रावण को बाणों से विद्ध देखकर जहाँ राक्षस दल में शोक छा गया वहीं कपिदल में हर्ष की लहर दौड़ गयी, इस प्रकार दोनों दलों को हर्ष और शोक का एक साथ अनुभव हुआ] ॥ ५० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आधूय मोहमहितोन्मथनाय याव-
त्सौमित्रि[1]रुन्मिषति संयति तावदेव ।
पौलस्त्यमेष परिभूय परं तदीयान्
प्राणान्मुमोच दयया न मुमोच बाणान् ॥ ५१ ॥

आधूयेति । सौमित्रिः लक्ष्मणो यावत् मोहम् मूर्च्छाम् आधूय निरस्य संयति युद्धे अहितोन्मथनाय शत्रुसंहाराय उन्मिषति अवबुध्यते, तावत् तदानीमेव एषः श्रीरामः [शरैः] पौलस्त्यम् रावणं परम् अत्यधिकं पराभूय तिरस्कृत्य तदीयान् रावणसम्बिन्धिनः प्राणान् मुमोच तत्याज, दयया कृपापरवशतया [तस्मिन् पुनः] बाणान् न मुमोच न प्रयुक्तवान् । यावल्लक्ष्मणः संज्ञां लब्ध्वा पुनर्युद्धे प्रवर्तते तावद्रामः शरैः पौलस्त्यं रावणं परमभिभूय दयापारवश्येन जीवन्तमेव तं तत्याजेति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

जब तक लक्ष्मण मूर्च्छा त्याग कर शत्रुसंहार के लिये युद्ध में प्रवृत्त हों, तब तक राम ने [बाणों से] रावण की बड़ी दुर्दशा कर डाली और उन्होंने दयावश उसके प्राणों को छोड़ दिया [उसके बाद फिर उस पर] बाण नहीं चलाये ॥ ५१ ॥

प्राप्य तत्प्रथमं युद्धे पराजयमुदेजयन् ।
दशाननः पुरीं प्राप दिनदीपदशाननः ॥ ५२ ॥

प्राप्येति । दशाननः रावणः युद्धे तत्प्रथमम्—स चासौ प्रथमश्चेति तत्प्रथमस्तम् आदिमम् पराजयम् प्राप्य लब्ध्वा उदेजयन्—उदेजनमित्युदेजः उत्कम्पः ('भावे' इति घञ्) उदेजं करोतीत्युदेजयन् उत्कम्पं कुर्वन्नित्यर्थः, 'तत्करोति'-इत्यादिनाणिच्' तदन्ताल्लटः शत्रादेशः । उत्पूर्वात् भ्वादिगणपठितात् 'एजृ कम्पने' इति धातोर्लटः शत्रादेशे तु 'उदेजन्' इत्येव स्यात्तस्मादुपेक्षितेयं प्रक्रिया । दिनदीपदशाननः–दिनेऽहनि यो दीपस्तस्येव दशा येषां तादृशानि आननानि यस्य तथाभूतः, तेजोहीनमुखमण्डलः सन्नित्यर्थः, पुरीम् लङ्कां प्राप प्रविवेश ॥ ५२ ॥

रावण ने [जीवन में] पहिली बार युद्ध में पराजय पाकर काँपता हुआ दिन में जलते दीपक की तरह निस्तेज मुँह लिये हुए (उदास) लङ्का में प्रवेश किया ॥ ५२ ॥

१. "एव समुदञ्चति तावदेव' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राबोधयत्तदनु पङ्क्तिमुखः शयालुं
कालं विनापि च कथञ्चन कुम्भकर्णम् ।
आदेशतः स च विभोरपुनःप्रबोध-
संवेशधाम समराङ्गणमाजगाम ॥ ५३ ॥

प्राबोधयदिति । तदनु लङ्कापुरप्रवेशानन्तरम्, पङ्क्तिमुखः दशाननो रावणः, शयालुम् शयानमित्यर्थः कुम्भकर्णं नाम स्वकनीयांसं भ्रातरं कालं विनाऽपि असमयेऽपि तज्जागरणकालेऽसंप्राप्तेऽपीत्यर्थः, कथञ्चन केनापि-प्रकारेण, अतिकृच्छ्रेणेत्यर्थः, प्राबोधयत् जागरितमकरोत् । सः कुम्भकर्णश्च विभोः स्वामिनो रावणस्य आदेशतः आज्ञावचनात्, न पुनः प्रबोधः जागरणं यस्मिँस्तादृशो यः संवेशः महानिद्रा मृत्युरिति यावत् तद्धाम तत्स्थानं समराङ्गणम् युद्धक्षेत्रमाजगाम प्राप। 'स्यान्निद्रा शयनं स्वाप स्वप्नः संवेश इत्यपि' इत्यमरः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५३ ॥

इसके बाद रावण ने सोते हुए कुम्भकर्ण को उसके जागने का समय न होने पर भी किसी तरह—विविध उपायों से जगाया और कुम्भकर्ण भी स्वामी रावण के आदेश-वश उस समर क्षेत्र में आ गया जो ऐसी नींद का स्थान है कि एक बार जो सो गया वह फिर कभी नहीं जागता है [अर्थात् समरक्षेत्र के साथ ही मृत्युस्थल भी है] ॥ ५३ ॥

आगतं च तमञ्जनाचलनिकाशं[1] आकाशतलभ्रमितत्रिशूलं शूलधरमिव जगत्क्षयोद्युक्तं नक्तंचरं निशाम्य[2]शाम्यत्सहजभुजतेजोविशेषमशेषासु दिक्षु धावमानं पवमानचलितजलद[3] पारिप्लवं प्लवंगबलमङ्गदो धीरमवादीत् ।

आगतमिति । आगतम् समरक्षेत्रमुपायातं च अञ्जनाचलनिकाशम् कज्जलगिरिसदृशम् (इत्युपमा) आकाशतलभ्रमितत्रिशूलम्–आकाशतले गगनतले भ्रमितम् नर्तितं त्रिशूलम् त्रिशिखापरपर्यायमस्त्रविशेषं यस्य तं तथोक्तं, जगत्क्षयोद्युक्तम् संसारसंहारतत्परम्, शूलधरम् हरमिव (स्थितम्) तं नक्तंचरम् निशाचरं कुम्भकर्णं निशाम्य विलोक्य शाम्यन् अपसरन् सहजभुजतेजो-

---

१. 'आकाशभ्रमित' इति पाठा० । २. 'अवलोक्य' इति पाठा० ।
३. 'पारिप्लवत्प्लवग' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः स्वाभाविकबाहुपराक्रमातिशयो यस्य तत्तथोक्तम्, अशेषासु सकलासु दिक्षु, प्रतिदिशमित्यर्थः, धावमानम् भयात् पलायमानम्, पवमानेन वायुना चलितो यो जलदः मेघस्तद्वत् पारिप्लवम् चञ्चलं तत्, ('पारिप्लवं तु तरलम्' इत्यमरः) प्लवङ्गबलम् वानरसैन्यम् अङ्गदः धीरम् गम्भीरस्वरेण अवादीत् उक्तवान्।

कज्जल गिरि के समान, आकाश में त्रिशूल घुमाते हुए जगत् के संहार हेतु उद्यत महादेव तुल्य उस निशाचर कुम्भकर्ण को [युद्ध क्षेत्र में] आया हुआ देखकर वानर सेना का वह स्वाभाविक बाहुपराक्रम ठंडा पड़ने लगा, सारी वानर सेना हवा से चलते हुए मेघ के समान चञ्चल हो प्रत्येक दिशा में भागने लगी, तब उससे अङ्गद ने धीर स्वर से इस प्रकार कहा—

कपयः कैकसेयानां कापि सेयं बिभीषिका।
मा[1] भूदभूतपूर्वं वः प्राकृतं भयवैकृतम् ॥ ५४ ॥

कपय इति। हे कपयः वानराः, सेयं दृश्यमाना कुम्भकर्णरूपा व्यक्तिः कैकसेयानाम् कैकसीगर्भसम्भूतानां रावणादीनां ('स्त्रीभ्यो ढक्') कापि काचन विभीषिका त्रासोत्पादनसाधनरूपा, तस्माद्विभीषिकामात्रेण वः युष्माकम् अभूतपूर्वम् इतः पूर्वं कदापि न दृष्टं प्राकृतं लोकसाधारणं भयवैकृतम् पलायनादिभयजनितविकारो मा भूत्, प्राकृतजना इव यूयं महावीरा भयोत्पादनसाधनमात्रं पश्यन्तो भयं मा गमतेति तदुक्तेराशयः ॥ ५४ ॥

हे वानरो, [लोग चिड़ियों को डराने के लिए खेत में जैसे फूस का पुतला बनाकर खड़ा कर देते हैं, कुछ उसी तरह की] सामने जो तुम लोग देख रहे हो यह केकसी की औलादों की एक विभीषिका है—उन्होंने लोगों को भयभीत करने के लिए यह भयङ्कर पुतला बनाकर भय पैदा करने का एक साधन खड़ा कर रखा है। तुम लोगों में पलायन आदि भयजनित विकार, जो कभी नहीं उत्पन्न हुए, इस समय साधारण जन की भाँति इसे देखकर नहीं होने चाहिए (तुम जैसे महावीरों को इस विभीषिका मात्र से कौन-सा भय ?) ॥ ५४ ॥

अथ हरयोऽपि सत्यमनुनयसंगतमङ्गदवचनमवधारन्तो धारयन्तः

---

१. 'अभूतपूर्वं' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]समरसंनाहं दिङ्नागा इव प्रतिनिवृत्ताः [2]प्रमत्तमिवैरावणं रावणानुजं विन्ध्याचलमिव युगान्तानिलाः समन्तादाहृतैर्गिरिभिस्तरुभि[3]रप्यवाकिरन् ।

अथेति । अथ अङ्गदवचनश्रवणानन्तरम्, हरयः वानरा अपि अनुनयसङ्गतम् तत्कालोचितसान्त्वनायुक्तम् अङ्गदवचनम् पूर्वोक्तमङ्गदकथनम् अवधारयन्तः मान्यं मन्यमानाः, सरयम् सवेगं समरसन्नाहम् युद्धोद्योगं धारयन्तः दधानाः दिङ्नागाः दिग्गजा इव (इत्युपमा) प्रतिनिवृत्ताः प्रत्यागताः प्रमत्ताम् मदयुक्तम् ऐरावणम् तदाख्यमिन्द्रगजमिव रावणानुजम् कुम्भकर्णं युगान्तानिलाः प्रलयकालिकपवना विन्ध्याचलमिव, समन्तात् सर्वतः आहृतैः आनीतैः गिरिभिः पर्वतैस्तरुभिः वृक्षैरपि अवाकिरन् ववृषुः, अत एव गिरितरूणां करणत्वमन्यथा कर्मत्वं स्यादिति बोध्यम् ।

इसके बाद अङ्गद की सान्त्वनायुक्त बात को मान्य समझकर वानर लौटे, जल्दी-जल्दी युद्ध की तैयारी की, दिग्गजों की तरह उन वानरों ने प्रमत्त ऐरावण गज के तुल्य उस कुम्भकर्ण को सब तरफ से लाये गये पर्वतों और वृक्षों से ढक दिया जैसे प्रलयकाल में वायु, पर्वतों और वृक्षों से विन्ध्यपर्वत को ढक देता है ।

क्षिप्ताः संयति पुष्पिताः क्षिति[4]रुहस्ते रक्षसो वक्षसि
प्रस्विन्ने पटवासपांसव इवालीयन्त चूर्णीकृताः ।
मुक्ता ये धरणीधरा मुहुरमी तद्बाहुसंघट्टना-
त्प्रत्यावृत्य[5]पुनः प्रहर्तुरभवन् खेदाय भेदाय च ॥ ५५ ॥

क्षिप्ता इति । (ये) पुष्पिताः संजातपुष्पाः क्षितिरुहः वृक्षाः, संयति युद्धे (कुम्भकर्णोपरि वानरैः) क्षिप्ताः विकीर्णाः, ते क्षितिरुहः, रक्षसः कुम्भकर्णस्य प्रस्विन्ने क्रोधजनितस्वेदार्द्रे वक्षसि चूर्णीकृताः सन्तः पटवासपांसवः पिष्टातकधूलय इव अलीयन्त संसक्ता अभवन् । ('पिष्टातः पटवासकः' इत्यमरः) । ये धरणीधराः पर्वताः मुहुः पुनः पुनः मुक्ताः क्षिप्ताः अमी धरणीधराः तस्य

१. संनाहान्दिग्भागाः' इति पाठा० ।
२. 'प्रमत्तायम्' इति पाठा० ।
३. 'अपि' इति नास्ति क्वचित् ।
४. 'रुहास्तैः' इति पा० ।
५. 'परम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुम्भकर्णस्य बाहुसंघट्टनात् भुजोपमर्दाद्धेतोः पुनः प्रत्यावृत्य प्रतिनिवृत्य प्रहर्तुः क्षेप्तुरेव खेदाय प्रहारनैष्फल्यात् पश्चात्तापाय भेदाय विदारणाय च अभवन् अजायन्त। वानरैः कुम्भकर्णोपरि प्रक्षिताः पर्वतास्तद्बाहुसंघट्टनात् प्रत्यावृत्त्य तान् वानरनेवाखेदयन् व्यदारयँश्चेत्यर्थः। एतेन कुम्भकर्णस्य भुजयोरतिकाठिन्यं, क्षितिरुहचूर्णीकृतत्वोक्त्या च तद्वक्षसश्चातिकाठिन्यं व्यज्यते। वृक्षाणां पुष्पितत्वोक्तिस्तच्चूर्णस्य पटवासत्वोपयोगार्थमित्यवगन्तव्यम्। पूर्वार्धे तथोत्तरार्द्धे चोक्तार्थासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्तेरतिशयोक्तिः। पटवासपांसव इवेत्युपमा। तयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः। कुम्भकर्णमुद्दिश्य वानरैः प्रक्षिप्ताः पर्वतास्तानेवाव्यथयदभिनच्चेति प्रारब्धकार्यस्य वैफल्येनानर्थस्य च संभवेनानर्थोत्पत्तिरूपो विषमालङ्कारः। स चोत्तरार्द्धगतातिशयोक्त्या सङ्कीर्यते। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

युद्ध में वानरों द्वारा जो पुष्पित वृक्ष कुम्भकर्ण के ऊपर फेंके गये वे उसके वक्षःस्थल से टकरा कर चूर-चूर हो गये और स्वेदार्द्र उसकी छाती पर अबीर की तरह लीन हो गये और जो पर्वत उस पर डाले गये वे उसकी भुजाओं से टकरा कर, धक्के के जोर से उलटे उन्हीं प्रहार करनेवाले वानरों पर ही आकर गिरे और उन्हीं के खेद तथा विनाश के हेतु हुए ॥ ५५ ॥

ज्वलदनलं त्रिशूलमुपरिभ्रमयन्नमय-
न्नयमवनीमनीकमदखेलनदुर्ललितः।
सपदि बभञ्ज नीलमृषभं शरभं च बला-
दहरत गन्धमादनमरुन्ध गवाक्षमपि ॥ ५६ ॥

ज्वलदनलमिति। अयम् कुम्भकर्णः, ज्वलदनलम् ज्वलन् अनलो यस्मिंस्तत् प्रज्वलद्वह्निभीषणमित्यर्थः, त्रिशूलम् उपरि उर्ध्वः भ्रमयन् नर्तयन्, अवनीम् भुवं नमयन् स्वभारेणाधो नयन्, अनीकमदेन युद्धदर्पेण यत् खेलनम् चङ्क्रमणादिलक्षणं तत्र दुर्ललितः दुर्विलसितः सन् सपदि सद्य एव बलात् स्वभुजपराक्रमात् नीलम्, ऋषभं शरभं चेति त्रीन् सेनापतीन् बभञ्ज मर्दितवान्। तथा गन्धमादनं नाम वानरवीरम् अहरत् प्राहरत्, गवाक्षम् तन्नामानं वानरवीरमपि अरुन्ध निबद्धवानित्यर्थः। नर्दटकं वृत्तम् ॥ ५६ ॥

अग्निज्वाला से युक्त त्रिशूल ऊपर घुमाते हुए, पृथ्वी को [अपने भार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से] झुकाते हुए तथा युद्धाभिनिवेश के दर्प से पैंतरेबाजी आदि लीलायें दिखाते हुए उस कुम्भकर्ण ने तत्काल अपने भुजबल से नील, ऋषभ और शरभ नामक वानर सेनापतियों का संहार किया, गन्धमादन नामक वानर पर प्रहार किया और गवाक्ष नामक वीर वानर को बाँध लिया ॥५६ ॥

ततश्च सहज[1]भयचापलाधिगतलाघवं राघवं शरणमश्नुवानं[2]वानरानीकमाश्वासयन्विश्वाधिकविपुलभुजवीर्यो विकीर्य द्विषति सर्वतः पर्वतान्विधाय च विचित्रमतिचिरं युद्धं नक्तंचरविमु[3]क्तधात्रीधरावलिः कुलिशदारित इव कुलभूधरो धरायाम[4]चेतनः पपात हरिकुलपतिः ।

ततश्चेति । ततः तदनन्तरं च सहजाभ्याम् कपिकुलस्वभावसिद्धाभ्यां भयचापलाभ्याम् अधिगतम् प्राप्तं लाघवम् लघुत्वं येन तत्तथोक्तम्, अत एव राघवम् श्रीरामं शरणम् अश्नुवानम् प्राप्नुवत्, वानरानीकम् कपिसैन्यम् आश्वासयन् धैर्यं प्रापयन् ('अनीकं तु रणे सैन्ये' इति विश्वः) विश्वाधिकविपुलभुजवीर्यः लोकोत्तरप्रचुरभुजविक्रमशाली, हरिपतिः कपीशः सुग्रीवः द्विषति शत्रौ कुम्भकर्णे सर्वतः समन्ततः पर्वतान् विकीर्य विक्षिप्य तथा विचित्रम् विलक्षणं युद्धम् अतिचिरम् बहुकालं यावत् विधाय कृत्वा, नक्तञ्चरविमुक्तधात्रीधरावलिः नक्तंचरेण निशाचरेण कुम्भकर्णेन विमुक्ता विक्षिप्ता धात्रीधरावलिः पर्वतश्रेणिर्यस्य स तथोक्तः कुम्भकर्णविक्षिप्तपर्वताहत इत्यर्थः । अचेतनः मूर्च्छितः सन् कुलिशदारितः वज्रभिन्नः कुलभूधरः कुलपर्वत इव (इत्युपमा) धरायाम् भुवि पपात । ('कुलिशं भिदुरं पविः' इति वज्रपर्यायेष्वमरः) ।

और इसके बाद नैसर्गिक भय और चञ्चलता से लघुता को प्राप्त होकर राम की शरण में आये हुए वानर सैन्य को आश्वासन देते हुए लोकोत्तरभुजबलशाली वानराधिपति सुग्रीव ने शत्रु कुम्भकर्ण पर चारों ओर से पर्वतों का प्रहार कर बड़ी देर तक विचित्र युद्ध किया किन्तु [अन्त में] राक्षस कुम्भकर्ण द्वारा फेंके गये पर्वत से आहत वह अचेत होकर वज्राहत पर्वत की भाँति भूमि पर गिर पड़ा ।

परिगृह्य तं झटिति बाहुपञ्जरे
चलिते पुरं तदनु रावणानुजे ।

१. 'बल' इति पाठा० । २. 'राघवानीकम्' इति पाठा० ।
३. 'रात्रीधरवशः' इति पाठा० । ४. 'अचेतन इव' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविनीतवालिकृतमद्य नः प्रभो-
रयशः प्रमृष्टमिति हृष्टमाशरैः ॥ ५७ ॥

परिगृह्येति । तदनु सुग्रीवपतनात्परतः, रावणानुजे कुम्भकर्णे झटिति शीघ्रं तम् पतितं सुग्रीवं बाहुपञ्जरे भुजमण्डलेनेत्यर्थः (अधिकरणत्वविवक्षायां सप्तमी) परिगृह्य समादाय पुरम् लङ्कानगरं चलिते प्रस्थिते सति अद्य सम्प्रति अविनीतेन उद्धतेन वालिना कृतम् विहितं नः अस्माकं प्रभोः स्वामिनो रावणस्य अयशः पुच्छेन बद्ध्वा कक्षनिक्षेपणजनितकलङ्कः प्रमृष्टम् क्षालितम् इति मत्वा आशरैः राक्षसैर्हृष्टम् । यदि दुर्विनीतेन वालिना नः स्वामी लाङ्गूलेन बद्ध्वा स्वकक्षे निक्षिप्तस्तदाऽस्माकं स्वामिन अनुजः कुम्भकर्णोऽपि तस्यानुजं सुग्रीवं बद्ध्वात्रानयत्तेन तत्पुरातनमयशः प्रमृष्टमिति मत्वा राक्षसा हर्षनिर्भरा अजायन्तेत्याशयः । मञ्जुभाषिणीवृत्तम् । लक्षणं तु प्रागेवोक्तम् ॥ ५७ ॥

इसके वाद सुग्रीव को अपने भुजमण्डल में लेकर जब कुम्भकर्ण अपने नगर की ओर चला, तब 'आज उद्धत बाली द्वारा किया गया हमारे स्वामी का अपयश धुल गया'—यह समझ कर राक्षस प्रसन्न हो गये ॥ ५७ ॥

तत्र[1] विचित्रकुसुमपरिमल[2]शिशिररथ्योपचारसचेतनोद्ग्रीवसुग्रीव-नखमुखकलितशूर्पणखामुखानुकारो [3]दारुणाकारः सचमत्कार[4]प्राकार-[5]मुत्प्लुत्याक्षिप्तगतमेनमनालक्ष्य वैलक्ष्यतः [6]प्रतिनिवृत्तो वृत्तोरुविषमतार-केक्षणः क्षणदाचरः प्रतिक्षणमतिक्षीबतया प्रतिपक्षबलमिव[7]स्वबलमपि भक्षयन्नलक्षयन्सौमित्रिमद्रिशिखरं विमुञ्चन्नेवायमञ्जसा राममाजगाम ।

तत्रेति । तत्र लङ्कायां विचित्राणाम् विविधानां कुसुमानाम् पुष्पाणां परिमलैः सुगन्धैः शिशिराः शीतला ये रथ्योपचाराः सेचनादिभिः पुरवीथी-संस्कारास्तैः सचेतनः लब्धसंज्ञः अत एवोद्ग्रीवः उन्नमितकन्धरो यः सुग्रीवः तस्य नखमुखैः नखाग्रैः आकलितः कृतः शूर्पणखामुखाकारः शूर्पणखामुखसादृश्यं यस्य स तथोक्तः, प्रत्यापन्नसंज्ञेन सुग्रीवेण नखनिर्भिन्नकर्णनास इत्यर्थः,

---

१. 'तत्र च' इति पाठा० ।
२. 'शिशिरोपचार' इति पाठा० ।
३. 'दारुणाकारः' इति नास्ति क्वचित् ।
४. 'प्राकारम्' इति नास्ति क्वचित् ।
५. 'समुत्प्लुत्य' इति पाठा० ।
६. 'प्रतिनिवृत्तो विवृत्तोरुत्तारकेक्षणः' इति पा० ।
७. 'स्वपक्षबलम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत एव दारुणाकारः भयङ्कराकृतिः, सचमत्कारम् सविस्मयं प्राकारम् सालं ('प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः) उत्प्लुत्य उल्लङ्घ्य अक्षिगतम् दृष्टिगोचरम् एनम् सुग्रीवम् अनालक्ष्य अनवलोक्य वैलक्ष्यतः अनिगृहीतद्वेष्यकृतप्रतारणाजनितलज्जावशात् प्रतिनिवृत्तः सुग्रीवमनुधावन् युद्धक्षेत्रं पुनः प्रत्यागतः सन् वृत्ते वर्तुले उरुणी विशाले विषमतारके कुटिलकनीनिके च ईक्षणे नेत्रे यस्य स तथोक्तः, क्षणदाचरः निशाचरः कुम्भकर्णः ('त्रियामा क्षणदा क्षपा' इति रात्रिपर्यायेष्वमरः) प्रतिक्षणम् सततम् अतिक्षीबतया समधिकमत्ततया ('मत्ते शौण्डोत्कटक्षीबाः' इत्यमरः) प्रतिपक्षबलम् शत्रुसैन्यमिव स्वबलम् निजसैन्यमपि भक्षयन् भुञ्जानः सौमित्रिम् प्रतिभटतया सम्मुखमागतमपि लक्ष्मणम् अलक्षयन् मदग्रे कियानयमित्युपेक्षमाणः, अद्रिशिखरम् पर्वतशृङ्गं विमुञ्चन् विक्षिपन्नेव अञ्जसा आशु रामम् आजगाम प्राप।

वहाँ लङ्का में नाना प्रकार के फूलों की सुगन्ध तथा गलियों के सींची जाने के कारण शीतलता पाकर सुग्रीव होश में आ गये। उन्होंने अपनी गर्दन उठाकर नखाग्रों से कुम्भकर्ण के नाक कान काट कर उसका मुँह शूर्पणखा के मुँह की तरह बना दिया जिससे उसका आकार और अधिक भयानक हो उठा, वह विस्मय के साथ चहार दीवारी लाँघ कर सुग्रीव को दृष्टिगत न देखकर लज्जा से (उसका अनुसरण करता हुआ युद्ध क्षेत्र में) पुनः वापस लौटा, (क्रोध से) उसकी गोल और विशाल आँखों की पुतलियाँ कुटिल-भयङ्कर हो रही थीं। ऐसा वह राक्षस कुम्भकर्ण मदोन्मत्त होने के कारण शत्रुसैन्य की तरह सतत अपने सैन्य को भी चबाता हुआ (सम्मुख आये हुए) लक्ष्मण की उपेक्षा कर, पर्वतशिखर का प्रहार करता हुआ झटपट राम के पास पहुँचा।

[1]विच्छिद्याद्रिमथार्धचन्द्रमुखतो वीरो रघूणां पति-
र्बाणानत्र मुमोच [2]वालिदलनान्मारीचमर्मच्छिदः।
आलोक्याथ स तान्विदारित[3]खरानस्मिन्नकिंचित्करा-
न्वायव्यं पुनरैन्द्रमप्यरिवधूवैधव्यधुर्यं दधे ॥ ५८ ॥

१. 'भिन्दञ्शूलम्' इति पाठा०। २. 'वालिविपदः' इति पाठा०।
३. 'शिखान्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विच्छिद्येति। अथ कुम्भकर्णे समीपमुपागते सति, वीरः शूरो रघूणां पतिः रघुनाथो रामः अर्धचन्द्रमुखतः अर्धचन्द्रसंज्ञकबाणविशेषाग्रेण अद्रिम् कुम्भकर्णप्रयुक्तं पर्वतं विच्छिद्य विदार्य अत्र अस्मिन् कुम्भकर्णे वालिदलनान् वालिसंहारकान् मारीचमर्मच्छिदान् मारीचमर्मभेदिनस्तन्मारकानित्यर्थः, विदारितखरान् खराख्यराक्षसविदारकान् बाणान् शरान् मुमोच प्रहृतवान्। अथानन्तरं सः रामस्तान् बाणान् अस्मिन् कुम्भकर्णे अकिञ्चित्करान् न किमपिकर्तुं समर्थान् मोघानिति यावत् आलोक्य दृष्ट्वा (एतेन वाल्याद्यपेक्षया कुम्भकर्णस्य महाशक्तिसम्पन्नत्वं सूचितम्) वायव्यम् वायुदेवताकं दिव्यास्त्रं, पुनः तस्यापि तस्मिन्मोघत्वे अरिवधूवैधव्यधुर्यम् शत्रुस्त्रीवैधव्यधुरन्धरम् शत्रुसंहारकमित्यर्थः, ऐन्द्रम् इन्द्रदेवताकमपि दिव्यास्त्रं दधे प्रयुक्तवान्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ५८॥

इसके बाद वीर रघुनाथ ने अर्धचन्द्र नामक बाण के अग्रभाग से (कुम्भकर्ण द्वारा प्रहृत) पर्वत को विदीर्ण कर उसके ऊपर बालिसंहारक, मारीच-मर्म-वेधी तथा खर-विदारक बाणों का प्रयोग किया किंतु उन्होंने देखा कि ये सब बाण कुम्भकर्ण का कुछ बिगाड़ नहीं पा रहे हैं तब वायव्य अस्त्र का, फिर शत्रु स्त्री के वैधव्य में धुरन्धर ऐन्द्र अस्त्र का प्रयोग किया॥५८॥

रामास्त्रो[1]द्दलितेषु राक्षसपतेरङ्गेषु तुङ्गो भुजः
प्रागेको निपपात मन्दर इव प्रत्यर्थिसेनाम्बुधौ।
सिन्धौ निष्पतितः परोऽपि ददृशे सेतुर्द्वितीयो यथा
छिन्नं व्योम्नि शिरस्तुरीयमभवत्कूटं त्रिकूटस्य च॥ ५९॥

रामास्त्रोद्दलितेष्विति रामास्त्रेण। रामप्रहृतेनैन्द्रास्त्रेणोद्दलितेषु उच्छिन्नेषु राक्षसपतेः कुम्भकर्णस्य अङ्गेषु शरीरावयवेषु प्राक् प्रथमम् तुङ्गः विशालः एको भुजः बाहुः प्रत्यर्थिसेनाम्बुधौ रिपुसैन्यसिन्धौ मन्दरः मन्दराचल इव (इत्युपमा) पपात पतितः। परः अपरोऽपि भुजः सिन्धौ सागरे निष्पतितः सन् द्वितीयः सेतुर्यथा सेतुरिव (इत्युत्प्रेक्षा) ददृशे दृष्टः। छिन्नम् कृत्तं शिरः कुम्भकर्णस्य शीर्षं च व्योम्नि आकाशे त्रिकूटस्य शिखरत्रयवत्तयान्वर्थनाम्नो गिरेस्त्रिकूटस्य तुरीयम् चतुर्थम् कूटम् शिखरम् अभवत अजायतेति

१. 'उच्छलितेषु' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गम्योत्प्रेक्षा। छिन्नं कुम्भकर्णस्य शिरो व्योम्नि गतं सत् त्रिकूटाचलस्य चतुर्थकूट-भ्रान्तिसजीजनदिति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५९ ॥

राम के ऐन्द्र अस्त्र से कटे हुए अङ्गों में पहिले उसका एक विशाल बाहु समुद्रतुल्य उसकी सेना में मन्दराचल की तरह गिरा, दूसरा बाहु समुद्र में जा गिरा जो दूसरा सेतु-सा मालूम पड़ा और सिर कट कर आकाश में चला गया, वहाँ वह त्रिकूट पर्वत का एक चौथा कूट-सा प्रतीत होने लगा।

तदनुमोदभरितहरिबलकोलाहलाकर्णनविदितकुम्भकर्णवधपरिम्लानमुखेन दशमुखेन सहोदरमहोदरमहापार्श्वौ सहायौ विधाय समादिष्टाः कुमाराः नरान्तकदेवान्तकातिकाय[1]त्रिशिरसः शिरसादाय पितुर्निदेशं निवेशमिव पितृपतेः प्राविशन्नमी समीकभुवम्।

तदन्विति। तदनु तस्मात् परतः, अनुमोदः प्रहर्षः, तेन भरितस्य पूर्णस्य हरिबलस्य कपिसैन्यस्य कोलाहलस्य हर्षव्यञ्जककलकलस्य आकर्णनेन श्रवणेन विदितः ज्ञातः कुम्भकर्णवधो येन स तथोक्तः अत एव परिम्लानम् क्षीणशोभं मुखं यस्य स तथोक्तश्च तेन दशमुखेन रावणेन, सहोदरौ महोदरमहापार्श्वौ तन्नामानौ राक्षसौ सहायौ रक्षकौ विधाय कृत्वा नरान्तकदेवान्तकातिकायत्रिशरसः तन्नामानश्चत्वारः कुमाराः स्वपुत्राः समादिष्टाः युद्धाय आज्ञापिताः, अमी चत्वारः कुमाराः पितुः जनकस्य रावणस्य निदेशम् युद्धाज्ञां शिरसा आदाय गृहीत्वा सादरमङ्गीकृत्य पितृपतेः यमराजस्य ('धर्मराजः पितृपतिः समवर्ती परेतराट्' इत्यमरः) निवेशं स्थानमिव (इत्युत्प्रेक्षा) समीकभुवम् रणभूमिम् प्राविशन्। तेषां युद्धभूमौ प्रवेशोऽपुनःपरावर्तनायेत्युत्प्रेक्षया ध्वनितम्।

इसके बाद प्रहर्ष भरे कपिसैन्य के कलकल निनाद को सुनने से कुम्भकर्ण के वध का अनुमान लगाकर रावण ने महोदर और महापार्श्व नामक अपने दो सहोदरों को सहायक नियुक्त कर अपने चार पुत्रों नरान्तक, देवान्तक, अतिकाय और त्रिशिरा को युद्ध का आदेश दिया। उन्होंने भी पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर यमराज के स्थान-सी युद्ध भूमि में प्रवेश किया।

अर्जनि पुनः समीकमनयोरुभयोर्बलयो-
रवदलिते मुखेऽपियद[2]नुज्झितरोषभरम्।

---

१. 'त्रिशिरसः पितुनिदेशात्' इति पाठा०। २. 'च' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अमरमृगीदृशामपि यदाशयपूर्तिकरं
समरसमुत्सुकेन मुनिना यददृष्टचरम् ॥ ६० ॥

अजनीति । पुनः भूयोऽपि अनयोरुभयोर्बलयोः वानरराक्षससैन्ययोः समीकम् युद्धम् अजनि अभूत् । यत् समीकम् मुखे अवदलितेऽपि अन्योन्य-मुखभङ्गे सञ्जातेऽपि अनुज्झितरोषभरम् अनुज्झितः अत्यक्तः रोषभरः कोपातिरेको यस्मिंस्तत्तादृशम् (आसीत्) तस्मिन् युद्धेऽन्योन्यमुखभङ्गे जातेऽपि वीराणां रोषो न शान्ति गच्छतिस्मेत्यर्थः । यत् युद्धम् अमरमृगीदृशाम् देवाङ्गनानामपि आशयपूर्तिकरम् अभिलाषपूरकमासीत् तस्मिन् युद्धेऽसंख्याता महावीरा दिवं गता अभूवन् येन देवाङ्गना अपि प्रत्येकमेकैकवरं लब्ध्वा पूर्णमनोरथा जाता इत्यर्थः । यत् युद्धं समरसमुत्सुकेन कलहप्रियत्वाद्युद्धविलोकनोत्कण्ठितेन मुनिना नारदेन अदृष्टचरम् अदृष्टपूर्वम् । कलहप्रियतया सततं युद्धविलोकनसमुत्सुको नारदोऽपि इतः पूर्वमेतादृशं युद्धं कदापि न दृष्टवानित्यर्थः । नर्दटकं वृत्तम् ॥ ६० ॥

फिर तो दोनों-वानरराक्षस सैन्य में ऐसा घनघोर युद्ध हुआ कि दोनों सैन्यों के मुखभङ्ग हो जाने पर भी क्रोध शान्त नहीं हो रहा था, [युद्ध में दिवंगत हुए वीरों को पतिरूप में वरण करने के लिए उद्यत] देवाङ्गनाओं के भी अभिलाष की पूर्ति हो गयी और [कलह प्रिय होने के कारण] सतत युद्ध देखते रहने-वाले नारद को भी कभी पहिले ऐसा युद्ध देखने में नहीं आया था ॥ ६० ॥

ममाथ शैलादथ वालिनन्दनो नरान्तकं संयति वानरान्तकम् ।
हनूमता सोऽपि हतः सुरान्तकः पुरान्तकेनेव[1]रुषा पुरान्तकः॥६१॥

ममाथेति । अथ उत्तरोत्तरं युद्धे प्रवर्धमाने सति, वालिनन्दनः अङ्गदः संयति युद्धे वानरान्तकम् वानराणाम् अन्तकम् यमराजमिव, तेषां संहारे तत्पर-मित्यर्थः, नरान्तकम् तदाख्यं रावणपुत्रं शैलात् पर्वतप्रहारात् ममाथ संहृत-वान् । इवेति वाक्यालंकारे, पुरान्तकेन त्रिपुरारिणा शङ्करेण पुरा पूर्वम् अन्तकः यमो यथा, रुषा कोपेन हनूमता सः प्रसिद्धपराक्रमः सुरान्तकः देवान्तको नाम रावणपुत्रोऽपि हतः विनाशितः । उपमायमकयोः संसृष्टिः । वंशस्थं वृत्तम्–'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति तल्लक्षणात् ॥ ६१ ॥

१. 'तथा' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके बाद वालिपुत्र अङ्गद ने युद्ध में वानरों का संहार करने वाले नरान्तक (रावण पुत्र को पर्वत का प्रहार कर मार डाला था प्राचीन काल में जैसे पुरारि शिव ने यम को मारा था, उसी तरह क्रोध से हनूमान ने देवान्तक (रावणपुत्र) को मार दिया ॥ ६१ ॥

अनन्तरमसमसमरशीलेन नीलेन निहते महोदरे मारुतिमथितशिरसि त्रिशिरसि विशसितेषु महापार्श्वादिषु वाहिनीपतिषु निर्भरविषादरोषपरवशो [1]निशाचराकार इव तमोनिकायः [2]समरमतिकायः समागत्य वृत्रासुर इव सुत्राम्णा सुमित्रासुतेन सह वितेने विचित्रमायोधनम् ।

अनन्तरमिति । अनन्तरम् नरान्तकदेवान्तकयोर्वधात् परतः, असमसमरशीलेन अनुपमयुद्धपरायणेन नीलेन तदाख्येन वानरसैन्यनायकेन महोदरे महोदरसंज्ञके रावणसहोदरे निहते संहृते सति, त्रिशिरसि तदाख्ये रावणपुत्रे मारुतिमथितशिरसि मारुविना हनूमता मथितशिरसि विदारितमस्तके सति, महापार्श्वादिषु वाहिनीपतिषु राक्षससैन्यनायकेषु विशसितेषु हतेषु सत्सु, निर्भरविषादरोषपरवशः समुत्कटशोककोपाक्रान्तः: निशाचराकारः राक्षसशरीरधारी तमोनिकायः अन्धकारराशिरिव (इत्युत्प्रेक्षा) अतिकायो नाम रावणपुत्रः समरम् रणक्षेत्रं समागत्य प्राप्य सुत्राम्णा इन्द्रेण सह वृत्रासुर इव (इत्युपमा) ('सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री' इतीन्द्रपर्यायेष्वमरः) सुमित्रासुतेन लक्ष्मणेन सह विचित्रम् आश्चर्यकरम् आयोधनम् युद्धं वितेने कृतवान् ।

इसके बाद अनुपम युद्धविशारद नील के द्वारा महोदर के मारे जाने पर, हनूमान् के द्वारा त्रिशिरा का शिरश्छेदन किये जाने पर तथा (ऋषभ के द्वारा) महापार्श्व प्रभृति सेनापतियों के निहत होने पर, अत्यन्त उत्कट शोक और क्रोध से भरा, राक्षसदेहधारी तमोराशि-सा, अतिकाय (रावणपुत्र) रणक्षेत्र में उतर कर, इन्द्र के साथ वृत्रासुर की तरह, लक्ष्मण के साथ अद्भुत युद्ध करने लगा ।

स च सुचिरं नियुध्य तमवध्य[3]इतीश्वरा-
दनिलगिरा विबुध्य पुनरस्त्रमधत्त विधेः ।

---

१. 'निशाचरः साकारः' इति पाठान्तरम् । २. 'समरम्' इति पाठा० ।
३. 'इतीव वरात्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दलितमनेन तद्दिवि समुत्पतितं जगता-
मतनुत राहुभीतिमधिकामतिकायशिरः ॥ ६२ ॥

स चेति । सः सौमित्रिश्च सुचिरम् बहुकालपर्यन्तं नियुध्य अतिकायेन सह युद्धं कृत्वा तम् अतिकायम् ईश्वरात् ईशो ब्रह्मा तस्य वरात् अवध्यः हन्तुमशक्यः इत्येवम् अनिलगिरा वायुवचनेन विबुध्य परिज्ञाय पुनः विधेः ब्रह्मणः अस्त्रं ब्रह्मास्त्रम् अधत्त प्रयुक्तवान् । अनेन ब्रह्मास्त्रेण दलितम् कृत्तम् तत् अतिकायशिरः दिवि व्योम्नि समुत्पतितम् समुद्गतं जगताम् दर्शकलोकानाम् अधिकाम् बहुलां राहुभीतिम् राहुरयमुदयं गत इति भ्रमजनितं भयम् अतनुत अकरोत् । अत्रातिकायशिरसि राहुभ्रमाद् भ्रान्तिमान् अलंकारः । 'साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः' इति तल्लक्षणात् । नर्दटकं वृत्तम् ॥ ६२ ॥

अतिकाय के साथ लक्ष्मण ने बड़ी देर तक युद्ध करके वायु के कथन से जब यह जाना कि ब्रह्मा के वरदान के कारण यह मारा नहीं जा सकता है तब उन्होंने ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग किया । उस ब्रह्मास्त्र से कट कर अतिकाय का सिर आकाश में उड़ कर पहुँच गया । उसने देखने वालों को राहु का भ्रम पैदा कर अत्यन्त भयभीत कर दिया ॥ ६२ ॥

अनुनीय रावणिरथो विधुरं पितरं दधत्पृथुसमीकधुरम् ।
स रथी समेत्य सधनुः[1]शरधी चलितश्चमूभि[2]रभिदाशरथी ॥६३॥

अनुनीयेति । अथो पितृव्यद्वयभ्रातृचतुष्टयवधश्रवणानन्तरम् सः प्रसिद्धो रावणिः रावणसूनुरिन्द्रजित् विधुरम् सहोदरयोः कुमाराणां च निधनेन शोक विह्वलं पितरम् रावणमनुनीय समाश्वास्य दधत्पृथुसमीकधुरम् महायुद्धभारं दधानः रथी रथारूढः, सधनुः धनुषा सह धनुर्दधान इत्यर्थः, शरधी निषङ्गौ (तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः' इत्यमरः) समेत्य प्राप्य धृत्वेत्यर्थः, चमूभिः सेनाभिः (सह) दाशरथी रामलक्ष्मणौ अभि उद्दिश्य ('अभिरभागे' इति कर्मप्रवचनीयत्वाद्द्वितीया) चलितः प्रयातः । प्रमिताक्षरा वृत्तम् ॥ ६३ ॥

इसके बाद शोकविह्वल पिता को आश्वस्त कर महायुद्ध का भार अपने

१. 'शरधिः' इति पाठा० । २. 'अधिदाशरथी' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऊपर लेकर. धनुष और बाणों से पूर्ण तरकस लेकर सेना के साथ राम और लक्ष्मण की ओर रावण का प्रसिद्ध पुत्र इन्द्रजित् चल पड़ा ॥ ६३ ॥

[1]आगत्य समरमरातिजयमनोरथाय [2]रथाभिरक्षायै रक्षांसि परितः प्रकल्प्य प्रतर्प्य च हविषा[3]प्रदक्षिणशिखं शिखावन्तं[4]मन्त्राधिगतविविध शस्त्राणि दधानस्तिरोधानं[5] गत एव निशितमुखैः शिलीमुखैर्निर्माय निखिलमर्माहतिं निस्त्रिंशक्रमः क्रव्यादो व्याघ्र इव हरीन्विधुरीचकार ।

आगत्येति । समरम् युद्धभूमिमागत्य प्राप्य अरातिजयमनोरथाय शत्रुविजय मनोरथसिद्धये रथाभिरक्षायै स्वरथरक्षणाय परितः सर्वतः रक्षांसि राक्षसान् प्रकल्प्य रक्षकत्वेन स्थापयित्वा हविषा आज्यादि-हवनीयद्रव्येण प्रदक्षिण-शिखम् प्रगता दक्षिणमिति प्रदक्षिणा दक्षिणावर्ता, तादृशी शिखा ज्वाला यस्य तं तथोक्तम् ('घृणिज्वाले अपि शिखे' इत्यमरः) शिखायाः प्रदक्षिणत्वकथनेन जयप्रदत्वं सूच्यते' इत्थं प्रदक्षिणगतो हुतभुङ् नृपस्य धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति' इत्युक्तेः । शिखावन्तमग्निं प्रतर्प्य सन्तृप्तं कृत्वा मन्त्राधिगतविविध-शस्त्राणि मन्त्रमहिम्ना संप्राप्तनानाविधास्त्राणि दधानः धारयन् तिरोधानं गतः स्वयं तिरोहित एव निशितमुखैः तीक्ष्णाग्रैः शिलीमुखैः बाणैः निखिलमर्मा-हतिम् समस्तसैन्यहृदयविदारणं निर्माय कृत्वा निस्त्रिंशक्रमः निर्गतः त्रिंशतोऽ-ङ्गुलिभ्य इति निस्त्रिंशः खड्गस्तस्य क्रम इव क्रमः परिपाटी यस्य स निस्त्रिं-शक्रमः खड्गवद्विभेदक इत्यर्थः ('तूण्यां खड्गे तु निस्त्रिंश चन्द्रहासासिरि-ष्टयः' इत्यमरः) क्रव्यादः राक्षस इन्द्रजित् मांसभक्षी च व्याघ्र इव (इत्युपमा) हरीन् वानरान् विधुरीचकार पीडयामास ।

युद्धभूमि में आकर शत्रुजय विषयक मनोरथ पूर्ति के लिए अपने रथ की रक्षा के हेतु चारों ओर राक्षसों को नियुक्त कर हवि से दक्षिण की ओर घूमती हुई ज्वाला वाले अग्निदेव को तृप्त कर, मन्त्र बल से प्राप्त नाना प्रकार के अस्त्र धारण कर अदृश्य रूप से ही तीक्ष्ण अग्रभाग वाले वाणों से समस्त वानर सैन्य का मर्मभेदन कर खड्ग के समान तीक्ष्ण प्रहार करने वाला वह

१. 'अधिसमरम्' इति पाठा० । २. 'रथाभिरक्षां' इति पाठा० ।
३. दक्षिणशिखावन्तम् इति पा० । ४. 'मन्त्राधिगतानि विचित्राण्यस्त्राणि इति पा०
५. 'तिरोधानं समागतः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राक्षस इन्द्रजित् सभी वानरों को क्रव्याद (मांसभक्षी) बाघ की तरह पीडित करने लगा।

सहलक्ष्मणं तमपि दाशरथिं परुषो निदाघ इव पद्मसरः।
विकलाशयं विधुरसत्वमयं विरचय्य धाम च जगाम[1]शनैः ॥६४॥

सहलक्ष्मणमिति। अयं रावणिरिन्द्रजित् सह लक्ष्मणाम् लक्ष्मणसहितम् ('वोपसर्जनस्य' इति विकल्पात् सह शब्दस्य सत्वाभावः) तं दाशरथिम् राममपि परुषः तीक्ष्णो निदाघः ग्रीष्मकालः ('निदाघो ग्रीष्मकाले स्यादुष्णस्वेदाम्बुनोरपि' इति विश्वः) पद्मसरः कमलाकरमिव (इत्युपमा) विकलाशयम् व्यथितमानसमन्यत्र शुष्काधारप्रदेशं च ('आशयः स्यादभिप्राये मानसाधारयोरपि' इति विश्वः) विधुरसत्त्वम् विनष्टपराक्रममन्यत्र खिन्नजलचरप्राणिवर्गं च, विरचय्य कृत्वा शनै. मन्दं मन्दं धाम स्वगृहं च जगाम गतः। श्लेषसंकीर्णोपमा। प्रमिताक्षरा वृत्तम् ॥ ६४ ॥

उस मेघनाद ने शौर्यसम्पन्न लक्ष्मण सहित राम को भी विकलमानस और क्षीणपराक्रम कर दिया. जैसे तीक्ष्ण ग्रीष्मकाल कमलसरोवर को शुष्कान्त स्तल तथा खिन्न जलचर जीवों वाला बना देता है। इस प्रकार वह (कृत कृत्य होकर) धीरे-धीरे (निश्चिन्त भाव से) अपने घर गया ॥ ६४ ॥

क्षतार्कभवतेजसि क्षपितरामचन्द्रद्युतौ
विमुच्य सति निर्गते विशिखवृष्टिमस्मिन्घने।
अदीप्तनलस्फुरत्कुमुदमस्तनीलोत्पलं
समुत्तरलजीवनं समभवत्तदा वाहिनी ॥ ६५ ॥

क्षतार्केति। क्षतम् विनष्टम् अर्कभवस्य रवितनयस्य सुग्रीवस्य तेजोऽति प्रतापो यस्मात् तादृशे मेघनादे, क्षतम् विरोहितम् अर्कभवम् सूर्यजनितं तेजः प्रकाशो यस्मात् तादृशे घने च, क्षपिता अपसारिता रामस्यैव चन्द्रस्य द्युतिः कान्तिर्येन तादृशे मेघनादे, क्षपिता अपसारिता रामस्येव चन्द्रस्य द्युतिर्येन तादृशे घने च, विशिखवृष्टिम् बाणवर्षां जलवृष्टिम् च विमुच्य त्यक्त्वा निर्गते सति तादृशे मेघनादरूपे घने गते सति, तदा वाहिनी वानरसेनैव नदी ('सेनानद्योश्च वाहिनी' इति वैजयन्ती) अदीप्तनलम् अदीप्तः हतप्रभो नलो

१, 'शरैः इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलाख्यो नाम वानरो यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, नदीपक्षे अदीप्तः नलः 'नरकुल' इति नाम्ना लोके विख्यातस्तृणविशेषो यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा। अस्फुरत्कुमुदम् अस्फुरन् अदीप्यमानः कुमुदो नाम कपिः, अन्यत्र अस्फुरत् कुमुदं नाम पुष्पं यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा, अस्तनीलोत्पलम् अस्तौ नष्टप्रायौ नीलोत्पलौ तन्नामानौ वानरौ अन्यत्र अस्तानि विनष्टानि नीलोत्पलानि नीलकमलानि यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा। समुत्तरलम् अतिचञ्चलम् अस्थिरं जीवनम् जीवितं जलं च यस्मिन् कर्मणि तद्यथा समभवत्। "सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य प्रतापं विनष्टं कृत्वा श्रीरामस्य द्युतिमपसार्य बाणान् विमुच्य च मेघनादे गते सति नलो दीप्तिरहितः, कुमुदोऽपि कान्तिविहीनो नीलोत्पलनामानौ वानरौ तु प्रसादशून्यौ जातौ यथा सूर्यभवं प्रकाशं तिरस्कृत्य चन्द्रद्युतिं चापसार्य वृष्टिं कृत्वा गते मेघे नद्यां नलतृणविशेषस्य विकासः कुमुदस्फुरणं चावरुध्यते नीलोत्पल च विनश्यति जलं (जीवनं) च चञ्चलतां भजते" इति स्पष्टार्थः।

'नलः पोटग (द) ले राज्ञि पितृगर्ते कपीश्वरे' इति 'कुमुदं कैरवे रक्त पङ्कजे कुमुदःकपौ ? इति च विश्वः। 'नीलः कपीशेऽद्रिभेदे कृष्णे ना तद्वति त्रिषु' इति नानार्थरत्नमाला। श्लेषसङ्कीर्णं साङ्गरूपकम्। पृथ्वी वृत्तम्।

सूर्यभव (१-सुग्रीव के २-सूर्यजनित) तेज को विनष्ट कर. रामरूपचन्द्र की कान्ति को दूर कर. बाणरूप जल की वर्षा करके उस मेघनादरूप मेघ के निकल जाने पर नल (१-वानर. २-तृणविशेष) की दीप्ति से रहित. कुमुद (१-वानर, २-पुष्प) के स्फुरण से विहीन, नीलोत्पल (१-नील और उत्पल नामक वानर २-नीलकमल) की कान्ति से शून्य, जीवन (१-जीवन. २-जल) की चञ्चलता (१-अस्थिरता. २-तरलता) से युक्त वाहिनी वानर सेना. वाहिनी-नदी) हो गयी ॥ ६५ ॥

अचलमथ सलीलमोषधीनां हरति हनूमति जाम्बवन्नियोगात्।
विचलितमभवद्बलं विशल्यं विबुधमनोऽपि विधूतशोकशल्यम् ॥६६॥

अचलमिति। अथ कपिसैन्यमूर्च्छानन्तरम्' जाम्बवतः नियोगात् आदेशात् हनूमति सलीलम् अनायासम् ओषधीनामचलम् सञ्जीविन्याद्योषधिपूर्णं पर्वतविशेषं हरति आनयति सति, बलम् वानरसैन्यं विशल्यम् अपगतव्रणं सत्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विचलितम् पुनर्युद्धाय कृतप्रयाणम् अभवत् तथा विबुधानां देवानां मनः हृदयमपि विधूतशोकशल्यम् निर्गतविषादकण्टकम् अभवत्। वानरसैन्ये मूर्च्छिते सति जाम्बवताऽऽदिष्टो हनूमान् ओषधिपूर्णं गिरिमानीतवान्। ओषधिमहिम्नाऽचिरणैव समग्रं वानरसैन्यं विशल्यं भूत्वा पुनर्युद्धाय प्रयाणमकरोत्, तद्दृष्ट्वा श्रीरामजयकाङ्क्षिणो देवा अपि प्रसन्नहृदया बभूवुरिति सरलार्थः। अत्र सैन्यविबुधमनसोः केवलप्रकृततयैकत्र क्रियायामन्वयात्केवलप्रकृतगोचरा तुल्ययोगिता। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ६६ ॥

इसके बाद जाम्ववान् के आदेश से हनुमान् जी जब अनायास ओषधियों से भरा पर्वत ले आये तब वानर सेना के घाव भर गये और वह फिर युद्ध के लिये चल पड़ी इसके साथ ही देवों का हृदय भी शोकशल्य से रहित हो गया।

[1]पुनस्तेन सहजतेजोभरितेन दावानलेनेव वानरबलेन दह्यमानां दरीमिव पुरी[2]मपहाय[3] पञ्चाननमिव पङ्क्त्याननिदेशतश्चलित[4]मखिलभुवनप्रकम्पनमकम्पनमाहतप्लवङ्गसङ्घं प्रजङ्घ[5]मङ्गदभुजप्रतापानलशलभावुभावपि निशम्य निशाम्य च द्विविदमैन्दावदारितौ महारथौ शोणिताक्षवि[6]रूपाक्षावपि कोपा[7]क्षान्तिभ्यां पुरुषसंरम्भौ कुम्भनिकुम्भौ महावीरौ समुत्तम्भ्य [8]बाहू सुबाहुमारीचाविव राघवभुजाभ्यां सुग्रीवहनूमद्भ्यामद्भुतं युद्धमतनिषाताम्।

पुनस्तेनेति। पुनः भूयस्तेन युद्धकौशलशालिना सहजतेजोभरितेन नैसर्गिकप्रभावपूर्णेन, अन्यत्र नैसर्गिकज्वालासम्पन्नेन। 'तेजोऽनले प्रभावेऽह्नि ज्योतिष्यर्चिषि रेतसि' इति वैजयन्ती। दावानलेन वनाग्निनेव वानरबलेन कपिसैन्येन दह्यमानाम् भस्मीक्रियमाणां दरीम् गिरिगुहामिव पुरीम् लङ्कामपहाय त्यक्त्वा पञ्चाननम् सिंहमिव (इत्युपमा) पङ्क्त्याननः दशाननस्तस्य निदेशतः आज्ञावचनात् चलितम् युद्धाय प्रस्थितमखिलभुवनप्रकम्पनम् सकललोकभयोत्पादकम् अकम्पनम् तदाख्यं राक्षसशूरम् आहतप्लवङ्गसङ्घम् निहतवानर

१. 'तेन पुनः इति पाठा०।
२. 'विहाय' इति पाठा०।
३. 'पञ्चानाविव' इति पाठा०।
४. 'अखिलरिपुप्रकम्पनः इति पाठा०।
५. प्रजङ्घं च' इति पाठा०।
६. 'पूपाक्षौ' इति पाठा०।
७. 'कोपाक्षान्तपरुष' इति पाठा०।
८. 'बाहुम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समुदयं प्रजङ्घम् तन्नामानं राक्षसवीरं चेत्युभावपि राक्षसौ, अङ्गदभुजप्रताप एव अनलस्तस्मिन् शलभौ पतङ्गौ निशम्य श्रुत्वा, अङ्गदबाहुबलेन निहतावित्याकर्ण्येत्यर्थः ('समौ पतङ्गौ शलभौ' इत्यमरः) महारथौ विकटयोधौ 'एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च विज्ञेयः स महारथः' । इत्युक्तलक्षणावित्यर्थः, शोणिताक्षविरूपाक्षौ तन्नामानौ सेनानायकौ अपि द्विविदश्च मैन्दश्चेति द्विविदमैन्दौ तन्नामानौ वानरयूथपौ ताभ्यामवदारितौ मारितौ निशाम्य दृष्ट्वा च कोपाक्षान्तिभ्याम् क्रोधेर्ष्याभ्यां ('अक्षान्तिरीर्ष्यासूयातु' इत्यमरः) परुषसंरम्भौ परुषः कठोरः संरम्भो युद्धोत्साहो ययोस्तौ, कुम्भनिकुम्भौ नाम कुम्भकर्णसुतौ महावीरौ (कर्तारौ) बाहू स्वभुजौ समुत्तम्भ्य साहङ्कारसुन्नमय्य सुबाहुमारीचौ निशाचरौ श्रीरामभुजाभ्यां सह युद्धं चक्रतुस्तद्वदिति स्पष्टार्थः । (अत एवोपमा) श्रीरामभुजाभ्याम् सहायतया श्रीरामस्य भुजप्रायाभ्यां सुग्रीवहनूमद्भ्यां सह अद्भुतम् विचित्रं युद्धम् अतनिषाताम् कृतवन्तौ । कुम्भः सुग्रीवेण निकुम्भो हनूमता सहेति यथाक्रममन्वयाद् यथासंख्यमलङ्कारः । स चोक्तोपमया संसृज्यते ।

भूमौ ततः प्लवगराजभुजेन विद्ध-
मालोक्य कुम्भम[1]सहन् विरहं तदीयम्
शोकादगादनिलसूनुहतो निकुम्भ-
स्तन्नामयुक्तममरी[2]स्तनकुम्भमेव ॥ ६७ ॥

भूमाविति । ततः तदनन्तरम्, प्लवगराजः कपिपतिः सुग्रीवस्तस्य भुजेन बाहुना विद्धम् प्रहृतमतएव भूमौ भुवि (पतितं) कुम्भम् तन्नामानं स्वसहोदरम् आलोक्य तदीयम् तस्य कुम्भस्य सम्बन्धिनं विरहम् वियोगम् असहन् सोढुमशक्नुवन् अनिलसूनुना पवनतनयेन हनूमता हतः मारितो निकुम्भः शोकात् भ्रातृवियोगजनितविषादादिव तन्नामयुक्तम् कुम्भनामसम्बद्धम् अमरीस्तनकुम्भम् देवाङ्गनाकुचकुम्भमेव अगात् प्राप । भ्रातृसाहचर्यं तु लब्धुं न शशाक किन्तु तन्नामयुक्तममरीकुचकुम्भं प्राप्य स्वभ्रातरं कुम्भमेवावाप्नोदित्यमन्यतेत्यर्थः । युद्धे निहतो निकुम्भो महावीरधर्मपालकतया देवाङ्गनया पतित्वेन वृत इति परमार्थः । अमरीकुचकुम्भसङ्गमस्य शोकहेतुत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा । सा च व्यञ्जकाप्रयोगाद् गम्या । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६७ ॥

---

१. अहसन्' इति पाठा० । २. 'कुचकुम्भमेव' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

फिर तो जैसे नैसर्गिक ज्वाला युक्त दावाग्नि से जलती गिरिगुहा को छोड़ कर सिंह भाग निकलता है, उसी तरह से स्वाभाविक पराक्रमपूर्ण वानरसैन्य के द्वारा दग्ध की जाती लङ्का को छोड़कर. रावण के आदेश से युद्ध के लिए चले. समस्त संसार को कँपाने वाले अकम्पन को और वानर कुल को मारने वाले प्रजङ्घ को इन दोनों को अङ्गद के भुज प्रताप रूप अग्नि में पतङ्ग बने सुनकर तथा महारथी शोणिताक्ष और विरूपाक्ष को भी द्विविद और मैन्द के द्वारा मारे जाते देख कर क्रोध और ईर्ष्या से कठिन युद्धोत्साह वाले महावीर कुम्भ और निकुम्भ (कुम्भकर्ण के पुत्र) अपने हाथों को ऊँचा कर राम के भुज तुल्य सुग्रीव और हनूमान के साथ उसी तरह अद्भुत युद्ध करने लगे जैसे सुबाहु और मारीच ने राम के दोनों भुजों से युद्ध किया था।

इसके बाद वानरराज सुग्रीव के हाथ से मारे गये. भूमि पर (पड़े हुए) कुम्भ को देखकर. उसके वियोग को न सह सकते हुए निकुम्भ ने हनूमान् के द्वारा निहत होकर भ्रातृशोक के कारण, कुम्भ के नाम से युक्त देवाङ्गना के कुचकुम्भ को प्राप्त किया (अर्थात् वीरगति को प्राप्त होकर वह देवाङ्गना के द्वारा वररूप में चुन लिया गया) ॥ ६७ ॥

ततः [1]कुपितरावणाकारणं रणवाहनियुक्तं युक्तमखिलवाहिनीभिराहवाटोपमुखरं खरात्मजं मकाराक्षमैक्ष्वाकशरोऽपि विपक्षमपि सपक्ष[2] एव समक्षमनयज्जनयितुः।

तत इति। ततः कुम्भनिकुम्भवधानन्तरम् कुपितेन कुम्भनिकुम्भवधसंजातक्रोधेन रावणेन आकारणम् आह्वानं यस्य तं तथोक्तम् कुपितरावणाहूतमित्यर्थः। ('हूतिराकारणमाह्वानम्' इत्यमरः) रणवाहे युद्धसञ्चालने नियुक्तम् अधिकृतम् अखिलवाहिनीभिः समग्रसैन्यैः युक्तम् सहितं आहवाटोपमुखरम् युद्धाभिमानेन सिंहनादं कुर्वन्तम्, खरात्मजम् खरनाम्नो राक्षसस्य पुत्रं मकराक्षं नाम राक्षसं विपक्षम् शत्रुमपि सपक्षः बन्धुरेवेति विरोधः, सपक्षः गरुत्सहित एवेति विरोधपरिहारः (अत एव विरोधाभासः) ऐक्ष्वाकशरोऽपि श्रीराम-

1. 'कौणपपतिनियुक्तं' इति पाठा०। २. 'इव' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बाणोऽपि जनयितुः जनकस्य खरस्य समक्षम् समीपम् अनयत् प्रापितवान् । श्रीरामः खरमिव तत्पुत्रं मकराक्षमपि हतवानित्यर्थः ।

इसके बाद कुपित रावण ने खर के पुत्र मकराक्ष को बुलाकर युद्ध सञ्चालन के लिये नियुक्त किया । समस्त सेना के साथ युद्धाभिमान से गरजते हुए उस विपक्ष (शत्रु) को भी राम के सपक्ष (पंखयुक्त) बाण ने भी मार कर उसके पिता खर के पास भेज दिया ।

कृत्वा मूर्धनि शासनं पितुरथो गत्वा रणं रावणि-
हुंत्वा तत्र महाभुजो हुतभुजं धृत्वा महास्त्राणि च ।
स्थित्वा व्योमनि मायया शरचयं त्यक्त्वा च भित्वा चमूं
बुद्ध्वा राघवकोपमाप सहसा लङ्कामलं कातरः ॥ ६८ ॥

कृत्वेति । अथो मकराक्षवधानन्तरम्, महाभुजः विशालबाहुः अपरिमित-भुजबलशालीत्यर्थः रावणिः रावणपुत्र इन्द्रजित्, पितुः जनकस्य रावणस्य शासनम् आदेशं मूर्धनि शिरसि कृत्वा पितुरादेशं सादरं स्वीकृत्येत्यर्थः, रणम् रणक्षेत्रं गत्वा, तत्र रणक्षेत्रे हुतभुजम् अग्निं हुत्वा अग्नौ होमं कृत्वा, महास्त्राणि विविधानि दिव्यास्त्राणि च धृत्वा मायया अन्तर्धानशक्त्या व्योमनि आकाशे स्थित्वा शरचयम् बाणनिवहं च त्यक्त्वा विमुच्य चमूम् वानरसेनां भित्त्वा विदार्य, ततः राघवकोपम् निजसेनाविदारणं दृष्ट्वा श्रीरामस्य हृदये कोपोदयं बुद्ध्वा ज्ञात्वा अलम् समधिकं कातरः भीतः सन् सहसा सत्वरं लङ्कामाप प्रविवेश । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६८ ॥

मकराक्ष का वध होने पर अपरिमित भुजबलशाली रावणपुत्र इन्द्रजित् पिता की आज्ञा को सादर मान कर युद्ध क्षेत्र में आया । उसने युद्धक्षेत्र में हवन किया, बड़े-बड़े दिव्य अस्त्रों को धारण किया और मायाबल से आकाश में स्थित होकर बाणों की वर्षा से राम की सेना को छिन्नभिन्न कर दिया. इसके बाद राम को कुपित जान कर अत्यन्त भयभीत हो वह झट लंका में जाकर घुस गया ॥ ६८ ॥

ततः प्रतीचः प्रतिहारादयं [1]प्रातिहारिको निर्गत्य निकृत्यासिना-कांचिदाञ्जनेयस्य पुरतो कायामयीं मैथिलीमाकुलीकृत[2]मानसे तस्मिन्ना

१. 'स प्रातिहारिकः' इति पाठा० । २. 'मनसि' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कस्मिकमिदमतथ्यमपि तथ्यमेव[1]विबुध्य[2] चिराय नियुध्य निराशे[3] निवृत्ते[4]विद्वेषि[5]पशुविशसनारम्भिनिकुम्भिलां[6]समासाद्य सद्य एष [7]प्रावर्तयत सत्रमतिविचित्रम् ।

तत इति। ततः पुरप्रवेशानन्तरम् । प्रातिहारिकः-प्रतिह्रियते मोह्यते परमानसमनेनेति प्रतिहारः, स प्रयोजनमस्येति प्रातिहारिकः ('प्रयोजनम्' इति ठक्) मायावीत्यर्थः । अयम् इन्द्रजित् प्रतीचः प्रतिहारात् प्रत्यग्द्वारात् निर्गत्य नगराद् बहिर्गत्वा आञ्जनेयस्य हनूमतः पुरतः अग्रे काञ्चन कामपि मायामयीम् मायानिर्मितां कृत्रिमां मैथिलीम् सीताम् असिना खड्गेन निकृत्य छित्त्वा आकुलीकृतमानसे व्याकुलितान्तःकरणे तस्मिन् हनूमति आकस्मिकम् अकस्मादागतमिदम् सीतावधकृत्यम् अतथ्यम् अयथार्थमपि तथ्यम् सत्यमेव विबुध्य विज्ञाय चिराय बहुकालपर्यन्तं नियुध्य युद्धं कृत्वा निराशे असफलमनोरथे निवृत्ते परावृत्ते सति विद्वेषिणः शत्रव एव पशवः वध्यतया पशुतुल्यास्तेषां विशसने मारणे आरम्भः उद्योगोऽस्त्यस्येति तथोक्तः, शत्रुरूपपशुमारणपरायण इत्यर्थः । निकुम्भिलां नाम गूढं मन्त्रसिद्धिस्थानं समासाद्य प्राप्य सद्यः तत्कालमेव एषः इन्द्रजित् अतिविचित्रम् अत्यन्ताद्भुतं सत्रम् आभिचारिकं यागम् प्रावर्त्तयत प्रारभत ।

इसके बाद नगर के पश्चिमी द्वार से बाहर निकल कर मायावी इन्द्रजित् ने हनूमान् के सामने ही किसी मायानिर्मित सीताका सिर तलवार से काटकर उनके मन को आकुल कर दिया. हनूमान् इस आकस्मिक सीतावध को, असत्य होने पर भी सत्य ही समझ कर बड़ी देर तक युद्ध कर (अन्त में) निराश होकर लौट आये. इसके बाद शत्रुरूप पशुओं के वध में उद्योगशील इन्द्रजित् निकुम्भिला नामक गुप्तस्थान में आकर तत्काल एक अद्भुत मारण याग करने लगा ।

---

१. 'बुद्ध्वा' इति पाठा० ।
२. 'नियुध्य चिराय' इति पाठा० ।
३. 'प्रतिनिवृत्ते' इति पाठा० ।
४. 'विद्विषि' इति पाठा० ।
५. 'विपक्षपशु' इति पाठा० ।
६. 'आसाद्य' इति पाठा० ।
७. 'प्रावर्तत' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तदनु हनूमतः प्रतिनिवृत्ताद्[1]दुर्वृत्तान्तमिममाकर्ण्य[2]विदीर्णमानसो मानसचर इव[3]वज्रनिर्घोषाद्विषादाकुलो राजहंसः संसदि निपत्य सौमित्रिणा समाश्वास्यमानः सकरुणं निःश्वस्य विश्वस्य पतिरपि[4] विधुरो व्यलापीत् ।

तदन्विति । तदनु तस्मात् परतः, प्रतिनिवृत्तात् प्रत्यागताद् हनूमतः इमम् सीतावधलक्षणम् दुर्वृत्तान्तम् दुःखदसमाचारम् आकर्ण्य श्रुत्वा वज्रनिर्घोषात् वज्रशब्दात् विषादाकुलः विषादव्यथितः मानसचरः मानससरोवरवासी राजहंसः पक्षि विशेष इव विदीर्णमानसः खिन्नहृदयः ('मानसं सरसि स्वान्ते' इत्युभयत्रापि विश्वः) राजहंसः नृपश्रेष्ठः श्रीरामः ('राजहंसो नृपश्रेष्ठे कादम्बकलहंसयोः' इति विश्वः) संसदि वानरसभायाम् निपत्य भूमौ पतित्वा सौमित्रिणा लक्ष्मणेन समाश्वास्यमानः आश्वस्तः क्रियमाणः सकरुणम् दीनभावेन निःश्वस्य दीर्घश्वासं गृहीत्वा विश्वस्य पतिः सकललोकनिग्रहानुग्रहक्षमोऽपि रामः विधुरः दुःखविह्वलः सन् व्यलापीत् विलापं कृतवान् । यथावज्रघोषं श्रुत्वा मानस विहरहशीलो राजहंसो विषादाकुलो भवति तथा हनूमन्मुखात् सीता वधवृत्तान्तं श्रुत्वा विषण्णो रामो वानरसभायां भूमौ पतात, तदनन्तरं लक्ष्मणेन कथञ्चित् समाश्वासितः लोकनिग्रहानुग्रहसमर्थोऽपि सकरुणं विललापेति स्पष्टार्थः ।

इसके बाद लौटे हुए हनूमान् से सीतावधरूप दुःखद समाचार सुनकर, वज्रघोष सुनने से विषादाकुल मानसविहारी राजहंस की तरह, नृपश्रेष्ठ रामचन्द्र जी व्यथित हृदय हो वानरों की सभा में भूमि पर गिर पड़े, तदनन्तर लक्ष्मण ने उन्हें धीरज बँधाया और दुःखी राम ने जगत्पति होने पर भी आहें भर कर (इस प्रकार से) करुण विलाप करना प्रारम्भ किया—

जज्ञे तदत्रभवती जनकस्य यज्ञे
देव्याश्चिराय धरणेररणेः[5]शिखेव ।
वंशे मनोरपि वधूरभवत्किमन्य-
द्राम[6]स्तथापि विधिना रचितो विरामः ॥ ६९ ॥

---

१. 'वृत्तामेतदाकर्ण्य' इति पाठा० । २. 'विशीर्ण' इति पाठा० ।
३. 'राजहंसः इति नास्ति क्वचित् । ४. 'विधुरम् इति पाठ० ।
५. 'शिखीव' इति पाठा० । ६. 'तवापि' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जज्ञ इति । तत् तथा तेन प्रकारेणेत्यर्थः । अत्रभवती पूज्या सीता जनकस्य नृपस्य यज्ञे, अरणेः निर्मन्थनकाष्ठविशेषात् शिखा अग्निज्वालेव (इत्युपमा) अनयोपमया सीतायाः साध्वीभावोऽयोनिजाभावश्च सूच्यते । धरणेः देव्याः हलमुखकृष्टायाः पृथिवीदेव्याः चिराय चिरकालेन चिरप्रतीक्षानन्तरमित्यर्थः, जज्ञे प्रादुर्भूता । मनोः वंशे वधूः स्नुषा महाराजदशरथस्येति भावः, अभवत् जाता, अन्यत् किम् एतस्मादपि किमधिकमपेक्ष्यतेऽन्यत्, एतस्मादन्यत् किमपि नापेक्षणीयमित्यर्थः । तथापि तादृशे सत्यपि रामः अहं विधिना विधात्रा विरामः विगता रामा यस्य स तथोक्तः तादृश्या सीतया वियुक्त इत्यर्थः रचितः कृतः । सहसा वियोगकारिणं विधातारं हतभाग्यं मां च धिगिति भावः । ('घृणिज्वाले अपि शिखे' इति, 'सुन्दरी रमणी रामा' इति चामरः) । पूर्वार्द्धेऽरणेः शिखेवेत्युपमा । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६९ ॥

श्रीमती सीता राजा जनक के यज्ञ में पृथ्वी देवी से चिर प्रतीक्षा के बाद अरणि (मन्थन काष्ठ) से अग्निशिखा की तरह प्रकट हुईं, (आगे चलकर भाग्यवश) मनु के (विश्वश्लाघ्य) वंश में बहू भी बनीं. इससे अधिक और क्या चाहिये था। परन्तु वह सब होने पर भी विधाता ने मुझ राम को आज वैसी सीता से रहित कर दिया ॥ ६९ ॥

यत्नो मुधा भवति यत्र समीरसूनो-
नीलं नलोऽपि नवसेतुनिबन्धनाय ।
दूरे च पावक[1]शरो दुरतिक्रमोऽयं
तत्केन शोकजलधिस्तव लङ्घनीयः ॥ ७० ॥

यत्न इति । यत्र यस्मिन् शोकजलधौ समीरसूनोः पवनतनयस्य हनूमतो यत्नः लङ्घनोत्साहः मुधा व्यर्थो भवति, हनूमताऽपि यः शोकजलधिस्तरितुं न शक्यते, यत्र नलः सेतुनिर्माणकौशलप्रसिद्धस्तन्नामा वानरोऽपि नवसेतुनिबन्धनाय नूतनसेतुरचनायै न अलम् समर्थः, यत्र शोकजलधौ नलोऽपि सेतुबन्धं कर्तुं न क्षमते, ('नमः स्वस्ति' -इत्यादिनाऽलं योगे चतुर्थी) तथा पावकशरः आग्नेयास्त्रमपि दूरे (वर्त्तते) समीपं गन्तुं नोत्सहते, आग्नेयास्त्रेणापि यो न परिशोषयितुं शक्यः, तत् तस्मात् कारणात् उक्तोपायत्रितयवैफल्यसम्भावन-

---

१. 'शरान्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

येत्यर्थः, दुरतिक्रमः दुस्तरः अयम् सम्मुखमापतितः तव शोकजलधिः त्वद्विपत्तिजनितशोकसिन्धुः केन लङ्घनीयः केनोपायेन तरितुं शक्यः, प्रसिद्धसागरस्तु हनूमता लङ्घनीयः, नलकृतसेतुना सुतरणीयः पावकशरेण च परिशोषणीयः किन्तु सीतामृत्युजनितशोकसागरतरणे प्रागुक्तोपायत्रितयवैफल्यसम्भावनया न कोऽप्युपायः परिलक्ष्यते तत्स सर्वथा दुस्तरतयाऽलङ्घनीय एवेति भावः। अतएवोपमानात्प्रसिद्धसागरादुपमेयस्य शोकजलधेराधिक्य वर्णनाद् व्यतिरेकालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७० ॥

जिसमें हनूमान् का प्रयत्न बेकार है, जिस पर नल भी सेतु बनाने में असमर्थ हैं,और जहाँ आग्नेय अस्त्र भी कारगर नहीं होगा,ऐसा तुम्हारे वियोग का दुस्तर सागर कौन पार कर पायेगा ?॥ ७० ॥

इत्यादि परिदेवमानमेनं विदिता[1]सुरमायाविशेषो विभीषणः समागत्य 'देव, भवतोऽपि किमिदमस्थाने [2]करुणमवस्थान्तरम्। निरन्तरायं मखनिवर्तनाय पुरंदरारिणा कृतं [3]कृतकमेवैतदवधारय। धारय मनसि धैर्यम्' इत्यभिधाय तद्वधाय [4]पुरोधाय लक्ष्मणं [5]तत्क्षणादेव निकुम्भिलां बलैः सहोपरुरोध।

इत्यादीति। इत्यादि एवमादिप्रकारेण परिदेवमानम् विलपन्तमेनम् श्रीरामं विदितासुरमायाविशेषः विदितः विज्ञातः असुरस्य राक्षसस्येन्द्रजितो मायाविशेषः कैतवं येन स तथोक्तः, राक्षसमायावेत्तेत्यर्थः, विभीषणः समागत्य 'देव स्वामिन्, भवतोऽपि किमिदम् अस्थाने अनवसरे करुणम् दीनम् अवस्थान्तरम् दुर्दशापन्नत्वम्, मायानियन्ताऽपि भवान् किमर्थमस्थाने दुर्दशामापद्यते इत्यर्थः। पुरन्दरस्य इन्द्रस्य अरिणा शत्रुणा इन्द्रजिता निरन्तरायम् निर्विघ्नं मखनिवर्त्तनाय यज्ञपूर्तये कृतम् विहितमेतत् सीतावधरूपं कृतकम् कृत्रिमम् असत्यमेव अवधारय निश्चयेन जानीहि, अत एव मनसि हृदि धैर्यं धारय इत्येवम् अभिधाय उक्त्वा तस्य इन्द्रजितो वधाय मारणाय लक्ष्मणं पुरोधाय पुरस्कृत्य तत्क्षणादेव तत्कालमेव बलैः वानरसैन्यैः सह निकुम्भिलां नाम यागस्थानम् उपरुरोध रुद्धवान्।

१. 'आशरमाया' इति पाठा०। २. 'दीनमवस्थानम्' इति पाठा।
३. कृतिममेवदित्यवधार्य' इति पाठा०। ४. 'पुरोधाय' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'तत्क्षणमेव पुरस्कृत्य निकुम्भिलांमुपरुरोध' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार विलाप करते हुए राम के पास असुरों की माया जानने वाले विभीषण ने आकर कहा—'देव, आप (मायानियन्ता) की भी यह कैसी बेजा दुर्दशा हो रही है ? अपने यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए इन्द्रजित् ने यह कृत्रिम प्रदर्शन किया है, यह निश्चय जानिये अतएव हृदय में धैर्य धारण कीजिये' —इतना कह कर इन्द्रजित् को मारने के लिए लक्ष्मण को आगे कर उसने वानरों सेनाओं के साथ निकुम्भिला को घेर लिया।

हरिकुलारवतश्चलितस्ततो गिरिदरीकुहरादिव केसरी।
अपरिपूर्य रुषाहवमाहवं स विदधे बलशासनशासनः ॥ ७१ ॥

हरि कुलेति। ततः निकुम्भिलोपरोधानन्तरम्, सः प्रसिद्धपराक्रमः, बलशासनशासनः बलो नामासुरविशेषस्तस्य शासनः हन्ता इन्द्रस्तस्य शासनो विजेता इन्द्रजित् (उभयत्रापि कर्तरि ल्युट्) हरिकुलारवतः वानरसमुदयकोलाहलमाकर्ण्य गिरिदरी कुहरात् पर्वतगुहाभ्यन्तरात् केसरी सिंह इव (इत्युपमा) ततः निकुम्भिलातः चलितः आहवम् यागम् अपरिपूर्य अपूरयित्वा रुषा वानरकृतयज्ञबाधाजनितकोपेन आहवम् युद्धं विदधे चक्रे। ('आहवः संगरे यागे' इत्यमरः)। द्रुतविलम्बितं वृत्तम् 'द्रुतविलम्बितमाह न भौ भरौ' इति तल्लक्षणात् ॥ ७१ ॥

वानरों का कोलाहल सुन कर निकुम्भिला से इन्द्रजित्, पर्वत की गुहा के भीतर से सिंह की तरह निकला और उसने यज्ञ को बिना समाप्त किये ही, क्रोध से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ७१ ॥

वातूल इव तूलानां वानराणां रणाजिरे।
विद्रावणस्ततो मायाविद्रावणसुतोऽभवत् ॥ ७२ ॥

वातूल इति। ततः तदनन्तरम्, मायावित् परव्यामोहपण्डितः, मायावीत्यर्थः, रावणसुतः इन्द्रजित्, रणाजिरे युद्धप्राङ्गणे ('अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः) तूलानाम् कार्पासानां वातूलः वात्येव वानराणां विद्रावणः निरासकः अभवत्। यथा वात्या तूलराशिं दूरे क्षिपति तथेन्द्रजित् शरवृष्ट्या वानरान् विद्रावयामासेत्यर्थः। 'वातूलः' इत्यत्र वात शब्दात् 'वाताच्च' इत्यूल प्रत्ययः। उपमाऽलङ्कारः ॥ ७२ ॥

इसके बाद युद्ध प्राङ्गण में वानरों को इन्द्रजित् ने, रूई के ढेर को आँधी की तरह तितर-बितर करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ७२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुपद[1]मनीकोन्मथनसंरम्भं संवर्तसमयदुर्दान्तं कृतान्तमिव समराङ्गणं[2]समापतन्तं स्यन्दनगतं [3]संक्रन्दनजितं [4]गन्धवहनन्दनस्कन्धवर्ती सौमित्रिः प्रवर्तितनिशि[5]तशरधारः शतधारपाणिरिव जम्भमस्तम्भयत् ।

अनुपदमिति । अनुपदम् कपिबलविद्रावणानन्तरमेव अनीकोन्मथन संरम्भम् अनीकोन्मथने वानरसैन्यसंहरणे संरम्भः कोपो यस्य तं तथोक्तम् ('संरम्भः सम्भ्रमे कोपे' इति शब्दार्णवः) संवर्त्तन समय दुर्दान्तम् प्रलयकालभीषणं कृतान्तम् यममिव (इत्युपमा) समराङ्गणम् युद्धभूमिम् समापतन्तम् आगच्छन्तम् स्यन्दनगतम् रथारूढं संक्रन्दनजितम् इन्द्रजितं गन्धवहनन्दनस्कन्धवर्ती पवनतनयस्कन्धदेशे स्थितः सौमित्रिः लक्ष्मणः प्रवर्तितनिशित शरधारः प्रवर्तिता शिसा निशितशरधारा तीक्ष्णबाणपरम्परा येन स तथोक्तः, जम्भम् तदाख्यासुरं शतधारपाणिः वज्रहस्त इन्द्र इव अस्तम्भयत् उपरुद्धवान् । 'संवर्तः प्रलयः कल्पः', 'कृतान्तो यमसिद्धान्तः', 'शतकोटिः', स्वरुः शम्बो दम्भोलिरशनिर्द्वयोः' इति सर्वत्रामरः । उपमाऽलङ्कारः ।

ज्यों ही वानरसेना तितर-बितर होने लगी उसी समय, सकोप सैन्यविनाश में तत्पर प्रलयकाल भीषण यमराज के समान युद्ध क्षेत्र में आते हुए रथारूढ इन्द्रजित को हनूमान् के कन्धे पर आरूढ लक्ष्मण ने तीक्ष्ण बाणों की वृष्टि कर, जम्भासुर को इन्द्र की तरह स्तम्भित कर दिया ।

[6]विकस्वरमदोत्कटं प्रचुरवीरवादोद्भटं
पतत्त्रुटितकङ्कटं प्रतिहतास्त्रमस्त्रेण च ।
जगत्त्रयभयावहं जयपराजयागोचरं
वितेनतुरुभाविभाविव [7]स्तदा रणं दारुणम् ॥ ७३ ॥

विकस्वरेति । विकस्वरः उत्तरोत्तरं प्रवर्धमानो मो मदः रणदर्पस्तेन उत्कटम् भीषणम्, प्रचुरैः प्रभूतैः वीरवादैः 'छिन्धि भिन्धि' इत्यादि वीरालापैः

---

१. 'अनीकिनीनाथनिधनसंरब्धतरं संवर्तप्रवृत्तमिव कृतान्तम्' इति पाठा० ।
२. 'आपतन्तम्' इति पाठा० ।
३ 'तं सक्रन्दजितम्' इति पाठा० ।
४. 'गन्धवाह' इति पाठा० ।
५. 'शिततरशरधाराभिः' इति पाठा० ।
६. 'परस्पर' इति पाठा० ।
२. 'तदारुणम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उद्भटम् उज्जृम्भितम्, पतन्तः त्रुटिताः भग्नाः कङ्कटा उरश्छदा यस्मिंस्तादृशम् अस्त्रेण निरोधकत्वेन प्रयुक्तैरस्त्रैरित्यर्थः, प्रतिहतानि निरुद्धानि अस्त्राणि यस्मिंस्तादृशं जगत्त्रयभयावहम् त्रैलोक्यभीतिजनकं जयपराजयागोचरम् जयपराजययोः अगोचरम् अविषयम्, यत्र तुल्यबलत्वात्कस्य जयो वा कस्य पराजयो वा भविष्यतीति निर्णेतुं न शक्यते तादृशमित्यर्थः, अतएव दारुणम् भयङ्करं रणम् युद्धं तदा तस्मिन् काले उभौ लक्ष्मणेन्द्रजितौ इमौ मत्तगजाविव (इत्युपमा) वितेनतुः चक्रतुः । उपमालङ्कारः । पृथ्वी वृत्तम् ।

उस समय दो मत्तगजों के समान लक्ष्मण और इन्द्रजित् ऐसा घमासान युद्ध कर रहे थे कि उत्तरोत्तर बढ़ते हुए रणदर्प से उसकी भयंकरता बढ़ती जा रही थी, 'मारो काटो' की आवाज बढ़ रही थी. कवच टूट कर गिर रहे थे, अस्त्र से अस्त्र टकरा कर प्रतिहत हो रहे थे, तीनों लोक भयभीत हो रहा था और जय-पराजय का निर्णय करना कठिन हो रहा था ॥ ७३ ॥

शतधारकठोरशिखैर्विशिखैश्शतधा विरचय्य शरासगुणम् ।
विदधे विबुधेशजितं समरे हतसारथिमप्यथ दाशरथिः ॥ ७४ ॥

शतधारेति । अथ चिरं नियुध्य दाशरथिः दशरथपुत्रो लक्ष्मणः समरे युद्धे शतधारकठोरशिखैः वज्रवत्कठिनाग्रभागैः विशिखैः बाणैः शरासगुणम् धनुर्मौर्वी ('मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः) शतधा शतखण्डितं विरचय्य कृत्वा विबुधेशजितम् इन्द्रजितं हतसारथिम् विनष्टसूतमपि विदधे कृतवान् । लक्ष्मणो निशितशरैरिन्द्रजितो धनुर्मौर्वीं छित्त्वा तत्सारथिमपि हतवानित्यर्थः । तोटकं वृत्तम् । तोटकमब्धि सकारयुतमिति लक्षणात् ॥७४॥

इसके बाद लक्ष्मण ने वज्र की तरह कठोर अग्रभाग वाले बाणों से इन्द्रजित् के धनुष की डोरी के सौ टुकड़े कर उसके सारथि का भी वध-कर दिया ॥ ७४ ॥

यदुचितमहो मायाशीलस्य यद्भुजशालिनः
सदृशमथ वा युक्तं नक्तंचरेन्द्रसुतस्य यत् ।
शतमखजितः शौर्यं यद्वानुरूपमथात्मन-
स्तदकृत रुषामन्दो मन्दोदरीतनयो रणे ॥ ७५ ॥

यदुचितमिति । अहो धनुर्मौर्वीच्छेदे सारथिवधेऽपि चेत्याश्चर्यम् मायाशी-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लस्य मायाचरणपरायणस्य यत् कृत्यम् उचितम् योग्यं भुजशालिनः बाहुपराक्रमशालिनो यत् सदृशम् अथवा नक्तंचरेन्द्रः निशाचरपतिः रावणस्तस्य सुतः पुत्रस्तस्य यत् युक्तम् उचितम् अथवा शतमखजितः इन्द्रजितः आत्मनः अनुरूपम् सदृशं यत् शौर्यम् वीरकृत्यं रणे युद्धे रुषा क्रोधेन अमन्दः महाकोपाक्रान्तः इत्यर्थः मन्दोदरीतनयः इन्द्रजित् तत् कृत्यं शौर्यं च अकृत कृतवान् । हरिणी वृत्तम्—'रस युग हयैन्सौं म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' इति तल्लक्षणात् ॥ ७५ ॥

आश्चर्य का विषय तो यह है कि (इन्द्रजित् के धनुष की डोरी कट चुकी, सारथी भी मारा गया फिर भी) महारोष से भरे हुए मन्दोदरीपुत्र इन्द्रजित् ने युद्ध में एक मायावी को जो उचित था, बाहुपराक्रमशाली के जो सदृश था, राक्षसेन्द्ररावणके पुत्र के लिये जो युक्त था, इन्द्र को जीतने वाले स्वयं के लिए जो शौर्य अनुरूप था वह सब कुछ कर दिखाया ॥ ७५ ॥

[1]एवं मन्दोदरीतनयस्य लक्ष्मणेन साकं युध्यमानस्य त्रिदिनानि व्यतीयुः । अनुपदम[2]भिषेणनवति विभीषणे तेना[3]विनीतेन मुक्तां शक्तिमर्धचन्द्रेण दारयन्नपारयन्सोढुमदसीयमविनयममर्षाकुलः सौमित्रिरमोघं [4]माघवनममुञ्चदस्त्रम् !

एवमिति । एवम् प्रागुक्तप्रकारेण मन्दोदरीतनयस्य इन्द्रजितः लक्ष्मणेन साकम् सार्धं युध्यमानस्य युद्धं कुर्वतः त्रिदिनानि त्रीणि दिनानि व्यतीयुः व्यतिजग्मुः । अनुपदम् अनन्तरमेव अभिषेणनवति सेनयाऽभिगमनम् अभिषेणनं तद्वति सेनया सह आक्रमणं कुर्वति विभीषणे तेनाविनीतेन इन्द्रजिता मुक्ताम् प्रहृतां शक्तिमस्त्रविशेषम् अर्धचन्द्रेण तन्नामकेन शरविशेषेण दारयन् खण्डयन् अदसीयम् अमुष्य मेघनादस्य सम्बन्धिनम् अविनयम् गुरुजनेऽपि प्रहारकत्वलक्षणमौद्धत्य सोढुमपारयन् मर्षयितुमशक्नुवन् अमर्षाकुलः कोपाविष्टः लक्ष्मणः अमोघम् अव्यर्थम् नियतं शत्रुशिरश्छेदकमित्यर्थः माघवनम् ऐन्द्रम् अस्त्रम् (इन्द्रजिति) अमुञ्चत् प्रयुक्तवान् ।

---

१. 'एवं…व्यतीयुः' इति वाक्यं क्वचिन्नास्ति ।
२. 'अभिषिपेण अभिषेणनवति' इति पाठा० ।
३. 'अविनीतेन' इति नास्ति क्वचित् । ४. 'माघवतास्त्रममुञ्चत्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस तरह इन्द्रजित् को लक्ष्मण के साथ लड़ते तीन दिन बीत गये, उसके तुरंत बाद सेना के साथ आक्रमण करने वाले विभीषण पर उस अविनीत ने शक्ति का प्रहार किया जिसे लक्ष्मण ने अर्धचन्द्र से काटकर उसके इस अविनय को क्षमा न कर सकने के कारण कोपाविष्ट होकर उस पर ऐन्द्र अस्त्र का प्रयोग किया जो व्यर्थ नहीं जाता है।

पतति स्म तत्प्रथममस्त्रमुज्ज्वलं
सशिरस्त्रमिन्द्रजयिनः शिरस्ततः।
अनु पुष्पवृष्टि[1]रनघा दिवौकसा-
मथ बाष्पवृष्टिरमरारियोषिताम् ॥ ७६ ॥

पततीति। प्रथमम् आदौ उज्ज्वलम् दीप्तं तत् प्रसिद्धम् अस्त्रम् ऐन्द्रास्त्रं पतति स्म इन्द्रजिति न्यपतत्, ततः अस्त्रपातानन्तरम् सशिरस्त्रम् शिरस्त्राण-सहितं इन्द्रजयिनः इन्द्रजितः शिरः (भूमौ) पतति स्म, अनु तत्पश्चात् ('पश्चात्सादृश्ययोरनु' इत्यमरः) अनघा पवित्रा दिवौकसाम् भुवि पतितं मेघनादशिरो दृष्ट्वा प्रसन्नतां गतानां देवानां पुष्पवृष्टिः पतति स्म, अथ तदन-न्तरम् अमरारियोषिताम् राक्षसस्त्रीणां बाष्पवृष्टिः अश्रुधारा पतति स्मेति सर्वत्र योजनीयम्। अत्र पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरं प्रति हेतुत्वात् कारणमालाऽलङ्कारः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥ ७६ ॥

पहले देदीप्यमान वह ऐन्द्रास्त्र (इन्द्रजित् पर) गिरा, (जिससे) उसके बाद इन्द्रजित् का शिरस्त्राण सहित सिर (भूमि पर) गिरा, पीछे (इन्द्रजित् का सिर गिरने से प्रसन्न) देवों की पवित्र पुष्प वृष्टि गिरी—हुई (जिसे देख कर इन्द्रजित् का वध जानकर) राक्षसों की स्त्रियों की अश्रुवृष्टि—जारी हो गयी ॥ ७६ ॥

श्रुत्वा शक्रजितः सुतस्य निधनं शोकेन रक्षःपतेः
क्लान्तं निःश्वसदश्रुपूरभरितं क्रन्दच्च फूत्कारि च।
कोपेनाथ विपाटलं कुटिलितभ्रूवल्लि वृत्तेक्षणं
जज्ञे दष्टघनौष्ठमट्ट[2]हसितोद्रिक्तं समस्तं मुखम् ॥ ७७ ॥

श्रुत्वेति। सुतस्य पुत्रस्य शक्रजितः इन्द्रजितो मेघनादस्य निधनम् मरणं

---

१. 'अवनी' इति पाठा०। २. 'हसितोद्वृत्तम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रुत्वा शोकेन रक्षःपतेः राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य समस्तं मुखम् दशापि मुखानि क्रमशः क्लान्तम् परिम्लानं, निःश्वसत् दीर्घोष्णनिःश्वासयुतम्, अश्रुपूरभरितम् अश्रुप्रवाहपूरितम्, क्रन्दत् आक्रोशयुक्तम्, फूत्कारि खेदेन फूत्कारयुक्तम्। अथ अनुपदमेव कोपेन विपाटलम् समधिकारुणम्, कुटिलितभ्रूवल्लि वक्रीकृतभ्रूलतायुक्तम्, वृत्तेक्षणम् विघूर्णनवर्त्तुलाकारनेत्रम्, दष्टघनौष्ठम् दन्तनिपीडितदीर्घाधरम्, अट्टहसितोद्रिक्तम् अट्टहासेनोत्कटं जज्ञे जातम्। सर्वाण्यपि रावणमुखानि शोकक्रोधस्थायिनोः करुणरौद्ररसयोः क्लान्त्याद्यनुभावोपेतान्यभूवन्नित्यर्थः। अत्र क्लान्तत्वादीनामनेकगुणानामेकाधिकरणे युगपदवस्थानात् समुच्चयालङ्कारभेदः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७७ ॥

पुत्र इन्द्रजित् का निधन सुनकर रावण के सभी मुख शोक से म्लान निःश्वासयुक्त, अश्रुपूर्ण, क्रन्दनपरायण, फूत्कारयुक्त तथा क्रोध से लाल, भ्रूभङ्गयुक्त, विघूर्णन से गोल नेत्रों से युक्त, दाँतों से काटे गये ओष्ठों से युक्त तथा अट्टहाससे उज्जृम्भित हो उठे ॥ ७७ ॥

अनन्तरमपक्रान्तासुषु[1] विक्रान्तेषु पुरंदरारिमुखेषु नन्दनेषु[2] निहतेषु कुम्भकर्णादिषु भ्रातृषु, विध्वस्ते प्रहस्तपूर्वेषु सचिवेषु, [3]व्यापादितेषु विरूपाक्षप्रभृतिषु सेनापतिषु [4]विकीर्णे भवति निखिले बले समन्ततः [5]करुणपरिपूरितपौरवधूजनपरिदेवनोत्तरङ्गायां लङ्कायामातङ्कातिशयशोषणो रावणस्त[6]त्क्षणमिक्ष्वाकुकुलनायकदयितां धरणीसुतां जिघांसुर[7]न्तिकगतमन्त्रिणा निवार्यमाणः [8]सारथिना विधिना च [9]चोदितरथो दाशरथिविजयविहितसंगरः [10]संगराङ्गणमवततार।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् तस्मात् परतः, विक्रान्तेषु पराक्रमशालिषु पुरन्दारिमुखेषु इन्द्रजित्प्रभृतिषु नन्दनेषु पुत्रेषु अपक्रान्तासुषु गतप्राणेषु, कुम्भ-

१. 'विक्रान्तेषु' इति नास्ति क्वचित्। २. 'विनिहतेषु' इति पाठा०
३. 'व्यतीतेषु' इति पाठा०। ४. 'कपिविमर्दनेन विशीर्णे' इति पाठा०।
५. 'करुणपरिहरित' इति पाठा०।
६. 'तत्क्षणमेव हर्यक्ष इव हरिणीं धरणीसुताम्' इति पाठा०।
७. 'अन्तिकगतेन' इति पाठा०। ८. 'सारथिना च' इति पाठा०।
९. 'चोदितः', संचोदितरणः' इति च पा०। १०. 'संगरभुवम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्णादिषु भ्रातृषु निहतेषु मारितेषु प्रहस्तपूर्वेषु प्रहस्तादिषु सचिवेषु अमात्येषु विध्वस्तेषु विनष्टेषु विरूपाक्षप्रभृतिषु सेनापतिषु व्यापादितेषु हतेषु सत्सु, निखिले समस्ते बले सैन्ये विकीर्णे इतस्ततः पलायिते भवति सति, लङ्कायां समन्ततः सर्वतः करुणपरिपूरितानाम् शोकप्रयुक्तदैन्ययुक्तानां पौरवधूजनानाम् पुरवासिवनिताजनानां परिदेवनैः विलापैः उत्तरङ्गायाम् उद्रिक्तायाम् तत्परिपूर्णायामित्यर्थः। आतङ्कातिशयेन समापतितविपदाधिक्येन रोषणः समुपजातक्रोधः रावणः तत्क्षणम् तस्मिन् काले इक्ष्वाकुकुलनायकस्य श्रीरामस्य दयिताम् प्रेयसीं धरणीसुताम् पृथिवीकन्यां सीतां जिघांसुः हन्तुमिच्छुः, अन्तिकगतमन्त्रिणा समीपस्थामात्यान्यतमेन निवार्यमाणः सीतावधस्यान्याय्यत्वं निवेद्य प्रतिषिध्यमानः, तथा सारथिना विधिना दैवेन च चोदितरथः प्रेरितस्यन्दनः दाशरथिविजये रामं जेतुं विहितसंगरः कृतप्रतिज्ञः संगराङ्गणम् युद्धक्षेत्रम् अवततार प्रविष्टः। (अथ प्रतिज्ञाजिसंविदापत्सु संगरः' इत्युभयत्राप्यमरः)।

इसके बाद इन्द्रजित् आदि विक्रमशाली पुत्रों के गतप्राण होने, कुम्भकर्ण आदि भाइयों के मारे जाने, प्रहस्त आदि सचिवों के विध्वस्त होने, विरूपाक्षप्रभृति सेनापतियों के मारे जाने, समस्त सेना के तितर-बितर हो जाने पर और लङ्का में चारों ओर दीनभाव से भरी पुरनारियों का विलाप फैल जाने पर महाविपत्ति से कुपित हो रावणने उस समय इक्ष्वाकुकुलनायक श्रीराम की प्रियतमा धरणीसुता सीता को मार डालने की इच्छा की, किन्तु समीपस्थ मन्त्रीने उसे वैसा करने से रोक दिया। तब सारथि तथा दुर्दैव ने उसके रथ को आगे बढ़ाया और रावण ने राम को जीतने की प्रतिज्ञा कर रणक्षेत्र में प्रवेश किया।

कोपादसौ [1]परिघतोमरकुन्तयष्टि-
चापाशुग[2]द्रुघणशक्तिकृपाणपाणिः।
एकोऽप्यनेकमुखबाहुतया सबन्धु-
र्लोको यथा समिति लोचनगोचरोऽभूत् ॥ ७८ ॥

कोपादिति। कोपात् सकलकुलसंहारदर्शनजनितक्रोधात् परिघाः अयोमयगदाः, तोमराः दण्डविशेषाः कुन्ताः प्रासाः, यष्टयः लगुडाः, चापाः धनूंषि,

१. 'परिघयष्टिकुठारकुन्त' इति पाठा०। २. 'द्रुहिण' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशुगाः शराः, द्रुघणाः मुद्गराः, शक्तयः अस्त्रविशेषाः, कृपाणाः खड्गाश्च पाणिषु यस्य स तथोक्तः, एकः सकलसहायानां विनाशात् सहायशून्योऽपि अनेकमुखबाहुतया बहुसंख्यकमुखभुजयुक्ततया सबन्धुः लोको यथा बान्धवयुक्तो जन इवेत्युत्प्रेक्षा, ('लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः) समिति युद्धे लोचनगोचरः प्रत्यक्षोऽभूत् । सहायकरहितमपि रावणमनेकमुखबाहुतया युगपदनेकशस्त्रप्रयोग-परायणतया च लोकाः सहायकपरिवृतमिव तं मन्यन्ते स्मेति भावः । वसन्त-तिलकं वृत्तम् ॥ ७८ ॥

कोप करके हाँथोंमें लोहे की गदा, तोमर, भाले, डण्डे, धनुष, बाण, मुद्गर, शक्ति, खड्ग आदि अस्त्र लिये हुये (सभी सहायकों के कट-मर जाने से) अकेला भी वह रावण अनेक मुख और बाहुओं से युक्त होने के कारण—सहायकों से सम्पन्न व्यक्ति-सा दिखायी पड़ा ॥ ७८ ॥

अलक्ष्यत स रक्षसामधिपतिः कृपाणं मुहुः
[1]प्रसह्य विनिपातयन्प्लवगमण्डलीमौलिषु ।
अयं तव तवाय[2]मित्यभिसमीकमेकैकशो
वरानिव विनिर्दिशन्नमरवारवामभ्रुवाम् ॥ ७९ ॥

अलक्ष्यतेति । सः प्रसिद्धः रक्षसामधिपतिः राक्षसेन्द्रो रावणः प्लवगमण्ड-लीनाम् वानरनिवहानां मौलिषु शिरःसु प्रसह्य बलात् कृपाणम् स्वखड्गं चन्द्रहासनामानं मुहुः भूयोभूयो विनिपातयन् प्रहरन् अयं तव, अयं तव इत्येवं प्रकारेण अभिसमीकम् युद्धे (विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः) अमरवारवामभ्रुवाम् अमराणाम् देवानां याः वारवामभ्रुवः वाराङ्गना अप्सरसस्तासाम् एकैकशः प्रत्येकं वरान् प्रियान् विनिर्दिशन् अवगमयन्निव अलक्ष्यत दृष्टः । रावणो युद्धे वानराणां शिरस्सु प्रसह्य भूयोभूयः स्वकृपाणं प्रहरति स्म, मन्ये युद्धहतान् वीरान् वरितुमागतानामप्सरसां प्रत्येकमयं तव वरः, अयं तव वरः इत्येवं रूपेण वरान् विनिर्दिशन्निवासीदिति भावः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । पृथ्वी वृत्तम् ।

राक्षसेन्द्र वह रावण वानरों के सिर पर बार-बार तलवार का प्रहार करता हुआ ऐसा दिखायी पड़ रहा था, मानों वह युद्ध में (हत वीरों का वरण करने के लिए आयी हुई) देवाङ्गनाओं को एक-एक करके, यह तुम्हारा वर हुआ' इस तरह से वरों का निर्देश कर रहा हो ॥ ७९ ॥

१. 'प्रहस्य' इति पाठा० । २. 'अभिसमीकम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]तत्क्षणम[2]क्षोहिणीविक्षोभकन्दलितरुषम[3]तिपरुषैर्विशिखैर्विदलितकेतनमर्धचन्द्रनिकृत्तधन्वानमस्त्रधाराविदारितसारथिमतिविस्मयनीयकरलाघवं राघवानुज[4]ममर्षवेगमुक्तया शक्त्या मुहूर्तमिव मूर्च्छा[5]संमीलितमुपराग इव [6]कलाधरमाततान यातुधानपतिः ।

तत्क्षणमिति । तत्क्षणम् तस्मिन् काले अक्षौहिणी सैन्यसंख्याविशेषस्तस्याः विक्षोभेण रावणकृतेन विध्वंसनेन कन्दलितरुषम् समुत्पन्नक्रोधम्, अत एव अतिपरुषैः समधिककठिनैः विशिखैः बाणैः विदलितकेतनम् छिन्नध्वजदण्डम्, अर्धचन्द्रेण तदाख्येन शरेण निकृत्तं छिन्नं धनुर्येन तादृशम्, अस्त्रधारया बाणपरम्परया विदारितः हतः सारथिर्येन तथाभूतम्, अतिविस्मयनीयम् अत्याश्चर्यजनकं करलाघवम् हस्तकौशलं यस्य तथाभूतम्, राघवानुजम् रामस्य कनीयांसं भ्रातरं लक्ष्मणं यातुधानपतिः राक्षसराजो रावणः अमर्षवेगेन कोपप्रभावेण मुक्तया प्रयुक्तया शक्त्या अस्त्रविशेषेण कलाधरम् चन्द्रम् राहुग्रह इव (उपरागो ग्रहो राहुग्रस्तेत्विन्दौ च पूष्णि च' इत्यमरः) मुहूर्तम् स्वल्पकाल मूर्च्छया मोहेन सम्मीलितम् आच्छन्नम् आततान कृतवान् । चन्द्रमुपराग इव लक्ष्मणं रावणः कियतः कालस्य कृते प्रयुक्तया शक्त्या मोहसंमीलितमकरोदिति भावः ।

उस समय अक्षोहिणी संख्यक वानर सेना का रावण के द्वारा विनाश होने से कुपित लक्ष्मण ने अत्यन्त कठोर बाणों से रावण का ध्वजदण्ड काट दिया, अर्धचन्द्र नामक शर से उसके धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा अस्त्र की धारा बरसा कर सारथि का संहार कर दिया । इस प्रकार अत्यन्त आश्चर्यजनक हाथ का करतब जब लक्ष्मण ने दिखाया तब रावण ने उन्हें कोप के वेग से प्रयुक्त शक्ति नामक अस्त्र से कुछ देर के लिए मूर्च्छाच्छन्न कर दिया, जैसे राहुग्रह कुछ समय के लिए चन्द्रमा को सम्मीलित कर देता है ।

आलोक्य [7]दूनमनुजं हृदि शक्तिघाता-
च्छोकेन विद्धहृदयः सुतरां स रामः ।

---

१ 'तदनन्तरम्' इति पाठा० २. 'अक्षौहिणीक्षोभ' इति पाठा० ।
३. 'अतिपरुषविशिखवतिध्वजम्' इति पाठा० । ४. 'अमर्षविग' इति पाठा० ।
५. 'निमीलित' इति पाठा० । ६. 'कमलाकरम्' इति पाठा० ।
७. 'दीनमनुजम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कोपेन चापमथ कुण्डलयांचकार
लङ्कापतेरपि ललाटलिपिं विधाता ॥ ८० ॥

आलोक्येति । हृदि हृदयप्रदेशे शक्तिघातात् रावणप्रयुक्त-शक्ति-प्रहारात् दूनम् परितप्तं मूर्च्छितम्, अनुजम् लक्ष्मणमालोक्य दृष्ट्वा सुतराम् अत्यन्तं शोकेन विद्धहृदयः व्यथितमानसः सन् अथ शोकानन्तरम् कोपेन रावणोपरि समुत्पन्नेन क्रोधेन चापम् धनुः कुण्डलयाञ्चकार कर्णपर्यन्तं मौर्वीमाकृष्य सशरं शरासनं वलयी चकारेत्यर्थः। विधाता ब्रह्मापि ललाटलिपिम् आयुर्निणायिकभालफलकाक्षरविन्यासं कुण्डलयाञ्चकार रामे धनुः कुण्डलयति सत्येव ब्रह्मा रावणमृत्योरासन्नतया तद्भाग्यलिपिं वैयर्थ्यसूचकचिह्नेन निरस्तामकरोदित्यर्थः। अथ चापललाटलिप्योः केवलप्रस्तुतत्वात् केवलप्रस्तुतगोचरा तुल्ययोगिता ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८० ॥

रावण-प्रयुक्त शक्ति का हृदय-प्रदेश में आघात होने से अनुज लक्ष्मण को मूर्च्छित देख कर शोक से राम का हृदय व्यथित हो उठा और (रावण पर उत्पन्न) क्रोध से (शर सहित) उन्होंने धनुष को (रावण को मारने के लिए, कान तक डोरी खींच कर) वर्तुलाकार कर दिया। इधर ब्रह्मा ने भी रावण की भाग्यलिपि को कुण्डलित किया—वैयर्थ्यसूचक गोलघेरे से घेर दिया। [लेखक लोग किसी वाक्य में किसी लिखे अंश को व्यर्थ अथवा फालतू समझ कर उसे गोल घेरे से घेर देते हैं जिससे यह प्रकट होता है कि यह भाग छोड़ देना है या इस पर विचार नहीं करना है] ॥ ८० ॥

अवकीर्य दाशरथिरश्रुजलैरनुजं पुलस्त्यतनुजं च शरैः।
युगपद्व्यधात्करुणवीररसौ युधि शोकहर्षशबलं च बलम् ॥ ८१ ॥

अवकीर्येति । पूर्वमेवश्लोकोऽयं व्याख्यातस्तदर्थं पञ्चाशत्तमस्य श्लोकस्यास्मिन्नेव काण्डे व्याख्या द्रष्टव्या ॥ ८१ ॥

इसकी व्याख्या के लिए इसी काण्ड का पचासवाँ श्लोक देखें।

वलयितचित्र[1]चापघति वारितपङ्क्तिमुखे
विसृजति राघवे विशिखवर्षमसर्षवति।
अरिषु न कश्चिदप्यथ निवृत्य गतः समरा-
दमरविलासिनीषु न च काचिदलब्धवरा ॥ ८२ ॥

---

१. 'चापविनिवारित' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वलयितेति। अमघवति शक्तिघाताल्लक्ष्मणं मूर्च्छितं दृष्ट्वा सञ्जात-क्रोधे चलयितचित्रचापवति वलयितम् आकर्णाकर्षणेन कुण्डलाकारीकृतं चित्रम् विलक्षणं चापं धनुरस्त्यस्येति वलयितचित्रचापवान् तस्मिन्, आकृष्टधनुषीत्यर्थः। वारितपङ्क्तिमुखे वारितः अवष्टम्भितः रावणो येन तस्मिन्, राघवे श्रीरामे विशिखवर्षम् शरवृष्टिं विसृजति मुञ्चति सति, अथ अनन्तरम् अरिषु शत्रुषु राक्षसेषु कश्चिदपि कोऽपि राक्षसः, समरात् युद्धक्षेत्रात् निवृत्य परावृत्य न गतः, किन्तु सर्वेऽपि हता इत्यर्थः। तथा अमरविलासिनीषु युद्धे वीरगतिं प्राप्य दिवं गच्छतो वीरान् प्रियतमत्वेन वरीतुमागतासु सुरललनासु काचिदपि सुरललना अलब्धवरा अप्राप्तप्रियतमा निवृत्य न गतेति लिङ्गविपरिणामेनान्वयः। युद्धनिहतवीराणां स्वर्गप्राप्त्या सर्वाः सुरललना वरं लब्ध्वैव निवृत्ता इत्यर्थः। कोकिलकपर्यायं नर्दटकं वृत्तम् ॥ ८२ ॥

[शक्तिघात से लक्ष्मण को मूर्च्छित देख कर] कोपयुक्त, विलक्षण धनुष को [कान तक तान कर] कुण्डलाकार बनाये हुऐ, रावण को रोक कर, राम ने जब बाणवर्षा शुरू की तब शत्रुओं में कोई भी रणक्षेत्र से [जीता] लौट कर नहीं गया और [दिवंगत वीरों का वररूप में वरण करने के लिए आयी हुई] देवाङ्गनाओं में कोई भी विना पति के वापस नहीं लौटी ॥८२॥

अयं च पुन[1]रञ्जनासुतसमानीतमहीधर[2]महौषधिविधिलब्धजीवितानुजसमाश्लेषसुखलब्धमनोरथः [3]समेधमानसमरकौतुकोपलम्भसंरम्भोदञ्चितपुलककञ्चुकिताकृतिर्दाशरथिरधिसङ्गरममराधिपसारथिनानीत[4]मतिविशङ्कटं रथमपि कङ्कटकं शतक्रतोरनुग्रहान्मातलिना समग्रहीत्।

अयं चेति। अयम् दाशरथिः श्रीरामश्च पुनः भूयः, पूर्वमेकवारमानीतत्वादितिभावः, अञ्जनासुतेन हनूमता समानीतस्य महीधरस्य ओषधिपर्वतस्य महौषधीनाम् सञ्जीविन्यादीनां विधिना सुषेणकृतोपयोगेन लब्धजीवितस्य प्राप्तजीवनस्य अनुजस्य लक्ष्मणस्य समाश्लेषसुखेन आलिङ्गनजन्यानन्देन लब्ध-

१. 'अञ्जनोसुतं' इति पाठा०। २. 'महौषधिजीवितानुजाश्लेष' इति पाठा०।
३. 'समेधमानमानसः' इति पाठा०।
४. 'अतिविशङ्कटं कमपि रथं कङ्कटमप्यनुग्रहाय शतक्रतोरग्रहीत् इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोरथः प्राप्ताभिलाषः, अत एव समेधमानः प्रवर्धमानो यः समरकौतुकोपलम्भ-संरम्भः समरकुतूहलप्राप्तिसंभ्रमस्तेन उदञ्चिताः उद्गता ये पुलकाः रोमाञ्चास्तैः कञ्चुकिता कवचिता आच्छादितेत्यर्थः आकृतिर्यस्य स तथोक्तः, अधिसंगरम्-रणे (विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः) शतक्रतोः इन्द्रस्य अनुग्रहात् कृपावशात् अमराधिपसारथिना इन्द्रसूतेन मातलिना आनीत् उपहृतम् अतिविशङ्कटम् अतिविशालं ('विशङ्कटं पृथुबृहद्विशालं पृथुलं महत्' इत्यमरः) रथं स्यन्दनं कङ्कटकम् कवचमपि समग्रहीत् स्वीकृतवान्। हनूमताऽऽनीतस्यौषधिपर्वतस्योषधिप्रयोगेण-लब्धसंज्ञं लक्ष्मणमालिङ्ग्य पूर्णाभिलाषो रामो युद्धौत्सुक्येन पुलकावृतकायो मातलिद्वारा इन्द्रप्रेषितं रथं कवचं चाग्रहीदिति सरलार्थः।

हनूमान् के द्वारा दुबारा लाये गये ओषधिपर्वत की ओषधियों के विधिवत् प्रयोग से पुनर्जीवन को प्राप्त लक्ष्मण के आलिङ्गन से जनित सुख से पूर्णाभिलाष युद्ध कूतूहल की प्राप्ति से बढ़ती हुई उतावली से उत्पन्न रोमाञ्च से आच्छादित-शरीर राम ने युद्ध क्षेत्र में इन्द्र की कृपा से मातलि द्वारा लाये गये विशाल रथ और कवच को ग्रहण किया।

अन्योन्यस्य सदृशलक्ष्यमिलनादालक्ष्यशौण्डीर्ययोः
शस्त्राशस्त्रि समुन्मिषत्पुलकयोः सश्लाघयोः साहसे।
जाते जीवितसङ्कटे [1]विहरतोर्मूर्च्छासु विश्राम्यतो-
रश्रान्तं रघुवीरपङ्क्तिमुखयोरासीदसीमा रणः॥ ८३॥

अन्योन्यस्येति। अन्योन्यस्य परस्परस्य सदृशलक्ष्यमिलनात् तुल्यबलप्रतिभटमिलनात् आलक्ष्यशौण्डीर्ययोः आलक्ष्यम् ईषद्दृश्यं शौण्डीर्यं ययोस्तयोः, द्वयोस्तुल्यपराक्रमत्वात्कोऽपि स्वशौर्यं प्रदर्शयितुं न प्रभुरित्येवं भूतयोस्तयोरित्यर्थः, शस्त्रैःशस्त्रैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तमिति शस्त्राशस्त्रि तस्मिन् युद्धे समुन्मिषन्तः समुत्पद्यमानाः पुलकाः रोमाञ्चा ययोस्तयोः, साहसे साहसिककार्ये सश्लाघयोः प्रशंसापरयोः द्वयोः कोऽपि साहसकार्यमकरोत् तदा परस्तं प्राशंसत् इत्येवंभूतयोस्तयोरित्यर्थः। जीवितसङ्कटे प्राणसंशये जाते समुत्पन्ने विहरतोः युद्धक्षेत्रे सञ्चरतोः, मूर्च्छासु प्रहारजनितमोहदशासु विश्राम्यतोः विश्रामं कुर्वतोः रघुवीरपङ्क्तिरथयोः रामरावणयोः अश्रान्तम् सततम् असीमा निरवधिः रणः युद्धम् आसीत् अभवत्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ८३॥

१. 'विहसतोः', 'विरहतोः' इति च पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक दूसरे को समान प्रतिभट मिल जाने से दोनों अपने-अपने पराक्रम का प्रकर्ष अच्छी तरह दिखा नहीं पा रहे थे, शस्त्रों-शस्त्रों के प्रहारों से प्रवृत्त उस युद्ध में दोनों के रोमाञ्च हो रहे थे, साहस का कार्य करने पर एक दूसरे की प्रशंसा करते थे, प्राणसंशय उत्पन्न होने पर भी युद्ध भूमि में ही विहार करते थे, (केवल) मूर्च्छा की ही दशा में विश्राम करते थे, इस प्रकार राम और रावण का अविच्छिन्न निरवधि युद्ध हो रहा था ॥८३॥

अथ तयो[1]रविश्रान्तविमुक्तदिव्यास्त्रयोराखण्डलवृत्रनिभयोरालूनेषु मार्गणेष्वभङ्गुरपरस्पर[2]विवरमार्गणेषु, [3]विच्छिन्नेषु धनुर्गुणेष्वव्याहत-सहजसाहस[4]गुणाधीनेषु धुरीणेषु यानेषु निरपाय[5]समराभियानेषु, निर्भिन्ने सांयुगीने च रथे [6]निर्वैकल्यविजयमनोरथमजायत [7]यशोधन-मायोधनम् ।

अथेति । अथानन्तरम्, आखण्डलवृत्रनिभयोः इन्द्रवृत्रासुरयोरिव, अविश्रान्तविमुक्तदिव्यास्त्रयोः अविच्छिन्नप्रयुक्तदिव्यशरयोः, तयोः रामरावणयोः अभङ्गुरपरस्परविवरमार्गणेषु सर्वकालमन्योन्यमर्मस्थानान्वेषणसंलग्नेषु मार्गणेषु शरेषु (मार्गणौ सायकार्थिनौ' इत्यमरः) आलूनेषु खण्डितेषु सत्सु, धनुर्गुणेषु चापमौर्वीषु ('मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः) विच्छिन्नेषु द्विधाकृतेषु सत्सु, अव्याहतः अप्रतिहतो यो सहजः स्वभावसिद्धः साहसगुणः साहसाख्यगुणस्तदायत्तेषु तदधीनेषु ('अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः) धुरीणेषु धुरन्धरेषु यानेषु रथाश्वेषु निरपायसमराभियानेषु निर्बाधं युद्धाय प्रस्थितेषु सत्सु, सांयुगीने संयुगे साधुरिति सांयुगीनस्तस्मिन्, युद्धोपयोगिनीत्यर्थः रथे निर्भिन्ने विदलिते सति, निर्वैकल्यः वैकल्यरहितः अविकल इत्यर्थः; विजयस्य अभिलाषो यस्मिंस्तत्, यशोधनम् यश एव धनम् प्रियतमं वस्त्वित्यर्थः, यस्मिँस्तत्तथोक्तम्, यशस्करमित्यर्थः, आयोधनम् युद्धम् अजायत अभवत् ('युद्धमायोधनं जन्यम्' इत्यमरः) ।

इसके बाद इन्द्र और वृत्रासुर के समान, लगातार दिव्यास्त्रों का प्रयोग

---

१. 'अश्रान्तमुक्त' इति पाठा० । २. 'विजय' इति पाठा० ।
३. 'वाग्गणेषु विच्छिनेषु' इति पाठा० । ४. 'गुणनिकृत्तेषु' इति पाठा० ।
५. 'समरामिहतिनिर्भिन्ने' इति पाठा० । ६. परस्परगर्वकल्प' इति पाठा० ।
७. 'भुजायतयशोधन' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने वाले राम और रावण का यशस्कर युद्ध होता रहा, जिसमें अविच्छिन्न-भाव से परस्पर मर्मस्थान की ताक में लगे वाणों के खण्डित हो जाने पर, धनुष की डोरी कट जाने पर, अप्रतिहत स्वाभाविक साहस के वशवर्ती धुरन्धर रथाश्वों के निर्बाधभाव से युद्धार्थ आगे बढ़ने पर युद्धोपयोगी रथ के टूट जाने पर भी विजय की अभिलाषा पूर्ववत् अविकल बनी रही।

तूणीमुखात्त्वरितमुद्धरणे गुणेन
संयोजनेऽप्यथ शरस्य विमोचने वा।
[1]यत्र व्यलोकि तदधीन इवातिवेगा-
ल्लोकेन राघवकरश्चिरमालुलोके ॥ ८४ ॥

तूणीमुखादिति। तूणीमुखात् निषङ्गविवरात् त्वरितम् झटिति शरस्य बाणस्य उद्धरणे निष्कासने, गुणेन धनुर्मौर्व्या ('मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः) संयोजने सन्धाने अथ अनन्तरम् विमोचने विमोक्षणे च, यत्र यस्मिन् युद्धे राघवकरः श्रीरामहस्तः लोकेन दर्शकजनेन व्यलोकि दृष्टः (तदा) अतिवेगात् वेगातिशयात् तदधीनः शरपराधीन इव (स करः) चिरम् बहुकालं यावत् आलुलोके दृष्टः। तूणीरमुखात् शरस्य निष्कासने, तस्य मौर्व्या संयोजने ततस्तद्विमोचने व्याप्रियमाणं रामस्य करं लोको दृष्टवान् तदा वेगातिशयेन तं करं बाणानुवर्तिनमिव मन्यमानस्तल्लाघवं साश्चर्यं चिरं पश्यन्नेव तस्थावित्याशयः। इति मूलपाठानुवर्तिनी व्याख्या। व्याख्यातृत्वेन प्रसिद्धैः पूज्यपादै रामचन्द्रमिश्रैस्तु श्लोकेऽस्मिन् 'व्यलोकि' इतिपदमसङ्गतमधिकं चेति प्रतीत्या 'यत्राविलोकितदशास्यमिवातिवेगात्' इति तृतीयचरणं कल्प्यते, ततश्च—तूणीमुखात्त्वरितमुद्धरणे, गुणेन संयोजनेऽप्यथ शरस्य विमोचने वा, यत्र लोकेन अतिवेगात् राघवकरः चिरम् चिरेण बहुप्रयासानन्तरम् आलुलोके, दशास्यस्तु बाणाच्छन्नतया नैवालुलोके, अविलोकितदशास्यमतिवेगाद्धेतो राघवकरश्चिरमालुलोके इत्यर्थः क्रियते। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८४ ॥

(१) जिस युद्ध में शीघ्र तरकस से बाण निकालने, उसे धनुष की डोरी से जोड़ने तथा बाण छोड़ने में संलग्न राम के हाथ को लोगों ने देखा (तो)

---

१. 'यत्राविलोकितदशास्य' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेगातिशय के कारण बाण का अनुवर्ती-सा प्रतीत होने वाले उस हाथ को (साश्चर्य) चिरकाल तक देखते (ही) रह गये।

(२) श्लोक के तृतीय चरण का 'यत्राविलोकितदशास्यमिवातिवेगात्'— ऐसा पाठ मानने पर शीघ्र तरकस से बाण निकालने, उसे धनुष की डोरी से जोड़ने तथा बाण छोड़ने में संलग्न राम के हाथ को तो लोग (बहुत प्रयास करने पर) बड़ी देर में देख पाते थे और रावण तो बाणों से आच्छादित होने के कारण बिल्कुल दिखायी ही नहीं पड़ता था ॥ ८४ ॥

अर्धोदीरितवीरवादमहरद्रामो यदस्त्रैः क्षणा-
तेनैवाङ्कुरता मुखेन जगदे शेषं च लङ्कापतेः।
साम्ये सत्यपि [1]चारुशारमुभयोर्धानुष्कमायाविनो-
[2]विच्छिन्नाननदर्शनात्समभवद्व्रीडा रणे रावणे ॥ ८५ ॥

अर्धोदीरितेति । रामः अर्धोदीरितवीरवादम् अर्धोदीरितः अर्धोक्तो वीरवादः 'छिन्धिभिन्धि' इत्यादिरूपो वीरालापो येन तत् तथोक्तं यद्रावणमुखम् अस्त्रैः शरैः अहरत् अच्छिनत्, क्षणात् क्षणेन अङ्कुरता पुनः प्ररोहता लङ्कापतेः रावणस्य तेनैव छिन्नप्ररूढेनैव मुखेन शेषम् पूर्वोक्तवीरालापावशिष्टार्धं च जगदे उक्तम् । चारुशारम् चारुः चतुरः शारः युद्धगतिविशेषो यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा उभयोः द्वयोः धानुष्कः धनुर्धरो रामः, मायावी मायापटुः रावणश्च तयोः साम्ये रणकौशलेन सादृश्ये सत्यपि रणे युद्धे विच्छिन्नस्य रामास्त्रेण विदलितस्य आननस्य मुखस्य दर्शनात् अवलोकनात् रावणे व्रीडा लज्जा समभवत् अजायत । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८५ ॥

रावण के मुख ने वीरवाद का आधा अंश ही उच्चारण किया था कि राम ने उसे बाण से काट गिराया किन्तु तुरन्त वह फिर अङ्कुरित हो गया और उसने आधे शेष वीरवाद का उच्चारण कर दिया । युद्ध में चतुरगति विशेष की दृष्टि से यद्यपि धनुर्धर राम और मायावी रावण में समानता ही थी फिर भी रावण भूमि पर जब अपने कटे सिर देखता था उस समय (अपना पराभव समझ कर) लज्जित हो जाता था ॥ ८५ ॥

---

१. 'चातुरीभिरुभयोः' इति पाठा० ।
२. 'विच्छिन्नाननदर्शनेन समभूत' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशाननशरक्षतिक्षरदसृग्झरीबुद्बुदै-
स्तरङ्गितमहेन्द्रकङ्कटसहस्रचक्षुःपथः ।
रणे [1]रघुकुलोद्भवः क्षणममानि वैमानिकै-
यथा दशशतेक्षणो बलरुषा कषायेक्षणः ॥ ८६ ॥

दशाननेति । दशाननशरैः रावणविमुक्तबाणैः याः क्षतयः आघाताः ताभ्यः क्षरन्त्यः वहन्त्यो या असृक्झर्यः रक्तप्रवाहास्तासां बुद्बुदैः तरङ्गितः समभिव्याप्तः महेन्द्रकङ्कटः इन्द्रप्रेषितनिजोरश्छदस्तत्र सहस्रं चक्षुः पथाः बुद्बुदरूपनेत्रगोलका यस्य स तथोक्तः, रघुकुलोद्भवः श्रीरामः रणे युद्धे क्षणं वैमानिकैः देवैः बले बलाख्येऽसुरे रुषा कोपेन कषायेक्षणः शोणितलोचनः दशशतेक्षणो यथा सहस्राक्ष इन्द्र इव (इत्युत्प्रेक्षा) अमानि मन्यते स्म । रावणप्रहृतैरस्त्रै र्विदीर्णेभ्यो रामाङ्गेभ्यः क्षरद्भिर्बुद्बुदाकारैः शोणितै रामधृतेन्द्रकवचं व्याप्तमभूत् तदानीं बुद्बुदरूपसहस्रनेत्रगोलकैरिन्द्रकवचस्य व्याप्ततया बलोपरि कोपेन रक्ताक्षः सहस्राक्ष इव रामो ददृश इत्याशयः । पृथ्वी वृत्तम् ॥ ८६ ॥

रावण के चलाये गये बाणों के घावों से बहते रक्तप्रवाह के बुद्बुदों से व्याप्त अतएव (बुद्बुदरूप) हजार नेत्र गोलकयुक्त इन्द्रकवच धारण किये हुए राम को युद्ध में, देवों ने ऐसा समझा कि बल नामक असुर पर कुपित होने से रक्ताक्ष सहस्रनयन इन्द्र हों ॥ ८६ ॥

तदनु वारुणेन वैश्वानरं वैनतेयेन वातन्धयं वायव्येन वारिदं [2]प्राभाकरेण तामिस्रं माहेन्द्रेण दानवं [3]माहेश्वरेण वैष्णवं च परस्परमेवमस्त्रमस्त्रेण भिन्दानयोरनयोरनिशमाहवाग्रहादविरतान्यहानि सप्त व्यतीयुः ।

तदन्विति । तदनु तस्मात्परतः, वारुणेन जलवर्षिणा वरुणदेवताकेनास्त्रेण वैश्वानरम् आग्नेयास्त्रम्, वैनतेयेन गारुडेनास्त्रेण वातन्धयम्, नागास्त्रम्, वायव्येन वायुदेवताकेनास्त्रेण वारिदम् मेघदेवताकमस्त्रम्, प्राभाकरेण सूर्यदेवताकेनास्त्रेण तामिस्रम् अन्धकारजनकमस्त्रम्, माहेन्द्रेण महेन्द्रदेवताकेनास्त्रेण दानवम् दानवास्त्रम्, माहेश्वरेण महेश्वरदेवताकेनास्त्रेण वैष्णवम् विष्णुदेवता-

---

१. 'रघुकुलोद्वहः' इति पाठा० । २. 'नैशाकरेण' इति पाठा० ।
३. 'वैष्णवीयेन माहेश्वरं च' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रमस्त्रं च इत्येवमुक्तरीत्या अस्त्रम् वैश्वानरादिकम् अस्त्रेण वारुणादिनास्त्रेण परस्परम् भिन्दानयोः छिन्दतोः अनयोः रामरावणयोः अनिशम् निरन्तरम् आहवाग्रहात् युद्धभिनिवेशात् अविदितानि अज्ञातानि सप्त अहानि दिनानि व्यतीयुः अतिक्रान्तानि ।

इसके बाद वारुण अस्त्र से आग्नेय अस्त्र को, गरुडास्त्र से नागास्त्र को, वायव्य अस्त्र से मेघास्त्र को, सूर्यास्त्र से अन्धकारास्त्र को, माहेन्द्र अस्त्र से दानव अस्त्र को, माहेश्वर अस्त्र से वैष्णव अस्त्र को, इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के अस्त्र को अपने अस्त्र से काटते हुए राम और रावण के रण में सात दिन युद्धाभिनिवेश के कारण अज्ञातरूप में बीत गये ।

शस्त्राशस्त्रिसमुत्सुकोऽपि दयितां संचिन्त्य [1]पर्याकुला-
मस्त्रेण ज्वलता विधेरपुन[2]रुन्मेषेण तन्मस्तकान् ।
[3]रामः कन्दलितान्मुहुर्मुहुरवच्छेदेऽपि लङ्कापते-
रातङ्केन समं समस्तजगतां चिच्छेद सीतापतिः ॥ ८७ ॥

शस्त्राशस्त्रीति । शस्त्रैश्च शस्त्रैश्च प्रहृत्येद युद्धं प्रवृत्तमिति शस्त्राशस्त्रि प्रहरणं तत्र समुत्सकः उत्कण्ठितोऽपि, रावणेन सह सततं सप्तदिनानि युद्धमानोऽप्यनिभृतमनास्तथापि, दयिताम् प्रियां सीतां पर्याकुलाम् विरहविह्वलां सञ्चिन्त्य विभाव्य सीतापतिः श्रीरामः ज्वलता दीप्यमानेन, न पुनः उन्मेषः प्रयोगो यस्य तेन सकृत्प्रयोगेणैव शत्रुक्षयकारितया पुनः प्रयोगायोग्येनेत्यर्थः अमोघेनेति यावत्, विधेः अस्त्रेण ब्रह्मास्त्रेण, मुहुर्मुहुः पुनः पुनः अवच्छेदेऽपि पूर्वमन्यैरस्त्रैश्छेदने कृतेऽपि कन्दलितान् पुनः पुनः प्ररूढान् लङ्कापतेः रावणस्य तन्मस्तकान् तानि शिरांसि समस्तजगताम् सर्वलोकानाम् आतङ्केन रावणाजायमानेन भयेन समं सह चिच्छेद विदारितवान् । रामो रावणं हत्वा सकललोकान् भयमुक्तानकरोदित्यर्थः । यद्यपि रावणेन सह युद्धमानो मैथिलीप्राणनाथोऽतृप्तमना एवासीत्तथापि रणकेलिपरायणतया विलम्बे क्रियमाणे विरहाकुलायाः प्रियायाः पुनः क्लेशो भविष्यतीति विभाव्य, पुनः पुनः खण्डितान्यपि पुनः प्ररूढानि रावणस्य शिरांसि, समस्तलोकभयमपसारयन्, दीप्यमानेनामोघेन ब्रह्मास्त्रेण

१. 'चिन्ताकुलम्' इति पाठा० । २. 'उन्मेषं निमेषेण सः' इति पाठा० ।
३. 'मूर्ध्नः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिच्छेदेति सरलार्थः । अत्र रावणशिरश्छेदस्य जगदातङ्कछेदस्य च कार्यकारण भावेन भिन्नकालीनत्वेऽपि सममित्येककालीनत्वाभिधानात् कार्यकारणपौर्वापर्यविपर्ययनिबन्धनातिशयोक्तिमूला सहोक्तिरलङ्कारः । 'सहार्थस्य बलादेकं यत्र स्याद्वाचकं द्वयोः सा सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत्' ॥ इति लक्षणात् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८७ ॥

शस्त्रमार युद्ध में उत्सुकता रखने पर भी विरहाकुल सीता को ध्यान में रखकर मैथिलीप्राणनाथ राम ने [एक बार के प्रयोग से ही शत्रुसंहारक होने के कारण] पुनः प्रयोग की अपेक्षा न रखनेवाले [अमोघ] जाज्वल्यमान ब्रह्मास्त्र से, रावण के जो सिर बार-बार पहिले काटे जाने पर भी फिर पनप उठते थे, उन सिरों को समस्त लोकों के भय के साथ ही काट दिया ॥

रक्षःपतौ पतति लब्धमनोरथाना-
मातन्वतां दिविषदामथ पुष्पवर्षम् ।
श्लाघापदं समजनिष्ट परं न रामः
[1]कामोऽपि चाकलितशूर्पणखाविकारः ॥ ८८ ॥

रक्षःपताविति । रक्षःपतौ राक्षसराजे रावणे पतति भूमौ निपतिते सति अथानन्तरम्, लब्धमनोरथानाम् प्राप्ताभिलाषाणामत एव पुष्पवर्षम् कुसुमवृष्टिम् आतन्वताम् कुर्वतां दिविषदाम् देवानां परम् केवलं रामः श्लाघापदम् प्रशंसास्पदं न समजनिष्ट न जातः, किन्तु आकलितशूर्पणखाविकारः आकलितः सम्पादितः शूर्पणखायाः विकारः कर्णनासाच्छेदनरूपो येन स तथोक्तः, कामोऽपि श्लाघापदम् प्रशंसाभाजनं समजनिष्ट संजातः । रावणे मृते सति पुष्पवृष्टिं कुर्वन्तो देवाः केवलं राममेव न प्रशशंसुरपि तु काममपि शश्लाघिरे, यः शूर्पणखां पीडितां कृत्वा रतियाच्ञायै रामसमीपे संप्रेष्य लक्ष्मणद्वारा तत्कर्णनासाच्छेदनं कारयित्वा सीतापहारिणो रावणस्य वधे सहायकोऽभूदिति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८८ ॥

रावण के धराशायी होने पर मनोरथ पूर्ण होने से पुष्पवृष्टि करने वाले देवों ने केवल राम की ही नहीं, अपितु [शूर्पणखा को पीडित कर राम के पास पहुँचाने से] शूर्पणखा के कर्णनासाच्छेदन रूप विकार का सम्पादन करने वाले कामदेव की भी बड़ी प्रशंसा की ॥ ८८ ॥

१. 'कामोपचेः कलित' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनन्तरमालिङ्गित[1]रणवसुन्धरं शरतल्पमधिशयानमधिगतनिषङ्गोपधानं यातुधानपतिमधिगत्य [2]निपत्य च भुवि सोदर्यस्नेहसुलभवैधुर्यः कदर्योऽहमिति विहितनिजदूषणो विभीषणश्चिरतरं विललाप।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् रावणशिरश्छेदात् परतः, आलिङ्गितरणवसुन्धरम् आलिङ्गिता रणवसुन्धरा युद्धभूमिर्येन तादृशम्, युद्धभूमौ निपतितमित्यर्थः। शरतल्पम् बाणशय्यामधिशयानम् ('अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम्) ('तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्यमरः) अधिगतनिषङ्गोपधानम् प्राप्ततूणीरोपबर्हम्। यातुधानपतिम् राक्षसराजं रावणमधिगत्य प्राप्य भुवि च निपत्य पतित्वा सोदर्यस्नेहसुलभवैधुर्यः सोदरे भ्रातरि यः स्नेहः प्रीतिस्तेन सुलभम् सुखेन लभ्यम् अवाप्तम् वैधुर्यम् वैक्लव्यं यस्य स तथोक्तः भ्रातृस्नेहेन व्याकुल इत्यर्थः। अहम् विभीषणः कदर्यः स्वार्थवशेन भ्रातृवधप्रयोजकतया क्षुद्रः (अस्मि) ('कदर्यं कृपणक्षुद्र'—इत्यमरः) इत्येवं प्रकारेण विहितनिज दूषणम् कृतात्मनिन्दः सन्, चिरतरम् बहुकालं विललाप विलापं कृतवान्।

इसके बाद भूलुठित, शरशय्या पर सोये हुए, तरकस की तकिया लगाये हुए राक्षसराज रावण के पास आकर और [अत्यन्त दुःख से] पृथ्वी पर गिर कर, भातृ-प्रेम से विकल हो 'मैं अत्यन्त नीच हूँ' इस तरह अपनी निन्दा करता हुआ विभीषण बड़ी देर तक (इस प्रकार से) विलाप करता रहा—

अयि समसुखदुःखैरन्वितं[3]बन्धुवर्गं
सहजमपि भवन्तं मुञ्चतः साहसेन।
कुलविशसनहेतोः कूटधर्मानुवृत्ते-
र्दशमुख! मम यावज्जीवमासीत्कलङ्कः॥ ८९॥

अयीति। अयि दशमुख हे रावण, समसुखदुःखैः समानि तुल्यतया भोक्तव्यानि यानि सुखदुःखानि तैरन्वितम् तुल्यभावेन सुखदुःखानुभवपरायणमित्यर्थः, बन्धुवर्गम् पुत्रमित्रकलत्रादिबन्धुसमुदयम्, सहजम् सहोदरं भवन्तमपि साहसेन अविमृश्यकारितया मुञ्चतः परित्यजतः कुलविशसनहेतोः कुलविध्वंसहेतुभूतस्य कूटधर्मानुवृत्तेः कूटधर्मे सोदरं परित्यज्य परसमाश्रयण-

१. 'रण' इति नास्ति क्वचित्।
२. 'निपत्य च सोदर्यहार्यसौहार्दसुलभ' इति पाठा०।
३. 'बन्धुवर्गः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूपमिथ्याचरणे अनुवृत्तिरनुसरणं यस्य तादृशस्य मम यावज्जीवम् जीवन-पर्यन्तम् ('यावदवधारणे' इत्यव्ययीभावः) कलङ्कः स्वार्थवशेन सहोदरमयं घातितवानित्येवं रूपोऽपवादः आसीत् अजायत ॥ मालिनी वृत्तम् ॥ ८९ ॥

हे दशमुख, सुख दुःख में समान भाव से साथ देने वाले बन्धुवर्ग तथा तुम्हारे-जैसे सहोदर का त्याग करने वाले, कुलनाशक तथा आत्मीयजन त्याग पूर्वक परसमाश्रयणरूप कूटधर्मानुगामी मेरे-जैसे व्यक्ति के लिए जीवन भर का कलङ्क हो गया ॥ ८९ ॥

आर्यस्य रक्षितुमसूननुजः स एकः
प्राणानमुञ्चत परं युधि कुम्भकर्णः ।
त्वज्जीवहृत्स्वयमहं[1] निजजीवहेतो-
रद्यापि हन्त सहते हतको विधिर्माम् ॥ ९० ॥

आर्यस्येति । आर्यस्य पूज्यस्य भवतः असून् प्राणान् रक्षितुम् त्रातुं सः प्रसिद्धः एकः परम् केवलम् अनुजः कुम्भकर्ण एव प्राणान् युधि अमुञ्चत अत्यजत् । स्वपूज्यप्राणरक्षायै त्यक्तस्वप्राणः कुम्भकर्ण एव तवानुजो धन्य इत्यर्थः । अहम् विभीषणस्तु निजजीवहेतोः स्वप्राणत्राणाय ('षष्ठी हेतु प्रयोगे' इति षष्ठी) स्वयम् त्वज्जीवहृत् तव प्राणहर्ता (अतः) हतको नीचो विधिः दैवम् ('विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः) अद्यापि ईदृगनुचितकृत्यस्या-नुष्ठितत्वेऽपि माम् भ्रातृद्रोहिणं सहते मृष्यति हन्त ! विधिरेतादृशानुचित कारिणं भ्रातृद्रोहिणं मां न मारयतीति खेदजनकोऽयं विषय इत्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९० ॥

पूज्य आप के प्राणों की रक्षा के लिए अपना प्राण देने वाला कुम्भकर्ण ही केवल आप का (सच्चा) अनुज हुआ, मैंने तो अपने प्राणों की रक्षा के हेतु स्वयम् आपके प्राण ले लिये । खेद की बात तो यह है कि ऐसा कुकृत्य करने पर भी दैव (न जाने क्यों) मुझे क्षमा कर रहा है—जीवित रखे हुए है ॥९०॥

इत्येवमस्मिन्विलपति विदितवृत्तान्ता [2]शुद्धान्तात्करुणमारटन्तीभि रन्तरितयूथपाभिः करिणीभिरिव तरुणीभिः [3]सह [4]समागत्य सद्येस-

१. 'मम' इति पाठा० ।
२. 'शुद्धान्तात्सकरुणं' इति पाठा०
३. 'समम' इति पाठा० ।
४. 'समारत्य' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मरभापतितमशनिहतमिव मन्दरं [1]दशकन्धरं नाथं निरीक्ष्य निहतोपघ्नेव लता निपतन्ती विलपन्ती नाथ नाथेत्यपरिमेयविषादा [2]निषादाहतदयितविधुरीकृतकुररीवामन्दं चक्रन्द मन्दोदरी।

इत्येवमिति। इत्येवम् अनेन उक्त प्रकारेण अस्मिन् विभीषणे विलपति विलापं कुर्वति सति, विदितवृत्तान्ता ज्ञातरावणमरणवार्त्ता करुणम् दीनभावेन आरटन्तीभिः आक्रोशन्तीभिः अन्तरितयूथपाभिः तिरोहितयूथनाथाभिः, अन्यत्र दिवंगत-पतिकाभिः हस्तिनीभिरिव तरुणीभिः अन्याभिः रावणस्य स्त्रीभिः सह शुद्धान्तात् अवरोधात् ('शुद्धान्तश्चावरोधश्च' इत्यमरः) समागत्य रणभूमिं प्राप्य मध्येसमरम् समरक्षेत्रमध्ये आपतितम् निपतितम् अशनिहतम् वज्रविदारितम् मन्दरम् मन्दरनामकं पर्वतमिव (इत्युपमा) दशकन्धरम् नाथम् पतिं रावणं निरीक्ष्य दृष्ट्वा निहतोपघ्ना निहतः विच्छिन्नः उपघ्नः आश्रयवृक्षः यस्यास्तादृशी लतेव ('स्यादुपघ्नोऽन्तिकाश्रये' इत्यमरः) निपतन्ती भुवि निपतिता नाथ नाथ इति विलपन्ती आक्रोशन्ती अपरिमेय विषादा निरवधिशोका निषादेन व्याधेन आहतः विद्धो दयितः प्रियो यस्यास्तथोक्ता अत एव विधुरीकृता विह्वलतां प्रापिता कुररीव उत्क्रोशखगाङ्गनेव ('उत्क्रोशकुररौ समौ' इत्यमरः) मन्दोदरी रावणाग्रमहिषी अमन्दम् उच्चैः चक्रन्द चुक्रोश, विललापेत्यर्थः। ('विधुरं पत्यपेते स्यात्कष्टविश्लिष्टयोरपि' इति वैजयन्ती।

इस प्रकार विभीषण के विलाप करते रहने पर रावणबध का वृत्तान्त जानकर करुण रोदन करती हुई, मरे यूथपति गजेन्द्र की स्त्रियों करिणियों की तरह, रावण की अन्य स्त्रियों के साथ अन्तःपुर से आकर युद्धक्षेत्र में गिरे हुए, वज्राहत मन्दराचल के समान अपने पति रावण को देखकर आश्रय भूत वृक्ष विच्छिन्न हो जाने पर लता के समान पछाड़ खाकर गिरती हुई, नाथ नाथ चिल्लाती हुई मन्दोदरी निषाद द्वारा पति के मारे जाने पर विह्वल की गयी कुररी की तरह जोर-जोर से विलाप करने लगी।

या वीक्षिताजनि पुरा यमराजधानी
वीर! त्वया [3]सकलदिग्विजयोत्सवेषु।

१. 'दशकंधरं समीक्ष्य' इति पाठा०। २. 'विषादाहता' इति पाठा०।
३. 'निखिलं' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तामद्य दुर्विधिबलेन समस्तलोक-
साधारणः पुनरुपैष्यसि हा किमेतत् ॥ ९१ ॥

येति । हे वीर, पुरा पूर्वं त्वया सकलदिग्विजयोत्सवेषु समस्तदिग्विजय-यात्रारूपमहोत्सवेषु, सकलदिग्विजयप्रसङ्गेनेत्यर्थः या यमराजधानी यमपुरी वीक्षिता दृष्टा अजनि अभूत्, ताम् यमराजधानीम् अद्य सम्प्रति दुर्विधिबलेन दुर्भाग्यवशेन समस्तलोकसाधारणः सकलजनवत् एक एव उपैष्यसि प्राप्स्यसि एतत् अवस्थान्तरं किम्! हा! यस्यां यमपुर्यां पुरा त्वं दिग्विजयप्रसङ्गेन ससैन्योऽगमस्तामेव यमपुरीमद्य मृत्वा साधारणजन इवैक एव पुनर्यास्यसि, कुत एषो दशाविपर्ययो जातः? धिग् दुर्दैवमीदृशं दशाविपर्ययकारिणम्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९१ ॥

हे वीर, जिस यमपुरी को तुम पहले केवल दिग्विजय के सिलसिले में [ससैन्य] देखा करते थे, दुर्भाग्यवश उसी यमपुरी में आज तुम सामान्य जन की तरह [अकेले] जा रहे हो। हाय! यह क्या हुआ! ॥ ९१ ॥

जनकः स्वयं दनुजवंशनायको दयितो जगत्त्रितयजैत्रशासनः।
तनयः पुरंदरजयीति गर्विता विधिनाहमेवमधुना विडम्बिता ॥ ९२ ॥

जनक इति। जनकः मम पिता मयः स्वयम् दनुजवंशनायकः दानव-कुलश्रेष्ठः, दयितः मम प्रियो रावणः जगत्त्रितयजैत्रशासनः जगत्त्रितयस्य लोकत्रयस्य जैत्रम् जयशीलं शासनम् आज्ञा यस्य स तथोक्तः, त्रैलोक्यविजेते-त्यर्थः, तनयः पुत्रो मेघनादः पुरन्दरजयी इन्द्रविजेता इति एवं प्रकारेण अहं गर्विता सञ्जातगर्वा गौरवान्विता जाता। अधुना इदानीं तु विधिना भाग्येन एवम् अनेन प्रकारेण सर्वसंक्षयेणेत्यर्थः विडम्बिता उपहसिता, विधिर्मा-मिदानीमपुत्रां मृतभर्तृकां च व्यदधादिति भावः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम् ॥९२॥

दानव-कुल-श्रेष्ठ स्वयं मय मेरे पिता, तीनों लोक पर आज्ञामात्र से विजय प्राप्त करने वाले मेरे पति रावण, इन्द्रविजेता मेघनाद सा मेरे पुत्र, इन सबसे मैं गर्विता गौरवान्विता थी किन्तु इस समय भाग्य, (सब का संहार हो जाने से) इस प्रकार मेरा उपहास कर रहा है॥ ९२ ॥

राजन्यधर्मविदुषोऽपि रघूद्वहस्य हत्वा यथाग्रजमथानुजपट्टबन्धः।
आरभ्य [1]वालिनमसंशयमाविरासीदिक्ष्वाकुवंशसहजः कथमेष धर्मः ॥

१. 'वालिमनयं कथम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजन्येति। राजन्याः क्षत्रियास्तेषां धर्मं विदुषः जानतः अपि रघूद्वहस्य रघुकुलश्रेष्ठस्य, अग्रजम् ज्येष्ठं भ्रातरं हत्वा अथ अनन्तरम् अनुजपट्टबन्धः अनुजस्य साम्राज्येऽभिषेकः, एषः ईदृशः इक्ष्वाकुवंशसहजः परमधर्मिष्ठतया विश्वविश्रुतस्य इक्ष्वाकुवंशस्य स्वभावसिद्धः धर्मः वालिनमारभ्य असंशयम् निःसन्देहम् कथं केन प्रकारेण आविरासीत् प्रादुर्भूतः। क्षात्रधर्मज्ञाता सन्नपि रघुकुलश्रेष्ठः श्रीरामोऽग्रजं वालिनं हत्वाऽनुजस्य सुग्रीवस्य राज्याभिषेकं कृतवान्, तदनन्तरं चाग्रजं रावणं हत्वा अनुजस्य विभीषणस्येदानीं राज्या-भिषेकं कर्तुमुद्यतः, तदिक्ष्वाकुकुलश्रेष्ठः सन्नपि रामः कथमीदृशमाचरति येन 'एषः परमधर्मिष्ठतया प्रसिद्धस्येक्ष्वाकुवंशस्य स्वभावसिद्धो धर्म एवेति लोको मन्य-तेत्यर्थः। श्रीरामस्यैतदाचरणं तत्कुलधर्मविरुद्धमिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

क्षात्रधर्म का ज्ञाता होकर भी राम का, बड़े भाई को मार कर छोटे को राज्याभिषिक्त करना निस्सन्देह ईक्ष्वाकुवंश का स्वभावसिद्ध धर्म हो गया है, जिसका श्रीगणेश बाली [को मार कर सुग्रीव को राज्याभिषिक्त करने] से होता है। ऐसा न जाने कैसे हुआ। [सम्भवतः राम के पास भी इसका जवाब न हो] ॥ ९३ ॥

अहह निहता लङ्का वालानलेन हनूमतः
परमवनिजापातिव्रत्यानलेन भवानपि।
सुखमहमिहासीना शोकानलेऽपि यदीदृशे
प्रभवति न मां हन्तुं प्रायः स एष [1]चितानलः ॥ ९४ ॥

अहहेति। अहहेति खेदव्यञ्जकमव्ययपदम्, ('अहहेत्यद्भुतेखेदे' इति विश्वः) हनूमतः वालानलेन पुच्छवह्निना लङ्का नाम पुरी निहता दग्धा, परम् तत्पश्चात् अवनिजा धरासुता तस्याः पातिव्रत्यं पतिव्रताधर्मं एवानलः वह्नि-स्तेन भवानपि रावणोऽपि निहतः हतः, अहम् मन्दोदरी तु इह अस्मिन् ईदृशे नितान्ततीव्रे शोकानले पतिपुत्रादिमरणजनितशोकाग्नौ अपि यत् सुखम् निर्विकारम् आसीना न दह्ये, प्रायः कदाचित् एषः पुरो दृश्यमानः सः चितानलः चितावह्निरपि माम् मन्दोदरीं हन्तुम् दग्धुं न प्रभवति न क्षमते, शोकानले सुखमासीनाऽहं चितानलेनापि दग्धुमशक्येति भावः।

---

१. 'चिन्तानलः' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अहह ! हनूमान् की पूँछ की आग से लङ्का जल गयी, उसके बाद धरासुता सीता के पातिव्रत्यरूप आग में आप भी जल कर मर गये किन्तु इस शोकानल में भी मैं सुख से बैठी हूँ, सम्भवतः यह चितानल (भी) मुझे जला कर मारने में असमर्थ है ॥ ९४ ॥

तदहमिदानीं [1]सायंदिने भगवतः सवितुः प्रभेव प्रविश्य जातवेदसं चन्द्रिकेव चन्द्रमसं तडिदिव तडित्वन्तं भवन्तमनुसरन्ती निर्वापयामि निरन्तरविरहदहनदह्यमानमात्मानम् ।

तदहमिति । तत् तस्मात्कारणात्, इदानीम् भवति विपन्ने सति, सायंदिने सायंकाले भगवतः सर्वसमर्थस्य सवितुः सूर्यस्य प्रभेव जातवेदसमग्निं प्रविश्य 'आदित्योऽस्तमयन्नग्निमनुप्रविशति' इति श्रुत्युक्तेरितिभावः । ('जातवेदास्तनूनपात्' इत्यग्निपर्यायेष्वमरः) चन्द्रमसम् चन्द्रं चन्द्रिका कौमुदीव ('चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः) तडिद्वन्तम् मेघ तडित् विद्युदिव अहम् मन्दोदरी भवन्तमनुसरन्ती अनुगच्छन्ती निरन्तरविरहदहनदह्यमानम् सततवियोगानलसन्ताप्यमानम् आत्मानम् निर्वापयामि शीतलीकरोमि । यथाऽस्तंगते सूर्ये तद्वियुक्ता तत्प्रभाऽग्निं प्रविशति तथैव भवदपायेऽधुनाऽहमपि पावकं प्रविश्य चन्द्रमसं चन्द्रिकेव मेघं विद्युदिव भवन्तमनुसरन्ती सततवियोगानलदह्यमानमात्मानं शीतली करिष्यामीत्यर्थः । पतिव्रताया मम भवता सार्धमग्निप्रवेश एव तादृग्विरहशोकानलनिर्वाणोपायः । 'मृते म्रियेत या नारी सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता' इत्युक्तिरिति भावः ।

इसलिए मैं इस समय, जैसे सायङ्काल में सूर्य की प्रभा आग में प्रवेश कर जाती है, उसी तरह पावक में प्रवेश कर, जैसे चन्द्रिका चन्द्रमा का, विद्युत् मेघ का, वैसे ही आपका अनुसरण करके निरन्तर विरहानल सन्तप्त अपनी आत्मा को शीतल करूँगी ।

इत्यादिकरुणपरिदेवनवतीं प्रजावतीं निवृत्य निर्वर्त्य च [2]निजाज्ञया निशाचरपतेर्यथाविधि समेधं पितृमेधं सविधमेधमानविषादं विभीषण-

---

१. 'सायंतनसमयइव सवितुः प्रभा भगवति प्रविश्य' इति पाठा० ।

२. 'निशिचरपतेर्यथाविधि निजाज्ञा पितृमेधसमेतं सविधम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मशेषराज्याधिपतिं विधातुमखिलतीर्थाहृतैरम्भोभिरम्भोधर इवदावदहनाकुलं वनस्पतिं रघुपतिरभ्यषिञ्चत् ।

इत्यादिति । इत्यादिकरुणपरिदेवनवतीम् एवमादिशब्दैः करुणं विलपन्तीम् प्रजावतीम् भ्रातृजायां मन्दोदरीम् ('प्रजावती भ्रातृजाया' इत्यमरः) निवृत्य चिताधिरोहणान्निवार्य, निजाज्ञया स्वनिदेशेन निशाचरपतेः राक्षसराजस्य रावणस्य यथाविधि यथाशास्त्रं समेधम् बुद्धिपूर्वकंपितृमेधम् मरणोत्तरकरणीयं पितृयशं च निर्वर्त्य सम्पाद्य सविधम् समीप एव एधमानविषादम् प्रवर्धमानभ्रातृमरणजन्यशोकं विभीषणम् अशेषराज्याधिपतिम् लङ्कासमस्तसाम्राज्याधीश्वरं विधातुम् कर्तुम् अखिलतीर्थाहृतैः अखिल तीर्थेभ्यः समस्तपुण्यतीर्थेभ्य आहृतैः आनीतैः अम्भोभिः वारिभिः, अम्भोधरः मेघः दावदहनाकुलम् दावानलदह्यमानम् वनस्पतिम् वृक्षमिव रामः अभ्यषिञ्चत् लङ्काराज्यपदेऽभिषिक्तवान् ।

इस प्रकार से करुण विलाप करती हुई अपनी भौजाई को विभीषण ने [अग्नि प्रवेश से] रोका तथा राक्षसेन्द्र रावण का बुद्धिपूर्वक विधिवत् पितृकार्य किया। ऐसा करने के बाद [भ्रातृमरणजनित] शोक से सन्तप्तहृदय समीपस्थ विभीषण को समस्त लङ्काराज्य का अधिपति बनाने के लिए समस्त तीर्थों से लाये गये जल से राम ने उसी तरह अभिषिक्त किया, जिस तरह मेघ दावानल से जलते हुए वृक्ष को सींचता है ।

अथ दशरथनन्दनाभिषेकादधिगतराज्यपदो विभीषणोऽयम् ।
अनुदिनमभिवृद्धमण्डलोऽभूदरुणकरामृत[1]पूरणो यथेन्दुः ॥ ९५ ॥

अथेति । अथ तदनन्तरम्, दशरथनन्दनाभिषेकात् श्रीरामकृताभिषेकात् अधिगतराज्यपदः प्राप्तसाम्राज्यप्रतिष्ठः, अयं विभीषणः, अनुदिनम् दिने दिने (वीप्सायामव्ययीभावः) उत्तरोत्तरमिति यावत् । अरुणकराः सूर्यकिरणा एव अमृतानि तैः पूरणम् सम्भरणं यस्य स तथोक्तः, सूर्यकिरणामृतसम्भृत इत्यर्थः, इन्दुर्यथा चन्द्र इव (इत्युपमा) अभिवृद्धमण्डलः प्रवृद्धराष्ट्रः, अन्यत्र प्रवृद्धबिम्बः, अभूत् । यथा सूर्यकिरणामृताप्यायितश्चन्द्रः पूर्णमण्डलो जायते तथा श्रीरामकृताभिषेकसमृद्धो विभीषणः पूर्णराष्ट्रोऽजायतेत्यर्थः ।

---

१. 'पूरणादिवेन्दुः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्यकरैरेव चन्द्रस्य प्रकाशमानत्वमुक्तं वराहमिहिरेण-'सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम् । क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः ॥' श्लेषसङ्कीर्णोपमा । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ९५ ॥

इसके बाद रामद्वारा अभिषेक कर राज्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया विभीषण उत्तरोत्तर सम्पूर्णराष्ट्र होने लगा, जैसे चन्द्रमा सूर्य किरण रूप अमृत से आप्यायित होकर पूर्णमण्डल होता है ॥ ९५ ॥

[1]ततः—

सीतामुदीक्ष्य निभृतेन विभीषणेन नीतामुदारगुणरूपवतीं सतीनाम् ।
देवस्य तत्क्षणमभूद्दशकण्ठकृष्टामानन्दशोकरसबन्धुरमन्तरङ्गम् ॥ ९६ ॥

ततः, सीतामिति । ततः विभीषणाभिषेकात् परतः, निभृतेन सौम्येन विभीषणेन आनीताम् अशोकवनिकातः रामसमीपम् प्रापिताम्, उदारगुण रूपवतीम् प्रशस्तगुणैः परमसौन्दर्येण च युक्ताम्, सतीनाम् (सती + इनाम्) सतीषु पतिव्रतासु इनाम् श्रेष्ठां दशकण्ठकृष्टाम् पूर्वं रावणेनापहृतां सीताम् उदीक्ष्य विलोक्य तत्क्षणम् तस्मिन् समये देवस्य रामस्य अन्तरङ्गम् हृदयम् आनन्दशोकरसबन्धुरम् प्रियादर्शनजनितानन्देन सीतानुभूतक्लेशविभावनाजनितविषादेन च परिपूर्णमभूत् । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९६ ॥

इसके बाद सौम्य विभीषण के द्वारा लायी गयी, प्रशस्तगुणरूपयुक्त, सतीशिरोमणि, रावण द्वारा पहिले अपहृता सीता को देखकर भगवान् राम का हृदय आनन्द तथा शोक रस से भर गया ।

[2]अनन्तरमरुन्धतीव पवित्रचारित्र[3]निधेरधिदेवता पतिदेवतेयमनादिपुंसोऽपि परस्य मर्त्यधर्मेण प्रत्यायनाय नायकस्य पुरः पुरंदरमुखान् बर्हिर्मुखान्पुरस्कृत्य भगवन्तमरविन्दासनमिन्दुकलेव पुनरुदेष्यन्ती तपनमिव दहनमनुजगाहे ।

अनन्तरमिति । अनन्तरम् सीताया रामसमीपागमनानन्तरम्, अरुन्धती तदभिधाना वसिष्ठभार्येव पवित्रचारित्रनिधेः परिशुद्धचारित्र्यसम्पदः अधिदेवता अधिष्ठातृदेवता, पतिदेवता पतिव्रता इयम् सीता अनादिपुंसः पुराणपुरुषस्य

१. 'ततः' इति नास्ति क्वचित् । २. 'तदनन्तरम्' इति पाठा० ।
३. 'निधिः' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परस्य परमात्मनः नायकस्य पत्युरपि मर्त्यधर्मेण मानवभावेन प्रत्यायनाय विश्वासोत्पादनार्थम् पुरः प्रथमं पुरन्दर मुखान् इन्द्रादीन् बर्हिर्मुखान् बर्हिः हुताशोऽग्निरित्यर्थः, मुखं येषां ते बर्हिर्मुखा देवा इत्यर्थः, तान् ('बर्हिः कुश हुताशयोः' इति विश्वः) देवानामग्निमुखत्वे 'अग्निमुखा वै देवाः' इति श्रुतिः प्रमाणम् भगवन्तम् अरविन्दासनम् कमलासनं ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य साक्षीकृत्य इन्दुकला चन्द्रकलेव पुनः भूयोऽपि उदेष्यन्ती उदयं लब्धुकामा तपनम् सूर्यमिव दहनम् अनलम् अनुजगाहे प्रविवेश। यथाऽमायां चन्द्रकला पुनः समृद्धकान्तिपूर्णोदयं लब्धु सूर्यं प्रविशति तथैव सीता सातिशयां पवित्रतां प्राप्तुमनलं प्रविवेशेति भावः। ('बर्हिर्मुखाः क्रतुभुजो गीर्वाणा दानवारयः' इत्यमरः)।

इसके बाद, अरुन्धती के समान पवित्र चारित्र्य सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवता परम पतिव्रता सीता ने अनादि पुरुष परमात्मा स्वामी राम को मनुष्य भाव से अपनी पवित्रता के विषय में प्रतीति कराने के लिए इन्द्रादि देवगण तथा ब्रह्मा को साक्षी करके अग्नि में प्रवेश किया, जैसे पुनः उदय प्राप्त करने के लिए चन्द्रकला (अमावास्या को) सूर्य में प्रवेश करती है।

प्राविक्षदर्चिषि परं निजशुद्धिहेतोर्देवी [1]विशुद्धचरिता [2]जनकस्य पुत्री।
अंहश्चिरं हि यदपावनवस्तुसङ्गात्त्यक्तः स्वयं तदमुना दमुना बभूव।९७।

प्राविक्षदिति। विशुद्धचरिता परमपवित्रचरिता देवी भगवती जनकस्य पुत्री सीता निजशुद्धिहेतोः आत्मशुद्ध्यर्थम् अर्चिषि अग्नौ प्राविक्षत् प्रविष्टा अभूत्, परम् किन्तु चिरम् बहुकालं यावत् अपावनवस्तुसङ्गात् सर्वदाहकतया अपवित्रवस्तुनिवहसम्पर्कात् यत् अंहः पापं (जातम्) तत् तेन (तदित्यव्ययं तृतीयार्थे) अंहसा पापेन दमुनाः अनलः ('सप्तार्चिर्दमुनाः शुक्रः' इत्यमरः) स्वयं त्यक्तः विमुक्तो बभूव। सीता 'अग्निर्मां शोधयेत्' इति मनसि कृत्वा वह्निं प्रविष्टा परं तदपेक्षयाऽप्यत्यन्तपवित्रतासम्पन्नायाः सीतायाः संसर्गात्, सर्वभक्षकत्वेन चिरमपावनवस्तुसम्पर्कजातं वह्निना यत्पापमर्जितं, वह्निः स्वयं तेन पापेन विमुक्तो भूत्वा परिशुद्धो बभूव। अत्र वह्नौ दुरितसम्बन्धतद्विमुक्त्योरसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥९७॥

---

१. 'पवित्र' इति पाठा०। २. 'जनकेन्द्रपुत्री' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पवित्र चरित्र देवी सीता ने अपनी पवित्रता के लिए अग्नि में प्रवेश किया था परन्तु वह स्वयं (सीता का सम्पर्क पाकर) चिरकाल तक (सर्वभक्षक होने के कारण) अपवित्र वस्तुओं के सम्पर्क से उत्पन्न पापों से छुटकारा पाकर शुद्ध हुई। (अग्नि सीता की कौन सी शुद्धि करती, सीता ने ही उसे परिशुद्ध किया) ॥९७॥

विशुद्धशीला[1]मनलेन सङ्गाद्विदेहजां तत्र विलोक्य सीताम् ।
प्रभां पुनः प्रत्युषसीव पूषा [2]प्रत्यग्रहीत्सोऽग्रसरो रघूणाम् ॥ ९८ ॥

विशुद्धशीलामिति । तत्र तस्मिन्नग्निप्रवेशसमये सः रघूणामग्रसरः रघुनायकः अनलेन अग्निना सङ्गात् सम्पर्काद्धेतोः विशुद्धशीलाम् परमपवित्रचरित्राम् विदेहजाम् जनकपुत्रीं सीताम्, अयोनिजामिति च गम्यते, विलोक्य उद्वीक्ष्य पूषा सूर्यः प्रत्युषसि प्रभातकाले प्रभाम् स्वद्युतिमिव पुनः प्रत्यग्रहीत् सहचरीभावेनाङ्गीकृतवान् । उपमाऽलङ्कारः । अनयोपमया सीतारामयोरत्यन्ताविनाभावो व्यज्यते । उपजातिवृत्तम् ॥ ९८ ॥

उस समय रघुनायक श्रीरामचन्द्र जी ने अग्नि के सम्पर्क से विदेहकन्या सीता को परमपवित्र वाली सिद्ध हुई देखकर उन्हें पुनः उसी प्रकार स्वीकार किया जैसे प्रभात के समय सूर्य अपनी प्रभा को विशुद्धशील समझ कर ग्रहण करता है ॥ ९८ ॥

अथ [3]दाशरथिरधिगतनिजप्रशंसाविधिना विधिना पुरः [4]प्रदर्श्यमानं [5]विमानगतं महारथं दशरथं प्रणिपत्य [6]प्रपद्य शिरसि तदनुशासनं पाकशासनवरप्रत्युज्जीवितैः प्रमुदितैर्हरिभिरनुगम्यमानः प्रमोदमानमनाः सुग्रीवेण सह भाषमाणं विभीषणं सकरुणमालोकयन्ननुजेन सीतया च सममयोध्यामभिगन्तुकामःकामचरं विमानवरमारुरोह कमपि कौबेरम् ।

अथेति । अथ सीतापरिग्रहानन्तरम्, दाशरथिः श्रीरामः अधिगतनिजप्रशंसाविधिना अधिगतः प्राप्तः निजप्रशंसाविधिः स्वस्तुतिविधानं येन स तथो-

१. 'अनलानुषङ्गात्' इति पाठा० । २. 'पर्यग्रहीत्प्राग्रसरः' इति पाठा० ।
३. 'उदारधीरविगत' इति पा० ४. 'प्रदृश्यमानम्' इति पाठा० ।
५. 'विमानाधिगतमहारथम्' इति पा० ६. 'प्रतिपाल्य च', 'प्रतिपद्य' इति च पा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्तेन, आत्मानं स्तुवतेत्यर्थः। विधिना ब्रह्मणा पुरः अग्रे प्रदर्श्यमानम् 'एषते पिता दशरथः' इति हस्तेन निर्दिश्यमानम् विमानगतम् विमानाधिरूढम् विमानमारुह्य आकाशेऽवस्थितमित्यर्थः, महारथम् महावीरं दशरथम् स्वजनकं प्रणिपत्य प्रणम्य तदनुशासनम् तस्य दशरथस्य अनुशासनम् आज्ञाम् 'अयोध्यां गत्वा राज्यभारं गृहाण' इतिलक्षणामाज्ञामित्यर्थः, शिरसि प्रपद्य प्राप्य तदाज्ञामङ्गीकृत्येत्यर्थः, पाकशासनवरप्रत्युज्जीवितैः इन्द्रदत्तवरेण प्राप्तपुनर्जीवनैः अतएव प्रमुदितैः हृष्टैः हरिभिः वानरैः अनुगम्यमानः प्रमोदमानमना: हृष्यन्मानसः सुग्रीवेण सह भाषमाणम् सौहार्देन किमप्यालपन्तं विभीषणं सकरुणम् सदयम् आलोकयन् पश्यन् अनुजेन लक्ष्मणेन सीतया च समम् सह अयोध्याम् स्वराजधानीम् अभिगन्तुकामः गन्तुमिच्छुः कमपि प्रसिद्धं कौबेरम् कुबेरसम्बन्धिनम् कामचरम् स्वैरचारिणं विमानवरम् पुष्पकाख्यं व्योमयानश्रेष्ठम् आरुरोह अधिष्ठितवान्।

इसके बाद राम, अपनी (राम की) प्रशंसा करते हुए ब्रह्मा के द्वारा आगे दिखाये गये, विमानारूढ महारथी दशरथ को प्रणाम कर, उनकी आज्ञा अङ्गीकार कर और इन्द्र के वरदान से पुनरुज्जीवित वानरों से अनुगत होकर, प्रसन्नचित्त, सुग्रीव के साथ प्रेमालाप करते हुए विभीषण को कृपापूर्वक देखते हुए, लक्ष्मण और सीता के साथ अयोध्या को जाने की इच्छा से कामचारी कुबेर सम्बन्धी (पुष्पक नामक) प्रसिद्ध श्रेष्ठ विमान पर आरूढ़ हुए।

आरुह्य पुष्पकमयं विदितानि तानि लङ्कोपकण्ठदशकण्ठरणाङ्गणानि।
सिन्धुं गभीरमपि सेतुनिबन्धनं च संदर्शयन्मृगदृशः स जगाम रामः॥

आरुह्येति। सोऽयं रामः पुष्पकम् तदभिधानं कौबेरं विमानमारुह्याधिष्ठाय विदितानि रामेण ज्ञातानि तानि तत्तद्वीरविनाशस्थलत्वेन प्रसिद्धानि लङ्कोपकण्ठे लङ्कापुरसमीपे दशकण्ठरणाङ्गणानि रावणयुद्धस्थानानि गभीरम् अतलपर्यन्तगम्भीरम् सिन्धुम् सागरमपि, सेतुनिबन्धनम् समुद्रोपरि नलविरचितं सेतुं च मृगदृशः हरिणाक्ष्याः सीतायाः संदर्शयन् परिचयन् जगाम अयोध्यामभि चचाल। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ९९॥

पुष्पक विमान पर चढ़ कर राम, लङ्का के समीपवर्ती उन-उन स्थानों को जहाँ-जहाँ रावण के साथ युद्ध हुआ था अतएव जिन्हें वे पहिले से जानते थे, मृगाक्षी सीता जी को दिखाते हुए (अयोध्या की ओर) चले॥ ९९॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपरि यथा यथा मणिविमानमुदञ्चति न-
स्तरुणि तथा तथा विपुलतामुपयाति नभः ।
महिवलये तु पल्वलमवेक्ष्य महाम्बुनिधिं
पवनभुवे निवेद्य च हसन्ति परे हरयः ॥ १०० ॥

उपरीति । तरुणि सीते, नः अस्माकं मणिविमानम् रत्नखचितव्योमयानम् यथा यथा येन येन प्रकारेण (वीप्सायां द्विर्वचनम्) उपरिऊर्ध्वम् उदञ्चति गच्छति, तथा तथा तेन तेन प्रकारेण नभः व्योम विपुलताम् विशालतामुपयाति, अनन्तया विपुलतामुपगच्छदिव प्रतीयत इत्यर्थः । महिवलये भूमण्डले महाम्बुनिधिम् महासागरं तु (दूरस्थतया) पल्वलम् अल्पजलाशयमिव अवेक्ष्य दृट्वा पवनभुवे हनूमते निवेद्य 'इममेव पल्वलप्रायं सागरं तीर्त्वाऽऽत्मानं बहुमन्यसे' इति प्रतिपाद्य परे अन्ये हरयः वानरा हसन्ति उपहसन्ति । नर्दटकं वृत्तम् । लक्षणं तु प्रागेवोक्तम् ॥ १०० ॥

हमारा मणिखचित विमान ज्यों-ज्यों ऊपर उठ रहा है, त्यों-त्यों आकाश का विस्तार बढ़ता जा रहा है और महासागर को भूमण्डल पर वर्तमान छोटे-से जलाशय के समान देखकर अन्य वानर हनूमान् से (वैसा) कह कर उनका मजक उड़ा रहे हैं ॥ १०० ॥

प्रिये विदेहराजनन्दिनि, विनतानन्दनमप्यतिशेते विमानवेगः ।

प्रिय इति । हे प्रिये विदेहराजनन्दिनि जनकतनये, विमानवेगः अस्माकं व्योमयानस्य रयः विनतानन्दनम् वैनतेयं गरुडमप्यतिशेते क्षिप्रगमनेन तमपि पराजयते, अस्माकं विमानं गरुडादप्यधिकवेगेन गच्छतीति भावः ।

हे प्रिये जनकराजपुत्रि, हमारे विमान का वेग गरुड को भी मात कर रहा है ।

तथाहि—यद्यद्दूरे पुरः पश्यन्निच्छामि तव शंसितुम् ।
तत्तदन्वगपि द्रष्टुमपि वक्तुं न पार्यते ॥ १०१ ॥

तथाहि-यद्यदिति । प्रागुक्तं विमानवेगं वर्णयितुमाह-यथा हीति । पुरः अग्रे दूरे दूरवर्त्ति यत् यत् वस्तुस्थानं वा पश्यन् विलोकयन्, अहं तव शंसितुम् कथयितुमिच्छामि, अन्वक् पश्चात् तत्तत् स्थानं वा द्रष्टुमपि वक्तुमपि न पार्यते शक्यते । अनेन क्षिप्रगामिना विमानेन गच्छन्नहं यद्यद् दूरस्थमपि वस्तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्थानं वा यावत्तुभ्यं वक्तुमिच्छामि तावत्तदति वेगेन समीपमागत्य पश्चाद् गच्छति, तत्तद्वस्तुस्थानं द्रष्टुमथ च वक्तुमपि न शक्यते ॥ १०१ ॥

क्योंकि जिन-जिन वस्तुओं अथवा स्थानों को आगे काफी दूर देखकर (जबतक) उनके विषय में तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, तबतक वे (अति वेग से) पीछे छूट जाती हैं, इसलिए न उनको देख पाते हैं और न ही उनके विषय में कुछ कह पाते हैं ॥ १०१ ॥

तरुणि धरणीसुते, पश्य ऋष्यमूकोऽयम् । बिम्बाधरे, पम्पासर इदम् । कम्बुकण्ठि, कबन्ध[1]निधनभूरियम् । करभोरु, खरादिकलहस्था[2]-नमिदम् । मधुरालापिनि, मम पर्णशालेयम् । मत्तेभगामिनि, माया-मृगमृगयावनमिदम् । कुटिलायतकबरि, गोदावरीयम् । कुम्भिकुम्भ-स्तनि, कुम्भसंभवायतनमिदम् । विधुमुखि, विराधविध्वंसनभूमिरि-यम् । कञ्जलोचने, महामुनेरत्रेराश्रमपदमिदम् । विदेहराजपुत्रि, चित्र-कूटोऽयमिति विविधाः कथाः कथयन्नेवायमञ्जसा भागीरथीपरिसरगतं भरद्वाजमुनेः प्रशान्तं पावनं तपोवनमयासीत् । अभाषत च मैथिलीम् ।

तरुणीति । हे तरुणि यौवनोपेते सुन्दरि ! धरणीसुते पृथिवीपुत्रि सीते ! अयम् पुरतो दृश्यमानः, ऋष्यमूकनामा पर्वतः, यत्र मया सुग्रीवेण सहमैत्री कृता, बाली च हतः, तमिमं पश्य अवलोकय । बिम्बाधरे बिम्बोष्ठि ! इदम् दृश्य-मानं पम्पासरः पम्पानामकसरोवरविशेषः । कम्बुग्रीवे ! इयम् एषा कबन्धस्य कबन्धाभिधानस्य निधनभूः वधस्थानम् । करभोरु-करभः मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य बहिर्भागः स इव ऊरु यस्यास्तत्सम्बुद्धौ करभोरु, इदम् खरादीनां कलहस्थानम् युद्धभूमिः अत्रैव शूर्पणखायां निकृत्त कर्णनासिकायां जातायां खरादिभिः सहयुद्धं कृतमित्यर्थः । मधुरालापिनि हे मधुरभाषिणि, इयम् पुरोदृश्यमाना मम पर्ण-शाला उटजो यत्र त्वया सह न्यवसम् । मत्तेभगामिनि मत्तगजेन्द्रवद्गमनशीले ! इदं मायामृगस्य मारीचस्य मृगयावनम्, अस्मिन्नेव वने धृतमायामृगरूपो मारीचो हतः । कुटिलायतकबरि ! कुटिला कुञ्चिता आयता दीर्घा च कबरी केशपाशो यस्याःस्तत्सम्बुद्धौ हे कुटिलायतकबरि ! ('कबरी केशपाशः' इत्यमरः) इयं गोदावरी तदभिधाना नदी । कुम्भिकुम्भस्तनि-कुम्भी हस्ती तस्य कुम्भौ मस्तक

१. 'निबन्धनभूः' इति पाठा० । २. 'स्थलम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भागाविव स्तनौ यस्यास्तत्सम्बुद्धौ कुम्भिकुम्भस्तनि, इदम् कुम्भसम्भवस्य अगस्त्यस्य आयतनम् आश्रमपदम् विधुमुखि चन्द्रानने, इयम् विराधविध्वंसनभूमिः विराधनाम्नो दानवस्य वधस्थानम्। कञ्जलोचने कमलनयने ! महामुनेः अत्रेः इदम् आश्रमस्थानम् आश्रमपदम्। विदेहराजपुत्रि जनकनन्दिनि ! अयं चित्रकूटो नाम गिरिः। इत्येवं प्रकाराः विविधाः नानाप्रकाराः कथाः वृत्तान्तान् कथयन् एव अयम् रामः अञ्जसा द्रुतम् भागीरथीपरिसरगतम् गङ्गातीरस्थितं प्रशान्तम् शान्तिसम्पन्नम् प्रशान्तवैरमित्यर्थः, पावनम् पवित्रं च भरद्वाजमुनेः तपोवनम् तपस्यास्थानम् अयासीत् प्राविशदित्यर्थः। मैथिलीम् सीतां च अभाषत उक्तवान्।

हे तरुणि सीते ! देखो, यह ऋष्यमूक पर्वत है, हे बिम्बाधरे, यह पम्पासर है, हे कम्बुग्रीवे, यह कबन्ध का वधस्थान है, हे करभोरु ! यह खरादि राक्षसों के साथ हुए युद्ध का स्थान है, हे मधुरभाषिणि, यह मेरी पर्णशाला है, हे गजगामिनि ! यह मायामृगरूप मारीच के शिकार वाला वन है। हे घुँघुराले-लम्बे केशपाशवाली ! यह गोदावरी है, हे गजकुम्भस्तने ! यह कुम्भज अगस्त्य मुनि का आश्रम है, हे चन्द्रमुखि ! यह विराध के वध की जगह है, हे कमल नयने ! यह महामुनि अत्रि का आश्रम है, हे जनकनन्दिनि ! यह चित्रकूट है, इस प्रकार बहुत सी बातें कहते हुए राम जी शीघ्र ही गङ्गा के किनारे वर्तमान प्रशांत और पवित्र भरद्वाजआश्रम में पहुँच गये और सीता से उन्होंने इस प्रकार कहा—

प्रसुप्त[1]बर्हिणश्वासपारणा[2]सुकृती हरिः।
कण्डूविनोदनोत्कण्ठी कण्ठीरवनखैर्मृगः॥ १०२॥

प्रसुप्तेति। हरिः सर्पः ('यमानिलेन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु। शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु॥' इत्यमरः) प्रसुप्तस्य शयितस्य बर्हिणस्य मयूरस्य ये श्वासाः निःश्वासमारुतास्तेषां पारणया भोजनेन पानेनेत्यर्थः, सुकृतीधन्यः। ('सुकृती पुण्यवान् धन्यः' इति 'मयूरो बर्हिणोबर्ही' इति चामरः) सत्यपि सर्पमयूरयोः सहजे वैरभावे महामुनेरहिंसाव्रतप्रभावात्तदाश्रमे सर्वसत्त्वानां प्रशान्तवैरतया सुप्तस्य मयूरस्य श्वासानिलं पिबन् सर्पो धन्यमात्मानं

१. 'बर्हिनिश्वास' इति पाठा०। २. 'सुखितः फणी' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मन्यत इत्यर्थः । तथा मृगो हरिणः कण्ठीरवनखैः सिंहनखैः ('कण्ठीरवो मृगरिपुमृगदृष्टिर्मृगाशनः' इति सिंहपर्यायेष्वमरः) कण्डूविनोदनोत्कण्ठी स्वशरीरकण्डूत्यपनोदनोत्सुकोऽस्ति । अत्रापि सहजवैरत्यागेन मृगः स्वतनुखजूं सिंहनखैरपनोदयितुकामोऽस्तीत्यर्थः । सकल वन्यप्राणिनो मृगसिंहसर्पमयूरादयः सहजमपि वैरं परित्यज्य स्वच्छन्दं विहरन्तीति भावः । एतेन मुनेस्तपःप्रकर्षः सूच्यते ।

सर्प, सोरहे मयूर के श्वासवायु को पीकर कृतार्थ हो रहा है और हरिण सिंह के नखों से अपनी खुजली मिटवाने के लिए उत्कण्ठित हो रहा है ॥ १०२ ॥

तत्र भरद्वाजविहित[1]विविधातिथ्यस्तथैव पदवीं दवीयसी[2]मतिलङ्घ्य पुनरयोध्यासविधमासीदन्नग्रत एव हनूमदावेदितोदन्तमरुन्धतीजानिपुरःसरमजस्रमानन्दबाष्पाकुलितालोकैरमात्यादिलोकैः परिगतमतिपावनतपोधनव्रतमाजानभक्तिभरितमागच्छन्तं भरतमवलोकयन्नतिवत्सलतया तद्विमानादवरोहणाय देवो दशकण्ठरिपुरुदकण्ठत ।

तत्रेति । तत्र भरद्वाजाश्रमे भरद्वाजेन मुनिना विहितं कृतं विविधम् नाना प्रकारमातिथ्यं सत्कारो यस्य स तथोक्तः, तथैव विमानद्वारैव दवीयसीम् दूरतराम् भरद्वाजाश्रमादारभ्यायोध्यां यावत्, पदवीम् मार्गम् अतिलङ्घ्य अतिक्रम्य पुनः अयोध्यासविधम् अयोध्यापुरीसमीपम् आसीदन् प्राप्नुवन्, अग्रतः रामागमनात् पूर्वमेव हनूमता आवेदित उदन्तः वृत्तान्तो यस्य तम्, अरुन्धती जाया यस्य सोऽरुन्धतीजानिर्वसिष्ठः पुरःसरः अग्रेसरो यस्य तम्, आनन्दबाष्पाकुलितालोकैः आनन्दाश्रुपूरितलोचनैः अमात्यादिलोकैः सचिवादिजनैः परिगतम् परिवेष्टितम्, अतिपावनम् अत्यन्तपवित्रं तपोधनव्रतम् तपस्विनियमो यस्य तं तथोक्तम् आजानभक्तिभरितम् स्वभावसिद्धभक्तिपूर्णम्, आगच्छन्तम् रामदर्शनायायान्तम् भरतम् अवलोकयन् पश्यन् दशकण्ठरिपुः रावणारिः देवः श्रीरामः अतिवत्सलतया भरतेऽतिस्निग्धत्वेन हेतुना तद्विमानात् पुष्पकात् अवरोहणाय अवतरणाय उदकण्ठत उत्सुकोऽभूत् । भरतमालिङ्गितुं विमानादवतरितुमियेषेत्यर्थः ।

भरद्वाज के आश्रम में भरद्वाज द्वारा किये गये विविध आतिथ्य सत्कार

---

1. 'विविधातिथेयः' इति पाठा० । 2. 'अतीत्य' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को स्वीकार कर विमान द्वारा ही लम्बे मार्ग को तय करके अयोध्या के समीप पहुँच कर, (अपने पहुँचने से) पहिले ही हनूमान् द्वारा सारे समाचार से अवगत, वसिष्ठ को आगे किये हुये, आनन्दाश्रु पूरित नेत्र अमात्यादि जनों से परिवृत अत्यन्त पवित्र तापसनियमों से युक्त भरत को आते देखते ही अति वत्सलता के कारण रावणारि भगवान् राम उस विमान से उतरने के लिए उत्कण्ठित हो गये।

यानं मदाशयमवेत्य यथा यथैतत्तारापथादवतरत्यवनीकुमारि!।
[1]आसेदुषीं सविधमद्य तथा तथा भूरत्यादरेण भवतीमनु[2]गच्छतीव ॥

यानमिति। हे अवनीकुमारि धरासुते! सीते! एतत् मदधिष्ठितं यानम् पुष्पकविमानं कर्तृ मदाशयम् ममावरोहणाभिप्रायम् अवेत्य ज्ञात्वा यथा यथा तारापथात् नभस्थलात् अवतरति अधो याति, तथा तथा भूः त्वज्जननी धरा अद्य सम्प्रति, सविधम् समीपम् आसेदुषीम् आगतां भवतीम् अत्यादरेण समधिकस्नेहेन अनुगच्छति अभ्युद्गच्छतीव। दूरादागतां पुत्रीं माताऽभ्युद्गच्छतीति लोकाचारं मनसि निधायैवमुत्प्रेक्षितम्। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः॥ वसन्ततिलकं वृत्तम्।

हे धरासुते, मेरे अभिप्राय को समझकर यह पुष्पक विमान ज्यों-ज्यों आकाश से नीचे उतर रहा है, त्यों-त्यों तुम्हारी माता पृथिवी, समीप पहुँची हुई तुम्हारी मानों अगवानी करने के लिए समीप आ रही है ॥ १०३ ॥

इत्थं वदन्निन्दुमुखीं सलीलं देवः प्लवंगाधिपदत्तहस्तः।
विभीषणावेदितया पदव्या विमानतो मन्दमवारुरोह ॥ १०४ ॥

इत्थमिति। इत्थमनेन प्रकारेण इन्दुमुखीम् चन्द्राननां सीतां प्रति सलीलम् सविलासं वदन् अभिदधानः, प्लवंगाधिपेन वानराजेन सुग्रीवेण दत्तहस्तः दत्तहस्तावलम्बः देवः श्रीरामः विभीषणावेदितया विभीषणेन 'इत इत आगच्छतु देवः' इत्येवं निर्दिष्टया पदव्या मार्गेण विमानतः यानात् मन्दम् शनैः अवारुरोह अवततार ॥ १०४ ॥

इस प्रकार चन्द्रमुखी सीता से विलास पूर्वक कहते हुए सुग्रीव के हाथ का सहारा लेकर विभीषण के द्वारा बताये गये मार्ग से भगवान् राम विमान से धीरे-धीरे उतरे ॥ १०४ ॥

---

१. 'आसेदुषी' इति पाठा०। २. 'अभिगच्छति' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रणीतमणिपादुकं प्रणतमग्रतः पादयो-
रुदस्य भरतं जवादुपनयन्भुजाभ्यन्तरम् ।
[1]उदीक्ष्य च तपःकृशं वपु[2]रमुष्य वात्सल्यतः
करेण स मुहुः स्पृशन्न विरराम रामश्चिरम् ॥ १०५ ॥

प्रणीतेति । प्रणीते श्रीरामचरणसमीपं प्रापिते चरणपादुके पूर्वं रामेण भरताग्रहवशात्तस्मै दत्तं चरणपादुकायुगलं येन तं तथोक्तम्, पादयोः चरणयोः अग्रतः पुरस्तात् प्रणतम् कृतप्रमाणं भरतं जवात् वेगात् भुजाभ्यन्तरम् उपनयन् बाह्वोरन्तरालं प्रापयन् दृढमालिङ्गन्नित्यर्थः, तपःकृशम् तपसा व्रतोपवासादिना तज्जनितक्लेशैरित्यर्थः कृशम् क्षीणम् अमुष्य भरतस्य वपुः शरीरम् उदीक्ष्य दृष्ट्वा च स रामः वात्सल्यतः स्नेहातिशयात् करेण स्वहस्तेन मुहुः पुनः पुनः स्पृशन् चिरम् न विरराम न विरतोऽभूत् । रामं विमानादवतीर्णं दृष्ट्वा भरतस्तद्दत्ते चरणपादुके तच्चरणसमीपे निधाय प्रणनाम । रामोऽपि तं गाढमालिङ्ग्य तपःक्षीणं तद्वपुर्दृष्ट्वा च स्नेहातिरेकात् स्वकरेण चिरं परामृष्टवानित्यर्थः । पृथ्वी वृत्तम् ॥ १०५ ॥

राम की मणिमय पादुका को उनके चरणों के समीप रख कर प्रणाम करते हुए भरत को अङ्क में भरते हुए राम, तपस्या से कृश उनके शरीर को स्नेहपूर्वक हाथ से देर तक सहलाने से विरत नहीं हुए ॥ १०५ ॥

पश्यन्ननन्द भरतः परिरभ्य दोर्भ्यां सौमित्रिमार्यसमदुःख[3]कृशीकृताङ्गम् ।
सोऽयं सुखोपनतराज्य[4]पराङ्मुखाय तस्मै पुनः सहजभक्तिदृढव्रताय ॥

पश्यन्निति । भरतः आर्येण श्रीरामेण सह दुःखमनुभवन्तमत एव कृशीकृताङ्गम् क्षीणशरीरं सौमित्रिम् लक्ष्मणं पश्यन् दोर्भ्याम् भुजाभ्यां परिरभ्य आश्लिष्य ननन्द मुदितो बभूव, आर्यपरिचर्यापरायणो धन्योऽयं लक्ष्मणो जात इति नितान्तसन्तुष्टोऽभूत् । सोऽयं सौमित्रिश्च सुखोपनते अनायासलब्धे राज्ये पराङ्मुखाय आदररहिताय सहज भक्त्या स्वाभाविकेनानुरागेण दृढम् अभङ्गुरं व्रतं श्रीरामागमनपर्यन्तमयोध्यां न प्रवेक्ष्यामीत्यादिरूपो नियमो यस्य तस्मै

---

१. 'अवेक्ष्य' इति पाठा० । २. 'अतीव वात्सल्यतो नवं नवमिव स्पृशन्' इति पा०
३. 'सुखं वनेऽपि' इति पाठा० । ४. 'मवाङ्मुखाय' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारताय ननन्द ('क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्' इति चतुर्थी) रामाय राज्यं प्रत्यर्पयन्तं भरतं दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽपि जहर्षेत्यर्थः वसन्ततिलकं वृत्तम्।

आर्य राम के साथ समान भाव से दुःख भोगने वाले कृशकाय लक्ष्मण को देखकर भुजाओं से अङ्कमें खर कर आलिङ्गन करते हुए भरत जी प्रसन्न हो गये तथा लक्ष्मण जी भी अनायास प्राप्त राज्य की उपेक्षा कर स्वभाव सिद्ध भक्ति से अपने नियम में दृढता के साथ तत्पर भरत को देख कर प्रसन्न हो गये ॥ १०६ ॥

अथ भरतोऽपि पुरतोऽभि[1]वादितपुरुषं पौरुषनिघ्नेन शत्रुघ्नेन [2]समं देवीं प्रणम्य जनकनन्दिनीमुन्मनीकृत्य [3]सावरोधवधूकान्सुग्रीवदशग्रीवानुजादीन्यथोचिताभिरुपचर्याभिर[4]भ्यर्हितवसिष्ठमामन्त्रितमन्त्रिलोकमनुग्रहालोकानुगृहीतपौरवर्गमग्रजन्मानं[5]विमानगतमेव सबहुमान[6]मानन्दयन्ननयदपनीतरुजं निजाश्रमपदम्।

अथेति। अथानन्तरम्, भरतोऽपि पौरुषनिघ्नेन पराक्रमायत्तेन पराक्रमशालिनेत्यर्थः ('अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः) शत्रुघ्नेन समम् सह पुरतः प्रथमम् अभिवादितपुरुषम् आभिवादितः नमस्कृतः पुरुषः आदिपुरुषरूपो रामचन्द्रो यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा, देवीम् वन्दनीयां जनकनन्दिनीं सीतां प्रणम्य सावरोधवधूकान् अन्तः पुरस्त्रीभिः सहितान् सुग्रीवदशग्रीवानुजादीन् सुग्रीवविभीषणप्रभृतीन् यथोचिताभिः यथार्हाभिः उपचर्याभिः आदरसत्कारैः उन्मनीकृत्य प्रसाद्य अभ्यर्हितवसिष्ठम् अभ्यर्हितः पूजितः वसिष्ठः कुलगुरुर्यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा, आमन्त्रितः सादरमाहूतः मन्त्रिलोकः अमात्यवर्गो यस्मिन कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, अनुग्रहालोकैः कृपादृष्टिभिरनुगृहीताः उपकृतः पौरवर्गः पुरजनसमुदयो येन तम् अग्रजन्मानम् ज्येष्ठभ्रातरं श्रीरामं विमानगतम्

१, 'अभिवादितपूर्वजोपच्छलननिघ्नेन' इति पाठा० ।

२. 'समं सविनयं प्रणिपत्य जनकेन्द्रपुत्रीमुन्मनीकृत्य' इति पाठा० ।

३. 'सुग्रीवदशग्रीवानुजादीन्सावरोधवधूकान्' इति पाठा० ।

४, 'अभ्यच्यर्भ्यचिंतपुरोहितमामन्त्रिमन्त्रिलोकमालोकानुगृहीत' इति पाठा० ।

५. 'विमानत एव' इति पाठा० ।

६. 'अनयदपनीतजनपरिश्रमं निजाश्रमम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्योमयानारूढमेव सबहुमानम् सादरम् आनन्दयन् प्रसन्नं कुर्वन् अपनीता श्रीरामगमनेन निरस्ता रुजा उपतापो यस्य तत्तथोक्तम्, निजाश्रमपदम् स्वतपः स्थानं नन्दिग्राममनयत् प्रापयत् ।

इसके बाद पराक्रमशाली शत्रुघ्न के साथ भरत ने पहिले आदि पुरुष राम को प्रणाम किया, तत्पश्चात् सीता को प्रणाम कर. स्त्रीजनसमेत सुग्रीव-विभीषण आदि अभ्यागतजनों को यथोचित आदर सत्कार से प्रसन्न करके, कुलगुरु वशिष्ठ को सत्कृत कर, अमात्यजनों को सादर आमन्त्रित कर, कृपा दृष्टि से पुरजनों को अनुगृहीत करने वाले विमानारूढ राम को (उनके आगमन से) सकलसन्तापों से मुक्त अपने आश्रम (नन्दिग्राम) ले गये ।

तत्र च सौमित्रिसीतासखो दाशरथिरतिलोभनीयवात्सल्यां कौसल्या[1]मतिशयितदुःखातिरेकां कैकेयी[2]मतिक्रमस्नेहपरिष्वक्तां [3]सौमित्रिमातरमपि क्रमादभिवादयन्नि[4]जावलोकनरसनिरताभिरेताभिर्वनिताभिः कलाभिः पूर्णिमाचन्द्र इव पयोनिधिर्वीचिकाभिरिव प्रतिक्षणं परिरभ्यमाणो निर्भरानन्दमविन्दत ।

तत्र चेति । तत्र नन्दिग्रामे च सौमित्रिसीतासखः लक्ष्मणसीतासहितः दाशरथिः श्रीरामः अतिलोभनीयवात्सल्याम् मनोरमस्नेहाम् कौसल्याम् स्वजननीम् अतिशयित दुःखातिरेकाम् रामवनगमननिमित्ततया समुपजातदुःखभराक्रान्तां कैकेयीम् भरतजननीम्, अतिक्रमेण क्रममतिक्रान्तेन असीमेन स्नेहेन वात्सल्येन परिष्वक्ताम् सम्पृक्तां परिपूर्णामित्यर्थः, सौमित्रिमातरम् लक्ष्मणजननीं सुमित्रामपि क्रमात् ज्येष्ठानुक्रमात् अभिवादयन् प्रणमन् निजावलोकनरसनिरताभिः निजावलोकने रामदर्शने यो रसः आनन्दस्तत्र निरताः तत्परास्ताभिः, एताभिः पूर्वोक्ताभिर्वनिताभिः कौसल्यादिमातृरूपाभिः स्त्रीभिः कलाभिः निजांशैः ('कला शिल्पे कालभेदे चन्द्रांशे कलना कला' इति वैजयन्ती) पूर्णिमा चन्द्र इव, वीचिकाभिः लहरीभिः पयोनिधिः समुद्र इव, प्रतिक्षणम् क्षणे क्षणे परिरभ्य-

---

१. 'अयशःशल्यजनितशोकातिरेकाम्' इति पाठा० ।

२. 'अकृतिम' इति पाठा० । ३. 'सुमित्रामपि' इति पाठा० ।

४. 'निजालोकरसनितान्तरङ्गाभिरेताभिश्चन्द्र इव पयोधिर्वीचिकाभिः प्रतिक्षणं परिम्यमाणामिः स लक्ष्मणः केवलमानन्दधुरमविन्दत' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माणः वात्सल्यातिरेकवशात् परिष्वज्यमानः निर्भरानन्दम् अत्यानन्दम् अविन्दत प्राप्तवान् ।

और नन्दिग्राम में लक्ष्मण सीता सहित राम ने अति मनोरम वात्सल्य-पूर्ण कौसल्या, [रामवनगमन में निमित्त बनने से] अत्यन्त दुःखी कैकेयी, असीम वात्सल्य से परिपूर्ण सुमित्रा इन सब को ज्येष्ठानुक्रम से प्रणाम करके, राम के देखने के आनन्द में निमग्न इन वनिताओं के द्वारा, कलाओं के द्वारा चन्द्रमा के समान तथा लहरियों द्वारा समुद्र की तरह प्रतिक्षण आलिङ्गित होकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया ।

अथाखिल[1]जनेक्षणेक्षितरघूद्वहस्यादरा-
द्विधातुमभिषेचनं [2]विचलता गुरोराज्ञया ।
अनीयत समन्ततो हरिगणेन तीर्थं पुन-
[3]समाकुलितमन्थरं विजहता गतिं मन्थराम् ॥१०७॥

अथाखिलेति । अथ मातृजनदर्शनानन्तरम्, गुरोः वसिष्ठस्य आज्ञया आदेशेन अखिलजनानाम् समस्त जनानामीक्षणैः लोचनै रीक्षितस्य सस्नेह मवलोकितस्य रघूद्वहस्य श्रीरामस्य सादरात् अभिषेचनम् राज्याभिषेकं विधा-तुम् कर्तुं समन्ततः सकलासु दिक्षु विचलता प्रतिष्ठमानेन मन्थरां गतिम् मन्दगमनं विजहता परित्यजता वेगेन ससम्भ्रमं परिधावतेत्यर्थः हरिगणेन वानरवृन्देन समाकुलितमन्थरम् समाकुलिता सम्प्रत्यस्मिन्नभिषेके कूटनीति प्रयोगस्यानवकाशतयो द्विग्ना मन्थरा प्रथमाभिषेके कृतविघ्ना मन्थरा नाम कैकेयी दासी यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, पुनः भूयः तीर्थम् पुण्यनदी-सलिलम् अनीयत आहरत् । वसिष्ठाज्ञया वानरा वेगेन धावन्तो रामस्य राज्याभिषेकाय तीर्थेभ्यः पुण्योदकमानैषुरित्याशयः । पृथ्वी वृत्तम् ॥ १०७ ॥

इसके बाद वसिष्ठ जी की आज्ञा से, सभी लोगों की आँखों से सस्नेह देखे गये राम का अभिषेक करने के लिए सभी दिशाओं में द्रुतगति से दौड़ कर वानरों ने मन्थरा नामक कैकेयी दासी को [इस वार उसकी दाल न गलने से] उद्विग्न करते हुए तीर्थोदक लाकर प्रस्तुत कर दिया ॥ १०७ ॥

---

१. 'जगत्पतेरपि' इति पाठा० । २. 'विरचितं' इति पाठा० ।
३. विशङ्कं हृदि मन्थरा न भजता गतिम्' इति पाठा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अलंकृतः कृतमभिषेकमादरादमात्यसंहतिभिरवाप्य राघवः।
पुरोन्मुखः पुनरयमानशे रथं मनोरथं स च भरतो महारथः ॥१०८॥

अलंकृत इति। अयं राघवः श्रीरामः अमात्य संहतिभिः मन्त्रिसमुदयैः कृतम् अभिषेकम् आदरात् अवाप्य प्राप्य मन्त्रिभिः सादरमभिषिक्तः सन् अलंकृतः दिव्य वस्त्रालङ्कारादिभिर्विभूषितः सन् पुनः पुरोन्मुखः स्वराजधानीं द्रष्टुकामः अयोध्यापुरप्रवेशाभिमुखः रथमानशे प्राप रथमारूढ इत्यर्थः, स च महारथः पराक्रमी भरतः मनोरथम् श्रीरामाभिषेकरूपस्वाभिलाषमानशे प्राप राज्याभिषिक्तस्य श्रीरामस्याभिषेकानन्तरं रथारोहणेन भरत आत्मानं सफलमनोरथममन्यतेति भावः। रुचिरा वृत्तम् ॥ १०८ ॥

मन्त्रियों द्वारा किये गये अभिषेक को सादर ग्रहण करके वस्त्रालङ्कारादि से विभूषित होकर रामचन्द्र ने अपने नगर को देखने की इच्छा से रथ को प्राप्त किया और पराक्रमी भरत ने अपना मनोरथ प्राप्त किया ॥ १०८ ॥

तत्र च सेवाविचक्षणाभ्यां [1]लक्ष्मणशत्रुघ्नाभ्यामभितो [2]विधूतव्यजनः परिजनाचारनिरतभरतोदन्त[3]विमलमुक्तातपत्रो विचित्रो[4]पहितनेपथ्य चारुरारूढशताङ्ग[5]मातङ्गैराशरप्लवग[6]वाहिनीपतिभिरनुगम्यमानः प्रवर्त्यमानइवे[7]ताक्षतकुसुमलाजोपचारपौरपुरन्ध्रीकदम्ब[8]संरम्भचलित[9]मञ्जीरमणिकाञ्चीवलय[10]वाचालितां वाद्यमानमाङ्गलिक[11]तूर्यघोषणां वैबोधिकविविधरवश्रवणसमयोच्चलितसामोदपौरसंबाधां सौधान्तरगवाक्षचलित[12]तरुणीजनेक्षणरेखानीलोत्पलदामतोरणाभिराम[13]रथ्यान्तरामयोध्यामाजगाम रामचन्द्रः।

---

१. 'शत्रुघ्नलक्ष्मणाभ्याम्' इति पा०। २. 'विधूयमानधवलवालव्यजनः' इति पा०
३. 'मणिविमल' इति पाठा०। ४. 'उपजातमनुजवेषचारुभिः' इति पा०।
५. 'मातङ्गैरलंकृतैः' इति पाठा०। ६. 'वाहिनी' इति पाठा०।
७. 'शेषाक्षत' इति पाठा०। ८. 'सौरभ' इति पाठा०।
९. 'मञ्जुमञ्जीर' इति पाठा०। १०. 'वाचाटितदशदिगन्तराम्' इति पाठा०।
११. 'भेरीमृदङ्गशङ्खादिकविविधारव' इति पाठा०।
१२. 'तरुणीकटाक्षलेखा' इति पा०। १३. 'रथ्यां तथाविधाम्' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्र चेति। तत्र तस्मिन् समये च सेवाविचक्षणाभ्याम् शुश्रूषाकुशलाभ्याम् रामशुश्रूषापरायणाभ्यामिति यावत्। लक्ष्मणशत्रुघ्नाभ्याम् द्वाभ्यां भ्रातृभ्याम् अभितः उभयोः पार्श्वयोः विधूतव्यजनः विधूते वीजिते व्यजने चामरे यस्य स तथोक्तः, परिजनाचारे भृत्यजनोचितव्यापारे निरतेन तत्परेण भरतेन उदस्तम् उत्थाप्य करधृतं विमलं स्वच्छं च मुक्तातपत्रम् मौक्तिकमयच्छत्रं यस्य स तथोक्तः, विचित्रेण आश्चर्यकरेण उपहितेन विरचितेन नेपथ्येन वसनाभूषणादि प्रसाधनेन चारुः सुन्दरः, आरूढशताङ्गमातङ्गैः आरूढाः अधिष्ठिताः शताङ्गाः रथा मातङ्गाः गजाश्च यैस्तथोक्तैः, ('शताङ्गः स्यन्दनो रथः' इत्यमरः) आशरप्लवगवाहिनीपतिभि- आशराः राक्षसाः, प्लवगाः कपयस्तेषां वाहिन्यः सेनास्तेषां पतिभिः नायकैः अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः, रामचन्द्रः, प्रवर्त्यमानः मङ्गलाचारतया क्रियमाणः श्वेताक्षतानां कुसुमानाम् पुष्पाणां च लाजानां चोपचारः निक्षेपणात्मकः प्रयोगो यै स्तादृशानि यानि पौरपुरन्ध्रीकदम्बानि पुराङ्गनानिवहाः तेषां संरम्भेण सम्भ्रमेण चलितैः झणझणायमानैः मञ्जीरमणिकाञ्चीवलयैः नूपुरमाणिक्यरशनाकङ्कणैः वाचालिताम्, मुखरीकृताम्, वाद्यमानाम् ताड्यमानानां माङ्गलिकतूर्याणाम् मङ्गलवाद्ययन्त्रविशेषाणां घोषणा ध्वनिर्यस्यां तथाभूतां बैबोधिकाः कर्तव्यार्थज्ञापकाश्चारणास्तेषां विविधरवैः नानाविधशब्दैः श्रवणसमये तदाकर्णनकाले उच्चलिताः प्रचलिताः सामोदाः सहर्षाश्च ये पौराः पुरजनास्तैः संबाधाम् सङ्कीर्णाम्, सौधान्तरगवाक्षैः प्रासादमध्यवातायनैश्चलिताः प्रसृता यास्तरुणीजनेक्षणरेखाः सुन्दरीवृन्दनेत्रपङ्क्तयस्ता एव नीलोत्पलदामतोरणानि नीलकमलमालाविरचिततोरणानि तैरभिरामाणि रमणीयानि रथ्यान्तराणि प्रतोल्यभ्यन्तरभागा यस्यां तादृशीम् अयोध्याम् आजगाम प्रविवेश।

उस समय सेवाकार्य में निपुण लक्ष्मण और शत्रुघ्न राम के दोनों ओर चँवर डुला रहे थे, भृत्यकार्य में लगे भरत विमल मौक्तिकछत्र उठाये हुए थे. विचित्र दिव्यवसनभूषणादि से राम जी अलंकृत थे, रथों तथा हाथियों पर चढ़े हुए राक्षस सेनापति और वानर सेनापति उनके पीछे-पीछे चल रहे थे. इस प्रकार सज-धज के साथ राम ने अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। उस समय पुर की नारियाँ श्वेत अक्षतों, पुष्पों तथा लावा आदि माङ्गलिक वस्तुओं की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वृष्टि कर रही थीं, उनके वेगपूर्वक चलने से नूपुर, मणिमय करधनी, कङ्कण आदि की ध्वनि से अयोध्या मुखरित हो रही थी. बजते हुए तूर्यादि मङ्गल-वाद्यों की ध्वनि गूँज रही थी, चारणों के विविध शब्द सुन कर तत्काल सहर्ष उमड़ कर चले हुए पुरजनों से सारी अयोध्या सङ्कीर्ण हो गयी, उसकी गलियों का भीतरी भाग प्रासाद के झरोखों से झाँकती हुई स्त्रियों की नयन कान्तिरूप नील कमल मालातोरण से रमणीय हो उठा।

[1]साकेतं समुपेयिवान्स विजयी[2] संसेवितो भ्रातृभिः
सुग्रीवप्रमुखानपि प्रियसखान्स्वेस्वे पदे स्थापयन्।
[3]स्वच्छन्दं सुचिरं सुखान्यनुभवन्देव्या[4]तथा सीतया
रामः पालयति स्म कीर्तिविभवैरामोदिनीं मेदिनीम् ॥१०९॥

साकेतमिति। विजयी प्राप्तरावणादिविजयः सः प्रसिद्धो रामः साकेतम् अयोध्यां समुपेयिवान् समायातः. भ्रातृभिः भरतादिभिरनुजैः संसेवितः उपचरितः, सुग्रीवप्रमुखान् सुग्रीवादीन् प्रियसखान् प्रियसुहृदोऽपि स्वे स्वे पदे किष्किन्धादिप्रतिनियतस्थानेषु स्थापयन् प्रतिष्ठापयन् तथा देव्या सीतया समं स्वच्छन्दम् यथेच्छं सुचिरम् दीर्घकालपर्यन्तं सुखान्यनुभवन् ऐहिकभोगान् भुञ्जानः, कीर्तिविभवैः दानपराक्रमादिजन्यकीर्तिसमृद्धिभिः आमोदिनीम् हर्षवतीं मेदिनीम् भुवं पालयति स्म परिपालितवान्। अयोध्यामागत्य भरतादिभिरनुजैः संसेव्यमानो रामः सुग्रीवादीन् स्वसुहृदः किष्किन्धादिप्रतिनियतस्थानेषु प्रतिष्ठापयामास तथा देव्या सीतया सह यथाभिमतं भोगान् भुञ्जानः स्वकीर्त्या प्रसन्नां कुर्वन् समस्तपृथिवीं सुचिरं परिपालयामासेति तात्पर्यम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १०९ ॥

विजयी राम अयोध्या आये और भरतादि भाइयों से संसेवित हुए। वे सुग्रीवादि अपने प्रिय सुहृदों को यथास्थान भेज कर, सीता देवी के साथ यथेच्छ सुख भोगते हुए, यशः समृद्धि से प्रसन्न समस्त पृथिवी का चिरकाल तक पालन करते रहे ॥ १०९ ॥

१, 'राज्यं स्वं' इति पाठा०।   २, 'विनयैरासेवितो' इति पाठा०।
३. 'स्वच्छन्दः' इति पाठा०।   ४. 'तया' इति पाठा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साहित्यादिकलावता शनगरग्रामावतंसायित-
श्रीगङ्गाधरधीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिकासूनुना ।
प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपि जीयाच्चिरम् ॥११०॥

इति श्रीलक्ष्मणकविविरचिते चम्पूरामायणे युद्धकाण्डः समाप्तः ।

साहित्यादिति । साहित्यम् काव्यनाटकादिरूपा कला तदादि प्रमुखं यासां ताः साहित्यादिकलास्तद्वता सकलकलारहस्याभिज्ञेन 'शनगरम्' इत्याख्यस्य ग्रामस्य अवतंसायितः भूषणायमानः (उपमानार्थकाचार क्यङन्तात्कर्तरिक्तः) स चासौ श्रीगङ्गाधरधीरश्च श्रीमान् गङ्गाधराभिधानः पण्डितः ('धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्यमरः) स एव सिन्धुः सागर स्तस्य विधुना चन्द्ररूपेण पुत्रत्वादुल्लासकत्वाच्चेति भावः । गङ्गाम्बिका सूनुना गङ्गानाम्न्या जनन्याः पुत्रेण लक्ष्मणसूरिणा लक्ष्मणाभिधानेन विदुषा, प्राक् पूर्वं भोजेन श्री भोजराजकविना उदितैः विरचितैः पञ्चभिः बालकाण्ड-मारभ्य सुन्दरकाण्डान्तैः काण्डैः विहितः आनन्दः विदुषांप्रमोदो येन तस्मिन प्रबन्धे अत्र चम्पूरामायणाख्ये काव्ये पुनर्विरचितः प्रणीतः षष्ठः काण्डः युद्ध-काण्डोऽपि चिरं जीयात् सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।११०।

साहित्यादि कलाओं से युक्त 'शनगर' गाँव के भूषणस्वरूप 'श्रीगङ्गाधर' पण्डित रूप सागर के पुत्र और उल्लासप्रद होने के कारण] चन्द्ररूप, 'गङ्गा' नामक जननी के पुत्र 'लक्ष्मणसूरि' द्वारा विरचित, भोजराजद्वारा पहले विरचित पाँच काण्डों से विद्वत्समाज को आनन्द देने वाले इस चम्पू-रामायण नामक प्रबन्ध में षष्ठ काण्ड (युद्धकाण्ड) चिरकाल तक सर्वोत्कृष्ट रहे ॥

इति 'फैजाबाद' मण्डलान्तर्गत 'खिरौनी' ग्रामवासिना रामनाथ-
त्रिपाठिना विरचितायां कल्याण्याख्यायां चम्पूरामायण-
व्याख्यायां युद्धकाण्डः समाप्तः

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चम्पूरामायणम्

टिप्पणी : नोट्स

बालकाण्ड

पृष्ठ १ चम्पूकाव्य की परिभाषा—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ने पूर्वकालीन आचर्यों द्वारा की गयी 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' आदि विविध परिभाषाओं को 'अव्याप्ति' अथवा 'अतिव्याप्ति' दोष से युक्त सिद्ध कर अपनी एक निजी परिभाषा दी है जिसे, चम्पूकाव्य का पूर्ण परिचय एवम् उसकी विशेषताओं का समन्वितरूप पूर्णरूपेण दर्शाने के कारण सर्वथा निर्दोष एवं शुद्ध कह सकते हैं। वह इस प्रकार है—

गद्यपद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्।
सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्॥

चम्पूरामायणम्—चम्पू प्रबन्धात्मकं च तद्रामायणमिति चम्पूरामायणम्। चम्पूप्रबन्धकाव्य के रूप में रामायण की रचना होने से इसका नाम 'चम्पूरामायण' है।

श्लोक सं० १—धुरन्धरम्—धूरेव धुरा, 'आपं चैव हलन्तानाम्'—इस वचन से 'निशा' 'दिशा' आदि की तरह आवन्त हो गया। धुरां धारयतीति धुरन्धरम्। 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारि सहितपिदमः' (३।२।४६) सूत्र से खच् प्रत्यय। 'खचि ह्रस्वः' (६।४।९४) से उपधा को ह्रस्व। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिलोप। 'खित्यनव्यस्य' (६।३।६६) सूत्र से पूर्व पद को ह्रस्व। 'अरुर्द्विषदजन्तस्यमुम् (६।३।६७) से मुम् का आगम होने पर 'धुरन्धर' पद निष्पन्न होता है।

यद्यपि 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' (काव्यादर्श १।१४) आचार्य दण्डी के इस वचन के अनुसार कवि ने यह पद्य आशीर्वादात्मक मङ्गलश्लोक के रूप में ही उपनिबद्ध किया है तथापि जिस श्रद्धा, विश्वास

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवम् उल्लास से उसने श्री गणेश जी के चरणद्वय की महिमा का गान किया है उससे उसकी, उन स्तुत्य चरणों के प्रति प्रणति स्वयं परिलक्षित हो रही हैं।

काव्यारम्भ में मङ्गलकारी वर्णों और गणों के प्रयोगरूप उद्देश्य की पूर्ति तथा 'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मंगलमाचरणीयम्' इस शिष्टाचार का पालन करने के लिए कवि ने श्लोक के आरम्भ में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है। कहा गया है—'देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥'

काव्य की रचना में कवि का लक्ष्य अनेक श्रेयों की सिद्धि है।

श्लोक सं० २—उच्चैर्गतिः—ऊँची गति, स्वर्गादि उत्तमफल की प्राप्ति। प्रमा—(प्र + √मा + अङ् + टाप्) प्रतिबोध, विशुद्धज्ञान, ठीक-ठीक प्रत्यय। कृतकेतरैः—कृतकेभ्य इतरैः, कृत्रिम से भिन्न अर्थात् अकृत्रिम। यहाँ वेदवाक्यों से तात्पर्य है क्योंकि वेद नित्य हैं अतएव अकृत्रिम हैं। 'ऋचः सामानि जज्ञिरे' इत्यादि वाक्यों में जन् धातु का अर्थ 'प्रकाश' है न कि 'उत्पत्ति' अतएव वेदों की अकृत्रिमता में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। वेदों की नित्यता तथा अकृत्रिमता में श्रुति प्रमाण है—'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयं भुवा। आदौ वेदमयी विद्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।'

श्लोक सं० ३—कवि ने इस पद्य में, चम्पू के भीतर, वाद्य और संगीत के समन्वित माधुर्य-सदृश, गद्य-पद्य के मिश्रित आनन्द की चर्चा कर चम्पू के प्रवर्तन के मूल हेतु की ओर संकेत किया है। इस प्रकार उसके बाह्यस्वरूप का ही निरूपण किया गया है, अन्तः प्रकृति का नहीं। इसके लिए इस ग्रन्थ की भूमिका द्रष्टव्य है।

श्लोक सं० ४—वाल्मीकीति। वल्मीकस्यापत्यं पुमान् वाल्मीकिः। 'अत इञ्' इस सूत्र से अपत्यार्थ में 'इञ् प्रत्यय हुआ है 'ब्रह्मवैवर्त' में कहा गया है—अथाब्रवीन्महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः। वल्मीकप्रभवो यस्मात्तस्माद्वाल्मीकिरित्यसौ।' रघुपुंगव—रघुश्रेष्ठ। 'पुंगव' का शब्दार्थ 'वृषभश्रेष्ठ' होता है किन्तु 'श्रेष्ठ' के अर्थ में भी लक्षणया प्रयुक्त होता है। वैजयन्तीकोष में कहा गया है—'श्रेष्ठोक्षाणौ तु पुङ्गवौ।' भगीरथयत्नलब्धैः—राजा सगर के साठ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हजार पुत्र अश्वमेधीय अश्व को खोजते हुए कपिलमुनि के आश्रम पर पहुँचे। घोड़े को बँधा देख कर कपिलमुनि को उन लोगों ने अवमानित किया जिससे कपिलमुनि के कोपानल से वे सब भस्म हो गये। उन्हीं के वंशज राजा भगीरथ उन सबके उद्धार के लिए दुश्चर तपश्चर्या से गंगाजी को भूतल पर ले आये। यह प्रसिद्ध पौराणिकी कथा है। विस्तृत ज्ञान के लिए वहीं देखें।

श्लोक सं० ५—भगवान्—भगानि षडैश्वर्याणि सन्त्यस्येति भगवान्। भग + मतुप्।

छः ऐश्वर्य हैं—समग्र ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य।

कतिपय विद्वानों का मत है कि लोगों की उत्पत्ति, स्थिति, अगति, गति, विद्या और अविद्या को जानने वाला 'भगवान्' कहा जाता है:—

"उत्पत्तिं च स्थितिं चैव लोकानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥"

वस्तुतः 'भगवत्' शब्द देव, उपदेव तथा अन्य प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय व्यक्तियों के विशेषणरूप में प्रयुक्त किया जाता है।

नारदस्य—नारद शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जाती है। यथा—

नरा जीवास्तेषामिदमिति नारमज्ञानं द्यति खण्डयति श्रीनारायणादिनाम संकीर्तनेनेति नारदः। अथवा नरः परमात्मा तस्येदं नारं परमात्मविषयकज्ञानं तद्ददातीति नारदः।

नारदस्य वाचम्—वाल्मीकि ने 'कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके' इत्यादि वचन रूप में नारद से प्रश्न किया था। उसके उत्तर में नारद द्वारा 'मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः' इत्यादि कहे गये वचन से तात्पर्य है।

प्राचेतसः—वाल्मीकि मुनि का एक नाम प्राचेतस भी है। निर्वेद को प्राप्त वाल्मीकि जी ने समाधिस्थ होकर बहुत वर्षों तक तीव्रतर तप किया। उससे उनके शरीर के ऊपर वल्मीक (दीमकों से बनाया गया मिट्टी का टीला) प्रादुर्भूत हो गये। उत्तरोत्तर वल्मीकों के प्ररूढ होते रहने से उनका शरीर अदृश्य हो गया। बहुत दिन बीत जाने पर एक बार भगवान् प्रचेता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(वरुण) ने वल्मीक के टीलों को निरन्तर जलधारा से दूर बहा दिया। तदन्तर मुनियों की अभ्यर्थना से वे समाधि से विरत हो आँखें खोल कर उठ पड़े। उसी से वल्मीकों से उद्गत होने के कारण 'वाल्मीकि' और 'प्रचेता' के द्वारा उठाये जाने के कारण 'प्राचेतस' कहे जाते हैं।

माध्यन्दिनाय—मध्ये भवः माध्यन्दिनस्तस्मै। 'मध्य' शब्द को 'मध्यन्दिन' आदेश और भवार्थक 'अण्' प्रत्यय होने पर 'माध्यन्दिन' शब्द व्युत्पन्न होता है। ऐसा न्यासकार का मत है। दूसरा मत है कि मध्याह्नवाची 'मध्यन्दिन' शब्द उत्सादि गण में पठित है। तदनुसार 'उत्सादिभ्योऽञ्' इस सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर 'माध्यन्दिन' शब्द व्युत्पन्न होता है।

महर्षि-सेव्याम्—महर्षियों से सेव्य। महर्षिलक्षण—'तपः शौचपरा दान्ताः सत्यवाचो बहुश्रुताः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञा ऋषयः परिकीर्तिताः ॥'

पृष्ठ ६—क्रौञ्चमिथुनात्—क्रौञ्चपक्षी के जोड़े में से। सभी संस्कृत-कोषकारों ने प्रायः 'क्रौञ्च' को 'बक' जाति का पक्षि-विशेष बताया है किन्तु कतिपय आधुनिक विद्वान् इस से सहमत नहीं हैं। क्रौञ्चपक्षी के जोड़े में परस्पर जो अगाध प्रेम और विरहजन्य पीड़ा का दर्शन होता है वह बक जाति के किसी पक्षी में दुर्लभ है अतः वे लोग 'चक्रवाक' को ही 'क्रौञ्च' मानते हैं क्योंकि साहित्य में वर्णित चक्रवाक के स्वभाव, प्रवृत्ति, चेष्टा आदि की सभी बातें 'क्रौञ्च' में भी वैसी ही दिखायी देती हैं। चक्रवाक पक्षी बक जाति का नहीं, बतख जाति का है।

पञ्चशर—कामदेव को 'पञ्चशर' कहते हैं। इसके पाँच बाण हैं—'अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः। यहाँ कवि का अभिप्राय है कि नर क्रौञ्च पक्षी पहिले ही कामदेव के पाँच बाणों से बिंधा था, उस पर व्याध ने भी शराघात कर दिया इस प्रकार उसकी यह अवस्था अधिक करुणोत्पादक हो गयी।

वदनारविन्दात्—यहाँ 'वदनमरविन्दमिव' ऐसा विग्रह करना चाहिए। इस प्रकार उपमित समास होने पर वदन पद की प्रधानता होने से उससे वाणी का निकलना सङ्गत होता है। 'वदनमेवारविन्दम्' ऐसा विग्रह कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूपक समास नहीं होगा क्यों कि तब तो 'अरविन्द' पद की प्रधानता हो जायगी जिससे वाणी का निकलना सङ्गत नहीं होगा।

श्लोक सं० ६—शाश्वतीः समाः—बहुत वर्षों तक। 'समा' शब्द वर्ष-वाचक और स्त्रीलिङ्गी है। 'शाश्वतीः समाः' में 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है। 'मा अगमः' यहाँ 'न माङ्योगे' इस सूत्र से अडागम का प्रतिषेध होने से 'मा गमः' ऐसा प्रयोग होना चाहिए था। यहाँ अडागम का विधान 'आर्ष' है, ऐसा समझना चाहिए। कुछ लोग अडागम-प्रतिषेध की भावना से 'प्रतिष्ठाम्+तु+अम+गमः' ऐसा विच्छेद कर 'अम' पद को 'निषाद' का विशेषण मान कर 'न मा लक्ष्मीर्यस्य सोऽमस्तत्सम्बुद्धौ हे अम (हतभाग्य)'—ऐसा अर्थ करते हैं। किन्तु जब अडागमविधान को आर्ष मान लेने से ही काम चल जाता है तब बलात् अडागमप्रतिषेध के लिए उक्त मानसिक व्यायाम की अनिवार्यता समीचीन प्रतीत नहीं होती है।

यद्यपि इस श्लोक की प्रवृत्ति शाप रूप में हुई है क्योंकि किसी को दुष्कृत्य करता हुआ देख कर किसी भी दयालु के मुख से ऐसे अनिष्ट कामना सूचक वाक्य का निकल पड़ना अस्वाभाविक नहीं है तथापि कुछ लोग इस श्लोक को आशीः परक मानते हुए वर्णयिष्यमाण श्रीरामचरित का संक्षेप में सूचक भी मानते हैं और इस प्रकार अर्थ करते हैं—'मानिषाद मा लक्ष्मी-र्निषीद त्यस्मिन्निति मानिषादो लक्ष्मीनिवासस्तत्सम्बुद्धौ हे मानिषाद राम! तुम चिरकाल पर्यन्त यश (प्रतिष्ठा) को प्राप्त करते रहो क्योंकि तुमने कुञ्चा राक्षसी केकसी के पुत्र क्रौञ्च रावण और उसकी स्त्री क्रौञ्ची मन्दोदरी इन दोनों के जोड़े में से एक (रावण) को जो काममोहित कामचारी होने से जगत् को त्रस्त करने वाला था, मार डाला॥' ऐसा अर्थ करने वाले कुञ्चा पद की निष्पत्ति के लिए 'क्रुञ्च गतिकौटिल्याल्पी भावयोः' धातु से अच् प्रत्यय का विधान करते हैं और क्रुञ्चा शब्द से अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय कर 'क्रौञ्च' की निष्पत्ति मानते हैं।

श्लोक सं० ७—**अम्भोजभूः**—अम्भोजे नारायणनाभिकमले इत्यर्थः, भवतीत्यम्भोजभूः। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' इति क्विप्। ब्रह्मा नारायणनाभिकमल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से अविर्भूत होने से 'अम्भोजभू' कहे जाते हैं। 'भागवत' में कहा गया है— 'यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः'।

इन्द्रजालविधिः—जादूगरी, मायिक प्रदर्शन। "अदेशकालपारोक्ष्यं परोक्षस्यैव वस्तुनः। यत्रौषधादिभिः सोऽयमैन्द्रजालविधिः स्मृतः।"

पिच्छिका—पिच्छैव पिच्छिका। स्वार्थ में पिच्छा शब्द से 'कन्', टाप्, इत्व होकर 'पिच्छिका' पद निष्पन्न होता है। यद्यपि 'पिच्छबर्हे नपुंसके' इस अमरकोष के वचनानुसार आबन्त 'पिच्छा' शब्द नहीं बनना चाहिए तथापि महाकवियों ने 'पिच्छा' शब्द का प्रयोग किया है। जैसे—'नवशिखिपिच्छालाञ्छितम्' (कृष्णकर्णामृतस्तव)। 'इत्युक्त्वा पिच्छिका तेन भ्रामिता प्रसभं सभा।' (ज्ञानवासिष्ठ)।

श्लोक सं० ८—सरसिजयोनेः—सरसिजं योनिर्जन्मस्थानं यस्य स सरसिजयोनिस्तस्य। (बहुव्रीहि समास)। नारायण के नाभिकमल से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मा को 'सरसिजयोनि' कहा जाता है। कर-बदरसमानम्—करे यद् बदरं बदर्याः फलं तेन समानं तत्तुल्यमित्यर्थः इत्युपमा, क्रियाविशेषणं वा। हथेली पर रक्खे हुए बेर के फल की तरह। **बदरम्**—बदर्याः फलं बदरम्। फलितस्य वृक्षस्य फलमवयवो विकारश्च, तस्मिन् 'फले लुक्' (४।३।१६३) इति मयटो लुकि, 'लुक्तद्धितलुकि' (१।२।४९) इति ङीषो लुक्। 'करबदरवत्' अथवा 'हस्तामलकवत्' यह एक वाग्धारा है जो उस समय प्रयुक्त होती है जब कभी ऐसी बात का निर्देश करना होता है जो बिल्कुल स्पष्ट और अनायास ही बोधगम्य हो।

रामायणम्—रामस्य अयनं स्थानमिति रामायणम्। यह वाल्मीकिप्रणीत महाकाव्य की संज्ञा है। राम का वर्णन होने से इसे राम का अयन (स्थान) कहा गया है। इस प्रकार यह संज्ञा अन्वर्थ है। 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' सूत्र से नकार को णकार हो जाता है।

काव्यम्—कवयते वर्णयतीति कविः। तस्य कर्म काव्यम्। कवि शब्द से 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (५।१।१२४) सूत्र से ब्राह्मणादित्वात् 'ष्यञ्' प्रत्यय होने से 'काव्य' शब्द निष्पन्न होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक सं० ९—मिलितपरस्परोपमौ—परस्पर तुल्यरूप वाले। जुड़वाँ होने के कारण लव और कुश दोनों का रूप एक दूसरे से मिलता-जुलता था। विचक्षणौ—विचक्षाते इति विचक्षणौ। वि + √चक्ष् + कर्तरि ल्युट्। 'असनयोः प्रतिषेधो वक्तव्यः' इति चक्षिङो ख्याञादेशाभावः। कुशलवनामधारिणौ—कुश और लव ये दोनों नाम अन्वर्थ हैं, जैसा कि कालिदास ने कहा है—'स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया। कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः॥' (रघुवंश, १५।३२)

श्लोक सं० १०—छन्दोमयीनाम्—छन्दस् शब्द से ताद्रूप्य में मयट् प्रत्यय हो कर टित् होने से 'टिड्ढाणञ्'—इत्यादि सूत्र से ङीप् हुआ है। अन्तेवसन्तौ = अन्तेवासिनौ, शिष्य। यथाक्रमम्—क्रममनतिक्रम्येति यथाक्रमम् (अव्ययी भाव समास)। 'उपाक्रमेताम्'—'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' इस सूत्र से आत्मनेपद।

श्लोक सं० ११—आनन्दसंदायिषु—आनन्दं संदातुं शीलमेषामित्यानन्दसंदायिनस्तेषु (ताच्छील्ये णिनिः, युगागमश्च)। **कोसलेषु**—'कोसल' जनपद विशेष का नाम है। यहाँ उत्तरकोसल से अभिप्राय है। जनपद विशेष का नाम बहुवचनान्त होता है, अतः बहुवचन का प्रयोग हुआ है। **अयोध्या**—सरयू नदी के तट पर वर्तमान अयोध्या नगरी, रघुवंश में उत्पन्न सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी। यह अन्वर्थ संज्ञा है। न योद्धुं शक्या अयोध्या। जिस पर आक्रमण न किया जा सके, जिसका मुकाबला न किया जा सके। अद्यायोध्या महाबाहो अयोध्या प्रतिभाति नः (रामा०)। अयोध्या कोसल देश की राजधानी थी। रामायण के अनुसार कोसल उस प्रदेश का नाम है जो सरयू नदी के तटों के साथ-साथ बसा हुआ है। इसके दो भाग हैं—उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल। उत्तर कोशल का नाम 'गन्द' है और यह अयोध्या के उत्तरी प्रदेश को प्रकट करता है जिसमें गन्द तथा बहराइच सम्मिलित है। अज तथा दशरथ आदि राजाओं ने इसी प्रान्त पर राज्य किया। राम के बाद उसके पुत्र कुश ने तो विन्ध्यपर्वत की संकीर्ण घाटी में स्थित दक्षिण कोसल की कुशावती राजधानी में राज्य किया और लव ने उत्तर कोशल में रह कर राज्य किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक सं० १२—तामावसत्—'उपान्वध्याङ्वसः' सूत्र से आधार को कर्म संज्ञा हुई है अत एव 'ताम्' इस पद में कर्मणि द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। संक्रन्दनेन = इन्द्रेण। संक्रन्दन इन्द्र को कहते हैं। 'संक्रन्दनो दुश्च्यवनो तुराषाण्मेघवाहनः' इत्यमरः। सम् + √क्रन्द् + ल्युट् (कर्तरि)।

पृष्ठ १६, शान्ताकुटुम्बिनं सम्बन्धिनम्—शान्तया कुटुम्बिनं कुटुम्बवन्तम्, शान्तापतिमित्यर्थः। राजा दशरथ की शान्ता नामक कन्या थी। अङ्गराज रोमपाद और महाराज दशरथ की प्रगाढ़ मैत्री थी। रोमपाद के कोई सन्तान नहीं थी अतः उस अभाव की पूर्ति के लिए दशरथ ने वह कन्या रोमपाद को समर्पित कर दिया। रोमपाद ने अङ्गदेश के अवर्षणजन्य अकाल को दूर करने पर प्रसन्न होकर उस शान्ता नामक कन्या को ऋष्यशृङ्ग के लिए पत्नीरूप में प्रदान कर दिया। इस प्रकार ऋष्यशृङ्ग राजा दशरथ के सम्बन्धी (जामाता) होते हैं। 'कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्। अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ।'

पृष्ठ १६—शार्ङ्गधन्वानम्—शृङ्गस्य विकारः शार्ङ्गम् धनुर्यस्य स शार्ङ्गधन्वा तम्। धनुषश्च' इत्यनङादेशः। शरणमिति--यहाँ 'इति' शब्द का प्रयोग होने से 'शरणम्' में द्वितीया नहीं प्रथमा विभक्ति समझनी चाहिए।

श्लोक सं० १३—अतसीगुच्छ०—लोक में 'तीसी' का पौधा सर्व विदित है जिसका पुष्प नीलवर्ण का होता है। इसी को संस्कृत में 'अतसी' कहा जाता है। भगवान् विष्णु के शरीर की कान्ति को संस्कृतकवियों ने तीसी के पुष्प के समान नील कहा है। वैकुण्ठाख्यम्—वैकुण्ठ शब्द यहाँ पुँल्लिङ्ग है और 'विष्णु' का विशेषण है। यद्यपि वैकुण्ठ शब्द 'विष्णुलोक' का भी वाचक होता है किन्तु उस स्थिति में उसका प्रयोग नपुंसकलिङ्ग के रूप में होता है। शरण्यम्—शरणे साधुरिति शरण्यः, तम्। 'तत्र साधुः' इस सूत्र से शरण शब्द से यत् प्रत्यय। 'शरण्य' शब्द का अर्थ होता है—रक्षा करने के योग्य, शरण देने वाला, प्ररक्षक, आश्रय। चातकों का एक मात्र आश्रय श्यामघन होता है और मुनिजनों के एकमात्र प्ररक्षक भगवान् विष्णु हैं इसी से इन्हें मुनिजनमनचातकों का शरण्य कहा गया है। कारुण्यापम्—अपां समूह आपम्। 'तस्य समूहः' इस सूत्र से अण्। कारुण्यमेवापं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत्र तम् । अथवा इस प्रकार भी विग्रह कर सकते हैं—कारुण्यमेवापो जलानि यत्र तम् । ऐसा विग्रह करने पर 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय होगा । त्रिदश०—तिस्रो दशा अवस्था येषां ते त्रिदशाः, देवाः । अथवा त्रिदशः परिमाणमेषामिति । 'बहुव्रीहौ संख्येये' इति डच् ।

श्लोक सं० १४—श्लोक के पूर्वार्द्ध से विष्णु के शरीर को इन्द्रनील के सदृश सूचित किया गया है । इन्द्रनीलमणि को क्षीर में डाल देने से क्षीर नीलवर्ण का दिखायी देने लगता है । कहा गया है—'क्षीरमध्ये क्षिपेन्नीलं क्षीरं चेन्नीलतां व्रजेत् । स इन्द्रनीलो विज्ञेयः सर्वसौख्यकरः शुभः ॥' भगवान् विष्णु की भी शरीरकान्तिच्छटा से क्षीरसागर नीलवर्ण हो रहा है । अतः 'तद्गुण' अलङ्कार है । उत्तरार्ध में भगवान् विष्णु की योगनिद्रा की विलक्षणता बतायी गयी है कि उनकी यह निद्रा भी भुवनरक्षा में सतत जागरूक रहती है जो आश्चर्य का विषय है ।

श्लोक सं० १५—इस श्लोक में भगवान् विष्णु के नृसिंहावतार धारण करने के प्रयोजन पर प्रकाश डाला गया है । श्री भागवत में भी कहा गया है—'भक्तप्रतिज्ञापरिपालनाय सर्वात्मना व्याप्तिविवर्तनाय । दैत्येन्द्रवक्षोदलनाय विष्णुः स्तम्भान्नृसिंहाकृतिराविरासीत् । इति ।

श्लोक सं० १६—नामावशेषितमहाबलि वैभवाय—नाममात्र से अर्थात् अनायास ही बलि के महान् वैभव को ध्वस्त कर देने वाले भगवान् विष्णु) । बलि-प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र था । यह बड़ा शक्तिशाली था । इससे पीड़ित होकर देवताओं ने विष्णु से सहायता की प्रार्थना की । विष्णु ने कश्यप और अदिति का पुत्र बन कर वामन का अवतार धारण किया । उन्होंने बलि के पास जाकर उससे तीन पग पृथ्वी माँगी । बलि ने इस सामान्य प्रार्थना को जब स्वीकार कर लिया तब वामन ने अपने विराट् रूप द्वारा पहिले पग से सारी पृथ्वी को और दूसरे से समस्त अन्तरिक्ष को आच्छादित कर लिया । तीसरे पग के लिए स्थान न पाकर उसे बलि के सिर पर रख दिया और राजा बलि को उसकी असंख्य सेना समेत पाताल लोक भेज दिया । इस प्रकार विश्व एक बार फिर इन्द्र के शासन में आ गया ।

पृष्ठ २०—हरित् = दिशा । हरिहय = इन्द्र । अमरान् = देवों को ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक सं० १७—अमर्त्याः = देवाः। मर्त्य शब्द का अर्थ है मरणशील, मरणधर्मा। देवलोग मरणशील नहीं हैं अतः उन्हें अमर्त्य कहा गया। दम्भोलि = वज्र। धिषण = वृहस्पति।

पृष्ठ २२—कुशलानुयोगपुरःसरीम्—कुशलप्रश्नपूर्विकाम्। 'अनुयोग' का अर्थ है प्रश्न। 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः। पुरः + √सृ धातु से 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः' इससूत्र से 'ट' (अ) प्रत्यय होकर पुरःसर शब्द बना। 'ट' के टित् होने से स्त्रीलिङ्गमें 'टिड्ढाणञ्–इत्यादि सूत्र से ङीप् होने पर पुरःसरी पद बनता है। सुमनसाम्—देवानाम्। सुमनस् शब्द देववाची होने पर पुल्लिङ्ग रूप में प्रयुक्त होता है—सुमनाः, सुमनसौ सुमनसः इत्यादि रूप चलते हैं।

श्लोक सं० १८—विबुधैः = देवैः, देवों के द्वारा। अलङ्घ्या = लङ्घितु-मशक्या, अजेय।

राजधानी—राजानो धीयन्तेऽस्यामिति राजधानी। अधिकरण के अर्थ में 'करणाधिकरणयोश्च' इति ल्युट्। अनादेशः। टित्त्वान् ङीप् स्त्रियाम्।

प्रशस्तविभवैः—प्रख्यातवस्तुसंपत्ति से उपलक्षित। उपलक्षणार्थे तृतीया। यदि इस पद को विबुध का विशेषण मानेंगे तो 'प्रशस्तो विभवो येषां तै र्विबुधैः' ऐसी व्याख्या होगी।

श्लोक सं० १९—नगरोतिसालाम्—पर्वत के समान प्राकार वाली। 'नग' का अर्थ पर्वत है और 'साल का अर्थ प्राकार (चहारदीवारी जो रक्षार्थ नगर के बाहर चारों ओर बनी होती है) है। 'प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः। सालाभिराम०–साल नाम का एक वृक्ष विशेष होता है जिसका तना सीधा और बहुत लम्बा होता है अत एव रावण की भुजाओं को साल-वृक्ष के समान कहा गया है। रावण०–विश्रवसोऽपत्यं पुमान् रावणः। विश्रवस् शब्द से अपत्यार्थ में 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर विश्र-वसो विश्रवणरवणौ' के अनुसार 'विश्रवस्' को 'रवण' आदेश होकर 'रावणः' पद निष्पन्न होता है। अथवा रावयतीति रावणः। √ रु + णिच् + कर्तरि ल्युट्।

श्लोक सं० २०—यद्बाहुराहुरसनायित०—'रसनायित' यहां 'रसना'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शब्द से आचारार्थ में 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' सूत्र से क्यङ् होकर कर्ता में 'क्त' प्रत्यय हुआ है। दिक्पाल०—दिक्पाल आठ प्रसिद्ध हैं। इन्हें लोकपाल भी कहा जाता है। अमरकोशकार का वचन है—'इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैऋतो वरुणो मरुत्। कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥'

श्लोक सं० २१—अम्भोजसम्भवः = ब्रह्मा। दुरापम् = दुर्लभ। लक्षीकरोति = विषय बना रहा है। अलक्षं लक्षं करोतीति लक्षीकरोति। अभूततद्भावेच्विः। रजनीचरचक्रवर्ती–राक्षसाधिपति रावण।

पृष्ठ २५—क्रीडाधराधरम्—क्रीडापर्वत, आमोदका काम देने वाला कृत्रिमपर्वत। आरुह्य—आ + √ रुह् + ल्यप्, चढ़ कर। सावरोधवधूजनः—अवरोधवधूजनेन सह, 'तेन सहेति तुल्य योगे' इति बहुव्रीहिः। 'वोपसर्जनस्य' इति सहस्य सत्वम्। चरणाभ्यां संचरेत—'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यात्मनेपदम्।

पृष्ठ २६—मृगाङ्कः = चन्द्रमा। मृगया = शिकार। परिश्रान्ति = थकावट (स्त्रियां क्तिन्)। विश्रान्त्यै = दूर करने के लिए। शातकुम्भ = सुवर्ण। प्रत्यग्र = बिल्कुल नूतन। प्रत्युप्त = खचित, कीलित। शालभञ्जिका पुत्तलिका, स्त्रीप्रतिमा। प्रसादपिशुनः = अनुग्रहसूचक। सुनासीरः = इन्द्र।

पृष्ठ २८—पुलस्त्यनन्दनेन—रावणेन। रावण के लिए 'पुलस्त्यनन्दन' शब्द का प्रयोग उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र के लिए 'रघुनन्दन' शब्द का प्रयोग होता है। संक्रन्दनः = इन्द्र। वृन्दारक = देव। जम्बालितालवालस्य = जम्बालितानि आलवालानि यस्य तस्य। जम्बालित = पङ्किल। जम्बालशब्द से इतच् प्रत्यय। पचेलिमानाम् = पच् धातोः केलिमर प्रत्ययः कर्मकर्तरि।

पृष्ठ ३०—अवमाननम् = अवज्ञा, पराभव। सम्प्रहार०—युद्ध में दिग्गजों ने रावण के वक्षःस्थल में अपने भालों जैसे दाँतों से घाव कर दिये। उन घावों के सूख जाने पर उनके स्थान पर सूखे मांस के ढेले-से बन गये जिन्हें 'किण' कहते हैं। इससे रावण का वक्षःस्थल कहीं ऊँचा कहीं नीचा हो गया। इस वर्णन से रावण का पराक्रम घोषित किया गया है। कहा जाता है कि पृथ्वी को सँभालने के लिए आठो दिशाओं में एक-एक हाथी स्थित है उन्हें दिग्गज कहते हैं। वे आठ दिग्गज ये हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'ऐरावत पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽजनः। पुष्पदन्तस्सार्वभौमस्सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।' (ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक ये क्रम से आठ दिग्गजों के नाम हैं।)

त्रिलोकीम्---तीनों लोकों को। त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी ताम् (समाहार द्विगुसमास)। 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से समास होने पर 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुसंज्ञा। 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' से स्त्रीलिंग होने पर 'द्विगोः' सूत्र से ङीप् करने पर 'त्रिलोकी' पद निष्पन्न होता है।

पृष्ठ ३१—गीर्वाणगण = देवसमुदाय।

श्लोक सं० २२—इन्द्रनील०—इन्द्रनीलगिरि पर चमकती चन्द्रिका के के समान धवल हँसी है जिसकी। भगवान् विष्णु का शरीर इन्द्रनील के समान श्याम है और हँसी को कविसमय के अनुसार धवल माना जाता है। इसलिए ऐसी उपमा दी गयी है।

पृष्ठ ३२—सरसिजासन = ब्रह्मा। अमोघीकुर्वन् = व्यर्थ न करता हुआ, अभूततद्भावेच्विः। सुत्रामसित्रस्य—सुत्रामा इन्द्रस्तस्य मित्रं तस्य, इन्द्र के मित्र दशरथ का। दशरथ सदा इन्द्र की सहायता कर दैत्यों को विनष्ट कर उसके वैभव को सुरक्षित रखते रहे इसी से उन्हें इन्द्र का मित्र कहा गया है। पुत्रीयतः---आत्मनः पुत्रमिच्छतीति पुत्रीयति, पुत्रीयतीति पुत्रीयन् तस्य पुत्रीयतः। 'सुप आत्मनः क्यच्' सूत्र से क्यच् (य)। 'सुपोधातुप्रादिपदिकयो.' से सुप् का लुक्। 'क्यचि च' सूत्र से अकार को ईकार। 'पुत्रीय' क्यजन्त से लट् को शतृ। व्याहृत्य = कह कर, वि + आ + √हृ + ल्यप्।

पृष्ठ ३३—अनिमिषाणाम् = देवानाम्। न निमिषन्तीत्यनिमिषास्तेषाम्। नि + √मिष् + कः ('इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' सूत्र से)। परिषत् = सभा। देवताओं की पलकें नहीं गिरती हैं, इस प्रसिद्धि के अनुसार उन्हें 'अनिमिष' कहा गया है। हृषीकेशः = भगवान् विष्णु।

प्राहस्म—कहा। प्राह–प्र + आह। 'आह' ब्रू धातु के लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है। 'लट् स्मे' सूत्र से भूतकाल के अर्थ में लट् का प्रयोग हुआ है। 'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः' सूत्र से तिप् को णलादेश और 'ब्रू' को 'आह' आदेश हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मीसहायस्य = श्रीपतेः' लक्ष्म्याः सहायः पतिरित्यर्थस्तस्य । प्रजाः— सन्तान । प्र + √जन् + डप्रत्यय ('उपसर्गे च संज्ञायाम्' सूत्र से)

पृष्ठ ३४—ज़ृम्भारम्भे = जम्हाई लेने के समय ।

वैतानात् = वितानं क्रतुस्तस्यायं वैतानस्तस्मात् । वैश्वानरात् = अग्नि से । 'वैतान' वैश्वानर का विशेषण है । वितान कहते हैं यज्ञ को । वैतान का अर्थ हुआ यज्ञ सम्बन्धी । वितान शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् होकर वैतान शब्द बनता है ।

प्रजावत्य:—प्रजापति ब्रह्मा का, अर्थात् ब्रह्मा द्वारा प्रेषित । प्रजापति शब्द से 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' सूत्र से ण्य (य) प्रत्यय होकर प्राजापत्य शब्द बनता है । पायसम्—खीर, दूध में उबले हुए चावल । पयस् शब्द से 'संस्कृतं भक्षाः' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर पायस शब्द बनता है ।

प्रायच्छत्—प्रदान किया । प्र पूर्वक 'दाण् दाने' धातु के लङ्लकार प्रथमपुरुष एकवचन में 'पाघ्राध्मा'—इत्यादि सूत्र से दाण् धातु का यच्छ् आदेश होने से 'प्रायच्छत्' रूप बनता है ।

श्लोक सं० २३—इस श्लोक में चरु का विभाग इस प्रकार बताया गया है—राजा दशरथ ने चरु के दो समान भाग कर पहिला आधा भाग पहिले कौसल्या को दिया तदनन्तर शेष आधाभाग सस्नेह कैकेयी को दे दिया । सुमित्रा को चरु का भाग न मिलने से राजा दशरथ का मन बेचैन हो उठा, तब दोनों (कौसल्या और कैकेयी) देवियों ने राजा का मनोगत अभिप्राय समझकर अपने-अपने भाग का आधा-आधा भाग सुमित्रा को दिया । कालिदास ने भी 'रघुवंश' में ऐसा ही लिखा है—'अर्चिता तेन कौसल्या प्रिया केकेयवंशजा । अतः सम्भावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः ॥ ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः । चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे ॥' बाल्मीकीय-रामायणमें यह चरु-विभाग अन्य प्रकार से वर्णित है—पहिले आधा भाग कौसल्या को दिया गया । जो आधा अवशिष्ट रहा उसका आधा भाग सुमित्रा को और आधा जो अवशिष्ट रहा उसका आधा कैकेयी को, तदनन्तर जो भाग बच रहा वह पुनः सुमित्रा को दिया गया । यहाँ चम्पू-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामायण में भोजवर्णित चरुविभाग अन्यपुराणों के अनुसार है, रामायण के अनुसार नहीं।

श्लोक सं० २४—अवभृथे—मुख्ययज्ञ की समाप्ति पर शुद्धि के लिए जो स्नान किया जाता है उसे 'अवभृथ' कहते हैं। यह यज्ञान्त का सूचक होता है।

परिपूर्णमनोरथः—यज्ञ पूर्ण होने पर राजा दशरथ को पुत्रप्राप्ति का विनिश्चय हो गया उन्होंने अपने मनोरथ को सिद्ध हुआ-सा समझा।

पुरुहूत०—पुरु भूयिष्ठं हूयते यज्ञेष्विति पुरुहूतः। यह इन्द्र का विशेषण है।

श्लोक सं० २५—अङ्गकानाम्—अङ्गों की अल्पता अर्थात् कृशता व्यक्त करने के लिए अङ्ग शब्द से अल्पार्थ में 'क' प्रत्यय हुआ है।

अपाटवात्—पटोर्भावः पाटवम्, न पाटवमित्यपाटवं तस्मात् अपाटवात्। पाटव का अर्थ यहाँ सामर्थ्य है। अपाटवात् का अर्थ हुआ सामर्थ्य न होने से। दौर्हृदलक्षणानि—गर्भ के चिह्न, जैसे गर्भिणी स्त्री के शरीर का दुर्बल होना, मुख का पीला पड़ना, स्तन के अग्रभाग (चूचुक) का काला पड़ जाना आदि।

श्लोक सं० २८—असितायताक्ष्याः—असिते आयते चाक्षिणी यस्याः सा असितायताक्षी तस्याः। बहुव्रीहि समास होने पर 'असितायताक्षि' से 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' इस सूत्र से षच् (अ) प्रत्यय हुआ षकार की 'षः प्रत्ययस्य' से और 'चकार' की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा होने पर 'यस्येति च' सूत्र से क्षकारोत्तरवर्ति इकार का लोप होने से 'असितायताक्ष' बना अब स्त्रीत्वविवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् (ई) करने पर 'यस्येति च' से क्षकारोत्तरवर्त्ति अकार का लोप और विभक्ति कार्य होने पर 'असितायताक्षी' पद बनता है।

कार्श्यम्—कृशस्य भावः कार्श्यम्। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' सूत्र से भाव में ष्यञ् (य)। 'तद्धितेष्वचामादेः' से 'ऋ' को आर् वृद्धि' 'यस्येति च' से शकरोत्तरवर्ती अकार का लोप और विभक्ति कार्य होने पर 'कार्श्यम्' पद निष्पन्न होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विहायः—आकाश। विहायस् शब्द के प्रथमा एकवचन में 'विहायः' होता है, जैसे 'पयस्' का 'पयः' होता है।

श्लोक सं० २९—उच्चस्थे ग्रहपञ्चके—जब सूर्य, भौम, गुरु, शुक्र, शनि ये पाँच ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान में थे। ज्यौतिषजातक में कहा गया है—

'सूर्यादितुङ्गर्क्षमजोक्षनक्रं कन्याकुलीरान्त्यतुलालवैः स्युः। दिग्भिर्गुणैरष्टयमैः शरैकैर्भूतैर्भसंख्यैर्नखसम्मितैश्च ॥ तत्सतमं नीचम्………।

अर्थात् मेषराशि का सूर्य, वृष का चन्द्रमा, मकर का मङ्गल, कन्या का बुध, कर्क का वृहस्पति, मीन का शुक्र और तुला का शनैश्चर उच्च होता है। सूर्य मेष के दस अंस तक, चन्द्रमा वृषराशि के तीन अंश तक, मंगल मकर के अट्ठाइस अंश तक, बुध कन्या के पन्द्रह अंश तक वृहस्पति कर्क के पाँच अंश तक, शुक्र मीन के सत्ताइस अंश तक और शनैश्चर तुला के बीस अंश तक परमोच्च होता है। जिस ग्रह का जो स्थान उच्च कहा गया है उससे सातवाँ स्थान उसका नीच स्थान होता है। जो जो ग्रह अपने अपने उच्च स्थान में जितने-जितने अंश तक परमोच्च बताये गये हैं, वे-वे उतने-उतने ही अंश तक अपने-अपने नीच स्थान में परम नीच होते हैं।

अयोध्याऽरणेः—अयोध्यैवारणिस्तस्मात्। अयोध्यारूप अरणि से

अरणि—शमीवृक्ष की लकड़ी का टुकड़ा। उसके दो टुकड़ों के घर्षण से यज्ञ के अवसर पर यज्ञाग्नि उत्पन्न की जाती है।

आग—अरणि (मन्थनकाष्ठ) से उत्पन्न होती है, उसमें होम किया जाता है, समिधाएँ जलती हैं इसीलिए इस श्लोक में ऐसा रूपक दिया गया है।

श्लोक सं० ३०—हरिः—भगवान् विष्णु। हरति भक्तजनदुरितानि इति हरिः। रामाभिधानेन—राम इत्यभिधानं नाम तेन, रामनाम से।

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः। रम् धातु से अधिकरणार्थ में 'करणाधिकरणयोश्च' सूत्र से घञ् प्रत्यय होकर राम शब्द व्युत्पन्न होता है।

सुरभयन्—सुरभि शब्द से 'तत्करोति तदाचष्टे' सूत्र से णिच्। णिजन्त से लट्। लट् को 'शतृ' आदेश होकर 'सुरभयत्' शब्द के पुल्लिग प्रथमा के एकवचन में 'सुरभयन्' रूप बनता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक सं० ३२—कैकेय्याः—कैकेयी से। केकयस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री कैकेयी केकय शब्द से अपत्यार्थ में 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' सूत्र से अञ् (अ) प्रत्यय। 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् 'ए' को 'ऐ' वृद्धि।

'केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः' सूत्र से यादि को इयादेश। स्त्रीत्वविवक्षा में 'टिड्ढाणञ्—इत्यादि से ङीप् और विभक्ति कार्य होने पर 'कैकेयी' पदनिष्पन्न होता है।

पृष्ठ ४२—तपश्चर्याजातानामाश्चर्याणामायतनम्—ब्राह्मणत्व प्राप्ति के उद्देश्य से जब विश्वामित्र जी महान् तप कर रहे थे उस समय उन्होंने अपने तपस्या के प्रभाव से बहुत से आश्चर्यजनक कार्य किये थे। जैसे त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग पहुँचने पर इन्द्र ने जब स्वर्ग से मृत्युलोक की ओर गिरा दिया तब विश्वामित्र ने उन्हें बीच में ही रोक दिया और एक नये स्वर्ग की रचना करने की जिद्द ठान ली। देवताओं के बहुत अनुनय-विनय करने पर ही विरत हुए। (देखिए, 'प्रसन्न राघव', तृतीय अङ्क, श्लोक १४—१६)

त्रिशङ्कुयाजिनम्—त्रिशङ्कु हरिश्चन्द्र के पिता थे। इन्होंने सदेह स्वर्ग प्राप्ति के लिए यज्ञ कराने के लिए विश्वामित्र से प्रार्थना की थी और विश्वामित्र ने उस यज्ञ का अनुष्ठान कराया था।

पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदम्—विश्वामित्र की उपमा पद्य प्रबन्ध से दी गयी है जिसमें दर्शितसर्गभेदत्वरूप साधारण धर्म है। पद्य प्रबन्ध में सर्गभेद (अध्याय बाहुल्य) देखा जाता है और विश्वामित्र सर्गभेद (अन्य नवीन सृष्टि की रचना) में प्रवृत्त हुए थे।

प्राकृत व्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासम्—पुनः विश्वामित्र की उपमा प्राकृतव्याकरण से दी गयी है। जैसे प्राकृत व्याकरण में वर्णव्यत्यास (अक्षर-विपर्यय) देखा जाता है वैसे ही विश्वामित्र ने भी वर्ण (जाति) से क्षत्रिय होकर भी क्षत्रियत्व का त्याग कर ब्राह्मणवर्ण को स्वीकार कर वर्ण व्यत्यास दिखाया था।

बुधमिव सोमसुतम्—जैसे बुध सोमसुत (चन्द्रका पुत्र) है वैसे ही विश्वामित्र भी सोमसुत् (सोमयाजी) हैं। विश्वामित्र के पक्ष में 'सोमं सुनोति सोमसुत्' तम् सोमसुतम्' ऐसा अर्थ होगा। सोम + √सु + क्विप्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक ३५—अन्वगात्—अनु + √इ + लुङ् । 'इणो गा लुङि' सूत्र से लुङ्लकार में इण् धातु को 'गा' आदेश हो जाता है।

श्लोक ३६—विश्वामित्रः—'विश्वस्य मित्रम्' ऐसा विग्रह कर षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर ऋषि की संज्ञा के अर्थ में 'मित्रे चर्षौ' सूत्र से 'विश्व' के अन्तिम ह्रस्व अकार को दीर्घ होने पर 'विश्वामित्रः' पद बनता है। सौमित्रिसहितम्—लक्ष्मणसहित । सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिः । सुमित्रा शब्द से अपत्यार्थ में 'स्त्रीभ्यो ढक्' से ढक् प्रत्यय की प्राप्ति थी, किन्तु उसे बाधित कर 'बाह्वादिभ्यश्च' सूत्र से इञ् प्रत्यय हुआ।

अवोचत—ब्रूधातु के लुङ्लकार, आत्मनेपद, प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है। 'ब्रुवो वचिः' इति वचिरादेशः। 'अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्' इति च्लेरङ्। अडागमः। 'अ वच् अत' इति स्थिते 'वच उम्' इति उमागमः, मित्त्वादन्त्यादचः परः, 'आद्गुणः' इति गुणे कृते 'अवोचत' इति।

श्लोक ३७—काकुत्स्थ—ककुत्स्थस्यापत्यं पुमान् काकुत्स्थस्तत्सम्बुद्धौ हे काकुत्स्थ ! इक्ष्वाकुवंश में 'पुरंजय' अथवा 'पुरंजन' नामक एक राजा था। वह 'ककुत्स्थ' नाम से भी प्रसिद्ध है। कालिदास के अनुसार 'ककुद' का व्यङ्ग्यार्थ 'श्रेष्ठ' होने से पुरंजन राजाओं में ककुद अर्थात् श्रेष्ठ होने से 'ककुत्स्थ' कहलाता था—

'इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहित लक्षणोऽभूत्।' (रघुवंश, ६।७१) किन्तु पौराणिकों का कहना है कि देवासुरयुद्ध में जब देवों को मुँह की खानी पड़ी तब सहायता के लिए वे इन्द्र के नेतृत्व में पुरंजय के पास गये। पुरंजय ने इस शर्त पर सहायता करना स्वीकार किया कि इन्द्र उसे अपने कन्धे पर बैठा कर ले चले। फलतः इन्द्रने वृषभरूप धारण किया और पुरंजय उसके कन्धे पर बैठा। इस प्रकार पुरजय ने असुरों का सफाया कर दिया। इसीलिए 'पुरंजय' ककुत्स्थ अर्थात् कूबड़ पर बैठा हुआ कहलाता है और उसके बाद के सभी इक्ष्वाकुवंशी राजा 'काकुत्स्थ' कहे जाने लगे।

बलेत्यतिबले च—'बला' और 'अतिबला' इन दो विद्याओं (मन्त्रात्मक शक्तियों) को विश्वामित्र ने तपोबल से प्राप्त किया था जिन्हें राम को प्रदान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया था। इन दोनों विद्याओं का स्वरूप और प्रभाव 'ब्रह्मयामल' में इस प्रकार कहा गया है—

'उत्साहबलयोर्वृद्धिः परशस्त्रसहिष्णुता। न बाधा क्षुत्पिपासाभ्यां यतः सा कथिता बला॥ यतः परस्य स्खालित्यं दृङ्मनःकायकर्मणाम्। स्वोपाये च ह्यमोघत्वं भवेत्सातिबला मता॥

पृष्ठ ४९—मलदकरूशयोः—इन्द्र के वृत्रासुरवधजनित पाप का प्रक्षालन स्थान होने से दोनों प्रदेशों में एक को मालिन्ययुक्त होने से 'मलद' और दूसरे को करूश अर्थात् पापसङ्क्रमणजनित कृशता से युक्त होने से 'करूश' संज्ञा से अभिहित किया गया है।

श्लोक ३९—द्रुहिण = ब्रह्मा। परिणीय = विवाह कर। परि + √नी + ल्यप्।

पृष्ठ ५०—पुरुषादिनी = नरमांस को खाने वाली। ताच्छील्ये णिनिः। ताटका भी अगस्त्य के शाप से ही राक्षसी हुई थी। रामायण में कहा गया है—'अगस्त्यः परमक्रुद्धस्ताटकामभिशप्तवान्। पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना॥ इदं रूपं विहाय त्वं दारुणं रूपमवाप्नुहि।'

अब्जासन = ब्रह्मा। सिन्धुर = गज। विदधाना = करती हुई। वि + √धा + शानच्। व्यापादनीया = मारे जाने योग्य है। वि + आ + √पद् + णिच् + अनीयर्।

पृष्ठ ५१—वसुन्धरा = पृथिवी। वसूनि धारयतीति वसुन्धरा। 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः' इति खच् (अ)। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः। पुरन्दरः—इन्द्र। पुरं दारयतीति पुरन्दरः। 'पूः सर्वयोर्दारिसहोः' इति खच्। 'खचि ह्रस्वः। 'वाचंयमपुरन्दरौ च' इति निपातनान्मुमागमः। वैरोचनीम्—विरोचन की पुत्री (मन्थरा) को। कैकेयी की दासी मन्थरा का ग्रहण न हो, इसलिए मन्थरा का 'वैरोचन' विशेषण दिया गया है। विरोचन शब्द से अपत्यार्थ में 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण्। 'टिड्ढाणञ्'—इत्यादि सूत्र से ङीप्।

श्लोक ४२—वीरपाणम्—वीराणां पानमिति वीरपाणम्। 'वा भाव-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करणयोः' सूत्र से नकार को विकल्प से णत्व हुआ है। वीर लोग युद्धारम्भ से पूर्व उत्साहवृद्धि के लिए जो मद्यपान करते हैं उसे 'वीरपाण' कहते हैं। अमरकोशकार का वचन है—'वीरपाणं तु यत्पानं वृत्ते भाविनि वा रणे।' यहाँ भी ताटका के प्राणों को कवलित कर लेने से राम के बाण का उत्साह बढ़ा, इसलिए ताटका के प्राण राम-बाण के लिए वीरपाण-सदृश सिद्ध हुए।

श्लोक ४४—भृशाश्वोपज्ञानि—उपज्ञायते प्रथमं ज्ञायते इत्युपज्ञा 'आतश्चोपसर्गे' इत्यङ्। भृशाश्वस्य उपज्ञा इति भृशाश्वोपज्ञम् 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्' इति नपुंसकत्वम्। यथा पाणिन्युपज्ञा पाणिन्युपज्ञं ग्रन्थः। तानि भृशाश्वोपज्ञानि-भृशाश्वेनादौ ज्ञायमानानि। 'उपज्ञोपक्रमान्ताश्च तदादित्वप्रकाशनम्' इत्यमरः। जम्भशासनशासनात्-जम्भशासनः इन्द्रः तस्य शासनात्। जम्भं तन्नामकं दैत्यं शास्ति दण्डयतीति जम्भशासनः। कर्तरि ल्युट्। जम्भ नामक दैत्य को इन्द्र ने मारा था इसलिए इन्द्र को जम्भशासन कहा जाता है। ताटकामाथिने–ताटकां मन्थातीति ताटकामाथी तस्मै। ताटका को मारने वाले राम के लिए। सम्प्रदान में चतुर्थी। मन्थ-धातु से णिनि प्रत्यय हुआ है।

श्लोक ४५—प्रतिदिनम्—प्रतिदिन अर्थात् निरन्तर। बलिनियमन हेतोः—बलि को निगृहीत करने के लिए। यहाँ बलि शब्द बलि नामक दैत्य का वाचक है जो विरोचन का पुत्र था। बलिनियमपरः—बलि और नियम में आसक्त। यहाँ बलि शब्द देवतोपहार का वाचक है। 'बलिः पूजोपहारे च वरे दैत्यान्तरेऽपि च' इत्यमरः। नियम का अर्थ है विहित कर्तव्य। दस नियम कहे गये हैं—शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः। व्रतमौनोपवासं च स्नानं नियमा दश' ॥ इति।

श्लोक ४६—अखिलभुवनभिक्षोः—तीनों लोकों को भीख में माँगने वाले (वामन) के। भगवान् वामन ने तीन पग भूमि की भिक्षा बलि से माँगी थी किन्तु तीन पग में तीनों लोकों को नाप लिया। इसी से उन्हें 'अखिलभुवनभिक्षु' कहा गया है। भिक्ष धातु से 'सनाशंसभिक्ष उः' सूत्र से 'उ' प्रत्यय होकर 'भिक्षु' शब्द व्युत्पन्न होता है।

आश्रमानोकहानाम्—आश्रम के वृक्षों की। 'अनोकह' शब्द वृक्ष का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाचक है इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—अनः शकटं तस्य अकं गतिं हन्तीत्यनोकहः वृक्षः।

श्लोक ५०—आहवः—युद्धम्, तम्। आहूयन्ते शत्रवोऽस्मिन्नित्याहवः। आङ् पूर्वक ह्वे धातु से 'आङि युद्धे' सूत्र से अप् (अ) प्रत्यय और सम्प्रसारण होने से 'आहव' शब्द व्युत्पन्न होता है। आश्चर्य—आ + श्च् + णिच् + ल्यप् 'ल्यपि लघुपूर्वात्' सूत्र से 'णि' (इ) को अयादेश होकर 'आश्चर्य' पद बनता है। मध्येपयोनिधि—पयोनिधेर्मध्ये इस विग्रह में 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' सूत्र से अव्ययीभाव समास होने पर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से 'मध्य' शब्द का पूर्व प्रयोग। निपातन से एदन्तत्व होकर 'मध्येपयोनिधि' बना।

श्लोक ५१—आहवोन्मत्तः—युद्ध के मद से उन्मत्त। कृत्तः = छिन्नः, क्षतविक्षत हुआ। कृती छेदने (कृत्) धातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय हुआ है।

श्लोक ५३—निशिचरमाथात्—मथनं माथः, मथ् धातु से 'भावे' सूत्र से भाव में घञ् प्रत्यय। निशिचराणां माथस्तस्मात्।

अव्याजलक्ष्म्या—यथार्थतः लक्ष्मी से। सीता जी के रूप में लक्ष्मी ही अवतीर्ण हुई थीं इसी से ऐसा कहा गया। 'राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि। अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषाऽनपायिनी'—ऐसा पुराणवचन है।

पृष्ठ ६३—कुशेशयासनजन्मा—कुशे जले शेते इति कुशेशयं कमलम्। शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः। कुशे + √शी + अच् (अलुक् स०)। कुशेशयं कमलमासनं यस्य सः कुशेशयासनः कमलासनो ब्रह्मा। कुशेशयासनाज्जन्म यस्य सः तथोक्तः, व्यधिकरण बहुव्रीहिः। 'अवार्यो बहुव्रीहिर्जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनोक्तेः। कौशाम्बी—कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी। कुशाम्ब शब्द से 'तेन निर्वृत्तम्' सूत्र से अण्। 'टिड्ढाणञ्०' सूत्र से ङीप्।

पृष्ठ ६७—श्रोतुकामाय—सुनने के लिए उत्सुक। श्रोतुं कामो यस्य तस्मै। 'तु काममनसोरपि' से 'तुम्' के मकार का लोप।

श्लोक ५५—गृहमेधी—गृहस्थ। गृहैर्दारैः मेधते सङ्गच्छते इति मल्लिनाथः। 'प्रजायै गृहमेधिनाम्' (रघुवंश १।७)। 'दारेष्वपि गृहाः स्मृताः'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस अमर वचन से गृह शब्द दारवाचक भी होता है 'मेधृ संगमे' धातु से ताच्छील्य अर्थ में णिनि प्रत्यय हुआ है।

श्लोक ५७—नाकलोकम्—स्वर्गलोक को। 'आकाशे त्रिदिवे नाकः' इत्यमरः। न कं सुखमित्यकम्। न अकं दुःखं विद्यते यस्मिन् स नाकः। इस प्रकार नञ् बहुव्रीहि समास करने से नाक शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ 'नलोपो नञः' सूत्र से नकार का लोप प्राप्त था किन्तु 'नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या' सूत्र से नकार का प्रकृतिभाव हो जाता है। तपस्यन्तीम्—तप करती हुई को। तपश्चरति तपस्यति। तपस् शब्द से चरणार्थ में 'कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः' सूत्र से क्यङ् प्रत्यय। तपसः परस्मैपदं च' वार्तिक से परस्मैपद। 'तपस्यतीति तपस्यन्, स्त्री चेत् तपस्यन्ती तां तपस्यन्तीम्। क्यङन्त से लट्। लट् को 'शतृ' आदेश। 'उगितश्च' सूत्र से ङीप्।

श्लोक ५८—अनुनाथितः = प्रार्थितः। अनु + √नाथ् + कर्मणि क्तः)

श्लोक ६०—सेनान्यम्—सेनानी को। सेनां नयति सेनानीः, तम्। नी धातु से क्विप्। जाह्नव्याम्—जाह्नवी गङ्गा तस्याम्, गङ्गा में। जह्नोरपत्यं स्त्री जाह्नवी। जह्नु शब्द से 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अपत्यार्थ में 'अण्' (अ) प्रत्यय। 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् को वृद्धि। 'ओर्गुणः' सूत्र से 'उ' को 'ओ' गुणादेश। 'ओ' को 'एचोऽयवायावः' से अवादेश। 'टिड्ढाणञ्०'—इत्यादि सूत्र से ङीप्। विभक्ति कार्य होने पर 'जाह्नवी' पद निष्पन्न होता है।

जब गङ्गानदी भगीरथ के द्वारा इस धरा पर लायी गई तो मैदान में आकर उसने राजा जह्नु की यज्ञभूमि को पानी में डुबो दिया। क्रुद्ध होकर जह्नु ने गङ्गा को पी डाला। देवता, ऋषि और विशेषकर भगीरथ की प्रार्थना से प्रसन्न होकर जह्नु ने गङ्गा को अपने कानों से बाहर निकलने की स्वीकृति दी। इसलिये गंगा जह्नु की पुत्री समझी गयी और उसे जाह्नवी, जह्नुकन्या आदि नामों से पुकारा गया।

ऐश्वरम्—ईश्वरस्य इदमिति। 'तस्येदम्' सूत्र से अण्। महादेव का।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक ६१—सप्तार्चिषा—सप्त अर्चींषि यस्य स सप्तार्चिस्तेन । अग्नि की सात ज्वालायें जिन्हें उनकी जिह्वायें भी कहते हैं, होती हैं अतएव अग्नि को सप्तार्चिः या सप्तचिह्वः कहते हैं ।

शरवणम्—'प्रनिरन्तः शरेत्तुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि' सूत्र से 'वन' के नकार को णकार हो जाता है ।

श्लोक ६२—कृत्तिकाप्रीत्यै—छः कृत्तिकाओं कों प्रसन्न करने के लिये । ये छः कृत्तिकाएँ (तारायें) युद्ध के देवता कार्तिकेय की सेवा करने तथा स्तन्य पिलाने पालन-पोषण आदि कार्य करने वाली अप्सराओं के रूप में वर्णित हैं । इसी से 'कुमार' को कार्त्तिकेय और षाण्मातुर (छः माताओं की सन्तान) हका जाता है ।

षाण्मातुरः—षण्णां मातॄणामपत्यं षाण्मातुरः । 'तद्धित्तार्थोत्तारपदसमाहारे च' सूत्र से समास । 'मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वाया:' सूत्र से अण् प्रत्यय तथा मातृशब्दगत 'ऋकार' को 'उ' आदेश । वह 'उ' आदेश 'उरण्रपर:' से रपर होते हुए प्रवृत्त हुआ । 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् को वृद्धि । 'झलां जशोन्ते' से द्वितीयषकार को जश् डकार हुआ । उस डकार को 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' से अनुनासिक णकार हुआ । इस प्रकार 'षाण्मातुर:' पद निष्पन्न होता है ।

श्लोक ६४—सावित्रः—सवितुरपत्यं पुमान् सावित्रः । सवितृ शब्द से 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण् (अ) प्रत्यय । 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् 'अ' को वृद्धि 'आ' । ऋकार को यणादेश 'र' । विभक्ति कार्य होने पर 'सावित्र:' का अर्थ यहाँ 'सूर्यवंश में उत्पन्न' है ।

लङ्घितप्रथमाश्रमः—राजा सगर ने केशिनी और सुमति नामक स्त्रियों से विवाह कर ब्रह्मचर्याश्रम को छोड़ दिया । आश्रम का तात्पर्य धार्मिक जीवन की चार अवस्थाओं से है । आश्रम के चार प्रकार हैं– ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ।

श्लोक ६५—सपत्नीकः—पत्नीभ्यां सह, दोनों पत्नियों के साथ । 'तेन सहितेन तुल्य योगे' इस सूत्र से बहुव्रीहि समास । 'वोपसर्जनस्य'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश। 'नद्यृतश्च' सूत्र से कप् (क) होकर विभक्ति कार्य करने पर 'सपत्नीक:' पद बनता है।

श्लोक ६६—वैदर्भी-विदर्भस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री वैदर्भी। 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण्। 'टिड्ढाणञ्०' से ङीप् होकर 'वैदर्भी' शब्द बनता है।

यवीयसी—युवन् शब्द से ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय। 'स्थूलदूरयुवह्रस्व-क्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः' सूत्र से 'वन्' का लोप तथा उकार को 'ओ' गुण। 'एचोऽयवायावः' से अवादेश होने पर यवीयस्। 'उगितश्च' सूत्र से ङीप् होकर 'यवीयसी' शब्द बनता है।

श्लोक ६८—अहारि-हर लिया गया। हृ धातु के कर्मवाच्य लुङ् लकार का रूप। 'चिण् भावकर्मणोः' सूत्र से 'च्लि' को चिण्। वृद्धिकार्य। 'चिणोलुक्' से 'त' का लुक्। सौमतेयाः—सुमति शब्द से 'स्त्रीभ्यो ढक्' सूत्र से ढक् प्रत्यय, 'ढ' को 'एय्' आदेश होकर सौमतेय शब्द निष्पन्न होता है।

श्लोक ७१—सप्तिम्—अश्वम्, घोड़े को। सप्ततन्तुम्—यज्ञम्। यज्ञ को। सप्तभिर्गायत्र्यादिछन्दोभिस्तन्यते इति सप्ततन्तुः। अथवा सप्त तन्तवः संस्था यस्य स सप्ततन्तुः।

श्लोक ७२—दित्सुः—देने का इच्छुक। दा धातु से सन् होने पर 'सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्' सूत्र से 'आ' को इस् हुआ दिस्+स। 'सन्यङोः' सूत्र से द्वित्व। अत्र लोपोऽभ्यासस्य' से अभ्यास का लोप। 'सः स्यार्धधातुके' सूत्र से दिस् के सकार को तकार। सन्नन्त से 'सनाशंसभिक्ष उः' सूत्र से 'उ' कृत् प्रत्यय होने पर 'दित्सुः' निष्पन्न होता है।

श्लोक ८६—प्राचेतसीम्—प्रचेताः वरुणः, तस्येयं प्राचेतसी ताम्, पश्चिम दिशा को। प्रचेतस् शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् (अ) प्रत्यय। 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् को वृद्धि। 'प्राचेतस' इस स्थिति में स्त्रीत्वविवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' सूत्र से ङीप्। 'यस्येति च' सूत्र से सकारोत्तर-वर्ती अकार का लोप। तदनन्तर विभक्ति कार्य होने पद 'प्राचेतसी' पद निष्पन्न होता है। पश्चिम दिशा के दिक्पाल वरुण अथवा प्रचेता हैं इस लिए उसे वारुणी अथवा प्राचेतसी कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भगीरथपथः—भगीरथस्य पन्थाः इति भगीरथपथः। षष्ठी समास होने पर 'भगीरथ पथिन्' इस स्थिति में 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से 'अ' प्रत्यय होकर 'नस्तद्धिते' सूत्र से 'इन्' टि का लोप विभक्ति कार्य होने पर 'भगीरथपथः' समस्त पद बनता है।

श्लोक ८७—भागीरथी—भगीरथस्यापत्यं स्त्री भागीरथी। भगीरथ शब्द से 'तस्यापत्यम्' से अण् (अ)। 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच् की वृद्धि। 'यस्येति च' से थकारोत्तरवर्ती अकार का लोप। 'भागीरथ' इस स्थिति में 'टिड्ढाणञ्०' से ङीप् (ई)। 'यस्येति च' से अन्तिम 'अ' का लोप। विभक्तिकार्य होने पर 'भागीरथी' पद निष्पन्न होता है।

जह्नोः—जह्नु के। जह्नुका उल्लेख विद्वानों ने मुनिरूप में किया है किन्तु इन्हें एक प्राचीन राजा भी कहा गया है। इनके पिता का नाम 'सुहोत्र' बताया गया है।

श्लोक ८८—प्रापयत्—प्रपूर्वक ण्यन्त आप् धातु के लङ्लकार का रूप है अतएव प्रयोज्य कर्ता 'पितरः' को 'गतिबुद्धि०' सूत्र से कर्मसंज्ञा होने से द्वितीयान्त 'पितॄन्' के रूप में प्रयुक्त किया गया।

पृष्ठ ८२—सुरासुराणाम्—सुराश्चासुराश्चेति सुरासुरास्तेषाम्। इतरेतरद्वन्द्वसमास है। यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि सुरों और असुरों का परस्पर विरोध होने से 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' से यहाँ एकवद्भाव होना चाहिए। इसका समाधान यह कि सुरों और असुरों का विरोध गोव्याघ्रादि की तरह स्वाभाविक या शाश्वतिक नहीं है अपितु कार्यतः है अतः एकवद्भाव नहीं होता है।

शतधारपाणिना—शतधारं पाणौ यस्य तेन। 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' वार्तिक से पाणि पद का पर निपात हुआ है। 'शतधारपाणिना' यहाँ करणसंज्ञा होने से तृतीया हुई है। क्योंकि 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' सूत्र से प्रयोज्य कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा विकल्प से होती है।

दैतेयः—दितेरपत्यं पुमान् दैतेयः। दितिशब्द से 'स्त्रीभ्यो ढक्' सूत्र से ढक्। ककार की इत्संज्ञा। 'किति च' सूत्र से आदि अच् 'इ' को वृद्धि 'ऐ'। आयनेयीनीयियः०' से 'ढ' को एय् आदेश। 'यस्येति च' सूत्र से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तकारोत्तरवर्ती, इकार का लोप। विभक्ति कार्य होने पर 'दैतेय:' पद निष्पन्न होता है।

श्लोक ९६—आरोपयामास अ + √रुह् + णिच् + लिट्। 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' सूत्र से रुह् के हकार को पकारादेश हुआ है।

त्रिशङ्कुम्—यहाँ त्रिशङ्कु पद प्रयोज्य कर्ता है अतएव ण्यन्तावस्था में उसे 'गतिबुद्धि०'—इत्यादि सूत्र से कर्मसंज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

श्लोक ९८—द्विजन्मा = ब्राह्मण। द्वे जन्मनी उत्पत्तिकर्मभ्यां यस्य सः द्विजन्मा। ब्रह्मवर्चसम्—ब्रह्मणः वर्चः इति ब्रह्मवर्चसम्। षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' सूत्र से अच् प्रत्य हुआ है।

श्लोक ९९—अर्घ्यम्—अर्घः पूजा तदर्थं जलमर्घ्यम्। 'पादार्घाभ्यां च' सूत्र से यत् प्रत्यय। विधिवत्—विधिमर्हति विधिवत्। विधि शब्द से 'तदर्हम्' सूत्र से 'वति' प्रत्यय।

पृष्ठ ९७—सीतानामधेयभाजनम्—'सीता' ऐसे नाम का पात्र अर्थात् सीता नामक। 'सिता लाङ्गलपद्धतिः' इत्यमरः। हल के चलाने से खेत में बनी हुई रेखा को सीता कहते हैं। उसी से उत्पन्न होने के कारण यहाँ 'सीता' यह अन्वर्थ संज्ञा है। नामधेय एवं भागधेय में नाम और भाग शब्द से स्वार्थ में 'धेय' प्रत्यय हुआ है। 'नामरूपभागेभ्यः स्वार्थे धेयो वक्तव्यः' इति।

श्लोक १०३—तिलकिते—तिलकः सञ्जातः अस्येति तिलकितः भूषित इत्यर्थः। तिलक शब्द से 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्' सूत्र से इतच् (इत) प्रत्यय हुआ है। वैकर्तने—विकर्तनः सूर्यः, तस्यायं वैकर्तनः, तस्मिन्। सूर्य का। विकर्तन शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है।

श्लोक १०४—जीमूतनादायितम्—जीमूतनादेनेवाचरितम्। 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' सूत्र से क्यङ् (य)प्रत्यय। 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' से दीर्घ। क्यङन्त से भाव में क्त प्रत्यय हुआ है। इसी प्रकार 'पुण्याहघोषायितम्' और 'माङ्गल्यतूर्यायितम्' में भी समझना चाहिए।

श्लोक १०५—दिशां द्विरदधीङ्कृतैः—दिग्गजों के चिग्घाड़ने के शब्दों से। दिग्गज उस हाथी को कहते हैं जो पृथ्वी को संभालने के लिए किसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिशा में स्थित कहा जाता है। यह आठों दिशाओं में स्थित होने के कारण अष्ट दिग्गज कहलाते हैं। अमर कोशकार का वचन है—

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्वभौमस्सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥'

अर्थात् पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक नामक आठ दिग्गज हैं।

राजन्वती—सुराजा अस्त्यस्या इति राजन्वती। राजन् + मतुप्। मकार को वकार। स्त्रीत्वविवक्षा में 'उगितश्च' सूत्र से ङीप् (ई)। न्यायपरायण या उत्तम राजा द्वारा शासित। राजन्वान् पद में 'राजन्वान् सौराज्ये' सूत्र से सौराज्य अर्थ में नलोपाभाव निपातन से होता है। मतुप् होकर मकार को वकार 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' सूत्र से ही सिद्ध है। केवल 'राज से युक्त' अर्थ में 'राजवान्' ही होगा। वहाँ नकार का लोप हो जायगा।

'सुराज्ञिदेशे राजन्वान् स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान्' इत्यमरः।

महाकवि कालिदास रचितश्लोक है—

कामं नृपाः सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः॥ (रघुवंश, ६।२२)

तिलकायते – तिलक के समान आचरण करता है 'तिलक इव आचरति ऐसा विग्रह करने पर 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' सूत्र से क्यङ् (य) प्रत्यय। अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' से दीर्घ।

पृष्ठ १०५—गोदानमङ्गलम् – गावः लोमानि दीयन्ते खण्डयन्त इति गोदानम्। बालों का काटा जाना। विवाह से पूर्व यह संस्कार किया जाता है। इसे 'केशोल' भी कहते हैं। मनुने भी कहा है—'केशान्तं षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते। राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः॥' इति। कालिदास ने 'रघुवंश' में इसका उल्लेख किया है—

अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्त्तयद् गुरुः'। (रघु० ३।३३)

पृष्ठ १०७—उग्रप्रतापिनम्—उग्रः प्रतापः इति उग्रप्रतापः, सोऽस्त्यस्येति उग्रप्रतापी तम्। उग्रप्रताप शब्द से मतुबर्थ में 'अत इनि ठनौ' सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है। यहाँ कर्मधारय समास करके तब मत्वर्थीय इनि प्रत्यय किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है। इस प्रकार दो वृत्तियाँ करनी पड़ती हैं, जबकि बहुव्रीहि समास करने से ही उस अर्थ की प्रतिपत्ति (बोध) हो सकती है। कहा गया है—'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः।' परन्तु परशुराम के उग्र प्रताप का नित्ययोग दिखलाना अभीष्ट है, इस लिए दो वृत्तियों का आश्रय लेने में दोष नहीं समझा जाना चाहिए।

मध्येमार्गम्—'मार्गस्य मध्ये' इस विग्रह में 'पारेमध्ये षष्ठ्या वा' सूत्र से अव्ययीभाव समास होने पर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से मध्य शब्द का पूर्व प्रयोग। निपातन से एदन्त होकर 'मध्येमार्गम्' बना।

श्लोक १११—अवजिगमिषुः—जीतने का इच्छुक। (अव + √गम् + सन् + उ)

पृष्ठ १११—स्वर्गतिं रुरोध—स्वर्गगमन को रोक दिया। परशुराम को अपना धनुष देते समय भगवान् विष्णु ने कहा था कि मैं अवतार धारण कर जिस दिन इसे चढ़ा दूँगा उसी दिन से आप का स्वर्ग तक बेरोकटोक आना-जाना रुक जायगा और आप का वह तेज भी नहीं रह जायगा।

पृष्ठ ११२—संक्रान्त—परशुराम को त्याग कर वैष्णवी शक्ति नूतन अवतार राम में संक्रान्त हो गयी।

परिवृढ—परिवृंहतीति परिवृढः। प्रभु, स्वामी। कर्ता में क्तप्रत्यय। 'प्रभौ परिवृढः' सूत्र से नकार और हकार का लोप तथा निष्ठा तकार का ढत्व निपातन से करते हैं।

आतपत्रायमाणम्—आतपत्रमिवाचरतीत्यातपत्रायते। 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' सूत्र से क्यङ्। क्यङन्त से लट् को 'शानच्' आदेश। 'आने मुक्' सूत्र से 'मुक्' का आगम। नकार को णकार होकर 'आतपत्रायमाण' शब्द बनता है।

अयोध्याकाण्ड

श्लोक सं० १—भुजाबलात्—भुजा के बल से। संस्कृत साहित्य में भुज (पुल्लिङ्ग) और भुजा (स्त्रीलिङ्ग) दोनों का प्रयोग मिलता है। अमरकोशकार ने 'भुजबाहू-प्रवेष्टो दोः' कह कर पुंल्लिङ्ग का निर्देश किया है और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेदिनीकोशकार ने 'अथो भुजा द्वयोर्बाही करे' कह कर स्त्रीलिङ्ग का निर्देश किया है। भुजा = √भुज् + क + टाप्।

मातुलस्य–मामा का। मातुर्भ्राता मातुलः। मातृशब्द से 'मातुर्डुलच्' वार्तिक से डुलच् (उल) प्रत्यय तथा टिलोप करने से 'मातुलः' पद निष्पन्न होता है।

श्लोक सं० २—धुर्यः—धुरं वहतींति धुर्यः, भारधारण करने वाला। धुर् शब्द से 'धुरो यड्ढकौ' सूत्र से यत् (य) प्रत्यय होने से 'धुर्यः' पद निष्पन्न होता है। विधातुमनाः—'तुं काममनसोरपि' इति तुमुन् के मकार का लोप।

पृष्ठ ११६—वृद्धश्रवः पुरोधः समान्–वृद्धश्रवाः इन्द्र, उसके पुरोधाः पुरोहित बृहस्पति के तुल्य। पौरवृद्धान्–पुर के बड़े बूढ़ों को जो विद्याबुद्धि आदि में बृहस्पति के समान थे। आमन्त्र्य = आमन्त्रित कर।

विदितमेव भवताम्—आप लोग जानते ही हैं। 'विदितम्' में 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से वर्तमान में क्त प्रत्यय। 'क्तस्य च वर्तमाने' सूत्र से 'भवताम्' में षष्ठी।

शिवतातिम्–कल्याणकारी। सुपथा–शोभनः पन्थाः इति सुपन्थाः, तेन सुपथा। 'न पूजनात्' सूत्र से समासान्त का निषेध होने से 'ऋक् पूरब्धूः पथामानक्षे' से 'अ' प्रत्यय नहीं होता। 'सु' यहाँ पूजनार्थक है। 'पथो विभाषा' सूत्र से समासान्त के वैकल्पिक होने से यहाँ समासान्त का अभाव हुआ–ऐसा कहना ठीक नहीं है क्यों कि 'पथो विभाषा' की प्रवृत्ति नञ् तत्पुरुष में ही होती है। देवभूयम्–देवत्व को। 'भुवो भावे' से क्यप्।

पृष्ठ १२०—वरिष्ठा–विख्यात। उरु शब्दात् इष्ठन्। 'प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुल०'–इत्यादि सूत्र से उरु को 'वर्' आदेश। ततः स्त्रीत्वविवक्षा में टाप्।

विश्वम्भराभारम्–विश्वम्भरायाः भारस्तम्। विश्वम्भरा–विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा विश्व को धारण करने वाली और उसका पोषण करने वाली (पृथिवी)।

विश्वं बिभर्ति इस विग्रह में 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः' सूत्र से खच् प्रत्यय। अनुबन्ध लोप। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इस सूत्र से मुम् का आगम। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से ऋकार को गुण (अर्)। ततः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् होने पर 'विश्वम्भरा' पद बनता है। यह 'पृथिवी' की संज्ञा है।

अवतार्य—(राम पर) उतार कर अर्थात् राम पर डाल कर।

पृष्ठ १२१—प्रावृषेण्यः—वर्षाकाल में होने वाला। 'प्रावृषि भवः' इस विग्रह में 'प्रावृष एण्यः' सूत्र से 'एण्य' प्रत्यय होकर 'प्रावृषेण्य' शब्द बनता है। पयोवाह = बादल। केका = मयूर की बोली। कलापी = मयूर। प्रमद = हर्ष। मुखरितम् = मुखरीकृतम्। मुखरं करोति मुखरयति। 'तत्करोति तदाचष्टे' सूत्र से णिच्। णिजन्त से कर्म में क्त प्रत्यय होने पर 'मुखरित' शब्द निष्पन्न होता है।

पृष्ठ १२२—संमर्द = भीड़। परिजिहीर्षयेव = मानों परिहार की इच्छा से-धूल से मानों बचने की इच्छा से। रोमाञ्चप्रपञ्चेन = रोमाञ्च के प्रसार से। कञ्चुकिताङ्गानाम्-जिनके अङ्ग अँगरखे से युक्त हैं अर्थात् जिसका शरीर आच्छादित है। पौर जनों का शरीर हर्ष से रोमाञ्चित हो गया। मानों राम के राज्याभिषेक के समय भीड़ होने पर जो धूल उड़ेगी उससे बचने के लिए लोगों ने अपने-अपने शरीर को रोमाञ्च के प्रसार से आच्छादित कर लिया हो। 'कञ्चुकित' में कञ्चुक शब्द से तारकादित्वात् इतच् प्रत्यय। अथवा 'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच्। णिजन्त से कर्म में क्त प्रत्यय हुआ है।

श्लोक सं० ५—अनाश्रिततपोवनभूमिभागान्—न आश्रितः तपोवनस्य भूमिभागो यैस्तान्, जिन्होंने तपोवन प्रदेश का आश्रय नहीं लिया है। उन्मुच्य= छोड़ कर। उत् + √मुच् + ल्यप्। अम्लानमौग्ध्यम्-न म्लानं क्षीणं मौग्ध्यम् बालभावो यस्य तम्, जिसका बालभाव अभी गया नहीं है उस राम को। राम पर प्रजा के अनुराग को देख कर दशरथ के हृदय में राम के प्रति असूयाभाव का उदय नहीं हो रहा है किन्तु उन्हें हर्ष हो रहा है। कहा गया है कि 'पुत्रा-दिच्छेत् पराभवम्'। पिता पुत्र को अपने से बढ़ा हुआ देखकर प्रसन्न होता है।

पृष्ठ १२५—कौतुकमङ्गलम्—कौतुक शब्द यहाँ हस्तसूत्र (हाथ में बाँधा जाने वाला रक्षासूत्र) का वाचक है। ('कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः) राज्याभिषेक के उत्सव में मङ्गलार्थ रक्षासूत्र का हाथ में बाँधा जाना शास्त्रोक्त आवश्यक विधान है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संजात कौतुकः—संजातं समुत्पन्नं कौतुकं हर्षो यस्य स वसिष्ठः। यहाँ कौतुक शब्द हर्षवाचक है। रामराज्याभिषेक के आवश्यक विधानों के संपादक रूप में अपने को कृतार्थ मानते हुए वसिष्ठ को अपार हर्ष हुआ।

श्लोक सं० ९—निशिचरकुलोन्मूलने मूलहेतुम्–मन्थरा को राक्षसकुल विनाश का मूलहेतु कहा जाता है, क्यों कि यह कैकेयी की बुद्धि को पलट कर उसके द्वारा राम को न वन भिजवाती, न सीता हरी जाती, न राक्षसकुल का विनाश होता। चित्तं प्रकृतिकुटिलं गात्रमित्रम्–मन्थरा का शरीर कुटिल (टेढ़ा) तो था ही, उसका चित्त भी कलुषित विचारों के कारण कुटिल था। यहाँ 'आकारसदृशीप्रज्ञा' लोकोक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती है। गात्रमित्रम्–शरीर का मित्र अर्थात् शरीरसदृश। अम्भोजिन्याः—कमलिनी अर्थात् वापी के। कासरी + भैंस। कासर शब्द से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' सूत्र से ङीष्।

श्लोक सं० १०—झञ्झावात– वर्षा के साथ आँधी तूफान। अशनिः—वज्र। दौर्जन्यम्–कुटिलता।

पृष्ठ १२८—पिशाचिका—पिशाच शब्द से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' सूत्र से ङीष् होने पर 'पिशाची' शब्द बना। पिशाच्येव पिशाचिका। स्वार्थ में 'क' प्रत्यय। 'केऽणः' सूत्र से ह्रस्व होकर तदनन्तर 'टाप् होने से 'पिशाचिका' शब्द निष्पन्न होता है।

आवेशः – आ + √विश् + घञ् (भावे)। वास्तव्यः-वसतीति वास्तव्यः। वस्धातु से 'वसेस्तव्यत् कर्तरि णिच्च' वार्तिक से कर्ता में 'तव्यत्' प्रत्यय और णिद्वद्भाव हुआ। 'अत उपधायाः' सूत्र से उपधाभूत अकार को वृद्धि होने से 'वास्तव्यः' पद निष्पन्न हुआ। वितीर्णम्–वि + √तॄ + क्त (कर्म में)। दिया गया।

श्लोक सं० १२—पुटपाकरीतिं हृदये ऊरीचकार–हृदय में पुटपाक की पद्धति को अपनाया अर्थात् जिस तरह पुटपाक द्वारा भीतर-ही भीतर धीरे-धीरे दह्यमान वस्तु निःशेष दग्ध होती है उसी तरह राजा दशरथ का हृदय अत्यन्त सन्तप्त हुआ। उन दोनों वरों से हृदय सम्पुटित हो जलने लगा।

पुटपाक - औषधियाँ तैयार करने की विशेष पद्धति। इसमें सोना आदि को सम्पुट में रख कर आग में डाल कर जलाया जाता है। अथवा औषधियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को पत्तों में लपेट कर ऊपर से मुल्तानी मिट्टी पोत देते हैं और फिर आग में भूना जाता है। भवभूति ने भी उत्तररामचरित में कहा है—'अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः। पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥ (३।१)।

श्लोक सं० १३—उज्जिहाना—पलायमाना। उद् पूर्वक 'ओहाङ् गतौ' धातु से लट् को 'शानच्' आदेश। ततः टाप्। मृगी–मृग शब्द से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् सूत्र से ङीष्।

श्लोक सं० १४—कामम् = यह अव्यय पद है। प्रसन्नता पूर्वक। कौतुकम्=हस्तसूत्र। (पुनः प्रयुक्त) कौतुकम्–अत्यन्त उत्कण्ठा, हर्ष। (कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इत्यमरः) वक्ष्यामि=वहन कर लूँगा, सह लूँगा। 'वह प्रापणे' धातु के लृट् लकार में उत्तमपुरुष एक वचन का रूप है। (पुनः प्रयुक्त) वक्ष्यामि = कहूँगा। यह 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' धातु के लृट् लकार में उत्तम पुरुष एकवचन का रूप है।

श्लोक १५-कठोरहृदये-यह कैकेयी के लिए प्रयुक्त सम्बोधन पद है। जिस हृदय में राम के वनवास का अभिलाष भरा है उसकी कठोरता स्वतः सिद्ध है। नयनाभिरामम्-नेत्रों को आनन्द देने वाला। वत्स = पुत्र। इन दोनों विशेषणों से राम के विरह की असह्यता प्रकट की गयी है। धातुर्बलात् = भाग्यवश। जातपूर्व='पूर्वं जातः' इस विग्रह में 'सुप्सुपा' सूत्र से समास हुआ। उपयमः = विवाह। उपयमम्- यमस्य समीपम्, 'अव्ययं विभक्ति०-इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास।

श्लोक १७-सत्यगिराम्=सत्या गीर्येषां तेषाम्, सत्यवादियों में। पुरोगः = श्रेष्ठ। पुरो गच्छतीति पुरोगः। गम् धातु से 'अन्यत्रापि दृश्यते इति वक्तव्यम्' वार्तिक से 'ड' प्रत्यय। डित्व होने से भसंज्ञा न होने पर भी 'टि' का लोप। अरिन्दमः='शिवि' का दूसरा नाम है। अरीन् दमयतीत्यरिन्दमः। 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः' सूत्र से खच् प्रत्यय। अनुबन्ध लोप। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' सूत्र से मुम् का आगम। अनुबन्ध लोप। मकार को अनुस्वार' अनुस्वार को परसवर्ण होने से 'अरिन्दमः' पद निष्पन्न होता है। आमिषीभूतः—भोग्य वस्तु बना हुआ। न आमिषमित्यनामिषम्। अनामिषमामिषं भूत इति आमिषीभूतः। आमिष + च्वि + √भू + क्त। जीवातवे जीवा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तु शब्द से तादर्थ्य में चतुर्थी है। जीवातु शब्द यहां जीवन का वाचक है। वैसे इसका अर्थ जीवनौषध हैं। 'जीवातुर्जीवनौषधम्' इत्यमरः। जीवातवे = जीवन के लिए। शिवि और कपोत का उपाख्यान सर्वविदित है, अतः उसका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

श्लोक १८–अभ्यर्च्य = समादर कर। अभि + √अर्च् + ल्यप्। वितीर्य = देकर। वि + √तॄ + ल्यप्। विप्राय = ब्राह्मण को। सम्प्रदाने चतुर्थी। प्राज्ञः = मनीषी। प्रज्ञ एव प्राज्ञः। प्रज्ञा शब्द से 'प्रज्ञादिभ्यश्च' सूत्र से स्वार्थ में अण् प्रत्यय। अथवा प्रज्ञास्त्यस्येति प्राज्ञः। प्रज्ञा शब्द से 'प्रज्ञाश्रद्धा-र्चाभ्यो णः' सूत्र से मतुबर्थ 'ण' प्रत्यय। अलर्कसंज्ञः-अलर्क नामक। अलर्क नामक एक राजा था। उसके पास एक याचक ब्राह्मण आया। उसने अलर्क से प्रतिज्ञा करवाली कि जो माँगोगे वही दिया जायगा। ब्राह्मण ने उसकी आँखें माँगीं। अलर्क ने बड़े आदर से उसे अपनी आँखे निकाल कर दे दीं और इस तरह अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

श्लोक संख्या १९–जललिपिः-जल पर अक्षरों का लिखना। कैकेयी के कथन का अभिप्राय है कि जैसे जल पर लिखना, न लिखने के बराबर है क्योंकि उसकी सत्ता तत्क्षण नष्ट हो जाती है वैसे ही आप (दशरथ) का दो वर देना अब न देने के बराबर है क्योंकि आप की बात का कोई ठिकाना नहीं रह गया।

श्लोक संख्या २०–सत्योद्याम्–सत्येन उद्या उक्ता इति सत्योद्या ताम् सत्य रूप में कही गयी। वद् धातु से 'वदः सुपि क्यप् च' सूत्र से कर्म में क्यप् प्रत्यय। अनुबन्ध लोप। 'वचिस्वपियजादीनां किति च' सूत्र से सम्प्रसा-रण। यहाँ भाव में प्रत्यय नहीं अपितु कर्म में है क्योंकि इसी सूत्र के सन्दर्भ में वाक्य है—'कर्मणि प्रत्ययावित्येके'। ऐसा भाष्य का अनुसरण करके लिखा गया है। पश्यतस्ते—तुम्हारे देखते-देखते अर्थात् 'पश्यन्तं त्वामनादृत्य'। 'षष्ठी चानादरे' सूत्र से षष्ठी। प्रवर्तमानम् = आरम्भ किया गया। सन्नाहम् = सजावट, तैयारी को।

श्लोक संख्या २१– नैवापम्- न + एव + आपम् = मैंने नहीं प्राप्त किया। (पुनः प्रयुक्त) नैवापम्-निवापः = पितृतर्पणम्। निवापस्येदमिति नैवापम्, पितृ–

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तर्पण सम्बन्धी । निवाप शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है । भरतेन न मे प्रदेयम्–दशरथ के कहने का अभिप्राय है कि राम के वन चले जाने पर मेरी मृत्यु निश्चित है । उस स्थिति में भरत मुझे जलाञ्जलि न दे, इसका तू (कैकेयी) ख्याल रखना, क्योंकि भरत यद्यपि सद्वृत्तिसम्पन्न है तथापि तुझ जैसी दुःशीला के गर्भ से जन्मग्रहण करने के कारण 'सद्बीजान्यपि सस्यानि दुष्येयुः क्षेत्रदोषतः' उक्ति के अनुसार वह भी पापपराहत है अतः उसके हाथ की जलाञ्जलि मुझे ग्राह्य न होगी ।

श्लोक संख्या २२–तारवीणाम्–तरुसम्बन्धिनी । तरु शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् । 'टिड्ढाणञ्०' सूत्र से ङीप् हुआ है । तारवी शब्द का षष्ठी बहुवचन में 'तारवीणाम्' रूप है । त्वचाम् = वल्कलों का ।

पृष्ठ १४०—अनुबुभूषुः—अनुभवितुमिच्छतीत्यनुबुभूषति, अनुबुभूषतीति अनुबुभूषुः = अनुभव करने का इच्छुक । अनु + √भू + सन् + उ ।

श्लोक सं० २४—भूभरतः—पृथ्वी के भार से । भर शब्द से पञ्चम्या-स्तसिल्' सूत्र से तसिल्' । अन्ववाय = वंश । ककुद = श्रेष्ठ । निवाप = पितृ-तर्पण । पुत्री-पुत्राः सन्त्यस्येति पुत्री । पुत्र शब्द से प्राशस्त्य में 'अत इनिठनौ' सूत्र से मतुबर्थ 'इनि' प्रत्यय । प्रशस्त पुत्रों वाला ।

श्लोक सं० २५—गरीयान्—बहुत बड़ा । अतिशयेन गुरुः इति गरीयान् । गुरु शब्द से ईयसुन् प्रत्यय । अनुबन्ध लोप, 'प्रियस्थिर'—इत्यादि सूत्र से गुरु को गर् आदेश ।

कैकेयी ने पक्षपातवश अपने पुत्र को राज्य और सपत्नीपुत्र राम को वनवास क्रमशः सुखकर और दुःखकर होने के कारण दिया था परन्तु इस श्लोक में उक्त कार्य को विफलता और अनर्थ की उत्पत्ति राम द्वारा दिखायी गयी है अतः यहाँ आरब्ध कार्य के वैफल्य में अनर्थोत्पत्तिरूप' विषम' अलंकार है । 'विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिर्यत्रानर्थस्य वा भवेत् । विरूपसंघटना सा स्याद्विष-मालंकृतिस्त्रिधा ।'

श्लोक सं० २६—व्यवहृत्य = कह कर । हृद्यम् = प्रिय । वत्स = अर्थात् भरत । पूर्णपात्र = किसी उत्सव आदिके अवसर पर मङ्गल सूचना देने वाले को दी जाने वाली वस्तु पूर्णपात्र कही जाती है । 'उत्सवादिषु यद्देयं पूर्णपात्र तदुच्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पृष्ठ १४५—दिवस्पतिः—इन्द्रः। दिवस्पतिपदभ्रंशविधुरो नहुष इव–नहुष एक चन्द्रवंशी राजा था। ययाति इसी के पुत्र थे। वृत्रासुर को मारने पर इन्द्र ब्रह्महत्या का प्रायाश्चित करने के लिये एक सरोवर में जा छिपा। उस समय नहुष को इन्द्र पद पर बिठाया गया। वह इन्द्राणी को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये सप्तर्षियों को पालकी ढोने के लिए नियुक्त कर स्वयम् उसमें बैठकर इन्द्राणी के भवन की ओर चला। काम-वश जल्दी पहुँचने के लिये उसने सप्तर्षियों को 'सर्प' 'सर्प' (तेज चलो, तेज चलो) कहा। तब अगस्त्य मुनि ने क्रुद्ध होकर उसे सर्प हो जाने का शाप दिया। वह स्वर्ग से पृथिवी पर गिरा और उस दुरवस्था में तब तक पड़ा रहा जब तक युधिष्ठिर ने आकर उसका उद्धार नहीं कर दिया।

श्लोक २८—क्षेमंकरे = कल्याण करने वाला। क्षेमं करोतीति क्षेमंकरः तस्मिन्। 'क्षेमप्रियमद्रेऽण् च' सूत्र से खच् प्रत्यय। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' सूत्र से मुमागम। कान्तार = वन। प्रतिसर = हस्तसूत्र।

पृष्ठ १४९—धर्म्यात् पथः प्रमाद्यापि–'धर्म्यात् पथः' में पञ्चमी विभक्ति है। 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्।

धर्म्यात् धर्म शब्द से 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' सूत्र से यत् प्रत्यय।

निःश्रेयसे–कल्याण में, मोक्ष में। निश्चितं श्रेयः निःश्रेयसम् 'अचतुर'–इत्यादि सूत्र से अच्प्रत्ययान्त निपातित होता है।

श्लोक २९—अरुणिमा–लाली। अरुण शब्द 'वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च' सूत्र से चकार बल से इमनिच् प्रत्यय। अनुबन्ध लोप। 'यस्येति च' सूत्र से णकारोत्तरवर्ती अकार का लोप। तदनन्तर विभक्ति कार्य करने पर 'अरुणिमा' पद निष्पन्न होता है। इसी प्रकार पाटल शब्द से पाटलिमा बनता है। मामकम्–ममेदं मामकम् = मेरा। अस्मद् शब्द से 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' सूत्र से पक्षे अण्। अनुबन्ध लोप। 'तवकममकावेकवचने' सूत्र से 'ममक' आदेश। 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से मकारोत्तरवर्ती अकार का लोप। तदनन्तर विभक्ति कार्य करने पर 'मामकम्' पद निष्पन्न होता है।

पृष्ठ १५२—वश्यः—'वश कान्तौ' (कान्ति इच्छा) धातु से भाव में वशिरण्योरुपसंख्यानम्' से अप् प्रत्यय हो कर 'वशः' पद बनता है। वशमिच्छां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गतः प्राप्त इति वश्यः, इच्छाधीनः । 'वशं गतः' इस विग्रह में 'वशं गतः' सूत्र से यत् प्रत्यय ।

पृष्ठ १५४ – पुरःसरीम्-पुरःसरतीति पुरःसरः, स्त्री चेत् पुरःसरी ताम् ! 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषुसर्त्तेः' सूत्र से 'ट' प्रत्यय । 'चुटू' सूत्र से 'ट्' का लोप । 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से 'ऋ' को गुण 'अर्' । टित्त्वात् 'टिड्ढाणञ्०' इत्यादि से ङीप् हो कर 'पुरःसरी' पदनिष्पन्न होता है ।

श्लोक ३२—प्रिये प्रीणातीति प्रियः, स्त्री चेत् प्रिया, तत्सम्बुद्धी हे प्रिये ! 'प्रीञ् तर्पणे' धातु से कर्ता में 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' सूत्र से क प्रत्यय । अकारान्त होने से 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् । जनकनन्दिनि–जनकस्य नन्दिनीति जनक-नन्दिनी तत्सम्बुद्धी जनकनन्दिनि ! नन्दिनी–नन्द + णिच् + णिनिः (ताच्छील्ये) 'नन्दिन्' से 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप् ।

पृष्ठ १५६—महार्घाणि = महान् अर्घः मूल्यं येषां तानि । बहुमूल्य । यहाँ अर्घ शब्द मूल्यवाचक है–'मूल्ये पूजा विधावर्घः' इति वैजयन्ती । वर्मणी = दो कवच । ('तनुत्रं वर्म दंशनम् । उरश्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रिया-मित्यमरः) । निमर्यादशिलीमुखकृतानुषङ्गौ = अनन्तबाणपूर्णौ, अक्षयसायका-वित्यर्थः । 'शिलीमुख' शब्द भ्रमर और बाण दोनों का वाचक है। यहाँ बाण का ही बोध कराता है । ('अलि बाणौ शिलीमुखौ इत्यमरः) ।

पृष्ठ १५९—झञ्झानिल—हलकी वर्षा के साथ चलने वाली तेज हवा । निःश्वास—बाहर निकलने वाली साँस, जो शोक के समय दीर्घ हो जाती है । अस्र = आँसू । शुद्धान्तात् = अन्तःपुरात्, अन्तःपुर से ।

श्लोक ३५—कृतासमञ्जनिर्यासम्—असमञ्ज नामक पुत्र को त्यागने वाला । राजा सगर की दो पत्नियाँ थीं–केशिनी और सुमति । केशिनी से एक पुत्र असमञ्ज नामक था और सुमति से साठ हजार पुत्र थे । केशिनी का इकलौता लड़का असमञ्ज लाड-प्यार के कारण धीरे-धीरे इतना दुश्चरित्र हो गया कि उसे सगर को त्याग देना पड़ा । यहाँ कैकेयी की दृष्टि सगर के पुत्र-त्याग की ओर तो है किन्तु वह त्यागा गया पुत्र किस स्वभाव और आचरण का था, इसको नहीं देखती है ।

पृष्ठ १६५—सपरिच्छदः—परिच्छाद्यतेऽनेनेति परिच्छदः । 'पुंसि संज्ञायां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घः प्रायेण' इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय। 'णेरनिटि' सूत्र से णिच् का लोप। छादेर्थेऽद्व्युपसर्गस्य' णिच्प्रकृति-भूत 'छाद्' की उपधा को ह्रस्व। परिच्छद का अर्थ नौकर-चाकर, परिजन होता है एवं नित्य उपयोग होने वाले उपकरण के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यहाँ दोनों अर्थों का बोध करा रहा है।

श्लोक ३८—मध्यमाम्बानियोगात्—मध्ये भवा मध्यमा, न तु ज्येष्ठा नापि कनिष्ठा, सा चासावम्बा तस्या नियोगात्। कतिपय लोगों का मत है कि मध्यमा शब्द का प्रयोग उसी तरह हुआ है जैसे अर्जुन के लिए मध्यम पाण्डव का प्रयोग होता है. कैकेयी दशरथ की मध्यम पत्नी नहीं, कनिष्ठा पत्नी ही थी किन्तु यह मत युक्त नहीं है। जैसे आकाश और पाताल के मध्य में होने से भूलोक को मध्यम लोक कहते हैं वैसे ही कौशल्या और सुमित्रा के मध्य में होने से कैकेयी मध्यमा कही जाती है।

पृष्ठ १६६—अचित्रीयन्त—चित्रमकुर्वन्नित्यचित्रीयन्त। '(चित्रङ् आश्चर्ये इति वार्तिकम्) 'नमोवरिवश्चित्रङःक्यच्' सूत्र से क्यच्। अनुबन्धलोप। 'क्यचि च' सूत्र से ह्रस्व अकार को ईकार। 'चित्रीय' इस स्थिति में 'चित्रङ्' के ङित् होने से आत्मने पद। लङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में 'अचित्रीयन्त' पद बनता है।

पारम्पर्येण = क्रमशः, एक के बाद एक। राम को वल्कल पहिनते देखकर लोगों के मुख पर विकलता, उसके बाद विवर्णता तब म्लानता, तदनन्तर नेत्रों में आँसुओं का छलक पड़ना आदि विकार एक के बाद एक दिखाई पड़ने लगे।

श्लोक ३९—आमीलिताक्षः—आमीलिते अक्षिणी येन सः। बहुव्रीहि समास करके 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' सूत्र से षच् प्रत्यय। अनुबन्धलोप। 'यस्येति च' सूत्र से इकार लोप। विभक्तिकार्य होने पर 'आमीलिताक्षः' समस्त पद बनता है।

श्लोक ४२—आरुरुक्षुः—चढ़ने का इच्छुक। आरोढुमिच्छतीति आरुरुक्षति। आरुरुक्षतीति आरुरुक्षुः। सन्नन्त रुह् धातु से 'सनाशंसभिक्षउः' सूत्र से कर्ता में 'उ' प्रत्यय। अग्रसरी—अग्रे सरति या सा अग्रसरी। 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु' सूत्र से 'ट' प्रत्यय। टित्त्वात् 'टिड्ढा०'—इत्यादि से ङीप्।

रथ्यः—रथं वहतीति रथ्यः। रथ शब्द से 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' सूत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से 'वहति' अर्थ में यत् प्रत्यय होकर 'रथ्यः' पद निष्पन्न होता है। रथ्यः— रथवोढा अश्व। इस श्लोक में राम और सीता की उपमा सूर्य और उसकी प्रभा से देकर राम और सीता का नित्यसम्बन्ध सूचित किया गया है।

श्लोक ४ —आबालवृद्धम्—बालवृद्धानभिव्याप्येत्याबालवृद्धम्। 'आङ्-मर्यादाभिविध्योः' इत्यव्ययीभाव। तमनु,—उन (राम) के पीछे। 'अनुर्लक्षणे' सूत्र से अनु को 'कर्मप्रवचनीय संज्ञा। कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' सूत्र से अनु के योग में 'तम्' में द्वितीया।

श्लोक ४५—स्वेन कान्तेन साकम् स्वकीयेन प्रियेण सह। 'सार्धं तु साकं सत्रा समं सह' इत्यमरः। अतएव तद्योगे तृतीया। अह्नाय = झट-पट बहुत शीघ्र। यह अव्यय पद है। धात्री—यहाँ यह पद पृथिवी और जननी दोनों अर्थों का बोध एक साथ करा रहा है, क्योंकि पृथिवी ही सीता की जननी है। पांसुभिः = धूलों से। पर्यहार्षीत् — दूर कर दिया। परि + √हृ + लुङ् (तिप्)।

श्लोक ४६—रामानुसाररस०—रस=राग, ('गुणे रागे द्रवे रसः' इत्यमरः) चत्वर = प्राङ्गण। ('अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः)

पृष्ठ १७४—अथ दाशरथिः। दाशरथिः—श्रीरामचन्द्र। अहमहमिकया—होड़, प्रतियोगिता के कारण से। संमूर्च्छन् = जमा होते हुए, जुटाते हुए। संमूर्च्छन् यः जनौघः लोकसमुदायस्तस्य दुरवगाहतया दुष्प्रवेशतया। 'सब से पहिले हम राम के साथ हों लें' इस होड़ में अपार जनता की भीड़ जमा हो गयी जिसमें रथ का चलना मुश्किल हो गया और उसकी गति धीमी पड़ गयी। कोकनद = रक्तकमल। चरमगिरि = अस्ताचल। यहाँ प्रस्तुत 'राम' और अप्रस्तुत 'सूर्य' के 'मुकुलयन्' 'उपागमत्' इस समानधर्म का प्रतिपादन किया गया है, अतः 'दीपक' अलङ्कार है। यहाँ 'तुल्ययोगिता' नहीं है। तुल्य-योगिता वहीं होती है जहाँ ऐसे पदार्थों का एक धर्माभिसम्बन्ध हो जो या तो प्रस्तुत ही हो या केवल अप्रस्तुत ही हों।

श्लोक ४७—गृहाणि—गृह शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हुए भी बहुबचन की विवक्षा में पुंल्लिङ्ग होता है ('गृहाः पुंसि भूम्न्येवेत्यमरः) जैसे— 'इमे नो गृहाः' (मुद्राराक्षस, अंक १) स्फटिकोपलविग्रहा गृहाः' (नैषध २।७६) 'तत्रागारं धन-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम्' (मेघदूत ७'१) तथापि बहुवचन की भी विवक्षा में नपुंसक लिङ्ग प्रयुक्त मिलता है। जैसे यहीं 'आस्तीर्णपर्णशयनान्यभवन् गृहाणि'। 'गृहाणि नीध्रैरिव यत्र रेजुः' (माघ)।

पृष्ठ ५७६—निशीथे—आधी रात में। अतिविनतानन्देन = विनतानन्दनः गरुड़ः, तमतिक्रान्त इति अतिविनतानन्दनः, तेन। वेग में गरुड को भी मात कर देने वाले (रथ) से। 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' वार्तिक से समास। उपसर्जनसंज्ञा होने से 'अति' का पूर्वनिपात। विविध वन०-वीरुत् = लता। गहन = सघन। खुरमुद्रा = खुर का चिह्न। राम पौरजनों को सोता छोड़ कर तीव्रगामी रथ से चल पड़े और वे यह सोच कर कि कहीं जागने पर लोग घोड़ों के खुरों के निशान देखते हुए पीछा न करें इसलिए ऐसे मार्ग से गये कि जिसमें वन की घनी लताओं और घास आदि अनेक प्रकार के तृणों से भूमि इस कदर ढकी थी कि घोड़ों के खुर के निशान ही न बन सके। इंगुदीपादपम्—इंगुदी का वृक्ष। यह एक प्रकार का ओषधिवृक्ष है। साहित्यमें तपोवन के वर्णन-प्रसङ्ग में इसकी चर्चा आती है। इसके फलों का तेल चर्मरोग की अचूक दवा है। अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क में इस तेल को व्रग-विरोपण (घावों को जल्द भर देने वाला) बताया गया है। "यस्य त्वया व्रणविरोपणमिंगुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे'। (४।१६)। तापसजनों का आश्रय होने से इसे 'तापसतरु' भी कहा गया है। 'इंगुदी तापसतरुः' (अमरकोष)।

श्लोक ४८—वैखानसीं वृत्तिम्—वैखानसां तापसानां सम्बन्धिनीं वृत्तिम्। वैखानस शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् होकर 'टिड्ढाणञ्०' सूत्र से ङीप् हुआ है। तापसों की वृत्ति यथा जटावल्कलधारण, कन्दमूलादि भोजन वनवास आदि। अत्युज्जृम्भितहर्षशोकजनितैः—अत्यन्त उत्कट हर्ष और शोक से जनित। राम के दर्शन से अपार हर्ष और वनवास समाचार के सुनने से अपार शोक। दोनों के कारण जनित आँसू। शीताशीतगुणन्वितैः— हर्षजन्य आंसू शीतल और शोक-जन्य आंसू उष्ण गुण से युक्त।

पृष्ठ १७९—दुर्गवर्ग—गिरिदुर्गादि रक्षासाधन। नाना दुर्गों से युक्त राज्य राजाओं के लिए उपयुक्त होता है, इसी अभिप्राय से ऐसा कहा गया है। मनु का भी वचन है—'धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव च। नृदुर्गं गिरिदुर्गं च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समाश्रित्य वसेन्नृपः ॥' मन्थराहृदयतोदावहम्–मन्थरामानसव्यथाकरम् । गुह ने अपने राज्य का यह विशेषण प्रयुक्त किया है। उसके कथन का अभिप्राय यह है कि मेरे राज्य को आप के द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर यह मेरा राज्य मन्थरा के हृदय को व्यथित करने वाला सिद्ध होगा। उसने आपकी राज्यप्राप्ति के विघटन में जो चाल चली थी वह इस प्रकार से व्यर्थ हो जायगी और वह छटपटा कर रह जायगी।

पृष्ठ १८०—तत् एतत् अनिदम्प्रथमप्रवृत्तम्–प्रथमं प्रवृत्तम् इति प्रथमप्रवृत्तम्। इदं च तत् प्रथमप्रवृत्तमिति इदम्प्रथमप्रवृत्तम् न इदम्प्रथमप्रवृत्तम् इति अनिदम्प्रथमप्रवृत्तम्–यह पहिली बार अर्थात् नया-नया प्राप्त हो रहा है– ऐसी बात नहीं। निषादराज का अभिप्राय है कि सेवक अपनी समस्त वस्तुओं को अपनी नहीं, स्वामी की ही मानता है, अतः यह राज्य भी बहुत पहिले से ही आप ही का था और आप ही का दिया हुआ था। आप को यह नया नहीं मिल रहा है 'त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव' इस लिये इसे स्वीकार करें। परिजनयोग्य भाग्यभाजनम्–दासोचितभाग्य का पात्र। निषादराज अपने विषय में कह रहा है कि आप का दास होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मुझ जैसे जन को अनुगृहीत करें। समाः = वर्ष।

श्लोक ४९—प्रार्थनाभाजि—प्रार्थना करने वाला। प्रत्याचख्यौ–खण्डित कर दिया। क्षात्रप्रक्रियाम्–क्षत्रियोचित आचार अर्थात् राज्यपालन।

पृष्ठ १८१—रोधस्तरोः—(गङ्गा के) तट पर वर्तमान वृक्ष के। अधस्तात् = नीचे। सुमन्त्रनियन्त्रितरथ्ययोः–जिन राम और लक्ष्मण के रथ के घोड़ों को सुमन्त्र ने बाँध दिया। चरमे क्ष्माभृति = अस्तगिरि पर। चरमां सन्ध्याम्–सायंकालीन सन्ध्योपासन।

पृष्ठ १८३—विभावर्यां व्यतीतायाम्–विभावरी = रात उसके बीत जाने पर। पूर्वोर्वीधरमूर्ध्नि–पूर्व उर्वीधर पर्वत–उदयाचल के शिखर पर, अर्यममरीचिमालाहारिणि–अर्यमा सूर्य की किरणमाला रूप हार से युक्त होने पर अर्थात् सूर्य के उदित होने पर। कच्छम् = तीरम्।

श्लोक ५१—मेध्य = पवित्र अथवा यज्ञीय। मेधे यज्ञे साधुः इति मेध्यः। 'तत्र साधुः' सूत्र से यत् प्रत्यय। अथवा मेधं यज्ञमर्हतीति मेध्यः। 'तदर्हति'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूत्र से यत् प्रत्यय। तातानुतर्पणपचेलिमभागधेयाम्–तातानां पूर्वजानाम् अनुतर्पणेन पचेलिमं परिपक्वं भागधेयं भाग्यं यस्यास्ताम्। यह भागीरथी का विशेषण है। तात्पर्य है कि गङ्गाजल से राम के पूर्वज सगरपुत्रों का तर्पण होने से उसका उद्धार हुआ। इस प्रकार परोपकार करके गङ्गा जी परम-सौभाग्य वाली हुईं।

पृष्ठ १५८—वितीर्ण सुरसरित्पूरः–वितीर्णः सुरसरितः पूरः येन सः। राम जिन्हों ने गङ्गा का प्रवाह पार किया। वितीर्णः–वि + √तॄ + क्त। तूर्णम् = शीघ्र।

पृष्ठ १८५—प्रतायमानहोमधूमप्राग्भारम्—प्रतायमानः व्याप्नुवन् होम-धूमस्य प्राग्भारः समूहो यत्र तादृशम्। यह भरद्वाजाश्रम का विशेषण है। जहाँ होम का धुआँ फैल रहा था। होम के सुगन्धित धुँए से ही आश्रम के होने का पता चल जाता था। प्रतायमानः–प्र + तन् धातु से कर्मणि लट्। 'सार्वधातुके यक्' सूत्र से यक्। लट् को शानच् आदेश। 'आनेमुक्' से 'मुक्' का आगम। 'तनोतेर्यकि' सूत्र से 'तन्' के वैकल्पिक आकार अन्तादेश। वैकर्तनीपूरोपप्लवम्–यमुनाप्रवाह रूप आपत्ति को। मार्गनिरोधक होने से यमुना प्रवाह को उपप्लव कहा गया। वैकर्तनी = यमुना। विकर्तनः सूर्यस्त-स्यापत्यं स्त्री वैकर्तनी। 'तस्यापत्यम्' से अण्। 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच् की वृद्धि। 'यस्येति च' से नकारोत्तरवर्ती अकार का लोप। 'टिड्ढा-णञ्०'–से स्त्रियां ङीप्। प्लवेन = उडुपेन, छोटी नाव, बेड़ा, घन्नई। वैणवेन–बाँसों का बना हुआ। 'तस्य विकारः' से अण्। शात्रवम् = शत्रुता। शत्रोर्भावः शात्रवम्। 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्' इस सूत्र से अण् (भावे)।

श्लोक ५३– पथिकौ-पन्थानं गच्छतः इति पथिकौ। 'पथः ष्कन्' से ष्कन् प्रत्यय।

श्लोक ५६–धन्वी = धनुर्धर। धन्वम् धनुः, धन्वमस्त्यस्येति धन्वी। 'अत इनिठनौ' सूत्र से मत्वर्थीय इनि प्रत्यय। 'धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्' इत्यमरः।

श्लोक ५८– वैश्यस्य शूद्रायां जातः–शूद्रजातीय अङ्गना शूद्रा न तु शूद्रस्य स्त्री। शूद्र जाति में पैदा हुई स्त्री 'शूद्रा' कहलाती है। 'शूद्रा चामह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्पूर्वा जातिः' इति न ङीष्, अपि तु टाप्। शूद्रा में वैश्य से उत्पन्न की 'करण' संज्ञा होती है। 'वैश्यात्करणः शूद्रायाम्' इति याज्ञवल्क्यः।

श्लोक ५९–दशमीं दशाम्-मृत्यु। दस काम दशाओं में मृत्यु अन्तिम दसवीं दशा कही गयी है अतः यहाँ दसवीं दशा से मृत्यु विवक्षित है। दस काम दशायें- 'अभिलाष-श्चिन्ता-स्मृति-गुण-कथनो-द्वेग-संप्रलापाश्च। उन्मादोऽथ व्याधि-र्जडतामृतिरिति दशात्र कामदशाः ॥' इति।

श्लोक ६१–शान्तम्- शान्त, स्तिमित, निश्चेष्ट। 'वा दान्त शान्त पूर्ण दस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः' इस सूत्र से निपात।

श्लोक ६२–अयथापुरचारपौरवर्गम्-पुराभावमनतिक्रम्य यथापुरम् अर्थात् यथापूर्वं। पदार्थानतिक्रमरूप यथार्थ में 'अव्ययं विभक्ति०-इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुंसक लिङ्ग। 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ह्रस्वभाव। न यथापुरम् इति अयथापुरम्। अयथापुरं चारा व्यवहारा यस्य तादृशः पौरवर्गः यत्र तादृशं पुरम्। अयोध्यापुरी को, जिसके निवासियों का व्यवहार पहिले का-सा नहीं दिखायी पड़ रहा था। परीतदूतः-परीताः समन्ताद् वर्तमाना दूता यस्य सः। भरत का विशेषण है। जो दूत भरत जी को बुलाने गये थे, वे भरत के साथ ही विद्यमान थे। पितृ काननादनूनम्-पितृ कानन श्मशान को कहते हैं। दशरथ का भवन उस समय श्मशान से कम नहीं लग रहा था अर्थात् श्मशान तुल्य हो रहा था।

श्लोक ६४–पितृविधिम्-पिता के आदेश को। अभिरोद्धुम्- अभि + √रुध् + तुमुन्। पालन करने के लिए। कालधर्मानुयातः-कालधर्मं पञ्चत्वम् अनुयातः प्राप्तः। पञ्चत्व को प्राप्त अर्थात् मृत। निःसपत्नाम्- निर्गताः सपत्नाः शत्रवो यस्यास्ताम् विरोधियों से रहित अर्थात् निष्कण्टक।

श्लोक ६६–परिणतिपरुषाणाम्-परिणाम में परुष अर्थात् भयङ्कर फल देने वाले। पाप्मनाम्- पाप्मन् शब्द पुल्लिङ्ग और पाप का वाचक है। पापों का। संनिपातात्-सञ्चय, सङ्घात से। भरत का कैकेयी के विषय में कहना है कि तू (कैकेयी) निश्चय ही हम चारों भाइयों की माता नहीं है क्योंकि तू भयंकर परिणाम देने वाले पापों से भरी हुई है। कामम् = यथेच्छ। श्रुतिपुटरचितार्तेः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अकीर्तेः-कानों को व्यथा प्रदान करने वाली दुष्कीर्ति की। सवित्रीम् = जननीम्।

श्लोक ६७–आश्रयाशाभिधानम्-आश्रयम् वेणुकाष्ठादिकम् अश्नाति दहतीति आश्रयाशः। आश्रयाशः इत्यभिधानं नामधेयमित्याश्रयाशाभिधानम्। अग्नि का एक नाम 'आश्रयाश' भी है क्योंकि वह अपने आश्रयभूत काष्ठादि को ही खाता है अर्थात् जला कर भस्म कर देता है। इस श्लोक में वैसा ही कर्म करने के कारण कैकेयी को भी भरत वही संज्ञा प्रदान करते हुए कहते हैं-राम को वन भेज कर पिता को स्वर्गगामी बनाकर कैकेयी ने अपने आश्रयभूत सूर्य वंश को दग्ध कर दिया। इस अवस्था में आग को ही अब 'आश्रयाश' क्यों कहा जायगा। यह शब्द तो अग्नि की संज्ञा नहीं रह गया बल्कि विशेषण मात्र हो गया। विशेषण साधारण होता है और संज्ञा शब्द तो असाधारण हो हो सकता है।

श्लोक ६९–कालयोगात्–कालवश। नरेन्द्रे-श्लेषयुक्त शब्द है। नरेन्द्र = राजा और विषवैद्य। अमन्त्रे-उपायचिन्तन से रहित। सर्प-विष को दूर करने वाले मन्त्र को मौके पर जो भूल गया। अपनगरम्- अप नगरादित्यपनगरम्। 'अप' यह अव्यय 'वर्जन' अर्थ में है। अपनगरम्-नगरं वर्जयित्वा वर्तनमित्यर्थः 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' सूत्र से अव्ययीभाव समास। सुब्लुक्। 'अप' इस अव्यय का प्रथमानिर्दिष्ट होने से 'उपसर्जनं पूर्वम्' से पूर्व निपात। समास से सुबुत्पत्ति। 'नाव्ययीभावादतोऽपञ्चम्याः' सूत्र से अम्भाव। युक्तरूपम्-प्रशस्तं युक्तमिति युक्तरूम्। 'प्रशंसायां रूपप्' सूत्र से 'रुपप्' प्रत्यय। इस श्लोक में कैकेयी को उसके आचरण से 'सर्पिणी सिद्ध किया गया है और उसके निवास योग्य नगर के बाहर वल्मीकप्रचुर किसी श्मशानभूमि को युक्त बताया गया है। (देखिये संस्कृत व्याख्या)!

श्लोक ७०–निकृष्टमतिः-ओछी बुद्धि वाली। पिशिताशनानाम्-पिशितं मांसमशनं भोजनं येषां ते पिशिताशनाः, राक्षसाः, तेषाम्। राक्षसों का। माकन्दशालिनि = आम्रवृक्षों से सम्पन्न। विषवल्लरी = जहरीली लता।

श्लोक ७१–जननीतिविहीना–जननीतिः = लोकमर्यादा, तया विहीना इति तथोक्ता। कैकेयी लोकमर्यादा का परित्याग कर चुकी थी अतः भरत ने अब और कुछ उसे कहना व्यर्थ समझा। निरयात् = बाहर चला आया। निर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यादिव निरयात्- (रलयोरभेदात्) निलयात् नरक तुल्य घर से ।

पृष्ठ २०५–यायजूकाभिप्रेतम् = याज्ञिकोपयुक्त । यायजूकः अश्वमेधादियज्ञ-कर्ता तस्य अभिप्रेतमभिमतम् । यङन्त यज् धातु से 'यजजपदशां यङः सूत्र से 'ऊक' प्रत्यय 'यस्य हलः' सूत्र से य लोप, 'अतोलोपः' से अकार का लोप होने पर 'यायजूकः' पद निष्पन्न होता है ।

श्लोक ७२–पितृवनं याते-श्मशान को जाने पर भ्रातृवनम् भ्रात्रा रामेणाधिष्ठितं वनम्, अर्थात् दण्डकारण्य को । प्राञ्जलिः- प्रबद्धा अञ्जलिर्येन स प्राञ्जलिः । विनम्रता और सम्मान के चिह्नस्वरूप जिसने अपने हाथ जोड़ लिये हैं । प्रादिबहुव्रीहि समास । प्रकृतीः प्रार्थयामास = प्रजाओं से अनुरोध किया । यहाँ 'प्रकृतीः' का अर्थ 'मन्त्री' भी किया जा सकता है अर्थात् मन्त्रियों से अनुरोध किया क्योंकि 'प्रकृति' शब्द मन्त्री का भी वाचक है । पहिला अर्थ अधिक समीचीन प्रतीत होता है ।

पृष्ठ २०६–यथाविधि विहितौर्ध्वदैहिकम् - यथाविधि विधिमनतिक्रम्येति यथाविधि । 'यथाऽसादृश्ये' सूत्र से अव्ययीभाव समास । और्ध्वदैहिकम् = अन्त्येष्टि क्रिया । यथा विधि-विहितं कृतम् और्ध्वदैहिकम् अन्त्येष्टि क्रिया येन तम् । यह भरत का विशेषण है । गमितचतुर्दशदिवसम् - गमिताः नीताः चतुर्दश संख्याकाः दिवसाः येन तम् । भरत को दशरथ की श्राद्ध किया करने में चौदह दिन लग गये । 'शुद्ध्येद् विप्रोदशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।' इस मनु की उक्ति के अनुसार बारह दिन शुद्ध होने में लगे । तेरहवें दिन आद्यश्राद्ध और चौदहवें दिन सपिण्डीकरणादि होने से चौदह दिन लग जाना युक्त है । 'क्षत्रियस्य षोडशाहानि' स्मृति कथन को उक्त मनु की उक्ति से प्रतिषिद्ध समझना चाहिए । अमात्याः = मन्त्री लोग अमा = सह, वर्तत इत्यमात्यः । 'अमा' अव्यय पद से 'अव्यया त्यप्' सूत्र से त्यप् प्रत्यय होने पर 'अमात्य' शब्द बनता है ।

श्लोक सं० ७४- अनुपधि = अकपट, अर्थात् प्रकटभाव से । वात्या = आँधी = । वातानां समूहः बात्या । 'वात' शब्द से 'पाशादिभ्यो यः' सूत्र से 'य' प्रत्यय । स्त्रीत्वं लोकात् । इस श्लोक में क्लिष्ट शब्दों द्वारा मन्थरा को वात्या (आँधी) सिद्ध किया गया है । (देखिये संस्कृत व्याख्या) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक संख्या ७६–भ्रुकुटिभटकल्पाखिलसुरः––भटकल्पाः = भृत्यतुल्य। ईषद समाप्ता भटा भट कल्पाः। भट शब्द से 'ईषदसमाप्ती कल्पब्देश्यदेशीयरः' सूत्र से कल्पप् प्रत्यय हुआ है। भट शब्द भृतिभोगी अर्थात् भृत्य का भी वाचक है। भ्रुकुट्या भटकल्पा अखिलसुरा यस्यसः। भरद्वाज मुनि के संकेतमात्र से सारे देवता उनके भृत्य की तरह आज्ञापालन में तत्पर हो जाते थे। सुमनसः = देवाः। देववाची सुमनस् शब्द पुल्लिङ्ग होता है। सुमनाः सुमनसौ, सुमनसः इत्यादि रूप चलता है।

पृष्ट २१२—गन्धवह = वायु। पिशिताशन=राक्षस। पृतना = सेना। रामणीयकम् = सौन्दर्य, रमणीयस्य भावः रामणीयकम्। 'योपधाद्गुरूपोत्तमाद् वुञ्' सूत्र से वुञ् प्रत्यय। 'युवोरनाकौ' सूत्र से अकादेश। 'तद्धिते-ष्वचामादेः' से वृद्धि।

श्लोक ७८—सध्रीची सखी अर्थात् सदृश। अयोध्यासध्रीचीम् = अयोध्या की-सी। अविकलम् = समग्रभाव से।

श्लोक ८०—शोकोदन्वति = शोक उदन्वानिवेत्युपमित समासः, तस्मिन् शोकोदन्वति। उदकानि सन्त्यस्मिन्नित्युदन्वान्। उदक शब्द से मतुप् होने पर 'उदधि संज्ञा' में 'उदन्वानुदधौ च' सूत्र से उदक के उदन्भाव होने पर 'उदन्वान् पद निष्पन्न होता है। अगस्त्यायितम् = अगस्त्येनेवाचरितम्, अगस्त्य का कार्य किया। अगस्त्य ने बढ़ते हुए समुद्र को पीकर उसकी मर्यादा कायम की थी उसी तरह वसिष्ठ ने भी रामादि को आत्मोपदेश देकर उनके शोक को नियन्त्रित किया। अगस्त्य शब्द से 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' सूत्र से क्यङ्। 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' से दीर्घ। क्यङन्त से भाव में क्त।

पृष्ठ २१८—भरतोपज्ञा—उपज्ञायत इत्युपज्ञा। 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से कर्म में अङ् प्रत्यय। 'आतो लोप इटि च' सूत्र से 'आ' का लोप। टाप्। भरतस्य (कर्तरिषष्ठी) उपज्ञेति भरतोपज्ञा। 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासा-याम्' सूत्र से नपुंसकत्व प्राप्ति होने पर भी विधेय की प्रधानता होने के कारण स्त्रीलिङ्ग।

श्लोक ८१—विधिः = आदेश। भारतीम्–भरतस्येयं भारती ताम्। भरत शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण्। 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच् को वृद्धि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'यस्येति च' से तकारोत्तरवर्त्ती 'अ' का लोप। 'टिड्ढाणञ्०'-इत्यादि से स्त्रियां ङीप्। पुनः प्रयुक्त भारतीम् – वचन को, प्रार्थना को। प्रत्यादिशत् = अस्वीकृत कर दिया। 'भारतीमपि' में अपि शब्द से ध्वनित होता है कि भरत को असाधारण प्रार्थना अस्वीकृति योग्य नहीं थी। ऐसे भक्त की ऐसी प्रार्थना को अस्वीकृत कर देने से राम की सत्यसन्धता सूचित होती है।

श्लोक ८२– लाभविदां वरः—किस वस्तु के लेने में अपना लाभ रहेगा इस बात को समझने वालों में श्रेष्ठ भरत जी। महार्घम् = अमूल्य। भरत जी पहिले से ही साधारण मुकुट के विषय में निःस्पृह थे, उन्होंने जो राम की दोनों पादुकाओं को प्राप्त कर लिया वही उनके लिए अमूल्य दो मुकुट थीं जिनके सामने भक्त की दृष्टि से सामान्य मुकुट का कोई मूल्य नहीं। यह है भरत की भक्ति-भावना।

श्लोक ८४—धृतवल्कलः—अपने ज्येष्ठ भ्राता राम वल्कल धारण कर चुके हैं अतः उत्तमवस्त्र धारण करना ठीक न समझकर भरत ने भी वल्कल ही धारण किया। इसी प्रकार राम के द्वारा सकल भोग्य वस्तुएँ त्याग दी गयी हैं, इसलिए अयोध्या पहुँचकर भरत जी (विषये विमुखः) सकल भोगपराङ्मुख हो गये। यह है भरत का सौभ्रात्र।

पृष्ठ २२२—अयोध्यां नाध्यासे = आयोध्या में नहीं रहूँगा। 'अधिशीङ्-स्थासां कर्म' सूत्र से आधार को कर्मत्व होकर द्वितीया विभक्ति (कर्मणि)। चिरयति = बिलम्ब करने पर, शत्रन्त का सप्तम्येकवचन में रूप है। अशिश्रयत्– 'श्रिञ् सेवायाम्' धातु का लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में रूप है।

श्लोक ८५—वीतभीतिप्ररोहैः—वीतो भीतिप्ररोहो येषां तैः, जिनके भय का भाविभाव जाता रहा। राम का दर्शन पाते ही उनकी सौम्यता के कारण मृगों के मन में पहिले का रहा-सहा भी भय जाता रहा। विस्तीर्णाक्षैः–विस्तीर्णानि अक्षीणि येषां तैः। राम के अलौकिक सौन्दर्य को भली भाँति देखने के लिए मृगों के नेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो गये। दर्भग्रासेऽपि अकृतरुचिः– दर्भ के कवल में भी उनकी रुचि नहीं रह गयी, अर्थात् राम के सौन्दर्य को देखने में मृग इतना तन्मय हो गये कि मुँह में लिए हुए दर्भ-कबल को मुँह में ही लिए रह गये, उसे निगलना भूल से गये। प्रकृतिमहितम् = प्रकृत्या महि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तम् पूजितम्। महर्षि अत्रि के आश्रम का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त उत्कृष्ट था। मानों प्रकृति से वह पूजित था अर्थात् प्रकृति ने उसे स्वयं साज-सँवार कर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया हो। सपर्याम् = पूजा, अतिथि सत्कार की।

अथ अरण्यकाण्ड

श्लोक १—तडित्वान् = मेघ। तडितः सन्त्यस्येति तडित्वान्। तडित् शब्द से मतुप्। तकारान्त होने से 'तसौमत्वर्थे' सूत्र से भसंज्ञा होने से पद संज्ञा का बोध हो गया और अपदान्तत्वात् 'झलां जशोन्ते' सूत्र से जश्त्व नहीं हो सका। झयन्त होने से 'झयः' से मतुप् के मकार को वकार हो गया।

पृष्ठ २२६—कण्डूलः'--जिसमें खुजलाहट हो रही है। कण्डूल शब्द को तद्धितान्त समझ कर 'कण्डूरस्त्यस्येति कण्डूलः' कण्डू शब्द से सिध्मादिभ्यश्च' सूत्र से लच् प्रत्यय हुआ है–यह कहना चिन्त्य है क्योंकि सिध्मादिगण में कण्डू शब्द का पाठ नहीं मिलता है और न सिध्मादि आकृतिगण ही है। वस्तुतः यह कृदन्त शब्द है! कण्डूं लाति आदत्ते इति कण्डूलः! 'आतोऽनुपर्गे कः' सूत्र से क प्रत्यय होकर 'आतो लोप इटि च' से 'आ' लोप होने पर 'कण्डूलः' पद निष्पन्न होता है। शुण्डालः = गजः। शुण्डाऽस्त्यस्येति शुण्डालः। शुण्डा शब्द से 'प्राणिस्थादातोलजन्यतरस्याम्' सूत्र से मतुबर्थक 'लच्' प्रत्यय। 'आश्रमानभितः' यहाँ 'अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि' से द्वितीया।

पृष्ठ २२८—वामाचारवत् = विपरीत व्यवहार तुल्य। वामाचारः–वाम् + आचारः। वाम् = युवयोः, तुम दोनों। 'युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीयास्थयोर्वांनावौ' से 'वाम्' आदेश हुआ है। आकल्पः = वेष। कल्पलताकल्पा = कल्पलतासदृशी। ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यशीयरः' से कल्पप् प्रत्यय।

श्लोक ३—अञ्जसा = शीघ्र, तुरन्त। यह अव्यय है। त्रिदिवौकसाम् = देवताओं के। त्रिदिवः स्वर्गः, स ओकः स्थानं येषां ते त्रिदिवौकसः, तेषाम्। ओकस् शब्द नपुंसकलिङ्ग है।

पृष्ठ २३०—सरभसम् = वेग से। अभिपत्य = झपट कर। गतिनिरोधापराधपरिहाराय–(१) विराध ने जो राम के गमन में अवरोध किया था उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपराध को दूर करने के लिए। (२) विन्ध्यगिरि ने सूर्य और चन्द्र का जो गतिरोधरूप अपराध किया था, उसके परिहार के लिए। प्राचीन काल में विन्ध्यगिरि क्रमशः इतना ऊँचा हो गया कि सूर्य और चन्द्र की गति अवरुद्ध हो गयी। इससे कुपित सूर्य और चन्द्र को प्रसन्न करने के लिये विन्ध्यगिरि दोनों को अपने शिखर पर बैठा कर चला था। विराध ने भी बीच में आकर राम-लक्ष्मण की गति में बाधा उत्पन्न की थी। अपने इस अपराध के परिहार के ख्याल से उन्हें कन्धे पर बैठाकर चला।

प्रतस्थे – 'समवप्रविभ्यां स्थः' से आत्मने पद।

श्लोक ४ – या तु = जो ही। पदवी = मार्ग। यातुनः–राक्षस का। राक्षस-वाचक, नपुंसकलिङ्ग यातु शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है। यातुकामम् = जाना चाहता है। यातुं कामः इच्छा यस्य तत्। यातु (राक्षसवाची) का विशेषण है। कामं यथारुचि।

पृष्ठ २३१—गवाक्षितम्—गवाक्ष (झरोखा) बना दिया अर्थात् बहुछिद्र-युक्त कर दिया-जर्जर कर दिया। गवाक्ष शब्द से 'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच्। णिजन्त से कर्म में क्त प्रत्यय। विशङ्कटम् = विस्तृत। क्रियाविशिष्ट साधन वाचक 'वि' से स्वार्थ में 'वेः शालच्छङ्कटचौ' से शङ्कटच्।

पृष्ठ २३२—क्षणदाचरः, क्षणदा = रात। क्षणदायां चरतीति क्षणदा-चरः = रात में चलनेवाला अर्थात् राक्षस। चरेष्टः सूत्र से 'ट' प्रत्ययः। रम्भा–स्वर्ग की एक सुन्दरस्त्री जो नलकूबर की पत्नी और कुबेर की पुत्रवधू कही जाती है। वैश्रवणः-कुबेर। विश्रवसोऽपत्यंपुमान् वैश्रवणः। विश्रवस् शब्द से अपत्यार्थ में 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण्। विश्रवस् शब्द को 'विश्रवसो विश्रवण·रवणौ' के अनुसार विश्रवण आदेश। 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच् 'इ' को वृद्धि 'ऐ'।

श्लोक ६—गायकपदम्—गायक अर्थात् गन्धर्वभाव को। स्वर्गायशंसेत् = स्वर्ग से, लक्षणया स्वर्ग के निवासियों से कहे। नागालयाय–नागालय = नाग-लोक, पाताल से, लक्षणया वहाँ के निवासियों से। श्वभ्रे = गर्त में।

श्लोक ७—दशशतनयने = दशशतानि नयनानि यस्य तस्मिन्। वीक्ष्यमा-णेऽपि = दृश्यमान होने पर भी। इस कथन का आशय है कि शरभङ्गमुनि के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए स्वर्ग जाकर सहस्राक्ष इन्द्र का साक्षात्कार करने का अच्छा अवसर प्राप्त था, फिर भी उन्होंने उसकी अपेक्षा राम के दर्शन और तज्जनित सुखलाभ को ही उत्तम समझा, क्योंकि स्वर्ग तो वे फिर कभी भी जा सकते हैं किन्तु राम का पुनर्दर्शन नितान्त असम्भव है। सिषेविषा–सेवा करने की इच्छा। सन्नन्त सेव् धातु से 'अप्रत्ययात्' सूत्र से 'अ' प्रत्यय, ततष्टाप्।

पृष्ठ २ ५––अतनूष्मणि = अतनुः अमन्दः समधिक इत्यर्थः ऊष्मा तापः यस्य तस्मिन् अर्थात् जाज्वल्यमान। तनूनपाति = अग्नि में। शाश्वतं पदम् = नित्य पद अर्थात् ब्रह्म पद को। सलिलनिधिपानसम्भावितजीवनाभाव-शङ्कया—यहाँ जीवन शब्द में श्लेष है। जीवन शब्द जीवन और जल दोनों का वाचक है। अगस्त्याश्रम के वृक्षों को देख कर लोगों के मन में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि जब अगस्त्य ने समुद्र को पी लिया तो बादलों को यह शंका हुई कि अब समुद्र में जल न रह जाने से हम लोगों का जीवन नहीं चल पायेगा, इसलिए वे मेघ अगस्त्य मुनि की शरण लेने के लिए आकाश से यहाँ उतर आये हैं।

श्लोक ९—नियमितशाखः = नियमिताः शाखाः यस्य सः। जिसकी शाखाएँ झुक गयी हैं। भुग्नः = झुका हुआ। भुज कौटिल्ये धातु से क्त प्रत्यय होने से 'भुग्न' पद बनता है। उच्छ्रायः = ऊँचाई। 'श्रि' धातु से 'णिश्रीभुवोऽनुपसर्गे' सूत्र से घञ् प्रत्यय होने पर 'श्रायः' बना। उत्कृष्टः श्रायः इत्युच्छ्रायः। इस प्रकार प्रादिसमास किया गया। घञ् विधायक पूर्वोक्त सूत्र में 'अनुपसर्गे' इस पर्युदास के कारण उत्पूर्वक श्रि धातु से घञ् नहीं हो पायेगा। सल्लकी वृक्षः—यह एक प्रकार का जंगली वृक्ष है। इसकी पत्तियों को हाथी बड़े चाव से खाते हैं।

श्लोक १० —वातापिदानवदशाम्—वातापि दानव की दशा को। वातापि अथवा वातापी नामक दानव बड़ा उपद्रवी था। अगस्त्य ने इसका भक्षण कर लिया था। वाल्मीकीय रामायण में कहा गया है—'अगस्त्योऽपि तथा देवैः प्रार्थितोऽयं महर्षिभिः। अनुभूय किल श्राद्धे भक्षितः स महासुरः'॥ इति॥

पृष्ठ २४०—वाडवप्रशस्तम्—ब्राह्मणों में श्रेष्ठ। वाडव शब्द ब्राह्मण का भी वाचक है। प्रमाण—'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' (अमर कोष)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक १२—स्वनाम संकीर्त्य—अपना नाम बताकर। राम ने अपना नाम आदि बताकर अगस्त्य मुनि को प्रणाम किया। ऐसा भारतीय प्राचीन आचार था।

पृष्ठ २४२—पञ्चवटीम्—पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी। 'तद्धितार्थोत्तर पदसमाहारे च' सूत्र से समास। 'संख्यापूर्वो द्विगुः' सूत्र से द्विगु संज्ञा। 'अकारान्तोत्तर पदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' से स्त्रीत्व। 'द्विगोः' से ङीप्। यहाँ पञ्चवटी से युक्त स्थान को पञ्चवटी कहा गया है।

महामहीध्रकल्पः—महापर्वततुल्य। महीध्रः—महीं धरतीति महीध्रः। 'कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्' वार्तिक से 'क' प्रत्यय। कित्त्वात् गुणनिषेध। यण् करने से ऋ को रेफ।

पृष्ठ २५१—पर्णशालामध्यम् अध्यासीनम्—पर्णशाला के भीतर बैठे हुए। 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' से आधार को कर्मत्व। कर्म में द्वितीया विभक्ति।

शूर्पणखा—शूर्पवत् नखानि यस्याः सा शूर्पणखा। रावण की बहिन का नाम। 'नखमुखात् संज्ञायाम्' सूत्र से ङीप् का निषेध। 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' सूत्र से नकार को णत्व।

श्लोक १५—श्येनिका—मादा बाज पक्षी। श्येनत्वजातिविशिष्टा स्त्री श्येनी। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इति ङीष्। ततः स्वार्थे कः। 'केऽणः' इति ह्रस्वः। टाप्।

श्लोक १७—वृषस्यन्ती—वृषमात्मन इच्छतीति वृषस्यति। वृषस्यतीति वृषस्यन्ती। वृष शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' से क्यच्। 'अश्व वृषयोर्मैथुनेच्छायाम्' वार्तिक से असुक् का आगम। क्यजन्त से लट् को शत्रादेश। उगितश्च' सूत्र से ङीप्। वृषस्यन्ती = मैथुनार्थं वृषमिच्छन्तीत्यर्थः। वृष का अर्थ यहाँ वृषभ अर्थात् बैल ही मानना पड़ेगा। यद्यपि [वृषः स्याद्वासवे धर्मे सौरभेये च शुक्लजे। पुंराशिभेदयोः शङ्ग्यां मूषकश्रेष्ठयोरपि' इति विश्वः]—तदनुसार वृष शब्द पुरुषवाचक भी है किन्तु उक्त वार्तिक में 'अश्व' के साहचर्य से वृष शब्द वृषभ-बैल का ही वाचक माना जायगा। अतः 'वृषस्यन्ती' पद यहाँ वृषरूप प्रकृत्यर्थ का परित्याग कर मैथुनेच्छामात्र में लाक्षणिक है। इस प्रकार 'वृषस्यन्ती तु कामुकी' अमरकोशकार का वचन भी सङ्गत हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक १९—शस्त्रपाणि:- शस्त्रं पाणौ यस्य सः। 'सप्तम्युपमानपूर्वपद स्योत्तरपदलोपश्च' इति बहुव्रीहि समास। 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठा सप्तम्यौ भवतः' से पाणिशब्द का पर निपात।

पृष्ठ २५८—जिघृक्षुः—ग्रहण करने का इच्छुक। जिघृक्षतीति जिघृक्षुः। सन्नन्त ग्रह् धातु से 'सनाशंसभिक्ष उः' से 'उ' प्रत्यय। अपसर्पभूतया–गुप्तचर बनी हुई। अपसर्प का अर्थ होता है—गुप्तचर-जासूस, भेदिया। राम पर राक्षसों के आक्रमण में शूर्पणखा ही गुप्तचर अथवा जासूस का काम कर रही थी।

पृष्ठ २६०—कङ्ककाकप्राचीकप्रायैः—कङ्काकप्राचीकबहुलैः। कङ्क = गिद्ध। काक = कौआ। प्राचीक – यह भी कोई मांसाहारी पक्षी विशेष है। यह किस पक्षिविशेष का वाचक है, इसके लिए अन्य कोषों का अवलोकन किया जाय। अमरकोश में 'प्राचिकोल्का पिपीलिकाः' ऐसा लेख मिलता है किन्तु उसके व्याख्याकारों ने 'मधुमक्षिकाः प्राचिकाः' ऐसी व्याख्या की है। अतएव बुधेन्द्रजी ने इसका अनुसरण कर समाधान किया है–'यद्वा प्राचिकोल्का- पिपीलिका' इति स्त्रीलिङ्ग विशेषेऽप्यमरः। तत्र मधुमक्षिकाः प्राचिका इति तद्व्याख्यातारः। तथा कङ्काकाः प्राचिका इव नीरन्ध्रत्व साम्यात्, तत्प्रायैस्तत्प्रचुरैः'। इति।

श्लोक २३—निशाम्य = दृष्ट्वा, देखकर। दर्शन अर्थ में 'शमोऽदर्शने' गणसूत्र से शम्धातु 'मित्' नहीं है, अतएव 'मितां ह्रस्वः' सूत्र से यहाँ ह्रस्व नहीं हुआ।

निशम्य = श्रुत्वा, सुनकर। यहाँ दर्शन अर्थ नहीं हैं, अतः 'मित्' होने से ह्रस्व हो गया।

श्लोक २४—न्यङ्कुः = मृग। करोटीः = खोपड़ियों को। करोटि शब्द का द्वितीया बहुवचन का रूप है। शोचन् = दुःखी होता हुआ। राक्षसों की खोपड़ियों को देखकर मारीच का दुःखी होना स्वाभाविक था। जिस तरह इन राक्षसों का वध राम ने किया और खोपड़ियाँ पृथिवी पर इधर-उधर लुढ़क रही हैं उसी तरह मेरा भी वध होगा और मेरी भी खोपड़ी को भूमि पर लुढ़कना बदा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक २५—जिघृक्षुः = ग्रहण करने को इच्छुक। जिघांसुः = मारने को इच्छुक। दोनों पदों में क्रमशः सन्नन्त 'ग्रह' तथा 'हन्' धातु से 'सनाशंसीभिक्षउः' से 'उ' प्रत्यय है। तथा 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' सूत्र से कर्मणि षष्ठी का प्रतिषेध हुआ है।

पृष्ठ २७२—अतर्जयत्—भर्त्सना की। तर्ज, भर्त्स धातु आत्मने पद हैं तथापि कवियों ने परस्मैपद के रूप में बहुधा प्रयोग किया है। तर्जयतेरनुदात्तत्वेपि तस्यानुदात्तेतश्चक्षिङो ङित्करणेनानुदात्त निमित्तस्यात्मने पदस्यानित्यत्वज्ञापनात् परस्मैपदमिति। अतएव 'तर्जयति भर्त्सयति चेत्यपि दृश्यते' इति भट्टमल्लः।

श्लोक २८—पिशिताशनेन्द्रः—पिशिताशन = राक्षस। उनका इन्द्र = स्वामी, रावण। नवोत्पलमयीम्—नये (ताजा) लाल कमलों की बनी हुई। पलल = मांस। अलर्कः = पागलकुत्ता।

श्लोक २९—व्याक्रुश्य = जोर जोर से क्रदन कर। बहुशः = बहुतबार 'बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्' इस सूत्र से शस् प्रत्यय। अग्रेवणम्—वनस्य अग्रे इस विग्रह में षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर 'राजदन्तादिषु परम्' इति वन शब्द को पर निपात और निपातन से सप्तमी का अलुक्।

श्लोक ३१—शक्ति = एक प्रकार का अस्त्र। प्रास = एक प्रकार का अस्त्र जिसे साँग कहते हैं। बाणास = धनुष। त्रिशिख = त्रिशूल। तूणी = तरकस। पाश = फन्दा जो शस्त्र की भाँति प्रयुक्त होता है। कुन्त = भाला। शिथिलतरवरूथम्—शिथिलतरः वरूथो यस्य तम्। वरूथ कहते हैं 'रथगुप्ति' को। वरूथो रथगुप्तिर्या तिरोधत्ते रथस्थितिम्। अर्थात् रथ के चारो ओर लगा लोहे या लकड़ी का ढाँचा जिससे रथ की, किसी से टकराने पर रक्षा हो सके, वरूथ या रथगुप्ति कहलाता है।

श्लोक ३३—मारुतिबालाग्निस्तम्भनार्हाम् ओषधिमिव—हनूमान की पूँछ में लगी आग को रोकने में समर्थ ओषधि-सी। हनूमानन् की पूँछ में लगी आग से सारी लंका जल गयी थी किन्तु अशोकवाटिका में सीता के रहने के कारण ही हनूमान ने उसे नहीं जलाया था अतः सीता जी को हनूमान् की पूँछ की आग को रोकने वाली औषधि कहा गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पृष्ठ २८६—यथार्थं नामा कबन्धः । कं मुखं बध्नातीति कबन्धः [क + √बन्ध् + अण्] कबन्ध कहते हैं-क्रियाशील शिररहित देह को । कबन्ध राक्षस के सिर नहीं था । युद्ध में इन्द्र ने उसके सिर को वज्र से काट दिया था, फिर भी उसकी मृत्यु राम-लक्ष्मण के हाथों होनी थी, इसलिए मरा नहीं अतएव उसका कबन्ध नाम अन्वर्थं ही था ।

श्लोक ४३—तपनतनयमैत्र्या—तपनः सूर्यस्तस्य तनयः सुग्रीवस्तस्य मैत्री तया । सुग्रीव की मित्रता से । मैत्री–मित्रस्य भावः कर्म वा इति मैत्री । मित्र शब्द से ब्राह्मणादित्वात् 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' सूत्र से ष्यञ् अनुबन्ध लोप । 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् को वृद्धि । 'यस्येति च' सूत्र से अकार का लोप । 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् । 'हलस्तद्धितस्य' सूत्र से य लोप ।

इति अरण्यकाण्ड

अथ किष्किन्धाकाण्ड

पृष्ठ २९१—निभृतेतर—निभृत = शान्त । उससे इतर = भिन्न, अर्थात् चञ्चल । माधवी = वासन्तीलता । पुनः प्रयुक्त, माधवी–मधुः वसन्तः, तस्येयं माधवी । मधु शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् । 'टिड्ढाणञ् '–इत्यादि सूत्र से ङीप् ।

श्लोक ३—अपचायम्–अप + √चि + घञ् ('हस्तादाने चेरस्तेये' सूत्र से) । चुनना । अपचयम्– अपपूर्वक 'चि' धातु से भाव में 'एरच्' सूत्र से 'अच्' प्रत्यय । अपहरण । ये दोनों पद 'विरचयन्ति' क्रिया के कर्म हैं अतएव द्वितीयान्त हैं ।

श्लोक ४—इस श्लोक की तुलना के लिए 'रघुवंश' में देखिए कालिदास का श्लोक–'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ । करुणा-विमुखेन मृत्युना हरता त्वां किन्न मे हृतम् ॥'

श्लोक ५—आधोरण = महावत, पीलवान । व्याल = दुष्ट । मद = हाथी के मस्तक से बहने वाला जल । वप्रलीला = वप्र कहते हैं मिट्टी के टीले को । उस पर हाथी अपने दाँतों से और साँड़ अपनी सींगों से मनोरंजनार्थ टक्कर मारते हैं, इस क्रिया को वप्रलीला या वप्रक्रीड़ा कहते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पृष्ट २५५—भावसंधुक्षण विचक्षण०—भावस्य स्वभावस्य संधुक्षणे उद्दीपने विचक्षणः निपुणः। स्वभाव को उद्दीप्त करने अर्थात् पुनः प्रकृतिस्थ करने में निपुण।

श्लोक सं० ६—शतमखकृतपालिः-शतमखेन इन्द्रेण कृता हनुभङ्गरूपा पालिः अङ्को यस्य सः। बालावस्था में भूखे हनूमान् ने फल समझ कर सूर्य को निगल लेने की चेष्टा की थी। सूर्य की मुक्ति के लिए उनके मुँह पर इन्द्र ने वज्र से प्रहार किया जिससे उनकी बायीं हनु (ठुड्डी या जबड़ा) टेढ़ी हो गयी। दशमुख कीर्तिस्तोमसोमस्य तनूमान् चरमः पक्ष इव-सीता की खोज में हनूमान् लङ्का में पहुँचे और उन्होंने अपनी पूँछ की आग से सारी लङ्का को भस्म किया, रावण-पुत्र अक्षय कुमार को मारा। राम द्वारा रावण के जीते जाने में भी हनूमान् ने अच्छी भूमिका अदा की, इसी लिए उन्हें रावण के कीर्तिरूप चन्द्रमा के लिए मूर्तिमान् कृष्ण पक्ष कहा है।

पृष्ठ २२८—पुष्पवन्ती = सूर्य और चन्द्र। पुष्पम् विकासः, तदस्त्यनयो-रिति पुष्पवन्ती। पुष्प + मतुम्।

श्लोक ९—वैवस्वतेन-विवस्वान् सूर्यः, तस्यापत्यं पुमान् वैवस्वतः तेन। 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण् प्रत्यय। यह पद दो बार प्रयुक्त है। एक बार सूर्य-पुत्र सुग्रीव के लिए, दूसरी बार सूर्यपुत्र यमराज के लिए इसी प्रकार 'समव-र्त्तिना' पद के विषय में भी जानिये। हरिणा = वानरेण। पुनः प्रयुक्त 'हरिणा' = यमेन।

पृष्ठ ३०६—कुलाचल = कुल पर्वत। उन पर्वतों को कुलाचल, कुलगिरि आदि कहते हैं, जो इस महाद्वीप के प्रत्येक खण्ड में विद्यमान माने जाते हैं। उनकी संख्या सात है और उनके नाम ये हैं—'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥'

जङ्घालम्—अतिशय वेगवान्। यह द्वितीयान्त पद है। जङ्घा शब्द से 'प्राणिस्था दातोलजन्यतरस्याम्' सूत्र से मतुबर्थक लच् प्रत्यय होने से यह पद निष्पन्न होता है। लुलाय = भैंसा।

समतिष्ठत = मृतः। 'समवप्रविभ्यां स्थः' से आत्मनेपद।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पृष्ठ ३११—तलातलयुद्धे = मुष्टियुद्ध। तलैश्च तलैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्त-मिति तलातलं युद्धम्। 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' इस सूत्र से समास। 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३७) दीर्घ। 'इच् कर्मव्यतिहारे' सूत्र से यहाँ समासान्त 'इच्' नहीं हुआ, क्यों कि समासान्त विधि अनित्य है।

वाचंयमताम्–वाचं यच्छतीति वाचंयमः। 'वाचि यमो व्रते' सूत्र से खच् प्रत्यय। अनुबन्धलोप। 'वाचंयमपुन्दरी च' से अमन्तत्व।

पृष्ठ ३१४—वारिवारितम्–वारि अथवा वारी ये दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं और इसका अर्थ होता है--हाथी को बाँधने का रस्सा, हाथी को फँसाने का गड्ढा। यहाँ 'रस्सा' अर्थ में प्रयुक्त है। वारिवारितम् = बन्धन में बँधे हुए (गजराज की तरह) कूर्पर युगलम्--दोनों कुहनी। कूर्पर का अर्थ घुटना भी होता है किन्तु यहाँ 'कुहनी' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। शार = यह विशेषण शब्द है। इसका अर्थ यहाँ—चितकबरा, धब्बेदार, शबल आदि है।

पृष्ठ ३२४ कादम्ब = हंस। शिलीन्ध्र = कुकुरमुत्ता जो बरसात में धरती पर उग आया करता है। कुटुज = वर्षा ऋतु में फूलने वाला फूल, कोरैया। प्रावृषेण्याम् = वर्षा ऋतु में होने वाली। प्रावृषि भवा प्रावृषेण्या। 'प्रावृष एण्यः' इति एण्य प्रत्यय। ततः स्त्रियां टाप्।

पृष्ठ ३३८—पुरुहूत इव पुलोमजापहारिणमनुह्लादम्--पुलोमजा शची का अपहरण करने वाले अनुह्लाद को जैसे इन्द्र ने मारा था। इन्द्राणी शची पुलोमा नामक राक्षस की कन्या थी। इसे इन्द्र प्राप्त करना चाहते थे किन्तु पुलोमा इससे सहमत नहीं था। पुलोमा की अनुमति से अनुह्लाद नामक दानव ने शची का अपहरण कर लिया। तदनन्तर इन्द्र ने अनुमति देने वाले पुलोमा और अपहरण करने वाले अनुह्लाद दोनों को मार कर शची को प्राप्त किया था।

श्लोक ४०—किरणदाहितपक्षयुग्मम्–किरणों से मेरे दोनों पंखों को दग्ध कराने वाला सूर्य। संपाति और जटायु दोनों अपने--अपने उड़ने की शक्ति का परीक्षण करने के लिए सूर्यमण्डल की ओर आकाश में उड़े। सूर्यमण्डल के निकट पहुँचने पर सूर्य की प्रखर किरणों के ताप को न सह करने के कारण जटायु लौट पड़ा किन्तु सम्पाति उड़ता हुआ आगे बढ़ता चला गया। अन्त में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्य की किरणों से उसके पंख जल गये और सम्पाति विन्ध्यपर्वत की कन्दरा में जा गिरा।

श्लोक ४९—वायुतृप्त्यै--वायुदेव को परितुष्ट करने के लिए। कहा जाता है कि वायुतनय हनूमान् का सूर्य-निगरण से निवारण करने के लिए इन्द्र ने उन पर वज्र से प्रहार किया जिससे हनूमान् मूर्छित हो गये। पुत्र की इस दशा पर वायु ने कुपित हो कर अपना सञ्चार बन्द कर दिया जिससे त्रैलोक्य उद्विग्न हो उठा। उस समय ब्रह्मा ने वायु को प्रसन्न करने के लिए हनूमान् को अशस्त्रवध्य और युद्ध में विजयी होने का वरदान देकर अमित बल सम्पन्न बनाया।

सुन्दरकाण्ड

श्लोक सं० ३—मैनाकभूभृत् = मैनाक पर्वत। यह हिमालय और मेना का पुत्र था। यही एक ऐसा पर्वत था जिसके पंख समुद्र से मित्रता होने के कारण अक्षुण्ण रहे, जब कि इन्द्र ने और दूसरे पर्वतों के पंख काट डाले। वायुदेव से इसकी मित्रता थी अत एव हनूमान् को विश्राम देने के लिए वह उनके सामने उपस्थित हुआ।

पृष्ठ ३५७–हिरण्यनाभः--मैनाक–पर्वत। यह मैनाक का नामविशेष है। हिरण्यं नाभौ यस्य सः इति विग्रहः। बहुव्रीहि समास होकर 'अच् प्रत्यन्वव-पूर्वात् सामलोम्नः' सूत्र में 'अच्' ऐसा योगविभाग करने से यहाँ भी समासान्त 'अच्' हुआ है।

श्लोक सं० ४—कृतज्ञेन–कृतं जानातीति कृतज्ञः, तेन। 'आतोऽनुप-सर्गे कः' सूत्र से 'क' प्रत्यय। सगर के द्वारा विवर्धित होने से इक्ष्वाकुकुल का कृतज्ञ होने के नाते से, राम का कार्य करने के लिए जाते हुए हनूमान् को विश्राम देने के लिए सागर ने मैनाक को भेजा था। सागर की यह कृतज्ञता अनुकरणीय है।

श्लोक सं० ७—मालभारि–मालां बिभर्तीति मालभारि। ताच्छील्ये णिनिः। 'उत्तमाङ्गम्' का विशेषण होने से नपुंसकलिङ्ग। मालाशब्द के अन्तिम 'आ' को 'भारि' पद परे होने से 'इष्टकेषीका मालानां चिततूलभारिषु' सूत्र से ह्रस्व हो गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक सं० ९—सिंहिका-सिंहिका राहु की माता थी। इसमें यह विशेषता थी कि किसी की छाया को देखते ही उस छाया को पकड़ कर छाया वाले प्राणी को भी खींच लेती थी। उसने हनूमान् के साथ भी ऐसा किया अत एव हनूमान् द्वारा मारी गयी।

श्लोक सं० १२—लङ्काप्रवेशनवनाटकसूत्रधारः-इससे पूर्व इस प्रकार किसी अन्य ने लङ्का में प्रवेश करने का उपक्रम नहीं किया था इसलिए लङ्का-प्रवेश एक नया नाटक है जिसका अभिनय करने जा रहा है हनूमान्-जैसा सूत्रधार, जिस नाटक के देखने वाले सामाजिक जन हैं देवगण। कीर्तिच्छटा जवनिकाम्-हनूमान् रूप सूत्रधार शत्रु रावण की कीर्तिच्छटा रूप जवनिका को हटाकर प्रकट हुए। लङ्का में प्रथम प्रवेश करने के कारण रावण की कीर्ति दूर हो गयी अतः उसे जवनिका कहा गया। जवनिका, रङ्गमञ्च पर लगे पर्दे को कहते हैं। सूत्रधारः-सूत्रमभिनेयसूचनं धारयतीति सूत्रधारः। वह प्रधान नट जो सर्वप्रथम रंगमञ्च पर आकर अभिनय किये जाने वाले नाटक की सूचना और संक्षिप्त परिचय देता है, सूत्रधार कहलाता है—

'वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते॥'

नाटयशास्त्रप्रणेता भरतमुनि के अनुसार—

'नाटचोपकरणादीनि सूत्रमित्यमिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥'

पृष्ठ ३७२ – नाग = नागकेसर। पुंनाग = केसर। ताल = ताड़ वृक्ष। हिन्ताल = खजूर की जाति का एक वृक्षविशेष। तमाल = एक प्रकार का वृक्ष, इसकी छाल काली होती है। कृतमाल = अमलतास का पेड़। सरल = चीड़ का वृक्ष। बकुल = मौलसिरी का पेड़। वञ्जुल = अशोक का वृक्ष।, तिलक = सुन्दर फूलों वाला एक वृक्षविशेष, 'न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलक-स्तिलकः प्रमदामिव' (रघुवंश ९।४१)। आमलक = आँवला का पेड़। कुटज= कोरैया का पेड़। लिकुच = बड़हल का पेड़। कतक = निर्मली वृक्ष, इसके फल को लोक में रीठा कहते हैं जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि गन्दे पानी को स्वच्छ कर देता है। 'फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादनम्। न नामग्रहणादेव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्य वारि प्रसीदति ॥' (मनु० ६।६७)। कक्कोल = फलदार वृक्षविशेष। अङ्कोल = वृक्षविशेष, लोक में इसे अंकुहर कहते हैं पिस्ते का वृक्ष। लवङ्ग= लौंग का वृक्ष। विकङ्कत = लोक में इसे कंटाय कहते हैं। इसकी लकड़ी से स्रुवा बनाया जाता है अतएव कोश में 'स्रुवावृक्ष' भी इसे कहा गया है। केतकी = केवड़ा का वृक्ष। उदुम्बर = गूलर का पेड़। कपित्थ = कैथा का पेड़। अश्वत्थ = पीपल। कुरबक = लाल कटसरैया। मरुवक = लोक में इसे 'मयनफर' कहते हैं। माकन्द = एक अच्छी जाति का आम्रवृक्ष। तिन्दुक = तेंदू का पेड़। स्यन्दन = तिनिश का पेड़, लोक में इसे 'तिशिवन' कहते हैं। चम्पक = चम्पा का पेड़। चाम्पेय = केसर। पनस = कटहल। वेतस = वेत। पलाश = ढाक। पाटला = पाँडरि। रसाल = आम। प्रियालु = चिरौंजी का वृक्ष। शिंशपा=शीशम।

श्लोक सं० १७—स्नुहि = सेंहुड़। मल्ली = एक प्रकार की चमेली।

श्लोक सं० ३६—कपिवरस्य = हनुमान् की। यहाँ सम्बन्धसामान्य में षष्ठी विभक्ति है, क्यों कि स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वापादनरूप सम्प्रदान का अभाव है। सीता ने चूडामणि को प्रत्यभिज्ञानप्रदर्शनमात्र के निमित्त दिया है, उस पर से न तो अपना अधिकार हटाया और न ही उस पर हनुमान् का आधिपत्य स्थापित किया। रुषा-यह आवन्त स्त्रीलिङ्ग शब्द है। क्विवन्त रुष् शब्द से 'आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा दिशा निशा' इस भागुरि वचन से जब 'आप्' का विधान करते हैं तब 'रुषा' पद सिद्ध होता है।

पृष्ठ सं० ४०२--जीवग्राहं गृह्णीध्वम्-जीवतीति जीवः 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' सूत्र से कर्ता में 'क' प्रत्यय है। जीवित ही पकड़ लो। 'समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः' सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय होने पर 'जीवग्राहम्' पद की सिद्धि होती है।

श्लोक सं० ४०—सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेति सूर्याचन्द्रमसौ तयोः' द्वन्द्वसमास। 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से आनङ् आदेश।

श्लोक सं० ४७—कैलासशैलचलनागसि शापदायी—रावण ने जब कैलास पर्वत को उठाया था उस समय नन्दीश्वर के कुपित होने पर उसने नन्दीश्वर को यह कर तिरस्कृत किया था कि रे वानरमुख! क्यों नाराज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होता है। उस पर नन्दीश्वर और बिगड़ गये और रावण को उन्होंने शाप दिया कि तूने मुझे वानर मुख कह कर तिरस्कृत किया है इसलिए तुझपर वानर के द्वारा ही विपत्ति आयेगी।

श्लोक सं० ५४—कर्णिकार = कनैल का फूल। निकुरम्ब = गुच्छा। कर्बुर = चितकबरा। उषर्बुधः–उषसि बुध्यते इति उषर्बुधः अग्निः। 'अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः' इति रेफादेशः।

श्लोक सं० ५६ —इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है जो समस्तवस्तुवर्ति सावयवरूपक से सङ्कीर्ण है, वह रूपक सागरमन्थन की पौराणिक कथा के आधार पर खड़ा किया गया है।

श्लोक सं० ५९—जघनकुचकटीकटकण्ठनेत्रेषु–यहाँ प्राणी के अङ्गों का द्वन्द्व समास स्पष्ट है। 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' सूत्र से एकवद्भाव होना चाहिए तथापि 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद् भवति' इस वचन से विकल्पवश एकवद्भाव नहीं हुआ। अथवा यहाँ जघनादि अङ्ग तत्तद्देशपरक हैं इस लिए साक्षात् प्राण्यङ्ग न होने के कारण एकवद्भाव नहीं हुआ।

श्लोक सं० ६६—वानरयायजूकः–हनूमानरूप याज्ञिक। पुनः पुनरतिशयेन वा यजते यायज्यते, इति यायजूकः। यङन्त यज्धातु से 'यजजपदशां यङ्' सूत्र से 'ऊक्' प्रत्यय होने पर 'यायजूकः' पद निष्पन्न होता है।

पुनानः—'पूञ् पवने' धातु से लट्, लट् को शानच् आदेश।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ युद्धकाण्डम्

श्लोक १—सकला अपि कला: सकल कलायें–इनकी संख्या चौंसठ है–

'इतिहासागमाद्याश्च काव्यालंकारनाटकम् ।
गायकत्वंकवित्वंच कामशास्त्रं दुरोदरम् ॥
देशभाषालिपिज्ञानं लिपिकर्म च वाचकम् ।
सर्वाणिचापदानानि स्वरशास्त्रंतु शाकुनम् ॥
सामुद्रिकं रत्नशास्त्रं रथाश्वगतिकौशलम् ।
मल्लशास्त्रं सूदकर्म भूरुहाणां च दोहदम् ॥
गन्धवादोधातुवाद:खन्यावादो रसस्य च ।
जालवादोऽग्निसंस्तम्भ: खड्गस्तम्भोजलस्य च ॥
वाच:स्तम्भो वय:स्तम्भो वश्याकर्षणमेव च ।
विद्वेषणोच्चाटनं च मारणं कालवञ्चनम् ॥
पयस्प्लिवचातुर्यं पादुकासिद्धिरेव च ।
मृत्सिद्धिर्घटिकासिद्धिरैन्द्रजालिकमेव च ॥
अञ्जनं नरदृष्टिस्तु वञ्चनं स्वरवञ्चनम् ।
मणिमन्त्रौषधानां च सिद्धयश्चौरकर्म च ॥
वृत्तलोहाश्ममृद्दारुवेणुवर्माञ्जनक्रिया: ।
अदृश्यकरणी दूरकरणी मृगयारति: ॥
वाणिज्यं पाशुपाल्यं च कृषिराहवकर्म च ।
लावकुक्कुटमेषादि युद्धकारणकौशलम् ॥
चतुष्षष्टिकलाश्चैता: कलाविद्भि: प्रकीर्तिता:' ।

श्लोक १० —अविहतस्थेम्ने–स्थिरस्य भाव: स्थेमा । स्थिर शब्द का दृढादि गण में पाठ होने से भाव में 'वर्णदृढादिभ्य: ष्यञ् च' सूत्र से चकारात् इमनिच् प्रत्यय । 'प्रियस्थिर'–इत्यादि सूत्र से 'स्थिर' को स्थादेश । अविहत: अक्षत: स्थेमा यस्य तस्मै । जिसकी स्थिरता कभी नहीं नष्ट होने वाली है उस (महिमा) के लिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक २१—व्यानशे = व्याप्त किया अर्थात् शयन किया। 'वि' उपसर्ग-पूर्वक 'अश् व्याप्तौ' धातु से लिट् होने पर 'अत आदेः' सूत्र से अभ्यास अवर्ण का दीर्घ। 'अश्नोतेश्च' सूत्र से नुडागम।

पृष्ठ ४६४—तितिक्षुरपि भार्गवतीक्ष्णपरशोः—परशुराम के तीक्ष्ण कुठार को भी सह लेने वाला। परशुराम ने क्षत्रियों का संहार कर समस्त पृथिवी ब्राह्मणों को दे दी थी। उन्होंने अपने रहने के लिए समुद्र से कुछ भूमि खाली कर देने को कहा। उस समय समुद्र के टाल-मटोल करने पर उन्होंने उस पर परशु का प्रयोग किया था।

पृष्ठ ४७८—बन्दीकृतामरः—नदीमातृक उस प्रदेश को कहते हैं जिसकी सिंचाई नदी या नहर से होती हो। यहाँ लङ्का के उद्यानप्रदेश को नदी मातृक इस लिये कहा गया है क्योंकि वह बन्दी सुरललनाओं के अश्रुप्रवाह से सिञ्चित होता था।

श्लोक ४०—समुपसर्गपूर्वक 'रु' धातु से अभिविधि की गम्यता में भाव में 'अभिविधौ भाव इनुण्' सूत्र से इनुण् प्रत्यय। 'सांराविन्' शब्द से स्वार्थ में 'अणिनुणः' सूत्र से अण्। 'इनण्यनपत्ये' सूत्र से प्रकृतिभाव होने से 'नस्तद्धिते' सूत्र द्वारा टिलोप नहीं हुआ। इस प्रकार 'सांराविणम्' पद की सिद्धि होती है। सांराविणम् = भारी कोलाहल।

पृष्ठ ५०१—अभ्यमित्रीणम्—वह योद्धा जो वीरतापूर्वक शत्रु का मुकाबिला करता है, 'अभ्यमित्रीण' कहा जाता है। इसीलिए लक्ष्मण के विशेषण में यह पद यहाँ प्रयुक्त हुआ है। अमित्रः शत्रुः, 'तमभिमुखो भूत्वा' इस अर्थ में 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इस सूत्र से अव्ययीभाव समास होने पर 'अभ्यमित्र' शब्द बना। उससे 'अलङ्गामी' अर्थ में 'अभ्यमित्राच्छ च' सूत्र से चकारबल से 'ख' प्रत्यय होने से 'अभ्यमित्रीणः' पद निष्पन्न होता है। अभ्यमित्रीणः अमित्राभिमुखं सुष्ठु गच्छतीत्यर्थः।

पृष्ठ ५३५—अक्षौहिणी—पूरी चतुरंगिणी सेना जिसमें २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े तथा १०९३५० पैदल सैनिक हों। तथा च महाभारते—'एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः। त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते॥ पत्तिं तु त्रिगुणामेतां विदुः सेना मुखं बुधाः। त्रीणि सेना-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ।। त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः । स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः । चमूस्तु पृतनास्तिस्रश्चम्वस्तिस्रस्त्वनीकिनी ।। अनीकिनीं दशगुणामाहुरक्षौहिणीं बुधाः ।।' अर्थात्—

१ रथ, १ हाथी, ५ पैदल, ३ घोड़े = १ पत्ति । ३ पत्ति = १ सेनामुख । ३ सेनामुख = १ गुल्म । ३ गुल्म = १गण । ३ गण = १ वाहिनी । ३ वाहिनी = पृतना । ३ पृतना = १ चमू । ३ चमू = १अनीकिनी । १० अनीकिनी = १ अक्षौहिणी = २१८७० रथ, २१८७०हाथी, १०९३५०पैदल, ६५६१०घोड़े ।

श्लोक ८२—वलयितचित्रचापवति–वलयितश्चिभश्चासौ चापः इति वलयितचित्रचापः, सोऽस्त्यस्येति वलयितचित्रचापवान्, तस्मिन् । यहाँ कर्मधारय समास–करके तब 'मतुप्' प्रत्यय किया गया है । इस प्रकार दो वृत्तियाँ करनी पड़ती हैं । जब कि बहुव्रीहि समास करने से ही अर्थ-प्रतिपत्ति हो सकती है, कहा भी गया है–'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः' । परन्तु यहाँ प्राशस्त्य दिखलाना अभीष्ट है अतः दो वृत्तियों का आश्रय लेने में दोष समझा जाना चाहिए । कवियों ने भूपनिन्दाप्रशंसादि विषय में इस प्रकार से मतुबर्थ प्रत्ययों का बेहिचक प्रयोग किया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोकानुक्रमणिका

श्लो०	का०	श्लो०
अक्लेशसंभूतगता	सुन्दर.	७२
अचलमय सलील	युद्ध.	६६
अजनि पुनः समी	युद्ध.	६०
अतिचकितमतिः	अयो.	६२
अत्याकुलां हरि	युद्ध.	३२
अत्रागमद्गौतम	बाल.	९०
अथ जलधौ निपे	युद्ध.	२७
अथ तमुवाच सा	सुन्दर.	३२
अथ दशरथः पुत्रं	अयो.	२
अथ दशरथनन्द	युद्ध.	९५
अथ दशरथवाणीं	बाल,	१११
अथ दाशरथेः क	बाल.	४२
अथ निगदितनी	युद्ध,	३१
अथ निशिचरना	सुन्दर.	२१
अथ निशिचरमा	बाल.	५३
अथ मदगर्जितैर	युद्ध.	४९
अथ रघुकुलनाथो	अयो.	३८
अथ रामाभिधाने	बाल.	३०
अथ वारांनिधिं	युद्ध.	२१
अथ वीचीचयच्छ	बाल.	७८
अथ सरसिजयोने	बाल.	८
अथ सेनान्यमिच्छ	बाल.	६०

श्लो०	का०	श्लो०
अथाखिलजनेक्षणे	युद्ध.	१०७
अथाब्रवीद्गिरि	सुन्दर	६८
अथावासं शान्तेर	अयो.	७७
अथांशुमानयं रा	बाल.	७५
अदृष्ट्वा तां नदीं	बाल.	८४
अनपत्यानथामत्य	बाल.	५९
अनिमिषभुवने वा	सुन्दर.	३९
अनुजरचितपर्णा	अयो.	५२
अनुनीय रावणिर	युद्ध.	६३
अनुपधि रचयित्वा	अयो.	७४
अन्योन्यस्य सदृक्ष	युद्ध.	८३
अपहृतविबुधार्तेः	बाल.	४६
अपाटवात्केवलम	बाल.	२५
अपातयत्स्वर्गमुपा	बाल.	९७
अपि कुशलमम	बाल.	१७
अपिवदियममन्त्रे	अयो.	६९
अभयागतो मदप	युद्ध.	१८
अभिषिक्ते तु सुग्री	कि.	२०
अभूदराजकम्लान	अयो.	६१
अभ्यर्च्य कस्मैचि	अयो.	१८
अमी तटसमीप	युद्ध.	८
अम्भःपूरसुसंपूर्णा	कि.	३०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०	श्लो०	का०	श्लो०
अम्भोजसंभवममुं	वाल.	२१	असुरसमरवेला	अयो.	१९
अम्भोधरोदरविनि	कि.	२८	असौ जनकनन्दि	सुन्दर	१५
अम्भोधिपाने सलि	कि.	३१	असौ वसिष्ठनिर्दे	बाल.	९८
अयं कथं स्यादि	अरण्य.	३५	अस्ति प्रशस्तवि	बाल.	१८
अयं कालः काल	कि.	२६	अस्ति प्रशस्ता ज	बाल.	११
अयमसुखयदेवं	कि.	१२	अस्माक रूपलक्ष्मी	किष्कि	२४
अयं महात्मा तप	बाल.	९६	अस्याननाश्रितत	अयो.	५
अयि कवलय मा	अरण्य.	५	अस्मिन्पुरा पुर	बाल.	३८
अयि समसुखदुःखै	युद्ध.	८९	अस्य पीताम्बर	अयो.	४०
अर्धोदीरितवीर	युद्ध.	८५	अहं वैश्यस्य शू	अयो.	५८
अलंकृतः कृतमभि	युद्ध.	१०८	अहह निहता ल	युद्ध.	९४
अलक्षितमहीधर	युद्ध.	२८	अहह विधिनियो	युद्ध.	१३
अलक्ष्यत स रक्ष	युद्ध.	७९	आकर्ण्य किंनरमु	युद्धः	१४
अलघुचलितझञ्झा	अयो.	१०	आकृष्य दूरमुटजा	अर.	२६
अलब्धनिर्गमा	वाल.	८३	आजानपावनक्षी	बाल.	५४
अलम्बुषायामि	बाल.	८९	आदाय तत्सगुण	बाल.	११२
अवकीर्य दाशर	युद्ध.	५०	आदित्यः कृतकृत्य	सुन्दर	१४
अवकीर्य दाशरथि	युद्ध.	८१	आदिष्टा रघुनन्द	युद्ध.	२६
अवभृथेऽवसिते	वाल.	२४	आदीप्यमानपव	सुन्दर.	६२
अवलेपमराक्रा	बाल.	८२	आदौ नीलांशुक	सुन्दर.	५९
अवलोक्य हिरण्य	सुन्दर.	६	आधूय मोहमहि	युद्ध.	५१
अविरतकृषिता	अयो.	६८	आधौ सिद्धौषधि	किष्कि.	४
अविरलमिनवंशं	अयो.	६७	आनन्दवाष्पविस	अयो.	४
अशोकवनिका ले	अर.	३३	आनन्दमन्थरमन	युद्ध.	४
असमञ्जसचारि	वाल.	६७	आनाकलोकपरि	सुन्दर.	४८
असमञ्जसुतं	वाल.	७१	आनीतचूडामणि	सुन्दर.	७३
असमञ्जं सुतं ले	वाल.	६६	आपाटलाधरपुटा	सुन्दर.	४४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०	श्लो०	का०	श्लो०
आपूरयन्मङ्गलतू	अयो.	८	उत्त्रासकासरमुद	युद्ध.	६
आबालवृद्धमनुग	अयो.	४४	उदपतदुपभोक्तुं	किष्कि.	४७
आरुह्य पुष्पकम	युद्ध.	९९	उपघ्नवृक्षस्य परोक्ष	सुन्दर.	२५
आरुह्याद्रिमंथाव	सुन्दर.	७०	उपचितजीवनधा	किष्कि.	२५
आर्यस्य रक्षितुम	युद्ध.	९०	उपरि यथा यथा	युद्ध.	१००
आर्यार्यान्वेषणा	किष्कि.	२१	उपागतौ मिलित	बाल.	९
आलोक्य दूनमनु	युद्ध.	८०	एकं हैहयसंभवा	युद्ध.	३६
आवर्तगर्तसंभ्रान्त	बाल.	८१	एतद्विक्रमवीक्षणे	सुन्दर.	५८
आविःप्रलापमट	अयो.	४७	एते ववृधिरे	बाल.	३३
आविर्बभूव पूर्वा	सुन्दर.	१०	एवं निशम्य कुपि	सुन्दर.	५३
आविःशाखाशि	बाल.	८०	एवं भर्त्रा भर्त्सि	अयो	२३
आश्रुतः श्रुतवृत्ते	बाल.	४०	एनां पुराणनगरीं	बाल.	१९
आसारधारां विकि-	युद्ध.	४२	एवंविधे प्रियतमे	किष्कि.	१५
आहूय रामं विन	अयो.	७	एषा निकृष्टमति	अयो.	७०
इति जनकपुरोधः	बाल.	९९	एषा राक्षससार्व	सुन्दर.	१३
इति ब्रुवाणं कृत	किष्कि.	४२	ककुभि कुलिशपा	किष्कि.	३८
इति विविधरसा	बाल.	४७	कन्याद्वयममुष्या	बाल.	५६
इत्थं जाम्बवता	किष्कि.	४८	कपयः कैकसेयानां	युद्ध.	५४
इत्थं वदन्निन्दुमु	युद्ध.	१०४	करतलैरपचायम	किष्कि.	३
इत्थं विदितवृत्ता	बाल.	९२	कल्याणवादसुखि	अयो.	३१
इत्थं विलप्य	अरण्य.	४१	कल्याणि त्वद्वियो	सुन्दर.	२७
इत्यालपन्करुणमे	युद्ध.	९	काकुत्स्थोऽप्यथ	अरण्य.	३४
इन्द्रनीलाचलोद	बाल.	२२	कान्तारमाजि	अयो.	३०
इह समदगजेन्द्र	अरण्य.	९	कामक्षिप्तपृषत्क	किष्कि.	३४
उच्चस्थे ग्रहपञ्च	बाल.	२९	कारुण्यं निरवधि	किष्कि.	१४
उच्चैर्गतिर्जगति	बाल.	२	किं नागतस्ते	अयो.	१७
उज्जृम्भितस्य	सुन्दर.	७	किमिति भजथ	किष्कि.	४५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०
कुशरूपकुशेशया	सुन्दर.	३५
कुशस्तम्भेऽपि संभू	किष्कि.	७
कृतासमञ्जनिर्या	अयो.	३५
कृत्वा मारुतिल	सुन्दर.	२
कृत्वा मूर्धनि शास-	युद्ध.	६८
के यूयमक्षतबले	किष्कि.	४०
केशहस्तं स्वहस्ते	अयो.	७५
कोपादसौ परिघ	युद्ध.	७८
कोपादुत्पतितस्त	युद्ध.	३३
कौबेरस्य तु पुष्प	युद्ध.	३७
कौसल्यायै प्रथम	बाल.	२३
क्रव्यादवपुषा सो	बाल.	६८
क्षतार्कभवतेजसि	युद्ध.	६५
क्षितिपतितनयानां	किष्कि.	१९
क्षिप्ता संयति पुष्प	युद्ध.	५५
क्षीराम्भोधेर्जठर	बाल.	१४
खण्डनाय वसुधा	अयो.	८६
खरपरुषि शरासने	अरण्य.	२०
खरवधपरिशुद्धे	अरण्य.	२१
गङ्गा सप्ताकृति	बाल.	८५
गच्छता दशरथेन	अयो.	१
गद्यानुबन्धरसमि	बाल.	३
गुणमनिमिषचापे	बाल.	१०९
घनश्यामलपत्रस्य	किष्कि.	२९
घर्मे निदाघकिर	अयो.	४१
घोरस्य राघवकलत्र	सुन्दर.	५५
चक्रे शक्रजिदाज्ञ	सुन्दर.	६३
चुलुकगतसमुद्रा	अरण्य.	११
चूडामणिं कपिवर	सुन्दर.	३६
छन्दोमयीनां निल	बाल	१०
जग्राह जनकात्	बाल.	१०८
जज्ञे तदत्रभवतां	युद्ध.	६९
जनकः स्वकनीयां	बाल.	१०७
जनकः स्वयं दनुज	युद्ध.	९२
जननीतिविहीना	अयो.	७१
जेतारमाहवमुखे	युद्ध.	४८
ज्योत्स्नां विना	सुन्द.	१८
ज्वलदनलं त्रिशूलं	युद्ध.	५६
त एते तपसा	बाल.	७०
ततस्तनयवृत्ता	बाल.	७४
ततस्तस्योपान्ते	अयो.	७८
ततो गोकर्णमास	बाल.	७७
ततो धुतनखायुध	युद्ध.	४१
ततो भरतशत्रुघ्नौ	बाल.	११०
ततो भाविनि	बाल.	४३
ततो मदपरिप्लव	युद्ध.	४०
ततो महर्षिर्जनक	बाल.	१०२
ततो हनूमान्दश	सुन्द.	१
तस्करास्तमसा	सुन्द.	११
तत्काले पिशिता	बाल.	४१
तत्र तत्पत्रसंछन्न	सुन्द.	१६
तत्र बालिकर	किष्कि.	११
तत्र सत्रं परित्रातुं	बाल.	३६
तत्र सीताविवाहा	बाल.	१०१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०
तत्राभूत्कृत्तिका	बाल.	६२
तत्रासनं द्रुतम	किष्कि.	३५
तथातिथ्यं चक्रे	अयो.	७६
तदनु जनकपुत्री	अर.	२५
तदनु दनुकबन्धेन	अर.	४३
तदनु शूलमखण्ड	अर.	३
तदेनामेनसोमुक्त	बाल,	९३
तनयविरहवार्ता	अयो.	१३
तनुं तनूकृत्य	सुन्द.	८
तपनपवनयोर्यः	किष्कि.	६
तमेनमन्वजाय	बाल.	३१
तया तटिन्या	बाल.	८८
तयोरेकस्य संरं	अयो.	११
तरंगाकृष्टमार्तं	बाल.	७९
तस्मिन्क्षणे वरयु	अयो.	१२
तस्मिन्नित्थंप्रार्थ	अयो.	४९
तस्मिन्नुज्जृम्भितो	अर.	१५
तस्मिन्प्रदोषसम	सुन्दर.	१२
तस्मिन्महापथधि	अर.	१०
तस्मिन्हनूमदरणि	सुन्दर	६४
तस्या विदेहदुहि	अयो.	५५
तस्येदमाश्रमपदं	अर.	८
तातः स्ववाचा	अयो.	२६
ताते पितृवनं	अयो.	७२
तां नदीं विबुधा	बाल.	५७
तापोपशान्तिनट	किष्कि.	३३
तामावसद्दशरथः	बाल.	१२

श्लो०	का०	श्लो०
तावुभौ च भृगु	बाल.	११३
तासु प्राचीं गतः	बाल.	८६
तिष्ठन्क्षत्राहंवृत्ती	बाल.	९५
तूणीमुखात्त्वरित	युद्ध.	८४
तोयादानस्तनाद	अयो.	५७
त्रैविध्यं श्रूयतां	बाल.	६३
त्वत्पित्राहं परि	सुन्दर.	५
त्वदभिलषितपूर्त्या	अर.	३७
त्वया मया च	अयो.	८१
त्वया सह प्रस्थि	सुन्दर.	२८
दत्तार्जुनविकासेन	किष्कि.	२३
दशमुखपुरमध्ये	सुन्दर.	६९
दशमुखरथमाशु	अर.	३१
दशरथात्मजयुग्म	अर.	१६
दशशतनयनेऽपि	अर.	७
दशाननशरक्षतिक्ष	युद्ध.	८६
दिलीपेऽपि दिवं	बाल.	७६
दिवाकरप्लोषभवां	किष्कि.	४१
दुःखे सुखे च रज	बाल.	९४
दुर्वारे तदनुद्वयो	युद्ध.	४७
दृष्टे यत्र यदृच्छ	युद्ध.	१
दृष्ट्वा राममते	अयो,	४८
देव तस्याः प्रति	सुन्दर.	७७
देव त्वत्तानयस्य	अयो.	५४
देवे स्थितेऽपि	अयो.	६
देव्या दशाननव	सुन्दर.	२६
देव्या यस्या वसन	बाल.	१००

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०	श्लो०	का०	श्लो०
देव्यास्त्वदीयान्व	सुन्दर.	७५	पर्याप्तप्रमदमुपे	किष्कि.	४३
द्रष्टुं नालमगाध	युद्ध.	१०	पर्याप्तभाग्याय	बाल.	३४
द्राग्वारुणीभजन	किष्कि.	३६	पश्यन्ननन्द भरतः	युद्ध.	१०६
न केवलं मामहर	सुन्दर.	२३	पश्येदानीमुदधि	युद्ध.	१५
न गणयसि यदि	युद्ध.	१६	पातिव्रत्यहुताश	सुन्दर.	३३
न योग्या नगरप्रा	किष्कि.	२२	पानेन हीनजलम	अर.	१३
नवः कठिनकर्षण	किष्कि.	१०५	पुरा मनोरमा	बाल.	५५
नाक्रान्तस्त्रिदिवः	अयो	६०	पुरीमयोध्यामध्या	बाल.	६४
नाथो विमोक्तुमु	युद्ध.	२३	पूजोपहाररचना	युद्ध.	३८
नारायणाय नलि	बाल.	१६	पौलस्त्यपातक्रि	सुन्दर.	६६
नाहं सुकेतुतनया	किष्कि	१८	पौलस्त्यमग्र जनु	युद्ध.	१७
निद्राक्षयादरुणिते	सुन्दर.	७१	प्रणीतमणिपादुकं	युद्ध.	१०५
निर्णयाविषयमस्य	सुन्दर.	५४	प्रतिदिनमवदातै	बाल.	४५
निर्भिन्नसालकट	किष्कि.	१३	प्रत्यर्पितानां कपि	किष्कि.	१०
निशाचरीस्तां	सुन्दर.	२८	प्रभामिवार्कीं तम	अर.	१२
निशिचरपतिरि	किष्कि.	३९	प्रह्लादस्य व्यसन	बाल.	१५
निश्रेयसप्रणयिनीं	सुन्दर.	४६	प्रसुप्तबर्हिणश्वास	युद्ध.	१०२
नूनं जनेन पुरुषे	बाल.	११५	प्रविश्य विपिनं	अर.	१
नूनं विदितवृत्ता	सुन्दर.	२२	प्राग्मन्थरेति महि	अर.	२२
नृपसुखविमुखेन	अयो.	४५	प्राचीनं व्यसनं	किष्कि.	३७
नेतुं शोकरसं निशा	सुन्दर.	४०	प्राप्य तत्प्रथमं	युद्ध.	५२
नैवाभवस्त्वमिह	अयो.	२१	प्राबोधयत्तदनु	युद्ध.	५३
न्यग्रोधपत्रसमतां	बाल.	२७	प्रारब्धयात्रस्य	अयो.	४२
पक्षाभिघातरय	सुन्दर.	३	प्राविक्षदर्चिषि	युद्ध.	७९
पतति स्म तत्प्रथम	युद्ध.	७६	प्रिये जनकनन्दिनि	अयो.	५१
परिगृह्य तं झटिति	युद्ध.	५७	प्रेङ्खन्ती पिशिता	सुन्दर.	४९
परिणतिपरुषाणां	अयो.	६६	बद्धादरोऽपि	सुन्दर.	५०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०
बलेन तरसां	बाल.	३७
बहुभिरिह किमु	अयो.	७३
बाहुचन्दननिष	सुन्दर.	५१
ब्रह्मास्त्रवित्रस्त	सुन्दर.	७६
भरतस्तदनु	अयो.	८२
भरतस्तेषु केके	बाल.	३२
भीतो भूभरतः	अयो.	२४
भूमी ततः प्लव	युद्ध.	६७
भूयोऽपि सोऽयं	सुन्दर	९
भोजेन तेन रचि	युद्ध.	२
मध्यं तनुत्वादवि	बाल.	२८
मन्दमन्दमपयद्व	बाल,	२६
मम सुरनरगीत	अयो.	३
ममाथ शैलादथ	युद्ध.	६१
मयूरीव महानागं	अयो.	६५
मलयगिरिचलो	किष्कि.	५
मल्लीं चूतवनादिव	सुन्दर.	१७
महामहीध्रसध्री	सुन्दर,	३१
महासमरसूचकः	किष्कि.	२७
मातुराज्ञां वहन्मू	अयो.	२७
मातुलो गरुडस्ते	बाल.	७३
मा निषाद प्रतिष्ठां	बाल.	६
मा भूत्त्वत्पदपद्म	अयो.	२९
मायामृगेण तव	सुन्दर,	३४
मायामृगे समर	सुन्दर.	५२
मारीचनीचमति	बाल.	५०
मुद्रामुद्रितजीवि	युद्ध.	३
मुनिर्भृशाश्वोप	बाल.	४४
मुनिशापकृतोत्प	अयो.	५९
मेध्याश्वमार्ग	अयो.	५१
यक्षः सुकेतुर्द्रहि	बाल.	३९
यत्कीर्तिस्तिल	बाल.	१०६
यत्नो मुधा भवति	युद्ध.	७०
यत्र कान्ता न	अरण्य.	१४
यत्र कान्तैर्वियु	किष्कि.	२
यथा यथा राघव	अयो.	४३
यदुचितमहो	युद्ध.	७५
यद्बाहुराहुरसना	बाल.	२०
यद्यद्दूरे पुरः	युद्ध.	१०१
यद्यस्ति कौतुक	अरण्य.	३८
या तु नः पदवी	अरण्य.	४
यानं मदाशयम	युद्ध.	१०३
यामेवाहुर्निशिचर	अयो.	९
यावद्याति पुरं	युद्ध.	४६
या वीक्षिताजनि	युद्ध.	९१
युगपत्प्राप्तगुण	बाल.	११४
युष्मद्वार्तासुधा	किष्कि,	८
यैर्वृन्दारकसुन्द	सुन्दर.	६१
योगं वितन्वति	किष्कि.	९
योगेन लभ्यो यः	बाल.	३५
रक्षःपते रघुपतेः	युद्ध.	३५
रक्षःपतौ पतति	युद्ध.	८८
रक्षःसंघट्टचूर्णीकृ	सुन्दर.	३८
रक्षःस्त्रीवदनार	सुन्दर.	५७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०	श्लो०	का०	श्लो०
रक्षोवधः प्रकृत	अरण्य.	६	लोकान्तरप्रण	अरण्य.	४०
रक्षोवरोधवसति	युद्ध.	३०	वत्सः कठोरहृद	अयो.	१५
रघुतनयस्ततो	युद्ध.	३९	वनचर इव साकं	अयो.	६४
रघुपतिचापघो	किष्कि.	३२	वनभुवि तनुमात्र	अयो.	२५
रजनिचरमभागे	सुन्दर.	१९	वनमेतद्गते	बाल.	९१
रणे तदनु दारुणे	युद्ध.	४३	वलयितचित्रचा	युद्ध.	८२
रवः कठिनकर्षण	बाल.	१०५	वलयिततटदेशैं	युद्ध.	२९
रहस्तदानीं रज	युद्ध.	१२	वंशस्पृशा हृदय	बाल.	५२
राक्षसासिक्षतः	अरण्य.	३२	वाचं निशम्य	बाल.	५
राजन्यधर्मविदु	युद्ध.	९३	वाचामिदानीं	सुन्दर.	६५
रामः काममुपा	अयो.	१४	वाणीविलासम	बाल.	७
रामस्तमाह	युद्ध.	१९	वातूल इव तूला	युद्ध.	७२
रामाकर्षणभग्न	बाल.	१०४	वारिदादपि च	युद्ध.	५
रामानुसाररस	अयो.	४६	वाल्मीकिगीतर	बाल.	४
रामाश्रमाद्विग	अरण्य.	२८	वासस्त्वचां भव	अयो.	२२
रामास्त्राद्दलिते	युद्ध.	५९	विकस्वरमदोत्क	युद्ध.	७३
रामे बाहुबलं	बाल.	१०३	विच्छिन्नाशुमथा	युद्ध.	५८
रामे विदेहसुत	अयो.	५०	विद्ययेव त्रयीदृष्ट	बाल.	११७
रुद्धापि यान्तम	अयो.	३४	विपिनमवजगाहे	अरण्य.	२४
रुषा विशिखमु	युद्ध.	२४	वियत्तले तदनु	युद्ध.	४४
रेखारथाङ्गसर	अयो.	२८	विलङ्घ्य विवि	अयो.	८४
लक्ष्मणानुगतं	युद्ध.	४५	विशिखे विशिखे	अरण्य.	२
लक्ष्मीं तनोतु	बाल.	१	विशुद्धशीलामन	युद्ध.	९८
लङ्कादाहेऽप्यना	सुन्दर.	६७	विस्तीर्णाक्षैर्वि	अयो.	८५
लङ्कापुरोपवन	सुन्दर.	७४	वृषस्यन्ती वृष	अरण्य.	१७
लज्जावेशादवि	बाल.	११६	वेलोल्लङ्घनमेते	अयो.	८०
लावण्याम्बुनिधे	अरण्य.	१८	व्यापारयन्नथ	युद्ध.	२२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लो०	का०	श्लो०
शतधारकठोर	युद्ध.	७४
शरणमथ शर	युद्ध.	२५
शस्त्राशस्त्रि समु	युद्ध.	८७
शिरसा तव सौमि	सुन्दर.	२९
शिवयोर्युञ्जतो	बाल.	५८
श्रुत्वा शक्रजितः	युद्ध.	७७
श्रेयः पदात्पद	युद्ध.	२०
स एष सानुजः	अयो.	८३
संक्रान्तवर्णान्तर	बाल.	४९
संग्रामकेलिपरि	सुन्दर.	४५
संग्रामदुर्दिने	सुन्दर.	४१
स च सुचिरं	युद्ध.	६२
संतापघ्नं सकल	बाल.	१३
स तां सतां बुद्धि	किष्किन्धा.	१
सत्यविप्लवमप	अयोध्या.	१६
सत्योद्यां गिरमिह	अयोध्या.	२०
संत्रस्य पूर्वममुत	किष्किन्धा.	१७
स दण्डकायां कृत	अरण्य.	२३
स पितरमनवेक्ष्य	अयोध्या.	६३
स पुत्रीयन्सपत्नी	बाल.	६५
सप्राणा चेज्जनक	अरण्य.	३९
समभूत्समये त०	अरण्य.	३०
स मारुतेर्नैर्ऋत	सुन्दर.	४२
सरसपटीरकुञ्ज	युद्ध.	११
सर्वे सपर्वतामुर्वी	बाल.	६९
सहलक्ष्मणं तम	युद्ध.	६४
सवल्कले दाशरथी	अयो.	[illegible]
साकेतं समुपेयि	युद्ध.	[illegible]
सागरेण कृतज्ञेन	सुन्दर.	[illegible]
साधारणी क्षितति	किष्कि.	१६

श्लो०	का०	श्लो०
सापि सप्तार्चिषा	बाल.	६१
साहित्यादिकला	युद्ध.	११०
सिद्धार्थकोमहा	अयो.	३६
सीतापतेः किस	अयो.	५६
सीता पुरा गग	अयो.	३३
सीताभिधान	सुन्दर.	५६
सीतामाहर्तुकामा	अरण्य.	१९
सीतामुदीक्ष्य	युद्ध.	९६
सुखोचितानां	अयो.	३७
सुत्रामपुत्रारिशि	किष्कि.	४४
सुबाहुराहवोन्म चः	बाल.	५१
सुमुखि मम सुमित्रा	अरण्य.	२७
सेवारसानुगत	अयो.	५३
सैन्यैस्ततो रघु	युद्ध.	७
सैषा भागीरथी	बाल.	८७
सोऽपि गत्वा बिलं	बाल.	७२
सोऽपि प्लवंगम	सुन्दर.	४७
सोऽयं ददर्श दश	सुन्दर.	४३
सोऽयं मदान्धहृद	सुन्दर.	२०
सोऽहं प्लवङ्गम	युद्ध.	३४
सौख्यावहस्य	सुन्दर.	३०
स्वकृत्यैः शाखा	सुन्दर.	३७
स्वतःसिद्धं यस्मि	अयो.	७९
स्वयमपि शरभंग	अरण्य.	४२
हरिकला[illegible]	युद्ध.	७१
हा [illegible] नहि	अरण्य.	३६
हा तात हा जननि	सुन्दर.	[illegible]
हा नाथ क्व चिरा	अरण्य.	२[illegible]
हत्वाद्रेः शिखरा	बाल.	[illegible]
[illegible] अनाथाः	किष्कि.	[illegible]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परीक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

चन्द्रालोकः। 'पौर्णमासी' संस्कृत तथा 'कथाभट्टी' हिन्दीटीका	१८–००
ध्वन्यालोकः। 'दीधिति' संस्कृत-हिन्दी टीका	४५–००
सांख्यकारिका। गौड़पाद भाष्य तथा हिन्दी टीका	६–००
भट्टिकाव्यम्। 'चन्द्रकला' 'विद्योतिनी' सं. हि. टीका १-६ सर्ग २५–००, ७-११ सर्ग २०–००, १२-२२ सर्ग २५–००, १-४ सर्ग १५–००, ५-८ सर्ग	२०–००
प्रतिमानाटकम्। 'प्रकाश' सं० हि० टीका	१२–००
मालविकाग्निमित्रम्। 'प्रकाश' सं० हि० टीका	२०–००
अर्थसंग्रहः। 'मीमांसार्थसंग्रहकौमुदी' सं० हि० टीका	१५–००
तर्कभाषा। 'तत्त्वालोक' सं० हि० टीका	१५–००
मुद्राराक्षसनाटकम्। 'शशिकला' सं० हि० टीका	२५–००
मालतीमाधवम्। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका	३५–००
चैतन्यचन्द्रोदयनामनाटकम्। 'प्रकाश' हिन्दी टीका	३५–००
अमरुशतकम्। 'रसिकसंजीविनी' तथा 'प्रकाश' हिन्दी टीका	१०–००
साहित्यदर्पणम्। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका १-६ परिच्छेद	५०–००
७-१० परिच्छेद ४०–०० संपूर्ण	९०–००
सांख्यतत्त्वकौमुदी। 'तत्त्वचंद्रिका' हिन्दी व्याख्या सहित	२५–००
रामायणमंजरी। क्षेमेन्द्रविरचित। सम्पा०–काशीनाथ पाण्डुरंग	७०–००
शिशुपालवधम्। मल्लिनाथ सूरिकृत 'सर्वंकषा' व्याख्या	७०–००
रत्नावलीनाटिका। 'कमलेश्वरी' संस्कृत हिन्दी टीका	१२–००
अविमारकम्। 'कमलेश्वरी' संस्कृत हिन्दी टीका	१०–००
वेणीसंहारनाटकम्। 'कमलेश्वरी' संस्कृत हिन्दी टीका	२०–००
विक्रमोर्वशीयम्। 'विनोद' सं. हि. टीका	१६–००
ऋग्वेदभाष्यभूमिका। हिन्दी व्याख्या सहित	१०–००
दशकुमारचरितम्। 'चन्द्रकला' सं. हि. व्याख्या, पूर्वपीठिका सहित	८–००
मृच्छकटिकम्। सविमर्श 'भावप्रकाशिका' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित। व्याख्याकार डॉ० जयशंकर लाल त्रिपाठी	५५–००
शिशुपालवधम्। 'आनुबोधिनी' सं. हि. व्याख्या। प्रथम सर्ग,	५–००
द्वितीय सर्ग ५–००, तृतीय सर्ग ५–००, चतुर्थ सर्ग ५–००, १-४ सर्ग	२०–००
कुमारसंभवम्। सान्वय 'सुधा' सं. हि. टीका १-५ सर्ग	१५–५०
प्र. सर्ग २–५०, द्वि. सर्ग २–५०, तृ. सर्ग ३–००, च. सर्ग २–५०, पं. सर्ग	५–००

प्राप्तिस्थानम्–कृष्णदास अकादमी, पो० बा० ११ १८, वाराणसी–२२१००१